प्राचीन जैन श्वेताम्बर तीर्थ श्री कापरडा जी

स्वर्ण जयंती महोत्सव ग्रंथ

प्रकाशक

स्वर्ण जयंती महोत्सव समिति

श्री कापरड़ा स्वर्णजयन्ती महोत्सव ग्रंथ
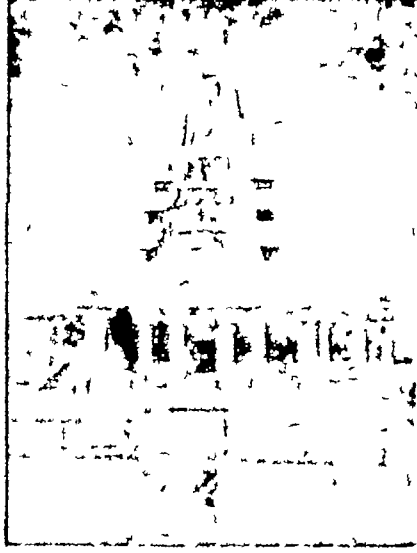
सम्पादक

श्री मिश्रीमल जैन 'तरगित'

एम ए, एल-एल बी, साहित्यरत्न

प्रकाशक

श्री स्वर्णजयन्ती महोत्सव समिति, कापरडा तीर्थ

वीर सवत् २४९५

विक्रम सवत् २०२५

प्रथम सस्करण ८०० प्रतिया

मूल्य सजिल्द १०)रु० डाक व्यय पृथक

•

पुस्तक मिलने का पता

(१) श्री जैन श्वेताम्बर प्राचीन तीर्थ श्री कापरड़ा (राज०)
पो० कापरड़ा, वाया पीपाड

(२) श्री मानचन्द भंडारी, मोती चौक, जोधपुर

मुद्रक
साधना प्रेस
हाई कोर्ट रोड, जोधपुर

राजस्थान में अपनी शान का बेजोड़ प्राचीन तीर्थ श्री कापरडाजी
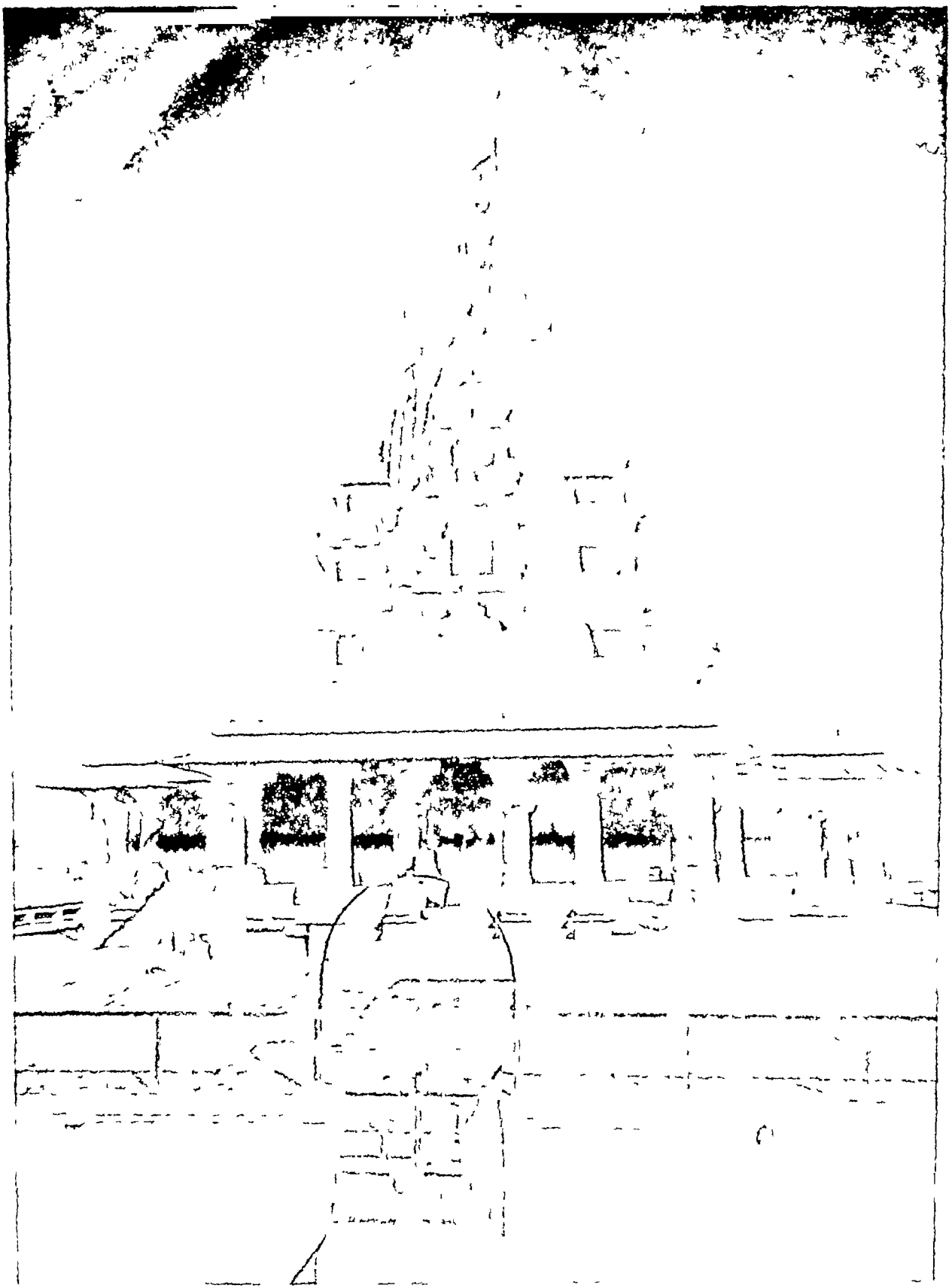
चौमुखा चौमजिला और भूमि से ९५ फुट ऊँचा अतीत का गौरव दर्शनीय भव्य जिनालय

शासन सम्राट बाल ब्रह्मचारी तपोगच्छाधिपति
श्रीमद् विजय नेमीसूरिश्वरजी महाराज

वि० स० १९७५ मे पुन प्रतिष्ठा कराने का श्रेय
आपही के सद्उपदेशो का है।

जन्म	वि० स० १९२९	आचार्य पद :	वि० स० १९६४
दीक्षा	,, १९४५	स्वर्गवास	,, २००५

समर्पण

अनेक गुणगणालंकृत, परमपूज्य, कृपालु, महान तीर्थोद्धारक, शासनसम्राट, बालब्रह्मचारी, तपोगच्छाधिपति श्रीमद् विजय श्री श्री १००८ श्री विजयनेमिसूरिश्वरजी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात उनकी पवित्र स्मृति मे श्रद्धाञ्जलि स्वरूप—

तीर्थ का उद्धार कराकर उसे समस्त भारत मे ख्याति प्रदान करने वाली आपकी दिवंगत आत्मा का कोटानुकोटि वन्दना सहित—

प्राचीन तीर्थ 'श्री कापरडा स्वर्ण जयन्ती महोत्सव ग्रन्थ' जो कि पुनः प्रतिष्ठा के ५० वर्ष होने के उपलक्ष मे प्रकाशित हो रहा है—सादर समर्पित है—

सदेव मानसिक अभिनन्दन के साथ !!!

समर्पक—

श्री जैन श्वेताम्बर सघ

श्रद्धा और आभार

हे जिन ·········· सूरिजी महाराज के शिष्य !

हे अज्ञातनाम यतिवर्य्य !!

हे पूज्य पाद !!!

यह स्वयंभू पार्श्वनाथ जैन तीर्थ कापरड़ाजी, जो कि अनुपम भव्य और विशाल है – आप ही की यशोगाथाओं का प्रतीक है, आप ही की सद्भावनाओ का मूर्तिमान है। आप ही की प्रेरणा और प्रोत्साहन से निर्मित इस जिनालय की पुनः प्रतिष्ठा के स्वर्ण जयन्ती के पुनीत अवसर पर हम आपको विस्मरण कैसे कर सकते हैं !!

परम श्रद्धेय गुरुदेव !

हम आपसे यही शुभाशीष चाहते हैं कि इस तीर्थ की निरन्तर श्रीवृद्धि होती रहे तथा भक्तजन तीर्थ की यात्रा कर अपना जीवन धन्य बनाते रहे !!

हम हैं आपके, श्रद्धावनत–

स्वर्ण जयन्ती महोत्सव समिति के सदस्य

श्रीमद् विजय नेमीसूरिश्वरजी म० के शिष्य
काव्य शास्त्र विशारद श्रीमद् विजयदक्ष
सूरिश्वरजी महाराज

साहित्य रत्न, शास्त्र विशारद, कवि भूषण
श्रीमद् विजयसुशील सूरिश्वरजी महाराज

आपने वि० स० २०२३ के ज्येष्ठ सुदि ३ को
समवसरण के मंदिर की प्रतिष्ठा
इस तीर्थ पर करवाई।

विषय - सूची

प्रकाशकीय

समय की बलिहारी हे। मनुष्य-जोवन मे जिस प्रकार चढाव-उतार आते रहते हैं ठीक उती प्रकार तीर्थ स्थानो की भी उन्नति अवनति होती रहती है। श्री कापरडाजी तीर्थ के इतिहास मे भी हमे यही कुछ देखने को मिलता है। पूरा विवरण तो आप इस ग्रथ मे पढेगे ही। सक्षेप मे यह है कि विक्रम की सत्रहवी शताब्दि मे कापरडा एक समृद्धिशाली शहर था पर वहाँ मन्दिर नही था और आज हम वहां विशाल मन्दिर देखते हैं तो कापरडा एक छोटासा ग्राम मात्र नजर आता है। मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा, जो भूमि से प्राप्त हुई, कौन जानता था कि इस प्रतिमा के लिए यहाँ एक विशाल मन्दिर का निर्माण होगा ? यही सब प्रभु की माया है।

इस तीर्थ के सस्थापक स्वनामधन्य श्री भानाजी भण्डारी ने जब यहाँ गगनचुंबी विशाल मन्दिर वनवाया उस समय आस-पास मे कही भी इसकी शानी का मन्दिर नही था। इसकी जाहोजलाली दिनब्रदिन देश के कोने-कोने मे फैलती जा रही थी और काफी अरसे तक फैलती रही। जैसा कि मैं ऊपर बता आया हूँ कि उन्नति के बाद अवनति भी आया करती है तो भला यह तीर्थ कैसे बचता ? यहाँ का भी यही हाल हुआ। शनै शनै उन्नति का स्थान अवनति ने ले लिया और वि० स० १९७५ तक तो यहाँ की दशा काफी गिर चुकी थी। इसका भी अन्त होना ही था। भाग्योदय से जैन शासन के सम्राट स्व० आचार्यदेव श्री विजयनेमिसूरिश्वरजी महाराज साहब का यहाँ पधारना हुआ। आपने यहाँ की दशा देख सिर्फ दु ख ही प्रगट नही किया बल्कि इसके पुनरुद्धार का बीडा उठाया। फिर क्या देर थी आपके सदुपदेश से यहाँ का पुनरुद्धार होकर इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १९७५ के माघ शु० ५ को सानन्द सम्पन्न हुई। जिसे वि० स० २०२५ माघ शु० ५ को ५० वर्ष पूर्ण हुए।

वि० स० २०२४ चैत्र शु० ५ की बात है, तीर्थ का वार्षिक मेला था। साधारण सभा के समक्ष श्री मानचन्दजी भण्डारी का यह प्रस्ताव पेश हुआ कि तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा को ५० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं इसके उपलक्ष मे स्वर्ण जयन्ति महोत्सव बनाया जाना चाहिए तथा

उमकी स्मृति मे एक ग्रन्थ प्रकाशित होना चाहिए। इस पर काफी विचारविनिमय हुग्रा ग्रौर फिर सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास हो गया जो कि वास्तव मे जरूरी था क्यो कि विगत ५० वर्षो मे तीर्थ ने काफी उन्नति की है। प्रति वर्ष यात्रा की सख्या बढती ही जा रही हैं। पिछले कुछ वर्षो से तो यहा कई एक सघ यात्रार्थ ग्रा रहे हैं। जोधपुर से ३२ मील की दूरी पर जयपुर जाने वाली सडक के किनारे ग्राने पर यहा जैन ही नही जैनेतर भी भारी सख्या मे दर्शनार्थ ग्राते रहते हैं। यहा के ग्रधिस्ठायक देव श्री भैरूजी भी बडे चमत्कारिक हैं जिससे ग्राम जनता दर्शनार्थ ग्राती है।

स्वर्ण जयन्ति महोत्सव मनाने तथा ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिए मुझे सयोजक बना कर ७ सज्जनो की एक समिति गठित की गई जिसमे श्री तेजराजजी भसाली, श्री मानचद जी भडारी, श्री पारसमलजी सराफ, श्री भैरूसिहजी मेहता, श्री ग्रमृतलालजी गाधी तथा श्री सोहनराजजी भसाली है समिति के समक्ष महोत्सव मनाने का तथा ग्रन्थ प्रकाशित करने का दोनो महत्वपूर्ण कार्य थे। मैंने ग्रपने मित्रो के ग्राग्रह पर इस गुरुतर कार्य को ग्रपने हाथ मे लिया। प्रभो की कृपा, मित्रो के सहयोग तथा समाज के शुभ ग्राशीर्वाद से यह कार्य सानन्द सम्पन्न हो रहा है। ग्रौर प्रस्तुत ग्रन्थ ग्रापके समक्ष है। ग्रन्थ प्रकाशन मे ग्रनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है पर जहा सब का सहयोग हो वहा क्या कमी रहती है।

प्रत्येक शुभ कार्य मे धन की प्रथम ग्रावश्यकता रहती है। समाज के पास धन की कमी नही, कमी है कर्मठ कार्यकर्त्ताग्रो की। ग्रर्थ सग्रह के सद्कार्य मे सर्व श्री तेजराजजी भसाली श्री पारसमलजी सर्राफ तथा श्री भैरूसिहजी मेहता का ग्रपूर्व सहयोग रहा। ग्रापने समय समय पर बाहर पधार कर ग्रथक परिश्रम कर वाछित ग्रर्थ सग्रह किया। श्री मानचन्दजी भडारी ने प्रबन्धक का पद बडी योग्यता के साथ सभाला। ग्रॉफिस का पूरा कार्य ग्रापके जिम्मे था, ग्रापने पत्रव्यवहार करके पू० मुनिराजो के तथा विद्वानो के लेख मगवाये। माननीय शिक्षाप्रेमी प्रोफेसर श्री ग्रमृतलालजी गाधी तथा श्री सोहनराज-जी भसाली ने ग्रपनी सस्थाग्रो के कार्य मे ग्रत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी इस कार्य मे ग्रच्छा सहयोग दिया। पू० मुनिराजो ने तथा गणमान्य विद्वान लेखको ने ग्रपने ग्रनमोल लेख भेज कर ग्रन्थ को सार्थक बनाया तथा हमारे समाज के दानवीरो ने ग्रपनी चचल लक्ष्मी का सदुपयोग कर इसे मूर्तिमान रूप दिया उनको हम कैसे भूल सकते हैं। इसके ग्रलावा जिन जिन महानुभावो ने इस पुनीत कार्य मे किसी भी प्रकार का सहयोग दिया उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करना हम ग्रपना कर्तव्य समझते हैं।

इस ग्रथ के सम्पादन का कार्यभार श्री मिश्रीमलजी जैन 'तरगित' ने सभाला। ग्रापके समक्ष ग्रपना निजी कार्य होते हुए भी ग्रापने इस ग्रोर समुचित ध्यान दिया। ग्रथ को

सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने मे आपने जो परिश्रम किया वह सराहनीय है। साधना प्रेस के सञ्चालक श्री हरिप्रसादजी पारीक ने इतने बडे ग्रथ के प्रकाशन मे सहयोग दिया। श्री डी० एन० जोशीजी ने चित्रो से ग्रथ की सजावट की। श्री सुमेरसिंह चौहान ने सुन्दर जिल्द बाधी इन सब के प्रयत्न से ही इस सुन्दर ग्रन्थ का निर्माण हुआ उन सब के प्रति आभारी हैं।

अन्त मे प्रिय पाठको से निवेदन है कि बहुत कुछ सावधानी रखते हुए भी भूले रह जाना स्वाभाविक है, अत आप क्षमा करते हुए इस ग्रन्थ को अपना समझ कर स्वर्णजयति समारोह मे अपना कर अपनी धर्मप्रियता का परिचय देवे।

विनीत

मु० पीपाड शहर
(राजस्थान)
७-३-६६

जवाहरलाल दफ्तरी
सयोजक
स्वर्णजयन्ती महोत्सव समिति

मेरे भी दो शब्द

एक दिवस अचानक ही मेरे ध्यान मे आया कि श्री कापरडाजी तीर्थ की पुन' प्रतिष्ठा हुए पचास वर्ष होने वाले हैं, क्यो न स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मनाया जाय ! मैंने अपने विचार लिखकर व्यवस्थापक समिति को भेज दिए, यद्यपि कार्यवश मैं बैठक मे भाग नही ले सका, फिर भी समिति ने मेरे प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया चूकि यह एक वहुत बडा कार्य था। अतएव समिति ने गत मेले के अवसर पर इसे साधारण सभा मे प्रस्तुत कर दिया। साधारण सभा ने एक उपसमिति का गठन कर योजना का प्रारूप तैयार करने और बजट बनाने का कार्य सौप दिया तथा व्यवस्था समिति को अर्थ-व्यवस्था करने का आदेश दे दिया। उक्त उपसमिति का नाम 'स्वर्ण जयन्ती महोत्सव समिति' रखा गया। इसके सयोजक श्री जवाहरलालजी दफ्तरी को बनाया गया। इस समिति ने प्रारूप तैयार कर दिनाक ११-८-६८ को व्यवस्थापक समिति की बैठक मे प्रस्तुत किया और पन्द्रह सहस्त्र रुपयो की माग की। समिति की बैठक मे प्राय' कम ही सदस्य उपस्थित हुआ करते थे किन्तु इस बैठक मे २१ मे से १५ सदस्यो ने भाग लिया। अन्तत बडे उत्साह के साथ समिति ने १५ के स्थान पर २५ हजार की स्वीकृति प्रदान कर दी और माघ सुदि ५ (प्रतिष्ठा दिवस) के स्थान पर मेला दिवस अर्थात् चैत सुदि ५ को महोत्सव मनाने का निश्चय कर लिया। महोत्सव के साथ-साथ यह विचार भी स्वीकार कर लिया गया कि विगत ५० वर्षो मे तीर्थ ने जो उन्नति की है उसका पूर्ण विवरण ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित किया जाय, अस्तु—

दिनाक ३०-८-६८ से कार्य प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम पत्रिका छपवा कर देश भर मे भेजी गई, उसके द्वारा ग्रथ प्रकाशन मे होने वाले व्यय की उपज हेतु ५०१)—२५१) और १२५) रुपए देने वाले धनीमानियो का ध्यान आकर्षित किया गया। यह प्रसन्नता की बात है कि योजना का सर्वत्र स्वागत किया गया।

ग्रन्थ प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य मे मुझे निम्नलिखित जिन सज्जनो ने सहयोग दिया, मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ। उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) सर्व प्रथम मैं पूज्य कुन्दकुन्द विजयजी महाराज का उपकार मानता हूँ। आपका चातुर्मास जोधपुर क्रिया भवन मे हुआ। मैंने इस कार्य की रूपरेखा आपके समक्ष प्रस्तुत की तो आपने मुझे कई विद्वान लेखको व मुनिराजो के पते व सूची दी। मैंने उसके अनुसार उन सब को पत्र लिखे तो कोई प्रभाव नही पडा, तब मैंने पुन आपसे निवेदन किया तो आपने कहा, घबराने की कोई बात नही है और उनके अपने पास जो लेखो का सग्रह था वह मुझे दे दिया, किन्तु वे सब गुजराती भाषा मे थे। इस समस्या के समाधान हेतु आपने सुझाव दिया कि ग्रथ का एक भाग गुजराती मे ही छपवाया जाए, अस्तु पृष्ठ १ से ७० तक सभी लेख गुजराती भाषा मे छपे। शेष समस्त ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे छपा। ऐसा इसलिए किया गया कि गुजराती बन्धु भी लाभ उठा सके। इस भाग के छपने मे महाराज श्री का पूर्ण सहयोग रहा। इस भाग मे जैन तत्व निहित है।

(२) गणिवर्य श्री अभयसागरजी म० ने दो लेख स्वय ने भेजे और एक उज्जैन निवासी श्री तेजसिंहजी गौड से भिजवाया। आपका स्वास्थ्य ठीक नही होने पर भी आपने लेख भेजने की कृपा की।

(३) श्रीभद्रगुप्तविजयजी म० का अच्छा सहयोग रहा। आपने आर्थिक सहायता दिलाने मे भरसक प्रयत्न किया और एक विद्वतापूर्ण लेख भी भेजा।

(४) श्रीमद विजय हेमाचलसूरिश्वरजी म० ने अत्यत प्रेम तथा सदभावना से शुभ सन्देश भेजा और खडप जैन सघ से ५०१) रु सहायतार्थ भिजवाए।

(५) श्रीमान अगरचदजी नाहटा बीकानेर वालो के नाम से न केवल जैन जगत ही बल्कि जैनेतर विद्वान भी भलीभाति परिचित हैं। ऐतिहासिक जानकारी के सबध मे आपने कीर्तिमान स्थापित किया है। मैंने पत्र द्वारा आपसे लेख भी मागा और अनेक शकाओ का समाधान भी प्राप्त किया। यह प्रसन्नता की बात है कि आपने दो लेख भी भेजे और कई नेक परामर्श भी दिए।

(६) श्री चदनमलजी नागोरी छोटी सादडी वालो ने ५ लेख विद्वतापूर्ण भेजे जिनमे से ३ प्रकाशित किए गए और स्थानाभाव के कारण दो वापिस करने पडे। आपने ऐतिहासिक पुस्तकें भी भेजी। आपके आँख मे मोतिया बिन्द होते हुए भी लेख लिखकर भेजे और पत्रव्यवहार भी हुआ।

(७) स्वर्ण जयती के ६ सदस्यो ने अपने लेख तो भेजे ही साथ ही हर प्रकार का सहयोग भी दिया।

(१) श्री तेजराजजी सा वृहद अवस्था व अस्वस्थ होने पर भी यहा पधार कर निराक्षण किया और मुझे उत्साहित करते रहे।

(२) श्री जवाहरलालजी सा सयोजक समय समय पर यहा पधार कर हर प्रकार का सहयोग दिया और २ लेख भी भेजे।

(३) मत्री महोदय श्री पारसमलजी सा ने कई बार बिलाडा से पधार कर लेखन व ब्लॉक छपवाने व अन्य कार्य मे जो हाथ बढाया वह सराहनीय है। आप यहा लगातार तान-चार दिन ठहर कर परिश्रम के साथ लगनपूर्वक कार्य किया।

(४) श्री भैरूसिहजी सा के पास दूसरा कार्य होने से वह यहा ज्यादा रुक नही सके किन्तु समय २ पर पत्र द्वारा अपनी सहानुभूति प्रकट करते रहे और अर्थ-व्यवस्था करने का पूरा ध्यान रखा।

(५) अमृतलालजी सा गाधी ने लेखो को देखने व अन्य लिखापढी के कार्य मे पूरा सहयोग दिया।

(६) श्री सोहनराजजी भसाली ने ब्लोक व चित्र इत्यादि तैयार कराने व लेखो की लिपि सुधारने व स्वय के दो विद्वतापूर्ण लेख लिखने मे समय निकाल कर जो कार्य किया वह सराहनीय है।

(७) अन्य सारे लेखको को भी मैं नही भूल सकता जिन्होने अपना अमूल्य समय देकर लेख तैयार कर भेजे और हर प्रकार का सहयोग दिया।

(८) श्री लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री जोधपुर के अनुभवी व अच्छे लेखको मे माने जाते हैं। इतिहास लिखने मे आपकी लेखनी का सहयोग रहा। जोधपुर के जैन मदिरो व ओसियाँजी तीर्थ पर विद्वतापूर्ण लेख लिखे। कई तीर्थों के चित्र भी इन्होने दिए।

(९) श्री जैसलमेर लोद्रवा पेढी के सचालक महोदय ने इतिहास की पुस्तक चित्र तथा ४ बने हुए ब्लॉक भेजे और हर प्रकार के सहयोग का विश्वास भी दिलाया। मुझे आशा थी कि मुनि महाराज व लेखको के विद्वतापूर्ण लेख बहुतायत से मिलेगे किन्तु यह आशा निराशा मे परिणित हुई इसलिए इस ग्रथ के ६ विभाग करने पडे इसमे चतुर्थ खड मे तो केवल बाईस पृष्ठ ही हुवे कारण इस विषय पर ज्यादा लेख प्राप्त नही हुवे इसके अतिरिक्त अन्य विभागो मे भी लेख मुझे तैयार करने पडे। लेख तैयार करने मे मैंने बहुत सी पुस्तको का सहारा लिया अत. उन लेखको व प्रकाशको का आभार मानता हू। कई लेखो मे लेखको के नाम नही हैं इसका कारण यह है कि श्वेताम्बर जैन के आचार्य अक से कुछ लेख लिए गए कुछ दूसरे मासिक पत्रो से अत उसमे मैंने अपना नाम नही दिया।

चूकि इस गुरुतर कार्य का प्रबधक होने से उत्तरदायित्व मुझे ही वहन करना था इसलिए फूक फूक कर कदम उठाने पर भी जो भूले विद्वज्जनो को विदित हो, उनके लिए मुझे ही दोषी समझकर वे उनका परिहार कर लेगे, तो मै अपने यत्किचित श्रम को सफल हुआ समझूगा, इस आशा के साथ — जाने अनजाने समस्त सहयोगियो के लिए धन्यवाद।

तीर्थ के पिछले जो इतिहास छपे, उनमे और इस इतिहास मे इतना ही अन्तर है कि यह शोध, प्रामाणिक सत्यो और ऐतिहासिक रासो के आधार पर छपा है इसलिए टकशाली है।

समिति का विचार था कि ग्रथ ३०० पृष्ठों का रहे और ३० पृष्ठो मे चित्र छपे। मूल्य ५) रुपए रक्खा जाए और सहायता करने वालो को नि शुल्क दिया जाए। बहुत सावधानी रखने पर भी पृष्ठ सख्या ६०० से ऊपर निकल गई और चित्रो की सख्या ८० पृष्ठ तक पहुँच गई। इतना सब कुछ हुआ, उसमे योजना से अधिक धनराशि व्यय होने के कारण मूल्य दस रुपए करना पडा।

भौतिकवाद के इस युग मे कहा जाता है कि ऐसे ग्रथो की क्या आवश्यकता है तो इस सम्बन्ध मे हमे केवल इतना ही कहना है कि अरबो रुपयो के मूल्य वाले इन तीर्थो का इतिहास धर्म का मूलाधार है और उतना ही आवश्यक है जितना कि धर्म की धारणा जरूरी होती है।

इस ग्रथ को सुन्दर बनाने मे भरसक प्रयत्न किया गया है। आशा है यह पाठको को रुचिकर होगा। शुद्धिपत्र समय के अभाव मे तैयार नही हो सका। अत जहाँ भूल नजर आवे सुधार कर पढे।

यह ग्रथ इस तीर्थ की स्मृति के लिए उपयुक्त है। साथ ही इसकी स्मृति बनी रखने हेतु पार्श्वकुन्ज बन रहा है उसमे मेरे पत्र व कहने मात्र से जिन सज्जनो ने १००१) रु मडाने की कृपा की है उनको मैं धन्यवाद दिए बिना नही रह सकता। उनके नाम निम्न-लिखित है .—

१ श्री माणकचन्दजी बेताला, नागौर निवासी, मद्रास
२ ,, देवराजजी इन्द्रचदजी सेठ जैतारण ,, तीरतुरपुण्डी
३ ,, रिखबचदजी पारसमलजी ,, ,, बैंगलोर सिटी
४. ,, बिरदीचन्दजी पारसमलजी मेडता ,, ,,
५ ,, भीकमचन्दजी लालचदजी पाली ,,
६ ,, सूरजमलजी धनराजजी गोलिया, जोधपुर
७. ,, कनयालालजी सेठ, जैतारण निवासी मद्रास

मैं श्री केवलचदजी सा खटोड, जैतारण निवासी हाल मद्रास का पूर्ण आभारी हूँ जिन्होने मेरे पत्र के पहुँचते ही इस तीर्थ पर चैत्र मास की सिद्धचक्र ओलिएँ अपनी ओर से करवाने की स्वीकृति दी।

अन्त मे मैं फिर पाठको व सब सज्जनो से क्षमा मागता हूँ यदि मेरे व्यवहार से, पत्र से या अन्य किसी तरह से उनको कष्ट पहुँचा हो। मैंने केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। अधिष्ठायकदेव ऐसे शुभ कार्यो मे मुझे सद्बुद्धि व सहयोग दे और यह तीर्थ दिनोदिन उन्नति करता रहे इसी शुभ कामना के साथ अपने 'दो शब्द' का यह लेख पूर्ण करता हूँ।

कृपाकाक्षी

मोतीचौक, जोधपुर
दि० १०-३-६९

मानचन्द भण्डारी
ग्रथप्रबन्धक

सम्पादकीय निवेदन

'श्री कापरडा स्वर्ण जयन्ती महोत्सव ग्रन्थ' के सम्पादन का मुझे आग्रह किया गया जिसे मैंने अपनी विविध व्यस्तताओ के बीच सहर्ष स्वीकार कर लिया। मुझे प्रसन्नता है कि एक धार्मिक अनुष्ठान मे मैं यत्किंचित योग दे सका।

प्रारम्भ मे ग्रन्थ का आभास अकुर रूप मे था, पर धीरे-धीरे इसने वटवृक्ष का आकार ग्रहण कर लिया। इसे प्रभु की कृपा ही समझनी चाहिए कि हमारा मार्ग स्वयमेव प्रशस्त बनता गया। अगस्त '६८ से राजस्थान तथा भारत के इतर प्रान्तो से विविध विषयक लेख आमन्त्रित किए गए जो जनवरी '६९ तक आते रहे।

दिसम्बर '६८ के अन्तिम सप्ताह मे श्री कापरडा तीर्थ पर एक कार्यकारिणी समिति गठित की गई जिसमे ग्रन्थ की रूपरेखा निश्चित की गई। तदनन्तर २८ दिसम्बर को श्री मानचन्दजी साहब भण्डारी के कक्ष मे हमने इस पर विस्तृत विचार-विनिमय किया तथा लेखो का वर्गीकरण, खण्डो का विभाजन, अधूरे-पूरे लेखो की नामावली, भावी-योजना, कागज की खरीद, प्रेस-ब्लॉक के स्थानो का निर्णय आदि ज्वलन्त समस्याओ को अन्तिम रूप दिया।

१ जनवरी '६९ को श्री कापरडा स्वर्ण जयन्ती महोत्सव ग्रन्थ मुद्रणार्थ साधना प्रेस, जोधपुर मे दे दिया गया। आरम्भ मे हमारी धारणा थी कि ग्रन्थ ३२० पृष्ठो मे समाप्त हो जायगा पर यह तो शनै शनै ६०० पृष्ठो तक पहुँच गया और यदि नियन्त्रण नही दिया जाता तो पृष्ठ सख्या ७०० तक पहुँच जाती। हमे विवशतावश अनेक लेख तथा अग्रेजी विभाग का मोह छोडना पडा।

जैन साहित्य का प्रचुर भडार सस्कृत, प्राकृत, अर्द्ध मागधी की भांति हिंदी और गुजराती मे है। इस ग्रथ मे गुजराती मे पाच महत्वपूर्ण निबध हैं जिनकी लिपि देवनागरी ही है। इन लेखो के मुद्रण, प्रूफ सशोधन मे हमे पूज्य मुनिराज कुंदकुंदविजयजी महाराज का अपूर्व सहयोग मिला है तदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।

हमने इस ग्रथ को सर्वांग सुंदर, रुचिकर, उपयोगी तथा परिपूर्ण बनाने की चेष्ठा की है। इसमे हमने निम्नाकित बातो का ध्यान रखा है।

१ जैन धर्म की प्राचीनता, मान्यता, पार्श्वनाथ भगवान का प्रामाणिक जीवन वृत्त, श्री कापरडा तीर्थ का उद्भव एव विकास, आसपास के क्षेत्र तथा तीर्थो का वर्णन हमने प्रथम खड मे किया है।

२ राजस्थान के महत्वपूर्ण तीर्थस्थान दूसरे खड मे
३. भारतव्यापी जैन सीर्थ स्थान तीसरे खड मे
४. जैन धर्म की विभूतिया तथा नररत्न चौथे खड मे
५ जैन धर्म की शास्त्रीय, धार्मिक, तात्विक, व्यावहारिक, नैतिक तथा आधुनिक चिंतन मनन का विश्लेषण पाचवे खड के विविध लेखो मे किया गया है।
६ द्रव्यसहायको की नामावली, परिचय, फोटो, तीर्थ के ५० वर्षों का लेखा-जोखा, षष्ठ खड मे चित्रित है।

सारे ग्रथ मे पर्याप्त फोटो तथा मदिरो के साजसज्जापूर्ण चित्र परिचय सहित मिलेगे, जिससे आपका मन मुग्ध हो जायगा। ग्रथ की सामग्री पठनीय सग्रहणीय, रोचक तथा उपयोगी सिद्ध होगी। छपाई, सफाई, सुंदर अलकरण, आवरण मनोहर, जिल्द सिलाई उत्तम तथा मूल्य उचित १० रु० मात्र रखा गया है जो नितात समीचीन है। हमे विश्वास है कि धर्मनिष्ठ बधुवर इस विशद, शालीन, विविध विषयक, स्वर्ण जयती के उपयुक्त ग्रथ को अपना कर न केवल अपना घर तथा पुस्तकालय ही अलकृत करेगे वरच भरपूर प्रचार कर इस धार्मिक अभियान मे सक्रिय योगदान देगे ऐसी कामना है।

सभी प्रकार की सावधानी रखते हुए भी अशुद्धिया रह जाना स्वाभाविक है क्योकि अधिक काम करना पडा है अत कृपालु पाठक सहृदयतापूर्वक क्षमा करे।

अत मे हम इस मे पार्श्वनाथ प्रभु की परम कृपा ही समझते हैं कि अनेक बाधाएँ आने पर भी यह मगल कार्य यथासमय सुचारु रूप से सपन्न हो गया।

बख्त सागर, नेहरू पार्क
जोधपुर, दि १०-३-६९

मिश्रीमल जैन तरगित
सम्पादक

श्री कापरडा स्वर्ण जयन्ती महोत्सव :: स्वर्ण जयन्ती महोत्सव समिति के सदस्य-गण
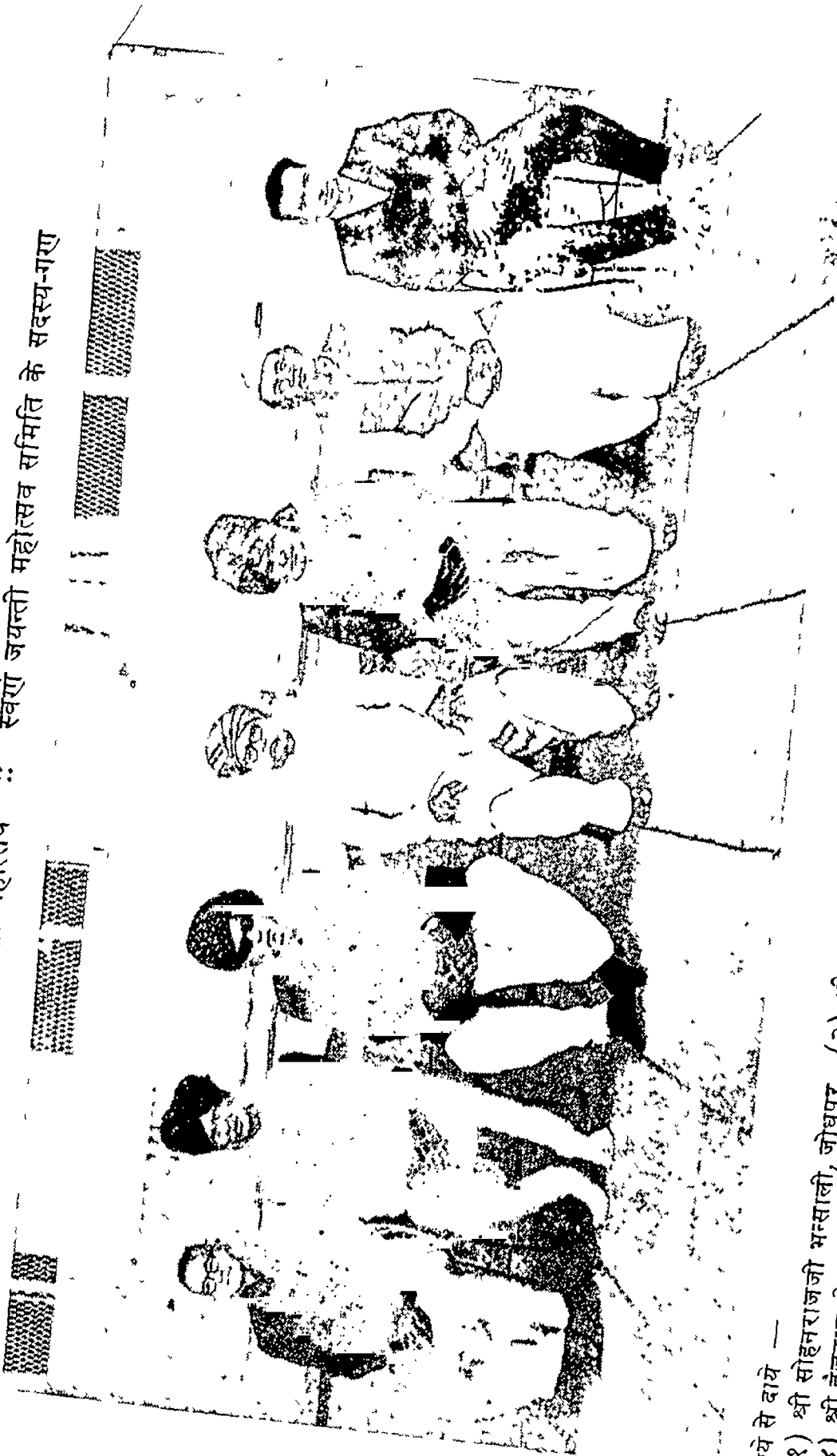
बाये से दाये —
(१) श्री सोहनराजजी भन्साली, जोधपुर (२) श्री मानचन्दजी भडारी, जैतारण, प्रबन्धक (३) श्री भैरूँसिहजी मेहता, बिलाडा
(४) श्री तेजराजजी भन्साली पीपाड, अध्यक्ष (५) श्री पारसमलजी सराफ बिलाड़ा, मत्री (६) श्री जवाहरलालजी दफ्तरो पीपाड, सयोजक
(७) श्री अमृतलालजी गाधी, जोध र।

प्रथम खंड

जैन धर्म की प्राचीनता, कापरड़ा का उद्भव तथा विकास व आसपास के नगरो का वर्णन

अनुक्रमणिका

संयोजक
श्रीमान जवाहरलालजी सा० दफ्तरी
पीपाड शहर (राज०)

सम्पादक
श्रीमान मिसरीमलजी जैन तरंगित
जोधपुर (राज०)

जैन धर्म की प्राचीनता एवं मान्यताएँ

सग्राहक श्री मानचन्द भण्डारी

नेत्रानन्दकरी भवोदधितरी श्रेयस्तरोर्मञ्जरी।
श्रीमद्धर्ममहानरेन्द्रनगरी व्यापल्लता धूमरी।
हर्षोत्कर्षशुभप्रभावलहरी रागद्विपा जित्वरी।
मूर्ति श्रीजिनपुङ्गवस्य भवतु श्रेयस्करी देहिनाम् ।।१।।

जैन धर्म एक अति प्राचीन, स्वतत्र, विश्वव्यापी, आत्मकल्याण-तत्पर अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप से चला आया, उच्चमकोटि का, पवित्र, श्रेष्ठ धर्म है। इसकी आदि का पता लगाना बुद्धि से परे है। जैन धर्म की नीव स्याद्वाद एव विज्ञान के आधार पर रक्खी गई है। इसका आत्मवाद, अध्यात्मवाद, परमाणुवाद, सृष्टिवाद और कर्मवाद के व्याख्याता साधारण व्यक्ति नही पर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी वीतरागदेव थे। जैन धर्म जितना विशाल है उतना ही गम्भीर भी है। जैन धर्म एक समुद्र है।

समन्वयपूर्वक व्यापक दृष्टि से जैन धर्म के अभ्यास की आवश्यकता है। जैन धर्म जगत के प्राणीमात्र के कल्याण, हित, शाति सुव्यवस्था इत्यादि के लिए विख्यात है। आज युग मे यह बात प्राय सिद्ध हो चुकी है कि जगत मे दो ही धर्म प्राचीन हैं—एक जैन धर्म और दूसरा वैदिक। अब इसमे यह शका उत्पन्न हो सकती है कि इन दो मे से पहला कौन ? वैदिक धर्म मे ऋग्वेद प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इस सम्बन्ध मे जैनेतर विद्वानो का भी यही मत है कि जैन धर्म वैदिक धर्म से भी प्राचीन है। इससे ये शकाएँ भी निर्मूल हो चुकी हैं कि जैन धर्म श्री पार्श्वनाथ व श्री महावीर स्वामी से ही चला।

यही नही जैन धर्म अन्य सब धर्मों की अपेक्षा पुराना है। यह बात वेद, पुराण, उपनिषद एव भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो के मन्तव्यो से सत्य सिद्ध हो चुकी है। 'जैन धर्म और इसकी प्राचीनता' नामक पुस्तक मे इसका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

जैन दर्शन की सूक्ष्मतम कर्म-पद्धति, सूक्ष्मतम सिद्धातगण, ९ तत्व, ४ अनुयोग, ४ निक्षेप सप्तभङ्गी, सप्तनय, अनेकान्तवाद, अहिंसा, सयम, तप, योग महाव्रतो के सूक्ष्मरीति से परिपालन तक पहुँचने मे अन्य कोई भी दर्शन अद्यावधि समर्थ नही हुआ है—

करोडो अरबो के द्रव्य व्यय से जितने आविष्कार हुए हैं उनके परिणाम जैन सिद्धांत

की मान्यताओ के अनुरूप ही हुए हैं। आणविक सिद्धांत इसका जीवत जाग्रत उदाहरण है, इसलिए जगत के बडे वैज्ञानिक, तत्वज्ञ, धुरधर पण्डित और देश-देशातर के उच्च अधिकारी इत्यादि भी जैनधर्म की मुक्त कठ से प्रसशा करते हैं।

विश्व के धर्मों मे सर्वाङ्ग सपूर्ण कोई भी धर्म है तो वह जैन धर्म है। भयकर युद्ध के मार्ग पर उपस्थित राष्ट्रो को विश्वशान्ति की राह बता सके ऐसी क्षमता रखने वाला मार्ग जैन धर्म के सिद्धातो मे ही निहित है।

अब हम जैन धर्म के विषय मे विद्वानो एव तत्ववेत्ताओ के सुन्दर अभिप्राय अविकल उद्धृत करते हैं जिनसे आप वास्तविक मूल्याकन कर सकेगे।

(१) डॉ० जॉन्स हर्टल (जर्मनी) कहते हैं—'मैं अपने देशवासियो को दिखाऊँगा कि कैसे उत्तम नियम और ऊँचे विचार, जैन धर्म और जैनाचार्यो ने दिए हैं। जैन-साहित्य बौद्धो से बहुत बढकर है और ज्यो-ज्यो मैं जैन धर्म और उसके साहित्य को समझता हूं त्यो त्यो मैं उनको अधिक प्रसद करता हुँ।' इत्यादि।

(२) जर्मन डॉ० हर्टल का मतव्य है—'जैनो के महान् सस्कृत साहित्य को समग्र साहित्य से अलग किया जाए तो सस्कृत कविता की क्या दशा हो?'

(३) डॉ० हर्मन याकोवी (जर्मनी) का निश्चित मत है—'जैन धर्म पूरे तौर से स्वतन्त्र धर्म है। इस धर्म ने दूसरे किसी धर्म का अनुकरण या नकल नही की है।'

(४) डॉ० ए० गिरनाट (पेरिस) लिखते हैं—'मनुष्य के उत्थान के लिए जैन धर्म का चारित्र वहुत लाभकारी है। यह धर्म बहुत ही असली, स्वतत्र, सादा, बहुत मूल्यवान् तथा ब्राह्मणो के मतो से भिन्न है। यह बौद्धो के समान नास्तिक नही है।' इत्यादि

(५) जी० जे० आर० फरलॉग—'जैन धर्म की स्थापना, आरम्भ, जन्म कब हुआ इसका पता लगाना असम्भव है। हिन्दुस्तान के धर्मो मे जैन धर्म सबसे प्राचीन है।'

(६) टी० डब्ल्यू० रईस डेव्हिड—'जैन धर्म, बौद्ध धर्म की अपेक्षा भी प्राचीन है।'

(७) कर्नल टॉड—'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास मे जैन धर्म ने अपना नाम अजर-अमर कर रक्खा है।'

(८) यूरोपियन विद्वान डॉ० परडोल्ट—'धर्म के विषय मे जैन धर्म नि.शक परम पराकाष्ठा वाला है।'

(९) मेजर फर्लाङ्ग साहब का कहना है—'जैन धर्म के प्रारम्भ को जानना असभव है।'

(१०) डॉ० एल० पी० टेसीटोरी (इटालियन विद्वान) का मन्तव्य है—'जैन धर्म बहुत ही ऊँची श्रेणी का है। इसके मुख्य तत्व विज्ञान के आधार पर रचे हुए हैं। ज्यो ज्यो

पदार्थ विज्ञान आगे बढता जाता है त्यो त्यो वह जैन धर्म के सिद्धातो को सिद्ध कर रहा है।'

(११) जार्ज वर्नार्ड शॉ (इगलैड के प्रसिद्ध नाटककार) कहते हैं—'जैन धर्म के सिद्धात मुझे बहुत ही प्रिय हे। मेरी यह इच्छा है कि मृत्यु के वाद मैं जैन परिवार मे जन्म प्राप्त करूँ।'

(१२) अमेरिकन वहन ओर्डीकार्जेरी का कहना है—'जैन धर्म एक ऐसा अद्वितीय धर्म है जो कि प्राणीमात्र की रक्षा करने के लिए क्रियात्मक प्रेरणा देता है। मैंने ऐसा दया-भाव किसी धर्म मे देखा नही है।'

(१३) डॉ० रविन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं—'महावीर ने दुंदुभिनाद से हिन्द मे सदेश फैलाया कि धर्म वह वास्तविक सत्य है जिसे कहते आश्चर्य होता है कि—इस शिक्षा ने देश को वशीभूत कर लिया।'

(१४) स्व० लोकमान्य तिलक—'ब्राह्मण और हिन्दू धर्म मे मासभक्षण और मदिरा पान वद हो गया—यह भी जैन धर्म का प्रताप है। महावीर स्वामी के पहले भी जैन धर्म प्रचार मे था।'

(१५) प० जवाहरलाल नेहरु—'जैन या बौद्ध पूरी तौर से भारतीय हैं लेकिन वे हिन्दू नही हैं।'

(१६) डॉ० राजेन्द्रप्रसाद (भूतपूर्व भारतीय राष्ट्रपति) की स्पष्ट राय है—'श्री महावीर के वताए मार्ग पर चलने से हम पूर्ण शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। जैन धर्म ने ससार को अहिंसा की शिक्षा दी है। किसी दूसरे धर्म ने अहिसा की मर्यादा यहाँ तक नही पहुँचाई। जैन धर्म अपने अहिसा सिद्धात के कारण विश्वधर्म होने को पूर्णतया उपयुक्त है।'

(१७) डॉ० राधाकृष्णन सर्वपल्ली (भूतपूर्व राष्ट्रपति) का कहना है—'अपने पूर्व होगए २३ महर्षि अथवा तीर्थङ्करो द्वारा दिए गए उपदेशो की परम्परा वर्द्धमान ने आगे चलाई। ईस्वी सन के पूर्व ऋषभदेव के असख्य उपासक थे। इस तत्व को सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। खास यजुर्वेद मे भी तीर्थङ्करो को मान्यता दी गई है। अगणित व युगानुयुग से जैनधर्म चला आ रहा है।'

(१८) स्व० मोहनलाल करमचन्द गाँधी—'अहिंसा तत्व के सबसे वडे प्रचारक महावीर स्वामी ही थे।'

(१९) डॉ० सतीशचन्द्र लिखते हैं—'वेदान्त दर्शन के पहले ही जैन धर्म प्रचार मे था। सृष्टि के आरम्भ से ही जैन धर्म प्रचार मे है।'

(२०) डॉ० गगानाथ झा (एम ए, डी लिट्) 'अगर विरोधी सज्जन जैन साहित्य

का अभ्यास व मनन सूक्ष्म रीति से करेंगे तो उनका विरोध समाप्त हो जाएगा।'

(२१) प्रोफेसर मेक्समूलर—'जैनधर्म हिन्दूधर्म से बिल्कुल भिन्न और स्वतत्र धर्म है।'

(२२) सर अकबर हैदरी—'महावीर का सत्सन्देश हमारे हृदय मे विश्वबन्धुत्व का शखनाद बजाता है।'

(२३) श्री वरदकातजी, एम ए—'जैनधर्म का प्रथम प्रचार श्री ऋषभदेव ने किया।'

(२४) प० राममिश्रजी आचार्य, रामानुज—'स्याद्वाद यह जैनधर्म का अभेद्य दुर्ग है। इस दुर्ग मे वादी और प्रतिवादो के मायामय लोगो का प्रवेश नही होता। वेदान्त आदि अन्य दर्शन शास्त्रो के पूर्व भी जैन धर्म अस्तित्व मे था, इस वारे मे मुझे रत्ती भर भी सन्देह नही है।'

(२५) रायबहादुर पूर्णेन्दुनारायणसिंह, एम ए—'जैन धर्म पढने की मेरी हार्दिक इच्छा है क्योकि व्यावसायिक योगाभ्यास के लिए यह साहित्य सबसे प्राचीन है। इसमे हिन्दू धर्म से पूर्व की आत्मिक स्वतत्रता विद्यमान है, जिसको परम पुरुषो ने अनुभव व प्रकाश दिया है।'

(२६) अब्जाक्ष सरकार, एम ए बी एल—'यह अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा नही है। जैन दर्शन मे जीवन तत्व की जैसी विस्तृत आलोचना है वैसी और किसी भी दर्शन मे नही है।'

(२७) वासुदेव गोविन्द आप्टे, बी ए—'जैन धर्म मे अहिंसा का तत्व अत्यन्त श्रेष्ठ है। यति धर्म अत्यन्त उत्कृष्ट है।'

'स्त्रियो को भी यतिदीक्षा लेकर परोपकारी कृत्यो मे जन्म बिताने की आज्ञा है वह सर्वोत्कृष्ट है। हमारे हाथ से जीवहिंसा न होने पाए इसके लिए जैन जितने डरते हैं उतने बौद्ध नही।'

एक समय धर्म, नीति, राजकार्यधुरन्धरता, शास्त्रसचालन, समाजोन्नति आदि बातो मे उनका सामाजिक स्तर अन्य जनो से बहुत आगे था।

(२८) मुहम्मद हाफिज सय्यद, बी ए, एल टी थीयोसोफिकल हाई स्कूल कानपुर—'मैं जैन सिद्धान्त के सूक्ष्म तत्वो से गहरा प्रेम करता हू।'

(२९) एम डी पाडे—'मुझे जैन सिद्धान्त का बहुत शौक है, क्योकि कर्मसिद्धान्त का इसमे सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।'

(३०) स्वामी विरुपाक्ष, एम ए (प्रो सस्कृत कॉलेज, इन्दोर)—'द्वेष के कारण धर्म-प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुए जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी ही होता रहा है। 'अर्हनदेव' साक्षात् परमेश्वर हैं।

'अर्हन परमेश्वर का वर्णन वेदो मे भी पाया जाता है।'

(३१) कन्नुलाल जोधपुरा—'जैन धर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है।'

(३२) श्री सुव्रतलाल वर्मन एम ए उर्दू मासिक पत्र मे लिखते हैं—

'महावीर स्वामी का पवित्र जीवन'

'हिन्दुओ ! अपने इन बुजुर्गों की इज्जत करना सीखो तुम इनके गुणो को देखो। यह धर्म कर्म की झलकती हुई, चमकती दमकती मूर्ति है इनका दिल विशाल था, समुद्र था, जिसमे मनुष्य प्रेम की लहरे जोरशोर से उठती रहती थी। ससार के प्राणी मात्र की भलाई के लिए सबका त्याग किया। ये दुनिया के जबरदस्त रिफार्मर, यह हमारी कौमी तवारीख के कीमती रत्न हैं। इनमे बेहतर साहब कमाल तुमको और कहाँ मिलेगे ? इनमे त्याग था, इनमे वैराग्य था, इनमे धर्म कमाल था, इनका खिताब 'जिन' है जो बात थी साफ साफ थी। उन्होने जप, तप, योग का साधन करके अपने आपको मुकम्मिल (यथार्थरूप परम स्वरूप को) और पूर्ण बना लिया था ।'

(३३) इपिरियल गेजेटियर ऑफ इडिया—'बौद्ध धर्म सस्थापक गौतम बुद्ध के पहले जैन धर्म के अन्य २३ तीर्थंकर हो गए थे।'

(३४) योगी जीवानन्द परमहस—'मैंने एक जैन शिष्य के हाथ मे दो पुस्तके देखी, वे लेख इतने सत्य, निष्पक्ष दीख पडे कि मानो दूसरे जगत मे आकर खडा हो गया। आबाल्यकाल ७० वर्षों से जो कुछ अध्ययन किया और वैदिक धर्म बाँधे फिरा सो व्यर्थ सा मालूम होने लगा . । प्राचीन धर्म, परमधर्म, सत्यधर्म रहा हो तो जैन धर्म था। वैदिक बाते कही ली गई सो सब जैन शास्त्रो से नमूना इकट्ठी की हैं।'

(३५) डॉ० राधाविनोदपाल लिखते हैं—'अनोखी अहिसा की भेट जैन धर्म के नियामक तीर्थङ्कर परमात्माओ ने ही की हे।'

(३६) न्यायमूर्ति रागलेकर (बबई हाईकोर्ट) कहते हैं—'आधुनिक इतिहास से यह प्रकट हुआ कि यथार्थ मे ब्राह्मण धर्म सद्भाव अथवा उसके हिन्दू धर्म रूप मे परिवर्तन होने के बहुत पूर्व जैन धर्म इस देश मे विद्यमान था।'

(३७) स्वामी राममिश्रजी शास्त्री कहते हैं—'मोहनजोदरो, प्राचीन शिलालेख, गुफाएँ, एव प्राचीन अनेक अवशेष प्राप्त होने से भी जैन धर्म की प्राचीनता का ख्याल आता है। ... जैन धर्म तब से प्रचलित हुआ है जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। वेदात दर्शन की अपेक्षा भी जैन धर्म बहुत प्राचीन है।'

(३८) प्रो० आनन्दशकर ध्रुव लिखते हैं—'स्याद्वाद एकीकरण का दृष्टिबिन्दु हमारे

सामने उपस्थित करता है। शकराचार्य ने स्याद्वाद पर जो आक्षेप किया है वह मूल रहस्य के साथ सम्बन्ध नही रखता। विविध दृष्टि विन्दुओ के द्वारा निरीक्षण किए विना कोई भी वस्तु सम्पूर्ण रूप मे समझ मे नही आ सकती। स्याद्वाद यह सशयवाद नही है किन्तु विश्व का किस प्रकार अवलोकन करना चाहिए यह हमे सिखाता है।'

(३९) डो० सतीशचन्द्र विद्याभूषण (एम ए, पी एच डी कलकत्ता)—'ऐतिहासिक ससार मे तो जैन साहित्य जगत के लिए अधिक उपयोग की वस्तु है, जो इतिहास लेखक तथा पुरातत्व विशारदो के लिए अनुसधान की विपुल सामग्री उपस्थित करती है।''

उपरोक्त सज्जनो के अभिप्राय नमूने के तौर पर दिए हैं। इसके अतिरिक्त कई पुस्तको मे सैकडो अभिप्राय प्रकाशित हो चुके हैं। ग्रन्थ का कलेवर न बढ जाय इस हेतु हमने सबका प्रकाशित करना अनिवार्य नही समझा। अब हम वैदिक साहित्य के कुछ प्रमाण लिखते हैं।[2]

(१) अर्हन्ताये सुदावनो नरो अ ४ ३ वर्ग ७ (ऋग्वेद)।

(२) अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्क यजत, विश्वरूपमर्हन्निदयसे विश्वे भवभुव'—इत्यादि स अ २ अ. ७ ५-२७ ऋग्वेद।

(३) 'इम स्तोम अर्हते जातवेदसे'—इत्यादि।

—१० लृ प ८६ १-६-३०

(४) ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभ· पवित्र पुरुहूतमध्वर यज्ञेपुनग्नपरम माह सस्तुत वर शत्रुजयत पशुरिन्द्रमाहुरिति स्वाहा।

ॐ ज्ञातारमिन्द वृषभवदन्ति अमृतारमिन्द्र हवे सुगत सुपार्श्वमिन्द्रमाहुरिती स्वाहा।

ॐ नग्न सुवीरदिग्वाससब्रह्मगर्भ सनातन उवेमिवीरपुरुष महातमादित्यवर्णतमस पुरुस्तात् स्वाहा।

याजस्यनु प्रसव आवभुवेमा च विश्वभुवनानि सर्वत। सनेमिराजा परियाति विद्वान प्रजाँ पुष्टि वर्धयमानो अस्मै स्वाहा।

—यजुर्वेद अ १६ मत्र २५

(५) आतिथ्यरूप मासर महावीरस्यनग्नहु। रुपामुपास दामेत तिथौरात्री सुरा सुता।

—यजुर्वेद अ १६ मत्र १४

---

१ यह वाक्य श्री विनोबा भावे वेदो से जैन धर्म की प्राचीनता प्रमाणित करने हेतु विशेष तौर पर लिखते हैं। पागे के अर्थ करने से प्रामाणिकता समझी जा सकती है।

२ उपरोक्त विवरण "जैनधर्म का सरल परिचय" नाम की पुस्तक से लिया है।

(६) स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा । स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्ट-नेमि वृहस्पतिर्दधातु ॥

—यजुर्वेद अ २५ मत्र १९

(७) ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्वीशतितीर्थकरान। ऋषभाद्यावर्धमानान्ताम सिद्धान् शरण प्रपद्ये ।

ॐ पवित्रनग्नमुपविप्रसामहे हरषानग्ना (नग्नये) जातियेषावीरा। येपा नग्नसुनग्न ब्रह्मसुब्रह्मचारिण उदितेन मानसा अनुदितेनमनसादेवस्य महर्षयो महर्षिभिर्जहेति याजकस्य च साएषारक्षा भवनु शान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु शक्तिर्भवतु श्रद्धा भवतुनिर्व्याजि भवतु

(यज्ञे पु मूलमन्त्रएपइतिविधिकन्दल्याम)

(८) ऋषभपवित्रपूरुहूतमध्वर यज्ञेषु यज्ञपरमपवित्रश्रुतधरे यज्ञ प्रातिप्रधान ऋतुय-जनपशुमिन्द्रमाहवेतिस्वाहा ।

ज्ञातारमिन्द्र ऋषभ पवित्र पुरुहूतमध्वर यज्ञेषु यज्ञपरम पवित्र श्रुतधर यज्ञ प्रतिप्रधान ऋतुयजनपशुमिन्द्रमाहेवति स्वाहा ।

—वृहदारण्यके

(९) ऋषभ एव भगवान् ब्रह्मा भगवता ब्राह्मणा स्वयमेवाचीर्णानि ब्रह्माणि तपसा च प्रात पर पदम् ।

—आरण्यके

इसके अतिरिक्त दूसरे आन्तरिक प्रमाण का वर्णन करना भी उचित होगा ।

(१) वेद और आगम इन दोनो का शब्दार्थ एक है । वेद यानि ज्ञान देने वाला यही अर्थ आगम का होता है । भगवान महावीर देव ने वेयविऊ-वेदविद् नाम से पहचान कराई ऐसा आगमो मे लिखा मिलता है किन्तु दोनो धर्मों की रचना और उद्देश्य मे बहुत पृथकता है । श्री हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराज अपने विश्वसमीक्षा ग्रन्थ मे वेद मे धर्माधर्म बताते हैं जबकि आगमो को परमार्थ शास्त्रो की तरह स्वीकार करते हैं ।

इसी तरह वेद के पृथक पृथक प्राचीन दर्शनो के पृथक पृथक अर्थ करते हैं । इसी तरह आर्य समाजी और अरविन्द घोष इत्यादि कितने अशो मे पृथक अर्थ करने का अभिप्राय बताते हैं ।

जैन कथाओ के अनुसार वर्तमान मे वेदो का प्रचार नवमे व दसमे तीर्थकरो के शासनकाल मे होने का लिखा है । पहले मासाहार इत्यादि राजकुटुम्बो मे नही था । श्री आदीश्वर भगवान के उपदेश मे श्रावको के कर्तव्य समझाने हेतु चार श्रावक प्रज्ञप्ति वेद रचे जिनके नाम (१) ससार दर्शन (२) सस्थापन परामर्ष (३) तत्वावबोध (४)

विद्या प्रबोध थे जिसमे श्रावको के आचार ज्ञान होने से उनको वेद की सज्ञा दी गई जिसमे देश निरति सम्यक्तवधारी और मार्गानुसारी के कर्तव्यो के साथ धर्म नियत्रित अर्थ–काम पुरुषार्थ, राजनीति इत्यादि का समावेश होना माना गया है ।

इसी तरह जैन कथाओ के अनुसार भारत मे भिन्न-भिन्न देश अग वग कलिग इत्यादि नाम श्री ऋषभदेव प्रभु के सौ पुत्रो के नामो के अनुसार थे ।

उपरोक्त प्रमाणो से जैन धर्म भारत मे ही नही जगत मे सबसे प्राचीनतम धर्म था ऐसा कहा जा सकता है । जैन धर्म के शास्त्रो मे तो प्राचीनता के सबध मे प्रामाणिकता की कोई कमी नही है—उसका वर्णन प्रत्येक आगम एव अन्य शास्त्रो मे उपलब्ध है ।

जैन धर्म नाम क्यो पडा इसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैनोदिष्ट होने से जैन धर्म कहलाया । यो इसके कई एक विशेषण हो सकते हैं जैसे रागद्वेष जीतने वाले जिन उनके अनुयायी जैन । जैन धर्म मे शुद्ध देव, शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्म ये तीन तत्व माने गए हैं । इसकी व्याख्या करना इसलिए उचित नही समझा गया कि जैन धर्मावलम्बी इनको अच्छी तरह से जानते हैं ।

अब थोडा सा वर्णन कालचक्र के सबध मे करते हैं । जैसे काल का आदि अन्त नही है वैसे सृष्टि का भी आदि अन्त नही है अर्थात् सृष्टि का कर्ता-धर्ता कोई नही है ।

सृष्टि मे चैतन्य और जड ये दो मुख्य पदार्थ हैं । हमारे सामने जो चराचर ससार दिखाई देता है वह सब चैतन्य और जड वस्तु का पर्याय रूप है । काल के परिवर्तन से कभी उन्नति कभी अवनति हुआ करती है उस काल के मुख्य दो भेद हैं (१) उत्सर्पिणी और (२) अवसर्पिणी । इन दोनो को मिलाने से कालचक्र होता है ।

(१) उत्सर्पिणी काल के अन्दर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, सहनन, सस्थान, जीवो का आयुष्य और शरीर (देहमान) आदि सब पदार्थों की क्रमश उन्नति होती है ।

(२) अवसर्पिणी काल मे पूर्वोक्त सब बातो की क्रमश अवनति होती है पर उन्नति और अवनति है वह समूहापेक्षा है न कि व्यक्ति अपेक्षा ।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छ हिस्से होते हैं । अभी जो काल चल रहा है वह अवसर्पिणी का है उसका पाँचवा हिस्सा दुक्खम काल है और इसके बाद दुखमादुखम् नाम का छटा हिस्सा आएगा जो अति विकट और प्रलयकारी होगा ।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मे त्रेसठ शलाका पुरुषो का जन्म होता है जिसमे चौईस तीर्थकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ पति वासुदेव, एव नौ बलदेव होते हैं और ये सबके सब उच्चकुल यानी राज्यवश मे उत्पन्न होते हैं जिसका पूरा इतिहास त्रेसठ शलाका

पुरुप नाम की पुस्तक मे है जो सात भागो मे छपी है। इसके वनाने वाले कलिकाल-सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य थे जो वारहवी शताब्दि के एक प्रकाण्ड विद्वान हुए हैं।

वर्तमान काल मे चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर का शासन चलता है जिसको मोक्ष पधारे चौवीसो पचानवे वर्प हुए हैं, इनके ढाई सौ वर्प पहले तेईसवे तीर्थङ्कर श्री पार्श्व-नाथ स्वामी हुए, जिनका नाम जगतप्रसिद्ध है। जैन जगत के अतिरिक्त अजैन जगत मे इन्ही को लोग ज्यादा जानते हैं और ऐतिहासिक एव चमत्कारी पुरुप मानते हैं। इसके पहले वाईसवे तीर्थङ्कर श्री नेमीनाथ हुए जो वाल व्रह्मचारी थे और उनका मोक्ष पार्श्व-नाथ स्वामी के चौरासी हजार वर्प पूर्व होने का जैन शास्त्रो मे लिखा है। पर्यू षणो मे कल्पसूत्र वाचा जाता है। उसमे मुख्य चार तीर्थंकरो का जीवन-चारित्र व वाकी इक्कीस तीर्थंकरो का आन्तरकाल वताया जाता है। अत इक्कीसवे श्री नमीनाथ भगवान से दूसरे तीर्थंकर अजीतनाथ भगवान के इतिहास को वताना आवश्यक नही समभा है। श्रीऋषभ-देव भगवान जिनको आदिनाथ आदम वावा इत्यादि कई नामो से पुकारा जाता है उनका इतिहास वहुत विस्तृत है। इस अवसर्पिणी काल मे श्री आदिश्वर भगवान सवसे पहले हुए और उन्होने विश्व को अहिंसा, सयम का उपदेश दिया। जो नियम उनके समय मे वने वे चरण तीर्थंकर महावीरस्वामी तक वल्कि आज पर्यन्त चलते हैं। आदिश्वर भगवान ने जैन धर्म चलाया हो ऐसी वात नही है, इसके पहले चौईस तीर्थंकर उत्सर्पिणी काल मे और हुए उनके नाम जैन शास्त्रो मे लिखे हुए हैं जो निम्न हैं।

(१) श्री केवलज्ञानी	(२) निर्वाणि	(३) सागर	(४) महायश
(५) विमल	(६) सर्वानुभूति	(७) श्रीधर	(८) दत्त
(९) दामोदर	(१०) सुतेज	(११) स्वामी	(१२) मुनिसुव्रत
(१३) सुमत्ति	(१४) शिवगति	(१५) अस्ताग	(१६) नमीस्वर
(१७) अनिल	(१८) यशोधर	(१९) कृतार्थ	(२०) जिनेश्वर
(२१) शुद्धमति	(२२) शिवकर	(२३) स्यन्दन	(२४) सम्प्रति

इससे यह कहा जा सकता है कि जैन धर्म प्राचीन ही नही अति प्राचीन है।

जैन शासन मे प्रत्येक तीर्थङ्कर के भवो की गिनती सम्यकत्व प्राप्त करने के बाद होती है। वर्तमान चौईसी मे पहले तीर्थंकर श्रीऋषभदेव के १३ भव, आठवे तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु के सात भव, सोलवे तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ के वारह भव, बाइसवे तीर्थंकर श्री नेमीनाथ के नौ भव, तेईसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के दस भव और श्री महावीर स्वामी के सत्ताईस भव हुए। शेष सत्रह तीर्थङ्करो के तीन-तीन भव हुए जैसे मनुष्य, देव और तीर्थंकर।

तीर्थकर नाम कर्मोपार्जन करने के बीस कारण हैं, यहा अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन (पाच समिति, तीन गुप्ती) गुरु, स्थविर, बहुश्रुत, तपस्वी, ज्ञानी, दर्शनविनय, आवश्यक (प्रतिक्रमण), व्रत, तप, ध्यान, दान, वर्योवच्च, समाधि, अपूर्वज्ञानपठन, श्रुत की भक्ति और शासन की प्रभावना इन बीस बोलो की आराधना करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जन करता है।

(श्री ज्ञाता सूत्र अ ८ वा)

प्रत्येक तीर्थकर के पाच कल्याण माने जाते हैं जो निम्न हैं—

(१) च्यवन कल्याण (माता के गर्भ मे आने का समय)
(२) जन्म कल्याण (माता की कुक्षि से पैदा होने का समय)
(३) दीक्षा कल्याण (गृहस्थ आश्रम त्यागकर मुनि बनने का समय)
(४) केवल ज्ञान कल्याण (चार अघाति कर्मो का क्षय कर ज्ञान प्राप्त करना)
(५) निर्वाण कल्याण (मोक्ष प्राप्ति का समय)

इसमे चार कल्याणको मे देव व इन्द्रो का आना अनिवार्य है। च्यवन कल्याण के समय केवल पार्श्वनाथ प्रभु के च्यवन समय आने का वर्णन मिलता है। जन्मोत्सव के समय छपनदिककुमारी आती है और अपना यथायोग्य कार्य करके वापिस चली जाती है।

उसके बाद इन्द्रो का देव सहित आना, मेरु पर्वत पर प्रभु का जन्मोत्सव करना, वहां से प्रभु को माता के पास रखना, फिर नन्दीश्वरद्वीप जाकर अट्ठाई महोत्सव करना उनका कर्तव्य होता है सो पूरा करते हैं।

तीर्थकरो के माता की कुक्षी मे आने के समय तीन ज्ञान होते हैं मति, श्रुति, अवधि। जब वह दीक्षा लेते हैं तो उनको चौथा मन पर्याय ज्ञान होता है और चार घनघाती कर्मो का क्षय हो जाने पर उनको केवल ज्ञान होता है। उसके बाद देव रचित समवसरण मे विराजमान होकर देशना देते हैं, उसमे बारह पर्षदा होती है और उनके समवसरण मे देव त्रियन्च मनुष्य सम्मिलित होते है। पहली देशना मे वे तीर्थ की स्थापना करते है जिसमे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारो को तीर्थ का स्वरूप माना जाता है। इसमे जो गणधर होते हैं वे द्वादशागी की रचना करते हैं। गणधरो की सख्या उस काल के अनुसार होती है जिसमे तीर्थकर होते हैं। जैसे महावीर स्वामी के ११ गणधर हुए जिसमे गौतम-स्वामी प्रमुख थे। इसी तरह पार्श्वनाथ स्वामी के १० गणधर हुए इसका विवरण सूत्रो मे मिलता है।

तीर्थङ्करो के चार अतिशय जन्म से होते हैं और ३० केवलज्ञान होने के बाद कुल चौतीस अतिशय माने जाते हैं। तीर्थङ्करो का बल ससार मे मनुष्य, देव और तिर्यन्च इन सब को मिला कर एक करले इससे अनन्त गुणा होता है।

प्रत्येक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी मे चौईस तीर्थंकर होते हैं, इसी तरह शिव व वैष्णव धर्म मे भी चौईस अवतार माने गए हैं।

जैन धर्म की प्राचीनता और मान्यता के विषय मे जितना लिखा जाय कम है। इसके लिए कई ग्रथ छप चुके हैं। इस ग्रथ मे केवल पाठको की जानकारी के लिए कुछ बाते लिखी गई हैं। बहुत सी बाते सूत्रो से व अन्य ग्रथो से जानी जा सकती हैं। इसी अनुक्रम मे प्रासगिक रूप से आगे 'जैन विज्ञान' जो श्री हरीसत्य भट्टाचार्यजी ने 'जिनवाणी' नामक पुस्तक मे लिखा है उसे अविकल प्रकाशित करते हैं जो इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डालता है। भट्टाचार्यजी ने जैन शास्त्रो का कई वर्षों तक अध्ययन किया और उन्होने जैन धर्म के विषय मे जो कुछ भी लिखा वह सोच समझ कर लिखा है। जन्म और वातावरण से जैनेतर होते हुए भी उनकी जानकारी जैन धर्म के विषय मे प्रशसनीय है।

श्रीयुत भट्टाचार्यजी ने बगाली और अँगरेजी मे जैन परम्परा के अनेक विषयो पर बहुत कुछ लिखा है। उसका सार उपरोक्त 'जिनवाणी' नामक पुस्तक मे लिया गया है। ऐसे साहित्य के मनन, चिन्तन करने से जैन धर्म पर श्रद्धा बढती है और जैनत्व बना रहता है। आज के भौतिकवाद के युग मे ऐसा साहित्य उपयोगी एव लाभदायी होगा—इसमे कोई सदेह नही है।

जैन विज्ञान—

जैन सप्रदाय विशाल भारतीय जाति का एक अश है। भारतवर्ष की जो प्राचीन सस्कृति आज पुरातत्त्व शास्त्रियो को चकित कर रही है उस सस्कृति का पूरा और सच्चा इतिहास, जैन सम्प्रदाय का अनुशीलन किए बिना नही जाना जा सकता, जैन सम्प्रदाय के विवरण के बिना वह अपूर्ण रहता है।

कुछ लोग भूल से यह समझ लेते हैं कि जैन धर्म का प्रादुर्भाव सर्व प्रथम महावीर स्वामी ने किया है, अर्थात् उनका मत है कि जैन धर्म का जन्म ईस्वी सन के पूर्व छठी या सातवी शताब्दी मे हुआ है। जेकोबी जैसे समर्थ विद्वानो ने यह भ्रम निवारण करने का खूब प्रयत्न किया है और उनका यह प्रयत्न अधिकाश मे सफल हुआ है।

जैन धर्म इस ससार का प्राचीन से प्राचीन धर्म है। भागवतकार ने जिस ऋषभदेव को विष्णु का मुख्य आदि अवतार माना है वही जैन सप्रदाय का आदि ईश्वर, वर्तमान चौवीसो मे प्रथम तीर्थङ्कर है।

पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष जिस पुरुषश्रेष्ठ के नाम से आज भी गौरवान्वित है, जिस महापुरुष के नाम पर प्रत्येक भारतवासी को अभिमान है उस चक्रवर्ती सम्राट् भरत को ब्राह्मण सप्रदाय और जैन सप्रदाय दोनो ही भक्तिभाव से वन्दन करते हैं।

जिस रघुपति के चरित्र-चित्रण से ब्राह्मण साहित्य जगमगा रहा है उस रामचन्द्र को भी जैन समाज ने अपने अन्दर स्वीकार किया है। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण और उनके ज्येष्ठ बन्धु को भी जैन साहित्य मे अच्छा स्थान मिला है। उनके एक आत्मीय श्रीनेमिनाथ को तो जैन धर्म के २२वे तीर्थङ्कर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। गौतम बुद्ध के जन्म से २५० वर्ष पहले जैन धर्म के २३वे तीर्थंकर भगवान श्री पार्श्वनाथ का शासन वर्तमान था। इन सब बातो का ऐतिहासिक मूल्य चाहे जो हो, परन्तु यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि भगवान महावीर स्वामी के आविर्भाव से पहिले भी भारतवर्ष मे जैन धर्म का प्रभाव था। बौद्ध धर्म के प्राचीनातिप्राचीन ग्रथो मे जो 'नायपुत्त' और 'निग्गंथ' के नाम मिलते हैं वे बुद्ध भगवान के पहिले के थे इसमे तनिक भी सन्देह को स्थान नही है। जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा तो है ही नही, इतना ही नही वह बौद्ध धर्म से अत्यन्त प्राचीन है। अतएव हम यहाँ पुन कहना चाहते हैं कि भारतीय दर्शन, भारतीय सभ्यता और भारतीय सस्कृति के इतिहास मे जैन धर्म को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अत्यन्त प्राचीन काल की अर्ध स्पष्ट अथवा अस्पष्ट बातो को तो जाने दीजिए। इतिहास के प्रभातकाल से जैन महापुरुषो का गौरव भगवान् अशुमाली की किरणो के समान पृथ्वी पर देदीप्यमान होता लगता है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि भारत का चक्रवर्ती सम्राट् मौर्यकुल-मुकुटमणि चन्द्रगुप्त जैन धर्म का अनुरागी था। प्राचीन से प्राचीन वैयाकरण शाकटायन अथवा जैनेन्द्र का नाम व्याकरण का कौन विद्यार्थी नही जानता ? महाराज विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नो मे एक रत्न जैनधर्मावलम्बी था ऐसा अनुमान हो सकता है। अभिधान प्रणेताओ मे श्री हेमचन्द्राचार्य का स्थान बहुत ऊँचा है। दर्शनशास्त्र मे, गणित मे, ज्योतिष मे, वैद्यक मे, काव्य मे और नीति शास्त्र आदि मे जैन पण्डितो ने भाग लिया है—नए नए तथ्य प्रकट किए हैं—उनकी गणना करना सहज कार्य नही है।

यूरोप के मध्यकालीन लोक-साहित्य का मूल भारतवर्ष है और भारतवर्ष मे सर्वप्रथम लोकसाहित्य की रचना जैन पण्डितो ने की है। जैन त्यागी पुरुष महान् लोक-शिक्षक थे।

शिल्प और स्थापत्य मे भी जैन अग्रगण्य थे। कोई भी तीर्थ इस बात की साक्षी दे सकता है। इलोरा जैसे स्थान मे आज भी जैनो की कलाकरामत के भग्नावशेष देखे जा सकते हैं। आबू और शत्रुंजय के मन्दिर किस कलाप्रेमी को मुग्ध नही करते ? आज भी दक्षिण मे गोमटेश्वर की मूर्ति काल की क्रूरता का हास्य करती हुई प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध मे इम्पीरियल गेजीटीयर आफ इडिया मे लिखा है— These Colossal monolithic nude Jain statues .... are among the wonders of the world ' जगत मे यह एक आश्चर्य है।

इसके अतिरिक्त विधर्मियो के युग-युगव्यापी अत्याचारो, परिवर्तनो, अग्नि और भूकम्प के उपद्रवो से बचे हुए जो नमूने आज मिलते हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि उच्च सभ्यता के लगभग सभी क्षेत्रो मे जैनो ने उन्नति की थी।

जैन समाज के धारावाही इतिहास पर प्रकाश डालने की मुझ मे शक्ति नही है। जैन विचारप्रवाह की समस्त तरगो का दिग्दर्शन कराना भी असम्भवप्राय है। मैं यहाँ केवल जैन दर्शन और विज्ञान का सक्षिप्त विवरण ही उपस्थित करना चाहता हू।

जैन सिद्धान्त के अनुसार जगत् मे मुख्य दो तत्व हैं जीव और अजीव। जीव का अर्थ है आत्मा और जीव से जो भिन्न है वह अजीव कहलाता है।

विज्ञान—जड विज्ञान—

जड विज्ञान की हस्ती अजीव पदार्थ के आश्रित ही है। किसी को यह न समझ लेना चाहिए कि वेदान्त जिसे 'माया' कहता है वही अजीव पदार्थ है। माया की स्वतन्त्र सत्ता नही है, ब्रह्म के बिना वह बेकार है। परन्तु यह अजीव तत्त्व तो जीव तत्त्व के समान ही स्वाधीन, स्वतन्त्र, अनादि और अनन्त है। अजीव को साख्यकथित प्रकृति भी न मान बैठना चाहिये। प्रकृति यद्यपि स्वाधीन, स्वतन्त्र, अनादि, अनत है तथापि वह एक है, अजीव तत्त्व अनेक हैं। न्याय तथा वैशेषिक दर्शन सम्मत अणु और परमाणु भी जैन सिद्धान्तमान्य अजीव तत्त्व से भिन्न हैं, क्यो कि अणु-परमाणु के अतिरिक्त अजीव तत्त्व के बहुत से भेद हैं। बौद्धो के 'शून्य' मे भी यह अजीव तत्त्व नही समा जाता। जैन मतानुसार अजीव के पाच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पुद्गल—

जिसे अँग्रेजी मे (Matter) कहते हैं वही जैन दर्शन मे पुद्गल नाम से कथित है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। पुद्गल का स्वरूप है। रूप, रस, स्पर्श और गध ये पुद्गल के चार गुण हैं। पुद्गल की सख्या अनन्त है। शब्द, बन्ध (मिलन), सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, भेद, अधकार, छाया, आलोक और ताप—ये पुद्गल के पर्याय हैं, अर्थात् पुद्गल से इनकी उत्पत्ति होती है। शब्द, आलोक (प्रकाश) और ताप को पौद्गलिक मानने मे जैनो ने कुछ अशो मे वर्तमान वैज्ञानिक खोज से समता प्रदर्शित की है। अधकार और छाया को न्याय दर्शन पौद्गलिक नही मानता। वह तो इन्हे अभाव मात्र ही मानता है।

धर्म—

धर्म का अर्थ साधारणत. पुण्य कर्म समझा जाता है, परन्तु जैन दर्शन इसका यहा

भिन्न अर्थ करता है। जैन मतानुसार इसका अर्थ Principle of motion से मिलता जुलता ही है। जिस प्रकार मछलियो की गति मे पानी सहायता देता है उसी प्रकार जो अजीव तत्त्व पुद्गल और जीव को गति करने मे सहायता देता है उसे जैन विज्ञान 'धर्मतत्त्व' के नाम से पुकारता है। धर्म अमूर्त है, निष्क्रिय है और नित्य है। वह (धर्म) जीव और पुद्गल को गति नही देता—केवल उनकी गति मे सहायक होता है।

अधर्म—

अधर्म का अर्थ पापकर्म न समझना चाहिए। जैन दर्शन यहा इसका अर्थ Principle of rest से मिलता जुलता करता है। रास्ता भूल जाने पर मुसाफिर जिस प्रकार गाढ अन्धकार फैला हुवा देखकर रात को किसी जगह विश्राम करता है उसी प्रकार यह अधर्म अजीवतत्त्व पुद्गल और जीव को स्थित रहने मे सहायता देता है। धर्म के समान अधर्म भी अमूर्त, निष्क्रिय और नित्य है। वह जीव और पुद्गल की गति को नही रोकता—केवल उनकी स्थिति मे सहायता करता है।

आकाश—

जो अजीवतत्त्व जीव आदि पदार्थो को अवकाश देता है अर्थात् जिस अजीवतत्त्व के भीतर जीवादि पदार्थ रह सकते हैं उसे आकाश कहते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे Space कहते हैं। आकाश नित्य और व्यापक है एव जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा काल का आश्रयभूत है। जैन इस आकाश के दो भेद करते हैं—(१) लोकाकाश, (२) अलोकाकाश। लोकाकाश मे ही जीवादि आश्रय प्राप्त करते हैं। लोकाकाश के बाहर अनन्त—शून्यमय अलोक है।

काल—

काल का अर्थ Time है। पदार्थ के परिवर्तन मे जो अजीवतत्त्व सहायता करता है उसका नाम काल है। यह नित्य है और अमूर्त है। उस असख्य [?] द्रव्य से लोकाकाश परिपूर्ण है।

पुद्गलादि पच तत्त्व की इतनी आलोचना से ही कोई भी समझ सकता है कि वर्तमान जड विज्ञान के मूल तत्त्व जैन दर्शन मे छुपे हुए हैं। प्राचीन ग्रीस के Democritus से लेकर वर्तमान युग के Boscovitch तक के सभी वैज्ञानिको ने Atom पुद्गल के अस्तित्व को स्वीकार किया है। ये अनत हैं, यह बात भी वे सब मानते हैं। वे इस विषय मे भी एक-मत हैं कि इनके सयोग वियोग के कारण ही जड जगत के स्थूल पदार्थ उत्पन्न होते हैं और लय को प्राप्त होते हैं।

प्रथम Parmenides, Zeno आदि दार्शनिक धर्म अथवा Principle of motion को स्वीकार नही करते थे, परन्तु वाद मे न्यूटन आदि विद्वानो ने गतितत्त्व के सिद्धात की स्थापना की। ग्रीस के Heraclitus आदि दार्शनिक 'अधर्म-तत्त्व' मानने से इन्कार करते थे, परन्तु वाद मे Perfect equilibrium मे अधर्मतत्त्व—नामातर से ही सही—स्वीकार कर लिया गया। केंट और हेगल आकाश तत्त्व को एक मानसिक व्यापार कहकर बिल्कुल ही उडा देना चाहते थे। परन्तु उसके वाद रसेल जैसे आधुनिक दार्शनिको ने Space (आकाश) की तात्त्विकता को स्वीकार कर लिया। आकाश एक सत् एव सत्य पदार्थ है, इस वात को अधिकाश मे Einstein भी मानता है। आकाश के समान ही काल को भी एक मनोव्यापार कहकर कुछ लोगों ने उडा देने की कोशिश की थी, परन्तु फ्रास का एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक Bergson तो यहाँ तक कहता है कि काल वास्तव मे एक Dynamic ality है। काल के प्रवल अस्तित्त्व को स्वीकार किए विना काम ही नही चल सकता।

उपरोक्त पाच प्रकार के अजीव पदार्थो के साथ जो तत्त्व कर्मवश जकडा हुआ है उसका नाम जीव है।

जीव—

जैन दर्शन का जीवतत्त्व वेदान्त दर्शन के ब्रह्म से पृथक् है। ब्रह्म एक अद्वितीय है, परन्तु जीवो की सख्या अनन्त है। यह जीवतत्त्व साख्य के पुरुष से भी भिन्न है, क्योकि यह नित्यशुद्ध और नित्यमुक्त नही है, बलिक बन्धनग्रस्त है। यह जीवतत्त्व न्याय और वैशेषिक दर्शन के आत्मा से भी भिन्न है, साक्षात् कर्ता है। बौद्ध जिसे विज्ञानप्रवाह कहते हैं, जीवतत्त्व वह भी नही है, क्यो कि जीव सत्, सत्य और नित्य पदार्थ है। जैन दर्शन मे जीव के अस्तित्व, चेतना, उपयोग, प्रभुत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, देहपरिमाणत्व और अमूर्तत्व आदि गुणो का वर्णन है।

प्राणविद्या—

प्राचीन जैनो ने जो जीव-विचार का उपदेश किया है उसमे Biology विषयक आधुनिक खोज का पूर्वाभास भली भाति पाया जाता है। जैन पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु मे सूक्ष्म—एकेंद्रिय जीवो आ अस्तित्व मानते हैं। इस सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवपुञ्ज को आज वैज्ञानिक—प्राणितत्त्ववेत्ता Microspic organisms कहते हैं। जैन वनस्पतिकाय को एकेन्द्रिय जीव मानते हैं। वनस्पति मे भी प्राण हैं, स्पर्श का अनुभव करने की शक्ति है, यह भी वे कहते हैं। इस आधुनिक युग मे आचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पतिशास्त्र सम्बन्धी जो नवीन अनुसन्धान करके आश्चर्य फैला दिया है उसका मूल वस्तुतः इस एकेन्द्रिय जीव वाद मे छुपा हुआ था।

आत्मविद्या—

जीवतत्त्व के समान ही जैनप्ररूपित आत्मविद्या—Psychology बहुत से आधुनिक अन्वेषणो का आभास पाया जाता है। जीव के गुणो की गणना मे हमने 'चेतना' और 'उपयोग' का उल्लेख किया हे। यहाँ इन मुख्य गुणो के विषय मे विशेष विचार करना है।

चेतना—

चेतना तीन तरह से होती है—कर्मफलानुभूति, कार्यानुभूति और ज्ञानानुभूति। स्थावर जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव—केवल कर्मफल की अनुभूति करते हैं। त्रस जीव—दो, तीन, चार और पाच इद्रिय वाले जीव—अपने कार्य का अनुभव करते है। उच्च प्रकार के जीव ज्ञान के अधिकारी होते हैं। चेतना के इन तीन प्रकार अथवा पर्यायो को पूर्ण चैतन्य के क्रमविकास की तीन मजिले कहे तो अनुचित न होगा। जो लोग कहते हैं कि मनुष्य से भिन्न जीव केवल अचेतन यत्र के समान हे उनका खडन जैनो ने हजारो वर्ष पहिले किया है। आधुनिक युग मे क्रमविकासमय मनोविज्ञान Evolutionary Psychology के जो दो मूल सूत्र माने जाते हैं वे पहिले से ही जैन दर्शन मे मौजूद थे। वे दो सूत्र ये हैं—(१) मनुष्य से भिन्न—निकृष्ट कोटि के—प्राणियो मे एक प्रकार का बिल्कुल नीची कोटि का—चैतन्य Sub-human consciousness होता हे। इसी चैतन्य मे से मानवचैतन्य का क्रमश विकास होता है। (२) प्राण और चैतन्य Life and consciousness सर्वथा सहगामी होते हैं, Co extensive हैं।

उपयोग—

जीव का दूसरा विशिष्ट लक्षण उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—एक दर्शनोपयोग और दूसरा ज्ञानोपयोग।

दर्शन—

रूपादि विशेष ज्ञान-वर्जित सामान्य की अनुभूति को दर्शन कहते हैं। दर्शन के चार भेद हैं—(१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन। चक्षु सबन्धी अनुभूति मात्र का नाम चक्षुदर्शन है। शब्द, रस, स्पर्श और गन्ध की अनुभूति को अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधि और केवल असाधारण दर्शन हैं। स्थूल इन्द्रियो से अगम्य विषय की अवधि वाली अनुभूति को अवधिदर्शन कहते हैं। Theosophist सप्रदाय जिसे Clairvoyance कहते हैं, कुछ अशो मे अवधिदर्शन उसीके समान है। विश्व की समस्त वस्तुओ के अपरोक्ष अनुभव का नाम केवलदर्शन है।

ज्ञान —

दर्शन के पश्चात् ज्ञान के उदय को उपयोग का दूसरा भेद कहे तो कह सकते हैं। ज्ञान प्रथमत दो प्रकार का है एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। मति, श्रुत आदि अष्टविध ज्ञान इन दो प्रकार के ज्ञान के अन्तर्गत आ जाता है उनमे 'कुमति' मतिज्ञान का, 'कुश्रुत' श्रुत ज्ञान का और 'विभग' अवधि ज्ञान का आभास अर्थात् Follacious forms मात्र होता है।

मति —

दर्शन के पश्चात् इन्द्रिय ज्ञान की अपेक्षा से जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाम मतिज्ञान है। मतिज्ञान के तीन भेद है उपलब्धि, भावना और उपयोग। इस तीन प्रकार के मतिज्ञान को जैन दार्शनिक बहुधा पाच भेदो मे विभक्त करते हैं—मति, स्मृति, सज्ञा, चिता और आभिनिवोध।

(शुद्ध) मति —

दर्शन के पश्चात् तुरन्त ही जो वृत्ति उत्पन्न होती है उसे उपलब्धि अथवा शुद्ध मतिज्ञान कहा जाता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान इसे Sence instuition अथवा Perception कहता है। जैन दार्शनिक मतिज्ञान के दो भेद करते है। जिस मतिज्ञान का आधार बाह्य इन्द्रिया है वह इन्द्रिय-निमित्त मतिज्ञान, और जो केवल अनिन्द्रिय है अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है वह अनिन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान कहलाता है। दार्शनिक Locke ने Idea of sensation और Idea of reflection नामक जिन दो चित्तवृत्तियो का निरूपण किया है तथा आधुनिक दार्शनिक जिन्हे Extraspection (बहिरनुशीलन) और Introspection (अन्तरनुशीलन) द्वारा प्राप्त ज्ञान कहते हैं उन्ही को जैन दार्शनिक क्रमशः इन्द्रिय-निमित्त मतिज्ञान तथा अनिन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान कहते हैं, ऐसा कह सकते हैं।

कर्ण आदि पाच इन्द्रियो के भेद से इन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान भी पाच प्रकार का है।

जिस प्रकार वर्तमान युग के वैज्ञानिको ने Perception मे विभिन्न प्रकार की चित्त-वृत्तियो का पता लगाया है, उसी प्रकार अति प्राचीन काल मे जैन पण्डितो ने मतिज्ञान मे चार प्रकार की वृत्तिया मालूम की थी। उन्होने इन्हे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा नाम से क्रमबद्ध किया है।

अवग्रह —

अवग्रह बाह्य वस्तु के सामान्य आकार की पहिचान कराता है। इस बाह्य वस्तु के

स्वरूप का सुनिश्चित सविशेष ज्ञान अवग्रह से नही प्राप्त होता। यह Sensation अथवा कुछ अशो मे Primum Cognitum है।

ईहा—

अवग्रहग्रहीत विषय पर ईहा की क्रिया होती है। अवग्रहीत विषय के सबन्ध मे अधिक विशेष जानने की स्पृहा का नाम ईहा है अर्थात् अवग्रहीत विषय के प्रणिधान Perceptual attention (विचारणा) को ईहा कहते हैं।

अवाय—

यह परिपूर्ण इन्द्रियज्ञान की तीसरी भूमिका है। ईहित विषय के सबन्ध मे सविशेष ज्ञान का नाम अवाय है। इसे Perceptual determination (निर्धार) कह सकते हैं।

धारणा—

धारणा इन्द्रिय ज्ञान के विषय की स्थितिशील करती हे। इसे Perceptual retention कह सकते हैं। धारणा की भूमिका ही इन्द्रिय ज्ञान की परिपूर्णता हे।

अवग्रह आदि के और भी बहुत से सूक्ष्म भेद हैं, परन्तु विस्तार हो जाय या विषय क्लिष्ट हो जाय इस भय से उन्हे छोड दिया गया है।

विद्वज्जन इतने ही से यह बात समझ सक्ते हैं कि आधुनिक यूरोपीय विद्वानो ने Perception के विकास का जो क्रम बतलाया है उसका विवरण जैन पण्डितो ने पहिले ही से शुद्ध मतिज्ञान के प्रकरण मे कर दिया है।

स्मृति—

मतिज्ञान के दूसरे प्रकार का नाम स्मृति है। इससे इन्द्रिय ज्ञान के विषय का स्मरण होता है। स्मृति को पाश्चात्य वैज्ञानिक Recollection अथवा Recognition कहते हैं। Hobbes के मतानुसार तो स्मरण का विषय अथवा idea केवल मरणोन्मुख इन्द्रियज्ञान है— Nothing but decaying sense। Hume भी यही मानता है। दार्शनिक Reid इस सिद्धान्त का उत्तम रीति से खण्डन करता है। वह कहता है कि स्मरण के विषय को इन्द्रिय ज्ञान विषय की अपेक्षा अवश्य है और उसमे सादृश्य भी है, तथापि कितने ही अशो में यह विषय नवीन है। ऐसा मालूम होता है कि जैन पण्डितो ने हजारो वर्ष पूर्व स्मृति ज्ञान के विषय मे जो निर्णय किया था उसी का ये वैज्ञानिक मानो अनुवाद कर रहे हैं; और यह कुछ कम आश्चर्य की बात नही है।

सज्ञा—

सज्ञा का दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है। पाश्चात्य मनोविज्ञान मे इसे Assimilation, Comparison और Conception कहते हैं। अनुभूति अथवा स्मृति की सहायता से विषय की तुलना या सकलना द्वारा ज्ञान सगृहीत करने को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। इस प्रत्यभिज्ञान की सहायता से चार प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सकता है–(१) गवय (नील गौ) नामक प्राणी गाय जैसा होता है। अग्रेजी मे इस ज्ञान को Association by similarity कहते हैं। (२) भैस नामक प्राणी गाय से भिन्न प्रकार का होता है अर्थात् Association by Contrast। गो-पिड अर्थात् गाय-विशेष को देखने से गोत्व अर्थात् गो-सामान्य विषयक ज्ञान होता है। इस सामान्य ज्ञान को अग्रेजी मे Conception कहते हैं। भिन्न-भिन्न विषयो के सामान्य को जैन दर्शन मे तिर्यक् सामान्य कहा है। इसका पाश्चात्य नाम Species idea है। (३) एक ही पदार्थ की भिन्न भिन्न परिणति मे भी उसी एक एव अद्वितीय पदार्थ की उपलब्धि होती हे। अगूठी या कुँडल के भिन्न भिन्न आकारो मे भिन्न भिन्न अलकार रूप मे परिणत होने पर भी, उनमे हम प्रत्यभिज्ञान के प्रताप से सुवर्ण नामक मूल द्रव्य को ही देख सकते हैं। भिन्न भिन्न परिणतियो मे जो द्रव्यगत ऐक्य, सामान्य है, उसे जैन ऊर्ध्वता-सामान्य कहता है। ऊर्ध्वता सामान्य का पाश्चात्य नाम Substratum अथवा Esse है।

चिन्ता—

साधारणत चिन्ता को तर्क या ऊह कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञान से प्राप्त दोनो विषयो मे अच्छेद्य सबध की खोज करना तर्क का काम है। पाश्चात्य मनोविज्ञान इसे Induction कहता है। यूरोपीय पण्डित कहते हैं कि Induction observation—भूयोदर्शन का फल है। जैन नैयायिक भी उपलम्भ और अनुपलम्भ द्वारा तर्क की प्रतिष्ठा मानते हैं। दोनो के कथन का तात्पर्य एक ही है। पाश्चात्य तार्किक Inductive Truth को एक Invariable अथवा Unconditional relationship कहते हैं जैनाचार्यों ने कितनी ही शताब्दी पूर्व यही बात कह दी थी। उनके मतानुसार तर्कलब्ध सम्बन्ध का नाम अविनाभाव अथवा अन्यथानुपपत्ति है।

अभिनिबोध —

तर्कलब्ध विषय की सहायता से होने वाले अन्य विषय के ज्ञान को अभिनिबोध कहते हैं। साधारणत अभिनिबोध को अनुमान माना जाता है। इसी को पाश्चात्य ग्रन्थो मे अनुमान Deduction, Retiocination अथवा Syllogism नाम दिया गया है। धुवा देख कर यह कहना कि 'पर्वतो वह्निमान्' (पर्वत मे अग्नि) है—इस प्रकार के बोध का नाम अनुमान है।

इसमे पर्वत 'धर्मी', किवा 'पक्ष', वह्नि 'साध्य', और धूम 'हेतु', 'लिग' अथवा 'व्यपदेश' है। पाश्चात्य न्याय ग्रन्थो मे Syllogism के अन्तर्गत इन्ही तीन विपयो की विद्यमानता दिखती है। इनके नाम Minor term, Major term और Middle term है। अनुमान व्याप्तिज्ञान पर—अर्थात् अग्नि और धूप मे जैसा अविनाभाव सबध है उस पर—प्रतिष्ठित है। यह व्याप्तितत्त्व पाश्चात्य न्याय के Distribution of the middle term के अन्तर्गत है। जैन दृष्टि से अनुमान के दो भेद हैं—(१) स्वार्थानुमान और (२) परार्थानुमान। जिस अनुमान द्वारा अनुमापक स्वय किसी तथ्य की खोज करता है उसे स्वार्थानुमान, और जिस वचन-विन्यास द्वारा उक्त अनुमापक अन्य को वह तथ्य समझाता है उसे परार्थानुमान कहते हैं। ग्रीक दार्शनिक Aristotle अनुमान के तीन अवयव बतलाता है—(१) जो जो धूमवान है वह वह्निमान् है, (२) यह पर्वत धूमवान है, (३) अतएव यह पर्वत वह्निमान है। बौद्ध अनुमान के तीन अवयव इस प्रकार बतलाते है—(१) जो धूमवान् है वह वह्निमान् है। (२) यथा महानस (३) यह पर्वत धूमवान् है। मीमांसक भी अनुमान के तीन अवयव मानते हैं। इनके मतानुसार अनुमान के ये दो रूप हो सकते हैं प्रथम रूप—(१) यह पर्वत वह्निमान् है, (२) क्योकि यह धूमवान् है, (३) जो धूमवान् होता है वह वह्निमान् होता है, यथा महानस। द्वितीय रूप–(१) जो धूमवान् है वह वह्निमान् है, यथा महानस। यह पर्वत वह्निमान् है। नैयायिक अनुमान को पञ्चावयव मानते हैं। उनके मतानुसार अनुमान का आकार यह होगा–(१) यह पर्वत वह्निमान् है, (२) क्योकि यह धूमवान् है। (३) जो धूमवान् होता है वह वह्निमान् होता है यथा महानस। (४) यह पर्वत धूमवान् है, (५) इसलिए यह वह्निमान् है। अनुमान के ये पाच अवयव क्रमश: प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैन दर्शन के नैयायिक कहते हैं कि उदाहरण, उपनय और निगमन निरर्थक हैं। जैन अनुमान के दो अवयव मानते है–(१) यह पर्वत वह्निमान् है, (२) क्योकि यह धूमवान् है। जैन कहते हैं कि कोई भी बुद्धिमान् प्राणी इन दो अवयवो से ही अनुमान के विपय को समझ सकता है। अतएव अनुमान के अन्य अवयव बेकार है। परन्तु यदि श्रोता अल्पबुद्धि हो तो उसके लिए जैन लोग नैयायिको के पाच अवयवो का स्वीकार करते ही हैं, इतना ही नही इसके अतिरिक्त प्रतिज्ञाशुद्धि, हेतुशुद्धि जैसे और भी पाच अवयव बढा कर अनुमान के दस अवयव बनाते हैं।

श्रुतज्ञान—

अनुमान तक मतिज्ञान का, अर्थात् इन्द्रिय सश्लिष्ट ज्ञान का अधिकार है। श्रुत ज्ञान नित्य-सत्य के भण्डार रूप है, इसी का दूसरा नाम आगम है। जैन ऋग्वेदादि चार वेदो को आगम या प्रमाण रूप नही मानते। वे कहते हैं कि जिन्होने अपनी साधना–तपश्चर्या के बल से लोकोत्तरत्व प्राप्त किया है उन्ही सिद्ध, सर्वज्ञ, तीर्थकर भगवान के वचन

सर्वोत्कृष्ट आगम हो सकते है। कभी कभी जैन अपने आगम को वेद भी कहते हैं और उन्हे चार भागो मे विभक्त करते है। जिस प्रकार मतिज्ञान के अवग्रहादि चार भेद अथवा पर्याय है उसी प्रकार वे श्रुतज्ञान के भी लब्धि, भावना, उपयोग और नय ये चार भेद करते हैं। ये चार भेद वस्तुत व्याख्यान-भेदमात्र है। इस व्याख्यान प्रणाली को कुछ अशो मे पाश्चात्य तर्कविद्या विपयक Explanation के समान कह सकते हैं।

लब्धि —

किसी भी पदार्थ को, उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विपय की सहायता से समझाने का नाम लब्धि है।

भावना—

किसी भी विपय को, पूर्व अवधारित किसी विपय के स्वरूप, उसकी प्रकृति अथवा क्रिया की सहायता से समझाने के प्रयत्न को भावना कहते है। भावना विपय व्याख्यान की एक अति उन्नत प्रणाली है। यह पदार्थ एव तत्सम्बन्धी अन्य बहुतसी वस्तुओ पर विचार करके निर्णय करने योग्य पदार्थ का निरूपण करने को आगे बढती है।

उपयोग —

भावना प्रयोग द्वारा पदार्थ का स्वरूपनिर्देश करने का नाम उपयोग है।

नय—

भारतीय दर्शनो मे 'नयविचार' जैन दर्शन की एक विशेपता है। पदार्थ की सपूर्णता की ओर पूर्ण ध्यान दिये बिना, किसी एक विशिष्ट दृष्टिकोण से विपय की प्रकृति का निरूपण करना 'नय' कहलाता है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नाम से नय के दो भेद हैं। द्रव्यार्थिक नय का विपय द्रव्य और पर्यायार्थिक नय का विपय पर्याय है। द्रव्यार्थिक नय नैगम, सग्रह और व्यवहार भेद से तीन प्रकार का होता है। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ तथा एवभूत भेद से पर्यायार्थिक नय चार प्रकार का होता है।

नैगम—

वस्तु-स्वरूप का विचार न करके, किसी एक बाह्य स्वरूप सम्बधी विचार करने का नाम नैगम है। कोई व्यक्ति ईंधन, पानी और अन्य सामग्री लिये जाता हो, तब उससे पूछा जाय कि "तुम यह क्या करते हो" तो वह उत्तर मे कहे कि "मुझे रसोई करनी है"। इसका यह उत्तर नैगमनय की दृष्टि से होगा। इसमे ईंधन, पानी तथा अन्य सामग्री के स्वरूप के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा गया। केवल यही बतलाया गया है कि उसका क्या उद्देश्य है।

सग्रह—

वस्तु विशेष भाव की ओर ध्यान न देकर, वह वस्तु जिस भावसवध से अपनी जाति की अन्य वस्तुओ के साथ सादृश्य या समानता रखती हो उसकी ओर ध्यान देने का नाम सग्रहनय है। सग्रहनय से पाश्चात्य दर्शन के Classification का मिलन कर सकते है।

व्यवहार—

उपरोक्त-सग्रह-नय से यह बिल्कुल अलग पडता है। सामान्य भाव की उपेक्षा करके विशिष्टता की ओर ध्यान देने का नाम व्यवहारनय है। पाश्चात्य विज्ञान मे इसे Spacification अथवा Individuation कहा जाता है।

ऋजुसूत्र—

वस्तु की परिधि को कुछ अधिक सकुचित करके, उसकी वर्तमान अवस्था द्वारा निरूपण करने का नाम ऋजुसूत्र है।

शब्द—

यह और इसके बाद के दो नय शब्द के अर्थ का विचार करते हैं। किसी शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर तीन प्रकार के नय अपनी अपनी प्रद्धति से देते हैं। प्रत्येक परवर्ति नय, अपने से पूर्ववर्ति नय की अपेक्षा शब्द के अर्थ को अधिक सकीर्ण बनाता है। 'शब्द-नय' शब्द मे अधिक से अधिक अर्थ का आरोपण करता है। इस शब्द-नय का आशय यह होता है कि एकार्थवाचक शब्द लिग, वचनादिक्रम से परस्पर भिन्न होने पर भी एक ही अर्थ के द्योतक होते हैं।

समभिरूढ—

समभिरूढ प्रत्येक शब्द के मूल धातु की ओर ले जाता है। वह बतलाता है कि एकार्थवाचक शब्द भी वस्तुत भिन्न भिन्न अर्थ को द्योतित करते हैं। शक्र तथा पुरन्दर शब्द, शब्दनय के अनुसार एकार्थवाची हैं परन्तु समभिरूढ के अनुसार शक्तिशाली पुरुष ही शक्र, और पुरविदारक ही पुरन्दर कहलायेगा। अर्थात् इस नय के अनुसार शक्र और पुरन्दर का अर्थ भिन्न भिन्न है।

एवभूत—

जहाँ तक पदार्थ निर्दिष्ट रूप से क्रियाशील होता है उसी समय तक उस पदार्थ को तत्सबधी क्रियावाचक शब्द से पहिचाना जा सकता है, उसके दूसरे क्षण से उस शब्द का व्यवहार बन्द हो जाता है। जब तक पुरुष शक्तिशाली है तभी तक वह 'शक्र' है; शक्ति-

हीन होते ही यह व्यवहार बन्द हो जाता है अर्थात् फिर उसे शक्र नही कह सकते। इसे 'एवभूत नय' कहते हैं।

नय से पदार्थ का एकदेश मालूम होता है। पदार्थ के यथार्थ और पूर्ण स्वरूप को जानने के लिए जैनागम-स्वीकृत स्याद्वाद का आश्रय लेना चाहिए। यह स्याद्वाद अथवा सप्तभगी जैन दर्शन की एक महान् विशिष्टता है।

स्याद्वाद—

पदार्थ अगणित गुण के आधाररूप है। इन समस्त भिन्न गुणो का पदार्थ मे क्रमश आरोप करने का नाम स्याद्वाद नही है। एक पर्व अद्वितीय गुण का पदार्थ मे आरोपण किया जाय तो उसका सात प्रकार से निरूपण हो सकता है—उसका वर्णन सात प्रकार से किया जा सकता है। इस सप्तधा विवरण का नाम स्याद्वाद अथवा सप्तभगी न्याय है। उदाहरणार्थ, घट नामक पदार्थ मे अस्तित्व नामक गुण का आरोप करे तो उसका निरूपण निम्नलिखित विधि से सात प्रकार से कर सकते हैं—

(१) **स्यादस्ति घट** अर्थात् किसी एक अपेक्षा से [किसी एक दृष्टिकोण से—विचार से] घट है ऐसा कह सकते हैं। परन्तु 'घट है' इसका अभिप्राय क्या है ? इसका यह अर्थ नही कि घट एक नित्य, सत्य, अनन्त, अनादि, अपरिवर्तनीय पदार्थ रूप मे विद्यमान है। 'घट है' इसका अर्थ यही है कि स्वरूप के विचार से अर्थात् घट रूप से, स्व-द्रव्य के विचार से अर्थात् वह मिट्टी का बना है इस दृष्टि से, स्व-क्षत्र के विचार से अर्थात् अमुक शहर मे (पटना शहर मे) और स्व-काल अर्थात् अमुक एक ऋतु (वसन्त ऋतु) मे वह वर्तमान है।

(२) **स्यान्नास्ति घटः** अर्थात् किसी एक अपेक्षा से घट नही है। पर-रूप अर्थात पट-रूप मे, पर-द्रव्य के विचार से अर्थात् स्वर्ण-अलकार की अपेक्षा से, पर-क्षेत्र अर्थात् अन्यमय किसी शहर की (गाधार की) अपेक्षा से और पर-काल की अर्थात् अन्य किसी ऋतु (शीत ऋतु) की अपेक्षा से यह घट नही है, यह भी कह सकते हैं।

(३) **स्यादस्ति नास्ति च घट**—अर्थात् एक अपेक्षा से घट है और अन्य अपेक्षा से घट नही है। स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र की अपेक्षा से वह घट है और पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र की अपेक्षा से वह घट नही है। यह बात ऊपर कही जा चुकी है।

(४) **स्यादवक्तव्यः घट**—अर्थात् एक अपेक्षा से घट अवक्तव्य है। एक ही समय मे हमे ऐसा प्रतीत हो कि घट है और घट नही है तो इसका अर्थ यह हुआ कि घट अवक्तव्य हो गया, क्योकि भाषा मे कोई भी शब्द ऐसा नही है, जो एक ही समय मे अस्तित्व और नास्तित्व को प्रकट कर सके। तीसरे भेद मे हम जो घट का अस्तित्व देख आये हैं उसका

आशय यह नही है कि जिस क्षण मे हमें घट का अस्तित्व प्रतीत होता है उसी क्षण में उसका नास्तित्व प्रतीत होता है

(५) **स्यादस्ति च अवक्तव्य घट**—अर्थात् एक अपेक्षा से घट है और वह भी अवक्तव्य है। प्रथम और चतुर्थ भेद को एक साथ मिलाने से यह भेद समझ मे आ सकेगा।

(६) **स्यान्नास्ति च अवक्तव्य घट**—अर्थात् एक अपेक्षा से घट नही है और वह भी अवक्तव्य है। इस नय का आधार दूसरे और चौथे भेद का सकलन है।

(७) **स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्य घट**—अर्थात् एक अपेक्षा से घट है, घट नही है, और वह भी अवक्तव्य है। यह सप्तम भेद तीसरे और चौथे भेद के योग से बना है।

जैन दार्शनिको का कहना है कि यथार्थ वस्तुविचार के लिए यह सप्तभगी अथवा स्याद्वाद का आश्रय लिए बिना वस्तु का स्वरूप समझ मे नही आ सकता। 'घट है' ऐसा कहने मात्र से उसका समस्त विवरण हो गया ऐसा नही कह सकते। 'घट नही है' ऐसा कहने मे भी बहुत अपूर्णता रह जाती है। 'घट है और घट नही है' ऐसा कह देना भी काफी नही है। 'घट अवक्तव्य है' यह भी पूर्ण विवरण न हुवा। जैन इस बात पर बडा जोर देते हैं कि सप्तभगी के एक दो भेदो की सहायता से वस्तु-स्वभाव का पूर्ण निरूपण नही हो सकता।

और जैनो का उक्त मन्तव्य नगण्य कह देने योग्य नही है। प्रत्येक भेद मे कुछ न कुछ सत्य तो अवश्य है। पूर्वोक्त सातो नय की दृष्टि से देखा जाय तभी पूर्ण सत्य एव तथ्य मालूम हो सकता है। जिस प्रकार अस्तित्व के विषय मे सप्तभगी का क्रमश व्यवहार हुआ है उसी प्रकार नित्यता आदि गुणो पर भी उसे घटा सकते हैं। अर्थात् पदार्थ नित्य है या अनित्य, यह जानने के लिए भी जैन पूर्वोक्त सप्तभगी का आश्रय लेते हैं। जैन सिद्धान्त तो कहता है कि पदार्थ-तत्त्व के निरूपण के लिए स्याद्वाद ही एकमात्र उपाय है।

द्रव्य—

द्रव्य की उत्पत्ति है और उसका विनाश भी है ऐसा हम सब मानते हैं। भारतवर्ष मे बौद्ध और ग्रीस मे Heraltus के शिष्य द्रव्य को अनित्य मानते थे, परन्तु वस्तुत देखा जाय तो, दिखलाई देनेवाले उत्पत्ति और विनाश मे अर्थात् परिवर्तनमात्र के मूल मे एक ऐसा तत्त्व रहता है जो सदैव अविकृत ही रहता है। उदाहरण के लिये, स्वर्णालकार के परिवर्तन मे सोना तो वह का वही रहेगा—केवल उसके आकार मे परिवर्तन होता रहता है। भारतवर्ष मे वेदान्तियो ने और ग्रीस मे Parmenides के अनुयायियो ने परिवर्तनवाद जैसी वस्तु को ही उडा दिया है। उन्होने द्रव्य की नित्य सत्ता और अविकृति पर ही भार दिया है। स्याद्वादी जैन इन दोनो बातो को अमुक अपेक्षा से स्वीकार करते हैं और अमुक

अपेक्षा से इनका परिहार करते हैं। वे कहते हैं कि सत्ता भी है और परिवर्तन भी है। यही कारण है कि वे द्रव्य का वर्णन करते समय उसे 'उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्त' कहते हैं। अर्थात् (१) द्रव्य की उत्पत्ति है, (२) द्रव्य का विनाश है और (३) द्रव्य के भीतर एक ऐसा तत्त्व है जो उत्पत्ति-विनाशरूप परिवर्तन मे भी अविकृत-अपरिवर्तित और अटूट रहता है।

द्रव्य, गुण, पर्याय —

द्रव्य का विचार करने के समय उसके गुण और पर्याय पर भी विचार करना आवश्यक है। जैन लोग द्रव्य को कुछ अशो मे Cartesian के Substance के समान मानते हैं। द्रव्य के साथ जो चिरकाल अविच्छिन्न रूप से रहता है अथवा जिसके विना द्रव्य, द्रव्य ही नही रहता, उसे 'गुण' कहते हैं। द्रव्य स्वभावत अविकृत रहकर अनन्त परिवर्तनो के भीतर जो दिखलाई देता है वह पर्याय है। जैन जिसे पर्याय कहते हैं उसे Cartesian mode कहता है। जैन दृष्टि से पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाच अजीव द्रव्य हैं। जीव भी द्रव्य है और सव मिलकर कुल छ द्रव्य हैं।

अवधिज्ञान —

मति-श्रुतादि पचविध ज्ञान मे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान पर विचार किया गया है। अब अवधिज्ञानादि पर विचार करेगे।

जो सब रूप विशिष्ट द्रव्य स्थूल इन्द्रियो के लिये अगोचर हैं उनकी असाधारण अनुभूति का नाम अवधिज्ञान है। आजकल जिसे Clairvoyance कहते हैं, कुछ अशो मे अवधिज्ञान की उसके साथ तुलना कर सकते है। अवधिज्ञान के तीन भेद है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। देशावधि दिशा और काल से सीमाबद्ध है। परमावधि असीम है। सर्वावधि के द्वारा विश्व के समस्त रूपयुक्त द्रव्यो का अनुभव हो सकता है।

मन पर्यव

अन्य की चित्तवृत्ति के विपय के अनुभव का नाम 'मन पर्यवज्ञान' है। पाश्चात्य विज्ञान मे इसे टेलीपैथी अथवा Mind reading कहते है। मन पर्यवज्ञान के ऋजुमति सकीर्णतर है। विपुलमति की सहायता से विश्व के समस्त चित्तसवन्धी विषयो का सूक्ष्म अवलोकन हो सकता है।

केवलज्ञान

चैतन्यमुक्त जीवो के ज्ञान की यह एकदम अन्तिम मर्यादा है। केवलज्ञान मे विश्व के समस्त विषयो का समावेश हो जाता है। केवलज्ञान माने सर्वज्ञता ऐसा कह सकते है।

केवलज्ञान आत्मा मे से ही उत्पन्न होता है। इसमे इन्द्रिय या अन्य किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता नही होती।

केवलज्ञानी मुक्ति को प्राप्त या मुक्त पुरुप होता है। यहाँ केवलज्ञान के साथ ही हमे जैन दर्शनकथित सात तत्त्वो का स्मरण होता है। इन सात तत्त्वो के नाम ये हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष।

जीव, अजीव—

जैन दर्शनानुसार जीव चेतनादि गुण विशिष्ट हैं। स्वभावत. शुद्ध जीव अनादि काल से अजीवतत्त्व से लिप्त हैं। इस अजीव तत्त्व से छुटकारा पाने का नाम मुक्ति है।

आश्रव—

स्वभावत शुद्ध जीव जब राग-द्वेष करता है तब जीव मे कर्मपुद्गल आश्रव प्राप्त करते हैं—प्रवेश करते हैं। आश्रव के दो भेद हैं—एक शुभ और दूसरा अशुभ। शुभ आश्रव से जीव स्वर्गादि के सुखो का अधिकारी बनता है और अशुभ आश्रव से इसे नरकादि की यातनाएँ सहन करनी पडती हैं। आश्रव काल मे जो कर्म-पुद्गल जीव मे प्रवेश करते हैं उनकी प्रकृति आठ प्रकार की होती है। ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म, वेदनीय कर्म, आयु कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म और अन्तराय कर्म।

जो कर्म ज्ञान को ढक लेता है वह ज्ञानावरणीय है। जिससे जीव का स्वाभाविक दर्शनगुण ढक जाता है वह दर्शनावरणीय है। जो कर्म जीव के सम्यक्त्व और चरित्रगुण का घात करता है, जीव को अश्रद्धा और लोभादि मे फसा देता है उसका नाम मोहनी कर्म है। वेदनीय कर्म के प्रताप से जीव को सुख-दु खरूप सामग्री प्राप्त होती है। आयुकर्म के परिणामस्वरूप जीव मनुष्यादि के आयुष्य को प्राप्त करता है। जीव की गति, जाति, शरीर आदि के साथ नामकर्म का सबध रहता है। उच्च या नीच गोत्र मिलने का आधार गोत्रकर्म है। अन्तराय कर्म से दानादि सत्कार्य मे भी विघ्न पडता है। इस अष्टविध कर्म के अन्य बहुत से भेद हैं, जिन्हे विस्तारभय से छोड दिया गया है।

बध—

स्वभावत मुक्त जीव उपरोक्त कथनानुसार कर्मपुद्गल के आश्रव से बन्धनग्रस्त रहता है। अजीव कर्मपुद्गल के साथ जीव के मिल जाने का नाम बध है।

सवर—

सासारिक मोह मे पडे हुए जीव मे कर्म का आश्रव जिसके द्वारा रुक जाता है उसका नाम सवर है। सवर बधनग्रस्त जीव को मुक्तिमार्ग पर ले जाता है। जैन शास्त्रो मे

कथित तीन गुप्ति, पांच समिति, दशविध यतिधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस प्रकार के परिषहका जय, पाँच प्रकार का चारित्र और बारह प्रकार का तप सवर साधने के साधन हैं। इन सब के लक्षणो का वर्णन करने का यह स्थान नही है।

निर्जरा

कर्म के एकदेशीय क्षय का नाम निर्जरा है। उसके दो भेद हैं—एक सविपाक और दूसरा अविपाक। निर्दिष्ट फलभोग के पश्चात् कर्म का जो स्वाभाविक क्षय होता है उसका नाम सविपाक निर्जरा है, और कर्मयोग से पहले यानादि साधना द्वारा जो कर्मक्षय होता है उसका नाम अविपाक निर्जरा है।

मोक्ष—

जीव के समस्त कर्मों का अन्त होने पर वह मोक्ष को—स्वाभाविक अवस्था को—प्राप्त करता है।

जैन शास्त्र मे मोक्षमार्ग के १४ सोपानो का वर्णन है। इन्हे १४ गुणस्थानक कहा जाता है। यहा तो केवल उनके नाम ही लिख कर सन्तोष करता हूँ। (१) मिथ्यात्व, (२) सासादन, (३) मिश्र, (४) अविरत सम्यक्त्व, (५) देशविरत, (६) प्रमत्तविरत, (७) अप्रमत्तविरत, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्मसपराय, (११) उपशातमोह, (१२) क्षीणमोह, (१३) सयोगकेवली, (१४) अयोगकेवली। इन सबके लक्षण को छोड देता हू।

मोक्षमार्ग—

जैनाचार्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को—एक साथ तीनो को—मोक्षमार्गप्रापक—मोक्षमार्ग मे ले जाने वाला—कहते हैं। इन्हे त्रिरत्न अथवा रत्नत्रयी भी कहा जाता है।

सम्यग्दर्शन—

जीव, अजीव आदि पूर्व कथित तत्त्वो का जो विवरण किया उसमे अचल श्रद्धा रखने का नाम सम्यग् दर्शन है।

सम्यग्ज्ञान—

सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नामक तीन प्रकार के समारोप अथवा ये तीन प्रकार की भ्रान्तिया हैं। इन समारोपो से रहित—भ्रान्ति-रहित—ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्चारित्र—

राग-द्वेषरहित होकर पवित्र आचरण का अनुष्ठान करने का नाम सम्यक्चारित्र है।

उपसहार—

जैन विज्ञान का वर्णन करते समय, यहा और भी बहुत सी बातो का उल्लेख करना आवश्यक है। परन्तु श्रोताओ को या वाचको को अरुचि न हो जाय—वे उकता न जाँय—इस उद्देश्य से मैंने यथाशक्य सक्षेप ही किया है। नही तो जैन काव्य, जैन कथा, जैन साहित्य, जैन नीतिग्रन्थ, जैन ज्योतिष, जैन चिकित्सा शास्त्र आदि मे इतनी बातें, इतने सिद्धान्त और इतने ऐतिहासिक उपकरण हैं कि उनका उचित विवेचन किये विना साधारण जनता उन्हे समझ नही सकती। मैंने यहा जैन विज्ञान की जो रूपरेखा दिखलाई है वह तो बिल्कुल साधारण है; इसे तो जैन दर्शन का केवल हाडपिजर कहा जाय तो भी अनुचित न होगा।

प्रमाणाभास क्या है ? वादविचार कैसा होता है ? फलपरीक्षा की पद्धति क्या है ? इत्यादि बहुत सी बाते जैन दर्शन मे हैं। मैंने यहा उनको तो स्पर्श तक नही किया, तथापि मुझे विश्वास है कि सुज्ञ पुरुष इतने सक्षिप्त विवेचन से ही इतना तो अवश्य समझ लेगे कि आधुनिक विज्ञान के अधिकाश मूल सूत्र जैन विज्ञान मे हैं।

जैन विद्या भारतवर्ष की विद्या है। इसके पुनरुद्धार का उत्तरदायित्व भारतवर्ष पर है। भारत की लुप्त विद्या और सभ्यता का पुनरुद्धार करने मे बगाल सदैव अग्रणी रहा है। बगाल मे अध्यावधि बहुतसी प्राचीन जैन प्रतिमाएँ मिली हैं। बगाल मे ही "सराक" नामक अहिंसाप्रिय जाति होने की खबर मिली है। यद्यपि आजकल यह जाति हिन्दू समाज मे मिल गई है, फिर भी इसमे तनिक भी सदेह नही कि यह जाति प्राचीन जैन समाज की—श्रावकसमाज की—उत्तराधिकारिणी है। इनके आचार, इनकी लोककथा और सस्कारो से इस सिद्धान्त को—इस जाति के श्रावक होने की बात को—विशेष पुष्टि मिलती है।

यह भी एक अनुमान होता है कि बगाल मे आज जिसे बर्दवान—वर्धमान नगर कहते हैं उसका सबध जैनसम्प्रदाय के अन्तिम चौबीसवे तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी के नाम के साथ होगा। श्रीमहावीरस्वामी के नाम पर बगाल की भूमि मे वीरभूमि (वीरभूम जिला) नाम पडा हो यह भी स्वाभाविक है। बगाल मे जैन प्रतिमाओ के अतिरिक्त कही-कही प्राचीन जैन मदिर भी पाए जाते हैं। बगाल के निकटवर्ती मगध मे जैन महापुरुषो ने बहुधा अपनी वीरगर्जना की है। यह सब देखते हुए यदि सभ्यताभिमानी बगाली लोग जैन विद्या के पुनरुद्धार मे पर्याप्त मनोयोग न दे तो यह उनके लिए एक आक्षेप की बात होगी।

यहा एक और बात भी कह देना चाहता हू। महात्मा गाधीजी के कथनानुसार अहिंसा धर्म के प्रताप से भारतवर्ष का राजनैतिक उद्धार होना चाहिए। इस राजनैतिक अहिंसा का आचरन सर्वप्रथम बगाल ने ही कर दिखलाया था। इस अहिंसा का सूत्रपात कहाँ से

हुवा ? वेद-शासित धर्म मे अहिंसा की प्रशसा है—मैं इस बात को अस्वीकार नही करता। बौद्ध भी अहिंसा को स्वधर्म के आधाररूप मानते हैं । परन्तु भारतीय जैन समाज अन्यो की भाति केवल अहिंसा के गीत गाकर ही नही बैठ रहता, वह तो मन, वचन, काया से इस धर्म का पालन करता है। और बातो मे जैन समाज भले ही पीछे रह गया हो, पर उसकी अहिंसा की आराधना भक्ति तो प्रशसनीय है । जैन विद्या के पुनरुद्धार मे बगाली विद्वान यथाशक्ति सहायता देने के लिए तैयार रहे तो भारतीय सभ्यता चमक उठेगी । इस बात का पुनरुच्चारण करके मैं इस निबन्ध को समाप्त करता हूँ ।[1]

१ बगाली साहित्य-परिषद मे (राधानगर मे) यह निबन्ध पढा गया था ।

सुख और शाति के इस राजमार्ग पर आपका जीवन सुगन्ध-भरा बना रहे ।

•••

ज्ञान यानी बुद्धि द्वारा जानना और विज्ञान यानी जीवन मे अनुभव करना । जो ज्ञान आचरण द्वारा आत्मसात् किया जाता है वह विज्ञान बनता है ।

•••

आपके जीवन मे ज्ञान विज्ञान का मगलमय प्रकाश फैला रहे ।

•••

कर्मस्वरूप का विचार नम्रता लाता है, धर्मस्वरूप का विचार निर्भयता लाता है ।

•••

ज्ञान से परमात्मा को जाना जाता है और प्रेम से परमात्मा को पाया जा सकता है ।

•••

आपके जीवन मे अभय, अद्वेष और अखेद प्रगट हो ।

जैन धर्म का प्रसार

ले० डॉ० के० ऋषभचन्द्र
एम०ए०, पी०एच०डी०, सीनियर रिसर्च ऑफिसर, ला०द० विद्यामंदिर, अहमदावाद

एक समय ऐसी मान्यता रही कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की ही एक शाखा है। डॉ० याकोबी ने इस भ्रान्त धारणा को निर्मूल किया। तत्पश्चात् यहा कहा जाने लगा कि जैन धर्म हिन्दू धर्म (ब्राह्मण धर्म) मे से ही उत्पन्न हुआ है, वैदिक हिंसा के विरोध मे जो आन्दोलन आरभ हुआ था उसने एक नए धर्म के रूप मे जैन धर्म का स्वरूप पाया, परतु जैसे जैसे अन्वेषण अग्रसर होता जा रहा है वैसे वैसे यह आक्षेप भी असत्य सिद्ध होता जा रहा है। आधुनिक विद्वान् अब यह अभिप्राय बनाते जा रहे हैं कि जैन धर्म की परम्परा बहुत प्राचीन है। भगवान महावीर और पार्श्व के पूर्व काल मे भी इस धर्म की परम्परा विद्यमान थी, इतना ही नही अपितु प्रागैतिहासिक काल मे भी इस धर्म की परम्परा के धुँधले चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

जैन के अलावा इस धर्म के दूसरे नाम आर्हत और निर्ग्रंथ रहे हैं। महावीर के समय मे इसका नाम निर्ग्रंथ धर्म था जैसा कि पालि और अर्द्धमागधी साहित्य से पता चलता है। इसका एक अन्य नाम श्रमण भी रहा है, हालाँकि श्रमण शब्द बहुत विस्तृत रहा हैं और उसमे कई सप्रदायो का समावेश होता रहा है जैसे बौद्ध, आजीविक तथा कुछ सीमा तक पूर्वकालीन साख्य और शैव भी। इसी श्रमण परपरा मे निर्ग्रंथो का भी एक सप्रदाय था। पार्श्वनाथ के पहले इस सप्रदाय का क्या नाम रहा, यह जानने के लिए कोई विशिष्ट साधन उपलब्ध नही हैं। यह सुनिश्चित है कि श्रमणपरपरा निवृत्तिप्रधान रही है और उसे मुनिपरम्परा भी कहा गया है एक प्रवृत्ति-प्रधान परम्परा भी भारत मे विद्यमान रही है, उसका नाम है वैदिक, यज्ञमुखो, देव, ऋषि अथवा वर्णाश्रम धर्म परम्परा। वास्तव मे ये दोनो परम्पराएँ ऋग्वेद काल से प्रचलित हैं। ऋग्वेद हमारा प्राचीनतम साहित्य है जिसमे हमे निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनो मार्गों के दर्शन होते हैं। उस समय मुनि परम्परा भी यथेष्ट प्रमाण मे लोकप्रिय थी। महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनि के एक सूत्र की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि श्रमणो और ब्राह्मणो का विरोध शाश्वत काल से चला आ रहा है।[1] पुराणो और महाभारत मे ऐसा उल्लेख है कि सृष्टि निर्माण करते समय ब्रह्मा ने प्रथम

---

१ महाभाष्य २-४-९।

सनक आदि पुत्रो को उत्पन्न किया था। वे वन मे चले गए और निवृत्तिमार्गी हो गए। तदुपरात ब्रह्मा ने अन्य पुत्रो को उत्पन्न किया, जिन्होने प्रवृत्तिप्रधान रह कर प्रजा की सन्तति को आगे बढाया[1]। कहने का तात्पर्य यह कि निवृत्तिप्रधान परम्परा अत्यत प्राचीन है।

प्राचीन काल

अपने प्राचीन इतिहास सबधी जैन आगमो और पुराणो के वर्णनानुसार जम्बू द्वीप के दक्षिण मे स्थित भारत देश मे, जिसके उत्तर मे हिमवान् पर्वत है, पहले भोगभूमि की व्यवस्था थी। कालव्यतिक्रम से उसमे परिवर्तन शुरू हुआ और आधुनिक सभ्यता का प्रारभ। उस समय चौदह कुलकर हुए, जिन्होने क्रमश कानून की व्यवस्था की और समाज का विकास किया। उन चौदह कुलकरो मे अन्तिम कुलकर नाभि थे। उनकी पत्नी मरुदेवी थी और उनसे सर्वप्रथम तीर्थंकर ऋषभ का जन्म हुआ, जिन्होने सर्वप्रथम कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि छह साधनो की व्यवस्था की तथा धर्म का उपदेश दिया। ये ही जैनो के आदि धर्मोपदेशक माने जाते हैं। इनका ज्येष्ठ पुत्र भरत था जो प्रथम चक्रवर्ती हुआ। इस तरह चौदह कुलकरो के पश्चात् त्रेसठ शलाका पुरुष हुए जिन मे २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रति वासुदेव हैं।

प्रथम चक्रवर्ती भरत से ही इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ ऐसा जैन पुराणो व आगमो मे कहा गया है। हिन्दू पुराणो के अनुसार भी इन्ही नाभि के पौत्र तथा ऋषभ के पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम से अजनाभ खण्ड का नाम भरत खण्ड हुआ। इस प्रकार जैन अनुश्रुति का हिन्दू (ब्राह्मण) पुराणो के द्वारा समर्थन होता है और उसका ऐतिहासिकता सूचित होती है।

ऋषभदेव का जन्म अयोध्या मे हुआ था। दीक्षा के बाद वे कठोर तपस्वी बने। वे नग्न रहते और सिर पर जटाएँ धारण करते थे। जैन कला मे घोर तपस्वी के रूप मे तथा सिर पर जटाल केशो के साथ उनका अकन हुआ है। उनके जीवन सबधी वर्णन अजैन साहित्य मे भी प्राप्त हैं। हिन्दू पुराणो मे[2] (भागवत इत्यादि) उनके वश, माता-पिता और तपश्चर्या का जो वर्णन है वह जैन वर्णन से काफी साम्य रखता है। वे स्वयभू मनु से पाचवी पीढी मे हुए थे। (इस वर्णन के अनुसार अन्य अवतारो जैसे राम, कृष्ण इत्यादि से इनका समय प्राचीन ठहरता है तथा महाभारत के अनुसार भी प्रजापति के प्रथम पुत्र निवृत्तिमार्गी हुए और तत्पश्चात् प्रवृत्ति मार्ग का प्रचलन हुआ।) वे कठोर तपस्वी थे

---

१ शान्तिपर्व ३४० ७२-७३, ९९-१००, भागवत पुराण ३ १२।

२ भागवत पुराण ५ ३, ५ ६, शिवपुराण ७ २।

और नग्न रहते थे। उन्होने दक्षिण देश मे भी भ्रमण किया था। वे वातरशना श्रमण ऋषियो के धर्म को प्रकट करने के लिए अवतरित हुए थे। उन्हे विष्णु और शिव दोनो का अवतार माना गया है। वातरशना श्रमण मुनियो की इस परपरा के दर्शन भारत के प्राचीनतम् साहित्य ऋग्वेद मे[1] भी होते हैं। इस वेद के दसवे मडल मे वातरशना मुनियो का वर्णन उपलब्ध है और उसके साथ उनके प्रधान मुनि केशी की भी स्तुति की गई है। केशी का तात्पर्य केशधारी व्यक्ति से है और जैन परपरा मे सिर्फ ऋषभ की मूर्ति जटाल केशो को धारण किये हुए मिलती है। इस सबध मे मेवाड के केसरियानाथ जो ऋषभ का ही नामातर है, ध्यान देने योग्य है। ऋग्वेद मे एक स्थलपर केशी और वृषभ का एक साथ वर्णन भी मिलता है और उनके एकत्व का समर्थन होता है। जैन तीर्थकर नग्न रहते थे यह सुविदित है। ऋग्वेद[2] तथा अथर्ववेद[3] मे भी शिश्नदेवो के उल्लेख मिलते हैं। पटना के लोहानीपुर स्थल से कायोत्सर्ग मुद्रा मे जो नग्न मूर्ति पाई गई है वह भारत की सबसे पुरानी मूर्ति है और वह जैन तीर्थंकर की मूर्ति मानी गई है। वैसे सिन्धु सभ्यता के जो भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं उनमे भी एक नग्न मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा मे मिली है और उसके साथ बैल का चित्र भी। जैन परपरा मे भी ऋषभ के साथ बैल का चिह्न अकित किया जाता है। इस कारण उस मूर्ति को एक तीर्थकर की मूर्ति मानने के लिए विद्वान् लोग प्रेरित हुए हैं। उपर्युक्त आधारो से यह मानना अप्रामाणिक नही होगा कि ऋग्वेद से भी पहले सिन्धुसभ्यता के काल मे जैन धर्म का किसी न किसी रूप मे अस्तित्व था।

ऋग्वेद मे[4] व्रात्यो के उल्लेख आते हैं। वे श्रमण परम्परा से सम्बन्धित थे। उनका वर्णन अथर्ववेद मे[5] भी है। वे वैदिक विधि के प्रतिकूल आचरण करते थे। मनुस्मृति[6] मे लिच्छवियो, नाथ, मल्ल आदि क्षत्रियो को व्रात्य माना गया है। ये भी सभी श्रमण परपरा के ही प्रतिनिधि थे। व्रात्यो के अलावा वैदिक[7] साहित्य मे यतियो के उल्लेख भी आते हैं। वे भी श्रमण परम्परा के साधु थे। जैनो मे यति नाम की सज्ञा प्रचलित रही है। कुछ

---

१ ऋग्वेद १० १३६।

२ ऋग्वेद ७, २१, ५, १०, ९९, ३।

३ अथर्ववेद २०, १३६, ११।

४ ऋग्वेद १, १६३, ८, ९, १४, २।

५ अथर्ववेद, अध्याय १५।

६ अध्याय १०।

७ ऋग्वेद ८, ६, १८, १०, ७२, ७, तैतरीय सहिता २, ४, ९, २, ऐत रेयब्राह्मण ७, २८।

काल के पश्चात् वैदिक साहित्य मे यतियो के प्रति विरोध होता दीख पडता है जो पहिले नही था। ताण्डच ब्राह्मण[1] के टीकाकार ने यतियो का जो वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि वे श्रमण परपरा के मुनि थे। इस प्रकार वैदिक साहित्य के विविध ग्रथो मे श्रमण परम्परा के असदिग्ध उल्लेख बिखरे पडे हैं।

अन्य तीर्थंकरो की ऐतिहासिक सत्ता के प्रमाण उपलब्ध नही हुए हैं। यजुर्वेद मे ऋषभदेव तथा द्वितीय तीर्थंकर अजित और बाईसवे अरिष्टनेमि के उल्लेख मिलते हैं।[2] अन्तिम चार तीर्थकरो की सत्ता के बारे मे कुछ कहा जाने योग्य है। इक्कीसवे तीर्थंकर नमि का साम्य कुछ विद्वान् उत्तराध्ययन मे वर्णित नमि के साथ बिठाते हैं जो मिथिला के राजा थे[3]। उनके अनासक्ति विषयक उद्गार-वाक्य पालि और सस्कृत साहित्य मे भी उद्धृत मिलते हैं। उसी परम्परा मे जनक हुवे जो विदेह (जीवन्मुक्त) थे और उनका देश भी विदेह कहलाया। उनकी अहिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण ही उनका धनुप प्रत्यचाहीन प्रतीकमात्र रहा। वैसे व्रात्यो को भी 'ज्याहृद्' कहा गया है और उसका सबध इस प्रसग मे ध्यान दन योग्य है।

बाईसवे तीर्थकर नेमि और वासुदेव कृष्ण चचेरे भाई थे। नेमि गिरनार पर तपस्या मे प्रवृत्त हुए और वही पर मोक्ष प्राप्त किया। महाभारत का काल १००० ई० पूर्व माना जाता है और वही समय नेमि का ऐतिहासिक काल माना जाना चाहिए। वैदिक वाङ्मय मे वेद से पुराण तक के साहित्य मे नेमि के उल्लेख देखने को मिलते हैं[4]।

तेईसवे तीर्थकर पार्श्वनाथ का जन्म बनारस मे हुवा था। उन्होने सम्मेतशिखर पर दक्षिण बिहार मे मुक्ति प्राप्त की थी। उनका निर्वाण ई० पू० ७७७ मे हुआ था। उनका धर्म चातुर्याम के नाम से प्रसिद्ध थ.। पालि ग्रथो मे इसके उल्लेख हैं। गौतम बुद्ध के चाचा वप्प शाक्य निर्ग्रन्थ श्रावक[5] थे। अत वे पार्श्वनाथ परम्परा के ही उपासक थे। भगवान महावीर के पिता भी इसी परम्परा के अनुयायी थे। इस प्रकार बौद्ध धर्म के स्थापना के पूर्व निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय काफी सुदृढ हो चुका था और विद्वान् लोग सर्वसम्मति से पार्श्वनाथ

---

१ ताण्डच ब्राह्मण १४, ११, २८, १८, १, ६।

२. Vide Indian Philosophy, I Dr S Radhakrishnan, p 287

३ उत्तराध्ययन, अ. ६।
Voice of Ahimsa, Sept-Oct 1958 (Dr H L Jain's Article)

४ भारतीय सस्कृति मे जैन धर्म का योगदान पृ० १६।
Vide - Jainism the Oldest Living Religion by J P. Jain, p. 22

५ अगुत्तर निकाय, चतुक्कनिपात (वग्ग ५)।

को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। उनके काल मे उत्तर प्रदेश, बिहार इत्यादि मे जैन धर्म सुप्रचलित था यह कहने की आवश्यकता नही।

महावीर काल—

चौबीसवे और अन्तिम तीर्थंकर महावीर हुए, जिनका कौटुम्बिक सम्वन्ध मिथिला के लिच्छवि गणतंत्र और वैशाली से था। उन्होने पूर्व परम्परा को एक अद्भुत शक्ति प्रदान की थी। वे ज्ञातृवश के थे और वैशाली उनका जन्मस्थान था। उनका निर्वाण पावापुरी मे ई० पूर्व ५२७ मे हुवा था। उन्होने पार्श्वनाथ के चतुर्यामो को पॉच व्रतो मे वदला। उन्होने ई० पू० छठी शती के द्वितीय और तृतीय पाद मे स्थान स्थान पर भ्रमण करके अपने उपदेश दिए थे। उनके द्वारा जिन पूर्व और पश्चिमी प्रदेशो मे जैन धर्म का प्रचार हुआ उनके नाम इस प्रकार हैं ' पूर्व मे अग, बग, मगध, विदेह तथा कलिग, पश्चिम में कासी, कोसल और वत्स देश। मगध के राजा श्रेणिक बिम्बिसार तथा कुणिक अजातशत्रु का जैन धर्म के साथ जो सबध रहा वह सुविदित है। वैशाली के गणप्रमुख चेटक महावीर के मातृपक्ष से सवधित थे। गणराज्य मे उनका स्थान और प्रभाव सर्वोपरि था। उनका रिश्ता सिन्धु-सौवीर के राजा उदयन और उज्जैन के राजा चडप्रद्योत तथा कौशाम्बी के राजा शतानीक के साथ था। इस प्रभाव के कारण उन प्रदेशो मे जैन धर्म के प्रचार मे काफी प्रेरणा मिली होगी। महावीर के निर्वाण के अवसर पर लिच्छवि और मल्लकी राजाओ का वहाँ पर उपस्थित होना उनके जैनधर्मानुयायी होने का प्रमाण है।

महावीर के पश्चात्—

महावीर के पश्चात भी मगध के सम्राटो के साथ जैन धर्म का अच्छा सबध रहा है। अजातशत्रु ने वैशाली गणराज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। कासी–कोसल का मगध मे समावेश हो गया। ऐसे विशाल मगध साम्राज्य के नन्द राजाओ के जैन होने का वर्णन आता है। इसकी पुष्टि खारवेल के शिलालेख से भी होती है। आदि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त भद्रबाहु के शिष्य बने थे और उन्होने समाधिमरण किया था ऐसी भी एक परम्परा है। अशोक भी आरम्भ मे जैन थे और बाद मे बौद्ध हो गए। सप्रति एक प्रभावशाली जैन समाट् थे। उनके धर्मप्रचार के कारण उन्हे जैन अशोक कहा जाता है।

मौर्यकाल के पश्चात् आगे के वर्षो मे भारत मे जैन धर्म का प्रसार किस प्रकार हुआ उसका सप्रमाण चित्र जैनो की विभिन्न वाचनाओ से सामने आता है। ई० पू० चौथी शती मे प्रथम जैन वाचना पाटलिपुत्र मे स्थूलिभद्र के नेतृत्व मे हुई थी। तत्पश्चात् ईसा की चतुर्थ शताब्दी मे एक वाचना स्कन्दिलाचार्य के सभापतित्व मे मथुरा मे और उसी समय अन्य वाचना नागार्जुन के प्रमुखत्व मे वलभी मे हुई थी। अन्तिम वाचना देवर्द्धि

गणि के नेतृत्व मे पाँचवी-छठी शती मे फिर वलभी मे हुई थी। एक परम्परा के अनुसार बारहवर्षीय दुर्भिक्ष के कारण ई० पू० चौथी शताब्दी मे भद्रबाहु बहुत बडे मुनि समुदाय के साथ दक्षिण मे गए थे। इन वर्णनो से स्पष्ट है कि महावीर के पश्चात् दूसरी शती से जैन धर्म का प्रचार पश्चिम और सुदूर दक्षिण की तरफ होने लगा था।

सातवी शती के चीनी यात्री ह्वेनसाग के वर्णन से यह मालूम होता है कि उस समय मे वैशाली मे निर्ग्रन्थो की बहुत बडी सख्या विद्यमान थी। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायो के मुनि पश्चिम मे तक्षशिला और दिगम्बर निर्ग्रन्थ पूर्व मे पुण्ड्रवर्धन और समतट (बगाल) तक भारी सख्या मे पाए जाते थे। इस प्रकार उस समय तक जैन धर्म सारे उत्तर भारत मे पर्याप्त प्रमाग मे प्रचलित हो गया था।

प्रारभिक सघभेद

महावीर तथा उनके गणधरो के समय मे जैन सघ मे जो एकता रही वह बाद मे विच्छिन्न हो गई। जैसे जैसे धर्म का प्रचार विभिन्न प्रदेशो मे होता गया वैसे वैसे उसमे तरह तरह के लोगो का समावेश होता गया। समय के साथ परिस्थितियाँ भी बदलती गईं। इन कारणो से सघ मे विभेदात्मक प्रवृत्तियाँ बढती गई और विभिन्न गण, गच्छ और फिरको का प्रादुर्भाव होने लगा। इनमे सबसे बडा और विकट भेद श्वेताबर-दिगबरो का हुआ।

श्वेताबरो के अनुमार महावार के ६०९ वर्ष पश्चात् ई० स० ८२ मे बोटिक अर्थात् दिगम्बर सप्रदाय की उत्पत्ति मानी जाती है। दिगम्बरो के अनुसार श्वेताम्बरो का उत्पत्ति ई० स० ७९ मे मानी गई है। दोनो सप्रदायो को मान्य यह स्पष्ट भेद महावीर के ६०० वर्ष पश्चात् ईसा की प्रथम शताब्दी मे हुआ। वैसे भेद के लक्षण बहुत पूर्वकालीन प्रतीत होते हैं। महावीर के शिष्य गौतम और पार्श्वपरपरा के श्रमण केशी का सवाद इसी ओर सकेत करता है, हालाकि केशी ने महावीर के सिद्धान्तो को अपना लिया था। इसके पश्चात् हमे सात निह्नवो के सैद्धातिक भेदो का पता चलता है। प्रथम निह्नव जमाली तो महावीर का समकालीन था। उसके पश्चात् अन्य छह निह्नव हुए जिनकी कालावधि महावीर के पश्चात् ५८४ वर्ष तक की रही है। सिद्धान्त भेद होने के कारण वे महावीर से अलग पड गए। आठवे निह्नव वोटिक से दिगम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति मानी जाती है। महावीर के पश्चात् क्रमश गौतम, सुधर्मा और जबूस्वामी दोनो सम्प्रदायो को समान रूप से मान्य रहे हैं। उनके पश्चात् आचार्यपरम्परा मे भिन्नता आ जाती हे। श्वेताम्बरो के अनुसार पाटलिपुत्र की वाचना मे भद्रबाहु सम्मिलित नही हुए और स्थूलिभद्र की सहायता से ही वाचना की गई। दिगवरो के अनुसार अकाल पडने के कारण भद्रबाहु अपने शिष्य-समुदाय के साथ दक्षिण

की तरफ चले गए[1]। बाद मे लौटने पर उन लोगो ने देखा कि उत्तरी क्षेत्र के साधुसमुदाय मे परिस्थितिवश काफी शिथिलता आ गई है। उनको ये नई प्रवृत्तियाँ स्वीकृत नही हुई और इस प्रकार सम्प्रदाय-भेद प्रस्फुटित हो गया। वाचना मे भद्रबाहु का श्वेताम्बर मतानुसार शामिल नही होना भी एक आपत्तिजनक मुद्दा ही बना रहता है। इस कारण से वाचना मे कुछ कमी अवश्य ही रही क्योकि उन्हे ही सिर्फ चौदह पूर्वों का ज्ञान था। इस तरह से हम देखते हैं कि समय समय पर भेदात्मक प्रवृत्तियाँ सामने आती रही हैं, परतु स्पष्ट भेद तो ई० स० की पहली शताब्दी मे ही हुआ ऐसा दोनो सम्प्रदायो की मान्यता से प्रकट है। श्रुत की परपरा मौखिक रूप से आ रही थी। दो तीन वाचनाओ के द्वारा उसे समय समय पर नष्ट होने से बचाया गया। अन्तिम वाचना देवर्द्धि गणि के सभापतित्व मे छटी शती मे वलभी मे हुई। उस समय श्रुत को लिखित रूप दिया गया। इस लिखित रूप से श्वेताम्बरो और दिगम्बरो की भेद-भावना को और भी शक्ति मिली। इस प्रकार उत्तरोत्तर काल मे यह भेद प्रबल बनता ही गया और इसके फल-स्वरूप गुरु-परपरा भी भिन्न भिन्न हो गई तथा दोनो का साहित्य भी अलग अलग।

श्वेताम्बर-दिगम्बर के अलावा यापनीय नामक एक अन्य सम्प्रदाय भी प्रचलित हुआ जो दक्षिण मे ही पनपा। कहा जाता है कि दूसरी शती मे एक श्वेताम्बर मुनि श्री कलश ने कल्याण नगर मे यापनीय सघ की स्थापना की। यापनियो का उल्लेख बाद की कई शतियो तक साहित्य और लेखो मे होता रहा। यह सघ श्वेताम्बर-दिगम्बर का समन्वय रूप था। इसका मुख्य अड्डा कर्नाटक मे बना रहा। पाचवी-छठी शती मे वह वहा पर सुदृढता से जम गया था।

दिगम्बर सम्प्रदाय का विविध सघो मे विभाजन इस प्रकार हुआ है। उनका पुराने मे पुराना मूल सघ है जिसकी स्थापना दूसरी शताब्दी मे हुई थी। पुष्पदत और भूतबलि के गुरु आचार्य अर्हद्बलि ने मूल सघ की चार शाखाएँ स्थापित की थी। वे थी सेन, नदी, देव और सिह।

पाँचवी शती मे मदुरा (दक्षिण) मे वज्रनदि ने द्राविड सघ की स्थापना की थी। कुमारसेन मुनि ने सातवी शती के अन्त मे नदीतट ग्राम मे काष्ठा सघ को स्थापित किया। मदुरा (उत्तर) मे माथुर सघ की स्थापना नवी शती के अन्त मे रामसेन मुनि ने की थी। भिल्लक सघ का उल्लेख भी आता है। विन्ध्य पर्वत के पुष्कल नामक स्थान पर वीरचन्द्र मुनि ने दशवी शती के प्रारभ मे इस सघ की स्थापना की थी। इससे भीलो द्वारा जैन धर्म को अपनाने का प्रमाण मिलता है।

श्वेताम्बरो मे भी कई गच्छो की उत्पत्ति हुई। गणधर गौतम के पश्चात् पट्ट-परम्परा

---

१ श्वेताम्बरो की मान्यता है कि वे ध्यानार्थ नेपाल गए थे।

गणधर सुधर्मा ने सभाली थी । उनकी परम्परा मे छठे आचार्य यशोभद्र हुए । उनके दो शिष्य थे—सभूतिविजय और भद्रवाहु, जिनसे दो भिन्न शिष्य परपराएँ चली । सभूतिविजय की परम्परा मे नाइल, पोमिल, जयन्त और तापस शाखाएँ चल पडी तथा भद्रवाहु की परम्परा मे ताम्रलिप्तिका, कोटिवर्षिका, पौण्ड्रवर्धनिका और दासीखवडिका । सातवे आचार्य के शिष्यो की परम्परा मे तेरासिय शाखा तथा उत्तर वलिस्सहगण, उद्देहगण, चारणगण, उडुवाडियगण, वेमवाडियगण, माणवगण और कोटिकगण स्थापित हुए और उनका कई शाखाओ और कुलो मे विभाजन हुआ ।

आगे के वर्षो मे गच्छो की स्थापना होने लगी । उनमे से मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं : आठवी शताब्दि मे उद्योतन सूरि ने वृहद्गच्छ की स्थापना की । खरतरगच्छ का उद्भव ग्यारहवी शती मे हुआ । वारहवी शती मे अचलगच्छ का प्रादुर्भाव हुआ और इसी शती मे आगमिकगच्छ की स्थापना की गई । तपागच्छ १३वी शती मे स्थापित हुआ था ।

उत्तरकालीन सघभेद—

श्वेताम्वर-दिगम्वर भेद के कारण मुनियो के आचार पर काफी प्रभाव पडा तथा उसमे भेदभाव वढा । वाद मे अन्य सम्प्रदाय, गण या गच्छ उत्पन्न हु'' उन मे इतना आचार सवधी कोई भेदभाव नही होने पाया । श्वेताम्वरो मे वस्त्र की मात्रा वढने लगी । पहले दोनो सम्प्रदायो मे तीर्थंकरो की नग्न मूर्तियाँ समान रूप से प्रचलित थी, परतु सातवी-आठवी शती से श्वेताम्वर मूर्तियो मे कोपीन का चिह्न वनाया जाने लगा तथा मूर्तियो को वस्त्र व अलकारो से सजाने की प्रवृत्ति भी वढ गई । इस कारण इन दोनो के मन्दिर भी अलग अलग हो गए । दोनो सम्प्रदायो मे एक और प्रवृत्ति ने जन्म लिया । सामान्यत वर्षा ऋतु मे ही मुनि लोग एक स्थल पर ठहरते थे, परन्तु पाँचवी-छठी शती से स्थायी रूप से कुछ मुनि चैत्यालयो मे ठहरने लगे । इस कारण वे चैत्यवासी कहलाए और भ्रमणशील मुनि वनवासी । चैत्यवासियो मे आचारशिथिलता आ गई और धीरे धीरे मन्दिरो मे मठो तथा श्रीपूज्यो और भट्टारको की गद्दियाँ स्थापित हुई और परिग्रह की भावना ने जोर पकडा । एक स्थान पर ठहरने का कारण था पठन पाठन व साहित्य-रचना मे सुविधा प्राप्त करना । इससे एक लाभ अवश्य हुआ, अनेक शास्त्र-भडार स्थापित हुए । ये शास्त्र-भडार सारे भारत मे फैले हुए हैं, खास तौर से गुजरात, राजस्थान तथा मैसूर मे ।

१५वी शती मे मूर्तिपूजाविरोधी आन्दोलन शुरू हुआ और श्वेताम्वरो मे अलग सम्प्रदायो की स्थापना हुई । श्वेताम्वरो मे लोकाशाह ने इस मत की स्थापना की और वह आगे जाकर ढूढिया और स्थानकवासी सम्प्रदाय कहलाया । इसमे मन्दिरो के वजाय स्थानक और आगमो की विशेष प्रतिष्ठा है । उनको ३२ आगम मान्य हैं तथा अन्य

आगमो को वे स्वीकार नहीं करते। १८वी शती मे आचार्य भिक्षु ने स्थानकवासी सम्प्रदाय से अलग हो कर तेरापन्थी सम्प्रदाय की स्थापना की।

दिगम्बरो मे तारण स्वामी ने तारण पथ की स्थापना १६वी शती मे की, जो मूर्ति-पूजा का निषेध करता है। अन्य सम्प्रदाय मे १८वी शती मे तेरापन्थ और १८वी शती मे गुमानपथ की स्थापना हुई। उन मे बीस पथ और तोटापन्थ भी प्रचलित है।

उत्तर भारत मे जैन धर्म—

जैन धर्म की महावीर के काल तक प्राचीन समय मे क्या स्थिति रही तथा आगे किस प्रकार के सघभेद हुए उनका वर्णन करने के पश्चात् अब भारत के विभिन्न प्रदेशो मे जैन धर्म का आगामी शतियो मे किस प्रकार प्रसार हुआ उसका वर्णन किया जायगा।

विहार —

विहार के साथ जैन धर्म का सम्बन्ध इतिहासातीत काल से रहा है। कई तीर्थङ्करो ने उसी प्रदेश मे जन्म लिया तथा बीस तीर्थंकरो का निर्वाण सम्मेतशिखर पर हुआ। महावीर के स्थल स्थल पर विहार करने के कारण इस प्रदेश का नाम ही विहार (विहार) हो गया। वहाँ से उडीसा मे जाने का रास्ता मानभूम और सिंहभूम मे से था। इन दो प्रदेशो की सराक जाति जैन धम का अविच्छिन्न परम्परा की द्योतक है। मानभूम के 'पच्छिम ब्राह्मण' अपने को महावीर के वशज मानते है। वे अपने को प्राचीनतम आर्यों के वशज मानते हैं, जिन्होने अति प्राचीन काल मे इस भूमि पर पैर रखा था। वे वैदिक आर्यो के पूर्व इस तरफ आए थे। मानभूम और सिंहभूम जिलो मे जैनावशेष काफी सख्या मे प्राचीन काल से ग्यारहवी शती तक के मिलते है। सम्राट् खारवेल के काल मे मगध मे फिर से जैन धर्म ने जोर पकडा था। वह गया के पास बराबर पहाडी तक आया था। शहाबाद मे सातवी से नवी शताब्दी तक के पुरातत्त्व मिलते हैं। राष्ट्रकूटो और चन्देलो ने भी छोटा नागपुर मे राज्य करते समय जैनो के प्रति सहानुभूति रखी थी। ग्यारहवी शती मे राजेंद्र चोल ने बगाल से लौटते समय मानभूम के जैन मदिरो को ध्वस्त किया था।

बगाल—

महावीर ने स्वय लाढ (राध—पश्चिमी बगाल) मे भ्रमण किया था और वहाँ पर लोगो ने उनको काफी सताया था। पहले यह अनार्य प्रदेश माना जाता था। परन्तु महावीर के प्रभाव मे आने के पश्चात् इसे भी आर्य देश माना जाने लगा। प्रथम भद्रबाहु

का जन्म कोटि वर्ष (उत्तरी बगाल) मे ही हुआ था। भद्रबाहु के चार शिष्यो ने जिन चार शाखाओ की स्थापना की उनके नाम बगाल के स्थानीय नामो पर से ही दिए गए हैं, जैसे कोटिवर्षिका, ताम्रलिप्तिका, पौण्ड्रवर्धनिका और दासीखबडिका। तत्पश्चात् गुप्तकालीन पाँचवी शती का पूर्वी बगाल मे पहाडपुर से एक ताम्रलेख मिला है जिसमे जिनमूर्ति की प्रतिष्ठा का उल्लेख है। सातवी शती के चीनी यात्री ह्वेनसाग ने लिखा है कि बगाल के विभिन्न भागो मे निर्ग्रन्थ काफी सख्या मे विद्यमान थे। पालवश के राज्य काल की नवी और दशवी शताब्दियो के आसपास की प्रचुर मात्रा मे जैन मूर्तियाँ खुदाई मे निकली हैं जिनसे इतना तो स्पष्ट है कि उस काल मे भी जैन बस्ती वहाँ पर काफी मात्रा मे विद्यमान थी। पाल राजा स्वय बौद्धधर्मी थे परन्तु अन्य धर्मो के प्रति सहनशीलता रखते थे। उनके बाद सेनो के समय से जैन धर्म का वहाँ पर ह्रास होता गया। वे कट्टर ब्राह्मणवादी थे। पिछले करीब तीन सौ वर्षो से बगाल मे जैन लोग बसने लगे हैं परन्तु मूल बगाली जैनो की कोई अविच्छिन्न धारा नही दिखती।

उजैन और मथुरा—

उजैन के राजा और गणाधिपति चेटक के बीच महावीर के काल मे ही सम्बन्ध हो गया था। उसके पश्चात जैन धर्म की वहाँ पर क्या स्थिति रही स्पष्टत नही कहा जा सकता, परन्तु ई० पू० की प्रथम शताब्दी में वहाँ पर जैन लोग विद्यमान थे यह हमे गर्दभिल्ल और कालकाचार्य के कथानक से स्पष्ट मालूम होता है। गुप्तकालीन एक लेख के अनुसार उदयगिरि (विदिशा-मालवा) मे पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा कराई गई थी। मथुरा मे प्राप्त जैन पुरातत्त्व सामग्री से यह पता चलता है कि ई० पू० द्वितीय शताब्दी से ई० स० १०वी शताब्दी तक यह प्रदेश जैन धर्म का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना हुआ था। यहाँ के लेखो मे कुषाण राजाओ के उल्लेख हैं। गुप्त राज्य-काल के लेख भी प्राप्त हुए हैं। हरिगुप्ताचार्य तो गुप्तवश के ही पुरुष थे जो तोरमाण (छठी शती) के गुरु थे। मथुरा मे प्राप्त प्राचीन जैन स्तूप कोई कोई विद्वान् महावीर से भी पूर्व का बतलाते हैं। कहा जाता है कि इसकी स्थापना सुपार्श्वनाथ की स्मृति मे की गई थी और पार्श्वनाथ के समय मे इसका उद्धार किया गया था। मथुरा के पचस्तूपो का उल्लेख जैन साहित्य मे आता है। यही से पचस्तूपान्वय भी प्रारम्भ हुआ हो तो असम्भव नही।

गुजरात—

मथुरा के साथ वलभी मे चौथी शती के प्रथम पाद मे नागार्जुनीय वाचना तथा गुजरात के गिरनार पर्वत के साथ धरसेनाचार्य और पुष्पदन्त तथा भूतबलि (षटखडागम के रचनाकार) के सबध से यह प्रतीत होता है कि इस प्रदेश के साथ जैन धर्म का सबध

ईसा की प्रथम शताब्दियो से है। इससे पूर्व भी जैन धर्म का इस प्रदेश के साथ सबध रहा है। भगवान नेमिनाथ की चर्या और मुक्ति सौराष्ट्र के स्थलो से ही जुडी हुई है। वल्भी की द्वितीय तथा अन्तिम वाचना से सुस्पष्ट है कि पाँचवी-छठी शती मे जैन धर्म इस प्रदेश मे काफी सुदृढ हो गया था। सातवी शती के दो गूर्जर नरेशो का इस धर्म से अनुराग था ऐसा उनके दान पत्रो से सिद्ध होता है। वनराज चावडा-राजवश के सस्थापक थे। उनसे जैन धर्म को यहाँ पर प्रोत्साहन मिला। मूलराज का बनाया हुआ अणहिलवाड का जैन मन्दिर आज भी विद्यमान है। राजा तोरमाण के गुरु हरिगुप्ताचार्य के प्रशिष्य शिवचन्द्र के अनेक शिष्यो ने गुजरात मे जैन धर्म का प्रचार किया तथा अनेक जैन मन्दिर बनवाए।

सोलकी राजा भीम के मत्री विमलशाह ने ११वी शती मे आबू पर जो मदिर बनवाया वह अपनी कला के लिए जगत्प्रसिद्ध है। उन्होने ही चन्द्रावती नगरी बसाई थी। इससे राजा भीम की जैन धर्म के प्रति कितनी सहानुभूति रही होगी यह प्रकट होता है। सिद्धराज और कुमारपाल के समय मे तो जैन धर्म का यहाँ पर सुवर्णयुग रहा। उसी समय हेमचन्द्राचार्य के कारण जैन धर्म की जो सेवा हुई उसका प्रभाव सदा के लिए रह गया और गुजरात जैन धर्म का एक बलशाली और समृद्ध केन्द्र बन गया। १३वी शती मे वस्तुपाल और तेजपाल नामक श्रेष्ठिबधुओ ने आबू पर एक मदिर बनवाया जो अपनी कला के लिए अद्वितीय है।

शत्रुंजय और गिरनार के तीर्थक्षेत्रो को भी अलकृत करने मे अनेक सेठो और राजाओ का योगदान रहा है। खभात का चितामणि पार्श्वनाथ मन्दिर भी १२वी शती मे बनवाया गया था और तेरहवी शती के अन्त मे इसका जीर्णोद्धार किया गया था। राजस्थान के अनेक धर्मानुयायियो ने दान देकर इस मदिर की समृद्धि बढाई है। तेरहवी शती मे दानवीर सेठ जगडूशाह हुए। वे कच्छ प्रदेश के रहने वाले थे। उन्होने गिरनार और शत्रुंजय गिरि का सघ निकाला था। वे गरीबो को काफी आर्थिक सहायता करते थे और एक भारी दुष्काल मे राजा वीसलदेव के काल मे उन्होने आसपास के राजाओ को सहायता करके प्रजा को भूख से मरने से बचाया था। पेथडशाह भी इसी समय के आसपास हुए थे। पन्द्रहवी शती का समय सोमसुन्दर-युग कहा जाता है। आचार्य सोमसुन्दर ने जैन धर्म की प्रभावना के लिए जैनो को काफी प्रोत्साहित किया था। पन्द्रहवी शती मे ही लोकाशाह ने स्थानकवासी सम्प्रदाय की स्थापना की थी। सोलहवी शती मे हीरविजयसूरि जैसी एक महान विभूति का जन्म पालनपुर मे हुआ था। उनका अकबर पर अच्छा प्रभाव पडा था जिससे जैन धार्मिक उत्सवो के दिनो मे पशुहिसा-निषेध के फरमान बादशाह ने जारी किए थे। सोलहवी शती जैनो मे हैरक युग के नाम से प्रसिद्ध है।

राजस्थान

राजस्थान मे जैन धर्म का अस्तित्व मौर्य काल से पूर्व का पाया जाता है। अजमेर के निकट बडली (नगरी) से जो शिलालेख मिला है वह भारत का प्राचीनतम लेख है। उसमे महावीर-निर्वाण के ८०वे वर्ष का उल्लेख है। इस प्रकार ई० पू० पाँचवी शती मे वहा पर जैन धर्म विद्यमान था। चित्तौड के पास मध्यमिका नामक जो स्थान है उसके नाम से ई० पू० तृतीय शती मे एक मुनिशाखा की स्थापना का उल्लेख जैन साहित्य मे मिलता है। मालवा मे कालिकाचार्य के द्वारा शको के लाने का उल्लेख है। उस समय अर्थात् ई० पूर्व प्रथम शताब्दी मे राजस्थान का दक्षिणी पूर्वी भाग मालवा मे शामिल था। ईसा के पूर्व और पश्चात की एक-दो शताब्दियो मे मथुरा मे जैन धर्म बहुत सुदृढ था। इसके आधार से यह माना जाता है कि उस समय राजस्थान के उत्तर-पूर्वी भाग मे भी जैन धर्म प्रचलित होगा। बून्दी के पास केशोरायपट्टन मे जैन मदिर के भग्नावशेषो की सभावना पाँचवी शती की की जाती हे। सातवी शती मे ह्वेनसाग के वर्णन से भिन्नमाल और वैराट मे जैनो का अस्तित्व प्रकट होता है। वसन्तगढ (सिरोही) मे ऋषभदेव की धातु की मूर्ति पर छठी शती का लेख विद्यमान है। आठवी शती के हरिभद्रसूरि चित्तौड के निवासी थे। वीरसेनाचार्य ने पटखडागम तथा कषायप्राभृत एलाचार्य से ८वी शती मे चित्तौड मे ही सीखा था। इसी शती मे उद्योतनसूरि ने आबू पर बृहद्गच्छ की स्थापना की थी।

राजपूत राजा मुख्यत विष्णुभक्त और शैव थे फिर भी जैन धर्म के प्रति उनका सौहार्द हमेशा बना रहा है।

प्रतिहार राजा वत्सराज (८वी शती) के समय का ओसियाँ का महावीर का मन्दिर आज भी विद्यमान है। मडौर के राजा कक्कुक ने नवी शती मे एक जैन मन्दिर बनवाया था। कोटा के पास की जैन गुफाएँ ८वी-नवी शती की हैं तथा ८वी से ११वी शती के जीर्ण मन्दिर भी देखने को मिलते हैं। आघाट (उदयपुर) का पार्श्वनाथ मदिर एक मन्त्री के द्वारा १०वी शती मे बनवाया गया था। सिद्धर्षि उसी शती मे श्रीमाल मे जन्मे थे। लोदोरवा (जैसलमेर) मे राजा सागर के पुत्रो ने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था। परमारकालीन १०वी शती मे आबू के राजा कृष्णराज के समय मे दियाना (सिरोही) मे एक जैनमूर्ति की स्थापना की गई थी। उसी समय के हथुँडी (बीजापुर) के राठौडो से जैन धर्म को सहायता मिलने के उल्लेख हैं। विदग्धराज ने तो एक जैन मन्दिर बनवाया था। छठी से बारहवी शती तक शूरसेनो का राज्य भरतपुर पर था और उस समय के कुछ राजा जैन थे। इस काल मे वहाँ पर बहुत सी प्रतिष्ठाएँ हुई। अलवर के मन्दिरो के शिलालेख ११वा-१२वी शती के गुर्जर प्रतिहारो के काल के प्राप्त होते हैं।

चौहान पृथ्वीराज प्रथम ने १२वी शती के प्रारम्भ मे रणथभौर के जैन मदिरो पर सुवर्ण कलश चढाए थे। उसके वशजो- का भी जैन धर्म के प्रति सौहार्द बना रहा। बीसलदेव ने एकादशी को कतलखाने बन्द करवा दिए थे। जिनदत्तसूरि बारहवी शती मे हुए थे। उनका स्वर्गगमन अजमेर मे हुआ था। वे मरुधर के कल्पवृक्ष माने गए हैं। पृथ्वीराज द्वितीय ने पार्श्वनाथ मन्दिर की सहायता के लिए बिजोलिया नामक गाव दान मे दिया था।

वनराज चावडा ने भिन्नमाल से जैनो को बुलाकर पाटन मे बसाया था। हेमचद्र के काल मे राजस्थान मे भी जैन धर्म ने काफी प्रगति की। सोलकी कुमारपाल ने पाली (जोधपुर) के ब्राह्मणो को यज्ञ मे मास के बदले अनाज का उपयोग करने के लिए बाध्य किया था। उसने जालौर मे एक जैन मदिर बनवाया था। आबू के जैन मदिर भी उसी के काल मे बने थे तथा सिरोही का डबाणी गाँव उनकी सहायतार्थ दान मे दिया गया था।

सेवाडी के शिलालेखो से मालूम होता है कि वहाँ के राजघराने १०वी से १३वी शती तक जैन सस्थाओ को सहायता करते रहे। इसी प्रकार नाडोल, नाडलाई और साडेराव की जैन सस्थाओ को भी मदद मिलती रही। कुमारपाल के अधीन नाडौल के चौहान अश्वराज ने जैन धर्म स्वीकार किया था। १२वी-१३वी शतियो मे जालौर के जैनो को वहाँ के सामन्तो से सहायता मिलने के लेख विद्यमान हैं। मेवाड की एक रानी ने १३वी शती मे चित्तोड मे पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था। इसी शती मे जगचन्द्रसूरि को मेवाड के राणा ने तपा की पदवी दी थी और उनका गच्छ तपागच्छ कहलाया। बारहवी से चौदहवो शती मे भाडोली, चन्द्रावती, दत्तानी और दियाणा (सिरोही जिला) के मदिरो के लिए भूमिदान के लेख मिलते हैं।

कालन्द्री (सिरोही) के पूरे सघ ने १४वी शती मे ऐच्छिक मरण को अपनाया था। जिनभद्रसूरि ने १५वी शती मे जैसलमेर मे बृहद्ज्ञान भण्डार स्थापित किया था। राजस्थान मे शास्त्र को सुरक्षित रखने का तथा उसको अनेक प्रतियाँ करवाने का श्रेय इन्ही को है। १५वो शती मे राणा कुम्भा ने सादडी मे एक जैन मदिर बनवाया था। उन्ही के काल मे जैन कीर्तिस्तम्भ चित्तौड के किले मे बना था। राणकपुर का जैन मन्दिर भी उसी समय की रचना है जो स्थापत्य कला का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है। राणा प्रताप ने तो हीरविजयसूरि को मेवाड मे बुलाया था। अकबर के पास जाते समय वे सिरोही मे ठहरे थे और उन्हे सूरि की पदवी से वहाँ पर ही विभूषित किया गया था। श्वेताम्बर लोकागच्छ के प्रथम वेषधारी साधु भाणा थे जो अरठवाडा (सिरोही) के रहने वाले थे। वे १४७६ मे साधु बने थे। तेरापन्थ के प्रवर्त्तक भीकमजी भी मेवाड के ही थे जो १८वी शती मे हुए।

१७वी शती मे औरगजेब के काल मे कोटा मे कृष्णदास ने एक जैन मन्दिर बनाकर बडी हिम्मत दिखाई और जैनो के प्रभाव का अच्छा परिचय दिया। समयसुन्दर १६वी-१७वी शती मे हुए। वे राजस्थानी के अग्रलेखक माने गए हैं। दिगम्बर तेरापन्थ के सस्थापक अमरचन्द सागानेर के थे, जिनका काल १७वी शती का है। १८वी शती मे जयपुर के गुमानीराम ने गुमानपथ की स्थापना की थी।

पन्द्रहवी शती से उन्नीसवी शती तक राजस्थान मे जैन धर्म का जो प्रभाव रहा वह सक्षेप मे इस प्रकार अकित किया जा सकता है स्थल-स्थल पर मन्दिर बनवाना, प्रतिष्ठाएँ करना, राजपुरुषो से अनुदान के रूप मे जमीन प्राप्त करना इत्यादि, स्तूप, स्तम्भ, पादुकाओ तथा उपाश्रयो की स्थापना और मन्दिरो का जीर्णोद्धार करना। इसी काल मे राजस्थानी और हिन्दी के कई साहित्यकार भी हुए। जयपुर के कछवाहो के अधीन करीब ५० दीवान जैन थे जिनके कारण जैन धर्म को सभी क्षेत्रो मे प्रोत्साहन मिला।

मुस्लिम आक्रमण के कारण जैन मन्दिरो की मस्जिदे भी बनाई गई। १२वी शती का अजमेर का अढाई दिन का झोपडा व साँचौर और जालौर की मस्जिदे जैन मन्दिर ही थे। जीरावला पार्श्वनाथ मन्दिर को भी इसी प्रकार क्षति हुई। १६वी शती मे बीकानेर के मन्दिर पर भी आक्रमण हुआ था। कोटा के शाहबाद मे इसी प्रकार औरगजेब ने एक मस्जिद बनाई थी।

राजकारण मे जैनो के योगदान के भी कई उदाहरण प्राप्त हैं। कुमारपाल के राज्यकाल मे विमलशाह आबू के प्रतिनिधि थे। जालौर का उदयन खम्भात का राज्यपाल था। १६वी शती के वीर तेजा गदहीया ने जोधपुर का राज्य शेरशाह से राजा मालदेव को वापिस दिलवाया था। दीवान मुहणोत नैनसी, रत्नसिह भण्डारी, अजमेर के शासक धनराज और कूटनीतिज्ञ इन्द्रराज सिघी के नाम भी उल्लेखनीय हैं। करमचन्द बीकानेर के राजा का एक दण्डनायक था। मेवाड के आशाशाह ने उदयसिह को शरण दी थी। भामाशाह राणा प्रताप के दीवान थे जिन्होने प्रताप की आपत्ति काल मे अद्भुत सहायता की थी। ११वी शती के आमेर के दीवान विमलदास युद्ध मे लडते लडते मरे थे। दीवान रामचन्द्र ने आमेर को मुगलो से वापिस लिया था। उनका नाम सिक्को पर भी छपा था।

इस प्रकार यह साबित होता है कि हिन्दू राजाओ के अधीन होते हुए भी राजस्थान मे जैनो का प्रभाव और प्रचार राजपूत काल मे काफी बढा चढा था और उसी परम्परा के कारण राजस्थान मे अब भी जैन मत के अनुयायी काफी सख्या मे पाये जाते हैं।

दक्षिण भारत मे जैन धर्म—

उत्तर भारत मे अकाल पड जाने के कारण भद्रबाहु अपने विशाल मुनि सघ के साथ

श्रवण बेलगोला गये। मौर्य राजा चन्द्रगुप्त ने उनके ही शिष्यत्व मे वहाँ पर समाधिमरण किया था। परम्परा से यह भी जानकारी मिलती है कि भद्रबाहु ने अपने शिष्य विशाख मुनि को आगे दक्षिण मे चोल और पाण्ड्य देशो मे धर्मप्रचारार्थ भेजा था। इस घटना के बल पर भद्रबाहु को दक्षिण देश मे जैन धर्म के प्रथम प्रचारक का श्रेय दिया जाता है। परन्तु एक विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि भद्रबाहु के पूर्व उस प्रदेश मे जैनियो का बिल्कुल अभाव था तो इतने बडे मुनिसघ ने किन लोगो के आधार व आश्रय पर अकस्मात एक अपरिचित देश मे जाने की हिम्मत की होगी। मालूम होता है कि उनके पहले भी वहा पर जैन धर्म विद्यमान था और उसके प्रमाण भी मिलते हैं। अशोक के समय मे बौद्ध धर्म का प्रचार लका मे उनके पुत्र-पुत्री द्वारा प्रारम्भ किया गया था, परन्तु जैन धर्म का प्रचार तो उसके पहले ही लका मे हो चुका था। अजैन साहित्य इसका साक्षी है। पालि महावश तथा दीपवश के अनुसार पाण्डुकाभय के राज्यकाल मे अनुराधपुर मे निर्ग्रन्थो के लिए निवासस्थान बनाये गये थे। वह काल ई० पू० पाँचवी शती का है। इतने प्राचीन काल मे लका मे जैन धर्म कहाँ से पहुँचा होगा। इसका उत्तर खोजते समय स्वाभाविक तौर से यही कहना पडता है कि ई० पूर्व पाचवी और चौथी शती मे कलिग-आन्ध्र तथा तामिल देश से होता हुआ वह लका मे आया होगा। अत भद्रबाहु दक्षिण देश मे जैन धर्म के आदि प्रवर्तक नही वरन् उसको पुन जाग्रत करने वाले थे। जिस प्रकार एक धारा आन्ध्र देश से दक्षिण देश मे गई उसी प्रकार भद्रबाहु के काल से दूसरी धारा कर्नाटक से दक्षिण देश को जैन धर्म से आप्लावित करती रही। इस धारा का ईसा की प्रथम १०–१२ शताब्दियो तक दक्षिण मे अविच्छिन्न स्रोत बहता रहा है। वहाँ के अनेक ध्वसावशेषो, मन्दिर व मूर्तियो से यही सिद्ध होता है कि यह धर्म वहाँ पर लोकप्रिय रहा। पूरे के पूरे राजवशो के साथ इसका जिस प्रकार दीर्घकालीन सबध रहा है वैसा उत्तर भारत मे भी नही रहा। इस दृष्टि से दक्षिण देश के प्राचीन इतिहास मे जैन युगो के दर्शन किए जा सकते हैं।

द्रविड़ प्रदेश—

चन्द्रगुप्त के प्रपौत्र सम्प्रति ने जैन धर्म के प्रचार मे जो योगदान दिया था उसके कारण तामिल (द्राविड) देश मे भी जैन धर्म को बल मिला था ऐसी साहित्यिक परपरा बतलाती है। इस प्रसग मे ई० पू० दूसरी-तीसरी शती के ब्राह्मीलिपि के शिलालेख तथा ईसा की चौथी-पाँचवी शती की चित्रकारी उल्लेखनीय है[१]। रामनद (मदुरा), तिन्नावली

१ Studies in South Indian Jainism I p 33 & Jainism in South India, pp 28, 31, 51, 53.

और सितन्नवासल की गुफाओ मे उपर्युक्त जैन प्रमाण मिलते हैं, जिनसे मालूम होता है कि ये स्थल जैन श्रमणो के केन्द्र थे।

ईसा की करीब १५ शताब्दियो तक जैन धर्म ने तामिल लोगो के साहित्य और सस्कृति के साथ गहरा सबध बनाए रखा है। ईसा की प्रथम शताब्दियो मे तामिल देश के साहित्य पर जैनो का प्रभाव तो सुस्पष्ट है। तामिल काव्यकुरल और तोलकाप्पियम इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। कुरल के पश्चात् का अधिकतर शिष्ट साहित्य (Classical) जैनो के आश्रय मे ही फला फूला। पाँच प्राचीन महाकाव्यो मे से तीन कृतियाँ तो जैनो की हैं। सीलप्पदिकारम् (दूसरी शती), बलयापदि और चिन्तामणि (१०वी शती) ये तीन जैन ग्रथ हैं। अन्य काव्यो मे नोलकेशी, बृहत्कथा, यशोधरा काव्य, नागकुमार काव्य, श्रीपुराण आदि का नाम लिया जा सकता है। बौद्ध काव्य मणिमेकलइ से भी प्राचीन काल मे तामिल देश पर जैनो के प्रभाव और वैभव का काफी दिग्दर्शन होता है।

कुरल के अनुसार मैलापुर तथा महाबलिपुर मे जैनो की बस्तियाँ थी। दूसरी शती मे मदुरा जैन धर्म का मुख्य केन्द्र था। समन्तभद्र का इस नगरी से जो सम्बन्ध रहा है वह सुविदित है। पाचवी शती मे ही वज्रनन्दी ने यहाँ पर द्राविड सघ की स्थापना की थी। काची प्रदेश के चौथी से आठवी शती तक के पल्लव राजाओ मे बहुत से जैन थे। ह्वेनसाग ने सातवा शती मे काची को जैनो का अच्छा केन्द्र माना है। सातवी-आठवी शती के जैन शिलालेख आरकोट के पास पचपाडव मलय नामक पहाडो पर प्राप्त हुए हैं।

पाँचवो शती के पश्चात् कलभ्र राजाओ का कधिकार पाण्डच, चोल और चेर राज्यो पर हो गया था। यह जैनो का उत्कृष्ट काल था क्योंकि कलभ्र राजाओ ने जैन धर्म अपनाया था। इसी समय जेन नालदियार की रचना हुई थो। इस प्रकार पाँचवी से सातवी शताब्दी तक जैनो का राजनोति पर भी काफी प्रभाव बना रहा। महान् तार्किक अकलकाचार्य आठवी शती मे ही हुए थे। तत्पश्चात् शैव और वैष्णव मतो के प्रचार से जैन धर्म अवनति की ओर अग्रसर होने लगा।। सातवी शती का पल्लव राजा महेन्द्र वर्मा जैन था, परन्तु बाद मे शैव हो गया। पाण्डच राजा सुन्दर पक्का जैनी था, परन्तु उसकी रानी और मत्री शैव थे, उनके कारण तथा शैव भक्त कवि सम्बन्दर के प्रभाव से वह शैव हो गया। शैव नायनारो के कारण सातवी-आठवी शती से जैन धर्म को काफी धक्का पहुंचा।

आठवी शती से वैष्णव अल्वारो ने भी जैनो का जबरदस्त विरोध करना शुरू कर दिया था। फिर भी ८वी से १२वी शती तक के राजाओ ने निष्पक्ष भाव से जैनो के प्रति सहानुभूति भी बर्ती थी। सितन्नवासल मे ८वी ९वी शताब्दी के जैन शिलालेख तामिल

भाषा मे प्राप्त होते हैं। नवी शती मे ट्रावनकोर का तिरुच्छा नट्टुमलै श्रमणो के पर्वत के रूप मे विख्यात था। १०वी-११वी शती मे चोल और पाण्ड्य देशो मे सर्वत्र जैन लोग विद्यमान थे। १३वी शती मे उत्तर आरकोट मे जैनो के अस्तित्व के बारे मे अच्छे प्रमाण मिलते हैं। तिरुमलै स्थान के १०वी–११वी और १४वी शती तक के शिलालेखो से मालूम होता है कि वह उस समय मे जैन केन्द्र बना हुआ था। १५वी–१६वी शती का बडा से बडा कोशकार मडलपुरुष हुआ जिसने निघटु चूडामणि की रचना की।

आन्ध्र प्रदेश (पूर्वकालीन दक्षिण उड़ीसा, कलिंगादि)

कलिंग देश (तोसलि) मे स्वय महावीर गए थे। नन्द राजाओ के समय मे कलिंग-उडीसा मे जैनो का काफी प्रचार हो चुका था। खारवेल के समय ई०पू० दूसरी शती मे यहा पर जैन धर्म को बहुत प्रोत्साहन मिला क्योकि वे स्वय जैन थे। यहा के उदयगिरि–खण्डगिरि की गुफाओ मे ०वी शती तक के जैन शिलालेख मिलते हैं। सातवी शती मे ह्वेनसाग ने कलिंग देश को जैनो का गढ बताया है। उसके बाद सोलहवो शताब्दी मे भी उस क्षेत्र के राजा प्रताप रुद्रदेव के जैन-सहिष्णु होने के उल्लेख हैं।

सम्राट् सम्प्रति के द्वारा आन्ध्र प्रदेश मे जैन धर्म को फैलाने के उल्लेख जैन साहित्य मे आते हैं। ईसा की दूसरी शती मे कुडापा मे सिहनदि को दो राजकुमार मिले थे जिन्होने कर्नाटक के गगवश की स्थापना की थी। अत उस समय इस प्रदेश मे जैन धर्म काफी प्रचलित होगा। कालकाचार्य के कथानक से राजा सातवाहन हालक की जैन धर्म के प्रति सहानुभूति होने की झलक मिलती है। पूज्यपाद के पाचवी शती मे आन्ध्र जाने के उल्लेख मिलते हैं। पूर्वी चालुक्यो ने सातवी शती मे इस प्रदेश मे जैन धर्म को प्रगति प्रदान की थी। उस समय विजयानगर के पास रामतीर्थ जैनो का केन्द्र बना हुआ था। आन्ध्र के कोमटी एक समृद्ध वणिक जाति है। वे मैसूर से इधर आए थे। गोमटेश्वर के भक्त होने के कारण गोमटी से वे कोमटी कहलाने लगे।

आन्ध्र मे जैन साहित्य उचित मात्रा मे उपलब्ध नही हुआ है। मालूम होता है, वह नष्ट कर दिया गया है। क्योकि पुराने मे पुराने तेलगु महाभारत मे नन्नय भट्टनेने अपने पूर्व के लेखको का स्मरण क्यो नही किया। इसका कारण यह है कि उसके पूर्व के कवि जैन थे। इसके अतिरिक्त कर्नाटक के पम्प और नागवर्म जैसे बडे से बडे कवि या तो आन्ध्र देश के थे या वहाँ से सम्बन्धित थे। इसलिए आन्ध्र मे जैन साहित्य की रचना अवश्य हुई होगी जैसा कि तामिल और कन्नड भाषाओ मे सृजन हुआ है। सस्कृत जैनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की रचना १४वी शती मे वेरगल–अय्यपार्य के द्वारा की गई थी।

कर्नाटक

भद्रबाहु के श्रवण बेलगोल जाने का उल्लेख ऊपर कर आए हैं। वही पर सम्राट

चन्द्रगुप्त ने समाधिमरण प्राप्त किया था। उस समय से जैन धर्म का प्रवेश इस प्रदेश मे हो चुका था।

ईसा की दूसरी शताब्दी से तेरहवी शती तक जैन धर्म कर्नाटक का प्रधान धर्म बन कर रहा है। वहाँ के जनजीवन, साहित्य, सस्कृति, कला और दर्शन पर इस धर्म का जो नाना क्षेत्रीय प्रभाव है वह अद्वितीय है। बडे बडे राजा-महाराजा, सामन्त, श्रेष्ठि और यहाँ तक कि सामान्य प्रजा मे इस देश के कोने कोने मे जैन धर्म के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। तामिल साहित्य और भाषा के उद्धार और विकास मे जैनो ने जो योग दिया उससे भी अधिक कन्नड भाषा और साहित्य के विकास मे जैनो की विशेष देन रही है। इस साहित्य के किसी भी विभाग जैसे आगम, पुराण, सिद्धान्त, काव्य, छन्द शास्त्र, व्याकरण, नीतिशास्त्र, भूगोल, गणित, सगीत इत्यादि को जैनो ने अछूता नही रखा। जैन कन्नड साहित्य की शैली का प्रभाव आन्ध्र देश पर भी पडे बिना नही रहा।

द्वितीय शती मे गगवश की स्थापना करने मे जैन आचार्य सिहनदी का प्रमुख हाथ रहा है। माधव कोनगुणिवर्मा इस वश के आदि सस्थापक हुए। पाँचवी शती के पूज्यपाद दुर्विनीत के राजगुरु होने के उल्लेख मिलते हैं। शिवमार, श्रीपुरुष, मारसिह इत्यादि नरेशो ने अनेक जैन मन्दिर बनवाए तथा मुनियो को दान दिया। मारसिंह (१०वी शती) ने तो जैन समाधिमरण किया था। वादि धगल इसी शती के तार्किक थे। राचमल्ल (चतुर्थ) के मन्त्री चामुण्डराय ने गोमटेश्वर की जो विशाल और अद्भुत मूर्ति बनवाई वह अपनी कला के लिए जगद्विख्यात है। चामुण्डराय पर नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का प्रभाव उल्लेखनीय है।

इस वश के अनेक राजा तथा उनके सामन्त, मत्री और सेनापतियो ने जैन धर्म के विविधमुखी कार्यों मे योगदान दिया। गग महादेवी, पपादेवी, लक्ष्मीमती इत्यादि राज-महिलाओ के नाम इस प्रसग मे लेने योग्य हैं। गगो की समस्ति के बहुत पहले ही कदम्बो और राष्ट्रकूटो ने जैन धर्म को अपना लिया था।

वनवासी के कदम्बो मे ब्राह्मण धर्म प्रचलित था फिर भी कुछ राजा जैनधर्मी थे। उन मे चौथी शती के काकुस्थवर्मा का नाम उल्लेखनीय है। पाँचवी शती के श्रीविजय शिवमृगेश वर्मा और श्रीमृगेश द्वारा जैनो के श्वेताम्बर, निर्ग्रन्थ, यापनीय और कूर्चक आदि सघो को अलग अलग भूमिदान करने के शिलालेख प्राप्त होते हैं। हरिवर्मा, रविवर्मा, देववर्मा इत्यादि के द्वारा भी समय समय पर मन्दिरो व सघो के लिए गाँव और भूमिदान करने के उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार इस प्रदेश मे चौथी से छठी शती तक जैन धर्म लोकप्रिय रहा और राज्य-सम्मान प्राप्त करता रहा।

सातवी शती से राष्ट्रकूटो का काल प्रारम्भ होता है। इस वश के साथ जैनो का बहुत निकट का सम्बन्ध रहा है। दन्तिदुर्ग खड्गावलोक ने आठवी शती मे अकलक देव को सम्मानित किया था। अमोघवर्ष प्रथम के गुरु जिनसेन थे जिन्होने आदिपुराण लिखा है। उनकी प्रश्नोत्तर रत्नमालिका से प्रतीत होता है कि उन्होने राज्य त्याग कर जैन दीक्षा ग्रहण की थी। उनकी एक अन्य रचना कन्नड मे अलकार शास्त्र पर पाई जाती है। शाकटायन व्याकरण पर अमोघवृत्ति नामक टीका इनके ही नाम पर आधारित है। दशवी शती मे जक्कियब्बे एक वीरागना तथा सफल शासनकर्त्री थी, जिसने समाधिमरण किया था। इस वश के अन्य राजाओ की जैन धर्म पर महती श्रद्धा रही है। गुणभद्र, इन्द्रनन्दि, सोमदेव, पुष्पदन्त, पोन्न इत्यादि कवियो का आविर्भाव इन्ही के काल मे हुआ था। राष्ट्रकूटो की राजधानी मान्यखेट जैनो का केन्द्र बन गया था क्योकि इस वश के राजाओ का इस धर्म के प्रति विशिष्ट प्रेम रहा है। अन्तिम राजा इन्द्र चतुर्थ ने श्रवणबेलगोला मे भद्रबाहु की तरह समाधिमरण किया था।

राष्ट्रकूटो के पश्चात् पुन पश्चिमी चालुक्यो का कर्नाटक पर अधिकार हो गया था। परन्तु इसके पूर्व भी चालुक्यो का जैन धर्म के प्रति प्रेम बना हुआ था। ऐहोल का रविकीर्ति का शिलालेख अपनी काव्यात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध है। यह सातवी शती के पुलकेशी द्वितीय के समय का है। उस स्थान का मेघुटी मन्दिर रवीकीर्ति ने बनवाया था। बादामी और ऐहोल की जैन गुफाओ की रचना इसी समय मे हुई थी।

पश्चिमी चालुक्य वश के सस्थापक तैलप द्वितीय (१०वी शती) को जैन धर्म के प्रति अच्छी आस्था थी। इसी के आश्रय मे कविरत्न रन्ण ने अजितपुराण कन्नड भाषा मे लिखा था। दशवी शती की एक सेनानायक की पुत्री अत्तिमब्बे अपनी दानशीलता के लिए उल्लेखनीय है। ११वी शती मे इसी प्रकार का सहारा जैनो को मिलता रहा। वादिराज का पार्श्वनाथचरित उसी समय का है। श्रीधराचार्य की ज्योतिषविषयक कृति कन्नड मे सबसे पुरानी रचना है, जो सोमेश्वर प्रथम के समय मे रची गई थी। इस वश के अन्य राजाओ ने भी जैन धर्म की उन्नति के लिए पर्याप्त सहायता की। इस प्रकार यह राजवश जैन धर्म का सरक्षक रहा तथा साहित्यसृजन मे इसने काफी प्रोत्साहन दिया। जैन मन्दिरो और सस्थाओ को दान के जरिये इनके द्वारा बल मिलता रहा।

होयसल राजवश को ११वी शती मे सस्थापित करने का श्रेय एक जैन मुनि को ही है। मुनि वर्धमानदेव का प्रभाव विनयादित्य के शासन प्रबध पर काफी बना रहा। कितने ही अन्य राजाओ के द्वारा जैन सस्थाओ को लगातार सहायता मिलती रही है। कुछ राजाओ के गुरु जैनाचार्य रहे हैं। १२वी शती के नरेश विष्णुवर्धन पहले जैन थे परन्तु बाद मे रामानुजाचार्य के प्रभाव मे आकर विष्णु धर्म स्वीकार किया। उस समय से विष्णु धर्म

का प्रभाव बढता गया, फिर भी शिलालेखो से उनका जैन धर्म के प्रति प्रेम झलकता है। उनकी रानी शातलदेवी ने तो आजन्म जैन धर्म का पालन किया। विष्णुवर्धन के कई सेनापति और मन्त्री जैन धर्म के उद्धारक बने रहे। गगराज, उनकी पत्नी लक्ष्मीमती, वोप्प, मरियाने भरतेश्वर आदि इस सबध मे उल्लेखनीय हैं। उसके बाद नरसिह प्रथम, वीर बल्लाल, नरसिंह तृतीय तथा अनेक राजाओ ने जैनमन्दिर बनाए, दान दिया तथा जैन धर्म को समृद्धिशाली बनाया। इस प्रकार बारहवी तेरहवी शती तक जैनो का अच्छा प्रभाव रहा है। नरसिह प्रथम के चार सेनानायक तथा दो मन्त्री जैन थे। वीर बल्लाल के शासन मे भी कितने ही जैन मन्त्री और सेनानायक थे।

इनके अलावा छोटे-छोटे राजघरानो ने भी ८वी से १३वी शती तक जैन धर्म का पोषण किया। इस कारण यह धर्म सार्वजनिक बन सका तथा सभी दिशाओ से इसको बल मिलता रहा। ऐसे घरानो मे सान्तर नरेश, कागत्व और चागत्वो तथा करहाड के शील-हार राजपुरुषो के जैनोपकारी कार्यो को गिनाया जा सकता है। इनके साथ साथ अनेक सामन्त, मन्त्री, सेनापति, सेठ, साहूकार और कई महिलाओ के धर्मप्रभावना के विविध तरह के वैयक्तिक कार्यो को ध्यान मे लिया जा सकता है।

विजयानगर काल

विजयानगर साम्राज्य की स्थापना १४वी शती मे हुई। उस समय जैन धर्म अस्वस्थ अवस्था मे था। परन्तु सहनशीलता और धर्मनिरपेक्षता की जो उदार नीति वहाँ के राजाओ ने अपनाई इससे जैन धर्म को काफी राहत मिली। बुक्कराय प्रथम जैनो के शरणदाता थे। सेनानायक इरुगप्प जैन था, उसके कारण जैन धर्म को १४-१५वी शती मे प्रोत्साहन मिला। श्रवणबेलगोला, बेलूर, हलेबीड इत्यादि स्थानो मे अन्य धर्मावलबियो ने जैनो के साथ प्रेमभावना बढाई। पन्द्रहवी शती के देवराव प्रथम तथा द्वितीय ने जैनो को सहायता दी थी।

विजयानगर की मुख्य राजधानी मे जैनो की जडे इतनी मजबूत नही थी, परन्तु जिलो मे अधिकृत राज्यघरानो के आश्रय मे जैन धर्म का पोषण अच्छी तरह से होता रहा। १६वी शती के कवि मगरस ने कितने ही जैन स्थल बनवाए तथा कन्नड मे कितने ही ग्रथ रचे। १४वी से १७वी शती तक सगीतपुर, गेरसोप्पे, कारकल इत्यादि जैनो के अच्छे केन्द्र रहे हैं। बेलारी, कुडाप्पा, कोयबटूर आदि जिलो मे तथा कोल्हापुर, चामराजनगर, रायदुर्ग, कनकगिरि इत्यादि मे भी जैनो का प्रभाव बना रहा। शृगेरी ने १२वी से १६वी तथा वेलूर ने १४वी से १६वी शती तक जैन धर्म की रक्षा की।

उस काल के सिंहकीर्ति, वादी विद्यानन्द आदि विद्वानो के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके

सातवी शती से राष्ट्रकूटो का काल प्रारम्भ होता है। इस वश के साथ जैनो का बहुत निकट का सम्बन्ध रहा है। दन्तिदुर्ग खड्गावलोक ने आठवी शती मे अकलक देव को सम्मानित किया था। अमोघवर्ष प्रथम के गुरु जिनसेन थे जिन्होने आदिपुराण लिखा है। उनकी प्रश्नोत्तर रत्नमालिका से प्रतीत होता है कि उन्होने राज्य त्याग कर जैन दीक्षा ग्रहण की थी। उनकी एक अन्य रचना कन्नड मे अलकार शास्त्र पर पाई जाती है। शाकटायन व्याकरण पर अमोघवृत्ति नामक टीका इनके ही नाम पर आधारित है। दशवी शती मे जक्कियब्बे एक वीरागना तथा सफल शासनकर्त्री थी, जिसने समाधिमरण किया था। इस वश के अन्य राजाओ की जैन धर्म पर महती श्रद्धा रही है। गुणभद्र, इन्द्रनन्दि, सोमदेव, पुष्पदन्त, पोन्न इत्यादि कवियो का आविर्भाव इन्ही के काल मे हुआ था। राष्ट्रकूटो की राजधानी मान्यखेट जैनो का केन्द्र बन गया था क्योकि इस वश के राजाओ का इस धर्म के प्रति विशिष्ट प्रेम रहा है। अन्तिम राजा इन्द्र चतुर्थ ने श्रवणवेलगोला मे भद्रबाहु की तरह समाधिमरण किया था।

राष्ट्रकूटो के पश्चात् पुन पश्चिमी चालुक्यो का कर्नाटक पर अधिकार हो गया था। परन्तु इसके पूर्व भी चालुक्यो का जैन धर्म के प्रति प्रेम बना हुआ था। ऐहोल का रवि-कीर्ति का शिलालेख अपनी काव्यात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध है। यह सातवी शती के पुल-केशी द्वितीय के समय का है। उस स्थान का मेघुटी मन्दिर रवीकीर्ति ने बनवाया था। बादामी और ऐहोल की जैन गुफाओ की रचना इसी समय मे हुई थी।

पश्चिमी चालुक्य वश के सस्थापक तैलप द्वितीय (१०वी शती) को जैन धर्म के प्रति अच्छी आस्था थी। इसी के आश्रय मे कविरत्न रन्न ने अजितपुराण कन्नड भाषा मे लिखा था। दशवी शती की एक सेनानायक की पुत्री अत्तिमब्बे अपनी दानशीलता के लिए उल्लेखनीय है। ११वी शती मे इसी प्रकार का सहारा जैनो को मिलता रहा। वादिराज का पार्श्वनाथचरित उसी समय का है। श्रीधराचार्य की ज्योतिषविषयक कृति कन्नड मे सबसे पुरानी रचना है, जो सोमेश्वर प्रथम के समय मे रची गई थी। इस वश के अन्य राजाओ ने भी जैन धर्म की उन्नति के लिए पर्याप्त सहायता की। इस प्रकार यह राज-वश जैन धर्म का सरक्षक रहा तथा साहित्यसृजन मे इसने काफी प्रोत्साहन दिया। जैन मन्दिरो और सस्थाओ को दान के जरिये इनके द्वारा बल मिलता रहा।

होयसल राजवश को ११वी शती मे सस्थापित करने का श्रेय एक जैन मुनि को ही है। मुनि वर्धमानदेव का प्रभाव विनयादित्य के शासन प्रबध पर काफी बना रहा। कितने ही अन्य राजाओ के द्वारा जैन सस्थाओ को लगातार सहायता मिलती रही है। कुछ राजाओ के गुरु जैनाचार्य रहे हैं। १२वी शती के नरेश विष्णुवर्धन पहले जैन थे परन्तु बाद मे रामानुजाचार्य के प्रभाव मे आकर विष्णु धर्म स्वीकार किया। उस समय से विष्णु धर्म

का प्रभाव बढता गया, फिर भी शिलालेखो से उनका जैन धर्म के प्रति प्रेम झलकता है। उनकी रानी शातलदेवी ने तो आजन्म जैन धर्म का पालन किया। विष्णुवर्धन के कई सेनापति और मन्त्री जैन धर्म के उद्धारक बने रहे। गगराज, उनकी पत्नी लक्ष्मीमती, वोप्प, मरियाने भरतेश्वर आदि इस सबध मे उल्लेखनीय हैं। उसके बाद नरसिह प्रथम, वीर बल्लाल, नरसिह तृतीय तथा अनेक राजाओ ने जैनमन्दिर बनाए, दान दिया तथा जैन धर्म को समृद्धिशाली बनाया। इस प्रकार बारहवी तेरहवी शती तक जैनो का अच्छा प्रभाव रहा है। नरसिह प्रथम के चार सेनानायक तथा दो मन्त्री जैन थे। वीर बल्लाल के शासन मे भी कितने ही जैन मन्त्री और सेनानायक थे।

इनके अलावा छोटे-छोटे राजघरानो ने भी ८वी से १३वी शती तक जैन धर्म का पोषण किया। इस कारण यह धर्म सार्वजनिक बन सका तथा सभी दिशाओ से इसको बल मिलता रहा। ऐसे घरानो मे सान्तर नरेश, कागल्व और चागल्वो तथा करहाड के शील-हार राजपुरुषो के जैनोपकारी कार्यो को गिनाया जा सकता है। इनके साथ साथ अनेक सामन्त, मन्त्री, सेनापति, सेठ, साहूकार और कई महिलाओ के धर्मप्रभावना के विविध तरह के वैयक्तिक कार्यो को ध्यान मे लिया जा सकता है।

विजयानगर काल

विजयानगर साम्राज्य की स्थापना १४वी शती मे हुई। उस समय जैन धर्म अस्वस्थ अवस्था मे था। परन्तु सहनशीलता और धर्मनिरपेक्षता की जो उदार नीति वहाँ के राजाओ ने अपनाई इससे जैन धर्म को काफी राहत मिली। बुक्कराय प्रथम जैनो के शरणदाता थे। सेनानायक इरुगप्प जैन था, उसके कारण जैन धर्म को १४-१५वी शती मे प्रोत्साहन मिला। श्रवणबेलगोला, बेलूर, हलेबीड इत्यादि स्थानो मे अन्य धर्मावलबियो ने जैनो के साथ प्रेमभावना बढाई। पन्द्रहवी शती के देवराव प्रथम तथा द्वितीय ने जैनो को सहायता दी थी।

विजयानगर की मुख्य राजधानी मे जैनो की जडे इतनी मजबूत नही थी, परन्तु जिलो मे अधिकृत राज्यघरानो के आश्रय मे जैन धर्म का पोषण अच्छी तरह से होता रहा। १६वी शती के कवि मगरस ने कितने ही जैन स्थल बनवाए तथा कन्नड मे कितने ही ग्रथ रचे। १४वी से १७वी शती तक सगीतपुर, गेरसोप्पे, कारकल इत्यादि जैनो के अच्छे केन्द्र रहे हैं। बेलारी, कुडाप्पा, कोयबटूर आदि जिलो मे तथा कोल्हापुर, चामराजनगर, रायदुर्ग, कनकगिरि इत्यादि मे भी जैनो का प्रभाव बना रहा। शृगेरी ने १२वी से १६वी तथा वेलूर ने १४वी से १६वी शती तक जैन धर्म की रक्षा की।

उस काल के सिहकीर्ति, वादी विद्यानन्द आदि विद्वानो के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके

अलावा कितने ही साहित्यकार और पडित उस समय मे हुए जो जैन धर्म की सेवा करते रहे। इनमे पडित बाहुबलि, केशववर्णि, यश कीर्ति, शुभचद्र इत्यादि को गिनाया जा सकता है।

यह है जैन धर्म के प्रसार का ऐतिहासिक सिहावलोकन। अपने प्रारम्भिक काल से मध्ययुगीन काल तक जैन धर्म उचित रूप से पनपता रहा। वह पूर्व देश से दक्षिण और पश्चिम की ओर उत्तरोत्तर विकासशील होता गया, यहाँ तक कि दक्षिण मे तो वह सुवर्ण युगो मे पला। इन आधारो पर से जैनो की सख्या उस समय अन्य धर्मियो के अनुपात मे अधिक रही होगा ऐसा अनुमान लगाने मे कोई अतिशयोक्ति नही कही जा सकती। एक समय दक्षिण देश मे जैनो और बौद्धो का ही बोलवाला था। उस प्रदेश मे हिन्दू धर्म ने बाद मे प्रवेश किया है, पहले वहाँ पर हिन्दू धर्म का इतना प्रभाव नही था। वर्तमान स्थिति को देखते हुए जैन धर्म की अवस्था बिल्कुल विपरीत सी लगती है। जैनो की सख्या अनुपात मे कम हो गई हैं। इस अवनति के क्या कारण हो सकते हैं? पूर्वकाल मे अनेक उच्चकोटि की विभूतियाँ विविध क्षेत्रो मे हुई उनकी सख्या उत्तरोत्तर काल मे घटती ही गई है। पहले का शासनप्रेम, उदार वृत्ति और निस्वार्थ सेवा आजकल क्षीण होती जा रही है। सामान्य प्रजा की अनुकूलता के अनुसार धर्म की गतिशीलता बन्दसी हो गई है, जब कि यह सर्वविदित है कि गति ही जीवन है। एक तरफ छोटी छोटी बातो मे अधिक से अधिक सूक्ष्मदर्शी हो गए हैं जिनकी उपादेयता सीमित है, तो दूसरी ओर बडी-बडी बातो मे उदासीन वृत्ति घर कर गई है जिनका कार्यक्षेत्र विस्तृत है और जो वास्तविक रूप मे जीवन के सह-अस्तित्व से सम्बन्धित हैं। अनेकान्त और स्याद्वाद पुस्तको और सिद्धान्त तक ही सीमित रह गया। सामाजिक और धार्मिक जीवन मे उसे पूर्ण शक्ति से अपनाने के अनिवार्य प्रयास ही नही हुए। इधर देखे तो गृहस्थ धर्म पर साधु धर्म का प्रभाव बढ गया है तो उधर साधु धर्म मे गृहस्थ कर्मो का प्रवेश। दो विभिन्न क्षेत्रो की मर्यादाओ का अतिक्रमण होने से साधारण जीवन दुरूह सा हो रहा है। भगवान महावीर ने उपासक आनन्द को गृहस्थ धर्म के व्रतो को धारण करवाते समय यह कभी नही कहा था कि तुम कृषि कार्य का त्याग कर दो। उन्होने तो इतना ही कहा था कि 'अहा सुह' धर्माचार स्वीकार करो। अर्थात् अपनी शक्ति और मन के परिणामो के अनुसार धार्मिक मर्यादाओ का पालन करो। लेकिन अर्वाचीन धर्म का स्वरूप ही बदल गया है। कृषिकार्य को घृणास्पद समझा जाता है, उसमे हिसा मानी जाती है जबकि 'विरुद्धरज्जाइकम्म' 'कूडतुलकूडमाण' और 'तप्पडिरूवगववहार' (अर्थात् राज्य के कानूनो के विरुद्ध कार्य करना, झूठे तोल और झूठ नाप का प्रयोग करना और नकली वस्तुओ को असली के रूप मे चलाना) नामक अतिचारो के पोषण मे गौरव समझा जाने लगा है। कृषि कार्य साधु तथा गृहस्थ के जीवन के निभाने के लिए मौलिक आवश्यकता है, जिस प्रकार वायु प्राण-

धारण के लिए। उस हिंसा को हिंसा नही माना गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभ ने तो स्वय ही कृषि कार्य का उपदेश दिया था। इस दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए कृषिकार्य-विरोधी उपदेश कहाँ तक उचित और योग्य ठहरते हैं। ऐसी अनेक बाते और मुद्दे हैं जिन पर गृहस्थ, साधु, विद्वान् और आचार्य समुदाय को विचार करना चाहिए तथा उन मूल कारणो को ढूढ निकालना चाहिए जिनके फलस्वरूप जैन धर्म का ह्रास होता जा रहा है, जब कि आबादी की सख्या के अनुपात से काफी अधिक मात्रा मे साहित्यभण्डार, कला-कृतिया और अन्य सास्कृतिक सामग्री प्रस्तुत धर्मावलम्बियो के पास मे विद्यमान है।

सदर्भ ग्रथ—

१ Studies is South Indian Jainism by M S R Ayyangar & B S. Rao, Madras, 922
२ Jainism in North India by C J Shah, 1932.
३ Mediaeval Jainism by B A Saletore, Bombay, 1938.
४ Jainism in Gujrat by C B Sheth, Bombay, 1953
५ Jainism in Bihar by P C Roy Choudhury, Patna, 1956
६ Jainism in South India by P B Desai, Sholapur, 1957
७ Jainism in Rajasthan by K. C. Jain 1963.
८ Mahavira Jayanti Week-1964 Bharat Jain Mahamandal, Calcutta.
९ भारतीय सस्कृति मे जैनधम का योगदान, व्या० १, डा ही ला जैन, भोपाल, १९६२।
१० जैन साहित्य का इतिहास, पूर्व पीठिका, प कै० च० शास्त्री, वाराणसी, १९६३।

आपका जीवन लोकोत्तर प्रकाशमय बने।

•••

जिसकी आख मे करुणा है, हृदय मे वात्सल्य है, वाणी मे गुणानुवाद है, जीवन मे परोपकार है उनसे यह जगत् पवित्र बना है।

•••

श्री पार्श्वनाथ भगवान का संक्षिप्त जीवन-चरित्र

सग्राहक—मानचन्द भण्डारी

[श्री पार्श्वनाथ भगवान २३वें तीर्थङ्कर है तथा जैन-जैनेतर लोगो मे परम प्रभावशाली माने जाते है। इनके जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होने के पश्चात १० भव करने पडे। इसमे तीसरे भव मे तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया, इसलिए तीसरे भव से ही हम उनका जीवनचरित्र सक्षिप्त में लिखते हैं। यो सस्कृत, प्राकृत, गुजराती, हिन्दी कई भाषाश्रो मे चरित्र प्रकाशित हुए है और वे विस्तृत भी है। इस ग्रथ मे केवल सक्षिप्त जीवन-चरित्र दिया जाना ही उपयुक्त है क्योकि श्री कापरडा तीर्थ के मूलनायक श्री स्वयभू पार्श्वनाथ भगवान हैं। यदि उनका जीवन-चरित्र नही लिखा जाय तो ग्रथ की शोभा मे कमी रहती। इसी ध्येय से यह जीवन-चरित्र प्रकाशित कर रहे है।]

पार्श्वनाथ नमस्तुभ्य, विघ्नविध्वसकारिणे।
निर्मल सुप्रभात ते, परमानन्द दायिन ॥

पिछले तीसरे भव मे भगवान का जीव कनकबाहु नाम का राजा था। उस भव मे ससार का त्याग कर, चारित्र ग्रहण कर, बीस स्थानको के तप कर, तीर्थङ्कर नामकर्म उपार्जन किया और वहाँ से शरीर त्याग दसवे प्राणथ देवलोक मे बीस सागरोपम की आयु वाले देव हुए। देव भव मे तेरहवे विमलनाथ भगवान से बाईसवे श्री नेमीनाथजी तक इस भरत क्षेत्र मे चारो कल्याणक महोत्सव मे इन्हे सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ और नन्दीश्वर द्वीप मे अनेक प्रकार की भक्ति कर अपने चरित्र को निर्मल बनाया।

योगशास्त्र मे ऐसा कहा गया है कि देवो की आयु जब छह माह की बाकी रहती है तो उनके कठ मे स्थित पुष्पमाला कुम्हलाने लगती है। देवो मे अवधि ज्ञान होने से इस ज्ञान द्वारा अपने भविष्य का पता लगाते हैं और उनको तिर्यंच या मनुष्य श्रेणी के गर्भ मे उत्पन्न होने का दुख होता है। किन्तु पार्श्वनाथ के जीव को देवत्व मे ऐसा दुख उत्पन्न नही हुआ इसका एकमात्र कारण यही था कि उनका जन्म अपनी आत्मा को उन्नत बनाने वाला है यानी जन्म परम्परा को समाप्त करने वाला था। पार्श्वनाथ भगवान के उत्पन्न होने के स्थान के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वे तो एक मोक्षपुरी जाने के मार्ग मे एक विश्राम था, इसलिए निर्मल गगा नदी के किनारे तीर्थ की भूमि पर वाराणसी नगरी मे उनका जन्म होने वाला है। कवि कल्पना करता है कि पार्श्वनाथ भगवान के जीव को अपने माता का मुख देखने की इच्छा हुई इसलिए उन्होने चारगति सबधी कर्मराजो का हिसाव पूरा कर, फिर से इन चार गतियो मे न आना पडे, ऐसा निश्चय किया।

वे देवलोक सम्बन्धी आयु पूरी कर वहाँ से माता वामा की कुक्षी मे आते हैं। उनका च्यवनसमय चैत्र कृष्ण चौथ रात का है। जब पार्श्वप्रभु अपनी माता के गर्भ मे आते हैं वह बसत ऋतु का समय होता है। उस समय सारी वनराजी प्रफुल्लित होती है। आम के वृक्ष पर फल आने शुरू होते हैं, केतकी, जूही, मालती आदि पुष्पो के ऊपर भँवरो की गुंजार होने लगती है। हस-युगल जल मे प्रवेश कर नहाते हैं और कोयल मधुर स्वर से बोलती है। उस समय शात वातावरण और शीतल पवन की लहर चलती है। जिस समय तीर्थंकर का जीव माता के गर्भ मे आता है उस समय माता चौदह महान स्वप्न देखती है जिनके नाम ये हैं—(१) हाथी (२) वृषभ (३) केसरीसिंह (४) लक्ष्मीदेवी (५) पुष्पो की युगलमाला (६) चन्द्रमा (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) कुम्भकलश (१०) पद्म सरोवर (११) क्षीरसमुद्र (१२) देवविमान (१३) रत्नो की राशि (१४) अग्निनिधूँम।

ये सारे स्वप्न उज्वल, साफ रूप मे आकाश मे से उतरते हुए और अपने मुख मे प्रवेश होना देखती है। इस तरह के महान शुभ स्वप्न देखकर माता जागृत होती है। उसी समय इन्द्र महाराज अवधि ज्ञान से यह सारा हाल जानते हैं और उसी समय अपने आसन से आठ-दस कदम हट कर माता के उदरस्थित भगवान को नमस्कार करते हैं और भगवान की माता के पास उपस्थित होकर विनय और विवेकपूर्वक कहते हैं – 'हे पुण्यवती माता! तुमने तीन भवन का राज्य पाया क्योकि तुम्हारे उदर मे जो जीव आया है वह तीन भवन का नाथ बनेगा। साथ ही उन स्वप्नो का शुद्ध अर्थ कहकर के नन्दीश्वरद्वीप जाकर के अठाईमहोत्सव करते हैं। ऐसा उल्लेख 'श्री पार्श्वनाथ पचकल्याणक पूजा' मे मिलता है।

सूर्य उगने के बाद अश्वसेन राजा स्वप्न पाठको को बुलाता है और वामारानी को आए हुए शुभ चौदह स्वप्नो को कह कर उसका अर्थ सुनाता है और उनको इच्छित दान देकर विदा करते हैं।

तीर्थंकर का जीव जब माता की कुक्षी मे उत्पन्न होता है तो उसके साथ तीन ज्ञान होते हैं– मति, श्रुति और अवधि। उसके बाद गर्भ का पालन-पोषण माता अच्छी तरह से करती है और शुभ कार्य करने की इच्छा अश्वसेन नृपति पूर्ण करते हैं। नौ मास और सात दिन पूरे होने पर हेमन्त काल मे पौष कृष्ण दशमी की रात को विशाखा नक्षत्र मे चन्द्र योग के प्राप्त होने पर आरोग्यवती वामादेवी की रत्नकुक्षी से भगवान का जन्म होता है। उस समय जगत के सारे जीव सुख का अनुभव करते हैं।

सातो नरक मे जहाँ हमेशा अन्धेरा ही रहता है वह स्थान भी प्रभु के जन्म-समय क्षण भर के लिए प्रकाशमय बन जाता है और उसमे रहे हुए जीवो को शान्ति मिलती है।

ऐसा अटल नियम है कि जब कभी तीर्थंकर का जन्म होता है तो छप्पन दिग-

कुमारियो के आसन पहले कम्पायमान होते हैं और वे देवलोक से मृत्युलोक मे आकर अपना कार्य कर वापिस जाती हैं। उनका वर्णन बहुत लम्बाचौडा है और पार्श्वनाथ के अन्य जीवन चरित्रो मे आया हुआ है इसलिए यहाँ लिखना उचित नही समझा गया। उसके बाद चौसठ इन्द्रो के आसन चलायमान होते हैं और सोधर्मेन्द्र नाम का इन्द्र प्रभु का जन्म समय जान कर सारे देवो को सूचना करने हेतु हरिणेगमेशी देव से सुघोप-घन्टा बजवाता है। उसके सुनते ही सारे देव और देवियाँ इन्द्र की सभा मे उपस्थित होते हैं। उसके बाद पालक नाम के देव को आज्ञा देकर एक बहुत बडा विमान जिसकी लम्बाई-चौडाई एक लाख योजन की बताई जाती है तैयार करवाता है और उस विमान मे इन्द्र इन्द्राणी व अन्य देव देवियाँ बैठ कर भगवान का मुख देखने के लिए बनारसी नगरी आने के लिए प्रस्थान करते हैं और तेज गति के साथ नन्दीश्वर द्वीप पर आकर विमान को वही रखते हैं और अन्य परिवार के साथ इन्द्र छोटे विमान द्वारा वाराणसी नगरी पहुचता है।

वह पहले विमान सहित प्रदक्षिणा करता है, फिर विमान से उतर कर माता के पास आकर प्रभु को नमस्कार करता है और प्रभु की माता को अवस्वपिनि निद्रा मे सुलाकर, प्रभु का प्रतिबिब माता के पास रख, प्रभु को लेकर मेरुपर्वत पर ले जाता है। उस समय देव माया से इन्द्र पाँच रूप बनाता है। एक रूप से प्रभु को हाथ मे धारण करता है, दूसरे से छत्र और तीसरे-चौथे से चामर ढोलता है और एक रूप से आगे चलकर अपने वज्र को उछालता है। यहाँ यह शका होना स्वाभाविक है कि इन्द्र के साथ और भी देव थे तो फिर इन्द्र ने पाँच रूप बना कर के यह सारा कार्य स्वय क्यो किया ? इसका कारण मात्र एक ही है जो भक्ति का लाभ प्राप्त करना है। वहाँ से इन्द्र मेरु पर्वत पर जाता है, जहाँ तिरेसठ इन्द्र तैयार मिलते हैं और देव देवियो की सख्या का कोई पार नही है, उपस्थित होते हैं। वहाँ सब मिलकर भगवान का जन्मोत्सव करते हैं जिसमे दो सौ पचास अभिषेक होते हैं। यह सारा कार्य पूरा हो जाने के पश्चात सोधर्मेन्द्र भगवान को माता के पास रख अपने रखे हुए प्रतिबिब को हटा लेता है और माता को दी हुई अवस्वपिनि निद्रा दूर करता है और प्रभु को कुण्डल वस्त्र इत्यादि से सुशोभित कर रत्नमय गेंद इत्यादि खिलौने खेलने हेतु रखता है। वह बत्तीस करोड रत्न रुपयो की वृष्टि कर यह उद्घोषणा करता है कि तीर्थंकर व उसकी माता की कोई भी बुराई सोचेगा उसका मस्तक छेद करने तक का दण्ड दिया जाएगा। साथ ही अगूठे मे अमृत का सचार कर इन्द्र वहाँ से नन्दीश्वर द्वीप जाकर अन्य तिरेसठ इन्द्र इन्द्राणी व देव देवियो के साथ अठाई महोत्सव करके स्वस्थान जाते हैं।

प्रात काल अश्वसेन राजा को पुत्रजन्म की बधाई मिलती है। वे सुनकर बडे हर्षित

होते हैं और सारे नगर को सजाया जाता है, ध्वजा-तोरण इत्यादि से सुशोभित किया जाता है। इस तरह से दस दिन तक नगर मे महान महोत्सव होता है और बारहवे दिन अपने इष्टमित्र व नगरजनो को भोजन कराकर सबके सामने पुत्र का नाम पार्श्वकुमार रखने की घोषणा की जाती है। दूज के चन्द्रमा की तरह से भगवान बढते हैं और यौवनावस्था प्राप्त करने पर प्रसन्नजीत राजा की पुत्री प्रभावती के साथ शुभ लग्न मे बडे समारोह-पूर्वक पाणिग्रहण होता है।

एक दिन पार्श्वकुमार अपने महल के झरोखे मे बैठ कर बनारसी नगरी की शोभा निहारते हैं। उस समय महल के नीचे से पुरुष एव स्त्रियो के झुँड के झुँड निकलते हैं जिनके हाथ मे पुजापा एव खाने पीने की सामग्री होती है। पार्श्वकुमार अपने अनुचर से पूछते हैं कि आज यह लोग कहाँ और किसलिए जा रहे हैं ? इसके उत्तर मे वह विनय-पूर्वक निवेदन करता है—'हे स्वामी ! यह सब लोग तापस को वदन के लिए जा रहे हैं। एक कमठ नाम का तापस पचाग्नि ज्वाला तापता है। हाथ मे लाल रत्नो के कगन बाँधे हुए है और गले मे मोहनमाला पडी हुई है। पार्श्वकुमार भी योगी को देखने जाते हैं। वहाँ दोनो मे अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तर होते हैं जो निम्न हैं—

पार्श्वकुमार—अरे योगी ! अज्ञानवश तू यह क्या कर रहा है।

कमठ—हे राजकुमार ! तुम केवल घोडे की सवारी करना ही जानते हो योगियो के घर की बात का ध्यान नही है। उनके घर की बात बहुत बडी है, इसलिए उसको तुमने समझा नहीं। यदि समझते हो तो हमे बतलाओ।

पार्श्वकुमार—हे योगी ! तुम्हारा गुरु कौन है जिसने ऐसा धर्म बतलाया। यह मात्र कायाकष्ट है, सच्चा धर्म उसने नही बतलाया।

कमठ—हे राजकुमार ! हमारा गुरु धर्म को जानने वाला है। एक कौडी भी अपने पास नही रखता है, दुनिया की सारी दशा को वह भूला हुआ है और हमेशा जगल मे रहता है।

पार्श्वकुमार—जगल मे रहने मात्र से योगी नही हो सकता। जङ्गल मे तो पशु-पक्षी भी रहते हैं। यह तुम्हारा सच्चा योग नही है, भोग है और ससार को ठगने का निमित्त कारण है।

कमठ—हे लघु राजकुमार ! ससार को बुरा जानकर के हमने उसका त्याग किया और जङ्गल मे रहकर धर्म-साधना करते हैं।

पार्श्वकुमार—हे योगी ! धर्म का मूल प्रथम दया होना चाहिए, जिसको तुमने नही

समझा। केवल कान फुंकाने से क्या होता है। बगैर दया यह तुम्हारी तप की क्रिया निष्फल और मायामयी है।

कमठ—हे राजकुमार! हमारी कोई भूल बताओ। हम दया कैसे नही पालते, यह बताना चाहिए। बार बार ऐसे वचनो का उच्चारण करने से क्या लाभ।

पार्श्वकुमार ने अपने सेवक द्वारा उस जलती हुई अग्नि मे से एक बडा लकडा खिचवाया (बाहर निकलवाया) और उसे चिरवाया, जिसमे से एक जलता हुआ सर्प निकला, सर्प की अल्पायु जानकर सेवक द्वारा नवकार मन्त्र का स्मरण करवाया। उसके प्रभाव से और पार्श्वकुमार की अमृत-दृष्टि से सर्प उसी समय आयु पूरी कर नागकुमार निकाय का स्वामी धरणेन्द्र हुआ।

दीक्षा कल्याण—एक समय वसन्त ऋतु मे पार्श्वकुमार प्रभावती रानी के साथ घूमने के लिए गए। वहा एक सुन्दर प्रासाद देखा जहाँ चित्रकारी का बहुत सुन्दर काम किया हुआ था। उसमे राजमती को छोड कर नेमिनाथ भगवान चारित्र ग्रहण करते हैं। ऐसा चित्र देख कर पार्श्वकुमार के चित्त मे वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। उसी समय लोकतान्त्रिक देव अपने आचार पालने के लिए उपस्थित हुए और विनती करने लगे—'हे स्वामी! अब आपके सयम लेने का समय अति निकट है यानि एक ही वर्ष का समय शेष रह गया है अत सयम लेकर धर्मतीर्थ की स्थापना करे।'

राजकुमार ने देवो के वचनो का पालन किया और वर्षीदान देने का विचार किया। एक वर्ष तक बराबर वर्षीदान दिया। वर्षीदान मे प्रतिदिन एक करोड आठ लाख सोनए गरीबो को दिए जाते हैं। इस हिसाब से एक वर्ष मे ३८८ करोड ८० लाख द्रव्य का दान दिया। यह सारा द्रव्य इन्द्र के आदेश से धनदेव ने पूरा किया। तीर्थंकर के दान को वही व्यक्ति ले सकता है जो भव्य हो। इस तरह से वर्षीदान देने के बाद ३० वर्ष की आयु मे पार्श्वकुमार अपने माता पिता और प्रभावती रानी से आज्ञा लेकर चैत्र कृष्ण चौथ को दीक्षा ली।

दीक्षा के शुभ अवसर पर अश्वसेन राजा ने विशाल पालकी तैयार करवाई। इसमे पार्श्वकुमार सज-धज कर बैठे और पास मे कुल की दासियाँ इत्यादि चल रही थी। सक्रेन्द्र ईशानेन्द्र सबसे पहले पालकी को उठाते हैं। बाद मे दूसरो को सौप कर दोनो तरफ छत्र

नोट—श्री वीरविजयजी महाराज पार्श्वनाथ पचकल्याण पूजा मे 'नागनिकाला एकला पर जलती काया' ऐसा लिखते हैं। किन्तु पार्श्वनाथ के स्तवनो मे ऐसा भी लिखा मिलता है, 'नाग नागिनी की जोड उबारी' इससे नाग और नागिनी उस काष्ट मे से दो जीव निकले और दोनो नवकार मत्र के प्रभाव से इन्द्र-इन्द्राणी बने।

ढोलते हैं । वरघोडे मे सबसे आगे अष्ट मागलिक चलता है, उसके पीछे इन्द्र ध्वजा, बाजे, ढोल इत्यादि होते हैं । देव देवियाँ, मनुष्य, स्त्रियाँ प्रभु को देख कर प्रणाम करती है। मुख्य मुख्य सज्जन उनसे कहते हैं जैसे दान देकर आपने जगत का दारिद्रय दूर किया, इसी तरह चारित्र लेकर मोहराजा के मोहनी कर्म को चूर करके अपने कुल की शोभा वढाना । इस तरह काशी नगर के बीचोबीच होकर वरघोडा नगर के बाहिर आश्रमपद नाम के उद्यान मे आया । वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे पार्श्वकुमार पालकी से उतर कर वस्त्राभूषण का त्याग कर स्वयमेव पचमुष्ठी लोच किया और सामयिक व्रत का उच्चारण कर महाव्रत धारण किया । दीक्षा पोष वदी इग्यारस को तीन सौ राजकुमारो के साथ अगीकार की । इसको जैन भाषा सर्व वीरती कहते हैं । इन्द्र ने देव दूष्य वस्त्र प्रभु के कन्धे पर रखा जो सितर वर्ष तक रहेगा यानी प्रभु का चारित्र सितर वर्षप्राय का होगा ।

जिस समय प्रभु ने चार महाव्रत उच्चारे उस समय सातमा अप्रथम गुण ठाना । स्पर्श करते ही प्रभु को मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है और प्रभु वही कायोत्सर्ग मुद्रा मे स्थित हो जाते हैं । स्वजन वर्ग एव नगर निवासी अपने अपने स्थान जाते है और देव देवियाँ नन्दीश्वर द्वीप जाकर अठाईमहोत्सव करके स्वस्थान जाते हैं ।

जब भगवान ने दीक्षा ली उस दिन अष्ठम यानी तेले की तपस्या थी । दूसरे दिन धनसार्थव्हा के यहाँ भगवान का पारणा हुआ जहाँ पाच दिव्य प्रकट हुए यानी साढे बारह करोड सोनयै की वृष्टी देवदु दुभि का बजना और अहोदानम ऐसी उद्घोषणा इस तरह पाँच दिव्य होते हैं । धनसार्थव्हा चारित्र लेकर मोक्ष जाता है । पार्श्वप्रभु केवल ज्ञान प्रकट करने के लिए ज्ञानावर्णी, दर्शनावर्णी, अन्तराय और मोहनी कर्म को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करते हैं ।

तीर्थंकरो को चार ज्ञान होने पर भी वह अपने आपको अपूर्ण समझते हैं और जब तक पाँचवाँ केवल ज्ञान प्रकट नही हो जाता तब तक प्राय मौन रहते हैं यानी व्याख्यान इत्यादि नही देते ।

पार्श्वनाथ भगवान काशी से चलकर कादम्बरी नाम की अटवी मे पधारते हैं, जहाँ कुण्ड नाम के सरोवर के किनारे काऊसग्ग (कायोत्सर्ग) ध्यान मे रहते हैं । सरोवर जल से पूर्ण है, उसमे कमल खिल रहे हैं और उसकी शोभा निहारने योग्य है ।

जहाँ प्रभु काऊस्सग्ग ध्य.न मे रहते हैं वहाँ जगल मे से एक हाथी आता है और प्रभु को देखकर भक्ति और उल्लास से सरोवर के जल से अपनी सूड भर भर कर प्रभु के ऊपर जल डालता है और ऊपर से कमल के पुष्पो को चढाता है । उस जगह का नाम कलिकुण्ड नाम का तीर्थ होना है और हाथी मर कर देवगति मे जाता है ।

वहाँ से बिहार कर कोशाम्बी नाम के वन मे भगवान प्रधारे और धर्णेन्द्र ने भक्तिवश प्रभु के मस्तक पर अपने फण का छत्र कर दिया इसलिए वहाँ एक अहिछत्रा नाम की नगरी बसाई गई और धर्णेन्द्र अपने स्थान चला गया।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है कमठ नाम का तापस जो पचाग्नि तप तापता था मर कर मेघवाली नाम का देव हुआ। उसने अपने विभग ज्ञान से प्रभु को देखा और पूर्वभव का वैर जाग्रत हुआ। वह बदला लेने हेतु भगवान के समीप आया और उनको हर प्रकार का उपसर्ग करने लगा किन्तु भगवान तो अतुलबली थे। उन्होने इसके उपसर्गो की कोई परवाह नही की। अपने ध्यान मे अडिग रहे। दुष्ट मेघमाली ने देवमाया से आकाश मे बादल किए। गर्जन शुरू हुआ और मूसलाधार वर्षा होने लगी। उससे इतना पानी पड़ा कि भगवान की नासिका तक पहुँच गया। प्रभु तो निश्चल रहे किन्तु धर्णेन्द्र इन्द्राणी सहित वहाँ आकर जल का उपसर्ग निवारण कर प्रभु की पूजा की। दुष्ट मेघमाली को कहा–'अरे पापी! तीर्थङ्कर देव के किए हुए उपसर्गो का फल भोगना तेरे लिए बहुत महँगा पडेगा।' मेघमाली ने अपने दुष्कृत्य का प्रायश्चित किया। प्रभु से क्षमायाचना की। जिससे उसने समकित पाया और धर्णेन्द्र और मेघमाली वहाँ से अपने स्थान को गए।

भगवान पार्श्वप्रभु वहाँ से बिहार कर काशीनगर के उद्यान मे पधारे और काउस्सग्ग ध्यान मे खडे रहे। उस समय अपूर्व वीर्य का उल्लास होने से चार घनघाती कर्मो का (ज्ञानवर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनी और अन्तराय) का विनाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। उस समय चौसठ इन्द्र वहाँ एकत्र हुए और अति मनोहर समवसरण की रचना की। उसके मध्य भाग मे पार्श्वप्रभु सिहासन पर विराजमान हुए। मस्तक पर छत्र, दोनो तरफ चँवर ढुलने लगे। उस समय प्रभु को चौतीस अतिशय सम्पूर्णतया प्रगट हुए। (जन्म से चार, कर्मक्षय होने से ११ और देवकृत १९) यो मिलाकर तीर्थकर के चौतीस अतिशय माने जाते हैं। केवल ज्ञान की सूचना वनपाल ने अश्वसेन राजा के पास पहुचाई। ऐसे शुभ समाचार सुनकर अश्वसेन राजा, वामादेवी रानी और प्रभावती रानी को बडा हर्ष हुआ। सारी राजऋद्धि के साथ प्रभु को वदन करने हेतु सारा परिवार व नगर के नरनारी प्रभु के समवसरण मे पहुँचे और अमृत रूपी देशना सुनकर आनन्दित हुए। उसी समय अश्वसेन राजा वामारानी और प्रभावतो कइयो के साथ भगवान के कर कमलो से चारित्र ग्रहण किया। प्रभु ने चतुर्विध सघ की स्थापना कर गणधरो के नाम की घोषणा की और धर्म देशना दी।

सित्तर वर्ष पर्यन्त भगवान ने केवलज्ञान अवस्था मे भूमि पर भ्रमण कर अनेक जीवो को प्रतिबोध देकर सद्गति की राह बताई और देव देवी, नर नारी ही नही, तिर्यन्च तक के ऊपर उनकी पूर्ण कृपा रही। प्रभु के चौतीस अतिशय के साथ पैतीस गुणवाणी होती है।

इसी कारण उनके उपदेश से असख्य जीव सद्गति प्राप्त करते हैं। भगवान ने अपना अन्तिम समय निकट जानकर चौमासा करने हेतु समेत शिखर नाम के पहाड पर पधारे और एक मास का अनशन करके श्रावण सुदि आठम के दिन विसाखा नक्षत्र मे चन्द्र का योग आने पर कायोत्सर्ग मुद्रा मे प्रभु मोक्ष पधारे, जहाँ आदि अनन्त स्थिति वाला अक्षय सुख पाया। भगवान के साथ तेतीस मुनि मोक्ष गए। ऐसा उल्लेख मिलता है।

जैन परिभाषा मे इसे निर्वाण कल्याणक महोत्सव कहा जाता है। इस समय इन्द्रो के आसन काँपते हैं, चौसठ इन्द्र एकत्र होकर के क्षीरसमुद्र इत्यादि से जल मँगाकर प्रभु व उनके साथ निर्वाण पाए हुए गणधर मुनियो को उत्तम जल से स्नान कराते हैं। चन्दन, केसर इत्यादि सुगधित पदार्थो से विलेपन करते हैं। वस्त्राभूषण इत्यादि से शरीर का शृगार करते हैं और एक बडी शिविका तैयार करा कर प्रभु के शरीर को उसमे रख ले जाते हैं और चन्दन से रची हुई चिता मे विराजमान कर इन्द्र की आज्ञा से अग्निकुमार देव उसमे अग्नि उत्पन्न करता है। वायुकुमार देव हवा चलाता है इस तरह भगवान के शरीर का अग्निसस्कार करते हैं। यह महोत्सव शोकसहित करते हैं। उसके बाद मेघकुमार देव जल बरसाता है, जहाँ भगवान का अग्नि सस्कार हुआ एक स्तूप तैयार करते हैं और इन्द्र अपने अपने कल्प के अनुसार दाढ, दाँत वगैरह देव भवनो मे पूजने हेतु ले जाते हैं। भगवान के निर्वाण के समय उद्योत का नाश होता है इसलिए देव दीपक प्रकट कर दिव्य उद्योत यानि दिवाली करते हैं। इन्द्रादि देव वहाँ से नन्दीश्वरद्वीप जाकर अठाईमहोत्सव कर स्वस्थान जाते हैं।

प्रभु पार्श्वनाथ के नाम सर्वत्र उत्सव रग और समारोह होते हैं और ऊपर बताए हुए पाँचो कल्याणको के महोत्सव इन्द्रादिक चढते परिणामो से करते हैं। पार्श्व प्रभु का आयु सौ वर्ष का था जिसमे तीस वर्ष गृहवास मे और सित्तर वर्ष श्रमण अवस्था मे रह कर अनन्तानन्त सुख वाले स्थान मे बिराजते हैं जिनका फिर कोई जन्म नही होगा आप अजर-अमर हो गए हैं।

पार्श्वनाथ भगवान के सोलह हजार अतिशय प्रभावशाली लब्धि सम्पन्न उत्कृष्ट ज्ञानी, ध्यानी, विद्वान मुनि पुङ्गवो का समुदाय था और ३८,००० विदुषी साध्वियाँ थी। एक लाख और चौसठ हजार बारह व्रतधारी श्रावक और ३,२७,००० श्राविकाओ का परिवार था। श्रावक श्राविकाएँ तीनो काल जिन पूजा करते थे। भगवान का जन्म विक्रम सवत आठ सौ बीस वर्ष पूर्व हुआ था।

भगवान पार्श्वनाथ का आदेय नाम कर्म इतना प्रबल था कि उनकी सारे जग मे महिमा इतनी फैली हुई है जितनी अन्य तीर्थकरो की नहीं। आपके नाम से कई तीर्थ प्रचलित हैं। स्तवन स्तुतिएँ यत्र इत्यादि हजारो की सख्या मे उपलब्ध हैं। आपका

अधिष्टायक धरणेन्द्र नाम का इन्द्र आज भी भगवान के भक्तो की मनोकामना पूर्ण करता है। यही कारण है कि आज इस भौतिकवाद के युग मे जैन और अजैन भगवान के दर्शन, सेवा, पूजा, भक्ति बडे प्रेम से करते हैं। पौष कृष्णा दशमी का जन्म दिवस के उपलक्ष मे कई तीर्थों पर बडे मेले लगते हैं जिसमे हजारो की सख्या मे यात्री उपस्थित होते हैं। इन सबका वर्णन आगे के पृष्ठो मे आपको पढने को मिलेगा। यहाँ सक्षिप्त जीवन चरित्र समाप्त होता है। श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय।

मनुष्य के पास मे सर्वश्रेष्ठ शक्तिमान मन है, उसको अगर परातत्व के साथ सतत जुडाने से मनुष्य महामानव या पूर्ण मानव बन सकता है।

•••

आपका मन परातत्व के साथ सलग्न बने।

•••

लेने मे जो सुख प्राप्त होता है वह क्षणिक है। जब उत्साह-पूर्वक दूसरो को देने से प्राप्त सुख जीवन तक मचिन रहा है।

•••

मेरे लिए दूसरे कितने योगदान देते है ऐसा सोचने मे पूर्व मैं दूसरो के लिए कितना योगदान देता हूँ यह विचार आपके जीवन मे प्रकाश लाता है।

•••

आपका जीवन लोकोतर प्रकाशमय बने।

•••

परमात्मा की भक्ति ही एक परमानद मोक्ष लक्ष्मी का बीज है।

पुरिसादानी श्री पार्श्वनाथ भगवान

ले० अमरचद मावजी शाह तलाजा

आदेयनाम कर्मवाले पुरिसादानी श्री पार्श्वनाथ भगवान का चमत्कार यद्यपि वर्तमान काल मे मौजूद है तथापि सोचने की बात यह है कि जहाँ-जहाँ श्री पार्श्वनाथजी के तीर्थ विद्यमान हैं, वहाँ-वहाँ जैन समाज की बस्ती क्यो नही ?

उदाहरणार्थ श्रीशखेश्वर पार्श्वनाथ अजाररापार्श्वनाथ, नवखडापार्श्वनाथ, अन्तरिक्ष-पार्श्वनाथ ऐसे बहुत से तीर्थ एकात मे छोटे-छोटे गावो मे अकेले रह गए हैं। इसका कारण क्या ?

श्री पार्श्वनाथ प्रकट प्रभावी हैं। इसका शासन देव जाग्रत है। किस प्रकार की आसातना न करने से तीर्थो की ऐसी हालत तो न होगी ? यह प्रश्न विचारणीय है।

उपसगहर स्तोत्र पढने के साथ धरणेन्द्र पद्मावती उपस्थित होते थे। उनकी गाथाएँ मंडित हैं तभी तो तीर्थो मे सुना जाता है कि चमत्कार हो रहे हैं। देवो का नृत्य-वादन सुना जाता है।

इस कलिकाल मे ऐसे जागृत देव-देवियो का जैन समाज मे बडा सहारा है। जैन समाज की नित्य उन्नति होनी चाहिए उसके स्थान मे अवनति क्यो होती हे ? इसका कारण पूज्य गीतार्थ महाराज ही कह सकते हैं।

मन-वचन काया की वृद्धि के अनुसार साधना का साधक को फल मिलता है—जो जैसी भावना भाता है वह वैसा ही प्राप्त करता है।

राजस्थान मे प्राचीन तीर्थ श्री कापरडाजी तीर्थ है जो सतरहवी शताब्दी मे बना है। उस समय बडा अभ्युदय इस तीर्थ का था। सैकडो जैनसमाज के घर यहाँ थे। अब छोटासा ग्राम और जैन का केवल एक घर—शोचनीय है।

इस तीर्थ की प्रख्याति सुनने मे आई है पर इस तीर्थ के 'स्वर्ण जयन्ति महोत्सव अक' से विशेष जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

'स्वर्ण जयन्ति महोत्सव' के प्रचार से इस तीर्थ की पुन जाहोजलाली प्राप्त हो ऐसी कामना करते हैं। श्रीपार्श्वनाथ भगवान के नाम-स्मरण से भी बडा लाभ होता है, शुद्ध आत्मभाव से आत्मसिद्धि प्राप्त होती है। इसमे कुछ भी सशय नही।

अधिष्टायक धरणेन्द्र नाम का इन्द्र आज भी भगवान के भक्तो की मनोकामना पूर्ण करता है। यही कारण है कि आज इस भौतिकवाद के युग मे जैन और अजैन भगवान के दर्शन, सेवा, पूजा, भक्ति बडे प्रेम से करते हैं। पौष कृष्णा दशमी का जन्म दिवस के उपलक्ष मे कई तीर्थों पर बडे मेले लगते हैं जिसमे हजारो की सख्या मे यात्री उपस्थित होते हैं। इन सबका वर्णन आगे के पृष्ठो मे आपको पढने को मिलेगा। यहाँ सक्षिप्त जीवन चरित्र समाप्त होता है। श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय।

मनुष्य के पास मे सर्वश्रेष्ठ शक्तिमान मन है, उसको अगर परातत्व के साथ सतत जुडाने मे मनुष्य महामानव या पूर्ण मानव बन सकता है।

•••

आपका मन परातत्व के साथ सलग्न बने।

•••

लेने मे जो सुख प्राप्त होता है वह क्षणिक है। जब उत्साह-पूर्वक दूसरो को देने से प्राप्त मुख जीवन तक सचित रहा है।

•••

मेरे लिए दूसरे कितने योगदान देते है ऐसा सोचने मे पूर्व मैं दूसरो के लिए कितना योगदान देता हूँ यह विचार आपके जीवन मे प्रकाश लाता है।

•••

आपका जीवन लोकोतर प्रकाशमय बने।

•••

परमात्मा की भक्ति ही एक परमानद मोक्ष लक्ष्मी का बीज है।

पुरिसादानी श्री पार्श्वनाथ भगवान

ले० अमरचद मावजी शाह तलाजा

आदेयनाम कर्मवाले पुरिसादानी श्री पार्श्वनाथ भगवान का चमत्कार यद्यपि वर्तमान काल मे मौजूद है तथापि सोचने की बात यह है कि जहाँ जहाँ श्री पार्श्वनाथजी के तीर्थ विद्यमान हैं, वहाँ-वहाँ जैन समाज की बस्ती क्यो नही ?

उदाहरणार्थ श्रीशखेश्वर पार्श्वनाथ अजारापार्श्वनाथ, नवखडापार्श्वनाथ, अन्तरिक्ष-पार्श्वनाथ ऐसे बहुत से तीर्थ एकात मे छोटे-छोटे गावो मे अकेले रह गए हैं। इसका कारण क्या ?

श्री पार्श्वनाथ प्रकट प्रभावी हैं। इसका शासन देव जाग्रत है। किस प्रकार की आसातना न करने से तीर्थों की ऐसी हालत तो न होगी ? यह प्रश्न विचारणीय है।

उपसगहर स्तोत्र पढने के साथ धरणेन्द्र पद्मावती उपस्थित होते थे। उनकी गाथाएँ मंडित हैं तभी तो तीर्थो मे सुना जाता है कि चमत्कार हो रहे हैं। देवो का नृत्य-वादन सुना जाता है।

इस कलिकाल मे ऐसे जागृत देव-देवियो का जैन समाज मे बडा सहारा है। जैन समाज की नित्य उन्नति होनी चाहिए उसके स्थान मे अवनति क्यो होती है ? इसका कारण पूज्य गीतार्थ महाराज ही कह सकते हैं।

मन-वचन काया की वृद्धि के अनुसार साधना का साधक को फल मिलता है—जो जैसी भावना भाता है वह वैसा ही प्राप्त करता है।

राजस्थान मे प्राचीन तीर्थ श्री कापरडाजी तीर्थ है जो सतरहवी शताब्दी मे बना है। उस समय बडा अभ्युदय इस तीर्थ का था। सैकडो जैनसमाज के घर यहाँ थे। अब छोटासा ग्राम और जैन का केवल एक घर—शोचनीय है !

इस तीर्थ की प्रख्याति सुनने मे आई है पर इस तीर्थ के 'स्वर्ण जयन्ति महोत्सव अक' से विशेष जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

'स्वर्ण जयन्ति महोत्सव' के प्रचार से इस तीर्थ की पुन जाहोजलाली प्राप्त हो ऐसी कामना करते हैं। श्रीपार्श्वनाथ भगवान के नाम-स्मरण से भी बडा लाभ होता है, शुद्ध आत्मभाव से आत्मसिद्धि प्राप्त होती है। इसमे कुछ भी सशय नही।

भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के समय जो भस्म ग्रह शुरू हुए हैं। उनको २५०० वर्ष पूरे होने आए हैं। जैन शासन की बडी उन्नति होने के दर्शन हो रहे हैं। धर्म-क्रिया की वृद्धि हो रही है, नूतन मदिरो का निर्माण हो रहा है इस तरह प्राचीन तीर्थों की कीर्ति बढने लगी है—यह आशा की किरण है।

राजस्थान देश जैनो के अभ्युदय का महान प्रतीक है। वहाँ के देव मदिरो की रचना चर्मोत्कर्ष पर है। आबूदेलवाड़ा, राणकपुर आदि ऐतिहासिक तीर्थों के लिए प्रसिद्ध स्थानो के साथ श्री कापरडा तीर्थ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। नाम भी महामहिम है।

भोगी यदालोकनतोऽपि योगी।
बभूव पातालपदे नियोगी॥
कल्याणकारी दुरितापहारी।
दशावतारी वरद स पार्श्व॥१॥

प्रत्येक आत्मा तत्त्व से परमात्मा है। अपने अदर सुषुप्त यह परमात्म तत्त्व को प्रगट करना यह धर्म मात्र का ध्येय है। आप मे रहा हुआ यह परमात्म तत्त्व प्रगट हो और सपूर्ण जीवन आपको मगलमय हो।

सपत्ति क्रोडो की हो किन्तु, अगर गुरुजनो का आशिर्वाद न हो, दीन दुखी के प्रति अनुकपा न हो, परार्थकारिता आचरण न किया हो, दूसरो के हित के लिए कुछ भी नही किया हो तो अतर मे सुख और शाति प्राप्त नही हो सकती। आपकी सपत्ति का और शक्तियो का परार्थ सदुपयोग हो।

कापरडा का चोपासर तालाव
जहाँ भानाजी भडारी ने विश्राम किया था ।

धर्मशाला जिसका एक द्वार पूर्व की ओर व एक उत्तर की ओर है।
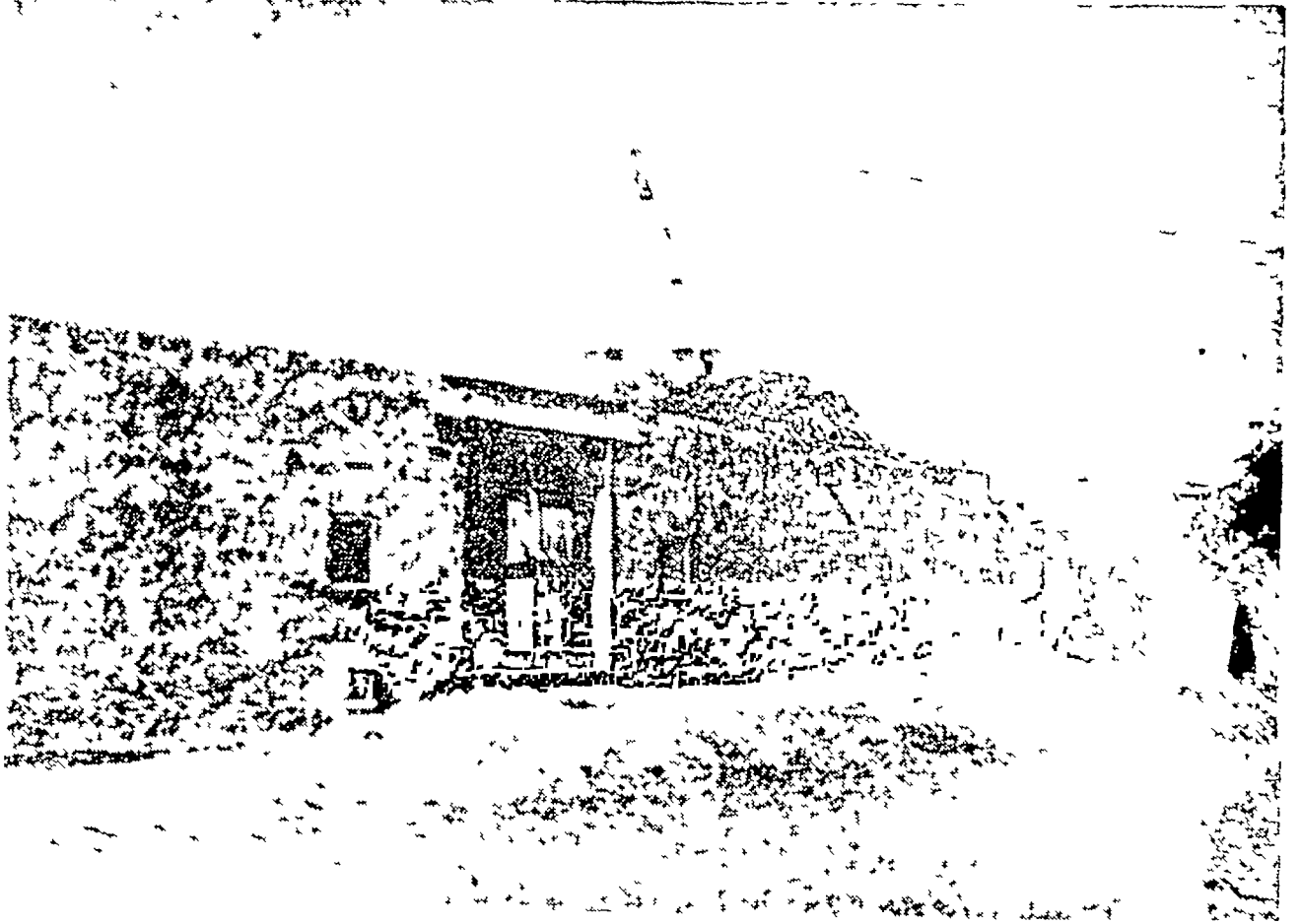
धर्मशाला की भूमि श्री माणकलाल मसुखभाई अहमदाबाद की ओर से खरीद कर मन्दिर को भेट की। इसमे आधुनिक ढग की विशाल धर्मशाला बनाने की योजना विचाराधीन है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे

श्री कापरड़ा तीर्थ का उद्भव एवं विकास

इतिहास आवश्यक क्यो ?

कल्याणकारी जितनी भी प्रवृत्तिया, प्रेरणाएँ अथवा परम्पराएँ होती हैं उन सब मे पुरातन का बोध कराने और वर्तमान जीवन को सुधारने वाली परम्परा अथवा प्रवृत्ति ही मुख्य मानी गई है। यह प्रवृत्ति संस्कार की प्रबलता पर जागृत होती है। सस्कार गुरुजनो द्वारा डाले जाते हैं अन्यथा अधिकाश व्यक्तियो के विषय मे तो ऐसा होता है या देखने मे आता है कि अच्छी शिक्षा पाकर भी अच्छे रहन-सहन तथा वातावरण के होने पर भी यह प्रवृत्ति जागृत नही हो पाती। यह प्रवृत्ति क्या है ? मार्मिक, आन्तरिक एव मानसिक अनुभूतियो मे अपने, अपने समाज और अपने देश के विषय मे प्रबोधन एव उद्बोधन की भावना को सर्वोच्च स्थान देने का नाम ही यह प्रवृत्ति है। दूसरे शब्दो मे इसी को **इतिहास जानना** कहते हैं।

यह इतिहास का ही प्रताप समझना चाहिए की हमे भूतकाल का ज्ञान होता है। हमारी मेधाशक्ति के पोषण हेतु अथवा भविष्य के प्रति सजगता के लिए भी इतिहास का जानना अति आवश्यक है। अनक महानताओ, जीवन-चरित्रो, अनुभवो और कार्य-शैलियो की ज्ञान-ज्योति को इतिहास ही बुझने से बचाता है। भारतीयता ने ही 'महाजनो येनगत स पथा' का नारा देकर इतिहास, लेखन का बीजारोपण किया—इस आशा से कि देश-समाज और व्यक्ति बुराइयो से बच कर यश तथा कीर्ति का अर्जन करता रहे। जिसकी कीर्ति व इतिहास जीवित नही वह पक्षियो की उडान के समान, जो न पदचिन्ह स्थापित करती है और न कोई लकीर ही बनाती है – नाश को प्राप्त हो जाती है।

पाश्चात्य शिक्षा के कारण आज अधिकाश व्यक्ति यह धारणा बना बैठे हैं कि भारत का इतिहास ही नही। यदि हमारा इतिहास नही होता तो हजारो वर्ष पर्यन्त भीषण उत्पात और विपत्तियो को झेल कर भी आज हम पचास करोड की सख्या मे जीवित नही होते, जब कि कुछ जातियो के तो आज नाम ही इतिहास की धरोहर मात्र समझे जाते हैं।

महाभारत से पूर्व हम क्या थे, जिस समय शेष ससार पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहा था उस समय हमारे यहा वेदो तथा आगम निगमो की ज्योति जल रही थी। महाभारत के पश्चात् हमारा पतन होता चला गया और एक दिन यह स्थिति आ गई कि

हमे निर्बल और असगठित समझ कर पदाक्रान्त कर दिया गया। यह क्रम छठी सातवीं शताब्दी तक चलता रहा। उसके उपरान्त लूट-खसोट बन्द सी होकर पडौस के राज्यो की सीमाएँ भारत की ओर बढने लगी और कुछ समय के अतर्गत हम पराधीन हो गए। उस पराधीनता की बेडियो से मुक्ति हेतु हमने कई बार प्रयास भी किए किन्तु जोश के साथ, होश के साथ नही। जाट, राजपूत और मराठे यदि एक हो गए होते तो एक गुलामी के बाद अगरेजो की दूसरी गुलामी हमे सहन नही करनी पडती। इस्लाम ने भी हमारे वैभव और सस्कृति को बिगाडा और ईसाई मत के कुचक्रो ने हमे इस योग्य भी नही छोडा कि हमारी अपने ही प्रति जो आस्था थी उसे भी समझ सके। हमे यह भी ज्ञान नही रहा कि अपना क्या है ? और पराया क्या ? हम क्या थे और क्या हो गए ? तीर्थो के पडे, पुजारियो की पोथियो तथा राव-भाटो की बहियो और मगधसूत परम्पराओ के होते हुए भी हमारे इतिहास का क्रम तोड दिया गया। इतिहास का क्रम तो क्या टूटा मानो हमारी रीढ ही टूट गई। एक और भयकर परिणाम विदेशीयता के आगमन से यह निकला कि सभ्यता और सस्कृति के मूलाधार धर्म के प्रति भी हमारे अडिग माने जाने वाले विश्वास डगमगाने प्रारम्भ हो गए। पराए धर्म और उनकी छोटी छोटी बाते भी हमे अच्छी लगने लगी। धीरे-धीरे हम उनके प्रति आकर्षित भी होने लगे। परिणामस्वरूप आज भारत मे करोडो व्यक्ति ऐसे देखने मे आते हैं जो भारतीय होकर भी मुसलमान और ईसाई बनने के कारण अभारतीय हो गए।

उल्लिखित समस्त परिस्थितियो का बोध हमको इतिहास से ही हुआ। इतिहास से ही हम यह जान सके कि हमारे यश, गौरव की सुरभि जो कि देश विदेशो मे व्याप्त थी, धीरे-धीरे अपकीर्ति मे परिवर्तित क्यो होती चली गई ? और क्यो हम उसे नही रोक सके ? अस्तु, यह सिद्ध है कि इतिहास ही हमे जागरूक बनाता है। इतिहास ही जन जागृति का आधार होता है। पिछली भूलो का ज्ञान करा कर इतिहास ही हमको यह पाठ पढाता है कि भविष्य मे इन भूलो को फिर न दुहराया जाए। इतिहास से ही हमको शक्ति मिलती है। प्रगति की भावना को स्नेह प्रा त होता है, धर्म मे रुचि बढती है। यदि यह कहा जाए कि इतिहास ही पतन को रोकने का अमोघ अस्त्र है तो अतिशयोक्ति नही होगी इसलिए यह अत्यावश्यक है कि इतिहास के ह्रास को रोका जाए।

विदेशी अभियानो और कुचक्रो से एव उनकी धर्मान्धताओ के कारण यद्यपि हमारे अधिकाश स्मारक नष्ट हो गए किन्तु आज भी अनेक स्मारक ऐसे विद्यमान है जो हमारे अतीत के इतिहास की हमको याद दिला कर हमे प्रेरणा प्रदान करते हैं जीवन को गतिशील बनाने के लिए। हमको प्रोत्साहित करते हैं नवजागरण को अपनाने के लिए और इसके साथ-साथ हमको आदेश भी देते हैं पुरातन के आदर्शो को न भुलाने के लिए।

यह सर्वविदित है कि जिसका इतिहास जीवित है वह मरा नही करता और जिसका इतिहास मिट गया उसे काल के गाल मे जल कर मिटना ही पडेगा, तो इतिहास जीवित कैसे रहता है ? इस ज्वाज्वल्यमान प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए हमे पूर्वकाल का सर्वेक्षण करना होगा। पूर्व काल मे कला, शिल्प और निर्माण को इतिहास का प्रमुख अङ्ग माना गया इसीलिए कि सैकडो वर्षो तक उनके रूप मे उस समय की निहित कीर्ति बनी रहे। मिश्र की सभ्यता पिरामिड तो दे सकती थी, देवालय नही। क्योकि सिरजनहार के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की उनके अन्दर सूझबूझ ही नही थी। यह सूझबूझ तो लाखो वर्षो के ज्ञानार्जन से भारत को ही मिल सकी। यही सूझबूझ उसके इतिहास को जीवित बनाए रख सकी। **कापरडाजी जैन तीर्थ** को भी उसी की एक कडी समझना चाहिए।

श्री कापरडाजी जैन तीर्थ का इतिहास भी इसी उद्देश्य से आपके समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक समझा गया, क्योकि भौतिकवाद की प्रधानता के इस युग मे इतिहास ही एक ऐसा माध्यम है जो आप सबकी और हमारी धर्म-भावना को निरन्तर जागृत एव उद्दीप्त रख सकेगा।

मन्दिरो का निर्माण क्यो ?

जैन धर्म के विषय मे यह एक सारभूत बात है कि मूर्ति-पूजा का सुव्यवस्थित मार्ग उसी की देन है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जैन धर्म की मूर्तिपूजा का खण्डन अपने ग्रथ सत्यार्थप्रकाश मे किया— यह बात अपने आप मे इस तथ्य को प्रगट करती है कि जैन धर्म मे मूर्ति-पूजा का प्रचलन कितना अधिक महत्वपूर्ण है। यदि स्वामी दयानन्द मूर्ति-पूजा का प्रचलन जैन धर्म से ही मानते थे—तो इस श्रेय का आधार भी यह सिद्ध करता है कि इस विषय मे जैन धर्म ही पूजा-परम्परा का सर्वोपरि प्रतीक है।

प्रतीक का प्रतिरूप ही प्रतिमा को मानना चाहिए। निराकार मे श्रद्धा रखना एक बहुत ही बडी बात है किन्तु उस निराकार का भी आकार हृदय मे स्थापित कर जो भावना जागृत की जाती है क्या उसे साकार बिम्ब (छाया) नही माना जाएगा ? फिर इससे तो यही उचित है कि उस बिम्ब को साकार मान कर ही प्रतीकात्मक आदर्श स्थापित किया जाए। इसी को सिद्धान्त मान कर इसी उद्देश्य मे अपने अस्तित्व को एकीभूत समझ कर जैन धर्म मे प्रतिमा-पूजन का कदाचित् प्रचलन हुआ जो अद्यावधि विद्यमान है। बडे से बडे सकट भी उसके इस विश्वास को कम्पायमान नही कर सके।

जैन समाज के विषय मे भले ही कुछ धारणाएँ प्रचलित हो गई हो, किन्तु यह कोई नही कह सकता कि निर्धन से निर्धन, अशिक्षित से अशिक्षित और अज्ञानी से अज्ञानी जैन भी उत्तमता से नीचे गिरा हो। यह उत्तमता रहन-सहन की, आहार-विहार की और

बोलचाल की होती है। यो तो इस असार ससार मे सासारिक दृष्टि से और भी कई उत्तमताएँ मानी जाती हैं किन्तु धर्म की मूलभूत बातो को जीवन मे ढाल लेने की जो उत्तमता होती है उसके जोड की दूसरी उत्तमता देखने मे नही आती। यही कारण है कि अपना इस उत्तमता को वर्तमान और आने वाली पीढियो के दिलो मे और भी अधिक गहराई से उतारने की दृष्टि से मन्दिर के रूप मे केन्द्रीभूत बना दिया गया। जैसा कि हम अपने इस आशय के विचार पहिले ही प्रकट कर चुके हैं कि इस्लाम ने यदि हमारी सस्कृति और स्मारको को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तो ईसाइयत ने उनके प्रति हमारे विश्वास को ही डिगा कर हमे अपने ही इतिहास के प्रति आश्वस्त नही रहने दिया। उसने जो शिक्षा-पद्धति हम पर थोपी उसमे हम टाई तथा सूट-बूट पहिनने के साथ-साथ अपनी अच्छाइयो को बुराई तथा विदेशी बुराइयो मे भी अच्छाई देख कर प्रसन्न होने लगे। धीरे-धीरे हम इस दिशा मे इतने रग गए कि अपने आगम निगमो को ही झूठा समझने लगे, अपनी प्रत्येक बात मे अविश्वास दिखाने लगे। तब इन पाश्चात्य विद्वानो ने हमारे सामने कुछ सिद्धान्त रख कर हमे शोध करना सिखाया। भूमि के अदर से मिट्टी के बर्तनो के टुकडो तथा कुछ लोहे की वस्तुओ को निकाल कर ससार के सम्मुख जो भारतीय सभ्यता सर्वाधिक प्राचीन थी उसको पीछे रख कर सुमेर और बेबोलीन की सभ्यता को आदि स्रोत घोषित कर दिया। जब कि सुमेर, बेबोलान और मिश्र की सभ्यताएँ प्रवासी भारतीय आर्यो की दी हुई हैं और वहा आज भी हमारी सभ्यता के लोक गीत गाए जाते हैं। उन्हे तो पहिले विष का भी ज्ञान नही था तभी तो आज तक भी वहा उसे विष-वेष ही कहा जाता है। अगरेजो के आने तक और जाने तक भी वहा भारतीय विष की बडी साख थी। इसी शिक्षा की यह देन समझनी चाहिए कि भारत मे आर्य अनार्य का झगडा पैदा हुआ और हम पावापुरी, शत्रुंजय, कोणार्क, मीनाक्षी तथा दक्षिण के अनक भव्यतम देवस्थानो को भुलाकर ताज महल के गीत गाने लगे।

पुरातत्व के इन्ही सिद्धान्तो के अनुसार अब यह सिद्ध होता जा रहा है कि भारत ही महानताओ का आधार रहा। यह भी बडी प्रसन्नता की बात है कि इनके ये सिद्धान्त ही अब इसे स्वीकार करने लगे हैं कि भारत ही सभ्यता का आदि स्रोत रहा। यहाँ भी अब निर्विवाद रूप से माना जाने लगा है कि भारत ने ही मन्दिर-निर्माण की पावन परम्परा को जन्म दिया। यह परम्परा पुनीत तो है ही परन्तु साथ ही यह पुण्य-पुञ्जो का अविरल स्रोत भी है।

जब साधारण से साधारण उपकार करने वाले के प्रति भी कृतज्ञता के दो शब्द कहना शिष्टाचार माना जाता है तब फिर हमारे ऊपर अनेक प्रकार के उपकार करने वाले के प्रति यदि उसका बिम्ब स्थापित कर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की जाती है तो क्या
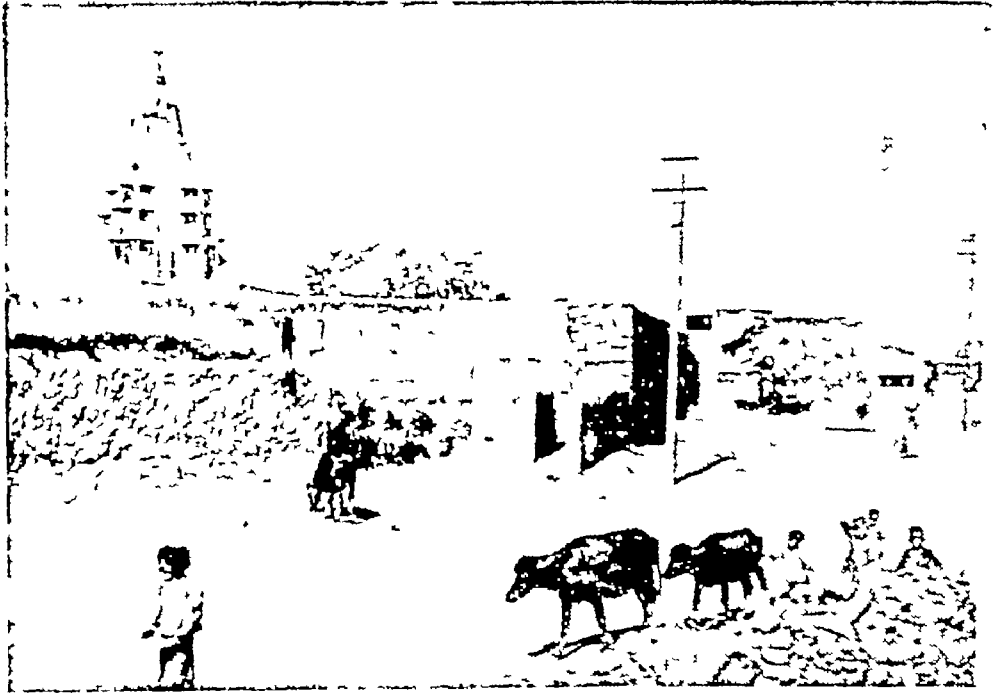
श्री कापरडाजी मदिर का सडक से दृश्य
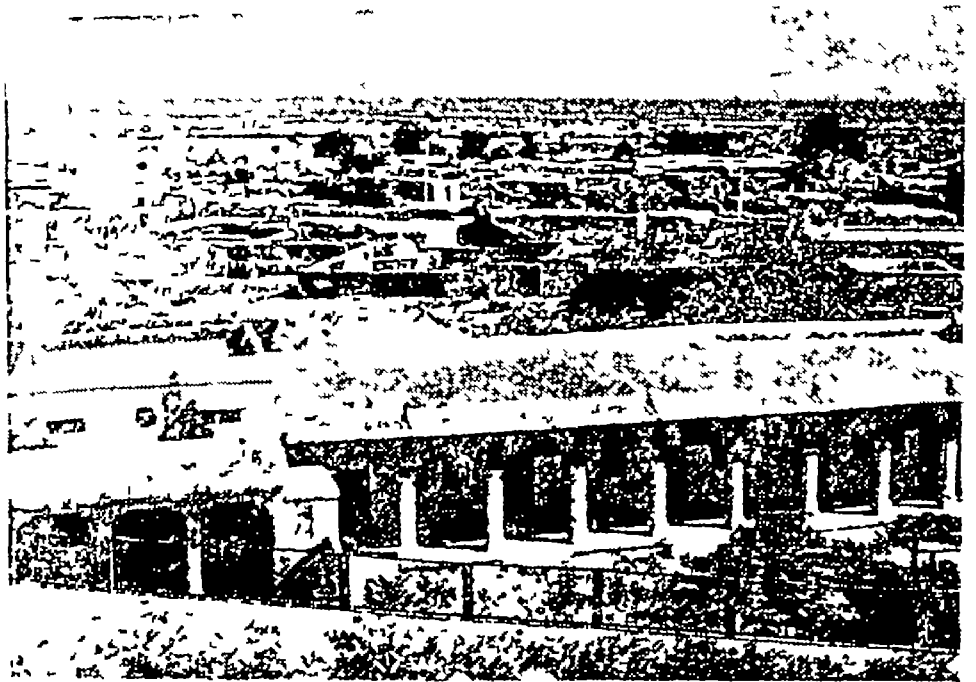
श्री कापरडा ग्राम का दृश्य
तथा
मदिरजी के धर्मशाला का एक भाग

पेढी का दृश्य
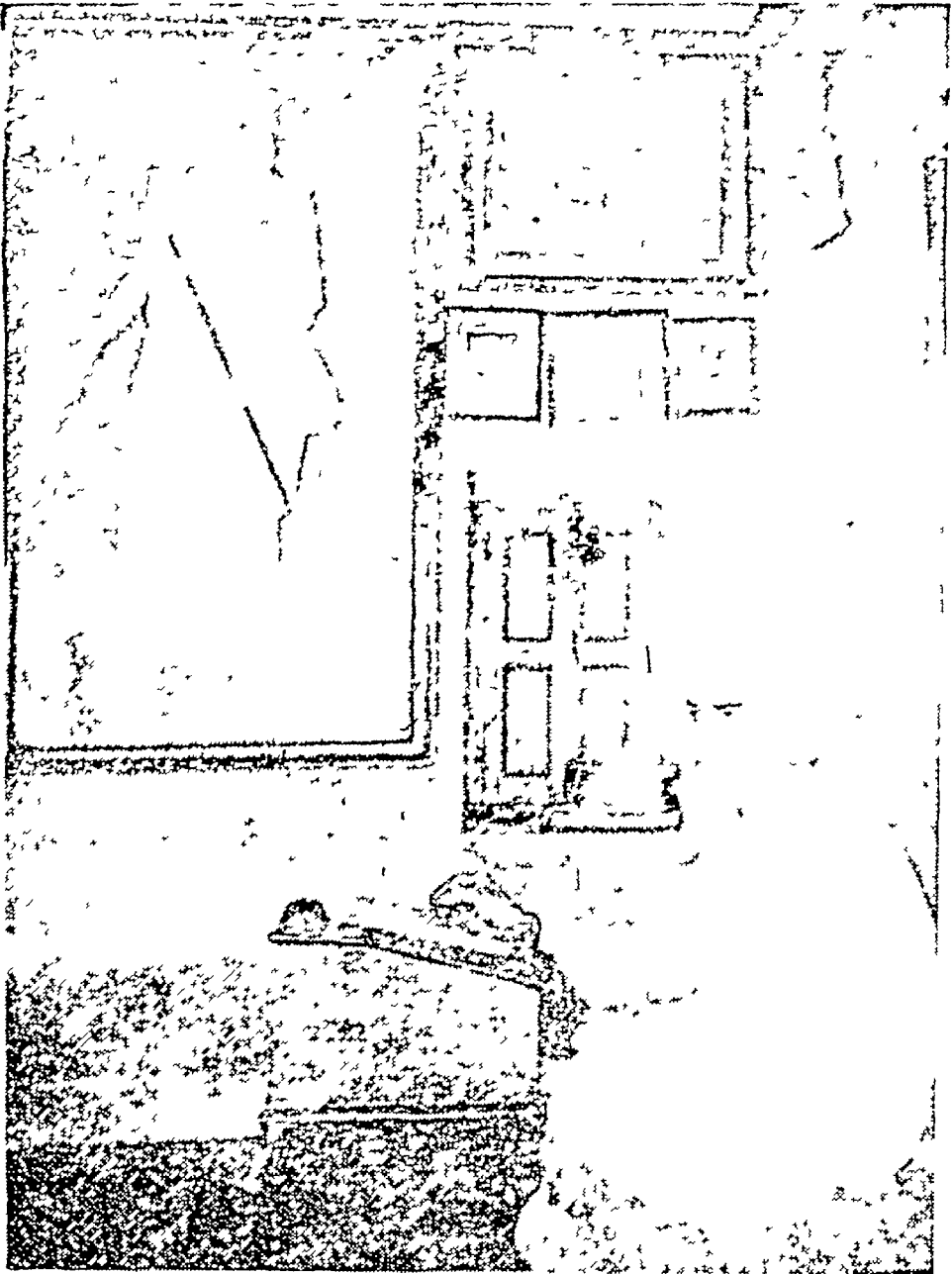
पोल के ऊपर वर्तमान चालू मुख्य द्वार के सामने का दृश्य
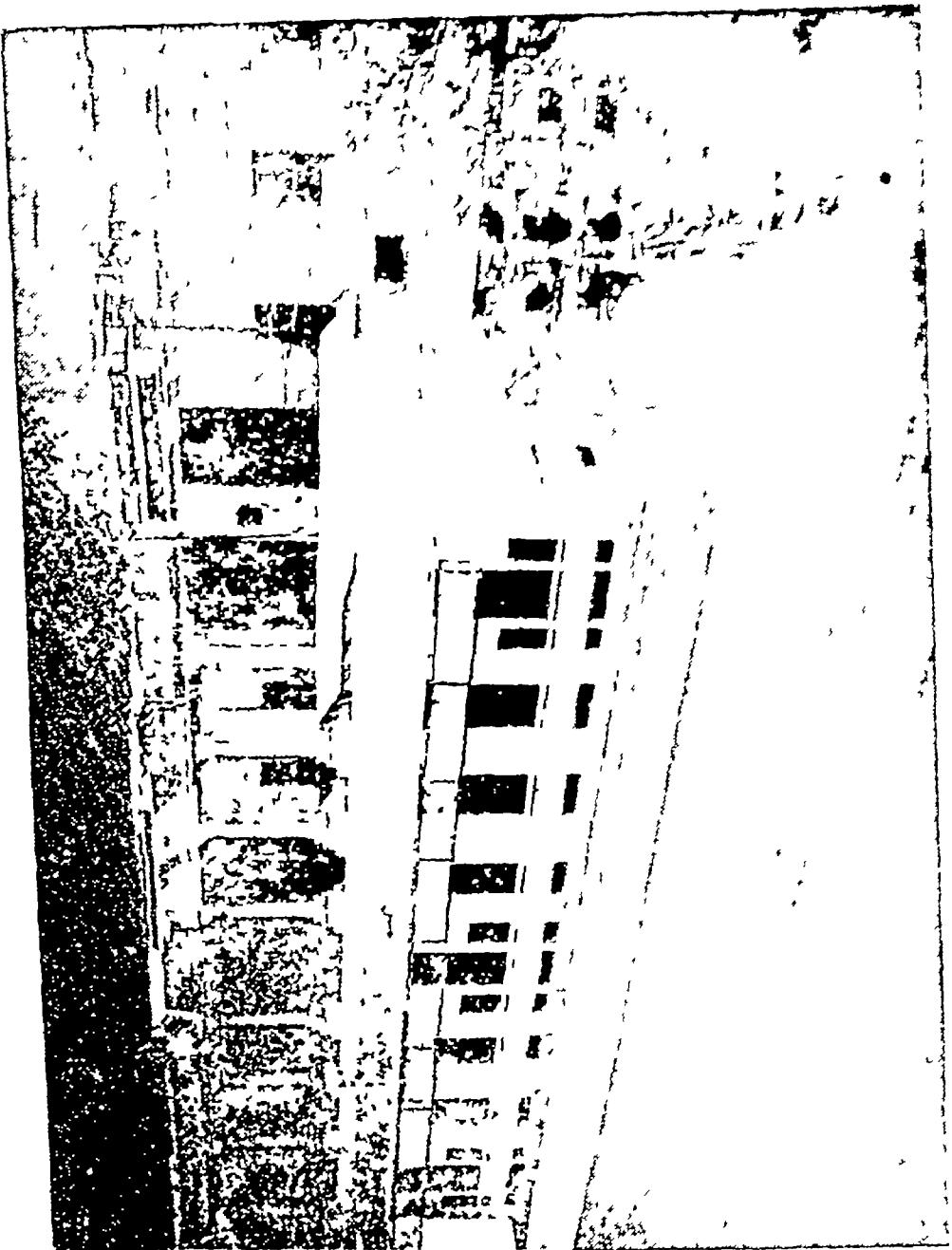
वह सर्वोपरि सभ्यता का लक्षण नही है ? जव हम अपने पूर्वजो के चित्र अपने घरो मे रख कर उनकी पूजा-अर्चना करते हैं तो फिर धार्मिक दृष्टि से तीर्थंकरो की मूर्तियो का निर्माण कर उनकी पूजा अर्चना करना किस प्रकार अनुचित कहा जा सकता है। आज विश्व के प्रत्येक देश मे राष्ट्रीय नेताओ के नाम पर स्मारक आदि वना कर तथा उन की मूर्तियाँ आदि स्थापित कर उनका सम्मान किया जाता है तव फिर धार्मिक दृष्टि से मन्दिरो का निर्माण करना क्योकर अनुचित कहा जा सकता है। मन्दिर-निर्माण करना एव उसमे मूर्त्ति की स्थापना करने का महान पवित्र उद्देश्य यह है कि हमने अपने सम्मुख एक आदर्श रख कर उसके पद चिन्हो पर चलने की मनोकामना कर सके।

मन्दिर-निर्माण की दृष्टि से जैन धर्म द्वारा भारतीय सस्कृति एव स्थापत्य कला मे महत्वपूर्ण योगदान किया गया है। इतना ही नही, जैन मन्दिरो मे आज भी जितनी स्वच्छता एव सुव्यवस्था देखने को मिलती है उतनी अन्यत्र प्राय देखने को नही मिलती। यह तथ्य भारत सरकार द्वारा नियुक्त अय्यर कमीशन स्वय देश भर के धार्मिक स्थानो का अवलोकन कर लिखित रूप मे स्वीकार कर चुका है।

कापरडा गॉव का उत्थान और पतन

अखण्ड भारत की पश्चिमी सीमा के म य मे सर्वाधिक शक्तिशाली राव जोधाजी का वसाया हुआ जोधपुर नगर विद्यमान है। देश का विभाजन होने के उपरान्त तो जोधपुर को सीमावर्ती नगरो मे सर्वोपरि प्रमुखता प्राप्त हुई—इसी के पास लगभग वत्तीस मील दूर अजमेर मार्ग पर पूर्व दिशा मे यह गॉव स्थित है। राव जोधा के समय से पूर्व यहाँ कृपक जनो की ढाणियाँ थी। वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति हेतु यहाँ कपडो की हाट लगा करती थी। धीरे धीरे यह हाट बढती गई और इसकी जनसख्या भी लगभग आठसौ तक पहुच गई। आगे चल कर इस हाट के कारण ही इसका नाम **कापड़हाट** पड गया और यही नाम बाद मे अपभ्र श होकर कापरडा रह गया। राव चापा को जिनकी वीरता की कहानिया आज तक सुनी जाती हैं इस गाव से बहुत प्रीति थी। उनका बनाया हुआ चापासर नामक सरोवर अद्यावधि विद्यमान है। अनुमानत चौदहवी शताब्दी के अत मे ढाणियो को गाव का रूप प्राप्त हुआ। दक्षिण-विजय करने वाले राठौडो की राजधानी जोधपुर और असुरेश राजा वलि के नगर बिलाडा के मध्य होने से इसकी स्थिति वहुत अच्छी थी। धीरे धीरे यहा का व्यापार बढता गया। यहाँ अकेले ओसवाल जैन समाज के ही लगभग पाँच सौ घर थे।

वि० स० १६७८ वैशाख सुदि पूर्णिमा सोमवार को मन्दिर की प्रतिष्ठा होने के उपरान्त इसकी उन्नति प्रारम्भ हुई। वि० स० १८७२ मे रची गई यतिवर्य गुलाबविजयजी

महाराज की एक कविता के अनुसार इन घरो की सख्या निर्धारित की गई है। यही सख्या वि० स० १९५० तक घटते घटते चालीस मात्र रह गई।

परन्तु बाद मे ऐसा अनुमान है कि वि० स० १९७० तक जैन आवास रिक्त हो गए। अगरेजी शासन आने तक यहा नमक भी बनता था किन्तु जब उसका ठेका हो गया और छोटे मोटे कपडा आदि के धंधे भी बद हो गए तब यह स्वाभाविक था कि उसका प्रभाव गॉव वालो पर भी पडता। अस्तु, इस समय यहा सिर्फ एक घर जैन का रह गया है।

जिस गाव मे अनाज, शाक-सब्जी, वस्त्र और आवश्यकता की सभी चीजे यहाँ तक कि पूजा के लिए पुष्प तक मिल जाते थे उसी गाव में आज एक ही महाजन का घर यह कितने आश्चर्य की बात है।

यद्यपि आज इसकी स्थिति एक छोटे से गाव जैसी ही है किन्तु मन्दिर-निर्माण के उपरान्त लगभग २५० वर्ष पर्यंत इसकी बहुत अच्छी स्थिति रही। चांपासर और गाव के तीन ओर इसकी उस खुशहाली के चिन्ह आज भी पाए जाते हैं। मन्दिर का प्रमाण इसके लिए पर्याप्त है, क्योकि इतना अच्छा मन्दिर वही बनेगा जहा इसकी पूजा व्यवस्था सम्भालने वाले अनेक घर हो।

गॉव की भूमि एकफसली है। १८९३ ई० के बन्दोबस्त के समय इसका क्षेत्रफल ५२ हजार बीघा था जब कि आज है। वर्षा का औसत १२" से १५" तक है। ऊसर, धौरा, मगरा, खेडा, लूणा व टेकरी के अतिरिक्त पीली, राती व काली, मटियाली जमीन भी है। अधिकतर भूमि बारानी है, मिठानी व खारीथा पीवल भी है। जन सख्या प्रारम्भ म कुल ६७८ ही थी जब कि मध्यकाल के अन्तिम चरण मे आबादी बढी और आज १ ०० की है।

नौ हजार की चाकरी वाले इस गाव के जागीरदारो को मरुधराधीश के यहा से बाह-पसाव का सम्मान प्राप्त है। जोधपुर की डावाडोल स्थिति के कारण यहाँ की राजनैतिक स्थिति भी कभी स्थिर नही रही। महाराजा मानसिह का साथ देने के कारण राठौड फतेह-सिंह को वि स १७६० मे जालोर के आधे रायथल गाव को कापरडा का पट्टा इनायत हुआ। पाचवी पीढी के आसपास उसकी जागीर जब्त होकर वि स १८०८ मे उर्जनोत भाटियो को दे दी गई। बीच बीच मे किन्ही और के पास भी रही होगी, किन्तु उर्जनोतो के पास आने के बाद इन्ही के पास है। वर्तमान ठाकुर माधोसिहजी छठी पीढी मे हैं।

यो तो मन्दिर के कारण गाव की खुशहाली बढती जा रही है किन्तु डामर की सडक बनने से इसकी उन्नति पर बहुत प्रभाव पडा है और गाव दिनोदिन उन्नति की ओर अग्रसर होता जा रहा है, अन्यथा पहिले बिलाडा रेलवे के सिलारी स्टेशन पर उतर कर ४ मील पैदल चलना पडता था जिस से यात्रियो को बडा कष्ट उठाना पडता था।

भूमि का जौहर तो देखिए, पाच पाच छ छ मील दूर से ही मन्दिर का शिखर कापरडा गाव का आभास करा देता है। भूमि का सौभाग्य तो देखिए कि नवकोटि के स्वामी मरुधराधीश, जिनशासन सम्राट, परमतीर्थोद्धारक, प्रबल प्रतापी, तपोगच्छाधिपति श्रीमद विजयनेमी सूरीश्वरजी महाराज, पन्यास मुनि हर्षविजयजी महाराज, मरुधर-केसरी मुनि ज्ञानसुन्दरजी महाराज आदि अनेक महान पुरुष यहा पधार चुके हैं। भूमि की महानता तो देखिए कि अब वही मन्दिर तीर्थ का रूप धारण कर प्रगति-पथ पर अग्रसर हे।

धन्य धन्य भानाजी भंडारी – महिमा बडी तुम्हारी !

'जननी जने तो भक्त जन, के दाता के सूर।
नही तो रहिजे वाँजडी, मती गमावे नूर॥'

महाभाग भानाजी भडारी के विषय मे स्वर्णाक्षर लिखने से प्रथम हम अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करना अत्यावश्यक समझते हैं।

ओसवालो मे कई गोत्र हैं, जिनकी सख्या १४४४ तक बताई जाती है। फिर डोसी आए। उनके विषय मे कहावत प्रसिद्ध है कि 'डोसी फेर कोई होसी' अर्थात् इस जाति मे इतने गोत्र हैं कि आज तक गिनती नही हुई। इन्ही मे से भडारी भी एक गोत्र है। इसकी उत्पत्ति के सबध मे ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर विदित हुआ है कि नाडोल मे चौहानो का राज्य वि० स० १०१७ मे हुआ। यह अनुमान मारवाड के इतिहासकारो का है और 'ओसवाल जाति का इतिहास' नामक ग्रथ के अनुसार उनके प्रताप का सूर्य १०२४ से १०३९ पर्यन्त चमकता रहा। उस समय यह गद्दी अत्यन्त शक्तिशाली और वैभवसपन्न समझी जाती थी। यहाँ के राजा राव लाखण के २४ रानियाँ थी। सयोगवश उनमे से एक के भी सन्तान नही हुई। उसी समय विहार करते हुए जैन मुनि आचार्य श्री यशोभद्र सूरिजी महाराज नाडोल पधारे। राजा ने उनका भव्य स्वागत किया। आचार्य महोदय के धर्मलाभ के प्रभाव से २४ रानियो के २४ पुत्र उत्पन्न हुए। उन्ही मे से बारहवे पुत्र का नाम राव दूदा था। वे प्रारम्भ से ही मार काट और मृगया आदि हिंसात्मक कार्यों से दूर रहते थे। आचार्य श्री के सान्निध्य मे उन्होने और भी अधिक ज्ञान प्राप्त कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया। यह घटना वि० स० १०३९ की है। चूकि राज्य के भडारो की देखरेख इन्ही के सुपुर्द थी और ये भडारीजी के नाम से प्रसिद्ध थे, इसलिए इनके वश वाले भी भडारी कहलाए। आगे चलकर यही इनका गोत्र बन गया।

इस सम्बन्ध मे प्रमाण यह है कि धर्मनिष्ठ इन भडारियो ने कई मन्दिर बनवाए, प्रतिष्ठाएँ व अजन शलाकाएँ करवाई। उनके तत्सबधी शिलाकनो मे 'लाखण सन्तानीय' लिखा मिलता है।

भानाजी के पूर्वज जैतारण कब आए, यद्यपि इसका अभी तक कोई निश्चय नही हुआ, किन्तु ऐतिहासिक आधारो पर अनुमान लगाया जा सकता है कि नाडोल के पतन के उपरान्त और राठौडी शासन के जमने पर अर्थात वि० स० १४५० के बाद ही आए। यही बात इनके जन्म और मृत्यु काल के विषय मे है। उस समय महाराजा सूरसिंह जीवित थे और उन्होने वि० १६४१ से १६७६ तक राज्य किया। इनके पुत्र गजसिंह हुए। मन्दिर-प्रतिष्ठा के समय वे वहाँ उपस्थित भी थे और प्रतिष्ठा हुई वि० १६७८ मे म० सूरसिंह के समय मे ही अर्थात वि० १६६० मे आप जैतारण मे हाकिम हो गए और उनकी मृत्यु के समय के पहिले वि० १६७६ मे आप दीवान बन गए थे। इससे यह सिद्ध है कि आपका जन्म वि० १६१८ से २५ और मृत्यु १६६० से ६५ के मध्य हुई। आपके पिता का नाम अमराजी भडारी था।

मारवाड के इतिहास मे स्व० श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने लिखा है 'वि० १६६१ मे महाराजा सूरसिह दक्षिण विजय कर जोधपुर पधारे। वे वहाँ से काफी धन लाए, इसलिए उन्होने एक बडा यज्ञ करवाया। तदुपरात भाना भडारी ने राज्य की सेना के साथ जैतारण व मेडता पर अधिकार किया।' इससे यह स्पष्ट है कि आप सेनापति भी रहे। फिर वि० १६७६ मे आपको दीवानगी मिली—इसकी पुष्टि ओसवालो के इतिहास से भी होती है।

आपके तीन पुत्र हुए—१ श्री नारायण भडारी, २ श्री नरसिह भडारी व ३ श्री सोढा भडारी। कापरडाजी के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की आसन शिला पर अकित है। वि० स० १६७३-८३ व ६५ मे श्री कापरडाजी के जो रास रचे गए—उनसे भी यही सिद्ध होता है। भानाजी के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र नारायणजी जैतारण के हाकिम हुए। उनके पुत्र श्री ताराचदजी भडारी हुए। इन्होने जो ख्याति प्राप्त की वह ओसवाल जाति के लिए गौरव की बात है।

उन दिनो जोधपुर के शासक लोग हर किसी का विश्वास नही करते थे। जिनकी ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और श्रमशीलता आदि से तथा जिनकी पारिवारिक महानताओ से वे पूर्ण परिचित हो जाया करते थे उन्ही को राजकीय सेवाओ मे स्थान दिया जाता था। तदतिरिक्त दुर्ग-सरक्षण के अधिकार तथा नरेशो की व्यक्तिगत सेवाओ मे तो राज्य-सेवा मे रहे हुए अत्यधिक जाने-पहिचाने, विश्वस्त और जान हथेली पर रखकर जीवन-यापन करने वाले व्यक्ति ही प्रवेश पा सकते थे। इसीसे यह जाना जा सकता है कि ताराचन्दजी भडारी की उस समय कितनी गौरवपूर्ण स्थिति रही होगी, जिन्होने कि न केवल देश-दीवानगी का ही कार्य किया बल्कि तन दीवानगी (निजीमत्री) के पद पर

तीर्थ के मूल निर्माता

हत साहस मे अमृत रस छिडका, महिमा बडी तुम्हारी ।
लहराया अनुपम छवि सागर, धन्य धन्य भानाजी भडारी ॥

रहकर भी अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इनका समय वि० स० १७१४ के आसपास ठहरता है।

इस परिवार की इसलिए भी सराहना करनी चाहिए कि कुछ पीढियो तक गौरवपूर्ण अच्छे से अच्छा जीवन व्यतीत करते हुए भी धर्म के प्रति इनकी आस्था रही। ओसवालो के इतिहास मे पृष्ठ १२१ पर लिखा है कि 'इन्होने अपनी दीवानगी के समय सैकडो प्रतिमाओ की अजन शलाका कराई तथा धर्म कार्य किए। इनके वशजो के पास जो हस्त-लिखित पुस्तक है उससे भी इसकी पुष्टि हो चुकी है।

श्री मडोर पार्श्वनाथ के मन्दिर मे भगवान की प्रतिमा के आसन पर अकित है—

'वि म १७२३ वर्षे माह वदि ८ सोमवारे महाराजाधिराज श्री जसवन्तसिहजी कुँवर पृथ्वीसिह, मेघराज विजय राज्ये ओसवाल जाते भण्डारी भानाजी पुत्र नारायण तदपुत्र श्री ताराचन्द पुत्र पौत्रादिक तेन श्री पार्श्वनाथ बिम्बे करोति। प्रतिष्ठा श्री खरतरगच्छ आद्य पक्षे श्री जिनदेव सूरी, श्री जिनचन्द्र सूरी पट्टे श्री जिनहर्ष सूरीजी लिखि कुशल सूरी नामी है इति श्री कित्तीधरा उपाध्याय।

मडोर के पुराने किले की खुदाई के समय एक मुसलमान श्रमिक को ग्यारह प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थी। लगभग आठ वर्ष पूर्व उससे इन प्रतिमाओ को श्री अजीतराज भण्डारी ने प्राप्त किया और अहमदाबाद बिकने से रोका। उनमे एक प्रतिमा खडित थी शेष दस का विवरण इस प्रकार है—

१ जोधपुर म्यूनिसिपल के उच्चाधिकारी श्री कौल साहब अपने घर ले गए।

२ श्री रामनिवासजी मिर्धा, ससद सदस्य अपने गाँव कुचेरा, जिला नागौर ले गए।

३ श्री कन्हैयालालजी भसाली (राजा साहब) जो बखत सागर की पाल के आगे रहते हैं अपने घर ले गए जो उनके निजी मन्दिर मे बिराजमान है और उसकी सदैव सेवा-पूजा होती है। अन्य सात प्रतिमाओ को श्री मुकनराजजी भसाली ने खरतरगच्छ के उपासरे के मन्दिर मे स्थापित की। इन्ही मे से एक प्रतिमा अहमदाबाद के पास शान्ति नगर मे भगवान शातिनाथजी के मन्दिर के लिए श्री धर्मसागरजी महाराज के आदेश से दी गई। शेष ६ प्रतिमाएँ उपरोक्त उपासरे मे विद्यमान हैं जो कि निम्न लिखित तीर्थंकरो की हैं—

१ आदीश्वर भगवान
२ श्री अजीतनाथ स्वामी
३ श्री सम्भवनाथजी
४ श्री सुविधिनाथजी
५ श्री सुमतिनाथजी
६ श्री सुमतिनाथजी

इन प्रतिमाओ पर निम्न लेख अँकित हैं—

'सम्वत १७२३ वर्षे माह वदी ८ दिने भडारी भानाजी पुत्र नारायण पुत्र ताराचन्द अजीतनाथ बिम्ब प्रतिष्ठित खरतरगच्छ श्री जिनहर्ष सूरी'— इसी तरह उपरोक्त ६ प्रतिमाओ पर लेख अकित है—

इस लेख की पुष्टि हस्तलिखित पुस्तक से भी हो चुकी है। ये प्रतिमाएँ कुल कितनी थी यह सही रूप से विदित नही होता किन्तु इतना तो निश्चित है कि यवनो के भय से छिपा दी गई थी, यह भी सम्भव है कि अन्य अनेक प्रतिमाएँ अभी तक भूमि के अन्दर ही विराजमान हो या मूर्ति चोरो के हाथ पड कर किसी विदेशी सग्रहालय की शोभा वढा रही हो, क्योकि यह स्पष्ट है कि ताराचन्दजी ने अनेक प्रतिमाओ की अजनशलाका कराई थी।

श्री ताराचदजी के पुत्र श्री रूपचदजी भण्डारी ने अपने जैतारण निवासस्थान पर एक शिखर-बन्द मन्दिर भी बनवाया और विमलनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान की उस पर निम्न लेख अकित है—

'सम्वत् १७७४ रा वर्षे शाके १६३९ प्रवर्तमाने वैसाख सुदि पूर्णमासी रविवासरे महाराजाधिराज श्री अजीतसिहजी कुंवर अभयसिहजी विजय राज्ये रावजी लाखणजी सन्तानीय नाम भडारी गोत्रे, श्रावक श्री भानाजी सुत श्री नारायणजी सुत श्री ताराचन्दजी भार्या सतोषदेजी तस्य आत्मज सुत भडारी श्री प्रमचदजी रूपचन्दजी भार्या सुश्राविका पने रूपादेजी सुत श्री विजयचन्दजी, रतनचन्दजी, चिरू शिवचन्दजी, राजसीजी, हरकचदजी, किशनचन्दजी समवेत स्वकुटुम्ब परथापता श्री विमलनाथ बिम्ब ओरापित श्री खरतर-गच्छ आचार्य श्री जिनमाणक्य सूरि पट्ट श्री जिनचन्द्र सूरिजी।

श्री रूपचन्दजी के पुत्र शिवचन्दजी राज्य मे सेनापति थे जो चाँचोडी गाव के पास अल्पायु मे ही युद्ध मे काम आए और उनकी धर्मपत्नी जैतारण मे सती हुई। उनके पुत्र हरकचदजी ने शत्रुंजय तीर्थ पर एक मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित की। यह वर्णन श्री देवचन्द्रजी महाराज के जीवन चरित्र मे लिखा है। ओसवालो के इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है।

सम्वत् १७८४ आषाढ सुदि १० रविवार को ओसवाल वश के भण्डारी भानाजी के पुत्र भण्डारी नारायणजी, उनके पुत्र भण्डारी ताराचन्दजी, उनके पुत्र भण्डारी रूपचन्दजी, उनके पुत्र भण्डारी शिवचन्दजी, उनके पुत्र भण्डारी हरकचन्दजी ने यह देवालय बनवाया और पार्श्वनाथजी की एक प्रतिमा स्थापित की तथा खरतरगच्छ के पण्डित देवचन्द्रजी ने उसकी प्रतिष्ठा कराई।

यह लेख शत्रुंजय पहाड के छीपावसी के एक देवालय के बाहर दक्षिण दिशा की दीवाल पर अकित है।

श्री देवचन्द्रजी के जीवन चरित्र मे जो लेख है उसमे निम्न लिखावट विशेष है—

शाके १६५८ ओस वश वृहद शाखा नाडुल गोत्रना भडारी ये देवालय समराव्युँ अने पार्श्वनाथ नी एक प्रतिमा अर्पण करावी, वृहत खरतरगच्छना जिनचन्द्रसूरिना विजय राज्ये महामहोपाध्याय राजसागरजी के शिष्य पडित देवचन्दजी ए प्रतिष्ठा करी। दोनो लेखो मे कोई विशेष अन्तर नही हे।

इस प्रकार छठी पीढी तक भानाजी की कीर्तिपताका उनके वशजो द्वारा लहराई जाती रही। वास्तव मे भानाजी बडे पुण्यशाली व्यक्ति थे। उनके नाम पर उनके वशज आज भी **भानावत** कहलाते हैं और मूर्ति पूजा पर श्रद्धा रखते हैं। श्री हरकचदजी के उपरात कोई मदिर बना हो या प्रतिमाओ की अजनशलाका कराई हो ऐसा उल्लेख नही मिलता किन्तु उनके मन मे यह लगन अवश्य रही कि श्री कापरडाजी तथा जैतारण के मन्दिरो की सेवा-पूजा व्यवस्थित रूप से होती रहे। इसी हेतु उन्होने श्री कापरडाजी के लिए तीस रुपया मासिक और जैतारण मन्दिर के लिए साढे सात रुपये मासिक मिलने की सनदे राज्य से प्राप्त करली थी। इसके जमा खर्च का उल्लेख कापरडाजी की बहियो मे स० १९५० तक मिलता है। वे सनदे इनके वशजो के पास अद्यावधि सुरक्षित हैं। कापरडाजी के लिए डोली की भूमि भी मिली हुई थी जो पुजारियो के पालन-पोषण हेतु उन्ही के अधिकार मे रही और बाद मे राज्य द्वारा जब्त कर ली गई। इसी प्रकार जैतारण मदिर के लिए भी डोली की भूमि राज्य से मिली हुई थी जो आज पर्यंत मन्दिर के ही अधिकार मे है।

यह परम सौभाग्य और पुण्य शृखला का हेतु ही माना जाएगा कि ६ पीढी तक महाभाग भानाजो के वँशजो ने धर्म ध्वजा लहराई, निरन्तर १४० वर्ष पर्यन्त आदर्श स्थापित किया। उसका उन्हे सुफल भी मिला। वे राज्य के उच्च पदो पर आरूढ रहे। उन्होने मान-सम्मान का जीवन व्यतीत किया।

हत साहस मे अमृत रस छिडका, महिमा बडी तुम्हारी।
लहराया अनुपम छवि सागर, धन्य भानाजी भडारी॥

भानाजो के वश का विवरण

भडारीजी का परिवार नाडोल से आकर कब और कहाँ बसा? अब इसका निर्णय करना यद्यपि कठिन कार्य समझना चाहिए तथापि इतना तो निश्चित है कि इनके पिता अमराजी के उपराँत ६-७ पीढी तक इस परिवार ने ख्याति प्राप्त की।

भानाजी का वश-विवरण इस प्रकार है –

१ भानाजी के तीन पुत्र हुए ' १ नारायणजी, २ नरसिंहजी और ३ सोढाजी। नारायणजी राज्य सेवा मे हाकिम रहे।

२ नारायणजी के पुत्र श्री ताराचन्दजी भडारी हुए। उन्होने इस परिवार को सर्वाधिक मान-सम्मान प्रदान किया। वे देश-दीवान रहे और तन-दीवान भी अर्थात् राजा के निजी मत्री भी। उन्होने सैकडो ही जैन प्रतिमाएँ बनवा कर उनकी अजनशलाका करवाई।

३ ताराचन्दजी के पुत्र श्री रूपचन्दजी भडारी हुए। उन्होने जैतारण मे भगवान विमलनाथजी का मन्दिर बनवाया, जो वहाँ के बाजार मे आज तक भी विद्यमान है।

४ रूपचन्दजी के पुत्र श्री शिवचन्दजी भडारी हुए। वे बाईस वर्ष की अवस्था मे ही युद्ध मे काम आए। उनकी स्त्री सती हो गई।

५ शिवचन्दजी के पुत्र श्री हरकचन्दजी भडारी हुए। उन्होने शत्रुञ्जय तीर्थ मे एक मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया व पार्श्वनाथजी की प्रतिमा भेट की और वि० स० १७८४ आषाढ शुक्ला दशमी को श्री देवचन्द्रजी महाराज से प्रतिष्ठा कराई।

६ हरकचन्दजी के पुत्र श्री खूबचन्दजी भडारी हुए। उनके दो पुत्र हुए —१ श्री उदयचन्दजी और दूसरे श्री नथेचन्दजी।

(अ) श्री उदयचन्दजी के ३ पुत्र हुए–

१ श्री जालमचन्दजी २ श्री सालमचन्दजी ३ श्री कुन्दनचन्दजी।

सालमचन्दजी के पुत्र समरथचन्दजी हुए। श्री कुन्दनचन्दजी के पुत्र रघुनाथचन्दजी हुए और इनके हणवन्तचन्दजी और तत्पुत्र श्री खेमचन्दजी भण्डारी हुए, वर्तमान में विद्यमान हैं।

(ब) श्री नथेचन्दजी के पुत्र चन्दनचन्दजी हुए, उनके फूलचन्दजी और उनके भी दो पुत्र हुए दुर्गाचन्दजी व रिखबचन्दजी।

(स) श्री दुर्गाचन्दजी के भूरचन्दजी और उनके पुत्र शान्तिचन्दजी गोद आए जिनका देहान्त हो गया।

(क्ष) श्री रिखबचदजी के दो पुत्र श्री नौरतनचन्दजी व दूसरे श्री विशालचन्दजी हैं।

(७) श्री उदयचन्दजी के बडे पुत्र जालमचन्दजी के पुत्र श्री मेहताबचन्दजी भण्डारी हुए।

(८) श्री मेहताबचन्दजी के पुत्र जबरचन्दजी हुए।

(९) श्री जबरचन्दजी के तीन पुत्र हुए—१ श्रीमानचन्दजी, दूसरे उमरावचन्दजी और तीसरे मानकचन्दजी। बड़े पुत्र हणवन्तचन्दजी गोद गए हैं।

मूल द्वार उत्तर की तरफ का दृश्य
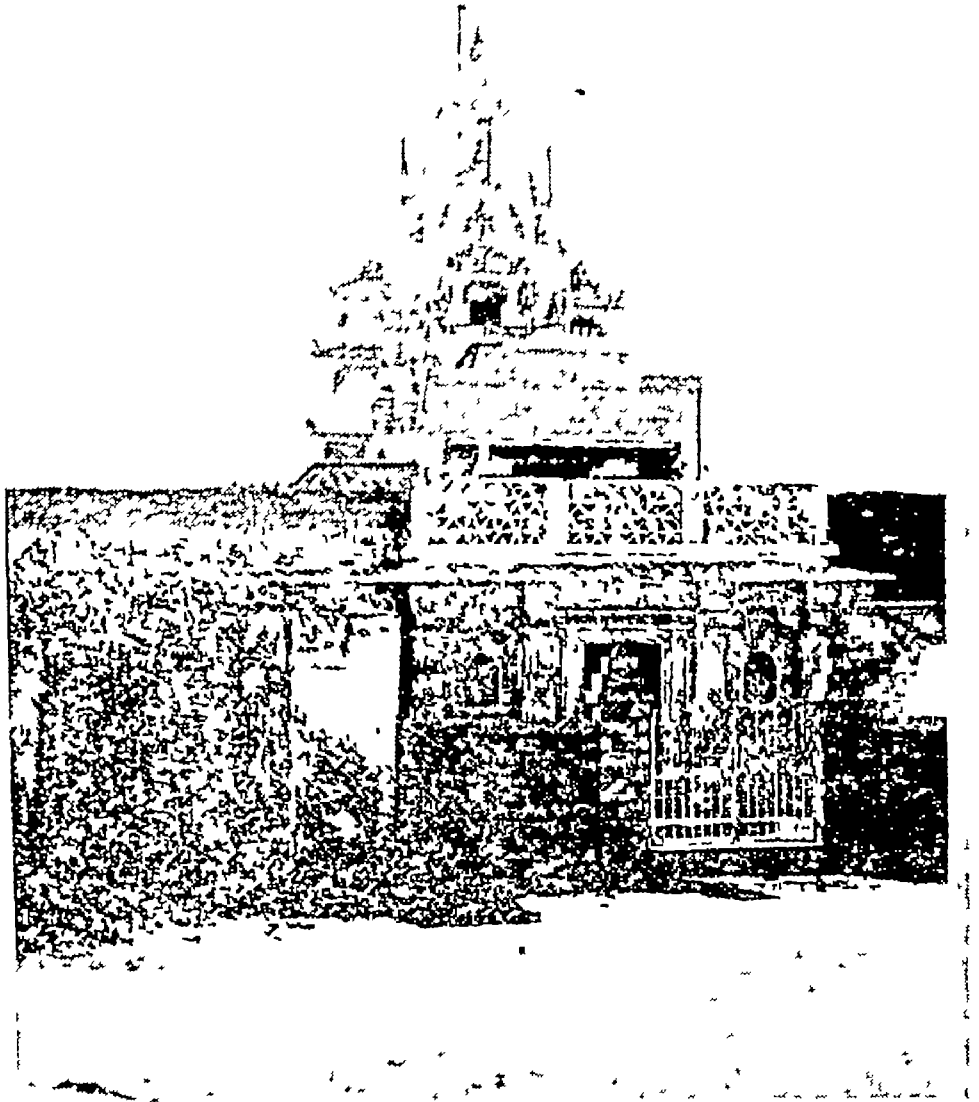
मूल द्वार उत्तर की तरफ के तोरण का दृश्य

मदिर के दक्षिण व पश्चिम की तरफ बने हुये कमरो का दृश्य
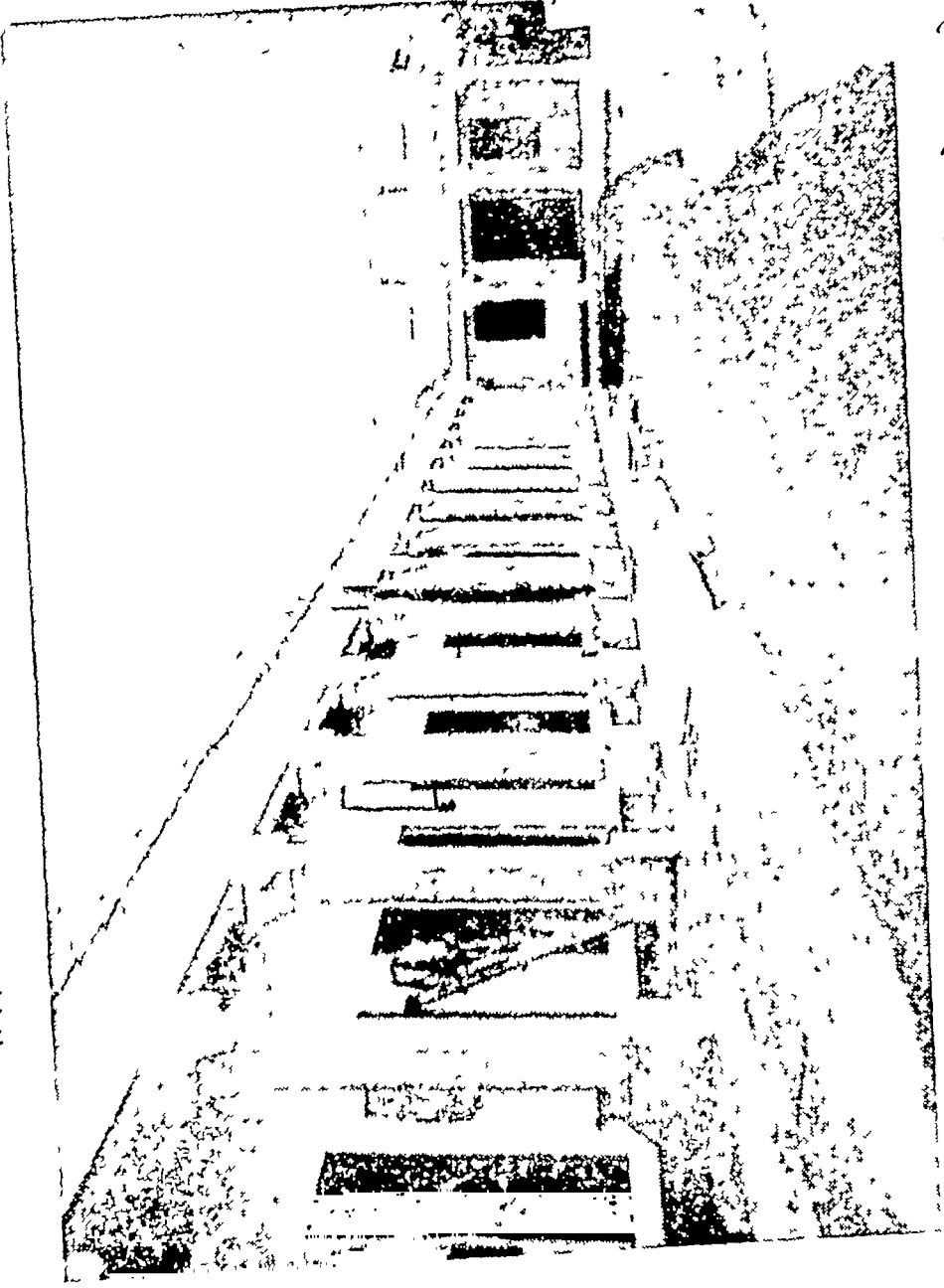
श्री पाचूलालजी वैद्य फलोदी व श्री बशीलालजी बोरा पीपाड निवासी की ओर से निर्मित कमरे व बरामदे

मूल द्वार उत्तर की तरफ के तोरण का दृश्य
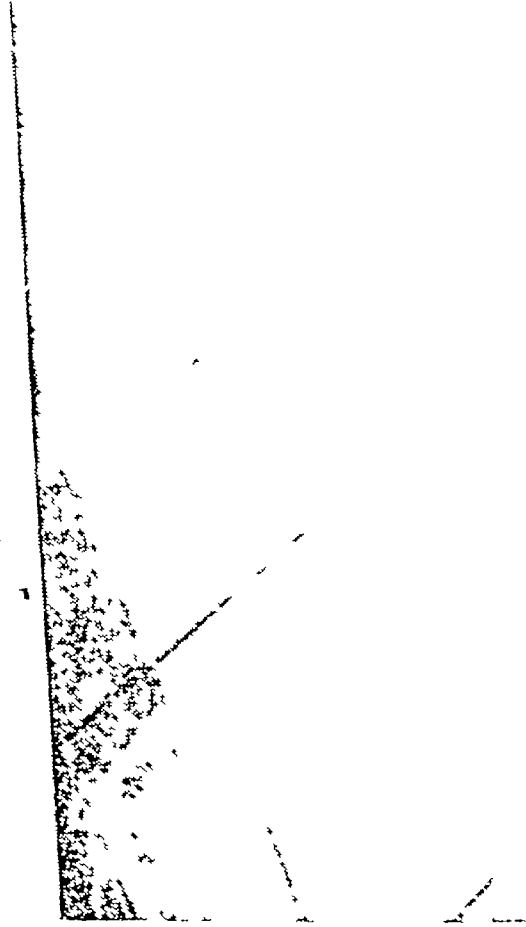
मदिर के दक्षिण व पश्चिम की तरफ बने हुये कमरो का दृश्य
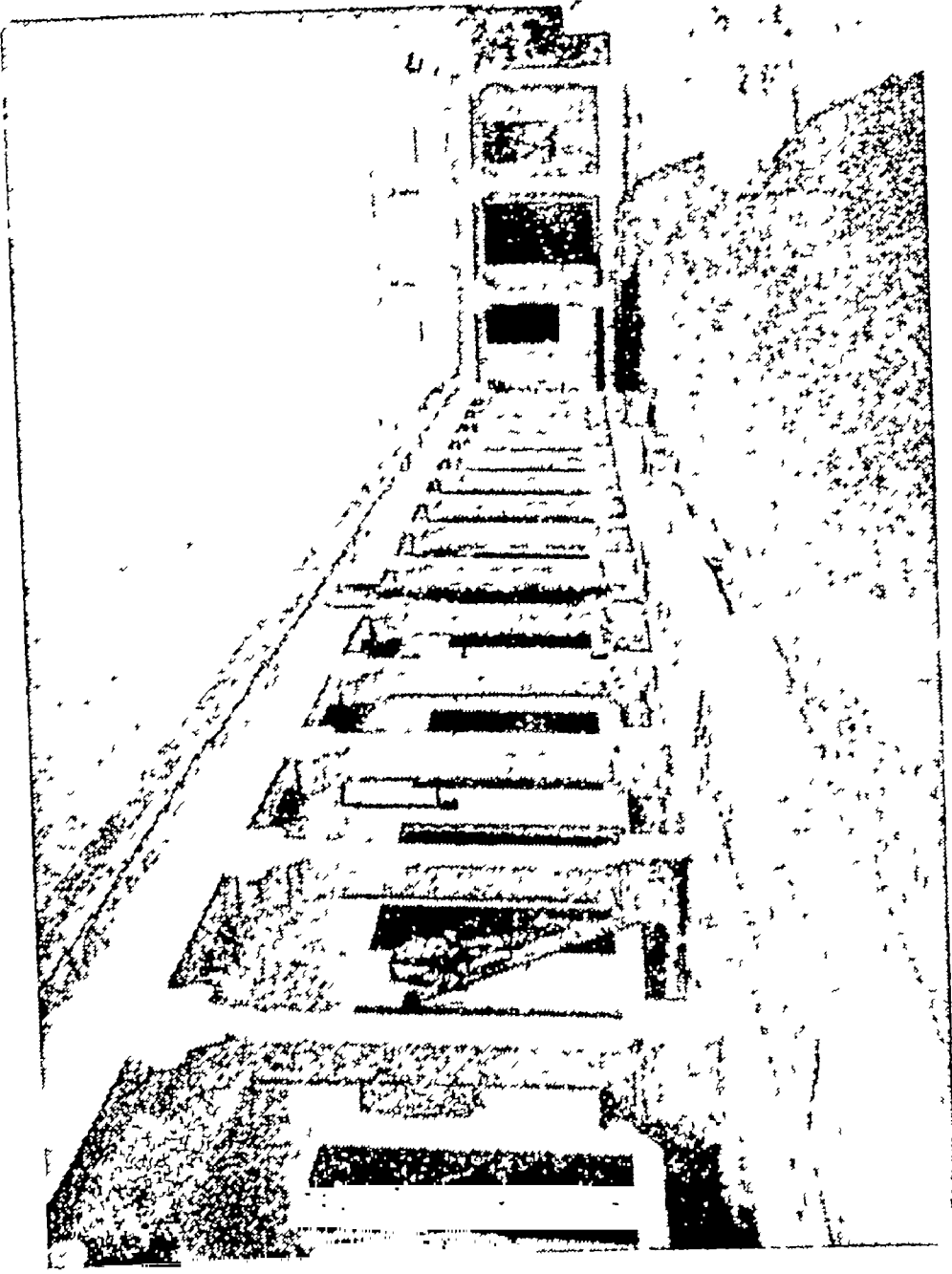
श्री पाचूलालजी वैद्य फलोदी व श्री वशीलालजी बोरा पीपाड निवासी की ओर से निर्मित कमरे व बरामदे
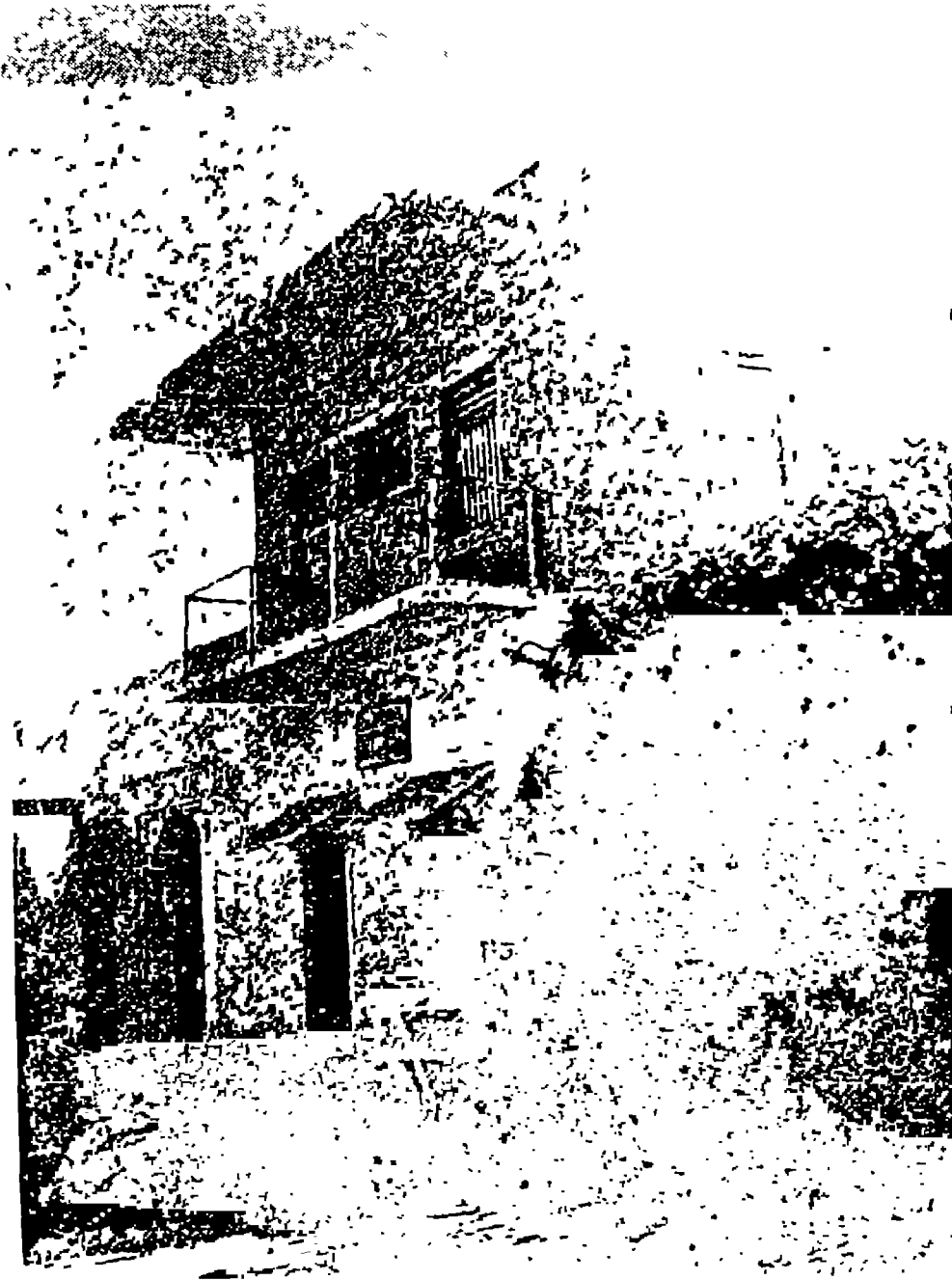
श्री मानकलाल मनसुखभाई अहमदाबाद की ओर से बनाया हुवा बडा कमरा (नीचे)
ऊपर की मजिल का कमरा बोनरा निवासी अनराजजी की ओर से बनाया हुवा है

(अ) श्री उमरावचन्दजी भण्डारी के पुत्र श्री मनमोहनचन्दजी हैं।

(आ) श्री मानकचन्दजी के पुत्र श्री अनोपचन्दजी हैं।

१० श्री जवरचन्दजी के बडे पुत्र श्रीमानचन्दजी भण्डारी हैं। आप धर्मनिष्ठ और कर्तव्यपरायण हैं। जैन तीर्थ श्री कापरडाजी व नाकोडाजी तीर्थों की व्यवस्थापक समितियो के सदस्य हैं। आपका जीवन सादा किन्तु स्वभाव उच्चकोटि का है। आपके पुत्र श्री सुपार्श्वचन्दजी बडे विनम्र और मिलनसार हैं।

श्री कापरडाजी का इतिहास

सक्षेप मे

श्री तीर्थ पान्थ रजसा विरजी भवन्ति,
तीर्थेषु बम्भ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नर स्थिर सपदा स्यु,
पूज्या भवन्ति जगदीशमथार्ययन्त ॥

आरम्भानुक्रमण

पिछले लेखो मे हमने यह निवेदन किया कि इतिहास आवश्यक क्यो होता है। इतिहास का क्रम टूटा तो मानो हमारी रीढ ही टूट गई और इस विषय मे हमारा पुनर्जागरण हुआ तो हमने अपने आपको आबद्ध पाया। पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति और उसके उन सिद्धातो के निरूपण के अनुरूप अज्ञानतावश, ईर्ष्या द्वेष-वश, अथवा प्रमाद व दासतावश, सुमेर बेबोलीन तथा नील घाटी सभ्यता को आदि स्रोत मान कर हमे बाहर से आया हुआ बता कर आपस मे ही लडाने मे सफलता प्राप्त कर ली। यह प्रसन्नता की बात है कि जल्दी ही हमारी निद्रा भग हो गई और स्वतत्र होते ही हमने वास्तविकता को पहिचान लिया। पाश्चात्य सिद्धान्तो की पोल कुछ तो अग्रजो के सामने ही खुलने लगी थी और कुछ हमारे भारतीय विद्वान तथा अन्य देशो के विद्वान खोलने मे अनवरत सलग्न हैं। शोध-कार्य जारी है।

चूकि कापरडाजी का इतिहास लिखा जा रहा है इसी हेतु कापरडाजी गाँव का परिचय देना जरूरी समझा गया और मन्दिर-निर्माता श्री भानाजी भडारी तथा उनके वश का वर्णन भी प्रस्तुत है। अब मदिर का इतिहास लिखा जाता है।

मन्दिर-निर्माण का बीजारोपण

वैसे तो जैतारण से जोधपुर जाने आने का मार्ग ही वही था जिस पर होकर भानाजी कई बार आए गए किन्तु एक बार क्या हुआ कि जोधपुर राज्य मे अकाल पडा। चूकि

भानाजी उस समय जैतारण के हाकिम थे इसलिए उस क्षेत्र की राहत-व्यवस्था का भार उन्ही को सौपा जाना स्वाभाविक था। उन्होने जो योजना इसके लिए बनाई, वे उसे तत्कालीन दीवान से स्वीकृत करा लेना चाहते थे इसी चक्कर मे अकाल-पीडितो को राहत पहुँचाने मे उन्हे विलम्ब हो गया। बस, फिर क्या था दुष्ट स्वभावीजनो को राजा के कान भरने का समय मिल गया अतएव उन्हे चार कर्मचारी भेज कर जोधपुर बुलवाया गया।

जैतारण जोधपुर से लगभग ६५ मील दूर है। उस समय न रेले थी और न डाक की शीघ्र व्यवस्था ही चालू थी। आवागमन ऊटो, घोडो तथा बैलगाडियो (छकडो) द्वारा ही होता था। जब भानाजी राज्य-कर्मचारियो के साथ चलते चलते कापरडा गाव के पास पहुचे तब सूर्योदय हो चुका था इसलिए नित्य कर्म, शौचादि से निवृत्त होकर सामायिक प्रतिक्रमण आदि करने चापासर तालाब की पाल पर ठहर गए। अन्य जन भी नित्य कर्म करने लगे। भण्डारीजी तो नवकार मन्त्र के जाप मे तल्लीन हो गए और अन्य जनो ने भोजन तैयार करने के उपरान्त उनसे भोजन करने का निवेदन किया। उन्होने कहा आप सब भोजन करें। मैं तो अपने इष्ट देव का दर्शन करने के पश्चात् ही भोजन करूगा। कर्मचारियो ने भी धर्म पर दृढता से आरूढ ऐसे पुरुष के मार्ग मे बाधा पहुचाना उचित नही समझा। अन्तत कुछ व्यक्तियो ने गाव मे जाकर समस्या का हल खोजना चाहा। उन्होने उनसे पूछा—आपका इष्टदेव कौन है ? भानाजी ने कहा—

'मैं जैनधर्मावलम्बी हूँ और मेरे तीर्थङ्कर ही इष्टदेव हैं। मैं तब तक अपने नियम का पालन करता रहूँगा जब तक कि इस शरीर मे प्राण विद्यमान रहेगे।'

अस्तु कुछ लोग कापरडा गॉव गए और जैन मन्दिर की खोज की तो उन्हे विदित हुआ कि यहाँ कोई शिखरबन्द मदिर तो नही है पर एक उपासरे मे यतिजी महाराज रहते हैं, वहाँ जैन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। यह समाचार भडारीजी को सुनाया गया तो वे इतने प्रसन्न हुए मानो उन पर कोई विपत्ति है ही नही। उन्होने विधिपूर्वक दर्शन किए और यतिजी के पास जाकर मागलिक श्रवण किया। उस समय वहाँ कितने उपासरे थे यह तो नही कहा जा सकता किन्तु दो उपासरे तो आज भी विद्यमान हैं। ऐसे ही एक उपासरे मे यतिजी महाराज रहते थे। श्रावक लोग वही दर्शन कर यतिजी से मागलिक व अन्य धर्मोपदेश आदि श्रवण किया करते थे।

यतियो की महिमा

पूर्वकाल मे यतियो का बडा सम्मान था। छोटे-बडे सभी गावो मे जैन रहते और वे ही उनके जीवन-निर्वाह की व्यवस्था किया करते थे। यतियो का यह प्रमुख कार्य होता कि वे उन्हे धर्म पर दृढ रखते। जैन धर्म पर यतियो का जो उपकार है उसे कभी भुलाया

नही जा सकता। यदि यह कहा जाय कि जैन धर्म की बहुमूल्य निधि को उन्होने ही सरक्षण दिया, जैन साहित्य को उन्होने ही नष्ट होने से बचाया और आज जैन धर्म की जो जयजयकार होती हे उसका बहुत कुछ श्रेय उन्ही को है।

यतिजन बडे इष्टबली हुआ करते थे। समय-समय पर वे जो चमत्कार दिखाते—उसकी प्रसिद्धि आज तक भी घर-घर मे चर्चा का विषय बनी हुई है। उनका कार्य ही यह था कि जैनागमो का पठन-पाठन और सयम-तप का जीवन व्यतीत करना। यही कारण था कि जैन-अजैन सभी उन पर श्रद्धा रखते थे। और जब से उनकी उपेक्षा प्रारम्भ हुई तभी से जैन धर्म निर्बल होता चला गया।

कापरडा मे उस समय जो यतिजी रहते थे उनका नाम तो विदित नही हो सका किन्तु वे विख्यात अवश्य रहे होगे। उन्होने भडारीजी से पूछा—

'आप उदास क्यो हैं ?'

चूकि यतिजी इष्टबली थे, स्वरो और आकृति के ज्ञाता थे, इसलिए उनका दुख जानने मे उन्हे विलम्ब क्यो होता ? उन्होने केवल इतना ही उपदेश दिया कि आप **शान्ति-पूर्वक भगवान पार्श्वनाथ के चरणों मे आस्था बनाए रखें,** सब कुशल ही होगा। आप इस विपत्ति को विपत्ति न समझ कर भगवान की कोई देन ही समझिए। आप निश्चित समझिए कि यह आपकी कोई परीक्षा ली जा रही हे। आप इसमे अवश्य उत्तीर्ण होगे। न केवल उत्तीर्ण ही होगे बल्कि आपका मान-सम्मान भी होगा और आप किसी बडे कार्य का श्रेय भी प्राप्त करेगे। भडारीजी यह सुन कर बडे प्रसन्न हुए। वे अपने सौभाग्य को सराहते हुए सरोवर पर आए और सब के साथ भोजन कर जोधपुर पधार गए।

ऐसा कहा जाता है कि रात को यतिजी को स्वप्न हुआ कि एक ऐसा सौभाग्यशाली व्यक्ति कापरडा आएगा जो एक बडा भारी जैन मन्दिर बनवा कर अपना नाम अमर करेगा और यह सब शीघ्रातिशीघ्र होने वाला है। उसी रात को जोधपुर नरेश को स्वप्न हुआ कि जैतारण का हाकिम सर्वथा निर्दोष है। प्रात काल राजा ने दीवान को बुला कर भडारीजी के विषय मे पूरी और सही जाँच करने का आदेश दिया। दीवानजी ने कहा मैंने पूरी जॉच कराली है, आप के पास जो शिकायत आई हे वह असत्य एव भ्रामक है। किसी दुष्ट का ही यह कार्य हो सकता है। जब भडारीजी जोधपुर पधारे तब उनका दरबार मे स्वागत किया गया और पॉचसौ एक मुद्राएँ प्रदान की गई और उन्ही कर्म-चारियो के साथ उन्हे वापिस जैतारण सम्मानपूर्वक विदा किया गया।

मार्ग मे कापरडा पहुँच कर यतिजी के दर्शन करते हुए उन्होने समस्त घटना अर्ज की और कहा—'गुरा साहब ! यह सब आप ही की कृपा का परिणाम है।' यतिजी ने कहा—

'भंडारीजी ! आप बडे सौभाग्यशाली हैं। किसी अशुभ कर्म का उदय होने से ही यह विपत्ति आई थी। आप अपने धर्म पर दृढ रहे, इसीलिए आपका कुछ बिगाड नही हुआ।'

भण्डारीजी ने कहा—'यतिजी ! आपका वचन मानना ही मेरा धर्म है। मेरी ऐसी इच्छा है कि यहाँ एक शिखरबन्द जैन मन्दिर बनवाया जाए। मुझे राज्य-सम्मान मे जो ये पाँच सौ एक मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं वे इस शुभ कार्य के लिए आपकी सेवा मे अर्पित हैं, और भी मुझ से जो कुछ बन पडेगा वह सब कुछ मैं करूँगा।'

यतिजी ने प्रसन्नतापूर्वक उन मुद्राओ को एक थैली मे भर कर उसके ऊपर वर्द्धमान विद्या से सिद्ध किया हुआ वासक्षेप डाल दिया और उसे भण्डारीजी को सौपते हुए आदेश दिया कि इसको उल्टा मत करना, मन्दिर की आवश्यकता पूरी होती रहेगी और उस कैर वृक्ष के नीचे एक मूण (मटका) मे धन दबा पडा है, उसको भी निकलवा लेना। यह सब अधिष्ठायक देव की आज्ञा से ही उन्होने बताया।

बुरे मे भी भला

भंडारीजी का पुण्य प्रबल था इसलिए बुरे मे भी भला हो हुआ। उनकी धर्म मे अटूट श्रद्धा थी इसलिए विपत्ति भी वैभव बन गई। उनकी नीयत साफ थी इसलिए उनकी इज्जत बेदाग बच गई। यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे हाथ मे वास्तव मे कुछ भी नही है। जितना अभिमान हम दिखाते हैं वह तृणवत् भी नही है। हम भले ही सौ वर्ष अथवा हजार वर्ष का सामान जुटाले, किन्तु वस्तुत एक पल की होनहार भी हमारी अपनी नही, जो कुछ है वह सब किसी अदृश्य शक्ति का ही है। इस अदृश्य शक्ति को हमारे पूर्वज मनीषियो ने भली भाति समझा और समझ कर कुछ सिद्धान्त और नियम निश्चित किए, जो उस शक्ति से मिलाने का माध्यम स्वीकार किए गए। वह माध्यम क्या है ? वह और कुछ नही—केवल उन आस्थाओ तथा उन क्रियाओ का ही नाम है जिन्हे हर व्यक्ति धर्म का नाम देकर अपने मन और मस्तिष्क मे सजोए रखता है।

पुण्यो की प्रबलता, कर्मो की हीनता और पापो का उदय ये सब उसी स्थिति मे होते हैं जिनको कि हम **भिन्न भिन्न सस्कार** का नाम देते हैं। अस्तु भण्डारीजी के साथ जो कुछ हुआ वह सब सस्कार की ही बात थी। जब किए हुए का दड उन्होने भुगत लिया, जब दोषो का परिहार हो गया तब दुष्ट जन जो कुछ उनका बुरा कराना चाहते थे वह भी भले मे परिवर्तित हो गया।

प्रारम्भ

अब भण्डारीजी को यह निश्चय हो गया कि मन्दिर-निर्माण मे धन की कमी तो
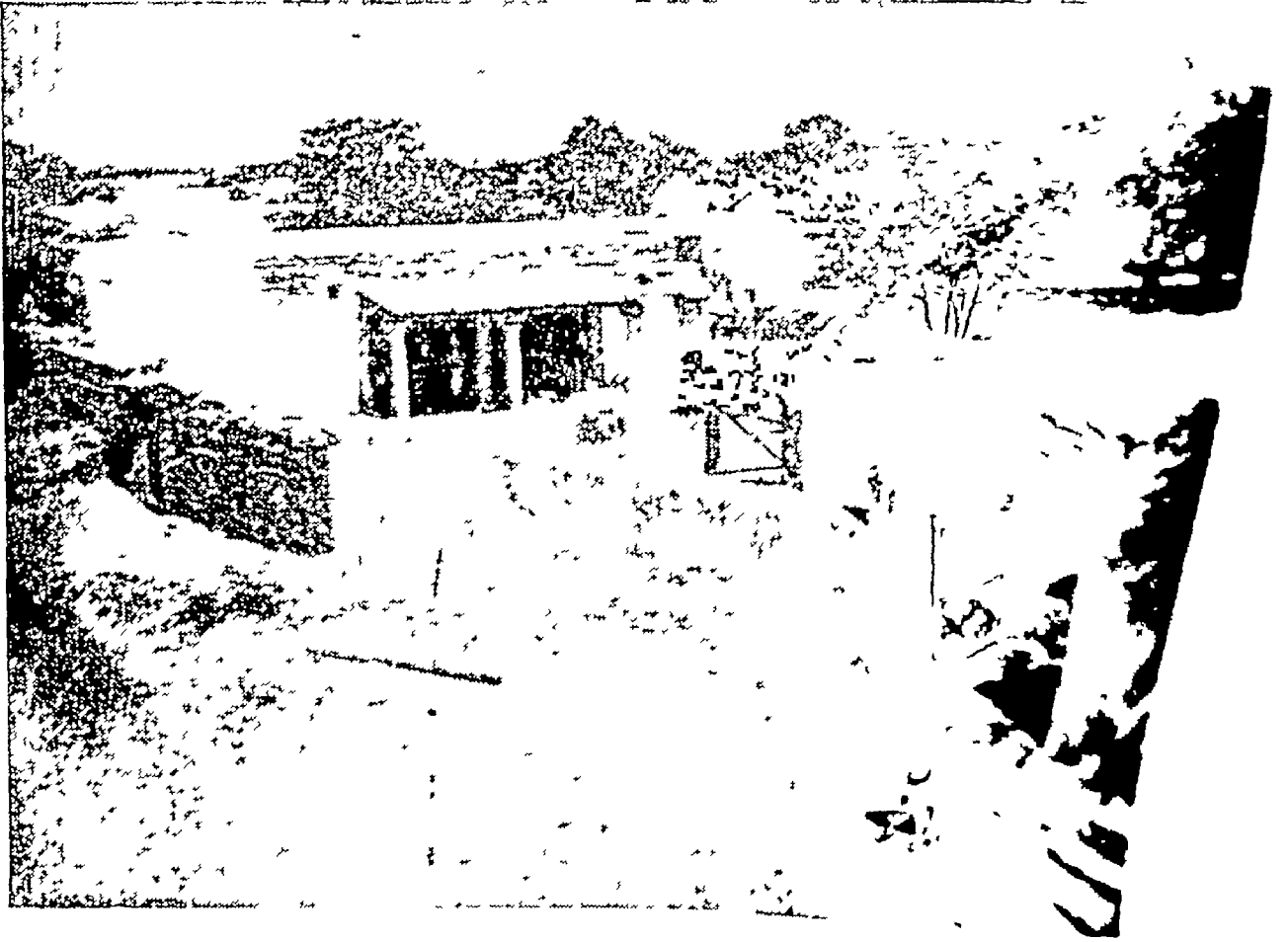
प्राचीन जैन उपाश्रय

इसी उपासरे मे यतिजी महाराज विराजते थे जिनके उपदेश से मंदिर [illegible]

❀ स्वर्ण महोत्सव के उपलक्ष मे पाश्र्व कुंज बनाया जा रहा है

पुराना जेन उपाश्रय

यह मदिर से थोडी दूरा पर है। इसमे मदिर की ओर से मदिर पूजने वाला पुजारी रहता है।

नही रहेगी । जब यतिजी महाराज ने उन्हे वासक्षेप विद्या का चमत्कार दिखा दिया तो उन्होने यह निश्चय कर लिया कि कापरडा गाव मे ऐसा मन्दिर बनना चाहिए जो शिखरबद हो, भव्य हो और भविष्य मे जन-मानस मे तीर्थ का रूप धारण करने वाला हो। अतएव यतियो के कथनानुसार भूमि शोधी गई और शुभ मुहूर्त मे उन्ही के कर-कमलो से आधार-शिला रखवादी गई ।

एक साधारण मकान बनाने के लिये भी मानचित्र तैयार करना पडता है तब इतना विशाल देवालय विना मानचित्र के कैसे बन जाता अस्तु, चतुर स्थापत्य कलाविदो की नियुक्ति की गई । इसके लिए उस समय सोमपुरे ही प्रसिद्ध थे । उन्हे बुलवा कर भण्डारीजो ने अपनी इच्छा से उनको अवगत कराया । इनकी इच्छा थी कि मन्दिर ऐसा होना चाहिए जो मारवाड व अन्य तीर्थो से कुछ विशेषता लिए हुए हो । उनके इसी दृष्टिकोण के अनुसार चित्र बनाया गया जिसमे मन्दिर चार मजिल का और चौमुखा दिखाया गया । मन्दिर का मुख्य स्तर भी भूमि से लगभग सौ फुट ऊँचा रखा गया । सब कुछ निश्चित होने पर अपने अपने परिवारो को लेकर सोमपुरे भी कापरडा पहुँच गए और वि स १६६० मे कार्य प्रारम्भ कर दिया गया । सोमपुरे के अतिरिक्त अन्य कई शिल्पियो को कार्य पर लगाया गया । मुख्य शिल्पी जोराजी थे । उनके वशज आज भी चाणोद मे रहते हैं और मन्दिर-निर्माण का ही कार्य करते हैं, कस्तूरजी दीपचन्दजी नाम है ।

होनहार

मन्दिर-निर्माण का कार्य लगभग ९ वर्ष चला । सोमपुरे जैसा इसे बनाना चाहते थे और भडारीजी की जैसी अभिलाषा थी यदि उसके अनुसार ही मन्दिर बनता तो न्यूनाधिक पन्द्रह वर्ष और लग जाते । इस कार्य को ठीक ढग से चलाते रहने के लिए भडारीजी ने किसी मुनीम आदि को न रख कर अपने द्वितीय पुत्र श्री नरसिहजी को ही रखा क्यो कि वासक्षेप तथा मटके वाली बात सब पर प्रगट होने जैसी नही थी । भडारीजी स्वय तो सरकारी अधिकारी होने के कारण उपस्थित रह नही सकते थे इसलिए उन्होने अपने पुत्र को समस्त व्यवस्था सौपदी और यतिजी की कही हुई बात भी भली भाति समझा दी । किन्तु होनहार को कौन टाल सकता है । एक दिवस नरसिहजी यह बात भूल गए और थैली व मूण दोनो को ही उलटा कर दिया उसके तुरन्त पश्चात सावधानी होने पर उन्हे बडा पश्चाताप हुआ और वे रोते-बिलखते यतिजी के पास गए । समस्त वृत्तान्त जानकर यतिजी ने किंचित्मात्र भी बुरा नही माना । उन्होने केवल इतना ही कहा 'अब शाति रखिए—होनहार ही ऐसी थी ।' अब यह कार्य स्थगित कर प्रतिष्ठा करा देनी चाहिए । उन्होने भडारीजी के पास भी सन्देश पहुचा दिया । समाचार पाते ही वे कारपडाजी आए और यतिजी की सेवा मे उपस्थित होकर निवेदन किया कि भूल का सुधार हो

जाता तो अधिक अच्छा था। यतिजी ने कहा 'समय पर ही जो कार्य हो जाता है वही हो जाता है। अब इससे अधिक सहायता करना मेरी शक्ति से परे की बात है। अब आप शीघ्र ही इसकी प्रतिष्ठा करा दीजिए।'

परस्पर विचार-विमर्ष के उपरान्त दोनो मे यह निर्णय हो गया कि मन्दिर के अनुरूप ही प्रतिमा होनी चाहिए।

प्रतिमा-प्राप्ति

भण्डारीजी की चिन्ता को कौन जान सकता है ? जितनी प्रसन्नता से उन्होने मन्दिर बनवाया, अन्त मे वह प्रसन्नता ही उनकी चिन्ता का कारण बन गई। उसका रूप था प्रतिमा और प्रतिष्ठा। यतिजी विचार विमर्श के उपरान्त उन्होने पाली मे पूज्य श्री जिन-चन्द्रसूरिजी महाराज पट्टालकार को विज्ञप्ति प्रदान की। यह घटनो वि स १६७० की है। वि० स० १६६५ मे श्री दयारतनजी महाराज ने कापरडाजी पर रास लिखा जो कि मूलत हिन्दी मे है किन्तु हमने तो उसका गुजराती अनुवाद ही देखा है जो कि श्रीमद् विजयधर्मसूरि शास्त्रविशारदजी महाराज द्वारा सशोधित किया जाकर ऐतिहासिक रास-सग्रह के नाम से प्रकाशित हुआ। भाग ३ पृष्ठ ५७ से ६० तक उसमे कापरडाजी का वर्णन है। इससे पहिले के दो रास और मिले हैं जो कि वि० स० १६७३ पौष वदि १० और वि० स० १६८३ पौष सुदि ८ के लिखे हुए हैं। वे इसी ग्रथ के रास विभाग मे ज्यो के त्यो छापे जा रहे हैं। इनके अनुसार ही विदित हुआ है कि श्री जिनचन्द्र सूरिजी को रात मे स्वप्न हुआ कि कापरडा गाव मे बबूलो की एक झाडी मे भगवान की प्रतिमा प्रकट होगी। तब श्री पूज्यजी महाराज श्री कापरडा आए और उस झाडी मे शोधा किन्तु सफलता नही मिली। तब पट्टालकार महोदय मेडता गए वहाँ पर जाप करते समय उन्हे फिर बोध हुआ कि प्रतिमा वही है। भूमि सू घ कर देखो जहाँ सुवास हो वहाँ उसे साल भर दुग्ध से सीचो फिर जो सफेद अकुर निकलेगा उसके नीचे प्रतिमा निकलगी। वि स १६७४ पौष वदि १० मे भगवान के जन्म कल्याणक दिवस को प्रतिमा के दर्शन हुए।

इस प्रकार प्रतिमा की समस्या हल होने पर कल्याण मन्दिर स्तोत्रादि पढकर धूम-धाम के साथ प्रतिमा को लाकर यतिजी के उपासरे मे बिराजमान किया गया और अष्ट-प्रकारी पूजा की गई। उसी स्थान पर नीलमणि-पाषाण की तीन प्रतिमाएँ और उपलब्ध हुई, जिन्हे पीपाड, जोधपुर और सोजत के श्रद्धालु श्रावक ले गए और अपने-अपने जैन मदिरो मे विराजमान कर दी। चूकि उन प्रतिमाओ पर कोई लेख नही है इसलिए यह कहना कठिन है कि उनका निर्माणकाल क्या है ? किन्तु इतना अवश्य है कि वहाँ पहिले भी कोई मन्दिर अवश्य रहा होगा और यवनापत्ति के कारण उन्हे भूमिसात कर दिया गया।

भारत मे कितना शिल्पचातुर्य था इन प्रतिमाओ के देखने से जाना जा सकता है। आदर, श्रद्धा एव अपने प्रति सहज प्रेम को सजोए हुए शालीनता और प्रभुसत्ता को मानो ये स्वय ही मुखरित करती हैं।

प्रतिष्ठा

यतिजी ने भडारीजी को आदेश दिया कि अब आप इनकी स्थापना किसी महान आचार्य से कराएँ। तब पाली मे विराजमान श्री चन्दसूरिजी महाराज से इस शुभ कार्य को पूर्ण करने का आग्रह किया गया। इस पर महाराज श्री ने कापरडा जाकर मन्दिर का निरीक्षण किया और भडारीजी से कहा कि जैसा मन्दिर आप चाहते थे वैसा तो नही वन सका, किन्तु जैसा भी बन सका है, उसमे जो कमी रह गई है उसकी ही पूर्ति करा दीजिए। भडारीजी ने आज्ञा शिरोधार्य की और महाराजश्री के निर्देशानुसार कार्य करा दिया। तदुपरात वि० स० १६७८ वैशाख शुक्ल १५ सोमवार को प्रतिष्ठा करना निश्चय हुआ। बडी आतुरता से प्रतीक्षा करने के उपरात वह दिवस आ ही गया।

भानाजी चूकि राजा के प्रिय एव विश्वस्त अधिकारी थे अत आवेदन करने पर तत्कालीन महाराजा गजसिहजी ने भी इस उत्सव मे मुख्य अतिथि के रूप मे भाग लेना स्वीकार कर लिया। इसी से जाना जा सकता है कि उत्सव कितनी धूमधाम से सम्पन्न हुआ होगा। ऐसा विदित होता है कि मानो राजा ने कापरडा आकर अपनी पिछली भूल का परिहार किया हो।

राज्य का सहयोग

मन्दिर की सेवा-पूजा भली प्रकार होती रहे—इसकी सुव्यवस्था हेतु राज्य की ओर से निम्न लिखित निर्देश सनदो के रूप मे प्रदान किए गए—

१ केशर-चन्दन-धूप आदि के लिए मासिक तीस रुपये। ये रुपये बिलाडा हुकूमत से मिला करते थे। बहुत दिनो तक मिलते रहे, किन्तु महाराजा गजसिंहजी के उपरात तीस से घट कर पन्द्रह ही रह गए और बाद मे तो पन्द्रह के भी साढे सात ही रह गए और वे भी स १८४८ तक ही मिले।

२ पुजारियो के उदर पोषण हेतु उपजाऊ भूमि का क्षेत्र (खेत) दिया गया।

इस प्रकार की सनदे भानाजी के वशजो के पास अभी तक रखी हैं। बहियो मे जमा-खर्च भी मौजूद है। पुजारी के लिए जो भूमि दी गई थी, उसे भी उन्होने अपने नाम बना लिया और वाद मे सेवा पूजा भी छोड दी।

प्रतिष्ठा का लेख

समारोहपूर्वक उत्सव समाप्त हुआ इसका लेख प्रतिमाजी पर अकित है—

'वि स १६७८ वर्षे वैशाख सित १५ तिथौ सोमवार स्वातो महाराजाधिराज श्री गजसिंह विजय राजे उकेश वशे राव लाखन सन्ताने भडारी गोत्रे अमरा पुत्र भाना केन भार्या भक्तादे पुत्ररत्न नारायण, नरसिंह, सोढा, पोत्रा ताराचन्द, खगार, नेमिदासादि, परिवार सहितेन श्री कपटहेट के स्वयभू पार्श्वनाथ चैत्ये श्री पार्श्वनाथ बिम्ब प्रतिष्ठित। श्री बृहत खरतरगच्छ यति श्री जिनदेव सूरि यति श्री सिह सूरो पट्टलकार श्री जिनचन्द्र सूरि सुप्रसन्नो भवतु।'

परिकर का लेख इस प्रकार है—

'सवत १६८८ वर्ष श्री कापरडा या सयभू पार्श्वनाथस्य परिकरस्य करीता प्रतिष्ठित श्री जिनचन्द्र सूरि भि।'

होनहार

समय आता है और चला जाता है। जो आज है वह कल नही रहेगा। जो कापरडा उन्नति की ओर बढ रहा था उसी का पतन प्रारम्भ हो गया। समस्त भारत मे अगरेजी शासन आने से अनेक व्यवस्थाएँ बदल गई। यहाँ भी नमक के ठेके दिए गए। कपडे का भी व्यापार नही रहा। अनेक आशातनाएँ होनी प्रारम्भ हो गईं, जिससे जैन समाज धीरे धीरे यहाँ से जाकर बाहर बस गया। जैनो के न रहने से मन्दिर की सेवापूजा मे भी कमी पडती गई। जो मदिर किसी समय धूप-दीप से जगमग होता था वही मन्दिर आशातनाओ का अड्डा बन गया। परिणाम यह निकला

१ मन्दिर के मडप मे अन्य देवी-देवताओ की स्थापना कर दी गई।

२ भैरूजी के सामने बच्चो के बाल उतारे जाने लगे।

३ बिलाडा के निकट पिचियाक बाध बना, वहाँ से मछलीया पकड कर लाने वालो का विश्राम स्थल बन गया।

४ विवाह कार्यो के लिए भी मडप का प्रयोग किया जाने लगा।

५ पथिको का भी ठहराव होने लगा

६ पशु-पक्षी रहने लगे, और

७ अन्य अनेक ऐसी बाते होने लगी जो मन्दिर मे नही होनी चाहिए।

उद्धार-कार्य

यह प्रकृति का नियम है कि रात बीतने पर सुप्रभात होता है, अवनति के उपरान्त उन्नति होती है। अधिष्ठायक देव की कृपा हुई और घोर अधकारमय आशातनाओ के पश्चात मन्दिर की अवनति उन्नति मे परिणित होने लगी। बिलाडा जैन सघ मे यह

पूर्व दिशा की ओर विराजमान श्री शांतिनाथ भगवान (तीर्थ कापरडा)

मदिर के सभा मडप उत्तर दिशा की तरफ के कलापूर्ण छत का चित्र

मदिर के दक्षिण की तरफ सभा मडप के छत की कोरणी का चित्र

भावना उत्पन्न हुई कि आचार्य-उपाध्याय एव साधु-सन्तो को इस मन्दिर की स्थिति से परिचित कराया जाए, सम्भव है कि इस प्रकार कोई रास्ता निकल आए।

(१) सर्व प्रथम इस तीर्थ पर पन्यासजी महाराज श्री हर्ष मुनिजी श्रावको सहित यात्रार्थ पधारे। दर्शन करने के उपरान्त मन्दिर की स्थिति का निरीक्षण करके उनकी आत्मा को महान दु ख हुआ। मन्दिर काफी जीर्ण हो चुका था। उसकी हालत देखी नही जाती थी। उन्होने अपने परम भक्त श्री ललूभाई को कलकते पत्र दिया। उस भाग्यशाली ने दस हजार रुपए इस काम मे लगाए, किन्तु इतने बडे मन्दिर मे इन रुपयो से कुछ भी मालूम नही पडा और मन्दिर की दशा दिन ब दिन शोचनीय होती चली गई।

(२) अधिष्ठायक देव जागरूक था। उन्होने जैन शासन सम्राट, तीर्थोद्धारक बाल ब्रह्मचारी, तपोगच्छाधिपति श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। महाराज श्री फलौदी से विहार कर मेडता पधारे और मेडता से बिलाडा। वहा के श्रावको की रुचि इस तीर्थ पर थी ही। अस्तु उन्होने पूज्य आचार्य देव से वहाँ पधारने तथा तीर्थ के दर्शन करने की विनती की। इस पर पूज्य श्री ने परम श्रद्धालु श्रावक श्रेष्ठिवर श्री पन्नालालजी सराफ, पचाणचन्दजी सुराणा, अमोलकचन्दजी भण्डारी इत्यादि महानुभावो के साथ कापरडे मे प्रवेश किया। मन्दिर मे स्वयम्भू पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन किए। भगवान के दर्शन करने से उन सबको बडा हर्ष हुआ, किन्तु जब उन्होने मन्दिर की दशा देखी तथा वहा की आशातनाओ से उनकी आत्मा को जो दु ख हुआ उसका वर्णन नही हो सकता। केवल मुख से यही निकला - 'हमारे होते भी इस तीर्थ की यह दशा ! उन्होने चिन्तन किया और प्रतिज्ञा की कि जब तक इस तीर्थ की मरम्मत होकर पुन प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न नही होगा तब तक मै गुजरात नही जाऊगा।' साथ मे आए हुए अन्य महानुभावो ने जयजयकार के साथ इस प्रतिज्ञा का स्वागत किया। पूज्य श्री का गुजरात मे बडा प्रभाव था। वहॉ के श्रद्धालु श्रावक अपना सर्वस्व उन पर निछावर करने को तैयार रहते थे। जब उन्होने उक्त प्रतिज्ञा सुनी तो खलबली मच गई। उधर आचार्य श्री ने श्रावको से कहा—व्यय का प्रबन्ध मैं कराऊगा। आप तो जीर्णोद्धार के काम को भली भाँति निपटा दे। पूज्य श्री का तप था, त्याग था, ब्रह्मचर्य का प्रभाव था। किसी की शक्ति उनकी इच्छा के विरुद्ध जाने की नही हुई। अतएव कार्य पूरे वेग से चालू हो गया। जो कोई आता वही हाथ जोड कर नतमस्तक होकर कहता—'मेरे लिए क्या आज्ञा है ?' सहस्रो रुपए एकत्रित होने लगे, उत्साह बढता ही रहा। पूज्य श्री चातुर्मास व्यतीत करने के लिए पाली पधार गए वहा अनेक प्रकार से उपदेश देते हुए तीर्थ की उन्नति एव शीघ्र से शीघ्र कार्य समाप्ति हेतु प्रयत्न कराते रह। चातुर्मास समाप्त कर पूज्य श्री खोड पधारे, वहाँ पालडी वाले श्रेष्ठिवर अमीचन्दजी गुलाबचन्दजी दर्शन करने आए।

समय देख कर आचार्यदेव ने उनसे प्रतिष्ठा कराने का उपदेश दिया जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया। धन्य है परम प्रतापी प्रभावशाली आचार्य देव को, जिन्होने कृपा कर इस तीर्थ का उद्धार कराया और धन्य हे उन समस्त महानुभावो को जिनके सहयोग से इतना बडा कार्य सम्पन्न हुआ।

प्रतिष्ठा का मुहूर्त माघ शुक्ला ५ स० १९९७ का निश्चय हुआ। और आचार्य देव पुन पाली पधार गए और वहाँ कुछ दिवसपर्यन्त स्थिरता कर उन्होने के री पाली सघ निकालने का उपदेश दिया। महाराज का वचन कभी खाली नही जाता, अतएव पाली के श्रद्धावान श्रावक श्री किशनलालजी लूणावत ने (जो मुनीमजी के नाम से प्रसिद्ध थे, अपनी ओर से सघ निकलवाना स्वीकार कर तैयारी प्रारम्भ करदी। यह सघ अच्छे मुहूर्त मे पाली से चलकर कापरडे पहुचा। उस समय प्रतिष्ठा कार्य चालू था, अठाई महोत्सव हो रहा था। उस समय मन्दिर के मण्डप मे भेरोजी के आगे बच्चो के बाल उतारने का काम होता हुआ दख कर आचार्य देव ने सोचा यह अशातना का कार्य बन्द होना चाहिए, किन्तु ऐसे ढग से बन्द होना चाहिए जिससे अन्य धर्मावलम्बियो को बुरा न लगे। अन्य देवी देवताओ को, जो कि जैनियो की निर्बलता से समय समय पर वहाँ विराजमान किए जाते रहे—मन्दिर से बाहर के भाग मे स्थापित कर दिया गया। पूज्य आचार्य श्री के प्रभाव से उक्त कार्य निर्विघ्न रूप से समाप्त हो गया और किसी ने भी इसका विरोध नही किया।

मन्दिर चौमुखा एव चौमजिला था किन्तु वि० स० १९७५ तक केवल एक ही प्रतिमा थी मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की। इस पर आचार्य महाराज ने बहुमूल्य पन्द्रह मूर्तिएँ अहमदाबाद, खम्भात और पाली आदि से मँगवाई। इन प्रतिमाओ को सम्प्रति नरेश के समय मे निर्मित होना सिद्ध हुआ। अन्त मे समस्त प्रतिमाएँ चारो ओर विराजमान करदी गईं।

जिनके नाम निम्न हैं—

मजिल	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम
पहिली मजिल	पार्श्वनाथजी	शान्तिनाथजी	अभीनन्दनजी	मुनि सुव्रत स्वामी
दूसरी ,,	ऋषभदेवजी	अरनाथजी	महावीर स्वामी	नेमीनाथजी
तीसरी ,,	नेमीनाथजी	अनतनाथजी	नेमीनाथजी	मुनी सुव्रत स्वामी
चौथी ,,	पार्श्वनाथजी	मुनि सुव्रतस्वामी	शीतलनाथजी	पार्श्वनाथजी

यह समस्त कार्य शासन-सम्राट के करकमलो द्वारा निर्विघ्न और आनन्द सहित

समाप्त हुआ। प्रतिष्ठा के दिन कापरडा तीर्थ सहस्रो-सहस्र जैन-जनो का प्रेमस्थल बना हुआ था। समस्त कार्य सम्पन्न हो गए। यह जानकर उपस्थित जनो ने आचार्य श्री के चमत्कार के प्रति जयजयकार किया।

अन्य देवताओ की मूर्तिएँ मन्दिर मे स्थापित हो जाने के बाद उनको बाहर करने मे जैन अजैनो मे विग्रह उत्पन्न हो जाता है और ऐसा एक जगह नही कई जगह हुआ है जैसे रतलाम काण्ड ने तो इतना उग्र रूप धारण किया कि सारा जैन सघ परेशान हो गया। इस तीर्थ पर भी आसपास के जैनेतर समुदाय ने बडा होहल्ला मचाया और मन्दिर पर अधिकार करने की दृष्टि से सगठन कर हमला बोल दिया किन्तु आचार्य देव का प्रभाव सर्वव्यापी था और जैन सघ ने भी पुलिस आदि का काफी प्रबन्ध कर रखा था इसलिए उनको इस कार्य मे सफलता नही मिली। फिर भी जैनेतरो ने न्यायालय मे कार्यवाही की। उस समय धर्मनारायणजी फौजदार थे। वे कापरडा आए और उन्होने स्थिति का निरीक्षण कर अपना विचार बनाया। मन्दिर का आकार, बनावट, चौदह स्वप्नो के चिन्ह और जैन आगमो के अनुसार प्रतिमाओ की आकृति आदि से फौजदार महोदय के हृदय मे यह बात घर कर गई कि जैनेतर लोग इस मन्दिर पर अनुचित अधिकार करना चाहते हैं। उन्होने अपना निर्णय जैनो के पक्ष मे दिया। न्याय दिलाने मे जोधपुर के वकील श्री जालमचन्दजी बाफना, श्री हस्तीमलजी मुणोयत और श्री इन्द्रमलजी लोढा आदि ने बडा परिश्रम किया, जो सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं। स्वार्थ के लिए तो सभी कार्य करते हैं किन्तु परमार्थ हेतु जो कार्य करते हैं उनकी सराहना तो होनी ही चाहिए। आज भी ऐसे महानुभावो की कमी नही है जो अपने धर्म पर सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार रहते हैं।

मेला

प्रतिष्ठा एक महान कार्य है। अतएव, प्रतिष्ठा की पवित्र स्मृति मे उस तिथि को जैन समाज एकत्रित होकर पूजा आदि धार्मिक कृत्य सम्पन्न करते हैं उसी को मेला कहा जाता है। यह प्रथा बहुत पुरानी मानी जाती है। अनुमानत १६७८ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को यह मेला प्रारम्भ हुआ। तभी से निरन्तर होता रहा। इसी प्रकार १६७५ मे जब पुन प्रतिष्ठा हुई तब माघ शुक्ला पचमी को मेला समारोहपूर्वक फिर से भरना प्रारम्भ हो गया।

जैन धर्मावलम्बी ऐसे अवसरो पर बन्धु-बान्धवो एव अतिथियो को भोजन कराया करते हैं। जैन परिभाषा मे इस कार्य को स्वामीवात्सल्य कहते हैं। इसी प्रकार का स्वामी-वात्सल्य स० १६७५ से २००५ अर्थात् तीस वर्ष तक अहमदाबाद-निवासी श्रेष्ठिवर श्री

माणकभाई की ओर से होता रहा। समस्त व्यय वही किया करते थे किन्तु उनका देहावसान होने से उनकी गद्दी की ओर से बन्द हो गया।

चूँकि माघ शुक्ला पचमी को भयकर शीत पडता है और विवाह शादियो का भी समय होता है इसलिये मेले मे जैनो का आना प्राय बन्द सा हो गया, यहा तक कि सख्या ५–१० तक पहुँच गई, अतएव जैन सघ ने दिनाक १३–४–५२ को यह निश्चय किया कि भविष्य मे मेला चैत्र शुक्ला पचमी को लगा करे। तब से अद्यावधि मेला प्रतिवर्ष धूमधाम से सम्पन्न होता है और जैन बन्धु भी पर्याप्त सख्या मे आने जाने लगे हैं। भिन्न भिन्न सज्जनो की ओर से स्वामीवात्सल्य भी होते रहे।

वि० स० २०२१ के चैत्र शुक्ल ५ को साधारण सभा मे यह निश्चय किया कि महँगाई के कारण एक व्यक्ति स्वामीवत्सल करने को तैयार नही होता और सदस्यो से चन्दा लेकर ऐसा करना भी उचित नही है। अत इसके लिये एक फन्ड इकट्ठा किया जाय उसके ब्याज से प्रति वर्ष स्वामीवत्सल होता रहे। फलस्वरूप थोडे ही दिनो मे इस फन्ड मे १४५२३) रु० इकट्ठे हो गये। जिन महानुभावो ने इसमे सहयोग दिया हे उनके नामो की सूची तीर्थ की पेढी पर लगादी है। भविष्य मे प्रति वर्ष ब्याज की रकम से स्वामी-वत्सल होता रहेगा और मूल पूँजी बैंक मे सुरक्षित रहेगी।

जैन तीर्थो मे यात्रियो के ठहरने, बिस्तर, रसोई के बर्तन तथा अन्य सुविधाएँ जुटाना वहाँ के प्रबन्धको का कर्त्तव्य हो जाता है और यह प्रबन्ध सब तीर्थो पर है। इस तीर्थ पर सर्वप्रथम श्रेष्ठिवर श्री माणकभाई मनसुखभाई अहमदाबाद निवासी ने, जो विजयनेमिसूरी-श्वरजी महाराज के परम भक्त थे, उनके उपदेश से मन्दिर की परिधि के बाहर धर्मशाला के लिए भूमि खरीद कर तथा उसका परकोटा बनवा कर यात्रियो के ठहरने की व्यवस्था की और एक एच्छा सा हॉल मदिर की परिधि मे बनवाया। अन्य कई महानुभावो ने भी यहाँ कई कमरे, बरामदे इत्यादि बनवाए हैं, जहाँ यात्री आराम से ठहर सकते हैं। इसी प्रकार बर्तन, बिछौना आदि का भी प्रबध पर्याप्त रूप से जैन बन्धुओ की ओर से हो गया है।

पूज्य आचार्य महाराज श्री नेमिसूरीश्वरजी का हम पर महान् उपकार है जो उन्होने अपने प्रभाव से इस तीर्थ को चमकाया। उनका यह कार्य चिरस्मरणीय रहेगा। प्रतिज्ञा पूरी न होने तक वे गुजरात नही गए। जिस समय महाराज श्री राजस्थान से पधारे तो फिर वापिस नही आए। तीर्थ का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे इस हेतु इक्कीस सदस्यो की एक समिति बना दी गई और एक पेढी भी आनन्दजी कल्याणजी के नाम से काम कर रही है। इस पेढी का अस्तित्व स्वतत्र है। भारत भर मे इस नाम से जो पेढी काम कर रही है उसका इससे कोई सम्बन्ध नही है, भावनाएँ और उद्देश्य यद्यपि दोनो के एक ही हैं।

आचार्य श्री ने जिस समिति की स्थापना की थी उसके सदस्य पाली, अहमदाबाद, पालडी और घाणेराव जैसी दूरदूर बस्तियो के निवासी होने तथा उनमे से कई सदस्यो के स्वर्ग सिधार जाने व कुछ के त्याग पत्र देने के कारण दिनाक १३-४-५२ वैशाख कृष्ण ३ वि०स० २००८ को श्री सघ का एक अधिवेशन इस तीर्थ पर बुलाया गया। विचार-विमर्श के पश्चात् तीर्थ के निकट रहने वाले पन्द्रह सदस्यो की एक व्यवस्थापक समिति बनाई गई, उसमे से सभापति, उपसभापति, मत्री, उपमत्री और कोषाध्यक्ष, पाँच अधिकारी चुने गए। तीर्थ का कार्य भली भाँति समयानुसार चलते रहने के लिए विधान भी बनाया गया। समिति के ऊपर देखरेख श्रीसघ की रक्खी गई जो कि जनरल कमेटी के नाम से कही जाती है। तीर्थ का कार्य सन् ५२ से ठीक चल रहा है और भविष्य मे भी चलते रहने की आशा है।

तीर्थ का उद्धार होने के पश्चात् वह स्वय ही देश मे विख्यात हुआ, इसका अधिकाश श्रेय हमारे मरुधरकेशरी मुनिश्री ज्ञानसुंदरजी महाराज को है जिन्होने इस तीर्थ पर चातुर्मास कर तथा कई बार पधार कर तीर्थ की महिमा मे चार चाँद लगाए। मुनि जी ने बडे-बडे पोस्टर स्थान-स्थान पर भिजवाए और अपनी सैकडो पुस्तको मे प्रचार किया, चित्र छपवाए। जिस प्रकार पौधा लगाने वाले से उसे सीच सीच कर बडा करने वाला अधिक यश का भागी होता है उसी प्रकार शासनसम्राट द्वारा आरोपित उक्त तीर्थ रुपी पौधे की देखभाल मुनिजी द्वारा करने पर हमारे लिए दोनो ही श्रद्धा के पात्र हैं। आभारस्वरूप दोनो का जीवन-परिचय और चित्र इतिहास मे प्रकाशित किया जा रहा है।

वि० स० १९७५ मे जो प्रतिष्ठा हुई उसको ५० वर्ष समाप्त हो जाने से स्वर्ण जयती महोत्सव मनाया जा रहा है। उसके उपलक्ष मे एक ग्रथ प्रकाशित हो रहा है उसमे इस तीर्थ का यह इतिहास दिया जा रहा है। यो इतिहास की पुस्तको का पाँचवाँ सस्करण प्रकाशित हो चुका है और प्रत्येक जैन के घर मे इतिहास की पुस्तक मिलेगी किन्तु यह ग्रथ ऐसा होगा जिससे हमेशा याद बनी रहेगी। ५० वर्ष मे इस तीर्थ ने जो प्रगति की है उसका उल्लेख अन्तिम पृष्ठो पर देखने को मिलेगा। पचास वर्ष मे कुछ का कुछ हो गया यह सब अधिष्ठायकदेव की कृपा का कारण है। भविष्य मे यह तीर्थ और भी उन्नति करेगा ऐसी आशा है।

आप भी मन्दिर की झाँकी तो देखिए

ज्ञान-अज्ञान का, अन्धकार और उजाले का प्रश्न जितना तर्कपूर्ण है उतना ही मूर्ति-अमूर्ति पूजा का भी है। वैसे, हम तो यह मान कर चलते हैं कि उस स्वत सृजनशक्ति के असख्य उपकारो के प्रति, किसी महापुरुष को माध्यम मान कर कृतज्ञता प्रकट करना

हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। स्पष्ट यह है कि भारत मे मन्दिर-निर्माण का यही एक प्रमुखतम कारण रहा।

श्री कापरडाजी के सम्बध मे भी यही कारण रहा। भानाजी यो तो पहिले मे ही मूर्तिपूजक थे किन्तु जब उन पर विपत्ति का पहाड टूट पटा, तव उन्हे इस शक्ति के अस्तित्व का अधिक आभास हुआ। यतिजी के शब्दो ने भी उन्हे आत्मशक्ति एव मनोबल प्रदान किया। इस प्रकार उनकी आकृति विकृत होने से बच गई और अन्तत वे निर्दोष स्वीकार कर लिए गए, उनका सम्मान भी हुआ और पाँच सौ एक मुद्राएँ भी प्रदान की गई। बस यह स्थिति ही मन्दिर-निर्माण का कारण बनी तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मोर ? भडारीजी के पुण्य प्रबल थे। यतिजी का सहयोग था, इसीलिए एक अदृश्य कल्पना को साकार रूप दिया जा सका। मन्दिर बन कर तैयार हो गया। वही मन्दिर अब तीर्थ रूप धारण कर चुका है।

आइए, आप भी उस मन्दिर की झाँकी देखिए।

जोधपुर से या अजमेर-व्यावर से आप कही भी पधारिए डामर मार्ग होने के कारण आपको किंचित भी कष्ट नही होगा। लीजिए—मदिर का शिखर दूर से ही दिखाई पडने लगा और यह कापरडा गाँव आ गया। सावधानीपूर्वक आप बस से उतरिए, सामान आदि गिन कर उतारे। यदि बच्चे साथ हैं तो उन्हे पटरी पर सामान के पास खडा कर मन्दिर पधार जाएँ, जो कि बिल्कुल सामने ही है। और, यदि आप अकेले ही हैं तो भी कोई चिन्ता नही, क्योकि जब बस आती है तब गाँव के एक दो प्रमुख व्यक्ति वहाँ अवश्य आते हैं। आप उन्हे सामान सौप दीजिए अथवा उन्ही मे से किन्ही को कह दीजिए तो वह मन्दिर से किसी को भेज देगे। अब आप प्रबधक महोदय से अपनी सुविधा के अनुसार कोई कमरा ले ले। पोल के सामने वाले कमरो मे जो कि सर्वथा आधुनिक ढग से बनाए गए हैं या पोल के ऊपर वाले कमरो मे से या माणिकलाल मनसुखभाई की धर्मशाला मे से कोई सा भी एक कमरा। रात हो या दिन, कैसा भी, कोई भय नही। अब आप शौचादि से निवृत्त होकर स्नान कीजिए—सब साधन उपलब्ध हैं। पवित्र होने के उपरान्त आप विधिपूर्वक पूजा करे।

अब आप अपना सब कुछ भुला कर पापो के प्रायश्चित मे सलग्न हो जाइए। आखो मे जल, करबद्ध, दीन वचन, बच्चो के समान ललक कर जो कुछ कहना चाहो, कहलो अपने प्रभु से क्योकि ये पावन दर्शन फिर न जाने कब मिलेगे ! फिर न जाने कब कृपा होगी जो स्वामी तुम्हे अपने सामने आने का सौभाग्य प्रदान करेंगे ! हा देखिए, एक बात और इस पावन, पुण्यशील वेला मे भगवान के चरणो से दृष्टि मत हटाना—क्योकि चारो

और छलना आपको पथभ्रष्ट करने के लिए कटिबद्ध है। निश्चित है कि आपको धैर्य से काम लेना पडेगा अन्यथा उस परम शोभाधाम, पावन पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शन कर आप विभोर तो हो ही जाएँगे। सम्भव है कि यह शोभा ठगिनी आपको विमूढ ही बना दे और इस प्रकार आप सेवा-पूजा से वचित रह जाएँ। कही आपके यहा आने का उद्देश्य ही गौण न रह जाए, इसलिए हम आपको एक बार फिर सचेत कर देना अपना प्रमुख कर्तव्य समझते हैं कि आप इस लीली-छलना से सावधान रहे। अच्छा आइए, अब आप पहिले इस छलना से ही निवृत्त हो ले—

देखिए कबूतर उड रहे हैं। निर्भयतापूर्वक मन्दिर का शिखर उन्हे आश्रय दे रहा है। इसी प्रकार, उसने आपको भी आकर्पित किया है अतएव आप भी शान्ति के साथ अपनी समस्त भावनाओ को उडने से रोक कर मन्दिर की शोभा-श्री निहारने मे ही केन्द्रीभूत बना ले। आपका जीवन धन्य हो जाएगा। श्रावकजी ! अरे, आप मुख्य द्वार पर ही क्यो ठिठक गए। इस चौमुखे चौमजिले शिखर की शोभा ही कुछ ऐसी ही है कि आप देखते ही रहे, भूख प्यास कुछ भी नही लगती।

अब आप पूर्वाभिमुख हो जाइए—

यह पूर्व की ओर की भव्य पोल है। पक्षियो द्वारा वन्दना-गीत गाना प्रारम्भ करते ही द्वार खुल जाते हैं। जीने के ऊपर चौमुखा नया मन्दिर है, जो अभी बना है। पोल के सम्मुख ही भैरूजी का मन्दिर है। पूर्व की ओर ही भगवान शान्तिनाथजी का मन्दिर है, जिसकी प्रतिमा की झाँकी बहुत ही भव्य है। उत्तर की ओर का तोरण देखने ही योग्य है। नवीन मन्दिर मे समवसरण मे चारो ओर भगवान विराजमान हैं, जिनकी उपमा की जोड नही, जिनकी शोभा का वर्णन शब्दो द्वारा सम्भव नही।

अब आप सभामडप मे आ गए। कैसी अनुपम शिल्पकला है। इन कलाकारो की भगवान ही सहायता करते हैं अन्यथा यह सब कैसे सम्भव हो सकता है ! गुम्बद की छत तो सभी मडपो की छत से भी अधिक सुन्दर है। और रग मडप मे आचार्य की प्रतिमा तो आपने देख ही ली होगी !

नवीनीकरण के तो आपने दर्शन किए ही—प्राचीन उपासरे को देखना भी न भूलिए क्योकि भानाजी को आकर्षित कर मन्दिर-निर्माण का श्रेय भी तो इन्ही को है।

मन्दिर का अवलोकन और उसकी परिक्रमा के उपरान्त अब आप थक गए होगे, इसलिए भोजनादि से निवृत्त होकर थोडा आराम कर लीजिए, यह मत सोचिए कि यह सब कुछ हो कैसे गया, अन्यथा आपकी निद्रा भग हो जाएगी। क्योकि ऐसे कार्य उन्ही के हाथो से सम्पन्न होते हैं जिनके पूर्व जन्म के सस्कार शुद्ध और जागृत होते हैं और इस जन्म मे भी जो बुराइयो मे न फँस कर उत्तम जीवन ही व्यतीत करते हैं। यह भी कभी हो जाता है अन्यथा व्यक्तियो के हाथो से कुछ हो भी जाए तो वह पूरा नही होता। हम तो उन्ही को अत्यन्त सौभाग्यशाली मानते हैं, जिन्हे दर्शन हो जाते हैं, नही तो गग के किनारे रह कर भी अधिकाश व्यक्ति उसके पवित्र जल से वचित ही रह जाते हैं।

श्री कापरड़ाजी तीर्थ - महिमा

ले० आचार्य देव श्री विजय भुवनतिलकसूरिश्वरजी म०

राजस्थान प्राचीन तीर्थों का धाम है, जैनो के तीर्थ बहुत मिलते हैं। राजस्थान की सब दिशाएँ प्राचीन कलापूर्ण मन्दिरो से मडित हैं। श्री कापरडाजी तीर्थ बहुत समय पूर्व प्रसिद्ध और चमत्कारो से पूर्ण था। हजारो की सख्या मे भक्तगण यात्रा के लिए बडे बडे सघो के साथ सहर्ष और सानन्द आते थे।

प्राचीन इतिहास इसका साक्षी है। यह तीर्थ अभी भी बहुत प्रसिद्ध और दर्शनीय है। कितने वर्ष पहले सूरिसम्राट आचार्यवर्य श्री नेमिसूरिश्वरजी महाराजा ने इस तीर्थ के जीर्णोद्धार का बीडा उठाया था तब से यह तीर्थ बहुत प्रसिद्ध हुआ और चहुदिग कीर्ति फैली, इस समय यहाँ हजारो यात्री आते हैं। भव्य जिनालय मे विराजमान तीर्थंकर भगवत की पूजा उपासना कर आत्मा को परम पवित्र बना रहे हैं। यहाँ का वातावरण बहुत शाति-पूर्ण है। व्यावहारिक अपेक्षा से यहाँ हवा-पानी, अन्य सब तरह की सुविधाएँ भी सहज मिलती है। तीर्थ तारने का काम करता है, भवसागर मे जीवात्मा अनादि काल से अनेक गतियो मे भ्रमण करती है और डूबती है, क्योकि मानव जन्म ही सद्बोध पाने का परम साधन है। और, मानव-जन्म मे ऐसे पवित्र तीर्थ की छाया भाग्य-योग से ही मिलती है, इसलिए ऐसे तीर्थ मे आत्म-कल्याणाभिलाषुओ को अवश्य आना चाहिए, स्थिरता से रहना चाहिए और तीर्थ के पवित्र वातावरण मे शुभ भावनाओ को जागृत करके कल्याण साधना चाहिए।

इस तीर्थ मे मैंने तीन चार बार जाकर के शाति से दर्शन स्तवन का अलभ्य लाभ लिया है। पाली शहर से जो श्रमण भगवत जोधपुर जाते हैं उनको थोडा सा फिर कर के इस पवित्र तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए।

यहाँ वर्तमान कमेटी के सदस्य भली भाँति तीर्थ-सेवा का प्रशसनीय कार्य बजाते हैं, इसलिए आने वाले यात्राभिलाषिओ के लिए सब तरह की व्यवस्था रहती है।

मेरा सिरोही मे चातुर्मास था तब कमेटी के सदस्यो ने स्वर्णजयती महोत्सव मे आने का अनुरोध किया लेकिन आवश्यक कारणो से गुजरात मे जाना अनिवार्य था अत मुझे असमर्थता प्रगट करनी पडी।

आत्मा की निर्मलता के लिए मन की पूर्ण स्थिरता और समाधि व आ यात्मिक परमोन्नति के लिए यह कापरडाजी तीर्थ की यात्रा प्रत्येक आत्मा के लिए कल्पतरु की शीतल-छाया जैसा है।

तीर्थाधिपति जिनराज की जय।

समवसरण मे विराजमान भगवान का चित्र

इसकी प्रतिष्ठा वि० स० २०२३ के जेष्ठ सुदि ३ को आचार्य विजय सुशील सूरिजी म० द्वारा सम्पन्न हुई

नाले पर चौमुखजी के बने हुए मंदिर का दृश्य
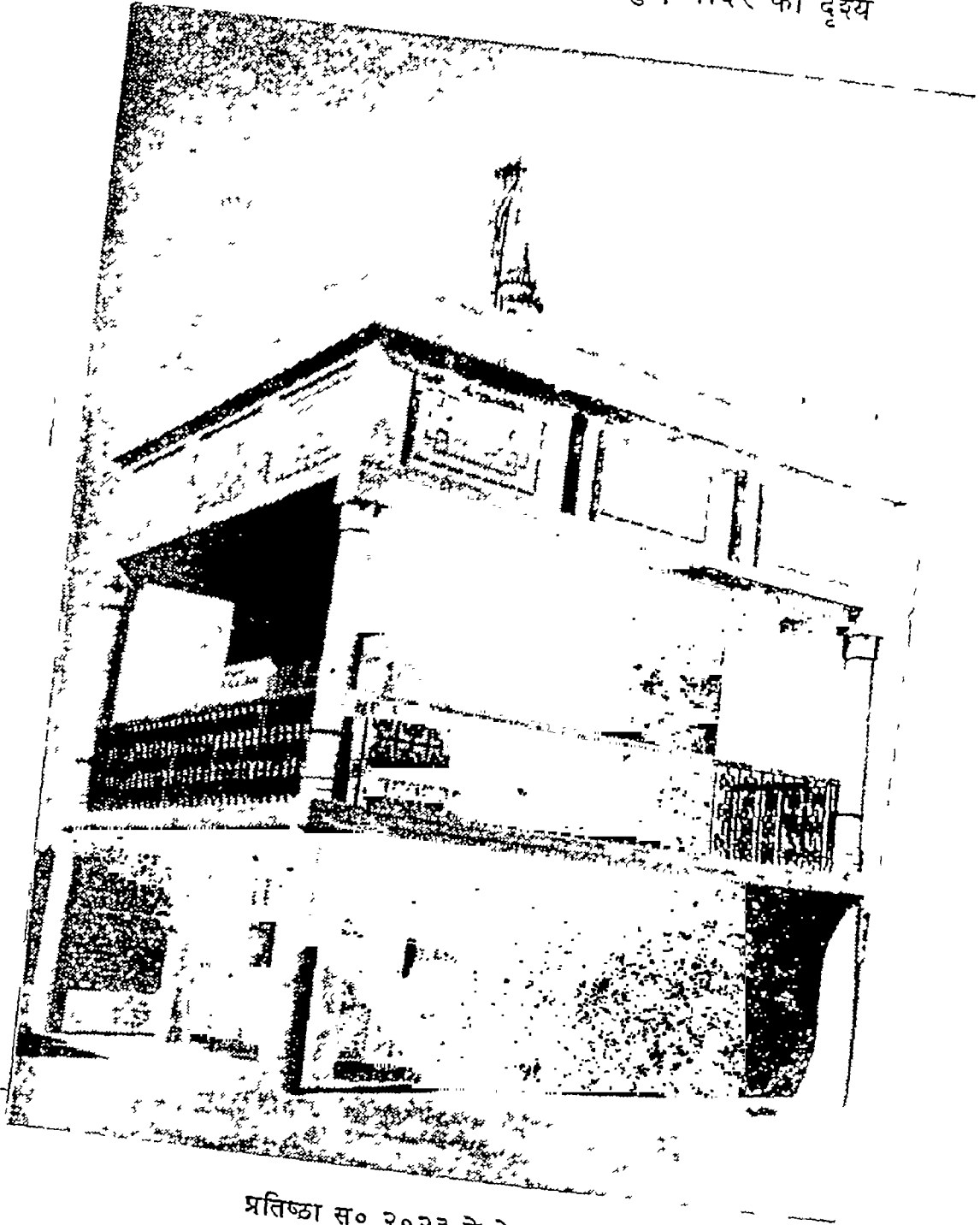
प्रतिष्ठा सं० २०२३ के जेष्ठ सुदि ३
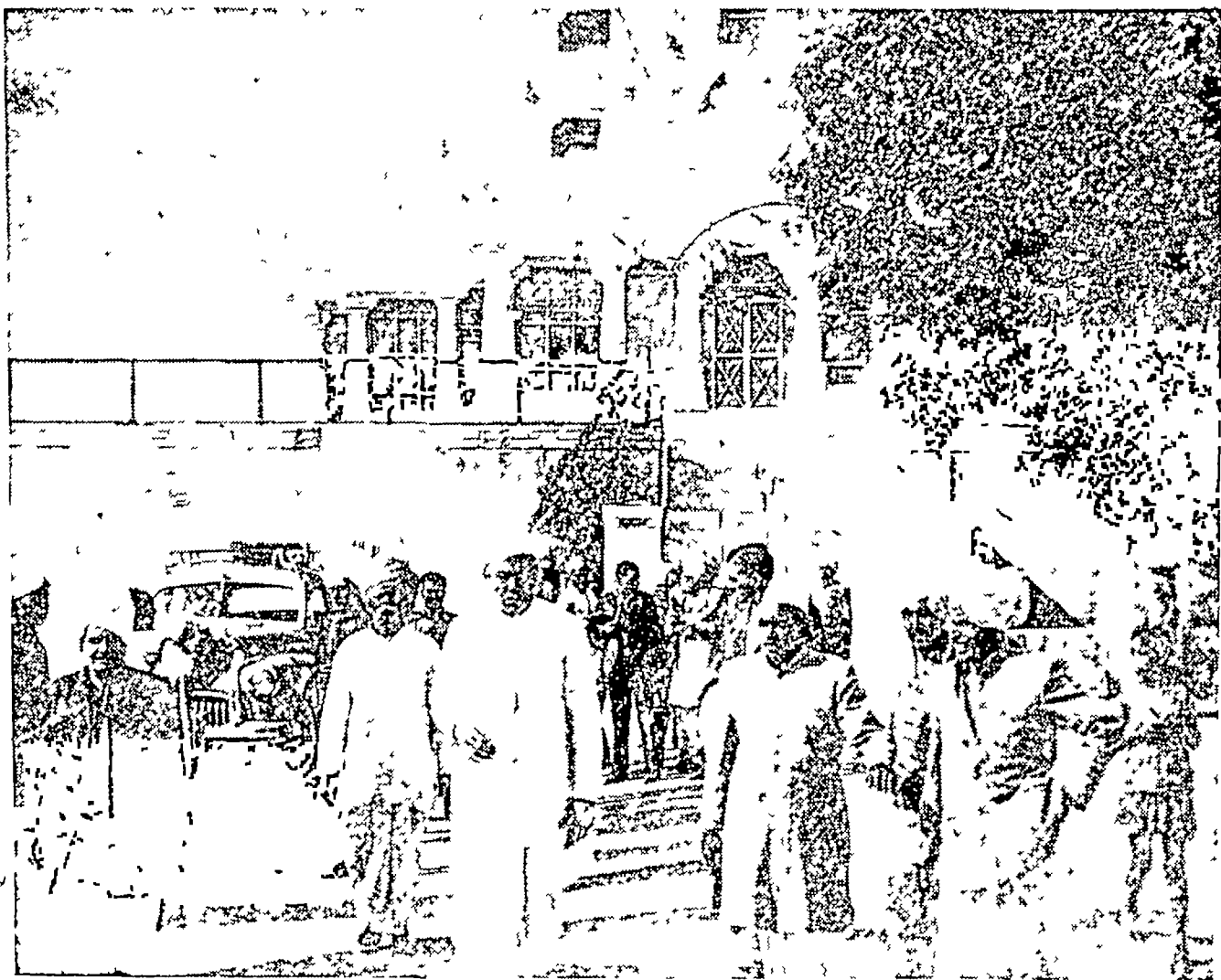
माननीय सेठ कस्तूर भाई लालभाई कापरडाजी तीर्थ की यात्रा के समय। दिनांक २३-१२-६६

मरुधर कल्पतरु

ले० श्री प्यारेलालजी मुथा, 'साहित्यसुधाकर, काव्यभूपण'

तीर्थ, मूर्ति और शास्त्र, सास्कृतिक आर्यजीवन सनातन काल से प्राण फूकते आए हैं। जीवन जीना ज्यो एक कला है, मरना भी एक कला है। अत आराधना मे लीन कलात्मक जीवन यदि जीया जाता है तो पारलौकिक लाभ हेतु समाधि-मरण प्राप्त करना क्या कला नही है? विवेक इन दोनो अवस्थाओ की इकाई है और समयक्त्व मार्ग-दर्शक।

मोह दशा इक प्रेम है दूजा, अर्थ है द्वय मे एक।
पा न सके यदि सम्यग् दृष्टि, गति ना एक अनेक ॥

और, इस प्रकार की सूक्ष्म बातो का बोध हमे दिया है, हमारे परमोपकारी पच-परमेष्टी पावनस्वरूपो ने ही, उनके जीने मरने की कला ने, उनकी सिद्धावस्था ने, उनकी वृद्धावस्था ने। उनके ज्ञान व सत्य की, उपकार व दूरदर्शिता की, समयानुकूल प्रतिछाया आज के अवसर्पिणी समय मे वीरविजयजी म० के इस पद मे प्रकाशित है, सरक्षित है—

अरूपी पण रूपारोपण से, ठवणा अनुयोग द्वारा।
विषमकाल जिन बिंब जिनागम, भवियण कू आधारा ॥

किंबहुना, भारतीय सस्कृति मे जैन दर्शन का स्याद्वाद, आकाशदीप-सा अनन्त काल तक उच्चतम आसन को सुशोभित करता रहेगा। इन सारे तत्वो से अनुप्राणित एवम् ऐतिहासिक कारणो से युक्त 'कापरडा तीर्थ' एक ज्वलत यशधारी प्रतीक है, प्रेरणा का उद्गम है।

चम्पा सरोवर जिनके चरणकमलो का प्रक्षालन करता है, उपा व सध्या नामक प्रकृति कन्याएँ, जिनके सत्कार मे नित्य ही लाली गुलाल उठा कर पुजती है ऐसे, मृत्युलोक-स्थित, नलिनी गुल्माकृति विभान मे मूल नायक रूपेण सुशोभित तीर्थाधिपति, [illegible] पार्श्वनाथ स्वामी, शरणागत के पाप पुण्य समाप्त करके शाश्वत सुख लूटने का मौन निमत्रण दे रहे हैं। बदनसीब हैं वे, जो नास्तिक हैं अथवा उनकी भक्ति से परे हैं—वीरविजयजी म० पुन फरमाते हैं -

प्रभु तुज शासन अति भलू, माने सुरनर राणा रे।
मिथ्या अभव्य न ओळखे, एक अभवी एक काणा रे ॥

ऐसे स्मितानन-वदन कृपालु तीर्थपती के प्रति शायर जैन के इन हकीकी अशआर को गले लगाना ही पडेगा—

अजल से बुतपरस्ती मे है, जल्वा नूरे वहदत का,
इसीसे छाप हो हरएक दिल मे तीर्थ, मदिर की।
'स्वयभू पार्श्व को पाकर स्वय भू हो गई धन्यधन्य,
उछलकर उसका यश गाती हैं, ये लहरे समदर की॥ ——अस्तु

शाही शासनकाल मे, राजपूत वीरागनाओ की भी अपूर्व वीरता का परिचय देने वाले 'मीर धड्ला रो मेळो' ने पीपाड शहर को राजपूताने के इतिहास मे अनोखा स्थान प्राप्त कराया है। इसी पीपाड शहर को साफ अवकाशीय वातावरण मे प्राय ८ मील की दूरी से देखने वाला आर्यभूविख्यात, यह 'मरुधरकल्पतरु' कापरडा अपनी अद्वितीयता मे अद्वितीय है।

बहुचर्चित 'ढोलामारू' की पवित्र प्रणयगाथा को जन्म देने वाले रेतीले किन्तु रगीने राजस्थान को कतिपय दैवप्रदत्त और भी विशिष्ठ गुण ऐसे प्राप्त हुए हैं जो अपना सानी नही रखते। यहाँ का ऊँट 'मरुस्थल का जहाज' बनकर, वीरान से कलरव तक लोगो का साथी होता है। यहाँ का ज्योतिषी, वर्तमान से भव तक लोगो का साथी होता है। यहाँ के नन्दनवन (oasis) मे स्थित, स्वयभू पार्श्वनाथ, भव से भवभव तक प्राणी मात्र का साथी होता है, कल्पवृक्ष सा अभीष्ट फल देता है। इस देश की धरती धर्म, सस्कार व नीति पैदा करती है, सत्य प्रेम व शौर्य उगलती है, जिसके आगे देशातरो के हीरे मोती भी धूल के बराबर हैं।

है कोई ऐसा देश, देवता, जन मन दुख त्राता?
मरुधर कल्पतरु कापरडा, मनवाछित दाता॥

और तो और, तीर्थाधिराज को प्राप्त प्राकृतिक प्रेम व सेवाएँ भी प्रसन्नतावर्धक हैं, प्रशसनीय हैं। रात का पछी धीरे-धीरे अपने पख खोलते हुए जिस वक्त इसके आगन मे उतरकर मौन लय मे नृत्य करता है, तब इसके शिखरवन्द मन्दिर की गगनचुम्बी चोटी को चूमने के लिए अभ्रो से अनाच्छादित आसमानी कन्या निर्मला सी, लालायित हो, अपनी चाँद सितारो से टकी नीली साडी पहनकर प्यारवश झुक जाती है। हा! ऐसा नयनाभिराम दृश्य कितना आल्हादक होता है! और उस ओर, स्वराज्य की परिधि मे पदार्पण करते ही भुवनभास्कर, भगवान दिनकर भी अपने अनगिनत स्वर्णिम झरनो से इस तीर्थाधिराज को नहलाने मे अनोखा गौरव अनुभव करते हैं।

क्या कहे, सैकडो बारिशे इस पर से गुजर गई मगर इसकी महिमा को धो न सकी। हजारो बार सूर्य की प्रखर किरणो ने इस पर आग बरसाई पर इसका यश जल न

सका। बार बार शीतकाल ने अपना प्रकोप दर्शा कर इसको ठडा करना चाहा, परन्तु इसके तप, तेज की गर्मी के आगे उसे स्वय पिघल जाना पडा। मौसमो ने रँग बदला, प्रकृति पलटी, किन्तु कलियुग का कापरडा तीर्थ शैल-सा अद्यावत अटल है। अस्तु।

सभामडप की सुँदर कारीगरी व आकर्षक पुतलियो की नयनरम्य चित्रकारी से सुशोभित इस तीर्थ की कीर्ति, देश के अन्य प्रदेशो मे भी चुराई गई है। अभी पिछले वर्ष ही गुजरात के समृद्ध शहर 'सूरत' मे नवनिर्मित '१०८ तीर्थ दर्शन मदिर' मे तीर्थ कापरडाजी को एक विशेष स्थान दिया गया है। और श्रद्धालु जन दर्शन-भक्ति से अपने भाग्य को सराहते हैं। ऐसे पसृत महिमाधारी तीर्थ की निर्माणगाथा व निर्माता को भी प्रकाशित करना परमावश्यक होगा। कहावत है कि—

सरवर दीपक चद, प्रभाते रवि दीपक।
त्रैलोक्ये दीपक धरम, सुपुत्रे कुल दीपक॥

सुश्रावक, उदार हृदय हाकिम भानाजी भडारी जैतारण-निवासी ने एक परमोपकारी यति श्री की कृपा से विक्रमी १६६० मे इसका निर्माण कार्य प्रारभ करवाया।

आज कापरडा खडा है जो लिए यश वृहतर।
भाना भडारी ने उस नीव मे रक्खा पत्थर॥
सबको गौरव हो मरु देश के इस नरवर पर।
तीर्थ के साथ हुआ नाम सृजन का भी अमर॥

श्रेष्ठ शिल्पियो और दक्ष कलाविदो के बुद्धिजन्य नक्शो के आधार पर राणकपुर तीर्थ सा, चार मजिला, चौमुखा ९५ फीट ऊँचा विशाल मन्दिर, अपने सुपुत्र नारायणजी के सहयोग से प्राय २ जुग के अथक श्रम द्वारा बनवा कर, श्रेष्ठिवर्य श्री भानाजी ने अपना नाम, गोत्र उजागर कर दिया। इधर भानाजी द्वारा मदिर बनवाना ही हुआ कि उधर, दूसरी ओर स्वय ही शासन देवी ने एक कन्या के स्वप्न के मिस, निकट के भूगर्भ से नील वर्णीय भगवन, स्वयभू पार्श्वनाथ की परिकर सहित मनोहारिणी मूरत, भडारीजी सा को प्राप्त करवा दी। देखना ही क्या था ? सोने मे सुगध हो गई। और अपने भाग्य को सराहते हुए हर्ष सहित भानाजी भडारी ने शुभ मुहूर्त मे आचार्य श्री जिनचद्रसूरिश्वरजी द्वारा स० १६७८ मे वैसाखी पूर्णिमा के चद्रवार को इस अनुपम मदिर मे उक्त प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा करवा दी। स्वय जोधपुर नरेश महाराजाधिराज गजसिहजी जिस अवसर पर उपस्थित हो, उस समारोह की सफलता का पूछना ही क्या है। भडारीजी की अनन्य श्रद्धा, भक्ति व शासनदेवी की कृपा से यह प्रतिष्ठा, सफलता व समृद्धि के शिखर को छू गई। धन्य है भडारी भानाजी, जो कापरडाजी तीर्थ के साथ साथ स्वय भी अमरत्व को पा गए।

१८वी सदी मे, कापरडा शहर अपनी उन्नति की चरम सीमा देख चुका है। सर्वांग सपन्न जैनो के ५०० घर यहाँ विद्यमान थे। नमक की खाने, छपाई का काम, उद्योग-धधे व खारचिये गेहू आदि से इस शहर को ऐतिहासिक व्यापकता मिल चुकी है। किन्तु अफसोस है कि शाही सल्तनत व अग्रेजी शासन काल ने क्रमश इस शहर-तीर्थ की शिल्पकला व शास्त्रो की मिट्टी खूब खराब की। आशातना व कर्तव्यविमुखता से जैनो की सख्या कम होकर कई सम-विषम स्थितियो मे से गुजरता हुआ यह क्षेत्र अवनति के दिन देखने लगा। स्थिति शोचनीय हो गई

हुआ समय का फेर, हाय ! पलटी परिपाटी।
जो थी कभी सुमेरु, आज है केवल माटी॥

हाँ, लेकिन, जैन-धर्म-वीरो का धर्म है और वीर हिम्मत नही हारते। क्या हीरे पर धूल पडने से उसकी कीमत कम होती है ? सयोग प्राप्त होने पर इन्किलाब की आधी चेतना-शक्ति को जगाते हुए यो चलती है—

नया जोश ले, नया होश ले, फिर उठता है जनगण प्यारा।
धर्म-प्राण है, धर्म-वीर है, सत्यनिष्ठ यह देश हमारा॥

जब बादल घने हो जाते हैं तो उसमे से ऐसी बिजली का जन्म होता है जो अवनि से आकाश तक उजाला ही उजाला कर देती है और तत्काल ही नया मार्ग दीख पडता है।

वक्त ने पलटा खाया और इन विषम परिस्थिति के बादलो मे घिरे हुए तीर्थ मे, श्री सघ के पुण्योदय से, अधिष्ठायक देव पुन जागृत हुए और तत्कालीन महाप्रभाविक तपोगच्छाधिपति आचार्य श्री विजयनेमिसूरिश्वरजी म० का ध्यान इस ओर आकर्षित होकर, बिजली सी नवचेतना, नवप्रकाश प्रसार गया। इसके फलस्वरूप स० १९७५ की वसन्त पञ्चमी को पुन प्रतिष्ठा हुई और यह तीर्थ तब से अच्छे दिन देखने लगा है। क्रिमाधिकम, कापरडाजी मे आज भी प्रति वर्ष चैत्र सुदि ५ को समीचीन रूपेण, व्यवस्थापको की सुव्यवस्था से, समारोहपूर्वक मेला भरता है।

तदनतर इसकी बहुमुखी प्रसिद्धि का मुख्य श्रेय 'मरुधरकेशरी' मुनि ज्ञानसुंदरजी (घेवर मुनि) को है जिन्होने इस तीर्थ की भक्ति मे अनमोल सेवाएँ दी हैं। वीरपुत्र आचार्य श्री आनन्दसागरसूरिजी एवम् 'पजाबकेशरी' आचार्य श्री विजयवल्लभसूरिजी जैसे महान प्रभावशाली सत तथा वर्तमानकालीन आचार्य हिमाचलसूरिजी विश्वप्रेम-प्रचारिका, समन्वयसाधिका-प्रवर्तिनी आर्यारत्न साध्वी विदुषीविचक्षण श्री जी, विज्ञान-श्री जी आदि अनेक साधु साध्वीवृद भक्तिवश कापरडा तीर्थ के बार बार दर्शन कर पावन बने हुए हैं। बार बार अनेक प्रदेशो से चतुर्विध सघ ने दर्शनो का लाभ लिया है। जैन अजैन सब ने सराहा है इस तीर्थ को। वास्तव मे अनन्त की महिमा का अत नही

है। अस्तु। ऐसे, अशरणशरण स्वयभू पार्श्वनाथ प्रभु के प्रति, हमारा हार्दिक भावोत्कर्ष, सर्वदा ही,

त्वत्सनिधानरहितो ममभास्तु देशस ,
त्वत्तत्त्ववोधरहिता ममभास्तु विद्या ।
त्वत्पादभक्तिरहितो मम मास्तु वशस ,
त्वच्चिन्तया विरहित मम मास्तु चायु ॥

दक्षिण देश के, परम भक्त, महाकवि नीलकठ दीक्षित के उक्त श्लोक के समर्थन से दिग्दर्शित होता रहे। शुभम्।

अत मे, हे शरणागतवत्सल पार्श्व प्रभु,

सब कुछ तुम्ही से माग लिया तुमको मागकर।
चाहूँ नही मैं और कुछ इस चाहना के बाद॥

एक मनुष्य, एक पशु, एक देव, एक नारकी और मनुष्य मे भी एक सुखी, एक दुखी, एक राजा, एक रक, एक सेठ, एक नौकर आदि जीवो की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ पुण्य, पाप और परलोक को प्रमाणित करने के अकाट्य प्रमाण है।

०००

राग, द्वेप, क्रोध, मान, माया, लोभ ये ही तुम्हारे आत्मा के सच्चे शत्रु हैं। अन्य मे शत्रु की कल्पना करना यह नितान्त अज्ञानता है।

अनीति, प्रपच, विश्वासघात, धोखेबाजी, स्वार्थवृत्ति, कपट-कला, ठग विद्या, ईर्षालु और निन्दक स्वभाव, धर्मद्वेष, दुराचार की दुष्ट बदी, मानव-सेवा के नाम से होने वाली घोर हिसा, स्वतत्रता के नाम से स्वच्छदता का पोषण आदि दुर्गुणो को देश-निकाला नही देगे तब तक उन्नति की आशा व्यर्थ है।

सूर्य के सन्मुख धूल उडाने वालो की आँखो मे ही धूल गिरती है। वैसे सज्जनो का बिगाड करने वाला खुद का ही बिगाड करता है।

स्तवन नं० १ वि. सं. १६७३ पौष कृष्णा १०

रचियता – प० हर्षकुशलगणिजी

पार्श्व स्वयभू प्रणमए, सेवक जन सुखदाई रे।
जस समरण सवि सपदा, वाधइ जसमान बढाई रे॥ १

साहिब सबलउ सेवी यह, निबल नई केड न ग्रहीयइ रे।
वसियउ तिण जिणवर सही, राति दिवसि मुझ हीयइ रे॥ २

तिण कहि मनि आरति किसी, जिण के तो सम साई रे।
सुपुरीस जस उपर करइ, दुजण करउ तस काई रे॥ ३

पारथिया पहडइनहि, दाता सो सलहीजइ रे।
जग जीवन जिणचन्दजी, तो तूठइ जीवीजइ रे॥ ४

नाम जपू अति नेह सू, अहो राति इक ध्यान रे।
सामि भगत सेवक सदा, साहिब रइ मनि मानइ रे॥ ५

उत्तम पदवी अभिनवी, पामइ सेवक उतसाहइ रे।
ज्यू बावन चन्दन सगइ, कुण तरुसखर न वासइ रे॥ ६

दिन दउलति अति, सुमहछोपो-मनसा पूरण भवती रे।
अतरग अरि करघडा, सबल सूर ज्यू साझी रे॥ ७

सानिधि साहिब ताहरी, मुझ उद्य उद्य नितु वाधइ रे।
चक्ररयण करि ज्यो चक्री, षटखड निसचय साधइ रे॥ ८

वात सुणत प्रभु ताहरी, सेवक सकट थी छूटइ रे।
सरस अमी रस घूटता, कहउ क्यू रोम न तूटइ रे॥ ६

सकलाई तुझ सहुतणइ, सुर किन्नर राजाना रे।
निश्चय कस्तूरी तणा, केम रही गुण छाना रे॥ १०

कापडहेडइ निरुपम, प्रभु प्रासाद विराजइ रे।
कलप वृक्ष नी उपमा, कहऊ, किण तरु नई छाजइ रे॥ ११

चउमुख त्रिहु भूमि करी, जिण मन्दिर सोहइ रे।
सिखर कलस पच दड सु, पच धजा मन मोहइ रे॥ १२

प्रभु तणी छवि आछी घणी, नयण रयण अणियाला रे।
तोरा गुण हिइडइ धारू, ज्यू मुकताफल माला रे॥ १३
आदि पख खरतर गच्छइ, जुगवर श्री चदो रे।
तस जापइ त्रिभुवन धणी, प्रगटयउ परमाणदो रे॥ १४
रयण सयण परियण, घणा पुत्र पवित्र वरकता रे।
यह साहिब तुठउ सही, दूरि हरउ चित चिन्ता रे॥ १५
जात्री आवइ अति घणा, तुझ पर तउसणी सयराणाउ रे।
मरुधर सइउ जागे वडउ, मोटउ तीरथ मडाणउ रे॥ १६
मनि तानी वचनउ महारइ, वल्लभ जिण तू हीज बाधइ रे।
तिणहिज सू साहिब तू सही, जे एक मना आराधइ रे॥ १७
अग अग आणद दीयइ, सेवक जण सामिधारी रे।
मन मोहन महिमा नीला जिण, तोरी वलिहारी रे॥ १८
आज असपन सपनउ सघनउ, वाधइ निविड सनेहो रे।
दरसण जिणवर ताहरइ, दूध वठउ मेहो रे॥ १९
बामा नदण जिण सुणे, निरमल तुझ गुण वेली रे।
घणा कवियण जण, आज ही न रहइ कदई केली रे॥ २०

कलस

इन वरस सोलहसय तिहुतरि, पौष वदी दसमी दिनइ।
अकुर तिम थयउ रूप चैत पूनिमी थी दिन दिनइ॥
सुख पवइ पूरति सहार सूरति, जानमूरति कार भी।
गणिहरख कुसल करइ सदा, मुझ हृदय कमल इ सार भी॥
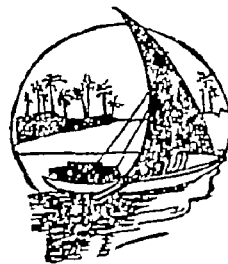
श्री कापरडाजी तीर्थ का रास नं० १

(रचयिता पडित श्री लक्ष्मीरत्नजी वि० स० १६८३ पोष सुदि ८)

सद्गुरु चरण कमल नमी, जीहो चित चितारणे शारद माय ।
रास भणिय रलियाउणो रे वला, साभल्या सब सुख सपदा थाय ॥१

कई पासजी आस पूरइ घणी रे, वला मन तणा रग रलियामणा कोड ।
अग इत्कोल किल्लोल सू रे, वला पाय लुल जन बे कर जोड ॥२

महिल मुलकै मृगलोचनी रे, वला सब गुणवत तिहापुत्र विनीत ।
सब दिन रात वउलै खुशी, जिहा मधुर वोला मिलै बधन मीत्र ॥३

पाय लुलै जिके मानवीजी हो, नवनवी उपजै तिहा सदा बुद्धि ।
आपदा असुख जायई टली रे वला अटकली मन जिका ते मिले सिद्ध ॥४

लाच्छ लीला करे तिहा घरे रे, वला धणकण कचन भरीया भडार ।
पास तूठे जिया माणसा जी हो, सरब काजई जस जगत जयकार ॥५

आदि उत्पति जिनपति तणी रे, वाला कहिसकइ कहो कुण कवियण साम ।
पारख हीर वारई पूराजी हो, प्रकटियो कर्प :हेटक ठाम ॥६

तासु सुप्रसन्न हुई वर दियउ, दादे चरण सेवक किए अपणो जाण ।
चरण चरचै घसि केसरै रे, वला गावतो प्रभु गुण मधुरडी वाण ॥७

सात सेरा तणी लापसी रे, वला पारपखै जीमइ अत्र अटूट ।
पहर सवा दसमी दिनै दादा जल तणो दीवलो ए नहि झूठ ॥८

राज करइ सु मडोवरे जी, हो राव गावो तरे मरुधरा माहि ।
पास अतिसो जाणियो रे, वला सेत सु जीमता कीध सराहि ॥९

वरस घणा जिण मन्दिर इजी हो, विविध पूजा करई निशदिन ।
किण हिक कारण करी पासजी रे, वला धरण अलोप थया जगदीश ॥१०

सहस फण धरणे मस्तक धरै जी हो सघर पदमावती तेहने जाण ।
तिहा पिण सेव सारइसदा दादा नाग बहुराज सू रहै पास नाग ॥११

केतला वरस तिहा अतिक्रमी जो हो रूप वसुधा थकी प्रगटियो जैण ।
सवत सोल तिरोतरे दादा जेहवो गाइना दुध नौ फेण ॥१२

सार गौ सीर केसर तणे जी हो, सिचवइ प्रभु थया प्रकट आकार ।
पुण्य अकुर ज्यू वधतो दादा, दिन दिन पासजी सुन्दर आकार ॥१३

मेल महाजन अति घणो जीहो वित्त तणा किया खरच अपार ।
सवत सोल छिहोतरेइ जीहो पाट वेसारिया साम शुभवार ॥१४

पाट जिनदेव्र जिनसिंह नइ जीहो श्री जिनचन्द सुरिश ने जाप ।
प्रगटिया थापिया सै हथै रेवला धू अविचल दीसे श्री जिन आप ॥१५

अमर सुत शुभ दौलतिजी हो भान भण्डारीया गोत्र सी वाल ।
हुकुम दीधउ शुभ श्री मुखई दादा श्री गजसिहजी सबल भुपाल ॥१६

सुदृढ करि नीव थडा वाधे रेवला भान मडावियो सवल प्रसाद ।
चिहुदिसि चौमुख फावतौ जीहो ऊचपण गमनसुमडे छै वाद ॥१७

भूमिका तीन तिण उपरइ रे वला शिखर शिर शोभतो कलश भलमान ।
तिहा पिण पचधज लहलहै जी हो जग कहइ न लिनी विमान समान ॥१८

वारण भलइ नीलै देहले रे वला चिहुदिसि पारसनाथ ना बिम्ब ।
सहस फणो रलियावणो जी हो मूल नाइक दियौ जगत उ ठाम ॥१९

पूतलिया मिसजोइवा जी हो रभ आवइ तिहा सामनौ रूप ।
शरवर छाजा थिर पाखती रे वला महमहै धुप री वास अनूप ॥२०

कलश चाढ्यो वलि तिण समैजी हो सवल मेलो कियो सघ नौ थाठ ।
अरथ खरचा जिके तिण समै रे वला कुण करे कविजन जेहनउ ज्ञान ॥२१

सपर तेवड करी लापसी रे वला वेस वारइ भला सालणा चार ।
शालि दाल घृत घोल सु जी हो मन खुशी हस करै जिमणवार ॥२२

हाथ तवोल पीरोजिया जी हो भोजकभाट जपे जयकार ।
महाजन साख मेलौ तिहा रे वला चैत पूनम दिन थापियो सार ॥२३

नाम नारायण दीपतो जी हो तिम नरसिंह सोढो सिरदार ।
वाधवा जोड चढती कला जी हो सुजस भडारीया वश सणगार ॥२४

पुत्र ते पोतरा जात सुजी हो अविचल नाम राख्यो तिणवार ।
माडि महोत्सव जस लियउ जी हो पुण्य कारी जयउ भान भडार ॥२५

शासन देवनी थापनाजी हो सतर नइएक भुजा सुविशाल ।
भूमि भमती तणी आदरइ रे वला खडग हत्था तिहा पिण क्षेत्रपाल ॥२६

रगतियो सगतिधर सावलौजी हो नाम गौरो तिहा रहहि ढाल ।
हाक हणवन्त दूठौ तठे रे वला सेव करइ जन तिहा प्रतिपाल ॥२७

देश सवालख मुरधरा रे वला सिंधरा गाजण अनइ गुजरात ।
अग नइ वग तिलग ना जी हो लोक आवइ करवा भणीजात ॥२८
सोरठ महिरठ देशना जीहो मालवौ मुलक निपइ मुलताण ।
जात्रिया देस मेवाड़ना दादा दर्शन करइ जन्म प्रमाण ॥ २९
स्नान कर अग धोवत धरी जी हो चौसरो टोडर गूथ नै हाथ ।
भेल कर्पूर कस्तूरि का रे वला केसर घस घणौ कुंकुम साथ ॥३०
आपणा हाथ सू अरगजे रे वला अग पूजा करई आपणै भाव ।
अग्र पूजा वहु विध करे जी हो चैत्य वन्दन करइ आगल आवि ॥३१
सम शृगार वणावती रे वला शीश कर जोडवी मोडती अग ।
गावती गीत गुण पासना जी हो वासना सम किताना धर चग ॥३२
थइथइ नृत्य करती रहइ रे वला गहगहै धमधम मादल छद ।
कोकिला कठ आलापती जी हो मनपती राण छतीस आनन्द ॥३३
मडिए भगत रे वला रमइ जीहो भरह नै भावि कर स्याम हुजूर ।
करपटहेटक पास नह जीहो वार आदीत नौ निलवट नूर ॥३४
भेरने फरडी दुडवडी रे वला पच शब्दा धुरइ सबल दुपाय ।
वाजित्र वाजै छै शासता जीहो साम तणे दरबार ने ठाम ॥३५
तुरत परचा प्रभु पूरवै दादो सवल मेले मन चित्त री आस ।
पुत्र दे जेह अडतिया जीहो राणमराज नइ लील विलास ॥३३
झगमीगर श्री भगवन्तजी जोहो जागती ज्योति झाझइ जसवाद ।
अरि करि केसरी नरबरा दादौ भय हरै तिम विष वाद ॥३७
सुरु गुरु कवि पिण न कहि सकइ जीहो सर्वगुण ताहरा इण ससार ।
एक रसना करी मानवी रे वला किम कहै कहो कुण तेह नौ पार ॥३८
सवत सोलत्रयासियइ जी हो उजली अष्ठमी पोस नइ मास ।
रास कीधउ प्रभु पासननोजी हो शुद्ध ··· पुर माहि उल्लास ॥३९
जे थुणई जे भणई जे सुणई जी हो, रास रूडो तिहा नवनिध थाय ।
राज श्री पुज्य जिनचन्द नइ जीहो श्री लक्ष्मी रत्न कहइ उव झाय ॥४०

श्री कापरड़ा रास न० २

रचयिता पंडित दयारत्नजी वि० संवत १६६५

हूँ बलिहारी पासजी, कापडहेडा सामि सयभ कि।
गुण गावण मति गहगहे, आपो सद्गुरु बचन अचभकि ॥ १

नयणे निरखी नेह सुँ इणजुनि एह अचभ वात की।
प्रगट आप हुता प्रगट, वहुलेजण दीठी विख्यात कि ॥ २

आचारजिया नव अवल गछ, खरतर राजे गुणवत कि।
श्री जिणचन्द सूरीजी, मुनि अति मोटो महत कि ॥ ३

सवत सोल से सितरे प्रथमण हुइ परमाण कि।
जोधनयर माहि जागता आखे, इणविधि अहिगण की ॥ ४

तिहुँ वावल री तलहठी तीन वास भुइ मिणिजै तेम की।
प्रतिमा पारसनाथ री, इहा छे कापडहेडे एम की ॥ ५

श्री पुजसु घो सरदहि आया कापडिहेडे आप कि।
परमारथ नविपाँमियो, जाइ मेडते कीधो जाप किं ॥ ६

हुकम हुओ इम हेजसु, बाइसमा तणो धरीमान कि।
सु घी धर पय सीचज्यो, परगटसी जिणविधते वान कि ॥ ७

सवत सोले चहूतरे पोस वदि दसमि दिन घणु नूर कि।
ऊजल वड अकुरपरि दूवे सीचतो दीठ अकुर कि ॥ ८

सद्परचो श्री पुज सूं दैव दिखावे इम दीदार कि।
वाल्लक परि दिन दिन वधै बीजचन्द्र परि कला विचारि कि ॥ ९

वरप ग्यारह लाखथी प्रथम इहा चौमुख प्रासाद कि।
हूतो तिणविधि हिव हुश्री सेवकनू यू समरया सादकि ॥ १०

निरसी निखारू निपुणनारायण भडारी नाम कि।
हुकम दियो हाजर हुइ किणहि अवरन चाले काम कि ॥ २१

तिण कहियो निज तातनु, भडारी कुल अभिनव भाण कि।
भानो छानो नहि भुवणि, अद्भुद दान धनद अहिनाण कि ॥ १२

पैसा वहुला रे प्रथम हूकतीदार वडे फुजदार कि।
भागवली भानो भलौ, सुजस कियो सारे ससार कि ॥ १३

सवत सोलह पचोतरे सुदि हुतिय मगसिर तिममास कि ।
पुनी वदीतो देहरो भागवली भानै मडियो ओस कि ॥ १४

सोलसहसय छिहुँतर समै पदम शिला तणो प्रारभ कि ।
पीठे बैठा पासजी इण मुहूरत जण घणी अचभ कि ॥ १५

ये तिहुघणमेलिया पाणी बीज नवि पहुचाइ कि ।
सरवर त्रिहडी लापसी भानेजीमाया भल चाइ कि ॥ १६

उपरी तवोल अवसरे टुकडहे दुक्रन गए दूर कि ।
भट्टारक भाभा विन्हे हुता देव हाजरा हुजूर कि १७

देवल सषरो देखिने दिवसहु दाखवे दीवाण कि ।
मुजरउ करिया पावासउ आषो, आप करै अहिठाण कि ॥ १८

भुज अठारे छै भला प्रत्यगि सासण प्रतिपाल कि ।
गोरो कालो रगतियो षडग हाथ बलि जिहा क्षेत्रपाल कि ॥ १९

सप्तफणो सोहामहणो आपरूप कीधो आकार कि ।
· · · · · पूरो नहि किण विधि आषै दिन कमवार कि ॥ २०

सवत सोलह इक्यासिए, वयसाषा सुदि तीज विचार कि ।
दड कलस चाढण दिवस घ्वज मुहरत जोयो निरधार कि ॥ २१

देसानुं कागल दीया नहुतरिया वलि नगर ने गाम कि ।
नरनारी आया निपुण हैजे पूरखता मन हाप कि ॥ २२

धजा पच डडे धरी पुन्य तणो पुरो प्रमाण कि ।
कलस मुहूरत सुकृत करणसाजै दिन कीधौ सुविहाण कि ॥ २३

सखरी तेवडि सालणा लापसिया कीजे रग रेल कि ।
माठो मोटो मडियो सभिया साल दाल धृतघोल कि ॥ २४

जीव उदार जीमाडिया, सघ देस देसारा सार कि ।
मोटे सेहथि आपिया फदिया भाना सुत ने कार कि ॥ २५

नाकारो किण ही नही, दूखिया दपटै दीजै दान कि ।
सघ पूज साधा तणी भडारी सतोषे भान कि ॥ २६

गोसुवरण दे अणगिणया बाभण कीधी वंचीसकी ।
भोजक चारण भाटनू सतोषे गिणिया सारीस कि ॥ २७

दीठो धाता धनदपट गिणता नवि पहुती ते आन कि।
थिर चैती भेली थयो कीधी परठ वडै परधान कि ॥ २८

जावे श्री जिणचन्द नै सुपसापे श्री पारसनाथ कि।
भाना नारायण धरे अपूट हुइ सगली ही आय कि ॥ २९

भडारी भाना सुतन नरायण नरायण रूप कि।
देव गुरु रागी भागमल इण सम अवरन दीठ अनूप कि ॥ ३०

नरसिह ने सोढो निपूण वधव वयासे वरयाम कि।
ताराचन्द खगारतिभ कपूरचन्द किरीयावर काम कि ॥ ३१

पास पसाये इया प्रबल दिन दिन हुआ चढता होइ कि।
अवर सेवा जे आदरे अणभग अणगजी अणवीह कि ॥ ३२

जालीतल जिनचद नै पाटै श्री हर्ष सूरिन्द कि।
पास सेवाथी पामियो अधिकै चढतो नूर आणद कि ॥ ३३

अदेखाई आँगमी माने नहि जे घरि मति मान कि।
सभादीए तियाँ साहिवो निसचै पिसुण गमै निसतान कि ॥ ३४

आगे ही अतिशयअधिक पारष हीरा वारइ पास कि।
पाणी दीवो पोस वदि दसमी दिन हूतो जस वास कि ॥ ३५

सात सेर री लापसी सघ जीमतो सकल सुगाम कि।
राय मागे परती लियो सेह बात न हुई सही आलकि ॥ ३६

देवा सिखट देव ये मछरी का वट मछरीक कि।
पारथिया सहु पूरवै निसचै मरदवडौ निरभीक कि ॥ ३७
पामे पास पसाउले पुत्र विनीत घणो परिवार कि।
मानित मृगलोचन दिलै कलियुग को न लोपे कार कि ॥ ३८
कलि वलि माहि बडि करै दहिले जाए दहवार कि।
पास पसाए प्राणिया अलाप सय सहुटले उचाट कि ॥ ३९
सुरतर समवड साहिवा माडी मे तोसुमन मेल कि।
भालि अखड भबकि विगतो कुण सवाले वेल कि ॥ ४०
परचो दीठो पासरो परपि नयणे आणदपूर कि।
कापडहेडे तिणकियो हरषै टेसी रास हुजूर कि ॥ ४१
भविक भणय जे रास भले माने वलि समले कल्याण कि।
मनवाछित सगला फलै हुएनहि किणाही विध कहाण कि ॥ ४२

सवत सोलह पचाणवे राजे श्री हरष सूरिस कि ।
पास तणा गुण पूरिया सवहि दया रतन सुसीक कि ।। ४३

कलश

इम विनवउ भविय तारण अणदिति खरतरगुरु जिनहर्ष सूरिस
जिणचद हि परमेसर श्री पासनाह धरणीदहि लाघिस पूरउ प्रमाणद
सघउ मनवाछित ।

कापरहेडा पारसनाथ कवित्त

कवित्त—(इसकी रचना वि० स० १७०६ मे हुई)

पारसनाथ पसाईल, बधि पदारथ लधौ ।
च्यार सै गज बीस, बध थडा बध बधौ ।
त्रिभुवन नाम त्रिलोक, अना कुल चौसठि विषारण ।
देव गोत देवलोक, सील राजद सुधारण ।
एहवौ प्रसाद इल ऊपरा, सारा है सुरनर सकल ।
'भानीदास' करायौ जिन भवन, इलपुड अमरावत अचल ।। १

च्यार मुख चिहु दिशा, भवन पिण च्यार भणीजै ।
इक्यासी गज उदेवडे, सासत्रै वणीजै ।
अचलमेर उपारा, नलिन विमान निरतर ।
एह सिखर असमान, पुणा तिण रीत पटतर ।
साराह करै सुगले सुरिद, जिनप्रसाद सुजती जुगति ।
'भानीदास' करायौ जिनभवन, ओब सिखर ओपति अति ।। २

प्रघल बहुत पावडी, जुगति सख्या कुण जाणै ।
महा घर मडणी विवुध, सहु कोइ वखाणै ।
चतुर महाघर च्यार, च्यार वलि रेख चविजै ।
असटा पदति इघक, दिन दिन ओपम दिजै ।
माडणी अजाइ बमाडियौ, खाति सुद्रिव खरचै खरा ।
'भानीदास' करायो जिन भवण, पाभौ पर दीपा घरा ।। ३

आठ अग ओपग तीन से बीस . . चिहु दिसा चोकिया ।
कीध अजाइब कोरण, पहि पुडमैं मीढिया ।
अवर को वै ।
बारै हजार बतीस, सरवर पूतली सभावै ।
ओपमा सहस अढारि, घर बिरद ।
त्रैभुवन तणा बहुरूप तिण, सारा है सगले सुरिद ॥ ४

... २ पच सै भला भुइ डड भणिजै ।
सतरै सहस सपेखि थभ अवाणु ल सोभती ।
थान थिरय सिर सोये, . . ।
भयो, करम धरम मीठा कवण ।
कुण मीठा कलि माहि, भान वरियाम भडारी ।
महि पुड कलिजुग माहि, अचल अखियात उवारी ।
सोले सै इक्यासियै चैत्र, मुख कलस चढायौ ।
सिरिहर आखा तीज, सिरै महूरत सवायौ ।
ससि सूर इद सामद कहि, थिरताइ अविचल थाइसी ।
'भानीदास' सुजस समरथ भणै, जाते जुगै न जाइसी ॥ ६

—अभय जैन ग्रथालय गुटका जिसमे अमरसिह आदि की वात सवत् १७०६ लिखित

श्री कापरहेडा पार्श्वनाथ वृद्ध स्तवन

रचयित श्री जिनहर्षसूरि—वि० १७३५

वाल्हेसर सुणी बीनती हो माहरा श्री महाराज ।
सेवक सुपर निवाज नै, सारो सगला ही काज हो ॥
जिम वाधै त्रिभुवन लाज हो, भवसायर तू तो जिहाज हो ।
तुझ मदेलह्यो मैं आज हो, साचौ साहिब सिरताज हो ॥
कापरहेडा श्री पासजी ॥१

महियल महिमा ताहरी हो, कहिता नावै पार ।
चावौ तीरथ चिहु-दिसे, करिवा आवै दीदार हो ॥

हियडे घर भाव अपार हो, नरनारी कर सिणगार हो ।
गुण गावै राग मल्हार हो, बलिहारी प्राण आधार हो ॥२

साहिब सुरतरु सारिखो हो, अधिकी पूरो आस ।
चिता चूरे चितनी वारु, लहिये लील विलास हो ॥
अन्तरजामी अरदास हो, करु हियडै धरिय उल्हास हो ।
नयणे निरखो निज दास हो, भाँजो दुख गरभावास हो ॥३

दादौ दुनियाँ दीपतो हो, समरथ त्रिभुवन साम ।
एका थापै ऊथपै, एकाँ निस्तारे माय हो ॥
भरपूर भडारे दाम हो, काढे सबला तू काम हो ।
सूभर भरिया ... सहुको गावै गुण ग्राम हो ॥४

साम तुम्हारा नाम थी हो, लाधे राज भडार ।
मणि माणिक मोती घणा, रथ पायक बहु विस्तार हो ॥
हय गय चाकर सिरदार हो, घर धान तणा अबार हो ।
निरुपम गुणवन्ती नार हो, पुत्र जाणे देवकुमार हो ॥५

कुमणा न रहे केहनी हो, पामइ सुख भरपूर ।
ताहरा सेवक ताहरी, तिण सेवा करै हजूर हो ॥
जागै तिम पूण्य अकूर हो, टलि जायै पातिक दूर हो ।
सूरि जिम वाधे नूर हो, घरि वाजे मगल तूर हो ॥६ का०

इहलोक परलोक नानासहु हो, सुख आए गुणगेह ।
करम सबल दल निग्दलै, जिम चुकी करै अरि छेद हो ॥
अजरामर मिंदर जेह हो, सुख पार न कोई अछेह हो ।
जिहा रूप नही नही देह हो , थापे सिवनारी नेह हो ॥७ का०

परतो साम देखालवा हो, पूरेवा गहगाट ।
इलि अवतरियौ आइनै, घडियो नही किण ही घाट हो ॥
एतो मुगतपुरी नीं वाट हो, दुख दालिद्र गयण उचाट हो ।
आवैं जात्री नौ थाट हो, माजण निजमन ना काट हो ॥८ का०

'भान भडारी' भाव सू हो, सुभ मुहुरत सुभवार ।
देवल सुधि मडावियौ, एन चलै किण ही वार हो ॥
'नारायण' सुजस भडार हो, जिन मन्दिर कीध उदार हो ।
'ताराचद' सुत तसु सार हो, विस्तरीयो बड विस्तार हो ॥९का०

रग रली परिवार मे हो, साम तणै सुपसाय ।
उत्तम कॉम किया जिये, तिमहिज वति करता जाइ हो ।।
नामौ नवखडे थाइ हो, अरियण आइ लागै पाइ हो ।
श्रीपास सदाई सहाय हो, दोहरम आवे नही काय हो ।।१०का०

पुर 'मडोवर' देस मे हो, तारण जलधि जिहाज ।
मेटे जे सुभ भाव सू, ते पवि सिवपुर रान हो ।।
माहरी तुम्हने छे लाज हो, वाचक 'शातिहरख' सहाज हो ।
'जिनहरख' कहै महाराज हो, साहिबजी सुयर निबाज हो ।।११।।

इति श्री कापरहेडा वृद्धिस्तवन सम्पूर्ण

पडित ध्यासिंघ लिखित श्री बीकानेर मध्ये पारख सा नाबराणी,
प्रतापसी तत्पुत्ररत्न पा० सा० सहसमल्ल पठनार्थ ।।श्री।।सम्वत १७३५।।

३ कापरहेडा पार्श्वनाथ स्तवन

रचयिता जिनहर्ष सूरि

तै मन मोह्यौ माहरौ रे, होय रह्यो लयलीन ।
सावलिया साह तुझ बिन खिण न रही सकू रे लाल, ज्यू जन पखि मीन रे
।।१।। सा तै०

दरसन दीजै आयने रे आपणा सेवक जाण रे ।। सा० ।।
मोटा चिहु दिस साचवे रे लाल, हित वच्छल हित आण रै ।। सा० ।।२।।
सेवक सहुको सारिखा रे, लेखवस्यो सुविशेष रे ।
शोभा तोहीज पामस्यो रे लाल, इणमे मोन न मेख रे ।। ३ ।। सा० ।।
दरसन ना आजू हुवै रे, दरसन तौ दीजै तास रे ।। सा० ।।
पाणी रवी सुं पातलो रे लाल, उपगारी देव पासरे ।। ४ ।। सा० ।।
इण ससार असार मे रे, उबरसी उपगार रे ।। सा० ।।
मोटा थी थोटा हुवै रे लाल, इम आखै ससार रे ।। ५ ।। सा० ।।
अरज करू सफली हुवै रे, ताहरी वाधै लाज रे ।। सा० ।।
फलै मनोरथ माहरो रे, एक पथ दोय काज रे ।। ६ सा० ।।
हू पिण छू इक ताहरो रे, सेवक विश्वावीस रे ।। सा० ।।
'कापडहेडै' पासजी रे लाल, कहे जिनहरख गणीस रे ।। ७ ।। सा० ।।

इति श्री कापडाहिडा पार्श्वनाथ स्तवन ।

४. कापरहेड़ा पार्श्वनाथ लघु स्तवन

(सारी रे रसिया रग लागो ।। ढाल वीदली)

(रचयिता　श्री जिनहर्ष सूरि वि स १७२७)

मोरा लाल अग सुरगी अगीया, कु कुम चदण री खान ।। मोरा लाल ।।
आगल नाचे अपछरा, गीता रा रमजोल ।। मोरा लाल ।। १ ।।
पास जिणद सू मन लागौ, रग लागौ चित चोल ।। मोरा लाल ।।
मोरा लाल मूरति मोहण वेलडी, दीठा आणद होइ ।। मोरा लाल ।।
सौ वेला जो निरखीयै, नयणा अमीजरता तोय मोरा लाल ।। २ ।।
मोरा लाल हियडा माहे वसि रह्यौ, मोहनगारौ नाम मोरा लाल ।
सूता ही सपने मिलै, सीझै सगला काम । मोरा लाल ।। ३ ।। जा० ।।
देव घणा ही देवले, दीठा तेन सुहाइ मोरा लाल ।
भमरौ मोह्यौ केतकी, अलबिन अरणी आइ ।। मोरा लाल ।। ४ ।। पा०
मोरा लाल चातक जलधर नै नमै, अवरन नामे सीस ।। मोरा लाल ।।
कै तौर है तिसालुओ, कैज्याचैजगदीस ।। मोरा लाल ।। ५ ।। पा०
मोरा लाल वाल्हेसर निज सेवका, नयणै जौ निरखत ।। मोरा लाल ।।
इतरै ही सुख सपजै, तन ताठिक उपजत ।। मोरा लाल ।। ६ ।। पा०
मोरा लाल मोरी आहीज वीनती, दोजै लील विलास ।। मोरा लाल ।।
कहै 'जिनहरख' सदा नमुँ, कापरहेडा पास ।। मोरा लाल ।। ७ ।। पा० ।।

इति श्री कापरहेडा पार्श्वनाथ लघु स्तवन ।

सवत १७२७ वर्ष श्रावण सुदि ६ दिने प० सभाचद लिखित ।। श्रीजैतारणमध्ये ।।

वि० स० १८७२ में यतिवर्य्य श्री गुलाबविजयजी महाराज ने जो कविता लिखी उसे अविकल रूप से प्रकाशित करते हैं—

स्तवन नं० १ (गजल)

दोहा

सरस्वती पाय प्रणमु सदा

रिद्धि सिद्धि नित देय ।
दुख बिणसण सुख करण, अविरल वाणा देय ।
देश चहु दिशि दीपतो, सदा शूरमो देश ।
तीर्थ कापरडे वरणवु भैरु वली विशेष ।
गजल करू गौरातणी, सुणता उपजे नेह ।
बालक बुद्धि वधारवा, अकल उपजे एह ।
ज्ञानी ध्यानी वहु गुणी, पाखण्ड रहे न कोय ।
एता खडे दुरजन अधिक रगराली घर होय ।

गजल

देवल वरणवु कैसाक, तारा मडल जैसाक ।
नलनि गुल्म है विमान, ऐसा खूब है कमठाण ।
चार पोल हैं चारो खड, देवल दीखता प्रचण्ड ।
ऐसा शिखर है उच्चाक, जाय आसमान में पहुचाक ।
चारो तरफ है छाजाक, वाजै नौपतो वाजाक ।
नया २ कोरणी कीनीक, ऐसी बुद्धि ही दीनिक ।
पारसनाथ की पूजाक, माँहे देवता दूजाक ।
डावा जीमणा भैरु की, काला गोरला कदुलुँकी ।
दुनिया जातरु आवेक, दरसण भैरु का पावेक ।
परचा पुरता ऐसाक, दुनिया मानत जैसाक ।
चारो खड मे फिरतेक, भैरु आण ही वरतेक ।
मेला भरता है आठम चवदशी प्रमाण ।
स्त्री रोज ही ध्यावेक, तिके पुत्र ही पावेक ।

माता चकेश्वरी कैसीक, मनसा पुरती जैसीक ।
शकर खूब हैं बडभाग, रखते पार्वती गल लाग ।
जटा गग ही बहतेक, वहान बहल ही रहतेक ।
गणपत देव कहु जाण, मूषा पर बैठा है आण ।
हनुमत वीर है एहवाक, दुनिया करती है सेवाक ।
जात्रु अथागही आवेक, दुनिया चूरमो लावेक ।
उपासरा नजदीक है भारीक, दुनिया वदती सारीक ।
सिद्धि बन्ध है सालका, खरतरगच्छ का आलका ।
बाडा वण रहा हद बीच, अरणी केर की जगीच ।
देवल कृष्ण का हद युक्त, सब जन पूजते मन भक्त ।
चौपड गटा है वाजार, मेला मडता है विस्तार ।
वजाजी माल बहुविकतेक, सामादलाल ही मिलतैक ।
चापासर है कैसाक, सरोवर कहिए जैसाक ।
शकरदेव का देहराक, आगे बाग का भेराक ।
वागा रूख है वहु खूब, दाखा केला लागे खूब ।
आबा आमली निम्बू का, पीलू जवेरी जाबुक ।
सीताफल होत है चगाक, वावल नीवू नवरगाक ।
खेजड कुमठा है जालक, ढालू पीलू खा रहे बालक ।
गू दी दाडम बोर का, तोरु भिंडी हैं ओरोक ।
मैथी चदलिया है साक, मूली गाजर है विनताक ।
एरड ककडी वालोल, कोयल टहुका दे रही बोल ।
चम्पा मालती फुली, गुलाब मोगरो सिंचती मूली ।
शोभा वणवि केसीक, रमे देवता जैसीक ।
वाडी पास है नजीक, मगो करसणी सनीक ।
हासल होत है हर साल, हाटो बिके है माल ।
कुवा रतन है भारीक, पाणी भरत है नारीक ।
माडा बावडी वर वाण, नाडी बसत है सोजाण ।
चामुंडा थान है चगाक, निर्मल नीर बहे गगाक ।
आडा वसते क्षेत्रपाल, करते गाव की रखवाल ।
मठ की जायगा जाणुक, कैसी छवि है आणुक ।
राम का देहरा चगाक, पूजा होत है मन रगाक ।

आगे आगर मे जान, साभर माता का है थान ।
नागण नेमा माता की, पूजा होत है सीता की ।
लूण की खुलती हैं क्यारीक, मामा देव है भारीक ।
छोड ग्राम के रस्ताक, मामा बीच मे बस्ताख ।
रामा पीर है रजाक, धोली फहराती धजाक ।
केसरिया कवर का है स्थान, दुनिया पूजती बहुमान ।
चम्पा अवलिया सरदार, सबसे रखते बहु प्यार ।
थोडे मे गजल कीनी, वाते सारी ही लीनी ।
सम्वत अठारा जाणुक, वरस वहोत्तर आणुक ।
चैत्र मास है चगा, वद पख तीज दिन रगा ।
तपागच्छ यति है गुलाब, किया इस गजल का जाब ।
जिसने कहिए केसीक, आख्या देखी है जैसीक ।

स्तवन नं० २

यह स्तवन श्रीमद्विजय नेमिसूरीश्वरजी महाराज के शिष्यरत्न श्री अमृतविजयजी महाराज ने प्रतिष्ठा के समय वनाया था—

हा मारे ठाम धर्मना साडा पचवीस देस जो (राग)

हारे मारे मरुधर देसे करपटहेठक गाव जो ।
राजे रे त्या जैन धर्म नो राजीया रे लोल ।। १

हारे मारे चार मजलनो मोटो मदिर राजजो ।
चौमुखो चउगतीने चुरे ज्यो जनोरेलो ।। २

हारे मारे मूलनायक श्री उतर दिशा मजारजो ।
पूर्व दिशारे शान्ति दाता सोलमारे लोल ।। ३

हारे मारे सम्प्रती राजा भराव्यो ए प्रभु विम्बजो ।
कान्तीरे जैनी साचा मोती समीरे लो ।। ४

हॉरेमारे निरखी निरखी नरनारीना नैनजो ।
नवी पामे तृपती कामे दरसण सदारे लोल ।। ५

हारे मारे कउच भीत कबूतर पालण हारजो।
तारक भवसागरथी तारो दासनेरे लोल ॥ ६
हारे मारे पालडी गाव निवासी सघवी राजजो।
पुनर अवधारे मोहत्सव तीर्थ विसे करेरे लोल ॥ ७
हारे मारे तपगच्छ गगन नेभानु नेमिसूरीदजो।
सइके ओगणीस पचोतरना माघमारे लोल ॥ ८
हारे मारे सुदी पाचमने शुभ लगने जिन सोलजो।
थापीयारे तस अमृत नेह थकी नमेरेलो ॥ ९

स्तवन नं० ३

राग होरी—सांवरो सुख दाई

पूज लो भवि भाई, पार्श्व प्रभु शिव सुख दाई ॥ टेर
पुरुष दानी पार्श्व जिनेश्वर, तीर्थंकर जिनराई।
ब्रह्मा, विष्णु, हरि हर शकर, राम रहीम खुदाई।
खुदा से नही है जुदाई ॥ १

राग द्वेष दूषण नही जामे वीतराग पद पाई।
निर्दोषी सेवो भवि भावे, नाम अनेक कहाई ॥
नाम की नहिं है परवाई ॥ २

स्वयभू पार्श्व सेवा से, स्वयभू बन जाई।
सेवा फल सेवक की सेवा, करते लोग लुगाई ॥
चरण मे शीश नमाई ॥ ३

कापरडा तीर्थ मडन प्रभु पार्श्व, खडन कर्म कराई।
शुद्ध होवे निज आत्म रूपी, जन्म मरण मिट जाई ॥
कापरडाजी की दुहाई ॥ ४

'आत्म लक्ष्मी' प्रकट करने को, आत्म निमीत्त कहाई।
शुद्ध अवलम्बन है जिनवर दर्शन, वल्लभ अति हर्षाई ॥
मिले आत्म ठकुराई ॥ ५

स्तवन नं० ४

केशरिया थासु प्रीत लागीरे साचा भाव से ॥ चाल ॥
श्री पार्श्व जिनद के दर्शन करोरे भवि भाव से ।
पुरुषादानी पार्श्व प्रभुजी, उत्तम दानी ध्यानी ।
ज्ञानी नही मानी गुणखानी, सानी नही जस जानीरे ॥ १
पारस सम पारस रस पूरण, चूरण करके उपाधि ।
भव्य कनक को निर्मल करता, पूरण ब्रह्म समाधिरे ॥ २
कापरडा तीर्थ मडन प्रभु, खडन अघ दल करता ।
जो सेवक सेवा शुभ करता, हरता दु ख सुख भरतारे ॥ ३
चैत्य स्वयभू पारस प्रभु का, चार खण्ड का सोहे ।
दूर दूर से दृष्टि पडता, देखत तन मन मोहेरे ॥ ४
बाण मुनि रस इदु (१६७५) सुन्दर, मन्दिर है बनवाया ।
भानाजी भण्डारी वशे, ओसवाल जग गायारे ॥ ५
वसु ऋषि रस शीश (१६७८) घर पारस प्रभु, विधि से थापन कीना ।
भडारी भानाजी पूरण, पुण्य खजाना लीनारे ॥ ६
चउमुख देवल देवे केवल, लेवल सम उर धारा ।
चार गति ससार भ्रमण को, टारी करे भव पारारे ॥ ७
उन्नीसो पचोत्तर पचमी, माघ सुदी बुधवारा ।
बिजयनेमिसूरी करवाया, तीर्थ का उद्धारारे ॥ ८
मूलनायक पारस प्रभु उत्तर, पूरब शाति जिनदा ।
अभिनदन दक्षिण सन्मुख है, पश्चिम सुव्रत चदारे ॥ ९
ऋषभ देव अरनाथ जिनद, शासन नायक वीरा ।
नेमीनाथ दूजे खड सोहे, सेवो भावे धीरारे ॥ १०
श्री नेमीनाथ अनत प्रभुजी, नेमिनाथ जिनराया ।
मुनि सुव्रत तीजे खड दीपे, मुनि सुव्रत सुखदाया रे ॥ ११
पार्श्वनाथ मुनिसुव्रत स्वामी, शीतल नाथ सुहाया ।
पारस चौथे खडे दर्शन, करी तन मन हर्षायारे ॥ १२
ऋषि मुनि निधि इदु (१९७७) सातम तिथि, माघ वदि रविवारा ।
आतमलक्ष्मी प्रभु के दर्शन, वल्लभ हर्ष अपारा रे ॥ १३

स्तवन न० ५

रचयिता—श्री गुणसुन्दरजी महाराज

मरुदेश तीर्थ हितकारा, कापरडा पार्श्व प्यारा । टेर
निर्जल मरुस्थल के माही, तीर्थ पिण अधिका नाही जी ।
देख फलवर्द्धि ओसिया, कापरडा दर्शन सारा ।। १

चोमुख चौमजिला छाजे, ऊचो अति गगन विराजेजी ।
ध्वज दड कलश चमकारा, सुर सानिधि चैत्य उद्धारा ।। २

नाहि स्तम्भ की गिनती पाई, नालो को उर्ध्व चतुगाई जी ।
द्वादश गवाक्ष दिशि चारा, दिग्पाल बने पूजारा ।। ३

सोलह प्रतिभा मनुहारी, फिरि दोय अनुपम न्यारीजी ।
छबि शान्त सरस सुखकारा, दिल रजन बिंब अठारा ।। ४

मूल नायक नील वर्ण है, धणि लछन चरण शरण है जी ।
शिर सहस फणि विस्तारा, सिर ताज पै जाऊँ बलिहारा ।। ५

स्वयभू पार्श्व है मोटा, दुनिया का भागे टोटाजी ।
जहा यात्री आवे हजारा, मिल पूजे सूर नर सारा ।। ६

प्रभु भक्ति विवध पर होवे, सुर नर प्रभु मुखडा जोवेजी ।
लाजे रोहिणी भरतारा, जिन दर्शन आनन्द कारा ।। ७

कापरडा तीर्थ है नीको, यश विजय नेमिसूरी को जी ।
करवाए तीर्थ उद्धारा, जिन नाम रटे नर नारा ।। ८

शुभ साल पिचहत्तर माही, प्रतिष्ठा सेठ कराई जी ।
किया मरुधर जैन उजारा, जैनेतर भेद निवारा ।। ९

शुक्ल माघ पचमी मेला, होता है श्री सघ भेलाजी ।
वर घोडा निशान नक्कारा, घुरे नोवत जिन दरबारा ।। १०

छटादार स्वर्णमय अगिया, जिन भक्ति से दिल रगियाजी ।
पूजा नाटक झनकारा, मडली, घुंघरू घमकारा ।।११।।

प्रभु पूजा अष्ट प्रकारा, विधियुक्त होय निस्ताराजी ।
यह श्रावक का आचारा, शिक्षा ले पुत्र कुमारा ।। १२

आनन्द सप्त मे अग सुहाया, बगुर श्रावक मन भायाजी ।
देखो आवश्यक सूत्र मझारा, ज्ञाता द्रोपदी अधिकारा ।। १३

पूजा की भावना भावो, खुश खिदमत प्रभु की चाहोजी ।
भक्ति से वेड़ा पारा, पाओगे मोक्ष द्वारा ।। १४

ओस वश मे जाति भडारी, भानूमल हुए यशधारीजी ।
सुर सहाय मनोहर प्यारा, बनवाए जिनालय सारा ।। १५

भय भजन पार्श्व भगवन, फिरता हूँ फेरी जगवनजी ।
करो चिदघन रूप हमारा, लहूँ अजर अमर अविकारा ।। १६

श्री रत्न प्रभु सूरी राया, ओसिया ओसवाल बनायाजी ।
जिन अकथ किया उपकारा, हिसा मिथ्यात्व विडारा ।। १७

गच्छ कवला आज शिरोमणि, गुरु ज्ञानसुन्दर के दर्शन जी ।
पूर्ण सम्पति दातारा, जासु महिमा अपरम्पारा ।। १८

शुभ साल सतासी अन्दर, करी यात्रा मुनि गुण सुन्दरजी ।
हुआ सिद्ध मनोरथ सारा, पौष वद दशम बुधवारा ।। १९

मति साहश विनती गाई, अक्षर कम अधिका नाही जी ।
यो कीजो चतुर सुधारा, यह विनय है बारम्बारा ।। २०

श्रीकापरड़ा मन्डन श्रीस्वयभू पार्श्वनाथ स्तवन न० ६

(चाल—चोककी)

स्वयभू पार्श्वनाथ, कापरडे शुद्ध मनसे कोई ध्यावेगा ।
ज्ञानी फरमावे, वह भव भव सुख पावेगा ।।टेर।। (मिलत)

तेईसवा जिनराज, जिन्हो का उज्ज्वल यश जग छाया है ।
ऐसा नही जग मे जिन्होने, पार्श्वगुण नही गाया है ।।

नगर जैतारण ओसवस मे, भण्डारी बडभागी है ।
श्री भानुमल्लजी नाम आपका, जैनधर्म के रागी हैं ।।

सदाचार षट् कर्म को पाले, इष्टबली अति भारी हैं ।
हकूमत का पैसा राजकी, सेवा सदा हितकारी है ।।

(छूट) एक दिन किसी दुष्टने, चुगली खाई दरबार मे ।
भण्डारी को पकड बुलावो, क्या कहेगा जबाब मे ।।

जैतारण से चालीया असवार हुवा सव साथ मे ।
देव दर्शन किया बिना, भोजन नही लेऊ हाथ मे ।।

(शेर) आय कापरडे गुरु से अर्जि कीनी ।
भली फते होगी तुम जावो आशीषज दीनी ।।

बात सुनी नरनाथ कुर्व फिर दिनो । भला०
आय कापरडे गुरु को शरणो लीनो ।। (दौड)

गुरु कृपा सिरधार । देव सहायता ले लार ।
निलनीगुल्म[1] आधार । बनाया मन्दिर श्रीकार ।।

माल चौमुखजी चार । सात खण्ड सुखकार ।
गगन से करते हैं विचार । स्वर्ग मोक्ष के दातार ।। (मिलत)

चार मण्डप और रासपुतलियो, थभा गिना न जावेगा ।
ज्ञानी० ।। १ ।। (मिलत)

भवितव्यता का जोर जिस्से, देववचन विसराया हैं ।
रह्या काम अधूरा फिर भी, लक्ष्मी किनारा पाया है ।।

देव कृपाकर भूगर्भ से, बिम्ब चार प्रगटाया है ।
सुकुसुम की वरसा, देखने सघ सकल हरषाया है ।।

एक बिब तो गुप्त हुवा, तीनो को मन्दिर मे लाये हैं ।
सोजत, कापरडे, अरु पीपाड नगर मे ठाये हैं ।। (छूट)

सवत् सोलह इठन्तरे, वैशाख पूर्ण मासजी ।
मरुधराधीश 'गजसिंह' का, जोधाणा मे वासजी ।।

जिसके विजयराज मे, प्रतिष्ठा हुई सुखकारजी ।
सघ चतुर्विध महोत्सव कीनो, वरत्या जयजयकारजी ।। (शेर)
चौमुख प्रतिमा चार चतुर गति चूरे । भला० ।
मूल नायक श्री पार्श्वनाथ सुख पूरे ।।
सघ मे हुआ आनदमगल गुण गावे । भलो० ।
मिल नर नारी का वृन्द पार्श्व मन ध्यावे ।। (दौ)
बढा पाप का प्रचार । छोडी सेवा भक्ति सार ।
जिससे पुन्य गये परवार । हुवा सघ वैकार २ ।।

---

१ पाँचवे देवलोक मे एक विभाग का नाम है ।

छोडी मन्दिर की छाप । लगा अधिष्ठायक का शाप ।
अन्न नही मिलता है धाप । देखो आशातना का पाप २ ।।
(मिलत) आशातना का पाप जबर है परभव मे दु ख पावेगा ।
ज्ञानी० ।। २ (मिलत)
प्रबन्ध नही सेवा पूजा का, टूट फूट होने लागी ।
जब सेठ लल्लुभाई के हृदय मे भक्ति जागी ।।
फिर विजयनेमि सूरीश्वर आये मारवाड मे बडभागी ।
घाणेराव पीपाड जोधाणे, बीलाडे भक्ति जागी ।।
अहमदावाद, पालडी, पाली, सघ एकठा हो सागी ।
जीर्णोद्धार कराया, जिनका गुण गावे शासनरागी ।। (छूट)
उगणी से पीचतरे वसत पचमी बुधवारजी ।
हुई प्रतिष्ठा आनद मे सघ सदा जयकारजी ।।
मूलनायक उत्तर दिशे पार्श्व स्वयभू हितकारजी ।
शान्तिनाथ पूर्व दिशा दक्षिण मुनिसुव्रत धारजी ।। (शेर)
अभिनदन महाराज पश्चिम मे सोहे । भलो० ।
अब दूजे खण्ड के बीच ऋषभ[1] मन मोहे ।
अरनाथ[2] प्रभुवीर[3] नेमि[4] जिन देवा ।
भला० । पूजे इन्द्र नरेन्द्र करे प्रभु सेवा ।।
(दौड) तीजे खण्ड के मझार ।
नमि[1] अनत[2] हितकार नेमि[3] मुनि सुव्रत[4] आधार ।
पूजा करे नरनार २ चोथे खण्ड पार्श्वसार ।।
सुपार्श्वनाथ[3] सुखकार । मुनिसुव्रत[2] करपार ।
शीतलनाथ[1] का आधार २ । (मिलत)
चार खण्ड मे सोलह प्रतिमा–दोय पास मे ध्यावेगा । ज्ञानी० ।।३
(मिलत) विजयवल्लभसूरि मुनिवर, यात्रा करने को आवे ।
धर्मशाला का उपदेश दिया, जहा सघ ठहर आनन्द पावे ।।
जैवतराज मुनिम पूरा पार्श्वनाथ पूजे ध्यावे ।
मैम्बर यहा का पन्नालाल प्रभु गुण गावे ।।
काम काज की अच्छी सफाई सराफि दिल मे लावे ।
फिर रामसिह है पूनमचद प्रभु पूजे भावे ।।

(छूट) पार्श्व शुभदत्त हरिदत्त सोहे आर्य्य समुद्र केशीकुमारजी
श्रीमाल पोरवाल कीना स्वयप्रभसुरि सो धारजी ।
रत्नप्रभसूरि थापिया, ओसवश गोत्र अठारजी[१] ।।
यक्ष[२] कक[३] देव[४] सिद्धसूरि[५] उपकेश गच्छ आधारजी ।।
(शेर) कोरट कमला द्विवन्दनिक गच्छ वाजे ।
कहता न आवे पार गगन गुण गाजे ।।
अविछिन्न चाले आज परम्परा सारी ।
जिनके उपकार की जैन कोम आभारी ।।
(दौड) मुनि ज्ञानसुन्दर मन भाया ।
जिसके गुण का पार न पाया ।।
नगर पीपाड से आया । यात्रा करता सुख सवाया २ ।
सवत् गुणी से है सार । साल वयासी मझार ।
वसत पचमी सुखकार । पूजा से पावोगे भवपार ।। ३
(मिलत) खजवाना का वासी 'छोगमल' महात्मा पद को
ध्यावेगा । ज्ञानी० ।। ४
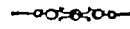
स्तवन न० ७

रचयिता—श्री जवाहरलालजी दफ्तरी

आनन्द आयारे, प्रभु पार्श्व तणा मे दर्शन पाया रे ।।टेर।। आनद
मारवाड मे गाव कापरडा, तीर्थ बडा सुखदाया रे ।
पार्श्वनाथ जहा विराजे, प्रणमु पाया रे ।। आनन्द० ।। १

जैतारण के ओश वश मे, भडारी कहलाया रे ।
भानुमलजी नाम आपको, मन्दिर बनाया रे ।। आनन्द० ।। २

सवत सोलहसो साल इठतर, बेसाक शुक्ल जब आया रे ।
पूनम के दिन भई प्रतिष्ठा, लेख खुदाया रे ।। आनन्द० ।। ३

रहा मन्दिर अधूरा तब भी, कैसा काम कराया रे ।
राणकपुर से एक मजिल ऊचा दिखलाया रे ।। आनन्द० ।। ४

अश्वसेन राजा कुलचन्दा, वामा देवी माया रे ।
नील वरण प्रभु काया निरखी, हर्ष सवाया रे ।। ५
बालपने प्रभु अदभुत ज्ञानी, जलता नाग बचाया रे ।
अ-सि-आ-उ-सा मत्र जपे, नवकार सुनाया रे ।। ६
दिक्षा ले प्रभु केवल पाये, शीवपुर आप सिधाया रे ।
तार दिए प्रभु बहु नरनारी, पार न पाया रे ।। आनन्द० ।। ७
सवत् उगणीसे साल नीव्वेरी, दिवाली दिन आया रे ।
'जवाहरलाल' प्रभु पूजा करके, अति सुख पाया रे ।।आनन्द ।।८

स्तवन नं० ८

रचियता—श्री जवाहरलाल दफ्तरी

माने स्वयभूपार्श्व प्यारो लागे हे लो, कापरडाजी यात्रा मे करसाँ ।
मैं तो करसा ने भवजल तरसाँ हे लो ।। टेर

जैतारण के ओसवश मे, भडारी बड भागी हे लो ।
भानूमलजी नाम आपको, मन्दिर बनाया एक नामी हे लो ।
कापरडाजी यात्रा मैं करसाँ ।। माने० ।। १

सो फीट जमीन सू ऊँचो, चोमजील सुखदाइ हे लो ।
चौमुख प्रतिमा जहा बीराजे, थभा गणिया न जावे हे लो ।
कापरडाजी यात्रा मैं करसाँ ।। माने० ।। २

मूलनायक प्रभु पार्श्व विराजे, पूरब माहे शाति जिनद हे लो ।
दक्षिण दिशा मे अभिनदन विराजे,
पश्चिम माहे मुनिश्रुव्रतजी हे लो ।
कापरडाजी यात्रा मैं करसाँ ।। माने० ।। ३

बसन्त पचम को मेलो भरीजे,अठाई महोत्सव अति भारी हेलो ।
दूर देश का यात्रु आवे पूजा कर हर्षावे हे लो ।
कापरडाजी यात्रा मैं करसाँ ।। माने० ।। ४

शहर पीपाड से चल कर आया, परचा सु अति भारी हे लो ।
पार्श्व पूरो प्रभु आश हमारी, 'जवाहरलाल' गुण गाया हे लो ।
कापरडाजी यात्रा मैं करसाँ ।। माने० ।। ५

स्तवन नं० ९

रचियता—श्री मदनराजजी चौधरी पीपाड

आनन्द आयोरे प्रभु पार्श्वतणा, मैं दर्शन पायो रे ।। टेर आनन्द

सदा उठ प्रभु थाने सुमरू, निरख निरख गुण गावुं रे ।
नीलवर्ण री सूरत ऊपर, वारी जाउं रे ।। १ ।। आनन्द

अश्वसेन वामाजी के नदा, नगर बनारसी जाया रे ।
पोष वदी दशमी दिन प्रगटे, जग हर्षायारे ।। २ ।। आनन्द

बाल पणे प्रभु अद्भुत ज्ञानी, जलता नाग बचाया रे ।
अस्सी उसाय मत्र सुना, धर्णेन्द्र बनाया रे ।। ३ ।। आनन्द

कमठा सुर नै उपसर्ग किया, ध्यान नही चलाया रे ।
धरणेन्द्र पद्मावती आकर, शीश उठाया रे ।। ४ ।। आनन्द

अष्ट कर्मो को दूर हटाकर, केवल ज्ञान प्रभु पाया रे ।
सम्मेत शिखर पर अनसन करके, मोक्ष सिधाया रे ।। ५ ।। आ०

ग्राम कापरडा मे आप विराजो, मन्दिर चौमुख भाया रे ।
दर्शन कर श्रीपार्श्वजिनन्द का, 'मदन' अति हर्षाया रे ।। ६ ।। आनन्द

स्तवन नं० १०

चाल—पूजन तो हो रहा है चाहो तारो या न तारो

तीर्थ विन नाही तरना है। तीर्थ से पार उतरना है ।। टेर

घोर ससार दु खों का सागर। जिसको दुस्तर तरना है।
तीर्थ वही जो पार पहुचावे। फिर कभी नही फिरना है ।। ती० १

शत्रु जय गिरनार सित्खर हैं। आबू अपूर्व मन्दिर है।
चम्पा पावापुरी पूरव मे। कलिंग के दर्शन करना है ।। ती० २

अतरिक और मक्सी माण्डव। केसरिये शिव वरना हे।
भद्रावती कूलपाक तारगा। नौखडा निस्तरना है ।। ती० ३

ओशीयो वीर मुच्छाला राता। फलोदी लौद्रवे चलना है।
राणकपुर की पचतीर्थी। कापरडे कुच्छ करना ह ।। ती० ४

एकलआहारी सचितपरिहारी। भूशय्या ब्रह्म चरना है।
उभय काल प्रतिक्रमण करके। गुरु साथे पद धरना है ।। ती० ५

न्यायोपार्जित निज द्रव्य को। शुभ क्षेत्र मे खरचना है।
कर यात्रा जीवन लग प्राणी। सुनिति शुद्ध आचरना है ।। ती० ६

तीर्थ भूमि शुभ परमाणु। समकित निर्मल करना है।
मडल भावना नितकी भावे। यात्रा तीर्थ करना है ।। ती० ७

स्तवन नं० ११

राग—केशरिया था सु प्रीत लगी रे सच्चा भाव सू

हा नगर कापरडे, दादा विराजे पार्श्वनाथजी ।। टेर

नीलवरण तन सोहे प्रभु को, मुख पूनम को चन्द।
दर्शन करता आनन्द आवे, सेवे सुरनर इन्द रे ।। हा नगर ।। १

मेरु सरिखो सोहे मन्दिर, ऊचो अतिही विशाल।
चारू दिशा मे प्रभुजी विराजे, दीपे देव दयाल रे ।। हा नगर ।। २

चतुर मजिल मे सोलह जिनवर, भेटता भव पार।
ध्यान धरता शिव सुख पावे, मोक्ष तणा दातार रे ।। हा नगर ।। ३

नित्य नित्य ध्यान धरत हूँ तेरा, साहिब सच्चा मेरा।
स्वयभू पार्श्व दर्शन करता, टारे भव का फेरा रे ।। हा नगर ।। ४

मूलनायक (पार्श्वनाथ) के दाईं वाजू, सोहे शाति जिनन्द।
अचरिजकारी मूर्त प्रभु की, जिम तारो मे चन्द रे ।। हा नगर ।। ५

जिन शासन मे प्रेम के भानु, प्रवचन करते खास।
'नयरत्न' को प्यास दर्श की, पूरेगे प्रभु पार्श्व रे ।। हा नगर ।। ६

स्तवन न० १२

राग—सिद्धाचल शिखरे दीवा रे

कापरडा तीरथ चालो रे, पार्श्व प्रभु अलबेलो रे ।। टेर

मूल नायक पार्श्व जिनन्दा रे, टाले भव का फदा रे ।। १ ।। कापरडा
आ मूर्ति मोहनगारी रे, भवि जन को लागे प्यारी रे ।। २ ।। कापरडा
मैं मुखडो प्रभु को दीठो रे, दालिद्र सगलो नीठो रे ।। ३ ।। कापरडा
स्वयभू पार्श्व जिन मेरा रे, टाले भव का फेरा रे ।। ४ ।। कापरडा
प्रभु पार्श्व दीठा नीला रे, कर्मो को मार्या खीला रे ।। ५ ।। कापरडा
प्रभु का मुखडा पूनम चन्दा रे, सेवे सुर नर इन्दा रे ।। ६ ।। कापरडा
ए तीरथ मरुधर माही रे, पार्श्वनाथ जग साई रे ।। ७ ।। कापरडा
ए तीरथ जग मे दीवो रे, दर्शन से अमृत पीवो रे ।। ८ ।। कापरडा
जिम गिरिवर मे मेरु रे, तिम ए तीरथ तेरु[1] रे ।। ९ ।। कापरडा
पार्श्व से मुजरो मेरो, निरखुं मुखडो तेरो रे ।। १० ।। कापरडा
हइडा मे हर्ष न मावे रे, झगमग ज्योत जगावे रे ।। ११ ।। कापरडा
भानु प्रेम का प्याला रे, नय[2] कहे पार्श्व निराला रे ।। १२ ।। कापरडा
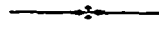
श्री स्वयभू पार्श्वनाथ, कापरड़ाजी स्तवन न० १३

रचयिता—प्यारेलाल फूलचन्द मूथा, साहित्यसुधाकर, काव्यभूषण, अमरावती

(तर्ज—जब जब बहार आई · फिल्म—तक़दीर)

ससार को अगन से, जब प्राण तिलमिलाये,
मेरा दिल भर आये ।

बरसा के धर्म का जल, अर्हन अगन बुझाये,
मेरा मन हर्षाये ।।

तू है 'स्वयभू पारस', कापरडा तीर्थ नायक,
त्रैलोक मे अकेला, तू मोक्ष का है दायक,
मरुदेश का कहाये, फिर भी तू जग रिझाये ।। १ मेरा०

---

१ बाँह पकड के तारने वाले ।
२ नयरत्न वि० ।

चूमे गगन को तेरा, सुंदर विशाल मदर,
महिमा के गीत गाये, पशु पखी नर पुरदर,
कोई झोली लेके आये, मन की मुराद पाये ।। २ मेरा०

आगम पुरुप हो स्वामी, सादी अनत जिनवर,
सेवा मे सुर असुर नर, मुनि सूर चद्र सत्वर,
कितने ही काल जाये, महिमा न पार पाये ।। ३ मेरा०

मूरख या भोगी रोगी, विज्ञानमय विचक्षण,
करता है भक्ति जो भी, उसका करे तू रक्षण,
तू सत्य मग दिखाये, भव्यो को तू सुहाये ।। ४ मेरा०

मगल है धर्म तेरा, मागल्यमय है दरशन,
तू है जिनेश 'प्यारा', करता है चित्त परसन,
जब जब व्यथा सताये, तेरा गीत दुख मिटाये ।। ५ मेरा०

श्री पारसनाथ भगवान का स्थावन नं० १४

रचियता—बोरा वैद्य पुखराज, पीपाड शहर (राज०)

तर्ज—केशरिया थासूं

मुलका मे बाबा, तीर्थ कापरडा पारसनाथजी ।। टेर ।।

अश्वसेन वामा पितु माता, नगर बनारसी जाया ।
पोष वदी दशमी दिन जन्मे, तेवीसमा जिनराया ।।१।।

चारो दिशा मे चौमुख मन्दिर, चार मजल है खास ।
चार मजल मे चार-चार प्रतिमा, मूल नायक प्रभु पास ।।२।।

पचाणू फुट ऊँचा मन्दिर, इन सम नही है दूजा ।
इन्द्र-इन्द्राणी सुर करे प्रशसा, श्रावक श्राविक करे पूजा ।।३।।

देश-विदेश से आवे यात्री, थम्भ गिना नही जाता ।
अजब कारीगरी देख छबी को, दर्शन कर गुन गाता ।।४।।

कहे वैद्य पुखराज निहारा, चरण कमल चित्त चाहता ।
प्रभु पारस मोहि पारस बनादो, जन्म मरण मिट जाता ।।५।।

कविता

रचियता—जवरचद पगारिया जैन, बिलाडा

चमत्कारिक पारस प्रभु, तिर्थ कापरडा माय,
लाखो जन सेवा करे, शिव सुख मारग पाय।

गगनचुंबी मदिर महान, खीयाती जग विख्यात,
राजस्थान मे जैन तीर्थ, अद्भुत इसकी शान।

जोधपुर जिला तहसील बिलाडा, कापरडाजी स्थान,
जहाँ विराजे पारस प्रभु, सकल गुणो की खान।

जो कोई ध्यावे ध्यान सू, मिटे आठ कर्म का पाप,
धन धान्य की वृधि हो, पावे इज्जत आपो आप।

'जबर' महिमा जगत मे, बढे रात दिन जोर,
भक्ती से जो सुमिरन करे, पावे स्वर्ग मे ठौर।

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।

गतिशीलता धर्म का लक्षण है, गतिहीनता (जडता) अधर्म का लक्षण है।

अज्झत्थ सव्वओ सव्व, दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए।।

सब ओर से आने वाले सुख-दु ख का मूल अपने ही भीतर है और सभी प्राणियो को प्राण प्रिय है, यह जान कर भय और द्वेष से विमुक्त किसी के प्राणो का हनन नही करता।

श्री कापरड़ा तीर्थ के निकटतम पीपाड़ शहर का इतिहास

ले० श्री जवाहरलाल दफ्तरी, पीपाड

पीपाड शहर श्री कापरडाजी तीर्थ से सिर्फ ६ मील की दूरी पर है। यह बहुत ही प्राचीन शहर है पर बसावट की दृष्टि से इतना सुंदर बसा हुआ है कि नगर प्रवेश करने वाले प्रत्येक यात्री की यह इच्छा होती है कि पूरा नगर ही क्यो न देख ले। पीपाड नाम कैसे पडा इसके लिए यो कहा जाता है कि पहले यहा पीपा नामक ब्राह्मण की ढाणी (छोटी बस्ती) थी तथा पीपा देवी का मदिर था, इसी पीपा नाम को आगे चल कर पीपाड कहने लगे, यह युक्तिसगत भी है। पीपा देवी का मदिर तो अभी भी शहर के मध्य मे है जो कि बहुत प्राचीन है, यह राजा गधर्वसेन का बनाया हुआ है। शहर के विषय मे भी यह कहा जाता है कि इसे भी राजा गन्धर्वसेन ने बसाया है। पीपा देवी के मन्दिर के पास पीपल का वृक्ष आया हुआ है इससे इसे अभी पीपल देवी का मदिर कहते हैं। प्राचीन समय मे शहर मे पहला तम्बोलिया नामक तालाब था जिसे अब तम्बोलिया बेरा कहते हैं। दूसरा लाखा तालाब था, जिस पर झालर बावडी है। वर्त्तमान मे यहा पर जो बडा तालाब है इसका नाम सापा तालाब है, इसके पास ही एक सापा भैरो की छत्री बनी हुई है, यह विक्रम की बारहवी शताब्दी की है।

शहर के मध्य मे शेष भगवान का मन्दिर है वह बहुत प्राचीन है जिसका आधा हिस्सा जमीन के अदर आ गया है जिससे सीढियो द्वारा मन्दिर मे उतरना पडता है। मन्दिर के सभा मण्डप मे स्तम्भो पर चार शिलालेख खुदे हुए हैं वे पूरी तरह पढे नही जाते। इनमे से दो जो पढे जा सके हैं उसमे से एक सम्वत १२२१ का तथा दूसरा सम्वत १२२४ का है। इन शिलालेखो से भी पीपाड शहर के प्राचीन होने का प्रमाण मिलता है।

यहाँ के इतिहास से भी यह पता चलता है कि यहाँ पर पहले करमसोत राजपूतो का राज्य था, बीच मे कुछ वर्षो तक पासवानजी का भी राज्य रहा। वि० स० १७६७ मे महाराज श्री अजीतसिंहजी ने निम्बाज ठाकुर साहब श्री जगरामसिंहजी की राज्यसेवा पर प्रसन्न होकर पीपाड इनायत कर दिया। श्री जगरामसिंहजी उदावत वश के थे और आपके वशजो का ही अब तक राज चला आ रहा था। जागीरदारी समाप्त होने तक श्रीमान् ठाकुर साहब श्री उम्मेदसिंहजी राज्य करते थे। आपका जनता के प्रति अब भी प्रेम है। श्री जगरामसिंहजी का अग्नि-सस्कार सॉपा तालाब के किनारे पर हुआ, जहाँ

लाल पत्थर की आलीशान छतरी बनाई गई जो कुछ वर्षो पहले गिरी हालत मे हो गई, अब तो वहाँ पर पुस्तकालय बन गया है।

आज का पीपाड जोधपुर जिले का जोधपुर के बाद तथा बिलाडा तहसील मे सबसे बडा शहर है। यह जोधपुर से ४० मील तथा बिलाडा से २५ मील की दूरी पर है। यहाँ की जनसख्या करीब २० हजार है। यहाँ पर प्राय सभी जातियो के लोग रहते है। यहाँ पर रेल, डाक, तार, टेलीफोन, चिकित्सा, शिक्षा आदि का उत्तम प्रबन्ध है। यहाँ पर नगरपालिका है, शहर मे पक्की सडक है, बिजली है, पानी के नल भी लगने वाले हैं, पर पानी की अभी भी कमी नही है। कुए बहुत हैं, पानी यहाँ का अच्छा है। खेती की दृष्टि से जमीन उपजाऊ है। यहाँ पर गेहू, बाजरा, मूग मोठ तथा तिलहन आदि बहुत होते हैं। यहाँ की लाल मिर्च प्रसिद्ध है। यहा पर पहले रगाई-छपाई का काम बहुत होता था, अभी भी थोडा बहुत होता है। यहा पर प्राय सभी धर्मावलम्बी रहते हैं। उनके अपने सुन्दर मन्दिर तथा स्थान हैं। यहा सनातन धर्म के ३१ मन्दिर हैं। दो रामदेवरा, धर्मशाला, गौशाला, आर्यसमाज मन्दिर तथा हिन्दू सभा भवन भी हैं।

शिक्षा की दृष्टि से भी यह शहर आगे है। यहा पर १ हाई स्कूल, २ प्राथमिक पाठशालाए, १ माध्यमिक कन्या पाठशाला सरकारी है। इसके अलावा निजी पाठशालाए भी हैं। इनमे कुल मिला कर करीब २००० बालक-बालिकाएँ शिक्षा ग्रहण करते हैं। यहा के कई एक होनहार युवक उच्च शिक्षा प्राप्त कर देश के विभिन्न भागो मे हमारे शहर का नाम रोशन कर रहे हैं। इनमे से कई एक डाक्टर, वकील, इजिनीयर, तथा चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट हैं। व्यापारिक क्षेत्र मे भी यहाँ के निवासी अग्रगण्य रहे है। पीपाड मे इनका अच्छा व्यापार है और बाहर भी जहा कही भी गए अच्छा व्यापार किया और अपना नाम कमाया। यहा के करीब ५ हजार लोग बाहर विभिन्न प्रान्तो मे बसते है। इनमे से कइयो की हवेलिया यही पर हैं। हवेलियो मे भी कई एक बडी कारीगरी की है, जिन्हे देख कर हमारे बुजुर्गों की याद आए बिना नही रहती।

इस शहर का यह भी गौरव है कि यहा की महान् विभूतिया अध्यात्मवाद का सदेश देश के कोने कोने मे फैला रही हैं इनमे से एक तो हैं पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज, दूसरे हैं पूज्य साध्वीजी श्री विचक्षण श्री जी। इन दोनो का जन्म स्थान पीपाड ही है, इसके अलावा श्री जयती मुनीजी व श्री हीरा मुनीजी भी यही के हैं।

किसी जमाने मे तो यहाँ पर जैन समाज के बहुत से घर थे। उसमे से कई एक बाहर अन्य प्रान्तो मे जाकर बस गए। पर आज भी यहा २५० घर करीब हैं। यहा पर दो जैन मन्दिर, ७ उपाश्रय, २ स्थानक तथा और भी कई एक सस्थाए हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर

यह शहर के मध्य बाजार मे है। यह मन्दिर करीब ३५० साल पुराना है याने श्री कापरडाजी के मदिर के समकालीन बना हुआ है। मन्दिर शिखरबद बहुत ही सुंदर बना है। यहा की नीलवरण पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा बडी मनोहारी है। यह प्रतिमा श्री कापरडा तीर्थ से लाई गई भी कहते हैं कि श्री कापरडाजी मे ४ नीलवरण प्रतिमाए थी उसमे से १ श्री कापरडाजी १ सोजत १ जोधपुर मे तथा १ पीपाड मे विराजमान है। मन्दिर के आगे विशाल प्रॉंगण है। पुराने जमाने मे यहा पर शहर की पचायते होती थी। कुछ वर्षों पहिले यहा पर टाका बना दिया गया है जिससे पानी का आराम हो गया है।

(२) श्री शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर

यह शहर के बडे तालाब के किनारे पर आया हुआ है। ऊँची कुरसी पर आने से इसकी छटा निहारने योग्य है। यह विशाल मदिर स्व० यतिवर्य्य श्री बक्तावरविजयजी के सदुपदेश से वि० स० १९४१ मे बनना शुरू हुआ और इसकी प्रतिष्ठा आपके शिष्य यति-वर्य्य श्री विद्याविजयजी के कर कमलो से वि० स० १९५२ मे सानन्द सम्पन्न हुई। मन्दिर के पास ही बगेची है जो पहिले गुरासा की बगेची के नाम से प्रसिद्ध थी। इसमे तपागच्छ के यति महाराजो के अग्निसस्कार होते थे। उस जगह उनकी छत्रिये तथा साल बनी हुई है। मन्दिरजी के निर्माण के बाद यहॉ पर कुआ खुदवा दिया गया तथा कई एक कमरे भी बना दिए जिससे यात्रियो के ठहरने मे सुविधा रहती है। इस वक्त यह श्री शान्तिनाथजी की बगेची के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) श्री दादाजी का उपासरा

यह शहर के मध्य बाजार मे आया हुआ है। यह प्राचीन स्थान है। यहाँ पर श्री जिन-कुशलसूरिजी की चरणपादुकाए हैं तथा विशाल उपासरा है। इसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छा-चार्य ने वि० स० १८५८ मे की जिसका शिलालेख लगा हुआ है। उपासरा के बाहर ही इसकी तीन दुकाने हैं जिससे यहाँ का खर्च अच्छी तरह चलता है। उपासरे को नये ढग से बनाने का योजना विचाराधीन है।

(४) राजा उपासरा

यह शहर के मध्य कालाभाटा मोहल्ले मे आया हुआ प्राचीन स्थान है। इसमे वि०स० १६५९ का शिलालेख लगा हुआ है। इसमे आधुनिक ढग के हॉल बनाए गए हैं।

इसके अलावा यहाँ पर (१) गुरासा चतुरसागरजी का उपासरा (२) श्री कवला-गच्छ का उपासरा (३) सवेगियो का उपासरा (४) श्री सवेगी जैन धर्मशाला (५) श्री

मोतीचन्दजी का उपासरा तथा २ स्थानक भी हैं। यहा पर तालाव के किनारे पर श्री बहादुरमलजी मूथा का चौबीता, श्री विद्याविजयजी की साल व श्री दादावाडी की जमीन आई हुई है। यहाँ पर जैन समाज के सभी सम्प्रदायो के अपने सुन्दर स्थान हैं। हाल ही मे यहाँ जैन धर्मशाला का भी निर्माण कार्य चालू है।

यहाँ पर ओसवाल बडी न्यात का विशाल 'ओसवाल भवन' दफ्तरियो के मोहल्ले मे आया हुआ है तथा ओसवालो का न्याती नोहरा चिकित्सालय के पास है। ओसवाल लोहडेसाजन सघ सभा भवन का भी सुन्दर स्थान हे। यहाँ श्री जैन श्वे० मन्दिर सोसाइटी है जो कि मन्दिरो का कार्य देखती है। इसके अलावा शहर मे जयमल ज्ञानभण्डार, ज्ञानोदय लाइब्रेरी तथा जैन श्वेताम्बर धार्मिक पाठशाला भी है। यहाँ पर श्री जैन नवयुवक मण्डल पुरानी सस्था है।

श्री जवाहरलालजी मुणोत ने यहाँ पर सुन्दर चिकित्सालय अपनी ओर से वनाया है उसमे श्री मगनमलजी मुणोत ने भी जनाना चिकित्सालय बनाया है। शहर के मध्य मे मुणोतो की जैन स्कूल है जिसमे सरकारी कन्या पाठशाला चलती है। बीच बाजार मे श्री जवाहरलालजी दफ्तरी ने 'जवाहर पुस्तकालय' अभी हाल ही मे वनाया है जिससे जनता लाभ उठाती है। स्व० श्री हीरालालजी भलगट की ओर से श्रीमती भूमर बाई भलगट जैन कन्या पाठशाला सन ४१ से चल रही है। हाल ही मे श्री तेजराजजी भसाली ने अपनी ओर से श्रीमती केशर बाई भसाली उद्योग शाला स्थापित की है जिसमे बालिकाओ को सिलाई शिक्षा दी जाती है। यहाँ पर दो धार्मिक पाठशालाएँ भी हैं।

पीपाड शहर के जैन समाज की अपनी यह विशेषता है कि यहा अपनी अपनी उपासना करते हुए भी एक दूसरे के सहयोग के लिए सदा तैयार रहते हैं। वि० स० १९७५ मे जब श्री कापरडाजी तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा हुई उसके पहिले यहा के बधु वहाँ की देख-रेख करते थे। बाद मे स्व० श्री लक्ष्मीप्रतापजी भसाली तथा श्री जुगराजजी कटारिया जीवनपर्यत इस तीर्थ की बराबर सेवा करते रहे। वर्तमान मे तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के अध्यक्ष श्री तेजराजजी भसाली, सदस्य श्री मदनराजजी चौधरी, श्री पनालालजी कटारिया तथा श्री जवाहरलाल दफ्तरी पीपाड के हैं। और श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति पीपाड के नागरिको की पूर्ण भक्ति है।

श्री कापरड़ाजी तीर्थ के निकटतम नगर बिलाड़ा का इतिहास

ले० श्री उगमराज सराफ, बिलाडा

बिलाडा नगर जयपुर से जोधपुर के राजमार्ग पर स्थित जोधपुर जिले का एक महत्व-पूर्ण स्थान है।

बिलाडा तहसील हैडक्वार्टर है, जोधपुर से ५० मील पूर्व स्थित इस महत्वपूर्ण नगर से कापरडाजी का महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान १७ मील दूर है। कापरडाजी तीर्थस्थान को जाने के लिए बिलाडा राजमार्ग पर करीब १० बसे आती जाती हैं।

बिलाडा मे जैनो के करीब १०० घर हैं। यहाँ पर तीन जैन मन्दिर और एक दादावाडी है। एक मन्दिर श्री सुमतिनाथजी भगवान का छतरी के चौक के समीप स्थित है। इसमे दो बडी विशाल मूर्तियाँ हैं। मूलनायक भगवान श्री सुमतिनाथजी हैं। दूसरी प्रतिमा श्री पार्श्वनाथजी को है। इसके सामने बगीचा है जिसमे कुआ भी है। यहाँ पर पूजन करने वालो को पूर्ण सुविधा है।

दूसरा मन्दिर डफरियो के मोहल्ले मे श्री चिंतामणि पार्श्वनाथजी का है। उसमे मूलनायक भगवान श्री पार्श्वनाथजी हैं। दाई तरफ श्री अजीतनाथजी, बाई तरफ श्री ऋषभदेवजी की प्रतिमाएँ हैं। बाहर आलो मे ४ प्रतिमाएँ बिराजमान हैं। इसके पीछे बगीचा है जिसमे कुआ है।

तीसरा मन्दिर कटारियो के मोहल्ले मे श्री पार्श्वनाथजी का है। इसमे भी मूलनायक भगवान श्री पार्श्वनाथजी ही हैं।

दादावाडी तहसील भवन के सामने है जिसमे युगप्रधान श्री जिनकुशल सूरिश्वरजी महाराज साहब की चरणपादुकाए हैं।

इस नगर मे वि० सवत १६७० के आश्विन कृष्णा २ को युगप्रधान चौथे दादा श्री जिनचद्र सूरिश्वरजी महाराज साहब देवलोक हुए उन पर छतरी बनी हुई है। वह एकात होने से चरणपादुका श्री सुमतिनाथजी भगवान के मन्दिर मे स्थापित की गई हैं।

यहा पर धर्मक्रिया करने हेतु डफरियो के चौक मे दो धर्मशालाए स्थित हैं जहा पर श्रावक श्राविकाए प्रतिक्रमण, पौपध आदि धर्मक्रिया करते हैं। मुनि महाराज एव साध्वीजी महाराज के ठहरने कि सुव्यवस्था हैं।

बिलाडा नगर को राजा बलि की पवित्र नगरी होने का गौरव प्राप्त है। राजा बलि ने ५ यज्ञ यहा किए जिसकी स्मृतिस्वरूप पचयाग या पिचयाक ग्राज भी उस याद को ताजा करता है।

बाणगगा का पवित्र स्थान बिलाडा के महत्व मे एक विशेष स्थान रखता है। राजा बलि ने यज्ञ हेतु ग्रपने चमत्कारी बाण से गगा का उत्पादन किया जो ग्राज भी भूमि से प्रकट होकर समतल भूमि पर पवित्र धाराग्रो के साथ ग्रबाध ग्रविकल रूप से बह रही है।

राजा बलि की नौ माताए इसी पवित्र भूमि पर ग्रपने पतिदेव बिलोचन राजा के स्वर्गवास पर सती हुई थी। यह स्थान ग्राज भी उन नौ सतियो की यादगार मे नौसती के मेले के रूप मे याद ताजा करता है। यह मेला प्रति वर्ष चैत्र कृष्ण ग्रमावस्या को बाण गगा पर भरता है जिससे हजारो नरनारी नौ सतियो की याद को ताजा करने ग्रौर गगा माई के दर्शनार्थ ग्राते हैं एव उस पवित्र गगा की धाराग्रो मे स्नान कर इसकी पवित्रता के प्रवाह मे ग्रानन्द ग्रनुभव करते हैं।

बिलाडा से तीन मील की दूरी पर जसवत सागर बाँध जोधपुर के महाराजा जसवतसिहजी की लोकप्रियता की याद दिलाता है। यह विशाल बाध १२ कोस के घेरे मे ग्रत्यधिक मजबूत व व्यवस्थित ढग से बाधा गया है इसके। पानी से बिलाडा के समीप ग्रनेक गावो की शुष्क भूमि की सिंचाई होती है। इस बाध का पानी सूख जाने पर बाध की भूमि खेती के उपयोग मे लाई जाती है जो जोधपुर जिले मे खाद्य समस्या हल करने मे सहयोग प्राप्त करती है।

इस नगर मे महत्वपूर्ण स्थान दीवानजी की बढेर व उसमे स्थित ग्राई माताजी का चमत्कारिक तीर्थ स्थान देखने योग्य है, जहाँ चमत्कार स्वरूप दीपक मे केसर पडता है। बढेर दीवानजी का महत्वपूर्ण स्थान मारवाड़ का गौरव माना जाता है।

बिलाडा सर-सब्ज इलाका है, जहाँ रबी ग्रौर खरीफ दोनो फसले होती हैं। गेहू, मिर्च, कपास, जीरा मेथी, सौफ ग्रादि मुख्य पैदावार हैं। इसके इर्द-गिर्द करीब १५०० कुएँ हैं, जिससे खेती ग्राब-पास होती है। उसकी जन-सख्या करीब १७-१८ हजार है।

यहाँ पर तहसील, हैडक्वार्टर, रेल्वे स्टेशन, हाई स्कूल कन्या पाठशाला, करीब १० प्राथमिक पाठशालाएं राजकीय चिकित्सालय, पुलिस थाना, मुसिफ कोर्ट, पशु चिकित्सालय, बिजलीघर, पोस्ट ग्राफिस ग्रादि सरकारी कार्यालय हैं।

यहाँ हर्ष महादेव का विशालतम युगो पुराना एक भव्य मन्दिर भारतीय सस्कृति का प्रतीक एव बिलाडा नगर को काफी युगो पुराना नगर साबित करने की शक्ति दे रहा है। बिलाडा की उत्पति के विषय मे ग्रभी तक कोई सबल प्रमाण प्राप्त नही हुग्रा है किन्तु

जैन इतिहासो मे इस नगर को विना तट नगरी के नाम से पुकारा जाता है। विलाडा मे कल्पवृक्ष का एक विशालकाय युगो पुराना वृक्ष है। आज भी यह प्राकृतिक छटा की श्री-वृद्धि कर रहा हैं और दर्शनीय है।

इस प्रकार कापरडाजी तीर्थ स्थान बिलाडा तहसील मे होने से एव स्थानीय जैन वधुओ के द्वारा कापरडाजी तीर्थ की समुचित व्यवस्था मे समय समय पर योगदान रहने से विलाडा का सम्वन्ध कापरडाजी तीर्थ से अत्यधिक निकट का एव महत्वपूर्ण है। राजा वलि की पुण्य यज्ञभूमि नगर विलाडा तीर्थ, स्थानो का उद्‌गम होने के नाते, कापरडाजी तीर्थ के निकटता के कारण महत्वपूर्ण है।

बिलाड़ा तहसील के अन्तर्गत खारिया मीठापुर

यह गाँव विलाडा से चार मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ एक जैन श्वेताम्बर मन्दिर बडा ही रमणीक वजार के वीचोवीच स्थित है जिसमे मूलनायक भगवान श्री ऋषभदेव हैं। आस-पास शान्तिनाथ व विमलनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाजी पर लेख १४५७ के वैसाख सुदि १० का खुदा हुआ है।

इम मन्दिर की नीव वि० स० १५१६ के चैत शुक्ला पचमी को लगी और मन्दिर तैयार हो जाने पर प्रतिष्ठा हुई। उसके बाद समय समय पर जीर्णोद्धार होकर पुन प्रतिष्ठाएँ होती रही जिसका विवरण निम्न है –

(१) वि० स० १८२६ के वैशाख सुदि ८ को प्रतिष्ठा होकर ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा विराजमान की गई।

(२) वि० स० १९४८ के चैत्र शुक्ला ६ को फिर प्रतिष्ठा हुई।

(३) वि० स० १९७० के मिगसर सुदि पूर्णिमा को ,, ,, ।

(४) वि० स० २०१६ के फागण वदि ६ गुरुवार ता० १८-२-६० को यतिवर्य श्री लब्धिसागरजी (मारवाड जकशन) के करकमलो से इस प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न हुआ।

इस मन्दिर की विशेषता यह है कि पैदल चलने वाले या ऊँट, घोडे पर बैठे हुए को भगवान के दर्शन समानता से होते हैं। मन्दिर की ऊँचाई ३५ फुट है।

मन्दिर के पास ही एक कुआ है जिससे पूजा करने वालो को स्नान करने की सुविधा है। मन्दिर के नीचे पाँच दूकाने भी है जिसकी आय से मन्दिर का कार्य तो नही चलता फिर भी सहायता अवश्य है।

यह गॉव पहले कितना बडा था, जैनो की कितनी बस्ती थी इसका अनुमान यहाँ की बनी हुई धर्मशाला व उपाश्रय से लगाया जा सकता है । दो पुराने उपासरे (१) तपागच्छ का (२) खरतरगच्छ का है। एक मे भगवान महावीर की प्रतिमा विराजमान है और अधिष्ठायक देव की स्थापना भी है। अभी केवल ३१ घर जैनो के है।

इस मन्दिर के लिए काश्त योग्य भूमि भी मिली हुई है। मन्दिर की सेवा पूजा का प्रबध ठीक है। जैनो की बस्ती कम होते हुए भी यहाँ का धार्मिक कार्य सराहनीय है। बिजली की रोशनी से मन्दिर की शोभा बढती है। बडी पूजाएँ अखड ज्योति भी पर्यूषण इत्यादि पर्वो मे होती हैं।

यह गॉव कापरडा से २० मील है। यहाँ के श्री भँवरलालजी कापरडा तीर्थ के व्यवस्थापक समिति के सदस्य भी हैं।

यह गॉव वीरो की भूमि है। यहाँ के निवासी बाहर दिशावरो मे भी व्यवसाय हेतु चले गये हैं। यहाँ रहने वालो की सख्या कम ही है।

भगवान की अगिया, मुकुट, कुण्डल, छवर (चाँदी की डडी के) छत्र इत्यादि कागजात व बहियो के साथ इस गॉव के निवासी सर्वश्री सेसमलजी, बिरदीचन्दजी बुरड, गुदडमलजी ओस्तवाल, तेजराजजी ललवाणी, सोभागमलजी के कब्जे मे कई वर्षो से है जिससे इन वस्तुओ का उपयोग पर्व के दिनो मे नही हो सकता। आज के भाव से लगभग इग्यारह हजार की कीमत का कुल सामान है। दो प्रतिमाजी यहाँ से कापरडाजी तीर्थ पर भेजी गई व पहली मजिल मे विराजमान हैं। यहाँ के मदिर की व्यवस्था मे कोई कमी नही है।

श्री कापरड़ा जैसे भव्य जिनालय के निर्माता का जन्मस्थान—जैतारण नगर

ले० महता चाँदमल एडवोकेट, जैतारण

श्री कापरडा जैन मन्दिर के निर्माता भानाजी भण्डारी का जन्मस्थान जैतारण नगर है, जहाँ आज भी उनके वशज निवास करते हैं। इनके नाम से बसा हुआ मोहल्ला भडारियो की पोल नाम से मशहूर है। यह नगर अक्षाश २६ उत्तर से एव देशान्तर ७३ पूर्व परिस्थित है। इस नगर की जनसख्या लगभग ६ हजार है। यह उपजिलाधीश के निवास का मुख्य स्थान है व मुनसिफ मजिस्ट्रेट का न्यायालय व पचायत समिति भी यहाँ पर हैं। इस उपजिले मे दो तहसीले हैं जिनमे करीव २०० गाँव हैं।

जैतारण नगर सभी आधुनिक सुविधाओ से सम्पन्न है। यहाँ पर तार, टेलीफोन, विजली, नल, अस्पताल, हायर सैकेन्ड्री स्कूल, वैक आदि हैं। यातायात का यहाँ सुन्दर प्रबन्ध है। जोधपुर से अजमेर, जयपुर, कोटा, बून्दी आदि स्थानो के लिए मोटरे (रोडवेज) कापरडा व जैतारण हो के गुजरती हैं। सोजत, पाली, रायपुर, मेडता रोड (फलोदी पार्श्वनाथ) मेडता सिटी, पुष्कर धाम आदि स्थान मोटरो द्वारा जैतारण से जुडे हुए है। रेल्वे स्टेशन यहाँ सात लगते हैं मगर पन्द्रह मील से कोई भी स्टेशन नजदीक नही हैं किंतु वसो का इतना जाल विछा हुआ है कि रेल का अभाव नही खटकता।

लगभग १२ सौ वर्षो पहिले जहा जैतारण नगर वसा हुआ है वहा पर घास के मैदान थे। आठवो नौवी शताब्दी के लगभग जैती नाम की गूजरी अपनी गायो को लेकर इधर से गुजरी। घास की वहुतायत देख कर जैती ने जैतारण नगर के स्थान पर अपनी ढाणी वनाई। धीरे धीरे इसकी आवादी वढती गई और जैतारण नगर की रूपरेखा शुरू हुई।

कन्नौज के अधिपति जयचद के पौत्र सिहाजी राव ने मण्डोर को अपनी राजधानी वनाया। सिहाजी के पुत्र दुहणजी थे। दुहणजी के आठ पुत्र थे जिनमे से एक राजकुमार का नाम सिंघल था। सिंवलजी को यह स्थान वहुत पसन्द आया और उन्होने यहा पर अपनी जागीर कायम करली। इन्ही के नाम पर इनके वशज सिंधल राजपूत कहलाने लगे। सिंघल वशजो ने यहा पर किला वनवाया और लगभग सात सौ वर्षो तक जैतारण पर

राज्य करते रहे। विक्रम सवत १५३९ मे राव ऊदाजी ने सिंघल नरेश खीवाजी से जैतारण का राज्य छीन लिया।

राव ऊदाजी राव सूजाजी के प्रथम पुत्र व राव जोधाजी के पौत्र थे। इनका जन्म वि० स० १५१९ के मिगसर वदि १० गुरुवार को रानी मागलियाणीजी के उदर से हुआ। राव ऊदाजी ऊदावत शाखा के मूल पुरुष थे। इनके वशजो के कई ठिकाने इस क्षेत्र मे हैं जिनमे रायपुर, निबाज, व रास मुख्य हैं। ऊदाजी का राजतिलक पुरोहित भोजराज ने किया जिनको गाव तालकिया भेंट मे मिला। राव ऊदाजी के पुत्र खीवकरण के पुत्र रतनसिह थे, जो जैतारण के मालिक हुए। राव रतनसिहजी का जन्म वि० स० १५७७ के भाद्रपद शुक्ला पचमी को हुआ था। कहते हैं कि एक बार रतनसिहजी के कुँवर कल्याणसिहजी ने बाबा गूदडनाथ के सघ सरोवर का निरीक्षण किया और बोला कि इसका क्या नाम है। बाबाजी ने कहा इसको नाम पीरनाडी रखा है इस पर कुँवर कल्याणसिह ने कहा कि इसका नाम रतनसर रखना अच्छा होगा। इस पर विवाद खडा हो गया और बाबाजी ने श्राप दे दिया कि रतनसर रतनसर क्या कहता है, जाओ रतनसिंह के सर मे (तीर) लगेगा और जैतारण मे सदा के लिए ऊदा की गढी व गूदड की मडी नही रहेगी। वैसा ही हुआ। विक्रम सवत १६१४ मे मुगल साम्राज्य का सूबेदार कासमखाँ जैतारण पर चढ आया और उसका तीर रतनसिहजी के मस्तक पर लगा और उनका स्वर्गवास हो गया। आज भी जैतारण के भडे के पीछे रतनसिहजी की छतरी के खण्डहर विद्यमान हैं। बाद मे कासम खॉ भी मारा गया और जैतारण का इलाका जोधपुर राज्य के अधीन हो गया।

जैतारण मे तीन भव्य जिनालय हैं, जिन मे एक मुनि सुव्रत स्वामी का, दूसरा विमलनाथ स्वामी का तथा तीसरा धर्मनाथ स्वामी का है।

मुनि सुव्रत स्वामी का जिनालय—इसको दादाजी का देहरा भी कहते हैं, जो जैतारण सिरे बाजार मे स्थित है। इसमे तीन प्रतिमाजी हैं। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है, जिसका निर्माण १२वी शताब्दी मे हुआ था। तत्पश्चात् सुराणा ओसवालो ने इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १६६७ के ज्येष्ठ मास की ४ रविवार को कराई। इनके वशज आज भी जैतारण व घणमि-ी मे मौजूद हैं। सुराणा ने सघ निकाला जिससे ये सघवी (सिंगी) कहलाए। इनके नाम पर भी एक मोहल्ला बसा है, जिसको सिंघियो की पोल कहते हैं। इस जिनालय की प्राचीनता इस बात से भी सिद्ध होती है कि दिल्ली सम्राट औरगजेब के समय मे इम मन्दिर की सिरेपोल की गुम्वज मे कुछ तोडफोड हुई। इस जिनालय की वापिस प्रतिष्ठा सवत् १९०५ तथा १९७० मे हुई, जिसमे और मुनिराजो के साथ गुराँ साहब प्रतापरत्नजी नाडोल वाले भी थे।

पहिले इस मन्दिर मे ५ प्रतिमाएँ विराजमान थी किन्तु वि० स० १९९७ के माघ सुदि १४ को २ प्रतिमाएं श्री विमलनाथजी के मदिर मे विराजमान की गई, शेष ३ रही। अभी मूलनायक भगवान वीसवे तीर्थकर श्री मुनिसव्रतस्वामी हैं, किन्तु इसके पहले सुमतिनाथ भगवान मूलनायक थे, ऐसा लेखो से प्रतीत होता है। प्रतिमाओ पर लेख निम्न हैं।

(१) मुनि सुव्रतस्वामी की प्रतिमा पर वि० स० १९०६ लिखा है और विवरण पढा नही जाता।

(२) सुमतिनाथ की दो प्रतिमा मूलनायक के बाएे दाहिने विराजमान हैं। उन पर लेख इस प्रकार खुदा हुआ है—

'श्री अर्हं नम ॥ स० १६६७ वर्षे ज्येष्ट मासे कृष्ण पक्षे ४ तिथौ रविवासरे महाराजाधिराज माहाराज श्री सूरसिहजी महाराज कवर श्री गर्जसिहजी, विजय राज्ये भाटी गोविन्ददासजी श्री जैतारण नगरे श्री उपकेशज्ञातीय सुराणा गोत्रे सघवी केला पुत्र: जीपा, भार्या जसवन्ता, पुत्र सघवी फता पैमा जगमाला जोधा सकर्मण्य पचायण उदयसिह फतेचन्द्र निजश्रेयसे श्री सुमतिनाथ मूलबिब करोपित प्रतिष्ठित श्री धर्मघोष गच्छे भ श्री पदमचद्रसूरी पट्टे भ श्री भावचन्द्रसूरी आ० श्री कल्याणचन्द्र सूरी सहितेन प्रतिषते श्री श्रवणसघ सूत्र मे भूपा और नदत श्री'

श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा पर वि० स० १९०६ शाके १७७१ प्र० वैसाख वद ८ तीथौ चद्र श्री जैतारण नगरे श्री समस्थ सघ ने श्री पार्श्वनाथ बिंब (चरण)।

दूसरा मन्दिर बाजार मे शिखरबन्द श्री विमलनाथ स्वामी का है – यह मन्दिर भी काफी प्राचीन हे। इसमे कुल ५ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यह मन्दिर १७वी शताब्दी मे श्री भानाजी भण्डारी के वशज यानि उनके प्रपौत्र श्री रूपचन्दजी भडारी ने बनवाया। जिसका लेख प्रतिमाजी के नीचे निम्न खुदा हुआ है—

"समत १७७४ रा वर्षे शाके १६३९ प्रवर्तमाने वैसाख सुदि १५ पूर्णमासी रविवासरे महाराजाधिराज महाराज श्री अजीतसिहजी कँवर अभयसिहजी विजयराज्ये श्री रावजी लाखणजी सन्तानीय नामे सा भडारी गोत्रेय श्रावक श्री भानाजी सुत श्री नारायणजी सुत श्री ताराचन्दजी भार्या सन्तोषदेजी तस्य आत्मज सुत भडारी श्री प्रेमचन्दजी, रूपचन्दजी भार्या सुश्राविकापने रूपादेजी सुत श्री विजयचदजी, रतनचदजी चोरु, शिवचदजी, राजसीजी, हरकचदजी, किसनचदजी सवेत स्वकुटुम्ब पर थापना श्री विमलनाथ बिब करापित श्री खरतरगच्छे जिनचद्रसूरिजी।"

इस मन्दिर मे दादा साहब के पगलिये भी हैं। मन्दिर के सामने कुआ है, जो विमलनाथजी के बेरे के नाम से विख्यात है। इस मन्दिर के पीछे एक डोली की जमीन गाँव

जुभ्रण्डा मे थी जो अब माफिक कानून खातेदारी की हो चुकी है, जिस पर मन्दिरजी का कब्जा है ।

तीसरा मन्दिर श्री धर्मनाथस्वामी का है। इस जिनालय को बारला मन्दिर भी कहते हैं और सरकारी दपतरो मे यह केशरियानाथजी के मन्दिर के नाम ने विख्यात है। यह नगर के बाहर आया हुआ है। पास मे सुन्दर दादावाडी भी है और उसके पीछे करीब १५-१६ बीघा जमीन खरीदसुदा है। इसका इमारती पट्टा भी बना हुआ है जिसके चारो ओर पट्टियो की दीवार है। मन्दिर के सामने बावडी व प्याऊ बनी हुई है। मन्दिर को बने करीब सवा सौ वर्ष हो गए हैं। इसकी प्रतिष्टा सवत १९०५ शाके १७७० वैसाख सुदि १५ गुरुवार को हुई थी। मन्दिर बहुत विशाल है जिसमे दो बडे बडे चौक आए हुए हैं। मन्दिरजी मे तीन देरासर हैं। बीच के देरासर मे मूलनग्यक श्री धरमनाथ स्वामी हैं। इसमे कुल ५ प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर का मुख्य द्वार पूर्व की ओर हे और प्रवेश करते दाहिने हाथ की ओर के देरासर मे मूलनायक श्री पार्श्वनाथ स्वामी हैं जो प्रतिमा विशाल एव सुन्दर है। इस देरासर मे कुल प्रतिमाएँ तीन हैं। प्रवेश करते बाएँ हाथ के देरासर मे मूलनायक शान्तिनाथ स्वामी हैं। यह प्रतिमा भी विशाल व सुन्दर है। इस देरासर मे भी कुल प्रतिमाएँ तीन हैं। जैतारण के सभी जैन मन्दिरो मे सभी प्रतिमाएँ श्वेत पाषाण की हैं, जो कुल मिलाकर २१ हैं। मन्दिर के सामने ही थोडी दूर पर यतिवर अमरहसजी की बगीची है, जिसमे कई यतियो की छतरियाँ व समाधियाँ बनी हुई हैं। इन सब बातो से यह प्रतीत होता है कि यहाँ का जैन समाज प्राचीन काल से साधन-सम्पन्न व उत्साही रहा है।

इस मदिर मे विराजमान प्रतिमा पर लेख निम्न खुदे हुए हैं। (बीच का मन्दिर)

(१) सवत ११२३ वर्षे श्री पार्श्वनाथ बिब धणाधिश्वर श्री अभयदेवसूरिजी ।

(२) सवत १९०५ शाके १७७० वर्षे वैशाख सुदि ५ तिथो गुरुवासरे वैध फतेचद, कपूरचद तत भार्या जोतदे श्री मुनिसुव्रत स्वामी बिब कारापित प्रतिष्ठापीत बृहत खरतर-गच्छे ज यु भ श्री सोभाग्यसूरिजी ।

(३) समत १३५३ वैसाख सुदि ४ बुध श्री धर्मनाथ बिब राका गोत्रे शा भइवत प्र० अमरतसी काना (ता) कि सहित प्रतिष्ठा श्री विजय न सूरिजी ।

(४) सवत १९१० गाके १७७५ भ० असाढ मासे अक्षय त्रितया गुरुवासरे श्री ऋपभदेवजी ।

(५) स० १५४५ वैगाख सुदि ३ चन्द्रप्रभुजी (वाकी लेख पढा नही जाता) उत्तर की ओर देहरी (मदिर) मे ।

(१) पार्श्वनाथजी की प्रतिमा पर सवत ११७१ माघ सुद ५ गुरुवासरे हेमराज भार्या हैमादे पुत्र सा० रूपचद, रामचद, श्री पार्श्वनाथजी बिव खरतरगच्छ सुविहिता गणाधिश्वर श्री जिनदत्तसूरिजी ।

(२) श्री सुपारसनाथजी की प्रतिमा का लेख पूरा नही पढा जाता किन्तु सवत् ११७४ के मिगसर सुदि ३ अवश्य पढा जाता है ।

(३) चदाप्रभुजी की प्रतिमा पर '११७४ वैसाख सुदि ३ हेमराज भार्या हेमादे पुत्र रूपचन्द्र, रामचन्द्र, श्रीचन्द्र प्रभु बिव प्रतिष्ठित खरतरगच्छे श्री जिनदत्तसूरिजी ।

न० २ सुपारसनाथजी की प्रतिमा और इस प्रतिमा पर लेख एकसा होना चाहिए, ऐसा प्रतीत होता है।

दक्षिण की ओर देरी (मदिर) मे —

(१) श्री शातिनाथजी की बहुत विशाल प्रतिमा है। इस पर ११८१ माघ सुदि ५ गुरो प्राघवर ज्ञातीय सघ दीपचद भारीया दीपा दे पुत्र शा० हीरचद, अमीचद, श्री शातिनाथ जिन बिब कारापित सुविहित खरतरगच्छे गणाधिश्वर जिनदत्तसूरिजी—

(२) श्री चन्दाप्रभुजी समत ११६९ जेठ वदि ५ गुरो आगे के शब्द पढे नही जाते। प्रतिष्ठित जिनदत्तसूरिजी ।

(३) श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख पढने मे नही आता । केवल १२८० पढा जाता है ।

उपरोक्त लेखो से यह ज्ञात होता है कि ये प्रतिमाएँ प्राचीन हैं। श्री जिनदत्तसूरिजी म० ने दीक्षा ११४१ मे ली। आचार्य पद ११६७ मे मिला और वि० स० १२११ मे स्वर्गवास हुआ। अत, आचार्य पदवी मिलने के बाद कई प्रतिमाओ की अजनशलाका कराई होगी। कहाँ कराई इसका उल्लेख नही है। यह मन्दिर वि० स० १९०५ मे बनकर तैयार हुआ। उस समय बाहर से प्रतिमाएँ लाकर स्थापित की हो ऐसा ज्ञात होता है। मन्दिर (बीचका) के पास दीवार मे दो लेख खुदे हुए हैं। उनमे निम्न लिखा है।

(१) श्री केसरियानाथजी महाराज सवत १९०७ रा ज्येष्ठ वदि ५ दिन सा धनरूपजी रा नाम रा प्रतिमाजी थाप्या ।

(२) श्री केसरियानाथजी महाराज सहाय छे सवत १९०७ रा ज्येष्ठ वदि ५ दिन बाइ जोतकँवर का नाम का प्रतिमाजी थाप्या ।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिमाएँ बाहर से मँगाकर स्थापित की और जिन्होने रुपये दिए उनका नाम लिख दिया गया। इस मन्दिर मे पहले मूलनायक भगवान ऋषभदेव थे।

बाद मे धर्मनाथजी हुए, इसीलिए यह मन्दिर केसरियानाथजी का कहलाता था और राज्य मे इसी नाम से लिखा गया है ।

यहाँ एक बडा मेला लगता था, जिसका झडा रावण मारने की रस्म अदा कर (आसोज सुदि १०) वापिस आकर रोपते थे और सुदि १५ तक मेला रहता था । कार्तिक कृष्णा १ को बडे ठाठ से सवारी निकलती थी । शायद वि० स० १९७५-७६ के बाद यह वन्द हुआ । बीच मे फिर शुरू हुआ किन्तु कुछ वर्षों के बाद बन्द हो गया । इस मेले मे दुकाने लगती थी, व्यापार होता था । मन्दिर मे पूजाएँ बनती थी । यहाँ एक दादावाडी भी है । पहले एक चबूतरे पर छतरी थी, जिसमे दादा साहब के पगलिए विराजमान थे । पूजाएँ होती थी । वि० स० २०१७-१८ मे यहाँ एक अच्छा हॉल बनाया गया और दादा साहब के चरणो की पुन प्रतिष्ठा वि० स० २०२१ के आषाढ सुदि १ दि० १०-७-६४ को श्री कान्तिसागरजी म० साहब के करकमलो से हुई । दादा साहब के चरणपादुका पर निम्न लेख खुदा हुआ है ।

स० १९१० वर्षे शाके १७७५ प्रवृतमासे आसाढ मासे कृष्ण पक्षे त्रयोदशी १३ चन्द्रवारे ज०यु०प्र० श्री १०८ श्री जिनदत्तसूरिजी चरणपादुका प्रतिष्टा सवि प्राज्ञाचरित्रः सागेरण वृहत खरतरगच्छ गणाधिश्वर जिनमहेन्द्रसूरि प्र० व० छत्रपति म० धि० श्रीतखतसिहजी विजयराज्ये श्री जैतारण नगरे परिसत सोभाग्य पुरे श्री सुविहित खरतरगच्छ श्री सघ ने करापित चा० मानधर्म ।

जैतारण नगर मे जैन धर्मशाला (पौषधशाला) बाजार के मध्य मे विमलनाथस्वामी के मन्दिर के सामने आई हुई है, जो हवादार व सुन्दर है और समय समय पर विद्वान मुनिराजो व साध्वीजी महाराज के चतुर्मास भी होते आए हैं । धर्मशाला के नीचे दुकाने भी हैं । इस धर्मशाला के उत्तर मे एक और धर्मशाला आई हुई है, जो नीचे की धर्मशाला कहलाती है । इस नगर मे आठ उपासरे हैं जिसमे से छ तो अभी जैन समाज के नियत्रण मे है तथा एक नया स्थानक करीब लाख रुपये की लागत से बन रहा है । एक गौशाला भी है ।

इस नगर मे जैनियो के लगभग १०० परिवार निवास करते है, जिनमे मूर्तिपूजक स्थानकवासी, तेरहपथी व दिगम्बरी भी शामिल है । उपासरे स्थानक व मन्दिरो की शोभा को देखते हुए सहज ही मे यह मालूम हो जाता है कि पहले यहाँ जैनो के परिवार अधिक सख्या मे निवास करते थे । वि० स० १९४० के लगभग यहाँ पर जैनो के करीव ५०० परिवार निवास करते थे ।

कमी का कारण यह है कि यहाँ की जैन समाज बडी उत्साही व व्यापारकुशल है, बहुत से परिवार दिसावरो मे हैदरावाददक्षिण, कुप्पल, मद्रास, वैंगलोर, मैसूर, कोलार,

कलकत्ता, रायचूर, बरार, बम्बई, खानदेश इत्यादि भारत के कई भागो मे अपना व्यापार करते हैं, जो अपने जन्मस्थान के प्रति वफादार है। जो परिवार अभी यहाँ निवास करते हैं उनमे से बहुतो का व्यापार भी दिसावरो मे हे।

विद्याभ्यास मे भी यहाँ की जैन समाज कम नही है। कई वकील, डॉक्टर, अभियता, व्याख्याता आदि भी यहाँ के परिवारो मे से हैं। कुछ विद्यार्थी विदेशो से भी उच्च शिक्षा प्राप्त करके आए हैं और कुछ विदेशो मे अस्थायी रूप से निवास करते हैं। यहाँ जैन समाज के सभी वर्गों के लोग बडे प्रेम से शान्तिपूर्वक रहते हैं और कई उत्सव सामूहिकरूप से मनाते हैं जो पडौसी नगरो को देखते हुए सुन्दर चीज हे।

जैतारण नगर मे जैनो के त्यौहारो की तीन आम छुट्टियाँ होती हैं, जिसमे पूरा बाजार बन्द रहता है। जैन, वैष्णव व मुसलमान सभी अपने वर्ग के लोग अपना व्यापार बन्द रखते हैं। आम अगते रखे जाते हैं व कसाईखाना भी बद रखा जाता है। ये धार्मिक त्यौहार निम्न प्रकार हैं—

(१) महावीर जयन्ती (चैत्र शुक्ला त्रयोदशी)

(२) सवत्सरी (भाद्रवा सुदि ४ व ५ दिन दो)

यहाँ की धर्मशाला व स्थानको मे प्राचीन हस्तलिखित कई ग्रथ आज दिन तक सुरक्षित हैं।

इस नगर मे लकडी का काम बहुत सुन्दर व सफाई से किया जाता है। विशेषकर पातरे जो तीनो समाज के साधु-साध्वियो के काम मे आते हैं बनाए जाते हैं, जो पालीतणा, अहमदाबाद, गुजरात, काठियावाड आदि दूर दूर के स्थानो पर भेजे जाते हैं। यहाँ के बुनकर रेजे, टुकडी, तौलिए, साडी आदि बनाते है।

इस उपजिले के अजैन लोग राजपूत, जाट, गूजर इत्यादि भारतीय रक्षा सेना मे बडी सख्या मे है और समय-समय पर देश-सेवा के लिए बडी-बडी कुर्बानियाँ दी है। इस उप-जिले के लोग जवान से लेकर मेजर तक भारतीय सेना मे है।

यह नररत्न भानाजी के जन्मस्थान का सक्षिप्त विवरण है। भानाजी अपने समय मे वर्तमान उपजिला जो पहले परगना कहलाता था, वहाँ के हाकिम थे। यह हकूमत (परगना) पूर्व जोधपुर राज्य के आधीन थी। तब से अब तक यह उपजिले का मुख्य नगर है।

ऐतिहासिक पाली नगर

ले० मानचन्द भण्डारी, जोधपुर

आठ लाख छ हजार आठ सौ चालीस जनसख्या वाला यह जिला राठौडो के आह्वान का श्रेय तो प्राप्त कर ही चुका है, औद्योगिक प्रगति मे भी इसने जोधपुर को पीछे छोड कर भारतीय स्तर पर कीर्तिमान स्थापित किया है। जोधपुर को पानी पिलाने वाले मुख्य स्रोत जवाई बाध तथा हेमावास बाँध भी यही हैं। राणकपुरजी के विश्वविख्यात मन्दिरो के अतिरिक्त कुमारपाल सोलकी का बनवाया हुआ सोमनाथ (शिव) मन्दिर भी अति प्रसिद्ध है। हिन्दवा सूर्य महाराणा प्रताप की जननी जैतारण नरेश सोलकी अखैराज की पुत्री थी। वि० १३३० मे सुल्तान नासिरुद्दीन ने धोखे से इसका विनाश कर दिया। मन्दिर नष्ट कर दिए गए और जो कत्ले-आम हुआ कर्नल टॉड के कथनानुसार उसमे ६ मन जनेऊ और ८४ मन चूडा उतरे। उसी समय गाधोतरा लेने के कारण यहाँ के मूलनिवासी पालीवाल ब्राह्मण अब यहाँ रात्रि को नही ठहरते तथा यहॉ का पानी भी नही पीते।

वि० स० १२०७-८ मे पाली गुजरात नरेश कुमारपाल सोलकी के अधीन थी इसलिए जैन धर्मानुयायी होने के कारण यहॉ जैन धर्म की अच्छी उन्नति हुई। पाली वि० ११४४ मे भी अत्यन्त समृद्धिशाली थी। उसी समय नौलखा जाति के हिरण्यगोत्रीय अज्ञातनामा सेठ द्वारा बनाई गई और प्रतिष्ठित कराई गई। (नौलखा मन्दिर के लेख से भी प्रसिद्ध है) मन्दिर की कुछ प्रतिमाओ का समय २२०० वर्ष पूर्व राजा सम्प्रति के समय का है। मूल बावन भगवान पार्श्वनाथजी की मनोहारी प्रतिमा पर वि० १६८६ का लेख अकित है। वामन जिनालय वाला यह मन्दिर दूर दूर तक प्रसिद्ध है। महावीर स्वामी की प्रतिमा पर वि० ११४४ माघ शुक्ला ११ का लेख है। इसी प्रकार दूसरी इन्ही भगवान की प्रतिमा पर वि० स० ५६८ आषाढ शुक्ला ८ का लेख है। ऋषभदेवजी तथा नेमीनाथजी की प्रतिमाओ पर भी वि० ११७८ फाल्गुण शुक्ला ११ का लेख है। इन समस्त प्रमाणो से यह माना जा सकता है कि मन्दिर छठी या सातवी शताब्दी का बना हुआ है।

नौलखाजी के मन्दिर के अतिरिक्त निम्न जैन मन्दिर और हैं—

(१) लोढों का वास का मन्दिर

यहॉ शान्तिनाथ भगवान का दो मन्जिला मन्दिर है जो शहर के समस्त मन्दिरो से ऊँचा है और दूर ही से दिखाई देता है। मन्दिर की व्यवस्था खरतरगच्छ सघ की ओर से
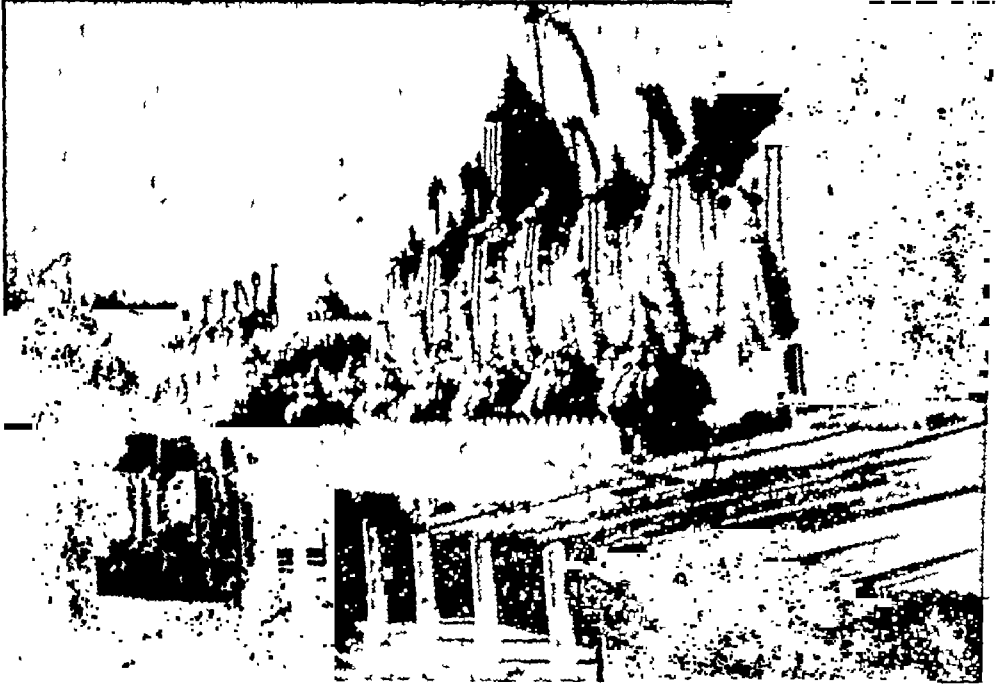
श्री नवलखाजी जैन मदिर, पाली (राज०)

श्री अजीतनाथजी का जैन मदिर
गाव– रोडुआ जिला सिरोही (राज०)

होती है। मन्दिर के दोनो ओर दो बडी बडी धर्मशालाएँ हैं, जिनमे साधु मुनिराज ठहरते हैं व चातुर्मास करते हैं। श्रावक धर्मक्रिया करते हैं। सामने ही खरतरगच्छ के श्री पूज्यजी का उपासरा है जिनके पूर्वज बडे चमत्कारी हुए हैं। श्रीमद् जिनचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज को वि० १६७० मे, जब कि वे जोधपुर विराजते थे, कापरडाजी की भूमि म मूल प्रतिमा होने का स्वप्न हुआ था। वह प्रतिमा वि० १६७४ मे प्रकट हुई और उन्ही आचार्य श्री के सान्निध्य मे वि० १६७८ मे प्रतिष्ठा हुई। परिकर की स्थापना वि० १६८८ मे हुई। इस उपासरे मे हस्तलिखित पुस्तको का भण्डार है जिसमे कापरडाजी का भी पूरा इतिहास लिखा हुआ है।

(२) गोडीजी का मन्दिर

यह मन्दिर शान्तिनाथजी के मन्दिर के समीप ही आया हुआ है, शिखरबन्द तथा प्राचीन है। प्रतिमाजी के नीचे वि० स० १०४८ आषाढ शुक्ला १० का लेख है। पुन प्रतिष्ठा वि० १६८६ वैशाख शुक्ला ५ को हुई।

(३) सुपार्श्वनाथजी का देरासरा

गुजराती कटले मे है। पहिले यह साधारण मन्दिर था किन्तु चार पाँच वर्ष पूर्व भव्य और विशाल बन गया है। नगर के मध्य मे आ जाने से श्रावक-श्राविकाओ को सेवा-पूजा की अच्छी सुविधा रहती है।

(४) श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर

कैरिया द्वार के पास है। जीर्णोद्धार कराया जा रहा है, कार्य सम्पूर्ण हो जाने पर पुन प्रतिष्ठा होगी।

(५) आदिनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर स्टेशन रोड पर तालाब के किनारे आया हुआ है। प्राचीन तथा शिखर-बन्द है।

(६) कानमलजी वाला मन्दिर

यह मन्दिर तालाब के किनारे पर हाल ही मे कुछ वर्षों पूर्व श्री कानमलजी सिघवी ने बनवाया है। पास मे धर्मशाला भी है। सेवा-पूजा की व्यवस्था भी इन्ही के वशज करते हैं।

(७) भाकरी पार्श्वनाथजी का मन्दिर

नगर से लगभग दो मील दूर टेकरी पर आया हुआ है। ऊपर जाने के लिए सीढियाँ

है। यहा स्वामी-वात्सल्य आदि की सुविधा भी है। साधु-साध्वियो के ठहरने का स्थान भी है। कार्तिक की पूर्णिमा को मेला भरता है। पौष वदि १० को भी उत्सव होता है। प्रति रविवार को पर्यटन और सेवापूजा हेतु भी यात्री आते जाते हैं। यहाँ के अधिष्ठायकदेव बडे चमत्कारी बताए जाते हैं।

खरतरगच्छ सघ की एक विशाल धर्मशाला नारेलो की पोल मे है। जहाँ साध्वीजी महाराज विराजती है और केवल श्राविकाएँ को धर्मक्रिया की सुविधा प्राप्त करती है।

गुजराती कटले मे सुपार्श्वनाथजी के देरासर के समीप ही एक वृहत धर्मशाला है जिसे श्री कानमलजी सिघवी ने बनवाया था और आजकल यह तपागच्छ सघ के आधीन है इसमे साधु-मुनिराज चातुर्मास करते है।

गुजराती कटले मे ही दो धर्मशालाएँ और भी है। इनमे तपागच्छ की साध्वियाँ ठहरती है। आबिल खाता चलता है, जिसका प्रबध सराहनीय है।

यहाँ जैन मदिरो की सभाल हेतु बहुत वर्षों से एक पेढी कार्य करती आ रही है। इसका नाम 'नवलमल सुवृतचन्द' है। नौलखा पारसनाथ और सुपार्श्वनाथ भगवान के नाम से इसका सम्बन्ध है। पेढी मे दो मुनीम तथा कई कर्मचारी रहते है। पेढी के समस्त कार्य सुव्यवस्थित रूप से जैन ट्रस्ट की ओर से किए जाते है और निम्न मन्दिरो की देख-रेख की जाती है—

(१) सुपार्श्वनाथजी का मन्दिर
(२) कैरिया द्वार वाला शान्तिनाथजी का मन्दिर
(३) गौडी पार्श्वनाथजी का मन्दिर
(४) तालाब वाला आदिनाथजी का मन्दिर
(५) भाकरी वाला मन्दिर
(६) मारवाड जकशन का मन्दिर
(७) जाडन गाँव का मन्दिर
(८) पटशाला मेला द्वार वाली
(९) पाली का सुप्रसिद्ध मन्दिर नौलखाजी।

पेढी की ओर से अगरबत्तियाँ बनाई जाती हैं जो जैनमन्दिरों मे काम आती हैं। केसर, चन्दन, वर्क, बरास आदि पूजा की सामग्री व आसन, कामलिए, कटासणा आदि भी मिलते हैं।

यहाँ चार दादाबाडियाँ हैं।

(१) स्टेशन रोड़ पर विशाल दादाबाड़ी है। यहाँ श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज

की चरणपादुकाएँ विराजमान हैं। सामने की ओर एक वाटिका तथा मीठे पानी की एक बावडी भी है। प्रतिदिवस सेवा-पूजा की व्यवस्था है।

(२) बाग वेरा – तालाव के किनारे ओसवालो की विशाल वाटिका है। अत्यन्त रमणीक स्थान है। जिनदत्तसूरिश्वरजी महाराज की चरणपादुकाएँ हैं।

(३) कालूजी की वगीची – शहर के पश्चिम की ओर दादाजी की प्रतिमा तथा चरणपादुकाएँ हैं।

(४) रावण के चवूतरा वाली – नागाइतो की बगीची मे है। दादाजी की चरण-पादुकाएँ हैं। नई दादावाडी के नाम से विख्यात है।

चारो दादावाडियो की अति सुन्दर व्यवस्था है। हर्ष का विषय तो यह है कि यहाँ गच्छवाद नही है।

एक वडा न्याति नौहरा भी है जहाँ धर्म-कार्य भी सम्पन्न होते हैं।

यतियो के भी कई उपासरे हैं उनमे कुछ प्राचीन हैं।

पाली मे लगभग ग्यारह सौ घर जैनियो के हैं, जिनमे लगभग ४५० मूर्तिपूजको के हैं। यहाँ का जैन समाज अत्यन्त शक्तिशाली तथा वैभवसम्पन्न है। यही कारण है कि दिल खोल कर धर्मकार्य किए जाते हैं।

पाली का क्षेत्रफल ३०१८७४ एकड है। जिसमे कृषि केवल १३०९१९ एकड मे ही की जाती है किन्तु फिर भी जिला खुशहाल है। इसका मुख्य कारण यह है कि उद्योग-धन्धो के साथ-साथ वाणिज्यव्यवसाय भी उन्नत अवस्था मे है। स्व० महाराजा उम्मेदसिंहजी को पाली पर बडा गर्व था। वे यह स्पष्ट कहा करते थे कि 'म्हारी तासली–पूरवै पाली' अर्थात् उनका भोजन तो पाली से ही चलता था। शिक्षा की भी यहाँ कोई कमी नही। शिक्षितो का औसत चालीस प्रतिशत तक होने से यह जिला सबसे आगे है। यह सब कुछ होते हुए भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि जैतारण तहसील भर मे कही भी रेलवे लाइन नही है और गोडवाड जहाँ रेलवे है – आज भी बहुत से आदमी ऐसे मिल जाएंगे, जिन्होने रेल देखी ही नही।

राठौडी शासन के प्रथम स्थापक राव सीहाजी यही आए और इसी धरती की रक्त-पिपासा शान्त कर यही शहीद हो गए – पणियो की भूमि धन्य! प्रगतिशील पाली धन्य!!

जोधपुर के जैन मंदिर

लेे० प० लक्ष्मीनारायण बुद्धिसागरजी मिश्र, शास्त्री, जोधपुर

[विद्वान शास्त्रीजी जोधपुर के अनुभवी लेखको मे से है। आप 'मरुधरा' और 'जैन धर्म' नाम की पुस्तक लिख रहे है। प्रस्तुत लेख तो इस सदर्भ का सक्षेप मात्र समझना चाहिए। —सपादक]

भारत की पश्चिमी सीमा पर मरुस्थल का सबसे बडा नगर जोधपुर भारत-पाक युद्ध के पश्चात् विदेशो मे भी चर्चा का विषय बना हुआ है। चौदहवी शताब्दी के अन्तिम चरण से ही राठौडो की राजधानी होने के कारण इसका बडा गौरव रहा। ई स १४५९ मे एक जोधा ने सामरिक महत्व समझ कर इसे सैनिक दृष्टि से आबाद किया। उस समय इसकी जन सख्या भी हजारो तक ही सीमित थी जब कि आज चार लाख के आसपास है। यहाँ के धुपहले दिन और ठडी राते न केवल सुहावनी ही होती हैं बल्कि स्वास्थ्य की दृष्टि से निरोग भी होती हैं। पावस ऋतु मे यहाँ की छटा देखते ही बनती है।

जोधपुर वीरता के लिए प्रसिद्ध रहा। काबुल की कुभा नदी के तटो पर यदि इसकी वीरता के गीत गाए जाते हैं तो बग देश की पश्चिमी सीमा से लेकर दक्षिण तक के राजाओ से भी इसने कर वसूल किए। राष्ट्रकूट-कुल-कमल-दिवाकर स्व० महाराजा उम्मेदसिंह का यह सदैव ऋणी रहेगा, जिन्होने इसे समुन्नत बनाने मे कोई कमी नही रक्खी। स्वर्गारोहण से कुछ ही वर्षो पूर्व अकाल राहत की दृष्टि से उन्होने जो उम्मेद-भवन बनवाया वह आज करोडो रुपयो की लागत का आश्चर्यजनक निर्माण माना जाता है। और भी कई स्थान यहाँ ऐसे हैं जिन्हे देखकर सराहना किए बिना नही रहा जाता, जैसे—

'उच्च न्यायालय-भवन, घटाघर, जसवन्त स्मृति-भवन, पोलो ग्राउड, हवाई जहाज का मैदान, फिल्टर हाउस, इजीनियरिग कॉलेज, गांधी अस्पताल, उम्मेद अस्पताल, उम्मेद उद्यान, गुलाब सागर, लाल सागर, कायलाना, बाल समद और मडौर के स्मारक आदि '

जोधपुर को मन्दिरो का नगर कहा जाता है। एक से एक बढ कर मन्दिरो का अवलोकन कीजिए। उनका शिल्पचातुर्य मन मुग्ध किए बिना नही रहता। महामन्दिर का तो किसी समय इतना प्रभाव था कि उसकी शरण मे गए हुए व्यक्ति को फासी की सजा से भी मुक्त समझ लिया जाता था। राठौडी शासन की यह एक बहुत बडी

विशेपता रही कि सभी धर्म उनके यहा फले-फूले। जैन धर्म तो उससे भी पहिले से ही मानपूर्ण अच्छी स्थिति मे रहा। राज-काज तक मे उनका प्रभाव था। एक ही वश तीन-तीन पीढी तक देश-दीवान तथा तन-दीवान तक बना करता था। राठौड मारवाड के २॥ घर मान कर चलते थे। उनमे से एक घर रीया के जैन सेठ का था। ओसवाल जैनो के मूल स्थान ओसियाजी, जैन तीर्थ नाकोडाजी और श्री कापरडाजी के अतिरिक्त छोटे छोटे गावो तक मे भव्य जैन मन्दिरो से यह सिद्ध हो जाता है कि यहा जैन धर्म का कितना अभ्युदय और मान सम्मान रहा। कभी कभी तो राजा स्वय उनके उत्सवो मे भाग लिया करते थे। स्थानाभाव के कारण यहा केवल नगर के तथा नगर के बाहर वाले मन्दिरो का ही सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। उनके नाम इस प्रकार हैं –

१	श्री शातिनाथजी का मन्दिर	—	चौहान चद्र की बावडी के पास
२	श्री गौडी पारसनाथजी का मन्दिर	—	सिंघियो का चौक
३	श्री कुंथुनाथ जी का मन्दिर	—	,, ,,
४	मुनि सुव्रत स्वामी का मन्दिर	—	क्षेत्रपालो का चबूतरा
५	श्री कोलडी ,, ,,	—	कोलडी मुहल्ले मे
६	श्री सभवनाथजी ,, ,,	—	जूनी धान मण्डी
७	श्री महावीरस्वामी का मन्दिर	—	,, ,,
८.	श्री केशरियानाथजी का मन्दिर	—	दफ्तरियो का बास
९	श्री पार्श्वनाथजी ,, ,, (मुथा जी का मन्दिर)	—	नागौरी द्वार के बाहर
१०	श्री भैरू बाग पार्श्वनाथजी का मन्दिर	—	सरदारपुरा
११	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर	—	स्टेशन के सामने

इनके अतिरिक्त नगर के बाहर भी चार स्थान ऐसे हैं जहा के जैन मन्दिर प्रसिद्ध हैं–

१ मडोर—यहा तीन मदिर व एक दादावाडी है।

२ बैरी—चिन्तामणी पार्श्वनाथजी का मन्दिर है।

३ बनाड—सम्भवनाथजी का मन्दिर है।

४ गुरा साहब का तालाब—सहस्रफणा पार्श्वनाथजी का मन्दिर है।

सक्षिप्त विवरण —

१ श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर जोधपुर के समस्त जैन मन्दिरो म प्राचान है। किसी समय यहाँ वि० २१२ की प्रतिमा थी जिसे मुसलमानो ने खण्डित कर दिया। उसके बिगाड के पश्चात दीवान नैणसीजी ने इसे बनवाया और प्रतिष्ठा कराई। उनकी पीटी आज तक भी

मुहणोतो की पोल मे रहती है किन्तु उसके वैष्णव विचारधारा स्वीकार कर लेने से मदिर की व्यवस्था का भार जैन समाज ने ही सम्भाला । मूलनायक भगवान शान्तिनाथजी की प्रतिमा वि० स० १६१७ की है । अत्यन्त भव्य और दर्शनीय—एक अन्य प्रतिमा तेरहवी शताब्दी की भी है । अधिष्ठायक देव भैरवजी बडे चमत्कारी हैं ।

इस समय मन्दिर की देखरेख भैरूबाग मन्दिर समिति की है किन्तु वि० २००३ से समस्त प्रबध का श्रेय खरादियो के बास निवासी श्री इद्रचन्द्रजी भडारी को ही है । आपने भैरूबाग मन्दिर की धर्मशाला मे एक कमरा बनवा दिया है जिससे कि आपके जीवनोपरात भी सुव्यवस्था होती रहे । आपका अधिकाश समय धर्म-कार्यो मे ही व्यतीत होता है । बडे विनम्र और मृदुभाषी हैं ।

२ श्री गौडी पारसनाथजी का मन्दिर

सिघियो के चौक मे बिलकुल किले के नीचे है । इसका निर्माण भी सिघियो ने ही कराया । किले पर जब बारूद काड हुआ था तो आस पास के मकानो को बहुत क्षति उठानी पडी किन्तु इस मन्दिर का कुछ नही बिगडा, क्योकि अधिष्ठायकदेव मानभद्र बडे चमत्कारी हैं ।

वि० स० १६८६ मे वकील नैनमलजी बाफणा ने जीर्णोद्धार करा कर आचार्य देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज के करकमलो से प्रतिष्ठा कराई, तदुपरान्त श्री मोहनराजजी भसाली ने देखरेख रक्खी । इस समय भैरूबाग मन्दिर समिति की देखरेख मे है ।

३ श्री कुन्थुनाथजी का मन्दिर

सिघियो के चौक मे ही है । मूलनायक कुन्थुनाथजी की भव्य प्रतिमा बाहर की ओर विराजमान है । हाल ही मे जीर्णोद्धार के पश्चात राजा सम्प्रति के समय की भगवान श्री आदिनाथजी की प्रतिमा विराजमान कर दी गई है । अधिष्ठायकदेव भैरूजी बडे चमत्कारी हैं । पहिले गौडी पारसनाथ मन्दिर अलग था किन्तु अब बीच मे खिडकी खोल देने से दोनो मदिरो की सेवा-पूजा का लाभ उठाया जा सकता है ।

मन्दिर का निर्माण वि० १८७५ के लगभग स्व० वैरीदासजी भसाली ने कराया । उनका नगर मे बडा मान था । इस समय उनकी पाचवी पीढी चल रही है । मन्दिर की देखरख श्री कल्याणमलजी भसाली रखते है ।

४ मुनि सुव्रतस्वामी का मन्दिर

क्षेत्रपालो के चबूतरे के पास है । वि स १८८७ के प्रथम वैशाख कृष्णा १० को श्री वन्नेचन्दजी लिखमीचन्दजी ने भूमि मोल लेकर वि १८८६ भादवा शुक्ला १३ को निर्माण

कार्य सम्पन्न कराया और ज्येष्ठ कृष्णा ५ को प्रतिष्ठा कराई। कहते हैं कि मुनिसुव्रतस्वामी की जैसी प्रतिमा इस मन्दिर मे विराजमान है वैसी कही नही है। इक्कीस दिवस पर्यन्त लगातार सेवा-पूजा करते कोई नही देखा गया। प्रतिमा स्फटिक मणि की है और सात दिन मे सात रग बदलती है जैसे—

सोमवार को श्वेत, मगल को लाल, बुद्ध को हरा, बृहस्पति को पीला, शुक्र को शुभ्र, शनि को आकाशी और रवि को गुलाबी। व्यवस्था-सम्बन्धी देखरेख श्री रूपराजजी भसाली करते हैं। आप बन्नेचन्दजी की चोथी पीढी मे हैं।

५. श्री कोलरी का मन्दिर

कोलरी मोहल्ले मे है। यहाँ पहिले जैन उपासरा था पीछे मन्दिर बना। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथजी की श्यामवर्ण प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर और मनोहारी है। काच-कला भी देखने योग्य है। शान्त-वातावरण होने से भक्ति भाव मे बडा मन लगता है।

मन्दिर की देखरेख का अधिकतर भार श्री सुमेरमलजी पटवा उठाते हैं। पुलिस सेवा से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त अब आपकी दिनचर्या धर्मप्रिय और समाजसेवा-प्रधान हो गई है। इस मदिर मे ज्ञानभण्डार भी है जहाँ अच्छा सग्रह है।

६ श्री सभवनाथजी का मन्दिर

मन्दिर जूनी धानमडी मे है। पर्यूषण पर्व और दीपावली को यहाँ दर्शनार्थी बहुत आते हैं। व्यवस्था भैरूबाग मन्दिर समिति के अधीन है।

७. श्री महावीर स्वामी का मन्दिर

जूनी धानमण्डी मे ही है। पहिले मूलनायक भगवान महावीर स्वामी थे किन्तु बाद मे शान्तिनाथजी की भव्य प्रतिमा विराजमान की गई। बाजार के ही समीप आ जाने से इसकी सेवापूजा का लाभ जैन बधु अधिक उठाते हैं। ओसवाल जैन समाज मे उठावना भी यही होता है। बडी पूजाए भी अधिक होती है। कार्तिक की पूर्णमा को रथयात्रा का जुलूस निकलता जो नागौरी गेट मूथाजी वाले पार्श्वनाथजी के मन्दिर तक जाता है। यहा वृद्धिमुनिजी का स्थापित किया हुआ ज्ञानभण्डार भी है जिसमे हस्त-लिखित तथा छपी हुई पुस्तको का सग्रह है। मन्दिर का शिल्पचातुर्य देखने योग्य है।

मन्दिरजी की देखरेख इस समय श्री मगनमलजी पटवा ही करते हैं। पटवाजी पूजा बनाने मे दक्ष हैं, विनम्र और मिलनसार भी।

८. श्री केसरियानाथजी का मन्दिर

दफ्तरियो के बास मे है। यदि यह कहा जाय कि भैरू बाग और यह मन्दिर ही

जैन मूर्तिपूजक समाज मे श्रद्धा के धनी हैं तो अत्युक्ति नही होगी। सबसे बडी बात यह है कि इसका अपना ज्ञानभण्डार भी है जिसमे हस्तलिखित तथा छपी हुई पुस्तको का भी सग्रह है। नगर के मध्य आ जाने से और सब प्रकार की सुविधा होने से सेवा पूजा करने वालो की सख्या अधिक रहती है। प्रति दिवस स्नात्र पूजा भी होती है। मन्दिर आधुनिक ढग से बना हुआ है, शोभासम्पन्न है। आय भी व्यय से अधिक है इसलिए मडोर तथा गुरा साहब के तालाब वाले मन्दिरो की देखरेख भी यही से की जाती है।

यह मन्दिर दफ्तरियो का बनवाया हुआ है। श्री बछराजजी मनोहरदासजी ने वि० स० १८९५ मे बनवाया। इस समय उन्ही के वशज श्री घीसूलालजी दफ्तरी मन्दिर की देख-रेख रखते हैं। आप विनम्र, मिलनसार, धर्मप्रिय और समाजसेवी हैं। इसकी प्रतिष्ठा वि० १८९५ के फागण कृष्णा ८ को हुई। मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान होने से श्री केसरियानाथजी के नाम से यह मन्दिर प्रसिद्ध है।

९ श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर

नागौरी गेट के बाहर है। इसके पास जितनी भूमि है अन्य किसी मन्दिर के पास नही। मूल प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथजी की है। इसकी निर्माणशैली पर राठौडी छाप है। वि० १९१७ मे मन्दिर बनकर तैयार हुआ और फाल्गुण कृष्णा ५ को प्रतिष्ठा-कार्य सपन्न हुआ। तभी से इसी तिथि को पाटोत्सव प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

जोधपुर का मूथा परिवार अत्यन्त गौरवशाली रहा। तीन पीढी तक इसमे दीवान होते रहे। प्रथम अखैचन्दजी मूथा हुए, उनके पुत्र लक्ष्मीचन्दजी मूथा द्वितीय और तत्पुत्र श्री मुकुनचन्दजी मूथा तृतीय। मन्दिर का निर्माण इन्ही श्री मुकुनचदजी ने कराया। यहाँ सबसे बडी विशेषता की बात यह है कि श्री गोवर्धननाथजी का वैष्णव मन्दिर और जैन मदिर पास-पास ही हैं। दोनो मन्दिर मूथा परिवार की निजी सम्पत्ति हैं। इसलिए, देख-रेख भी उन्ही की रहती है।

कार्तिकी पूर्णिमा को उत्सव मनाया जाता है।

१० श्री भैरूबाग पार्श्वनाथ मन्दिर

सरदारपुरा के पूर्वी कोण पर स्थित है। स्व० भैरवीचद्र यति ने दरबार से २० बीघा भूमि का पट्टा लेकर वि० १८८८ मे छोटासा मन्दिर बनवाया। यतिजी इसे अपने जीवन काल मे ही बडा मन्दिर देखना चाहते थे। किन्तु उनकी यह साध उनके स्वर्गारोहण के पश्चात ही पूर्ण हुई। उनकी समाधि भी अभी तक विद्यमान है। उनके पश्चात गद्दी के पाटवी शिष्य यती भीवचद्रजी ने ज़मीन और छोटा मन्दिर जोधपुर के श्री मूर्तिपूजक जैन
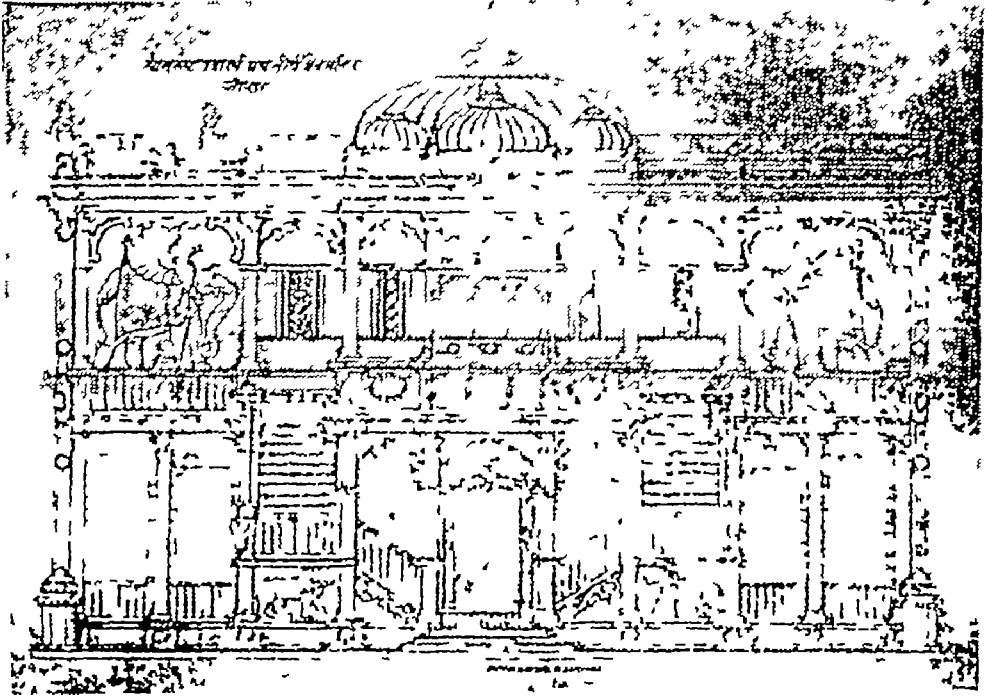
श्री भैरुबाग जैन मन्दिर, जोधपुर
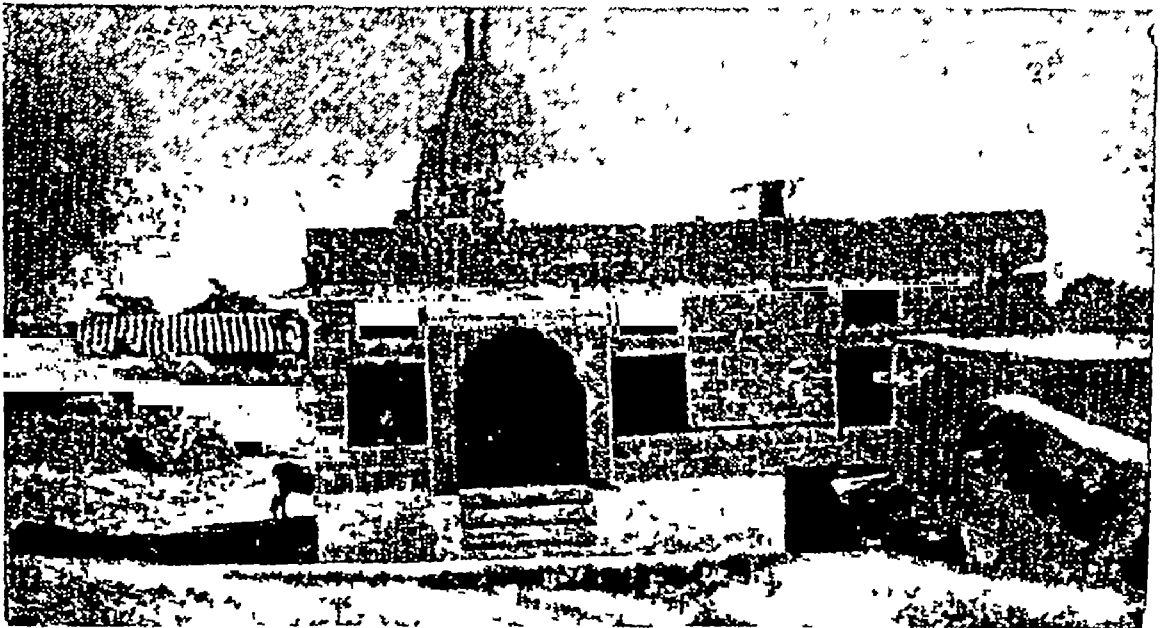
श्री बनाड जैन मन्दिर, बनाड (जोधपुर)

सघ को वि० स० १९११ मे सौंप दिया । श्री सघ ने वि० १९८४ मे कार्य प्रारम्भ किया और वि १९९८ के फाल्गुण शुक्ला ३ को आचार्य श्रीमद् विजयलब्धिसूरिश्वरजी महाराज के सान्निध्य मे प्रतिष्ठा कराई । वि० २०१३ मे व्यवस्थापक समिति का निर्माण हुग्रा । तबसे समस्त कार्य विधिवत किए जा रहे हैं । मूलनायक भगवान पार्श्वनाथजी की प्रतिमा अत्यन्त भव्य, प्रभावोत्पादक और चमत्कारिक हे ।

जितनी सुविधा यात्रियो को इस मन्दिर मे मिलती है उतनी अन्यत्र देखने मे नही आई । मन्दिर के पास दो-दो राजकीय अस्पताल हैं, टेलीफोन कार्यालय है तथा रेलवे ऑफिस भी ।

मन्दिर की निजी पेढी है । पुस्तकालय तथा वाचनालय हैं । तीर्थशाला के ऊपर एक बडा व्याख्यान हॉल है । विशाल धर्मशाला तथा वाटिका भी हैं । समिति यदि इसी प्रकार लगन से कार्य करती रही तो निश्चित ही इसकी विशाल योजना सफल हो जायगी । अभी जीर्णोद्धार मे लगभग ५०-६० हजार रुपए व्यय होने की सम्भावना है ।

व्यवस्था समिति नगर के तीन जैन मन्दिरो की देख-रेख रखती है । जिसका विवरण ऊपर आ चुका है ।

११. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर

स्टेशन के सामने गली मे है । इसके शिखर का भीतरी भाग देखने योग्य है । पास ही मे विशाल धर्मशाला भी है ।

उल्लिखित मन्दिरो के अतिरिक्त निम्नलिखित उपासरे हैं—

१. खरतरगच्छ का उपासरा, सिंहपोल जहाँ जिनेश्वर देव की प्रतिमा विराजमान है । पूजा-सेवा का प्रबन्ध ठीक है ।

२ तपागच्छ का उपासरा, मुनि सुव्रत स्वामी के मदिर के पीछे की ओर है ।

३ कोलडी लौकागच्छीय, इसमे भगवान नेमिनाथजी की श्याम वर्ण प्रतिमा विराजमान है । देखरेख खरतरगच्छ सघ की है ।

निम्नलिखित भवन हैं—

१ धर्मक्रिया भवन

इसमे विशाल हाल है, तपागच्छ का आमिल खाता चलता है । पेढी भी है । और साधु महाराज के चातुर्मास भी यही होते हैं ।

२ श्री कुशल भवन—

पास मे ही है । खरतरगच्छ की ओर से आमिल खाता चलता है और ऊपर श्री जिनकुशल सूरिजी की प्रतिमा स्थापित है । यहा साधु मुनिराज ठहरते हैं । श्रावको के सामायक प्रतिक्रमण की भी सुविधा रहती है ।

निम्नलिखित धर्मशालाए है—

एक श्री केसरियानाथजी के मन्दिर के पीछे की ओर है और दूसरा लखारो के बास मे है। यहा पौषध आदि धर्म कार्य होते हैं और साध्वीजी ठहरती हैं—

दादावाडिए निम्नलिखित है—

फतहसागर पर दो दादावाडिए है इसी प्रकार शनिश्चरजी के थान मे भी एक दादावाडी है। दो एक मन्दिरो को छोड कर प्राय समस्त मन्दिरो मे दादाजी के चरण है। जिनकी सख्या नौ है। इसके अतिरिक्त चादपोल के बाहर, पचेटिया पर चाणोद वाला गुगासा के वहा भी ददा साहब के चरण स्थापित है। पूजा होती है।

महावीर जयती के दिन समस्त जैन समाज हर्ष और उल्लास मनाता है और विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाते है।

सीमान्त जैन मन्दिर—

१. मन्डोर

यहाँ का इतिहास त्रेतायुग से सबध रखता है, जबकि यहाँ के राजा की बेटी मन्दोदरी का विवाह लकाधिपति असुरराज रावण के साथ हुआ। जहाँ विवाह की वेदी बनी थी वह स्थान आज तक भी रावण की चवरी के नाम से प्रसिद्ध है। वि० ७२५ तक एक सौ बयालीस गाँवो की यह राजधानी वैभवसम्पन्न थी। आठवी शताब्दी के उपरात इस्लामी झझावातो और आपस के युद्धो से क्षतिग्रसित होते होते प्रतिहारो के शासनकाल की समाप्ति तक यह खडहर मात्र रह गई। हाँ, राठौड नरेशो ने इतना रमणीय रूप अवश्य प्रदान किया कि यहा खडे होकर कोई यह नही सोच सकता कि वह मरुभूमि का यात्री है।

लगभग डेढ सहस्र वर्ष पूर्व से ही यह नगरी जैन धर्म की गढ बनी आ रही थी। किन्तु समय के फेर से किले के अन्दर तथा आसपास जो ग्यारह भव्य जिनालय थे वे सब नष्ट हो गए और जिनालयो के आकार तथा अन्य भग्नावशेष केवल उनके वैभव की कहानी सुनाने के लिए इधर उधर बिखरे पडे हैं। उनकी स्थिति मे इस समय यहाँ केवल तीन देवालय तथा एक दादावाडी है। काले गोरे भैरव का चमत्कार भी प्रसिद्ध है। मन्दिरो के नाम हैं

१ श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर।

२ श्री आदीश्वरनाथजी का मन्दिर।

३ श्री शान्तिनाथजी ,, ,,

इन मन्दिरो का निर्माण श्री राजाराम पूनमचद जैन ने कराया था। उनके पश्चात उनके वशज इसकी देखरेख करते रहे। इस समय इनकी व्यवस्था केसरियानाथजी के मदिर

जोधपुर की ओर से होती है । दादावाडी की उन्नति का श्रेय पारसमलजी लुणावत क्षेत्रपाल के चबूतरा वालो को है । यहाँ मार्गशीर्ष कृष्णा २ को जैनो का मेला भरता है । यहाँ वाटिका निहारने योग्य है—रेलवे स्टेशन, बस, तागे, रिक्शे की सुविधा होने से नित्य मेला सा लगा रहता हे ।

२ वेरी

मण्डोर से लगभग तीन मील आगे ओसियाँ-जैसलमेर के पुराने कच्चे मार्ग पर चिन्तामणि पार्श्वनाथजी का मन्दिर है। जोधपुर की जैन पचतीर्थी मे से एक यह भी माना जाता है । यहाँ के प्राकृतिक दृश्य देखने ही योग्य हैं । सदा प्रवाहित झरने मे, जिसे वेरी गगा कहते हैं – हिन्दू मात्र स्नान करने मे अपना अहोभाग्य समझता है । मन्दिर कितना प्राचीन है यह तो अब ठीक नही कहा जा सकता किन्तु इतना अवश्य है कि इसकी निर्माण-शैली पर प्रतिहार-शैली की कुछ कुछ छाप थी जिसे जीर्णोद्धार से पहिले देखा जा सकता था किन्तु अब वह भी नही रही । इससे अनुमानत पन्द्रहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे इसका निर्माण और प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न हुआ ।

मदिर की दशा अत्यत शोचनीय थी । तोरण, फर्श, सभा मडप और धर्मशाला आदि के निर्माण हेतु श्री सघ जोधपुर ने वि २११७ मे स्व श्री सायरचद लू कड की अध्यक्षता मे एक समिति का निर्माण किया । अब प्रति वर्ष यहा आषाढ शुक्ला ८ को पाटोत्सव, वर-घोडा (रथयात्रा) आदि की आयोजना की जाती है ।

प्रमुख कार्यकर्ता तिवरी वाले श्री गुमानमलजी पारख धनीमानी होकर भी आपका जीवन निरभिमानी, सरल तथा आडम्बररहित है । कई मन्दिरो की आप देख रेख करते हैं । आप जोधपुर खरतरगच्छ सघ के अध्यक्ष भी है ।

३ बन ड

जोधपुर से लगभग ६ मील की दूरी पर कापरडा जाने वाले मार्ग पर इस छोटे से गाँव मे श्री सभवनाथ भगवान का शिखरबन्द मन्दिर है। प्रतिमा जी तथा अन्य शिला-लेखो से इसकी प्राचीनता लगभग तीन सौ वर्ष की ठहरती है । मूलनायक भगवान की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और मनोहारी है। पाटोत्सव प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला सष्ठमी को होता है। मन्दिर-निर्माता के वशज उस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराते आ रहे है ।

सेवा पूजा का प्रबन्ध श्री भागचन्दजी जेठमलजी डोसी के पुत्र श्री चाँदमलजी आदि करते हैं । यहाँ पानी का टाँका व धर्मशाला भी है। मन्दिर के पीछे डोली यानि काश्त की भूमि भी है । गाव मे जैनो के घर नही हैं। सडक के मार्ग पर आ जाने से साधु, साध्वी हर सप्रादाय के आते जाते रहते है ।

श्री गुरां साहब का तालाब

जोधपुर से लगभग ३ मील है। वि० स० १८६० मे भट्टारक श्री देवीचन्दजी गुरा साहब ने महाराजा मानसिह से मन्दिर की जमीन डोली स्वरूप प्राप्त की। निर्माण कार्य यतिजी ने श्री सघ जोधपुर को सौंप दिया, जो कि १८६३ वि० मे पूर्ण हुआ। तदुपरात माघ शुक्ला १० को श्री सघ ने यतिजी के कर-कमलो से ही प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न कराया। वि० १९२२ मे वाटिका और सरोवर का निर्माण हुआ। मूलनायक भगवान पारसनाथजी की प्रतिमा अत्यन्त भव्य है। यहाँ भादवा शुक्ला १० को मेला भरता है। प्रतिमास शुक्ला १० को पूजा होती।

इस मन्दिर मे विराजमान पार्श्वनाथ भगवान की श्यामवर्णीय प्रतिमा इतनी मनोहर है कि समस्त देश मे ही सम्भवत' नही होगी। प्रतिमा के ऊपर नागफल निहारने ही योग्य है। शहर से दूर होने पर भी चमत्कारी होने के कारण यहाँ भक्तजन प्रतिदिन सेवापूजा हेतु आते जाते हैं। पास मे ही एक बडी धर्मशाला है जिसमे स्वामी वत्सल की व्यवस्था सुविधाजनक हो सकती है।

गुरा साहब का निजी बेरा तथा उद्यान भैरू बाग मन्दिर की समिति ने खरीद लिया है। भैरू बाग को वर्ष भर मे इससे लगभग पन्द्रहसौ रुपये की आय होती है।

इसके पास ही भगवान पारसनाथजी का एक मन्दिर है जो गोलियो का बनवाया हुआ है। जीर्णोद्धार करा कर उन्ही के वशज इसकी देखरेख रखते हैं। दूसरा मन्दिर भडारियो की माता का है जिसकी व्यवस्था भडारी ही सभालते हैं।

दान देने से दरिद्रता का नाश होता है। शील दुर्गति का नाश करता है। ज्ञान अज्ञान का नाश करता है। जब कि भाव ससार-बन्धन का ही नाश करता है।

●●●

बुद्धिशाली पुरुष भूत और भविष्य की न सोच कर वर्तमान मे क्या करना है इस ओर अपना लक्ष्य दौडाता है।

जोधपुर से ३ माइल दूरी पर श्री गुरासा के तालाव मंदिर के मूलनायक
श्री पार्श्वनाथ स्वामी की स्यामवर्ण अति मनोहर मूर्ति

मेड़ता नगर के जैन मन्दिर

ले० श्री तेजराजजी भन्साली, पीपाड शहर

मेडता नगर भूतपूर्व मारवाड का प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। इसे माधाता परमार ने ८वी शताब्दी मे बसाया था। इन्ही के नाम पर इसका नाम माधातृपुर हुआ। जो विकृत होकर कालान्तर मे मेडता बन गया।

इस नगर की बनावट सुन्दर है। यह सब धर्मों का केन्द्र है। यहाँ जैन, वैष्णव तथा मुसलमानो की मसजिदे प्रचुर मात्रा मे हैं। नगर के चारो ओर तालाब तथा कुए हैं, जिन पर एक मन्दिर, एक मसजिद तथा १-२ बगीचियाँ प्रत्येक स्थान पर विद्यमान हैं। यह सलक्ष्य विशेपता एक स्नेहसम्मेलन है और अन्यत्र मिलना दुर्लभ हे।

मेडता की भक्तशिरोमणि मीराबाई, कविवर वृद्ध, प्रसिद्ध आध्यात्मविद जैन मुनि आनदघन के जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त है।

नगर मे यातायात के पचुर साधन हैं। यह मेडता रोड (फलोधी) से एक छोटी रेल लाइन से सबद्ध है, जो दिन रात मे दो बार आती जाती है। तदतिरिक्त यह बसो का केन्द्र है। यहाँ से पुष्कर, अजमेर, रीयाँ, आलनियावास, जैतारण, पीपाड आदि स्थानो से सीधा सम्बन्ध है। यहाँ से अजमेर केवल ४० मील ही है और यदि रेल पथ बन जाय तो यह एक सस्ता, सरल, सुगम पथ बन जाय, जिससे इसका व्यावसायिक प्रभुत्व और भी बढ सकता है।

यह नगर अनेक बार उजडा-बिगडा पर आजकल प्रगतिपथ पर है। इन दिनो एक हजार नए आधुनिक ढग के मकान नगर मे यत्र तत्र बने हैं, जिससे इसका निखार, सस्कार, परिष्कार हो गया है।

यहाँ सेशन-जज, पचायत समिति, उच्च विद्यालय, सस्कृत कॉलेज तथा अन्य सरकारी विभाग हैं। स्थानीय नगर पालिका ने नल-बिजली की व्यवस्था की है, पथ स्वच्छ तथा प्रशस्त किए हैं तथा नगर की प्रगति का प्रतीक एक पुर-जन-बिहार (पब्लिक पार्क) भी बनाया है।

यह अनाज की बडी मडी है, जहाँ से लाखो का व्यापार होता है। लघुशिल्प हाथी-दाँत का काम, खस की पखिया, पानदान, तेल के कोलू आदि हैं। इसकी आबादी पन्द्रह हजार है।

इस प्रासगिक विवेचन के बाद हम मूल विवेचन पर आते हैं। यहाँ श्वेतावर जैनो के १४ मन्दिर हैं तथा १ दिगम्बर जैनो का मन्दिर भी। एक दादावाडी, ८ उपाश्रय भी हैं जो यह सूचित करते हैं कि किसी समय यह जैनो की एक विशाल बस्ती थी। सतरहवी शताब्दी मे यहाँ ओसवालो के ३००० घर थे, जो आज केवल १५० घर रह गए हैं और उनमे भी अधिकाश आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रो से आकर वसे हैं।

सभी मदिरो के निर्माणकाल का पता नही, पर जो कुछ भी उपलब्ध है दे रहे हैं।

१ जूना आदिश्वरजी का मन्दिर

यह कोठारियो की खिडकी मे स्थित है। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १४४९ मे हुई थी। इसमे श्वेत सगमरमर की विशाल आदिश्वर भगवान की प्रतिमा है।

२ बडा शान्तिनाथजी का मन्दिर

यह चौपडो के मोहल्ले मे है। इसकी प्रतिष्ठा विक्रम सवत १४६९ मे हुई थी। इसमे शातिनाथजी की श्वेत प्रतिमा है।

३. श्री चिन्तामणिजी का मन्दिर

यह लोढो के मोहल्ले मे है। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १६५७ मे हुई थी। इसमे चितामणि पार्श्वनाथजी की मूर्ति है।

४. नया मन्दिर

यह मन्दिर माणक चौक बाजार मे स्थित है जो मेडता का मुख्य बाजार है। मदिर के तीनो ओर दूकाने हैं। इसके पूर्व मे औरगजेव काल मे बनी विशाल मस्जिद है, जिसके चारो ओर दूकाने हैं। वस्तुत मन्दिर-मस्जिद की दूकाने ही बाजान को मूर्तिमान रूप प्रदान करती हैं। सहअस्तित्व का यह एक अनुकरणीय उदाहरण है जो यह सूचित करता है कि पहले लोग सद्भाव, सौजन्यपूर्वक रहते थे। धार्मिक कटुता, क्लेश, कदाग्रह की भावना उनमे नही थी।

इसकी प्रतिष्ठा वि०स० १६७० मे हुई थी। इसमे आदीश्वर भगवान की श्वेत सगमरमर की विशालकाय प्रतिमा है जो मनोहर तथा भव्य है। मन्दिर विशाल है तथा बाजार को श्रेयस्कर रूप प्रदान करने का गौरव इसी को है। मदिर के शिखर-पताका तथा मसजिद की मीनारे ६ मील दूर से ही दिखाई देती हैं और एक प्रतिष्ठित बस्ती की सूचना देती हैं।

५ बाड़ी पार्श्वनाथजी का मन्दिर

नगर के दक्षिण मे कुण्डल सागर के पास समाज का सुन्दर बगीचा, दो मन्दिर व दादावाडी भी है, जिसमे दादाजी के पदचिह्न हैं ।

तदतिरिक्त अन्य अनेक मन्दिर हैं । इन मन्दिरो के विपय मे अधिक ऐतिहासिक जानकारी नही । इन मन्दिरो मे श्री चद्रप्रभुजो, धर्मनाथजी, कुँथुनाथजी तथा श्री महावीर स्वामीजी के मन्दिर हैं ।

यहाँ ल्होडा चारभुजा का एक मन्दिर है जो पहले एक जैन मन्दिर था । जैनो की शिथिलता का लाभ उठा कर यह वैष्णव मन्दिर बना दिया गया ।

बडे चारभुजा का मन्दिर एक विशाल ऐतिहासिक वैष्णव मदिर है, जिसका सबध मीराबाई से है । इसके सामने एक धर्मशाला है, जहाँ यात्रीगण ठहर सकते हैं ।

वास्तव मे मेडता नगर के गौरवपूर्ण स्थान तीन है—बडे चारभुजा का मन्दिर, नया जैन मन्दिर तथा बडी मस्जिद । तीनो आसपास ही है तथा इनकी दूरी एक फर्लाङ्ग से अधिक नही ।

मन्दिरो की व्यवस्था एक निर्वाचित समिति द्वारा होती है । इसके अध्यक्ष श्री भवर-लालजी तातेड हैं तथा मन्त्री श्री कस्तूरमलजी सिघवी एडवोकेट । फलवर्द्धी पार्श्वनाथ-तीर्थ की व्यवस्था भी यही समिति करती है । हाल ही मे श्री अमृतराजजी सिघवी के अथक परिश्रम, पर्यटन तया धन सग्रह से जीर्णोद्धार सपन्न हुआ है, जिससे मन्दिरो का नवीनी-करण हो गया है ।

मेडता नगर के सभी जैन मन्दिर, उपाश्रय, दादावाडी, बगीची का समय समय पर सुधार-परिष्कार होता रहता है, जिससे सभी स्थान सुदृढ, स्वच्छ तथा सुन्दर हैं ।

समष्टि मे ८वी शताब्दी का माधातृपुर, आधुनिक मेडता, अब प्रगति-पथ की ओर अग्रसर हो रहा है । यहाँ जैन समाज तथा मन्दिरो की स्थिति शक्तिशाली तथा व्यवस्थित है । प्रत्येक धर्मनिप्ठ व्यवित को यात्रा का लाभ उठाना चाहिए ।

प्राचीन नगर श्री सोजत

ले० श्री हुकमराज मुणोयत, सोजत

राजस्थान राज्य के पाली जिले मे पाली से २३ मील यह शहर बसा हुआ है। जोधपुर से पाली होकर जयपुर अजमेर जाने वाली बसे यहा होकर जाती हैं और उधर से आती हैं। और भी यहा से दूसरे गावो मे भी बसे जाती एव आती हैं। यहा जैनो की अच्छी बस्ती है और व्यापार धधा भी अच्छा चलता है। यहाँ के निवासी विद्याभ्यास मे भी पीछे नही हैं। जब मारवाड (जोधपुर) का राज्य था तब सबसे पहिले यहाँ मिडिल स्कूल खुला और इस स्कूल के पढे हुए विद्यार्थी वकील, डाक्टर, मजिस्ट्रेट इत्यादि अच्छे पदो पर नियुक्त हैं।

जैन मदिर यहा बहुत प्राचीन एव रमणीय है। श्री आदिनाथ भगवान का मदिर बहुत ही विशाल है। बाजार मे श्री महावीर स्वामी का मदिर की शोभा ही निराली है। श्री गौडी पार्श्वनाथजी का मदिर बाजार मे पुराना बना हुवा था उसको थोडे वर्षो पहिले नया बनाकर प्रतिष्ठा करवाई गई। इसमे लाखो रुपये व्यय हुये। इस मन्दिर के नीचे दूकाने भी हैं और जैन पेढी भी कार्य करती है। यहा साधु-साध्वियो के विश्राम व चतुर्मास करने हेतु बडी धर्मशालाएँ भी हैं। आयबिल खाता भी चलता है और उसके लिये एक बहुत बडा भवन बनाया जा रहा है जो धर्मशाला के समीप ही है। इसके अतिरिक्त विमलनाथ स्वामी का मदिर भी बाजार के निकट ही है।

यहा पहिले यतीजी महाराज बहुतायत से रहते थे जिनके उपासरे भी इस नगर की शोभा बढा रहे हैं।

एक विशाल दादावाडी है। इस दादावाडी का निर्माण यहा के सुश्रावक श्री गनेसमलजी सिंघवी ने कराया जो दादासाहिब के पक्के भक्त थे। इसी कारण इसका नाम कुशलवाडी रखा गया। इसकी प्रतिष्ठा वि स. १९९१ मे हुई। उसके बाद ऊपर एक छोटा सा रमणीय देरासर बना कर भगवान पार्श्वनाथ व अन्य दो तीर्थकरो की प्रतिमाएँ स्थापित की गई। श्री सिघवीजी ने इस भवन का निर्माण करा कर अमर नाम किया है। बाहर से आने वाले लोगो के ठहरने के लिये सोजत मे कोई मकान नही था, इसकी पूर्ति हो जाने से सोजत शहर की कीर्ति चारो ओर फैली है। यहा किसी जाति का कोई भी व्यक्ति ठहर सकता है। माचा, बिस्तर, बरतन इत्यादि का प्रबन्ध भी है दादावाडी मे एक कूआ भी है और वाटिका भी जिससे यात्री आनद का अनुभव करते है, सिंघवीजी ने इसका ट्रस्ट कायम करा दिया है इसलिये व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही है। आय के साधन भी हैं इसलिये व्यय करने मे सकोच नही होता।

यहा का जैन सघ धर्म के प्रभाव से सुखी है और धर्मक्रिया कर अपना सुखमय जीवन बिताते हैं।

द्वितीय खंड

राजस्थान के महत्वपूर्ण तीर्थस्थान

अनुक्रमणिका

प्राचीन तीर्थ श्री गांगाणी

ले० सोहनराज भसाली, जोधपुर

जैन मान्यतानुसार स्थावर तीर्थ दो प्रकार के बताए गये हैं। पहला सिद्ध क्षेत्र व दूसरा अतिशय क्षेत्र।

सिद्ध क्षेत्र तीर्थ वे स्थल होते हैं जहाँ तीर्थंकर भगवान का जन्म, दीक्षा, केवल्यज्ञान, मोक्ष अथवा विहार हुआ हो।

अतिशय क्षेत्र तीर्थ के स्थान कहलाते हैं जहाँ के मन्दिर अति प्राचीन हो, भव्य और कलापूर्ण हो, जहाँ की मूर्तिया प्रभाविक हो, जहा के अधिष्ठायक देव चमत्कारी हो, जहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय हो, इत्यादि।

मारवाड के लगभल सभी तीर्थ इन अतिशय तीर्थो मे ही आते हैं। इन अतिशय तीर्थो मे गागाणी मारवाड का एक अति प्राचीन तीर्थस्थल है। यह तीर्थ जोधपुर से दक्षिण-पूर्व दिशा मे २० मील दूर स्थित है।

गांगाणी नाम कैसे पडा ?

गागाणी का प्राचीन नाम अर्जुनपुरी था। यहां पर तेल की घाणियाँ[१] (कोल्हू) अधिक होने से धीरे धीरे दूसरा नाम बिगडते बिगडते गागाणी पड गया हो तो कोई आश्चर्य नही। कहा जाता है कि ओसवाल जैनियो का 'गाग' गोत्र का उद्‌भव-स्थान यही गाँगाणी ही है।

प्राचीन व अर्वाचीन गॉगाणी

प्राचीन काल मे गागाणी एक समृद्धशाली शहर था। यहाँ के भव्य प्राचीन जिनालय को देखकर ऐसा लगता है कि यहाँ किसी समय बडी सख्या मे जैन लोग निवास करते थे। भगवान की भक्ति से प्रेरित होकर बाहर के कई जैन सघ भी यात्रार्थ यहाँ आया करते थे। पर काल के प्रभाव से यह शहर भी उजडता गया। रेल एव किसी सडक मार्ग पर स्थित न होने के कारण जब यहाँ का व्यापार-धधा धीरे धीरे चौपट होता गया तब यहा के निवासी व्यापार-धधे की खोज मे अन्यत्र जाने लगे। धीरे धीरे यह शहर एक छोटे से ग्राम मे परिवर्तित हो गया। आज तो यहाँ जैनो का एक भी घर नही है।

---

१ समयसुन्दरजी महाराज ने भी यहाँ तेल की घाणियाँ बहुतायत से होने का उल्लेख अपने स्तवन मे किया है।

धर्मनाथ स्वामी का जिनालय

यहाँ का धर्मनाथ स्वामी का जिनालय अति प्राचीन है। कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण मौर्य सम्राट सम्प्रति ने कराया था। इसकी प्रतिष्ठा सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री सुहस्तीसूरिजी महाराज द्वारा कराई गई थी।

इस जिनालय मे वर्तमान समय मे कुल चार प्रतिमाएँ हैं। इनमे सबसे प्राचीन प्रतिमा सर्वधातु की आदीश्वर भगवान की है जो विक्रम सवत ९३७ की प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति मे निम्न लिखित लेख अंकित है—

ओ नवसु शतेष्वब्दाना सप्ततृ (त्रि) शदधि केष्वती तेषु।

श्री वच्छलागली भ्या। ज्यष्टाय मिया परमभक्त्या॥ नाभेयजिनस्यैषा प्रतिमाऽषाढार्द्ध मास निष्पन्न श्रीमत्तोरण कलिता। मोक्षार्थ कारिता ताम्या ज्येष्ठार्य पर प्रोप्ता द्वावपि-जिन धर्म्म वच्छलौख्यातौ। उद्योतन सुरेस्तौ॥

शिष्यौ श्रीवच्छपल देवौ॥

॥ सवत ९३७ आषाढार्द्धे॥

अनुवाद—

वि० स० ९३७ मे ज्येष्टार्य पदवी वाले श्री वच्छ और लांगजी ने परम भक्ति से आधे आसाढ मास मे मोक्ष के लिए तोरण मे यह मूर्ति बनाई। उद्योतन सूरि के शिष्य ज्येष्टार्य पदवी वाले श्री वच्छ और पलदेव जिन धर्म मे वत्सल प्रसिद्ध हैं। स० ९३७ आधा आसाढ।

दूसरी प्रतिमा श्री धर्मनाथ प्रभु की पाषाण की है जिस पर निम्न लेख अंकित है—

स० १६६४ वर्षे फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे ५ पचमी तिथौ गुरुवासरे अवती वास्तव्य, धर्म्मनाथ बिब कारित प्रतपृित च श्री विजयदान सूरि उपाध्याया जैसागर गणी, वीजी पण पास मूर्ति स० १६५८ वर्षे महा सुद ५ दिने उजीनी वास्तव्य प्रागवाट न्यातीय पारसनाथ बिंब।

श्री समयसुन्दरजी महाराज का आगमन

स० १६६२ के ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को जैनाचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि के शिष्य प्रसिद्ध विद्वान एव कवि श्री समयसुन्दरजी महाराज ने इस तीर्थ की यात्रा की थी। उन्होने उस समय एक स्तवन की रचना की जिसमे उन्होने इस तीर्थ के सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

चार प्रतिमाएँ ही कैसे रही ?

इस स्तवन मे कविजी ने गागाणी के जिनालय मे ६५ प्रतिमाओ के होने का उल्लेख

प्राचीन तीर्थ श्री गागाणी जिला जोधपुर (राज०)
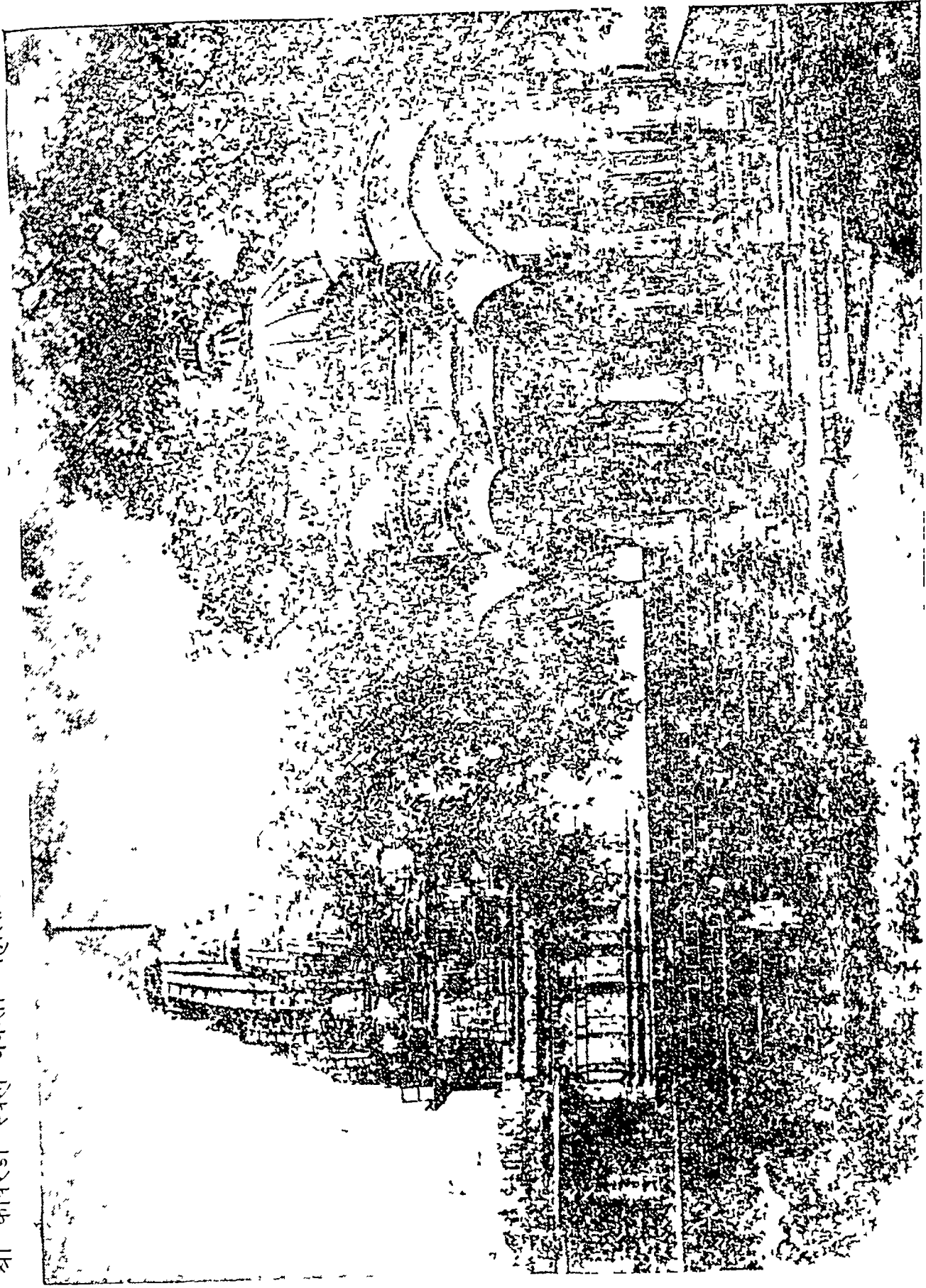
किया है परन्तु इसके बाद के वर्षो मे भी यहाँ और प्रतिमाओ की वृद्धि हुई है। इसका पमाण है श्री धर्मनाथ स्वामी की प्रतिमा। इस प्रतिमा पर सवत् १६६४ का लेख है। श्री समयसुन्दरजी महाराज के स्तवन का रचना काल है स० १६६२। अत दो वर्ष के पश्चात् यह प्रतिमा इस मन्दिर मे प्रतिष्ठित हुई है। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ ६५ से भी अधिक प्रतिमाएँ होनी चाहिएँ। परन्तु वर्तमान मे यहाँ केवल चार प्रतिमाएँ ही उपलब्ध हैं, अत शेप प्रतिमाएँ कहाँ गईं यह एक शोध का विषय है।

कविजी ने अपने स्तवन मे मूलनायक श्री पद्मप्रभु बताया है पर वर्तमान मे मूलनायक श्री धर्मनाथ प्रभु हैं। इससे पता चलता है कि मूलनायक पद्मप्रभु की प्रतिमा भी अन्य प्रतिमाओ के साथ हटाई गई है।

जिन दिनो मुगलो का शासन था उन दिनो जैन व हिन्दू मन्दिरो पर उनके हमले होते रहते थे। हो सकता है मुसलमानो के अत्याचारो से भयभीत होकर कुछ मूर्तियो को तलघरो मे रखदी हो, खेतो मे गाड दी हो, मन्दिर के कुएँ मे छिपादी हो क्योकि कुएँ मे जाने के लिए मन्दिर के तलघर मे से ही जीना बना हुआ है। स्वय समयसुन्दरजी महाराज ने तलघरो मे मूर्तियो को देखा है, जिसका उन्होने अपने स्तवन मे उल्लेख भी किया है। कुछ ही वर्षों पूर्व एक जिन प्रतिमा पास ही के एक खेत मे भी मिली है जो इस समय मन्दिर मे विराजमान है।

पुरातत्व विभाग यदि तालाब के आसपास व खेतो मे खुदाई का कार्य कराए तो यहाँ कई प्राचीन मूर्तियाँ, पट आदि उपलब्ध हो सकते हैं। मैं तो यहाँ मन्दिर की प्रबन्ध समिति से भी अनुरोध करूँगा कि वह भी इस ओर ध्यान दे और शोध खोज के लिए सक्रिय कदम उठाए। यहाँ के लोगो का भी ऐसा कहना है कि मन्दिर के सभा मण्डप के नीचे जो तलघर है उसमे मूर्तियाँ मिल सकती हैं।

मन्दिर की प्राचीनता के सम्बन्ध मे उपकेशगच्छ चारित्र नामक सस्कृत मे जो काव्य ग्रन्थ १४वी शताब्दी का है उसमे भी इस तीर्थ की प्राचीनता का उल्लेख किया गया है।

तपागच्छ की प्राचीन पट्टावली मे भी इस तीर्थ का उल्लेख है और इसे सम्राट सम्प्रति द्वारा निर्माण कराया बताया गया है।

यह जिनालय दो मजिल का है। इसका शिखर भूमि से ७२ फुट ऊँचा है।

जिनालय की दीवाल से लगता हुआ एक कुआ है। इस कुए का पानी मीठा व स्वास्थ्यवर्द्धक है। पहले यह कुआ मन्दिर के अधिकार मे ही था पर जैनो की उपेक्षा एव अकर्मण्यता के कारण तथा यहाँ के जैनो की आबादी न होने के कारण यह कुआ मन्दिर के अधिकार से निकल गया है।

मन्दिर का जीर्णोद्धार कार्य

यह मन्दिर अति प्राचीन होने से समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार भी कराया जाता रहा है।

विक्रम की नवी शताब्दि मे उपकेशपुर के श्रेष्ठिवर्य वोसठ ने इस जिनालय का उद्धार कराया।

चौदहवी शताब्दी मे शाह सारग सोनपाल ने जीर्णोद्धार कराया।

वि० की सोलहवी शताब्दी मे बीकानेर के जैनो के प्रवास से उद्धार का कार्य सम्पन्न हुआ।

स० १९८२ मे गागाणी निवासी श्री घेवरचन्दजी छाजेड मेहता के प्रयत्न से जीर्णोद्धार का कार्य सम्पन्न हुआ।

इसके पश्चात सवत २०१३ मे मुनि श्री प्रेमसुन्दरजी महाराज के उपदेश से जोधपुर जैन सघ के प्रयास से भारतीय जैन सघ के सहयोग से इस तीर्थ का जीर्णोद्धार हुआ।

मुनि श्री प्रेमसुन्दरजी महाराज अपने अन्तिम समय तक निरन्तर इस तीर्थ के उद्धार एव प्रसिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहे। वे इस तीर्थ पर एक वृहत् आश्रम स्थापित करना चाहते थे। इस योजना को कार्य रूप मे परिणित करने के लिए वे कुछ श्रावक समुदाय के साथ गागाणी पहुँच भी गए पर 'होनहार होकर रहे'। महाराज श्री वहाँ पहुँचते ही अस्वस्थ हो गए और कुछ ही दिनो की बीमारी के बाद उनका निधन हो गया। खेद है कि उनकी यह इच्छा सफलीभूत न हो सकी।

स्वर्गीय महाराज साहब के उपदेश से इस तीर्थ की व्यवस्था हेतु एक प्रबन्ध समिति का निर्माण हो चुका है। एक धर्मशाला भी बन गई है। अब एक मुनीम भी रहता है।

समिति के प्रयत्न से जोधपुर से भोपालगढ जाने वाली बस गागाणी मे होकर ही जाती है। यह बस मन्दिर के पास ही खडी होती है।

प्रति वर्ष चैत वदि सप्तमी को यहाँ एक मेला भी लगता है। उस दिन भगवान की सवारी भी निकाली जाती है। आगन्तुक यात्रियो के लिये सहधर्मी वात्सल्य भी होता है।

प्रासगिक रूप से श्री समयसुन्दरजी महाराज द्वारा रचित स्तवन अविकल रूप मे नीचे दिया जा रहा है यह स्तवन स० १६६२ मे रचा गया है, जो इस तीर्थ पर अच्छा प्रकाश डालता है।

श्री गांगाणी मंडन स्तवन

ढाल पहली

पाय प्रणमुं रे श्री पद्म प्रभु पासना। गुण गाऊ रे आणि मन शुद्ध भावना।
गागाणी रे प्रतिम थई घणी। तस उत्पत्ति रे सुणजो भविक सुहामणी॥

त्रुटक

सुहामणी ये वात सुणता। कुमति शका भाज से।
निर्मलो थाशे शुद्ध समकित। श्री जिन शासन गाज से ॥ १

ध्रुव देश मडोवर महावल। वलिशूर राजा सोहए।
तिहाँ गाँव अनेक घाणिका। गागाणी मन मोहए ॥ २

ढाल

दुधेला रे नाम तलाब छे जेहनो। तस्स पासरे खोखर नाम छे देहरो।
तिण पुठेरे खणता प्रकट्यो भूहरो, परियागत रे जाणि निधान लाधो खरो ॥ १

त्रुटक

लाधो खरो वलि भूहरो एक, माँहे प्रतिमा अतिवली।
ज्येष्ठ शुद्ध इग्यारस, सोलह वासठी। बिंब प्रगट्या मनरली ॥ ४

केटली प्रतिमा ? केनीवली ? कोण भरावी भाव सू ?।
एकोण नयरी कोण प्रतिष्ठि ? ते कहूँ प्रस्ताव सू ॥ ५

ढाल

ते सगली रे पैसठ प्रतिमा जाणिये, तिण सहुनी रे सगली विगत बखाणिये।
मूलनायक रे पद्मप्रभु ने पासजी, एक चौमुख रे चौवीसी सुविलासजी ॥

त्रुटक

सुविलास प्रतिमा पास केरी, बीजी पण तेवीसए।
ते माँही काउस्सग्गिया विहु, दिसी बहु सुन्दर दीसए ॥ ७
वीतरागनी उगणीस प्रतिमा, बलीए बीजी सुन्दरू।
सकल मिली ने जिन प्रतिमा, छियालीस मनोहरू ॥ ८

ढाल

इन्द्र ब्रह्मा रे ईश्वर रूप चक्रेश्वरी, एक अंबिका रे अर्ध नाटेश्वरी।
विनायक रे योगणि शासन देवता, पासे रहे रे श्री जिनवर पाय सेवता ॥ ९

त्रुटक

सेवता प्रतिमा जिण करावी, पाँच ते पृथ्वीपाल ए।
चन्द्रगुप्त बिन्दुसार अशोक, सम्प्रति पुत्र कुणाल ए ॥ १०
कनसार जोडा धूप धाणो, घटा शख भृंगार ए।
त्रिसिटा मोटा तद कालना, बली ते परकार सार ए ॥

ढाल

मूलनायक प्रतिमा वाली, परिकर अति अभिराम।
सुन्दर रूप सुहामणि, श्री पद्म प्रभु तगुनाम ॥
श्री पद्म प्रभु पूजियाँ, पातिक दूर पलाय।
नयणे मूर्ति निरखता, समकित निर्मल थाय ॥२॥
आर्य सुहस्ती सूरीश्वरो, आगम सूत व्यवहार।
सयम रॉकवणी दियो, भोजन विविध प्रकार ॥३॥
उज्जैनी नगरी घणी, ते थयो सम्प्रति राय।
जाति स्मरण जागियो, ये ऋद्धि गुरु पसाय ॥४॥
बली तिण गुरु प्रतिवोधियो, थयो श्रावक सुविचार।
मुनिवर रूप कराविया, अनार्य देशविहार ॥५॥
पुण्य उदय प्रगट्यो घणो, साध्या भरत त्रिखण्ड।
जिण पृथ्वी जिन मन्दिरे, मण्डित करी अखण्ड ॥६॥
वी सय तिडोतर वीर थी, सवत सबल पडूर।
पदमप्रभु प्रतिष्ठिया, आर्य सुहस्ती सूर ॥७॥
महा तणी शुक्ल अष्ठमी, शुभ मुहूर्त रविवार।
लिपि प्रतिमा पूठे लिखी, ते वाचो सुविचार ॥ ८

ढाल तीसरी

मूलनायक बीजोबली, सकल सुकोमल देहो जी।
प्रतिमाश्वेत सोना तणी, मोटो अचरज ये हो जी ॥ १
अरजन पास जुहारिये, अर्जुन पुरी शृगारोजी।
तीर्थंकर तेवीसमो, मुक्ति तणो दातारोजी ॥ २
चन्द्रगुप्त राजा हुओ, चाणक्य दिरायो राजोजी।
तिण यह बिब भराविया, सार्या आतम काजोजी ॥ ३

ढाल चौथी

मारो मन तीर्थ मोहियो, भइ भेट्या हो पदमप्रभु पास।
मूलनायक बहु अति भला, प्रणमता हो पूरे मनना आस ॥ १
सघ आवे ठाम ठामना, बलि आवे हो यहाँ वर्ण अढार।
यात्रा करे जिनवर तणी, तिणे प्रगट्यो हीये तीर्थ सार ॥ २

प्राचीन तीर्थ श्री ओसीयाजी (राज०)

यह मदिर बहुत पुराना अर्थात् भगवान् महावीर के निर्वाण के ७० वर्ष
पश्चात् श्री रत्न प्रभसूरि द्वारा प्रतिष्ठा कराया हुवा है
स्तभ और तोरण की कोरणी निहारने योग्य है ।

जूनो बिंब तीर्थ नवो, जगी प्रगट्यो हो मारवाड मझार ।
गागाणी ग्ररजुन पुरी, नाम जाणे सगलो ससार ।। ३
श्री पद्मप्रभु ने पासजी, ए बेहु मूर्ति हो सकलाय ।
सुपना दिखाने समरता, तसु वाध्यो हो यश ते प्रताप ।। ४
महावीर भोहरातणी, ए प्रगटी हो मूर्ति अतिसार ।
जिन प्रतिमा जिन सारखी, कोई शका हो मत करजो लगार ।। ५
सवत सोला बासटी सुमई, यात्रा कीधी हो मइ माह मझार ।
जन्म सफल थयो नाहरो, हवे मुझने हो स्वामी पार उतार ।। ६

कलश

इम श्री पद्मप्रभु स्वामी, पुन्य सुगुरु प्रसाद ए ।
मुलगी ग्ररजनपुरी नगरी, वर्धमान सु प्रसाद ए ।
गच्छराज जिनचन्द्र सूरि, गुरु जिन हस सूरीश्वरो ।
गणि साँकलचद विनय वाचक, समय सुन्दर सुख करो ।।

दुमपत्तए पडुयए जहा निवडत राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीविय समय गोयम मा पमायए ।।

जैसे रात के बीतते-बीतते वृक्षो के पके पत्ते झड जाते हैं, उसी तरह मनुष्य का जीवन झड जाता है । इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद न कर ।

नाणस्स सव्वस्स पगासणाय अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य सखएण एगतसोक्ख समुवेइ मोक्ख ।।

समस्त ज्ञान प्रकाशमय (निर्मल) हो जाए, अज्ञान-मोह का त्याग हो जाए, राग एव द्वेष का सक्षय हो जाए, तो सुख ही सुख है ।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुघा धेणू, अप्पा मे नदन वण ।।

आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है आत्मा ही कामधेनु है, आत्मा ही मेरा नदनवन है ।

जैन तीर्थ श्री ओसियाँजी

प० लक्ष्मीनारायण बुद्धिसागरजी मिश्र शास्त्री, जोधपुर

हमारा विचार था कि ओसियाजी तीर्थ का विस्तारपूर्वक इतिहास लिखें। तीर्थ के कार्यकर्ताओ को पत्र लिखे किन्तु कोई उत्तर नही आया। श्री लक्ष्मीनारायणजी ने हमे एक छोटा चित्र दिया जिसका बडा बना कर उसको ब्लॉक तैयार करा कर इस ग्रथ मे प्रकाशित कर रहे है। इतिहास के लेखक को कुछ जानकारी थी और कुछ पार्श्वनाथ परम्परा के इतिहास से लिख कर यह लेख प्रकाशित कर रहे हैं। हमे तीर्थ के कार्यकर्ता की इस तरह की उपेक्षा-वृत्ति के लिए अति खेद है। साथ ही इसका भी खेद है कि समय की कमी के कारण हम इस ओर अधिक ध्यान नही दे सके।

— मानचन्द भण्डारी
प्रबन्धक

वत्सराज द्वारा निर्मित प्रतिहार शैली का यह मन्दिर न केवल विख्यात ही हैं अपितु मूर्तिपूजक जैन समाज मे इसे अत्यधिक आदर एव श्रद्धा की दृष्टि से भी देखा जाता है। कहा जाता है कि वीर निर्वाण के सित्तर वर्ष उपरान्त इस मन्दिर का निर्माण हुआ। अनेक शिला लेखो से यह भी विदित होता है कि समय समय पर इसका जीर्णोद्धार होता रहा और कई जैनाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठाएँ कराई जाती रही।

दादा गुरुदेव के समीप चौबीस तीर्थंकरो की रक्षिका के पद पर अकित है—

'सवत ११२५ कार्तिक सुदि १३ श्री कक्कसूरिभि प्रतिष्ठित । '

इसी प्रकार एक अन्य लेख से जाना जाता है कि वि० स० १०७३ फाल्गुण शुक्ला तीज को प्रथम वार 'ध्वजारोहण उत्सव' मनाया गया और फिर तो निरन्तर मनाए जाने की परिपाटी ही पड गई, जो आज तक निभाई जा रही है। फागण सुदि ३ को यहाँ प्रति वर्ष मेला भी भरता है।

वि० स० ३४ चैत्र शुक्ला १० गुरुवार का एक लेख सुचिया माता के मन्दिर पर है। इस माता की प्रेरणा से ही महावीर स्वामी की वह मुख्य प्रतिमा प्राप्त हुई, जो कि मन्दिर मे विराजमान है। इस माता के शीतला, सच्चिका आदि नाम हैं।

मन्दिर निर्माण के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि पहिले इस गाव की अच्छी स्थिति थी। इस गाव का नाम उपकेशपाटन था और उपलदेव पँवार राज्य करते थे। राजकुमार का नाम महिपाल था। राजपूत काल होने से पशुवलि की प्रथा भी जोरो पर थी। एक

बार शासनसम्राट जैनाचार्य श्री जिनरत्नप्रभ सूरि अपने पाँच सौ शिष्यो को लेकर यहाँ पधारे। उन्होने पहाडी पर निवास किया। अपने नियम के अनुसार वे हर नगरी मे मासक्षमण की तपस्या करके ही पारणा करते और फिर जैसी स्थिरता होती वैसा करते। इतने व्यक्तियो के लिए गाव मे सूभता आहार अर्थात काल्पनिक भोजन उपलब्ध नही था अत चार सौ पैसठ शिष्यो को अन्यत्र विहार की आज्ञा देकर शेष मुनियो सहित आप यही विराज गए। येन केन प्रकारेण शिष्य भिक्षावृत्ति द्वारा उदरपूर्ति करते रहे। मास क्षमण के पूर मे कुछ अभिग्रह भी वे कर लिया करते थे। पारणे के दिन इनका अभिग्रह पूरा नही हुवा अत दूसरा मास क्षमण आरम्भ करने की इच्छा हुई। देवी ने इनकी तपस्या का प्रभाव देखा तो बहुत प्रसन्न हुई और उन्हे स्वय अपने हाथो से शुद्ध भोजन दिया। जैनाचार्य ने भोजन लेने से इसलिए इन्कार कर दिया, क्योकि देवी पशुबलि लेती थी। इस पर देवी ने कहा कि अब वह भविष्य मे स्वीकार नही करेगी, तभी से इसका नाम सच्ची देवी पडा।

आचार्यदेव ने पारणा तो किया किन्तु सारी नगरी मे मास भक्षण से उन्हे बडा दुख हुआ। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि पशुओ के सहार को किसी प्रकार रोका जाए। दैवाधीन उसी समय मत्रीपुत्र को सर्पदश हुआ। मत्री ने समस्त प्रयत्न कर लिए किन्तु मत्रीपुत्र बच नही सका अन्त मे श्मशान के लिए प्रस्थान कर दिया गया। रोते कलपते हजारो व्यक्तियो की दशा देख कर मुनिराज का हृदय दया से भर गया। उन्होने उपयुक्त समय देख कर उपचार द्वारा उसे जीवन दान दिया। इस से सारी नगरी मे हर्ष की लहर दौड गई और मुनिराज का जयजयकार होने लगा। तब मत्री ने आप से विनयपूर्वक निवेदन किया कि आप यही विराज कर उपदेश दे। दयानिधान आचार्य महोदय ने कहा 'हम यहा हिंसा के वातावरण मे नही रह सकते।' इस प्रकार अपनी अमृतमयी वाणी से अहिंसा के मार्ग को समझाते हुए आपने राजपूतो का हृदय परिवर्तन कर दिया और उन्हे भविष्य मे जीव-हत्या न करने के लिए आदेश दिया। अन्त मे राजा ने तथा समस्त नागरिको ने मुनिवर के आदेश को स्वीकार करते हुए जैन धर्म स्वीकार कर लिया उन्होने न केवल खान पान मे ही बल्कि समस्त जीवनचर्या को ही अहिसा के सिद्धान्त से ओतप्रोत कर डाला। कहते हैं कि तभी से उन्होने अपने आपको राजपूत कहना छोड कर ओसवाल कहलाना प्रारम्भ किया और उपासरा बनवा कर मूर्ति पूजा का पन्थ पकडा। फिर बाद मे तो कई मन्दिर बन गए, जिनकी सख्या एक सौ आठ तक पहुच गई। आज भी इनके खडहर उस समय का स्मरण कराते रहते हैं। अब उन्हे राजस्थान सरकार ने अपने सरक्षण मे ले लिया है।

वर्तमान मन्दिर अपने आप मे अनेक महत्वो का आगार है। प्राचीन तो वह है ही,

अनेक नवीनताओ के सम्मिश्रण से उसकी शोभा और भी अधिक निखर गई है। देशवासी जैन अजैन तो दर्शन करने आते ही हैं विदेशी पर्यटक भी देखने आते रहते हैं। वस्तुत मन्दिर के अधिष्ठायक देव, जो कि पूनिया बाबा के नाम से विख्यात हैं—बहुत चमत्कारी हैं। मन्दिर का तोरण अत्यन्त भव्य है। वि० स० १०३५ आषाढ शुक्ला १० आदित्यवार स्वातिनक्षत्र का उस पर लेख है।

पार्श्वनाथ की परम्परा के इतिहास मे मन्त्री उहड ने अपनी पुण्यवृद्धि के लिए एक नया मन्दिर तैयार करवाया और उसमे महावीर स्वामी की प्रतिमा विराजमान की। इसका समय भगवान महावीर के निर्वाण के ७० वर्ष बाद का बताया जाता है और इसकी प्रतिष्ठा रत्नप्रभसूरिश्वरजी ने कराई किन्तु इसका लेख नही है, हो सकता है उस समय लेख लिखने की प्रथा नही हो। इसके बाद जीर्णोद्धार हुए उसके लेख विद्यमान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मन्दिर भारत मे सब से पुराना है और भगवान महावीर की प्रतिमा बालू रेत की गाय के दूधसिंचित है। उस पर मोतियो का लेप कराया हुवा है—ऐतिहासिक प्रमाण भले ही न हो किन्तु पट्टावलियो से इस मन्दिर के प्राचीनता की पुष्ठि होती है।

इसके अतिरिक्त पार्श्वनाथ स्वामी का पहाडी पर एक विशाल मन्दिर भी बना और उसकी प्रतिष्ठा उपरोक्त आचार्य ने करवाई। इसका समय महावीर स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के सात वर्ष बाद का लिखा है। इस मन्दिर के कम्पाउण्ड मे सच्चायका देवी का मन्दिर बना कर स्थापना की गई। यह देवी उपकेशपुर के जैनो की गौत्र देवी थी।

महाराजा उपलदेव का बनाया हुआ पार्श्वनाथ के मन्दिर की तेरहवी शताब्दी तक ठीक हालत रही और सेवा-पूजा भी होती रही। उसके बाद यवनो का आक्रमण हुआ और उन्होने इस नगर के कई मन्दिर तोड-फोड कर नष्ट कर दिये। वहाँ के सघ ने महावीर मन्दिर के मूल गभारे की वेदी पर एक दीवाल बनाकर प्रतिमा की रक्षा की और इस आक्रमण के बाद वहाँ के जैन दूसरे प्रातो मे जा बसे। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इस नगर ने एक गाँव का रूप धारण किया और आज तो वहाँ पर एक भी जैन का घर नही है। पहिले जहाँ हजारो घर थे आज इस स्थिति मे क्यो ? इस को काल की कुटिलता ही कहना चाहिये।

वि० स० १९७२ मे श्री रत्नविजयजी महाराज के सदुपदेश से यहाँ एक छात्रावास खोला गया और छात्रावास मे रहने वालो के लिए स्कूल भी चालू हुआ जो आजपर्यंत चलता है। अब इस स्कूल मे मैट्रिक तक की पढाई होती है, राज्य सरकार से सहायता मिलती है। छात्रावास मे करीब १०० के ऊपर छात्र रहते हैं। यह छात्रावास जैन समाज की ओर से चल रहा है। प्रबन्धकर्ता फलौदी इत्यादि के जैन श्रावक हैं। छात्रालय स्थापित

होने के बाद मन्दिर की सेवा-पूजा का पूरा प्रबन्ध हो गया है। धर्मशाला व छात्रावास का विशाल भवन बने हुये हैं। यात्रियो को हर प्रकार की सुविधा मिलती हे और प्रतिवर्ष हजारो यात्री दर्शनो का लाभ लेते हैं। जोधपुर फलौदी के बीच यह तीर्थ आजाने से और रेल व बसे चलने से यात्रियो की सख्या दिनो-दिन बढ रही है। यह ओसवालो की उत्पत्ति का स्थान है। उनकी कुल देवी का मन्दिर हे। ऐतिहासिक एव दर्शनिक स्थान है, अत प्रत्येक जैन को यहाँ की यात्रा करने की उत्कठा रहती है। इस छात्रालय के पढे हुए विद्यार्थी आज अच्छी स्थिति मे है। कई व्यापार करते है, कई नोकरी। इस छात्रावास से निकले हुए विद्यार्थियो मे धार्मिक सस्कार जमे हुए हैं और जैन धर्म पर अटूट श्रद्धा है। पहले यहाँ की गायन मण्डली विख्यात थी और जैन महोत्सवो पर दूर-दूर जाया करती थी किन्तु अब ऐसा नही है। इसका कारण अब कोर्स इतना बढा दिया गया है कि गायन-नृत्य की शिक्षा वे प्राप्त कर ही नही सकते फिर भी सामायक प्रतिक्रमण प्रभुपूजा इत्यादि नित्य कार्यक्रम मे कोई कमी नही आई है।

सेवा सच्ची आराधना है

गणधर गौतम एक बार भगवान महावीर से पूछते हैं—"प्रभु, एक व्यक्ति आपकी सेवा करता है, आपका ही भजन करता है, उसकी साधना के प्रत्येक मोड पर आपका ही रूप खडा है, आपकी सेवा, दर्शन, भजन, ध्यान के सिवाय उसे जनसेवा आदि अन्य किसी कार्य के लिए अवकाश ही नही मिलता है।

दूसरा एक व्यक्ति है जो दीन-दुखियो की सेवा मे लगा है, रोगी और वृद्धो की सेवा करने मे ही जुटा है। वह आपकी सेवा-दर्शन-स्मरण-पूजा के लिए अवकाश नही पाता। उसके सामने तो एक ही काम है—जनसेवा! तो प्रभु, इन दोनो मे आप किसको धन्यवाद देगे ?"

प्रभु ने कहा—

"जे गिलाण पडियरई से धन्ने।"

—गौतम

अनेक नवीनताओ के सम्मिश्रण से उसकी शोभा और भी अधिक निखर गई है। देशवासी जैन अजैन तो दर्शन करने आते ही हैं विदेशी पर्यटक भी देखने आते रहते हैं। वस्तुत मन्दिर के अधिष्ठायक देव, जो कि पूनिया बाबा के नाम से विख्यात हैं—बहुत चमत्कारी हैं। मन्दिर का तोरण अत्यन्त भव्य है। वि० स० १०३५ आपाढ शुक्ला १० आदित्यवार स्वातिनक्षत्र का उस पर लेख है।

पार्श्वनाथ की परम्परा के इतिहास मे मन्त्री उहड ने अपनी पुण्यवृद्धि के लिए एक नया मन्दिर तैयार करवाया और उसमे महावीर स्वामी की प्रतिमा विराजमान की। इसका समय भगवान महावीर के निर्वाण के ७० वर्ष बाद का बताया जाता है और इसकी प्रतिष्ठा रत्नप्रभसूरिश्वरजी ने कराई किन्तु इसका लेख नही है, हो सकता है उस समय लेख लिखने की प्रथा नही हो। इसके बाद जीर्णोद्धार हुए उसके लेख विद्यमान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मन्दिर भारत मे सब से पुराना है और भगवान महावीर की प्रतिमा बालू रेत की गाय के दूधसिंचित है। उस पर मोतियो का लेप कराया हुवा है—ऐतिहासिक प्रमाण भले ही न हो किन्तु पट्टावलियो से इस मन्दिर के प्राचीनता की पुष्ठि होती है।

इसके अतिरिक्त पार्श्वनाथ स्वामी का पहाडी पर एक विशाल मन्दिर भी बना और उसकी प्रतिष्ठा उपरोक्त आचार्य ने करवाई। इसका समय महावीर स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के सात वर्ष बाद का लिखा है। इस मन्दिर के कम्पाउण्ड मे सच्चायका देवी का मन्दिर बना कर स्थापना की गई। यह देवी उपकेशपुर के जैनो की गौत्र देवी थी।

महाराजा उपलदेव का बनाया हुआ पार्श्वनाथ के मन्दिर की तेरहवी शताब्दी तक ठीक हालत रही और सेवा-पूजा भी होती रही। उसके बाद यवनो का आक्रमण हुआ और उन्होने इस नगर के कई मन्दिर तोड-फोड कर नष्ट कर दिये। वहाँ के सघ ने महावीर मन्दिर के मूल गभारे की वेदी पर एक दीवाल बनाकर प्रतिमा की रक्षा की और इस आक्रमण के बाद वहाँ के जैन दूसरे प्रातो मे जा बसे। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इस नगर ने एक गाँव का रूप धारण किया और आज तो वहाँ पर एक भी जैन का घर नही है। पहिले जहाँ हजारो घर थे आज इस स्थिति मे क्यो ? इस को काल की कुटिलता ही कहना चाहिये।

वि० स० १९७२ से श्री रत्नविजयजी महाराज के सद्उपदेश से यहाँ एक छात्रावास खोला गया और छात्रावास मे रहने वालो के लिए स्कूल भी चालू हुआ जो आजपर्यंत चलता है। अब इस स्कूल मे मैट्रिक तक की पढाई होती है, राज्य सरकार से सहायता मिलती है। छात्रावास मे करीब १०० के ऊपर छात्र रहते हैं। यह छात्रावास जैन समाज की ओर से चल रहा है। प्रबन्धकर्ता फलौदी इत्यादि के जैन श्रावक हैं। छात्रालय स्थापित

होने के बाद मन्दिर की सेवा-पूजा का पूरा प्रबन्ध हो गया है। धर्मशाला व छात्रावास का विशाल भवन बने हुये हैं। यात्रियों को हर प्रकार की सुविधा मिलती है और प्रतिवर्ष हजारों यात्री दर्शनों का लाभ लेते हैं। जोधपुर फलोदी के बीच यह तीर्थ आजाने से और रेल व बसें चलने से यात्रियों की संख्या दिनों-दिन बढ़ रही है। यह ओसवालों की उत्पत्ति का स्थान है। उनकी कुल देवी का मन्दिर है। ऐतिहासिक एवं दर्शनिक स्थान है, अतः प्रत्येक जैन को यहाँ की यात्रा करने की उत्कंठा रहती है। इस छात्रालय के पढ़े हुए विद्यार्थी आज अच्छी स्थिति में हैं। कई व्यापार करते हैं, कई नौकरी। इस छात्रावास से निकले हुए विद्यार्थियों में धार्मिक संस्कार जमे हुए हैं और जैन धर्म पर अटूट श्रद्धा है। पहले यहाँ की गायन मण्डली विख्यात थी और जैन महोत्सवों पर दूर-दूर जाया करती थी किन्तु अब ऐसा नहीं है। इसका कारण अब कोर्स इतना बढ़ा दिया गया है कि गायन-नृत्य की शिक्षा वे प्राप्त कर ही नहीं सकते फिर भी सामायक प्रतिक्रमण प्रभुपूजा इत्यादि नित्य कार्यक्रम में कोई कमी नहीं आई है।

सेवा सच्ची आराधना है

गणधर गौतम एक बार भगवान महावीर से पूछते हैं—"प्रभु, एक व्यक्ति आपकी सेवा करता है, आपका ही भजन करता है, उसकी साधना के प्रत्येक मोड़ पर आपका ही रूप खड़ा है, आपकी सेवा, दर्शन, भजन, ध्यान के सिवाय उसे जनसेवा आदि अन्य किसी कार्य के लिए अवकाश ही नहीं मिलता है।

दूसरा एक व्यक्ति है जो दीन-दुखियों की सेवा में लगा है, रोगी और वृद्धों की सेवा करने में ही जुटा है। वह आपकी सेवा-दर्शन-स्मरण-पूजा के लिए अवकाश नहीं पाता। उसके सामने तो एक ही काम है—जनसेवा! तो प्रभु, इन दोनों में आप किसको धन्यवाद देंगे?"

प्रभु ने कहा—

"जे गिलाणं पडियरई से धन्ने।"

—गौतम

उनके परिवार मे श्री हीराचन्दजी रत्नचन्दजी इत्यादि का इस तीर्थ के प्रति पूरा सहयोग एव श्रद्धा है।

इस प्रदेश मे पानी की कमी के कारण यात्रियो को सुविधा मिले इसके लिए एक बडा टाँका ३२ फुट गहरा जोधपुर के भण्डारी श्री उदयचदजी ने बनाया जिनके वशज श्री उमरावचदजी, इन्द्रचदजी इत्यादि हैं। इनका इस तीर्थ के प्रति प्रेम है और यथाशक्ति तन, मन, धन से सेवा करते हैं। वि० स० १९९२ मे इन्ही की ओर से ३५ वर्ष के बाद ध्वजा-दड चढाया। मदिरजी के परकोटे के बाहर अजैनो के ठहरने के लिए छोटी धर्मशाला व ऊपर ठहरने के लिए कमरा बनवाया।

श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर

श्री पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर के परकोटे के बाहर श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर पच कल्याण दृश्य सहित बनाने हेतु यति श्री नगविजयजी ने अपने प्रभाव से जोधपुर के महाराजा से भूमि प्राप्त कर मदिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा वि० स० १८९६ मे हुई। इस मदिर का परकोटा भी गढ के माफिक पक्का और मजबूत बना हुआ है। इसका पट्टा भी यतिजी के नाम बना हुआ मदिरजी मे मौजूद है।

जोधपुर निवासी सिंघवी श्री सुखमलजी ने परकोटे के बाहर एक कुआ बनाकर बहुत वर्षो पहिले तीर्थ को भेट किया। यही नही पास मे खुली भूमि भी भेट की, जिससे बगीचा लग सके। कर्मचारी व यात्रियो के ठहरने हेतु मकान बन सके। यह कुआ व भूमि अभी तक मदिर के कब्जे मे है।

दादावाड़ी

गुरुभक्त मेडता के भडगतीया परिवार ने धर्मशाला के अहाते मे १ दादावाडी बनाकर श्री सघ को वि० स० १९६५ के आसोज वदि १० मेले के दिन भेट की। इसकी प्रतिष्ठा १९६५ के जेठ सुदि १२ को हुई। इसमे दादाजी श्री जिनकुशलसूरीश्वरजी महाराज की चरणपादुका है जो श्री करणमलजी ने अपना द्रव्य खर्च कर बनाई। यही नही उन्होने इस तीर्थ की तन मन से जो सेवा की है वह अनुमोदनीय हैं।

श्री फलोदी पार्श्वनाथ के कई स्तवन प्राचीन मिलते हैं। श्री जिनप्रभसूरिरचित 'श्री फलवर्धीकल्प' मे लिखा है कि ६८ तीर्थों की यात्रा करने से जो फल मिलता है वह फलवर्द्धी पार्श्वनाथ की यात्रा करने से प्राप्त होता है। अब देखना यह है कि ६८ तीर्थ कौन से। अभी हाल मे 'समरो मत्र भलो नवकार' के स्तवन मे भी ऐसा कहा गया हैं 'अडसठ अक्सर एहना जानो अड़सठ तीर्थ सार' इसमे भी अडसठ तीर्थो की पुष्टि होती

श्री फलवृद्धि पार्श्वनाथजी का मदिर
मेडता रोड (राज०)

श्री फलवृद्धि पार्श्वनाथ तीर्थ
शान्तिनाथजी का मदिर
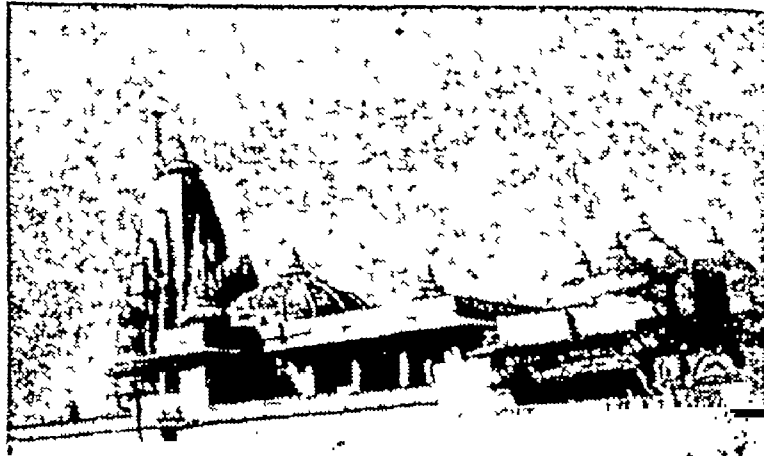
श्री रिखबदेवजी का जैन मदिर (बाजार मे)
मेडता सिटी (राज०)

है। इन अडसठ तीर्थों के विषय मे खोज की तो पालीतना से निकलने वाले मासिक कल्याण पत्र वर्ष १४ अक १ फागण २०१३ के पृष्ठ ७ मे श्रीमद् विजयलब्धि सूरीश्वरजी महाराज ने इन तीर्थों के नाम निम्न बताये हैं—

(१) शत्रुंजय (२) गिरनार (३) आबूजी (४) अष्टापद (५) सम्मेत-सिखर (६) मडपाचल (माडवगढ) (७) चडपाचल (८) अयोध्या (९) कली-कुंड पार्श्वनाथ (१०) नाकोडा पार्श्वनाथ (११) जीरावला पार्श्वनाथ (१२) वाराणसी (१३) गोडी पार्श्वनाथ (१४) नवपल्लव पार्श्वनाथ (१५) चिंतामणी पार्श्वनाथ (१६) द्राविड तीर्थ (१७) मुनी सुव्रत (१८) भाभा तीर्थ (१९) साँचोरी (२०) महावीर (२१) महुरी तीर्थ (२२) शेरीसा (२३) रावणतीर्थ (२४) अज्जारा पार्श्वनाथ (२५) वालेजा तीर्थ (२६) माला तीर्थ (२७) प्रतिष्ठानपुर (२८) अतरिक्षजी (२९) कुलपाकजी (३०) शुलाहारो (३१) उखखडीओ (३२) क्षत्रीकुंड (३३) शखेश्वरजी (३४) लोडण पार्श्वनाथ (३५) भटेवा पार्श्वनाथ (३६) सहस्रफूणा पार्श्वनाथ (३७) वरकाणा पार्श्वनाथ (३८) वामनवाडजी (३९) पचासरा पार्श्वनाथ (४०) घृतकल्लोल पार्श्वनाथ (४१) अवती पार्श्वनाथ (४२) थभण पार्श्वनाथ (४३) नवखडा पार्श्वनाथ (४४) सप्त-फणा पार्श्वनाथ (४५) आशापुरी (४६) केरडा पार्श्वनाथ (४७) कोशवी (४८) कोसलपुर (४९) मक्षीजी (५०) काकदी (५१) भद्रपुरी (५२) सिंहपुरी (५३) कपीलपुरी (५४) रत्नपुरी (५५) मथुरापुरी (५६) राजग्रही (५७) शोरीपुरी (५८) हस्तीनागपुर (५९) तलाजा (६०) कदबगिरि (६१) बगडी (६२) बडनगर (६३) धुलेवा (६४) लोहीया (६५) बाहुबलीजी (६६) महुदेवा (६७) पुंडरीक और (६८) गोतम तीर्थ।

खैर कुछ भी हो फलवर्धी पार्श्वनाथ एक प्राचीन एव ऐतिहासिक तीर्थ है। जो प्रतिमाजी इस मन्दिर मे विराजमान है उसके लिए 'श्री फलोदी पार्श्वनाथ कल्प' जो वि० स० १३८९ मे श्री जिनप्रभसूरिजी ने बनाया उसमे लिखा है कि 'श्री फलोदी चैत्य मे विराजमान पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके मैं यह कल्प लिख रहा हूँ। सवा लाख देश मे मेडता नगरी के समीप मे वीर मदिर वगैरह अनेक छोटे मोटे देवालयो मे शोभित फलोदी नाम का नगर है वहाँ पर फलवर्धी नाम की देवी का ऊँचा शिखर वाला मन्दिर है।'

ऋद्धि से समृद्ध यह नगर कालक्रम से उजाड जैसा हुआ। फिर भी वहा कई महाजन लोग आकर बसे, उनमे श्री माल वश मे उत्तम और धर्मी लोगो मे अग्रगामी धाधल नाम का एक उत्तम श्रावक रहता था। उसी तरह का गुण वाला दूसरा ओसवाल कुलरूपी आकाश मे

चन्द्रमा के समान शिवकर नाम का श्रावक भी रहता था। इन दोनो श्रावको के पास बहुत सी गाएँ थी। इनमे धाधल की एक गाय तुरन्त व्याही हुई—जगल मे चर कर आने पर शाम को दूध नही देने लगी। तब धाधल ने चरवाहे से शाम को दूध न देने का कारण पूछा। उसने सौगन्धपूर्वक कहा कि मैं तो गाय का दूध दुहता नही हू। गाय कैसे खाली हो जाती है ध्यान रखकर पता लगाऊँगा।

एक समय उसने देखा कि गाय टीबे के ऊपर वेर के झाड के नीचे अपने आप से चर कर दूध गिरा देती है।

यह सारी घटना ग्वाले ने सेठ से कही। सेठ ने विचार किया कि अवश्य यहाँ कोई देवता की मूर्ति है। कल वहाँ पर पता लगाएंगे, ऐसा विचार कर रात्रि मे सेठ जब सो गया तो अधिष्ठायकदेव ने स्वप्न मे कहा कि जिस स्थान को तू खोदने का विचार करता है वहाँ पर देहरी मे सप्तफणा सहित श्री पार्श्वनाथ भगवान की देवाधिष्ठित प्रतिमाजी विराजमान हैं। तू उसे सावधानीपूर्वक बाहर निकाल कर पूजन कर। यह सारा स्वप्न प्रात. उसने अपने मित्र शिवकर से कहा। तब दोनो कौतूहल मन वाले श्रावक उस स्थान पर आकर बलि वगैरह देकर टेकरी की भूमि खुदवाई तो देहरी सहित यह प्रतिमा प्रगट हुई। उसके बाद दोनो श्रावक उत्साहपूर्वक नित्य पूजा करने लगे। कुछ समय के बाद एक दिन फिर अधिष्ठायकदेव ने धाँवल सेठ को स्वप्न मे कहा कि इसी स्थान पर तुम मन्दिर बनाओ। यह सुनकर दोनो ने उत्साहपूर्वक मन्दिर के नव निर्माण का कार्य शुरू किया। जब अग्र मडप बन कर तैयार हो गया तब अर्थाभाव के कारण कार्य रुक गया। श्रावक दु खी हुए तब अधिष्ठायकदेव ने फिर प्रकट होकर कहा कि आज से सवेरे कौआ बोले उस समय भगवान के आगे तुम सोना मोहरो का स्वस्तिक नित्य पाओगे। उसको लेकर मन्दिर का कार्य पूर्ण करो मगर यह बात किसी को कहना नही, न किसी को यह देखने देना। सेठ ने वैसा ही किया। पाँच मडप बन गए। एक दिन सेठ के लडके ने छिप कर सोना मोहरो का स्वस्तिक लेते हुए देख लिया तब से सोना मोहरो का स्वस्तिक बद हो गया। अधिष्ठायक देव ने यह भी जान लिया कि मिथ्यातियो का रोज उत्पात होगा, अत द्रव्य देना बद कर दिया और मन्दिर अपूर्ण अवस्था मे रह गया। बाद स० ११८१ मे श्री धर्मघोष सूरिजी यहाँ पधारे तब सघ को उपदेश देकर मन्दिर का कार्य पूर्ण कराके स० ११८१ मे मूलनायक भगवान श्री पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा कराई।

अब पाठक समझ गए होगे कि ११ वी बारहवी शताब्दी मे यह फलवर्धी नगर कितना वडा होगा, कितने जैन परिवार इसमे निवास करते होगे यही कारण मन्दिर वनाने का है और उसमे जो प्रतिमा विराजमान है उनका अतिशय चमत्कार है। यहा के

त्यागी वर्ग पधारे अट्ठम तप आदि किए, कई सघ आए उसका पूरा विवरण देने का स्थान नही है ।

यहा वर्ष मे दो मेले भरते हैं ।

(१) पोष वदि १० (पार्श्वनाथ भगवान के जन्म-कल्याणनिमित्त) इस मेले मे आसपास के गावो व कस्बो के जैन यात्री आते हैं जिसकी सख्या २००–३०० तक हो जाती है । दिन मे बडी पूजा व रात को प्रभु-भक्ति बडे ठाठ से होती है । दूसरे दिन यात्री वापिस चले जाते हैं ।

(२) आसोज वदि १० का यह मेला बहुत बडा मेला होता है । आसोज वदि १० का मेला कब और क्यो प्रारम्भ हुआ इसका इतिहास नही मिलता किन्तु सैकडो वर्षो से इस तिथि का मेल होता है । इसमे जैन यात्रियो की सख्या एक हजार से ज्यादा नही होती किन्तु बाहर से दुकानदार इत्यादि बहुत आते हैं । यह मेला आसोज वदि १० और ११ को तो इतना भरता है कि जाने आने की जगह नही मिलती । इस दिन बडी पूजा रथयात्रा प्रभु भक्ति होती हैं ।

यात्रियो की सुविधा के लिए लगभग ३०० कमरे व अलमारिया बनी हुई हैं । फिर भी मेले के अवसर पर तो दिक्कत ही रहती है । इस तीर्थ पर इन कमरे बनाने वालो का हक रखा गया है अत इने गिने सज्जनो को ही सुविधा मिलती है । आम तौर पर यात्री कष्ट ही पाते हैं । दूसरी बात यह भी है कि मन्दिर के अहाते मे दुकाने लग जाने से यात्रियो को जाने आने मे भी असुविधा रहती है । इस तीर्थ के व्यवस्थापको ने इसको आय का साधन बना लिया है और इसी आय से तीर्थ का कार्य चलता है इसलिए ऐसे कई सुझाव आने पर भी इस ओर कोई ध्यान नही दिया जाता । यहा की व्यवस्था मेडता शहर का मूर्तिपूजकसघ करता है । न यहाँ कोई विधान बना हुआ है न मेले के मौके पर कोई आम सभा ही होती है । कुछ वर्षो पहले ज्यादा होहल्ला होने से ५-६ वर्ष से वार्षिक आय व्यय की रिपोर्ट प्रकाशित हो जाती है और इससे सतोष कर लिया जाता है ।

इतना प्राचीन व चमत्कारी तीर्थ होने पर भी यहाँ यात्रियो की सख्या नही के बराबर है यानि आसपास के गाव व कस्बो के अतिरिक्त दूसरे यात्री कम आते हैं । सघ तो यहा बहुत ही कम आते हैं इसका कारण यही है कि न तो इसका प्रचार होता हे न आने वालो को जैसी सुविधा मिलनी चाहिये मिलती है । अत ज्यादा से ज्यादा यात्री व सघ यहाँ आएँ ऐसी व्यवस्था होना आवश्यक है ।

बीकानेर निवासी श्री अजीतमलजी पारख की धर्मपत्नी ने इस तीर्थ पर बिजली की रोशनी का प्रबन्ध किया जो सराहनीय है । आपकी इस तीर्थ के प्रति पूर्ण श्रद्धा व भक्ति है ।

इस फलोदी कस्बे मे जहाँ जैनो के सैकडो परिवार रहते थे ग्राज एक भी घर नही है। यह घटना चक्र सब तीर्थो पर एकसा है। इसका क्या कारण है ? समझ मे नही आता। अनुमान ऐसा है कि यहाँ रोजगार धन्धा नही होने से यहाँ के निवासी दूसरे प्रान्तो मे जाकर बस गए फिर भी उन्हे अपनी जन्मभूमि के लिए गौरव है और समय समय पर ऐसे तीर्थो के लिए हजारो नही लाखो रु० देते हैं, अन्यथा ऐसे तीर्थो की आज ऐसी जाहो-जलाली नही रहती। अधिष्ठायकदेव यहाँ का सबल है।

पहले यहाँ एक पार्श्वनाथ छात्रावास स्थापित किया गया था और कई वर्ष चला भी, किन्तु कुछ उन्नति नही कर सका। छात्रावास के प्रबन्ध हेतु पूज्य आचार्य श्री जिनहरिसागर-सूरीश्वरजी महाराज व कविन्द्रसागरजी महाराज ने काफी प्रयत्न किया। पूज्य हरिसागर जी महाराज साहिब का स्वर्गवास यही हुआ। जिसकी यादगार मे एक छत्री व कुछ भूमि मे मकान बनाए गए। उसमे स्कूल व छात्रावास का कार्य होता है।

क्रोध राक्षस

क्रोध राक्षस से भी भयकर है। राक्षस तो दूसरो का ही रक्त पीता है, परन्तु क्रोध तो अपना और पराया दोनो का रक्त पीता है। कहते है, राक्षस की उपस्थिति एव प्रतीति रात्रि मे होती है, परन्तु क्रोध की तो रात्रि और दिन दोनो समय ही नृत्य क्रिया होती रहती है।

प्राचीन जैन तीर्थ श्री कुंभारियाजी

ले० श्री चदूलाल लल्लू भाई अबाजी
हिन्दी अनुवादक—प्रतापचद आर० शाह (गोहिली)

एक हजार वर्ष प्राचीन श्री कुम्भारियाजी जैन तीर्थ राजस्थान, गुजरात राज्य के बनास काँठा जिले के दाता तालुके मे आया हुआ है।

यह तीर्थ आबू रोड स्टेशन से १५ मील दूर प्रसिद्ध यात्राधाम श्री अबाजी से १ मील की दूरी पर है, पालनपुर मे ४२ मील तथा खेड ब्रह्मा से ३५ मील पर है। यहाँ आने के लिए अबाजी से एस०टी० की बसे चालू हैं तथा वाहन वाले भी, पक्की सडके होने से, चारों ओर से विना असुविधा के यहाँ की यात्रा का लाभ ले सकते हैं।

यह तीर्थस्थान समुद्र की सतह से १७०० फीट की ऊँचाई पर है। चारो ओर पहाडियाँ तथा घनी झाडियाँ हैं, जगलो के मध्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य से घिरा हुआ, यह स्थल अति मनमोहक है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद तथा आत्मा को अलौकिक शान्ति देने मे समर्थ है।

यहाँ की कार्य-व्यवस्था जैनो की सुप्रसिद्ध सस्था सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी के कर्मठ कार्यकर्ताओ के नेतृत्व मे चलती है, और मदिरो मे नित्य पूजा आदि पेढी की तरफ से होती है तथा दर्शनार्थी यात्रियो के लिए ठहरने की, भोजन की प्रशसनीय सुव्यवस्था है। यहाँ सब मिलाकर ५ जिन मदिर हैं—प्रथम जिन मन्दिर श्रीनेमनाथ प्रभु का है। यह बहुत भीमकाय एव शिल्प-सौन्दर्य से सुसज्जित है।

दूसरा जिनालय भी इसके बगल मे ही है जो चरम तीर्थपति श्रीमहावीरस्वामीजी का है। तीसरा मदिर श्रीपार्श्वनाथस्वामीजी का, चौथा मन्दिर श्रीशान्तिनाथ प्रभु का, तथा पाँचवाँ जिनालय श्रीसभवनाथ प्रभु का है।

ये पाँचो जिनालय शिखरबद्ध, आमूलचूल सगमरमर के पत्थर से बने हुए हैं।

श्रीसभवनाथ प्रभु के जिनालय को छोड कर सभी जिनालयो मे चतुर्विंशतिदेव कुलिकाएँ (चौईस देरियाँ) हैं।

सभी जिनालयो के सुरक्षित, मजबूत परकोटा बना हुआ है तथा वे उत्तराभिमुख हैं।

इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) प्रथम श्री नेमीनाथस्वामीजी के प्रमुख जिनालय मे भगवान की अलौकिक, विशाल, नेत्रानन्दकारी, चमत्कारी जिनप्रतिमा है तथा मन्दिर के शिखर व मण्डोवर पर बहुत ही सुन्दर कलापूर्ण नानाविध देव-देवियो तथा यक्ष-यक्षिणियो की विशाल मूर्तियाँ हैं। उनसे नीचे के भाग मे सुन्दर गजमाला का वलय है जिससे शिखर के बाहर का दृश्य बहुत ही मनोमुग्धकारी है।

मन्दिर मे प्रवेश करते ही श्री नेमीनाथस्वामी के दर्शन से आत्मा जाग उठती है। प्रतिमा बहुत ही देदीप्यमान व आत्मा को तृप्ति देने वाली है। गर्भगृह के बाहर २ कायोत्सर्ग मुद्रा स्थित श्री जिनबिम्ब भी बहुत ही सुन्दर हैं।

तदतिरिक्त १७० जिनेश्वर का पट्ट भी बेजोड है।

सभा-मण्डपो मे तथा रग-मडप मे स्तम्भो पर तथा गुम्बद मे सुन्दर कलापूर्ण ढग से १४ स्वप्न, ८ मगल तथा अन्य किन्नरियाँ व विद्याधरियाँ तथा अनेक युग्मो की नयनाकर्षक ढग से पत्थर मे खुदाई हुई है।

इस मन्दिर के शिलाक्षरो के अनुसन्धान से हम इस तथ्य को खोज सके हैं कि य जिनालय स० ११९४ के समकाल मे बने व वादिदेवसूरि के करकमलो से प्रतिष्ठित हुए तथा इनका निर्माण-कार्य मन्त्री श्री पासिल ने करवाया। यहाँ अतीत मे आरासणा नाम की सुन्दर नगरी थी जो १३५६ मे हुए शिल्पद्रोही अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण द्वारा ध्वस की गई तब से यह स्थान निर्जन हो गया।

तत्पश्चात स० १६७५ मे सुप्रसिद्ध आचार्य देव श्रीविजयहीर सूरीश्वर के समय मे पुनरोद्धार हुआ है तथा भट्टारक श्री देवसूरीश्वर व प० कुशलसागरजी गणी ने स० १६७५ के माघ शुक्ला चतुर्थी शनिवार को पुन प्रतिष्ठा की।

(२) दुसरा श्री महावीर का जिनालय भी कला के क्षेत्र मे अपना अद्वितीय गौरव रखता है। इस मदिर की कलाकृतिया देलवाडा के मन्दिरो की कलाकृति जैसी गौरवपूर्ण हैं। मन्दिर की सुन्दरता का वर्णन लेखनी से करना कठिन है। इस मन्दिर मे भगवान के पाद-पद्म के नीचे देवी की मूर्ति है जिसके नीचे शिलालेख मे स० ११२८ को प्रतिष्ठा का उ लेख है अत यह मन्दिर करीब नौ शताब्दी पुराना है।

इस मन्दिर के स्तम्भो पर नृत्य की अनेक मुद्राओ मे देवबालाएँ तथा अन्य शिल्प के सर्वोत्कृष्ट दृश्य हैं। गुम्बद की छत मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म खुदाई हुई है जो देखकर मन मुग्ध हो जाता है। इसमे प्रत्येक ऐतिहासिक घटनाएँ तथा चोबीसो तीर्थंकरो की बाल्यवय मे उनकी माताओ सहित वात्सल्यमयी मूर्तिया तथा श्रीपार्श्वनाथ-चरित्र, चौदह स्वप्न जन्मोत्सवादि पचकल्याणक तथा कमठोपसर्ग आदि सुन्दर ढंग से सगमरमर मे खुदे हुए

हैं। इस मन्दिर को भी यवनो ने क्षति पहुँचाई थी किन्तु पुन सवत १६७५ मे प्रतिष्ठा व मरम्मत हो चुकी है।

(३) तीसरा जिनमन्दिर श्री पार्श्वनाथ स्वामीजी का है। वह भी कलामय, भव्य व विशाल है। मदिर मे रगमडप, सभामडप, देवकुलिकाएं तथा चौकियाँ आदि की रचना सुन्दर है तथा गर्भगृह मे मूलनायक पदस्थ श्री कलिकाल कल्पतरु श्री पार्श्वनाथ प्रभु की नयनाभिराम मूर्ति है।

सभामण्डप मे बडे बडे दो कायोत्सर्ग मुद्रा मे जिनविम्ब हैं। उनके पाद-पीठ पर ११७६ के शिलालेख हैं।

इस मन्दिर के समामण्डप के स्तम्भो पर गुम्बदो मे तथा तोरणो मे एव दोनो तरफ की बीच की देवकुलिकाओ के द्वार व चौकी मे बहुत चित्ताकर्षक खुदाई का कार्य हुआ है।

इस मन्दिर की भी स० १६७५ मे पुन प्रतिष्ठा हुई है।

(४) चौथा श्री शाँतिनाथ भगवान का जिनालय है जिसके गुम्बद स्तम्भ तोरन आदि की रचना श्री महावीर स्वामीजी के मन्दिर से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसमे भी देव-कुलिकाओ मे १०८७ के तथा १११० के तथा ११३८ के शिलालेख हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी जिनालयो से यह प्राचीन है।

(५) पाँचवाँ जिनालय श्री सभवनाथ स्वामी का है जो कद मे छोटा व साधारण ढग से बना हुआ है। इसका निर्माण किसी जैन-युगल ने करवाया है। ऐसी किंवदन्ती है मगर यह कहने मे असमर्थ हैं कि इसका निर्माण कब और किसने कराया कारण कि इसके लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नही हो सके हैं।

× × × ×

इन अन्वेषणो के बाद हम यह दृढ विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इन जिनालयो की प्राचीनता एक हजार वर्षों से भी ज्यादा है। भूतकाल के अवशेषो से यह भी ज्ञात होता है कि यहाँ पर समृद्ध, वैभवपूर्ण आरासणा नामक नगरी थी एव आबू के निकट भी चन्द्रावती नाम की अति समृद्ध, गौरवपूर्ण विशाल नगरी थी।

उस समय गुजरात मे सोलकी राजाओ का राज्य-शासन था तथा उनके मन्त्रियो द्वारा इन प्रदेशो की शासन-व्यवस्था चलाई जाती थी तथा इन मन्दिरो का निर्माण १०वी शताब्दी से १३वी शताब्दी के मध्य काल मे हुआ। उस समय के महामन्त्री श्री विमलशाह तथा गोगा तथा श्री पासिल आदि ने इनका निर्माण करा कर प्रतिष्ठा कराई है।

सक्षेप मे सभी जिनालयो का निर्माण विमलशाह या किसी भी अन्य १ ही मन्त्री ने करवाया हो ऐसा ज्ञात नही होता। काल के क्रूर प्रहारो ने इनकी जाहोजलाली ज्यादा
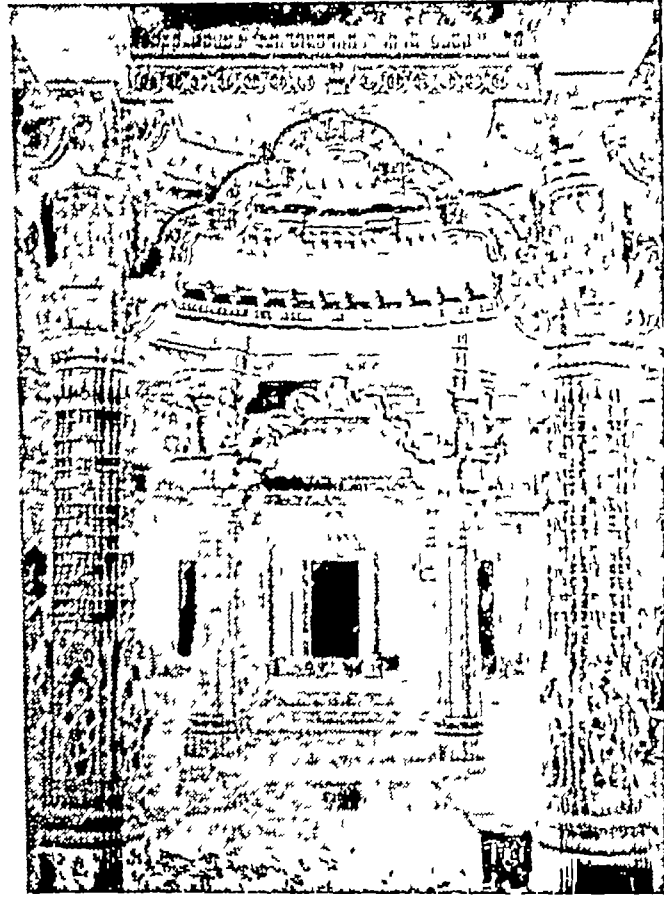
श्री आबू देलवाडा जैन मंदिर
श्री विमलवसहि मंदिर का दृश्य

श्री आबू देलवाडा जैन मंदिर लूणवसहि
नौचोकी के खुदाई के स्तम्भ
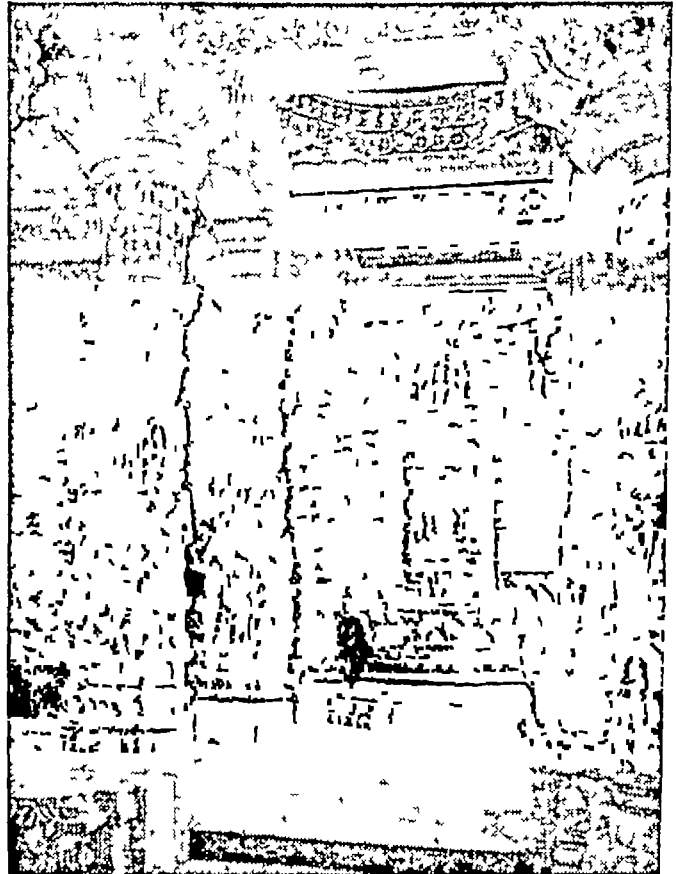
समय तक नही रहने दी और यवनो के आक्रमण से ये स्थान निर्जन हो जाने के बाद पुन: वस नही सके। सवत् १६७५ मे पुन प्रतिष्ठा हो चुकी थी मगर घने जगल व पहाडियो से घिरे होने से यातायात की असुविधाओ से इनका सम्पर्क सर्वसाधारण से नही हो सका, अत ये उपेक्षित ही रहे। पिछले ४५ वर्षो से इनकी व्यवस्था सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी ने स्वय सँभाली और बहुत ही सराहनीय परिवर्तन लाए हैं। लाखो की लागत से सुन्दर मरम्मत करवाकर अनेक आधुनिक सुविधाओ से सजाया है एव यातायात के भी अनेक साधन प्राप्त हैं। दर्शनार्थी यात्रियो के लिए सुन्दर धर्मशाला व भोजन की सुन्दर सुविधा है। बिना कठिनाई से यात्रा हो सकती है। ये जिनमन्दिर देलवाडा की कला के साथ सन्तुलन करने यो य हैं। विशेष ज्ञान के लिए सुप्रसिद्ध यशोविजयजी जैन ग्रथमाला मे प्रकाशित ग्रथ कुँभारियाजी उर्फ आरासणा तीर्थ पुस्तक से पढ सकते हैं। अस्तु।

जो वृद्ध, रोगी और पीडितो की सेवा करता है मैं उसे ही धन्यवाद का पात्र मानता हूँ।

विवेगे धम्म माहिए

विवेक ही धर्म है।

—महावीर

•••

युद्ध क्षेत्र मे विजय प्राप्त करने वाला वीर है, सिंह का शिकार करने वाला वीर है परन्तु जो अपने स्वय पर (इन्द्रियो पर) विजय प्राप्त कर लेता है वह वीरो का भी वीर, महावीर है

—हेरडर

•••

तुम ही भारत हो, अपने को सुधारलो भारत सुधर जाएगा।

—गाँधी

श्री ग्राबू देलवाडा जैन मदिर
श्री विमलवसहि मदिर का दृश्य
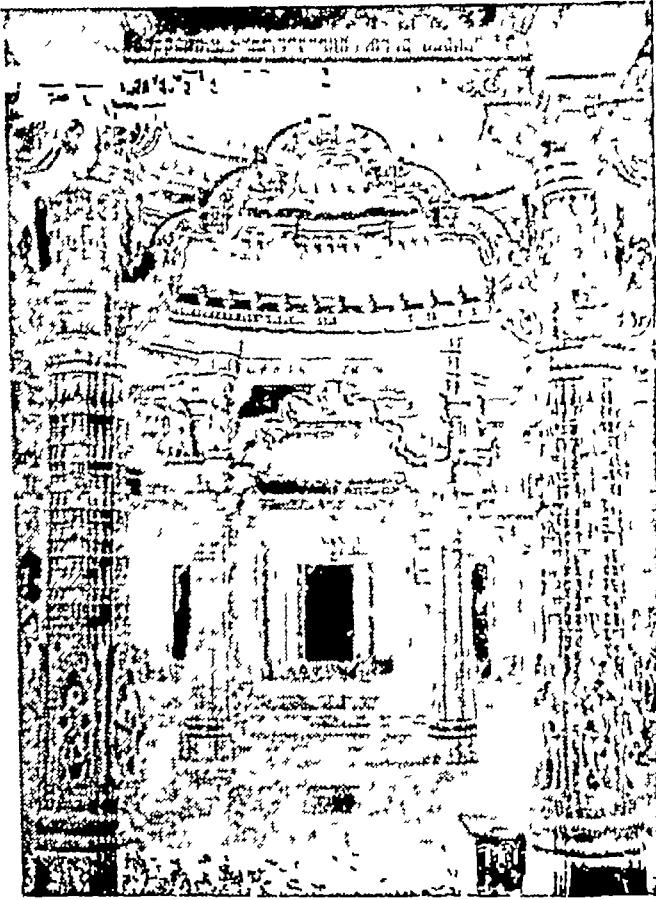
श्री ग्राबू देलवाडा जैन मदिर लूणवसहि
नौचोकी के खुदाई के स्तम्भ
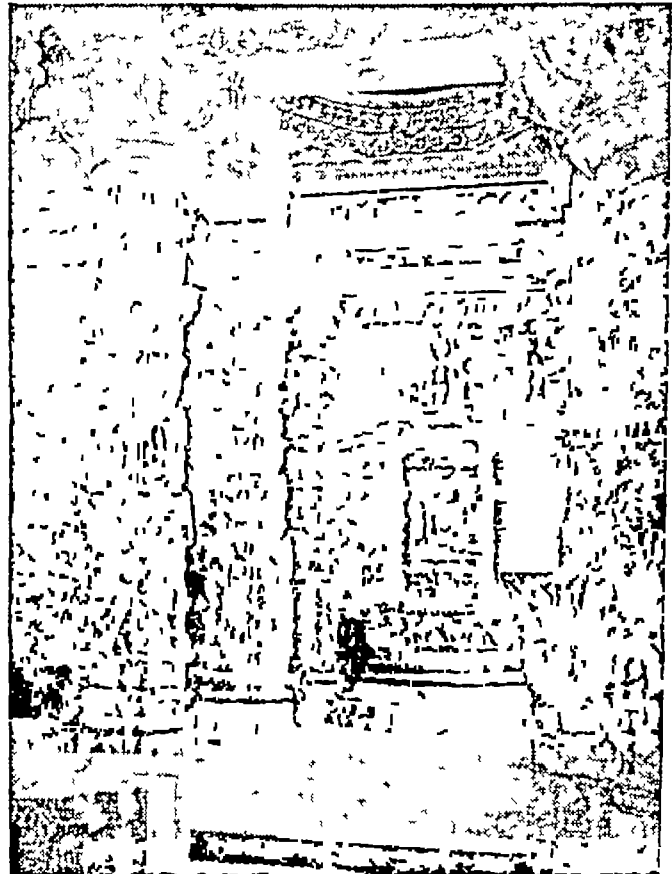
देलवाड़ा आबू के जैन-मन्दिर

ले० जोधसिह मेहता, बी ए, एलएल बी., आर ए एस (रिटायर्ड), चीफ
मैनेजर, देलवाडा जैन श्वेताम्बर मन्दिर, माउन्ट आबू

आबू के प्रख्यात मन्दिरो को कौन नही जानता ? भारत के ही नही वल्कि भारत के बाहर विदेशो से भी सैकडो यात्री प्रति वर्ष यहा के कलात्मक, अद्भुत देलवाडा के जैन मदिरो को देखने आते हैं और इनकी अनुपम श्वेत सगमरमर पर अकित नाना प्रकार की देव-देवियो, पशु-पक्षियो और पुष्प-पत्तियो की मनमोहक आकृतियो को देख कर मुग्ध हो जाते हैं। कुशल कलाकारो ने जो भक्तिभाव, नृत्य करती हुई देवाङ्गनाओ मे और वाजित्र बजाते हुए उल्लसित देवो मे प्रदर्शित किया है, उसको निहार कर प्रतीत होता है कि देवी-देवता साक्षात् स्वर्ग से उतर कर ही यहा न आ गए हो ? ऐसे अलौकिक और अद्वितीय मन्दिरो के सूत्रधारो ने अपना नाम सर्वदा के लिए अमर कर दिया है और इनके साथ-साथ इनके निर्माणकर्त्ता भी सदैव के लिए ससार मे अपना यश-गौरव-पुण्य के रूप मे आज भी जीवित हैं। आबू देलवाडा मे वैसे तो पाच-छ. मन्दिर हैं परन्तु उनमे से दो मन्दिर वहुत ही प्रसिद्ध हैं जिनके नाम 'विमल-वसहि' और 'लूण-वसहि' हैं।

विमल-वसहि

विमल-वसहि को गुजरात के राजा भीमदेव प्रथम के मन्त्री पर विमलशाह ने सन् १०३१ ईस्वी मे निर्माण कराया था। विमलशाह के नाम से, विमल-वसहि अर्थात् विमलशाह का मन्दिर प्रख्यात हुआ। इस मन्दिर का शिल्पकार गुजरात के बडनगर के पास एक गाँव का रहने वाला था जिसका नाम कीर्त्तिधर था। मन्त्री विमलशाह बडा पराक्रमी, वीर और महान् योद्धा था। वह राजा भीमदेव का सेनापति भी था। कई समराङ्गणो मे विजय प्राप्त करने के बाद, वह आबू-रोड के पास चन्द्रावती का शासक बन कर रहा था। यहा पर विमलशाह के आचार्य श्री धर्मघोषसूरि के सान्निध्य मे आने पर, इनके सदुपदेश से, पूर्वार्जित पाप-कर्मों के प्रायश्चित रूप मे, ऐसा अनोखा, सुन्दर और स्वर्गीय रचना का आविर्भाव हुआ जो अद्यावधि भी, विश्व के व्यक्तियो के मन को विमोहित करता है। इसके निर्माण मे १४ वर्ष लगे और १५०० कारीगरो एव १२०० श्रमिको ने अपना योगदान दिया। सुकोमल और स्वच्छ सगमरमर आबू-रोड के पास, आरासुर पर्वत से, हाथियो की पीठ पर आया और प्रसिद्ध सूत्रधार कीर्त्तिधर ने, इन पर सुन्दर कलाकृतियो को

अँकित करने के लिए, वृक्षो की छाया मे बैठ कर नमूने (डिजाइन) बनाकर, कारीगरो को दिए जिससे ऐसा कलात्मक उत्कृष्ट देवालय बन पाया। इसके निर्माण मे, कहा जाता है कि १८ करोड और ५६ लाख का सद्-व्यय हुआ।

इस मन्दिर की कलाकृतियो का वर्णन करना, कोई सहज बात नही है। इसका पूरा परिज्ञान तो, दर्शन-मात्र से ही हो सकता है। मन्दिर के भीतर स्तम्भो, छतो, तोरणो और दीवारो पर, प्रचुर मात्रा मे ऐसी भरपूर नक्काशी का काम बना हुआ है कि नजर एक जगह नही ठहर पाती। प्रत्येक कलाकृति मे, विविध प्रकार के कमल के पुष्प, पत्तियाँ, कलियाँ, हाथी-घोडे और नरनारियो की पक्तियाँ एव हाव-भाव से युक्त, अपनी कमनीय कमर को झुकाती हुई नर्तकियाँ और देवागनाएँ आदि दृष्टिगोचर होती है। इनके साथ-साथ, भक्तिभाव दिखलाते हुए जैन श्रावक और श्राविकाएं, भरत-बाहुबली का युद्ध, जिनेश्वरदेवो के समवसरण रचनाएँ तथा उनके जन्म-कल्याणक के दृश्य, आर्द्रकुमार और नेमिकुमार के जीवन-प्रसग आदि जैन शास्त्रो मे वर्णित कई सुन्दर घटनाएं श्वेत पाषाण पर अकित की हुई हैं। यही नही, हिन्दू धर्मशास्त्रो और पौराणिक कथाओ की, जैसे कालिया नाग-दमन, हरिण्यकश्यप-वध (नरसिह-अवतार), लक्ष्मी, सरस्वती, नाग-कन्या (पाताल-देवी) और अन्य शक्ति और विद्यादेवियो की मनमोहक कला-कृतियाँ भी इस मन्दिर मे पाई जाती हैं।

मन्दिर के मुख्यद्वार के सामने रगमण्डप, नो चौकी, गूढ-मण्डप, मूल-गभारा और गूढ-मण्डप के उत्तर तथा दक्षिण बाजू के खुले मण्डप (चौकियाँ), कुल मिलाकर सारा भाग ९८ फीट लम्बे और ४८ फीट चौडे आङ्गन पर, क्रोस की शकल की तरह, दिखाई पडता है। आगन के चौतरफ परिक्रमा है और परिक्रमा मे इस समय ५९ देवरियाँ हैं। ५४ देवरियाँ पुरानी थी। वि० स० २००७ से २०१९ के बीच मे जब सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी, अहमदाबाद ने जीर्णोद्धार करवाया तब चार देवरियाँ बनी और छ पुरानी देवरियो का जो नवीनीकरण हुआ तथा प्राचीन भगवान् ऋषभदेव की बडी देवरी के बाद मे दो दरवाजे बन गए जिससे दूसरे दरवाजे का रूप, नई देवरी का बन गया। दस देवरियो के सामने की छतो पर जो नई कलाकृतियाँ बनी उनमे और पुरानी खुदाई के काम मे, कोई अन्तर पाया नही जाता सेठ कस्तूरभाई लालभाई, प्रमुख आनन्दजी कल्याणजी की पेढी ने इस जीर्णोद्धार मे पूरी रुचि दिखलाई और शिल्पकार भी सोमपुरा का श्री अमृतलाल मूलचन्द त्रिवेदी था जिसने, इस आधुनिक युग मे, पुरानी शैली के अनुसार ही, बडी निपुणता से अपनी कला-कौशल का परिचय दिया है। विमल-वसहि के अन्तिम जीर्णोद्धार मे कुल १३,८२,७५१ रुपये खर्च हुए है।

परिक्रमा—सबसे प्रथम परिक्रमा की कलाकृतियाँ लेते है। देवरी सख्या २, ३, ११

२६, ३१, ४३, ४४, ४५, ४७, ४८, ४६, ५७, ५८ और ५६ के दरवाजो के पास, पूजा की सामग्री धारण किए हुए जैन श्रावक और श्राविकाओ की उभरी हुई आकृतिया खुदी हुई हैं। देवरी स० ७ के सामने दूसरी पक्ति मे तीन पट्टो मे विभक्त एक कडी नजर आती है जिस पर कमल-कलियो, हीरो और मनुष्यो की मालाए खुदी हुई हैं। देवरी स० ८ की पहली श्रेणी मे जिनेश्वर देव की चौमुख समवसरण रचना है। देवरी स० ९ की प्रथम पक्ति की छत पर तीर्थंकर भगवान के पचकल्याणक (च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष के सस्कार) दिखलाए गए हैं और देवरी स० १० के सामने की छत पर बाईसवें तीर्थकर नेमिनाथ के जीवन के दृश्य कृष्ण और गोपियो की उनके साथ क्रीडा, कृष्ण की आयुधशाला मे नेमि का शख बजाने और दोनो के बल-परीक्षा के स्वरूप, राजा उग्रसेन के महलो मे नेमि के लिए विवाह-मण्डप, पशुओ का वाडा, विवाह-सवारी, दीक्षा-सवारी एव केवल ज्ञान सस्कार आदि बडे सुन्दर ढग से खुदे हुए हैं। देवरी स० ११ की छत पर गाय का वाहन धारण करने वाली और चौदह हाथ वाली विद्या देवी महारोहिणी की मूर्ति है। देवरी स० १२ के सन्मुख सोलहवे तीर्थकर भगवान शान्तिनाथ के पचकल्याणक और इनके पूर्व भव का जीव राजा मेघरथ का कबूतर की रक्षा निमित्त अपने शरीर का मास देने की घटना अकित है। नव-निर्मित देवरिया १८ से २३ तक हैं जो कि रचना और शिल्प की सूक्ष्मता मे प्राचीन स्थापत्य कला के नमूनो से मिलती-जुलती हैं। इनमे से देवरी स० २० के आगे, दूसरी पक्ति मे शखेश्वरी देवी की देवरी स० २३–२४ के पीछे प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की २४६० वर्ष पुरानी प्रतिमा खडी समवसरण रचना, विक्रम सवत् १६६१ की निर्मित, मुगल सम्राट अकबर के धर्मगुरु जैन आचार्य श्री हरिविजय सूरि और स्थानीय व्यतर वालि-नाह की मूर्तिया हैं तथा इसके पास ही प्राचीन मूर्तियो का एक भण्डार है। देवरी स० २५ मे माता अम्बिका देवी की सुंदर मूर्ति विराजमान है जिसने विमल शाह को इस मन्दिर के निर्माण मे पूरी सहायता पहुँचाई थी। देवरी स० ३४ की छत पर एक सुन्दर कृष्ण की मूर्ति, कालिया नाग के दमन की बनी हुई है। इसी प्रकार देवरी स० ४०, ४४, ४५, ४८, ४६, ५० और ५१ के बाहर छतो पर क्रमश सोलह हाथ वाली महामानसी विद्यादेवी, सरस्वती लक्ष्मी और शक्ति देवियो की कमल पुष्प से जुडी हुई आकृति, आठ दिक्कुमारियो से वेष्ठित लक्ष्मीदेवी, अश्व पर सवार वज्रशृङ्खला, वीणा धारण की हुई सरस्वती देवी, कलि नाग पर सवार विद्यादेवी, वैराट्या और हरण्य के पेट को चीरते हुए नृसिह की मूर्तिया, उम्दा कारीगरी के साथ खुदी हुई हैं। इनके आगे देवरी स० ५८ की पहली छत पर ५६ दिक्कुमारियो द्वारा सम्पादित जन्म कल्याणक देवरी स० ५३ और ५४ के सामने की छतो पर तीर्थंकरो, आचार्यों तथा इनके शिष्यो की उभरी हुई मूर्तियाँ और देवरी स० ५८–५६ के सामने

पहली पक्ति की छतो पर जिनकी मूर्तियो के साथ साथ आचार्य और जैन श्रावक प्रदर्शित किए गए हैं। इस प्रकार परिक्रमा की कुछ विशेष कलाकृतियो का वर्णन है।

परिक्रमा को देखने के पश्चात्, मुख्य द्वार पर फिर कर आते हैं और दूसरी पक्ति की छत की पार्श्ववर्ती दीवार की ओर नजर फैलाते हैं तो आर्द्रकुमार मुनि को नमन करते हुए एक हाथी को देखते हैं जिसको मुनि ने सम्यक् ज्ञान प्राप्त कराया था। जब द्वार-स्थल से उतर कर आँगन मे आते हैं तो मध्यवर्त्ती छत पर, भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत और बाहुबली का युद्ध, अयोध्या और तक्ष-शिला नगर, दोनो भाइयो के केवल-ज्ञान प्राप्ति के मनोहर दृश्य दिखाई देते हैं। इस मध्यवर्त्ती छत के दोनो तरफ समान आकार की गुंबज हैं जिनमे भाँति भाँति के पुष्पो और नर्तको के झूमके लटके हुए हैं बल्कि बीच की छत पर भी इसी प्रकार की सुन्दर नक्काशी का प्रदर्शन किया हुआ है, जो देखते ही बनता है।

रग मण्डप – इस मन्दिर का सबसे सुन्दर, विशाल और उत्कृष्ट भाग, रग-मण्डप है जो कि एक भव्य खुला मण्डप है और इसके मध्य-भाग का गुम्बज, आठ विविध प्रकार से अलकृत स्तम्भो पर खडा हुआ है। गुम्बज और स्तम्भो की खुदाई का वर्णन करना कठिन है। स्तम्भो को जोडने वाले तोरणो की नक्काशी बडी ही सुन्दर है। गुम्बज के भीतर मनुष्यो, पशुओ, पक्षियो, हाथियो आदि की ग्यारह मालाएँ, गोलाकार मे बनाई हुई हैं और आलियो पर हाव-भाव और भक्ति-भाव का प्रदर्शन करती हुई देवियो की मूर्त्तियाँ बिठाई हुई हैं। गोलाकार मालाओ पर आश्रित, चौतरफ सोलह जैन विद्या-देवियो की मूर्त्तियाँ, एक शृखला मे लगी हुई हैं। अन्त मे इन अलकृत मालाओ की आवृतियो के केन्द्र-बिन्दु से गुच्छे की भाँति लटकता हुआ झूमक है। रग-मण्डप के चारो कोनो पर देवी-देवताओ की मूर्त्तियाँ दिखाई गई हैं जिनमे से दक्षिण-पश्चिम कोने पर अम्बादेवी की मूर्त्ति स्पष्ट पहचानने मे आती है। रग-मण्डप के उत्तर और दक्षिण बाजू तीन तीन अलकृत मण्डप अतिरिक्त विभूषित खम्भो पर टहरे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन अतिरिक्त मण्डपो और गूढ-मण्डप के बाहर के मण्डपो को मन्त्री पृथ्वीपाल विमल के वशज ने बाद मे जब वि० स० १२०६ (सन् ११४९-५०) मे इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था तब निर्माण करवाए थे।

नोचौकी— रग-मण्डप के आगे, पश्चिम की तरफ, नोचौकी है जो तीन सीढियो के चढने पर आती है। अलँकृत स्तम्भो से नोखडो मे विभक्त होने से, इसको नोचौकी कहते हैं। इन नोखडो की छतो पर, कमल पुष्पो की विचित्र कारीगरी और अन्य प्रकार की कलाकृतियाँ हैं जिनमे से दक्षिण की तरफ की बीचली छत पर समुद्र-फेन की आकृति बडी सुन्दर है। नोचौकी, विशेषतया, विविध प्रकार की पूजा के प्रयोग मे आती है।

गूढ-मण्डप और मूल गँभारा—नोचौकी से ऊपर गूढ-मण्डप का दरवाजा है और

दरवाजे के पार्श्व मे, बारीक कलाकृत अर्द्ध स्तम्भ हैं जिनके पास की दीवारो पर, जिनो और जैन साधु साध्वियो की मूर्तियाँ अँकित हैं। गूढ-मण्डप भीतर से सादा बना हुआ है। सामने ही दो बडी भगवान् पार्श्वनाथ की खडी मूर्तियाँ हैं जिनको 'काउस्सगिया' कहते हैं। इन दोनो मूर्त्तियो के सामने तथा गूढ मण्डप के दरवाजे के भीतर, द वार पर लगी हुई, दो श्रावक और तीन श्राविकाओ की खडी मूर्त्तियाँ हैं जो सुन्दर पुष्पहार लिए हुए हैं। ये मूर्तियाँ, वीजड श्रावक के परिवार की मालूम होती हैं जिसने वि० स० १३७८ मे, इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। इन मूर्तियो के निरीक्षण करने पर, गुजरात की प्राचीन सस्कृति-चौदहवी शताब्दी की वेपभूषा और आभूपण पर प्रकाश पडता है। गूढ-मण्डप के उत्तर और दक्षिण दोनो तरफ, दो मण्डप (चौकियाँ) खुले हुए हैं जिनके स्तम्भो और अर्द्ध स्तम्भो की खुदाई, देव-देवियो की छवियो के साथ वहुत प्रचुर है। गूढ-मण्डप से, जब मूल-गँभारा मे प्रवेश करते हैं तो परिकर सहित, मूलनायक भगवान् ऋषभदेव की श्वेत मूर्ति के दर्शन होते हैं। परिकर सहित भगवान् की मूर्ति 'सपरिकर पचतीर्थी' कही जाती है। आदि अर्थात् प्रथम तीर्थंकर होने से, यह मूर्ति 'आदीश्वर भगवान्' के नाम से प्रख्यात है। मूर्ति पाषाण की है जो बाद मे स्थापित की गई है। इसके पूर्व विमलशाह ने ५७ इच ऊँची पीतल की १८ भरास वजन की स्थापित की थी जिसका अभी तक पता नही लग पाया है।

मुख-मण्डप—इस प्रकार, विश्व के एक अत्युत्तम और कलात्मक महान् धार्मिक मदिर का दिग्दर्शन कराने के बाद, इसके बाहर के मुख-मण्डप मे आते हैं जिसका निर्माण वि० स० १६३९ और वि० स० १८२१ के बीच मे होना पाया जाता है। मुख-मण्डप मे, विमलशाह की हस्तिशाला की पश्चिमी दिवार से लगी हुई वि० स० १३७२, १३७३ और १३७७ की सुरहियाँ हैं जिन पर किसी प्रकार का कर वसूल नही करने का वर्णन है। इनको सिरोही के भूतपूर्व महारावल लूम्बाजी ने तैयार करवाई थी। मण्डप मे एक छोटे खम्भे पर, एक व्यक्ति की दो आकृतियाँ खुदी हुई हैं जो पाटन के चौलुक्य राज-दरबार के प्रसिद्ध जैन कवि श्रीपाल के भाई सोभिता की होनी पाई जाती हैं। स्तम्भ के पास, हस्तिशाला मे प्रवेश करते हुए, बाई तरफ, प्रसिद्ध राजा कुमारपाल के महामात्य कपर्डीया कपर्द्दीन के माता-पिता सीतादेवी और ठाकर अमपाल (अम्बाप्रसाद) की दो मूर्त्तियाँ हैं। मन्त्री कपडी बडा गुणवान, धनी, उदार और वीर पुरुष था जिसको अजयपाल (कुमारपाल के उत्तराधिकारी) ने जैन धर्म के प्रति वैमनस्य होने से उबलते हुए तेल के कढाह मे डाल कर मरवा डाला था। ये कपर्डी के माता-पिता की मूर्तियाँ एक ही शिला पर बनी हुई हैं जिसको वि० स० १२२६ मे आचार्य धर्मघोष सूरि की निश्रा मे लगाई गई हैं।

हस्तिशाला—मुख-मण्डप के पूर्व मे ही विमल-वसहि के दो मुख्य द्वारा के सामने

'विमलशाह की हस्तिशाला' है जो त्रैरागिक आकृतियो से युक्त जालीदार दीवारो से घिरी हुई हैं। इसमे जाते ही विमलशाह सेनापति की अश्वारोही चूने मे बनी हुई मूर्त्ति दिखाई देती है। चेहरा इसका सगमरमर का बना हुआ है। वि स० १२०४ मे विमल के वशज पृथ्वीपाल ने मन्दिर के जीर्णोद्धार के साथ निर्माण करवाई थी। विमलशाह की मूर्त्ति को देखते हैं तो दाहिने हाथ मे थाली और बाये हाथ मे घोडे की लगाम है तथा इनके पीछे एक सेवक, इनके ऊपर छत्र धारण करते हुए बैठा है। हस्तिशाला के मध्य मे तीन पर-कोटो से घिरी हुई गोलाकार समवसरण की रचना है जिसके शिखर पर जिनेश्वरो की चार छोटी प्रतिमाएँ, चारो दिशाओ मे स्थापित हैं। इस पर वि० स० १२१२ का शिला-लेख है जिससे इसका कोरटगच्छ के जैनाचार्य के अनुयायी ओसवाल जातीय वधुक द्वारा निर्माण कराया जाना प्रगट होता है। समवसरण के दोनो तरफ एक एक पक्ति मे चार-चार हाथी हैं और इसके पीछे दो हाथी हैं। इस प्रकार १० हाथी श्वेत सगमरमर के अच्छे ढग से बने हुए हैं जिनके होदा, झूले आदि हैं। हस्तिशाला के बाहर पूर्व की ओर चोखम्भे पर १६ जिनो की बहुत छोटी छोटी मूर्त्तिया खुदी हुई हैं और चौकियो के तोरण पर ७६ जिन मूर्त्तिया हैं जो कुल मिला कर ९२ होती हैं। इनमे से ७२ मूर्त्तिया भूत, वर्त-मान और भविष्य के प्रत्येक काल की २४ के हिसाब से तीर्थंकरो की हैं और २० मूर्त्तिया वर्तमान विहरमानो की हैं।

लूण-वसहि

मुख-मण्डप से उत्तर की तरफ इसके खुले द्वार मे होकर और फिर सुन्दर सीमेन्ट की सीढिएँ चढ कर 'लूण-वसहि' मे जाने का रास्ता है। सीढियो के दाहिनी ओर राणा कुम्भा का बनवाया हुआ एक कीर्त्ति-स्तम्भ है जिसके नीचे वि० स० १५०६ का शिलालेख है। यह स्तम्भ इससे भी अधिक ऊचा था क्योकि इस पर लूण-वसहि के शिल्पकार शोभनदेव की माता का हाथ इस पर लगाया हुआ था जो अशुभ होने से बाद मे हटवा दिया गया। बाईं ओर एक छोटा सा दिगम्बर जैन मन्दिर है।

लूण-वसहि को गुजरात के राजा वीर धवल के दो भ्राता-मन्त्रियो ने सन् १२३१ ई० मे विमल-वसहि के निर्माण से २०० वर्ष पश्चात् बनवाया था। इसके निर्माण मे १२ करोड ५६ लाख रुपये की धनराशि खर्च हुई थी। मन्दिर का नाम मत्री तेजपाल के पुत्र लूणसिंह (लावण्यसिंह) के नाम पर रखा गया था और तेजपाल की लक्ष्मीदेवी तुल्य धर्म-परायणा स्त्री अनुपमादेवी की प्रेरणा से इसका निर्माण प्रारभ हुआ था। मुगल-सम्राट शाहजहाँ ने अपनी दिवगत प्रियतमा मुमताज बेगम की स्मृति मे ससार-प्रसिद्ध ताजमहल आगरा मे इस मन्दिर के बनने के ५० वर्ष बाद बनवाया था किन्तु यह प्रेम-भावना के वशीभूत होकर बनवाया था जब कि इसके पहले विश्व मे सबसे प्रथम तेजपाल ने जो अपनी धर्म-पत्नी के

धर्मोद्गार से प्रेरित होकर स्मारक बनाया था, वह ईश्वरीय-प्रेम को लेकर बनाया था। दोनो की तुलना नही की जा सकती। बारीक नक्काशी मे लूण-वसहि ताज-महल से अधिक सुन्दर है। एक के देखने से मानव प्रेम का स्रोत उमड आता है और दूसरे को निहारने पर शान्ति, सौन्दर्य और भगवद्-भक्ति की गहरी छाप, मनुष्य के हृदय-पटल पर इस जन्म के लिए ही नही, जन्म-जन्मान्तर के लिए अँकित होती है।

इस मन्दिर की श्वेत सगमरमर की नक्काशी ऐसी अद्भुत, वेजोड तथा इतनी दैविक है कि इसकी समानता सँसार के किसी अन्य देवालय से नहीं की जा सकती। मन्दिर की सुन्दर छतो, अलकृत गुमटो, ऊँचे स्तम्भो, झुके हुए झरोखो और सफेद सगमरमर के हस्तियो पर ऐसी बारीक, सूक्ष्म और सराहनीय कारीगरी की हुई है एव इसके भीतर के फूल, झाड, बेल-बूटे, कमल, सर्प आदि कई नमूने इस ढग से खोदे गए हैं कि वे सब दर्शको को वास्तविक प्रतीत होते हैं। हाथी-घोडे, वाघ-सिह, स्त्री-पुरुष, देवी-देवता आदि के आकार जगह जगह ऐसे भाव-भीने और मन-मोहक प्रदर्शित किए गए हैं कि अपने जीवन मे सक्रिय दिखलाई पडते हैं। इनके अतिरिक्त राज-दरबार, राजकीय सवारी, वर-घोडा, वारात, विवाहोत्सव आदि कई प्रसगो को, तादृश पाषाण पर चित्रित किए हुए हैं। नाटक, सगीत, युद्ध-सग्राम, पशु-पालन, समुद्र-यात्रा, ग्वालो का जीवन आदि कई ऐसे दृश्यो का आलेखन हुआ है कि उस समय की, जब यह मन्दिर बना था, राजकीय, सामाजिक, व्यापारिक तथा व्यवहारिक जीवन की प्रत्यक्ष झाँकी नजर आती है। जैन और वैष्णव दोनो ही धर्म की महत्त्व-पूर्ण घटनाओ को, शिल्पकार ने सजीव रूप दिया है। मन्दिर के रग-मण्डप के समीप एक छत मे, १०८ पखुडियाँ वाले कमल पर प्रत्येक पखुडी पर एक-एक क्रियाशील और अग मरोडती हुई नर्तकी अलग-अलग मुद्रा मे, नाजुक ढग से नृत्यकला का प्रदर्शन किया गया है जिसको देख कर, दर्शको के मुख से सहज ही आश्चर्य के उद्गार निकल पडते हैं। देरानी-जेठानी के गोखडे, ऐसे अनुपम और सुन्दर बनाए गए हैं कि अन्य स्थान पर देखने मे नही आते। हस्तिशाला के हस्तियो के आभूषण, वस्त्र और रस्से आदि के बन्धन ऐसे दिखलाए गए हैं कि वे वास्तविक आलकारिक हाथी मालूम पडते हैं। इन महान भ्राताओ ने पुष्कल द्रव्य का सदुपयोग करके ससार को सुन्दर, सलोना, सजीव श्वेत सगमरमर का सर्जन, समर्पण किया है।

कुछ कलाविद् इस मन्दिर की कारीगरी, विमल-वसहि की कारीगरी से अधिक बारीक, प्रचुर और श्रेष्ठतम बतलाते हैं। कोई आश्चर्य नही कि विमल-वसहि की शिल्पकारी इस मन्दिर के कारीगरो के सामने थी इसलिए इसको कला-कौशल मे उन्नत, विस्तृत और विकसित बनाई हो। इसका सूत्रधार गुजरात का सोमनदेव था जो उस समय स्था-

पत्य कला मे श्रेष्ठ माना जाता था। इसके साथ १५०० निपुण कारीगर काम करते थे जिससे सात वर्ष मे सारा काम सम्पूर्ण हो गया। तत्पश्चात् वि० स० १३६८ (सन् १३११ ई.) मे जब यवन सेना ने विपन-वसहि का विध्वस किया तो उसके साथ इस मन्दिर मूल गभाए, गूढ मण्डप और कुछ अन्य भागो को भी नष्ट किया। १० वर्ष बाद चन्द्रसिह के पुत्र पेथड ने स्वय के खर्चे से विस्तारपूर्वक जीर्णोद्धार कराया था और पहले की भगवान नेमिनाथ की खण्डित मूर्त्ति को उत्थापन कर इसके स्थान पर वर्तमान श्याम मूर्त्ति स्थापित की थी। वि० स० २००७ से २०१६ की अवधि मे आनन्दजी कल्याणजी पेढी अहमदाबाद ने अन्य भागो के साथ परिक्रमा मे देवरी सख्या २३ से ३० तक का जीर्णोद्धार अर्थात् नवीनीकरण कराया गया है और चार देवरिया नई बनाई गई हैं। पहले ४८ देवरिया थी और वर्तमान मे ५२ देवरिया हैं। मूल मन्दिर की प्रतिष्ठा वस्तुपाल तेजपाल के धर्मगुरु नागेन्द्रगच्छ के आचार्य श्री विजयसेनसूरि की निश्रा मे विक्रम सवत् १२८७ चैत्र कृष्णा ३ रविवार को सम्पन्न हुई। देवरियो की प्रतिष्ठा वि० स० १२८७ और वि०स० १२९३ के वर्षो मे हुई और देरानी-जेठानी के गोखडो की प्रतिष्टा वि०स० १२९७ मे की गई। मेत्रीश्वर तेजपाल ने इस मन्दिर के रग-मण्डप मे समीपवर्त्ती राजा-महाराजाओ, महापुरुषो और ग्रामवासियो को एकत्रित करके प्रतिवर्ष पर्व दिनो के उत्सव और पूजा के प्रबन्ध एव मन्दिर की रक्षा के निमित्त एक व्यवस्थापक समिति की घोपणा की।

रग मडप—लूण-वसहि की कलात्मक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से पाठको को परिचित कराके, अब सीधे रग-मण्डप, नौचौकी और गूढ-मण्डप की तरफ पहले बढते हैं और बाद मे परिक्रमा की तरफ चलते हैं। इसका रग-मण्डप, विमल-वसहि के रग-मण्डप से यद्यपि छोटा है तथापि इसके स्तम्भो, तोरणो और गुम्बजदार छत की नक्काशी, उससे अधिक सूक्ष्म और विचित्र है। सोलह विद्या देवियो के नीचे गुम्बज की परिधि मे आसीन तीर्थङ्करो की गोलाकार माला है। इस माला के नीचे, दूसरी माला ३६० जैन साधुओ की है। रग-मडप के दोनो कोनो पर, शायद इन्द्र का प्रतिनिधित्व करते हुए खडे देवताओ की कलाकृतियाँ हैं। रग-मण्डप के दाहिनी ओर अलकृत स्तम्भो पर २४ तीर्थंकरो की लघु-प्रतिमाएँ खुदी हुई हैं। इसका मण्डप, बाँसुरी वाले स्तम्भो पर आश्रित है और अधिक तथा सुन्दर है। तोरणों की सग-तराशी, प्रचुरता मे विमल-वसहि के सदृश है किन्तु कारीगरी मे उत्कृष्ट, स्वच्छन्द और सुन्दर। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता, फर्गुसन ने इसकी महिमा इस तरह से की है 'मध्य मे सगमरमर के पिण्ड के बनिस्पत स्फटिक-बिन्दुओं की चमक की तरह भूल रहा है और महीन काम की कोमलता और अलकार की विशेषता से पूर्ण किया गया है। इसकी समानता का नमूना, जहाँ कही भी मिल सकता हो, वह शायद ही इससे बढकर हो सकता है।'
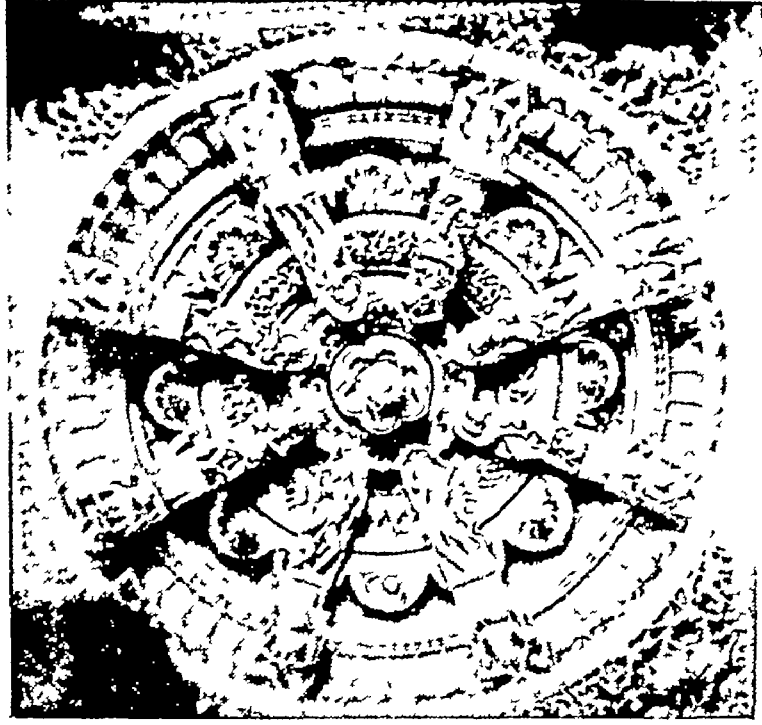
श्री आबू देलवाडा जैन मंदिरजी
विमलवसहि नौचोकी के कलात्मक छत का दृश्य
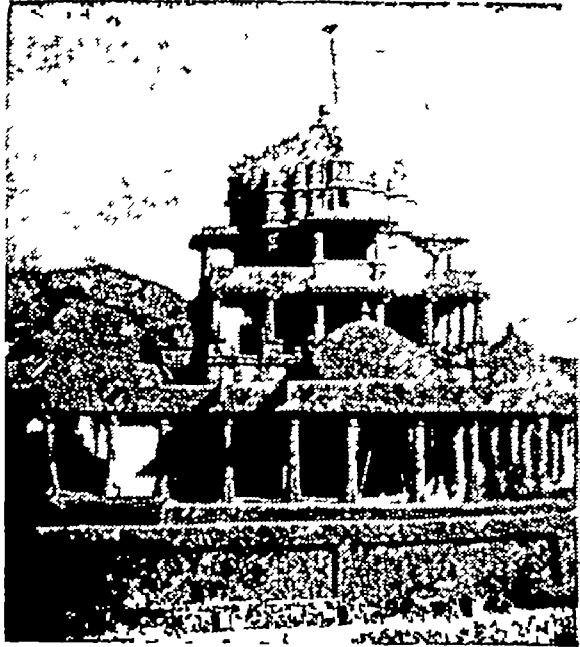
श्री आबू देलवाडा का जैन मंदिर खरतरवसहि का दृश्य

कृष्ण-लीला—रंग-मण्डप और दक्षिण बाजू की परिक्रमा के बीच मे छत पर, और उसके पास की कडी पर, कृष्ण-लीला दिखलाई गई है। भगवान कृष्ण का कारागृह मे जन्म, गोकुल का दृश्य, लकडी के सहारे खडा हुआ ग्वाल, दही के मथन आदि विविध प्रकार की घटनाएँ बडी ही रोचक ढग से खुदी हुई हैं। अश्वशाला और राजशाला के अतिरिक्त राज-प्रासाद और उसकी प्रत्येक मंजिल के अर्द्धखुले द्वार से झाँकती हुई महिला की मूर्ति दिखाई देती है। अर्द्धखुले द्वार मे, मूर्तिस्थापन करने की युक्ति, गुजरात से लेकर उडीसा तक के मध्यकालीन कलाकार स्वत प्रयोग मे लाते थे या अपनी रचनाओ मे विशेषतया समिश्रण करते थे।

अद्‌भुत नाट्य पट्ट—जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है कि रंग-मण्डप के दक्षिण-पश्चिम के कोने के पास १०८ विविध नाट्य-मुद्राओ मे कमल की पंखुडियो पर अलग अलग नृत्य करती हुई कन्याओ के आकार एक छत पर खुदे हुए हैं। यह पट भारतीय नृत्य-कला का, सगमरमर के पाषाण पर, एक बहुत ही सुन्दर और अनोखा नमूना है।

देरानी जेठानी के गोखडे—रंग-मण्डप के सामने सीढियाँ चढ कर नोचौकी पर आते हैं जहाँ छतो पर छोटे छोटे पुष्पो, कमल-पत्तो और अन्य बेल-बूटो के कोमल और कमनीय कारीगरी के नमूने नजर आते हैं और इसमे, गूढ-मण्डप के द्वार के समीप जो 'देरानी-जेठानी के गोखडे' हैं, उन पर बारीक खुदाई की गई है, वह तो विचित्र प्रकार की है। दोनो गोखडो का तर्ज समान है। ये अशत दीवार के भीतर और अशत दीवार के बाहर बने हुए हैं और इनका तल वेदी के आकार का है जिन पर बहुत छोटे-छोटे और बहुत सादे स्तम्भ हैं और उन पर सुन्दर आकृति की छतरियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक छतरी पर लक्ष्मी-देवी की मूर्ति खोदी गई है। इसके सिवाय ये गोखडे छोटे जिनो, जैन साधुओ, मनुष्यो, पशु-पक्षियो सहित, भिन्न भिन्न प्रकार के अलकारो से सुसज्जित हैं। कर्नल टॉड, प्रसिद्ध इतिहासकार ने निम्नॉकित शब्दो मे इनका वर्णन किया है—

'ये सादे हैं किन्तु कारीगरी मे कोई इनकी तुलना नही कर सकता। कही भी असमान रेखा या बाकी-टेढी सतह दिखाई नही देती। सब खुदाई इतनी सुन्दरता से की गई है कि मानो मोम को ढाल कर ही न रख दिया हो और किनारे, अर्द्धस्फटिक तथा मोटाई मे, एक लकीर के चतुर्थांश भी नही होगे। इन गोखडो की लागत सात लाख रुपये या करीब १२ हजार पाउन्ड होगी।'

प्रत्येक गोखडे मे सपरिवार पचतीर्थी जिनेश्वर देव की मूर्ति स्थापित की हुई है। दन्त-कथा यह है कि वस्तुपाल और तेजपाल की धर्म-पत्नियाँ जो कि देरानी जेठानी होती हैं, के बीच, इन गोखडो को सुन्दर से सुन्दर निर्माण कराने के लिए स्पर्द्धा चली जिसमे प्रत्येक गोखडे की लागत ९ लाख आ गई जिससे इनको 'नोलखा गोखडे' भी कहते हैं। ऐतिहासिक

घटना यह है कि इन गोखडो को मन्त्री तेजपाल ने अपनी दूसरी धर्म-पत्नी सुहड देवी के आत्मिक लाभ के लिए निर्माण करवाए थे।

गूढ मण्डप- यह मण्डप सादा है और इसमे इस समय सिर्फ दो जिनो की मूर्तियाँ हैं। पूर्व मे, इसमे २६ मूर्तियाँ थी जो हाल के जीर्णोद्धार मे, हटाकर परिक्रमा की देवरियो मे स्थापित कर दी गई हैं। नोचौकी के वि० स० १५१५ के लम्बे शिलालेख से विदित होता है कि भगवान नेमिनाथ की प्रस्तावित धर्म-पत्नी राजमती (राजुल देवी) की यहाँ मूर्ति थी जो अब परिक्रमा मे अम्बादेवी की देवरी मे विठाई गई है। इसके अतिरिक्त, दो वडे काउस्सगियो की वि० स० १३८९ को मूर्तियाँ एव चारभुजा वाली यक्ष की भी काली मूर्त्ति थी। गूढ-मण्डप के सामने, मूलगभारा मे, भगवान नेमिनाथ की काली मूर्ति हे जो इस मन्दिर के मूल-नायक हैं।

परिक्रमा—लूण-वसहि की ५२ देवरियो मे, जैन तीर्थकरो और विहरमानो की मूर्तियाँ स्थापित हैं। परिक्रमा की देवरी सख्या १ के सम्मुख छत पर सुन्दर अम्बिका देवी की मूर्ति है जिसके दोनो ओर वृक्ष तथा वृक्षो के तनो के सहारे श्रावक और श्राविकाएँ खडी हुई अकित की गई हैं। देवरी स० ९ के सामने दूसरी छत पर समवसरण रचना हे और बीच मे एक छोटी देवरी मे जिन दिखाई देते हैं जिनके सामने, तीन भिन्न श्रेणियो मे खडे जैन साधु, श्रावक और श्राविकाओ को उपदेश दे रहे हैं। पट्ट के एक किनारे पर, द्वारिका का बन्दरगाह, जलतन्तुओ और जहाजो सहित समुद्र और दूसरे किनारे पर, जैन यात्रियो का सघ सहित गिरनार तीर्थ वतलाया गया है। देवरी स० १०-११, प्रत्येक की प्रथम छत पर, देवी की मूर्ति, हस-वाहन सहित है। देवरी स० ११ की दूसरी छत पर, मनोरजक और प्रभावशाली भगवान् नेमिनाथ के जीवन के दृश्य, सुन्दर आकृति मे दिखलाया गया है। देवरी स० १४ के बाहर, दूसरी छत मे आठ खडो मे विभक्त, सभवत भगवान् शान्तिनाथ सोलहवे तीर्थंकर का पट्ट है। देवरी स० १६ के सामने, दूसरी पक्ति मे तेवीसवे तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के दो तीर्थ (१) हस्तिकलिकुण्ड तीर्थ (उत्तर प्रदेश का आधुनिक रामपुर) और (२) 'कुसुम्ब वन' (शिवपुरी के पास है जिसका नाम बाद मे 'अहिछत्र नगरी' पडा है), छत पर दिखलाये गये हैं। देवरी स० १९ के अन्दर दाहिनी तरफ की दीवार पर, सुन्दर पट्ट, भडौच के 'अश्वबोध' और 'शकुनी-बिहार' का है जिसमे २०वे तीर्थङ्कर मुनि सुव्रत स्वामी ने केवलज्ञान होने के बाद एक अश्व को बोध दिया था और उस अश्व के जीव ने दूसरे भव मे शक्तिशाली देव का रूप धारण कर पूर्व जन्म के उपदेशस्थल पर मुनि सुव्रत भगवान के मन्दिर को बनाया था। यह स्थल नर्बदा नदी के तीर पर भृगुकच्छ बतलाया जाता है और इसी स्थल पर आकर सिंहल द्वीप मे रत्नाशय के राजा चन्द्रगुप्त की रूपवती और धर्मात्मा पुत्री सुदर्शना ने अपना जाति-स्मरण ज्ञान

उत्पन्न होने पर अर्थात् पूर्व-जन्म मे शकुनी (सामली) होने और राव शिकारी द्वारा तीर से वेधने पर, एक जैन मुनि द्वारा नवकारमत्र सुनने का ध्यान आने पर, विधिवत् अश्व-बोध तीर्थ की उपासना की और फिर जीर्णोद्धार भी कराया। अन्त मे सुदर्शना आमरण अनशन कर स्वर्ग गई जिससे इस तीर्थ का नाम 'शकुनी-विहार' पडा। देवरी स० २४ मे अम्बिका देवी आम्रवृक्ष के नीचे आसीन है जिसके पत्ते उसके शिर को आच्छादित करते हैं। इसी देवरी मे अम्बिकादेवी के दाहिनी ओर, सती राजमती की मूर्ति है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस देवरी के पास ही त्रैराशिक एव अन्य प्रकार के आकारो की दीवार से ढका हुआ एक वडा लम्बा दालान है जिसको '**वस्तुपाल तेजपाल का हस्तिशाला**' कहते हैं। इसमे दस वडे उत्कृष्ट कारीगरी के हाथी हैं जो प्रत्येक सगमरमर के पूरे पाषाण से बने हुए हैं। सुन्दर हाथी-दातो, झूलो, रस्सियो की गाठो और अलंकृत हारो से ये हाथी सुसज्जित दिखाई देते हैं। यह हस्तिशाला के मध्य मे तीन मजिला एक स्तम्भ है और प्रत्येक मजिल के चारो तरफ चार जिन की प्रतिमाएँ है। हस्तिशाला के पीछे की दीवार के बीच मे भगवान् आदिनाथ की चमत्कारी सपरिकर प्रतिमा है और इसके दोनो बाजुओ मे दस आलियो मे, आचार्य विजयसेनसूरि और उनके शिष्य तथा वस्तुपाल तेजपाल सहित उनके पूर्वजो और वशजो की खडी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। सातवे और आठवें आलियो मे क्रमश वस्तुपाल और उनकी दो धर्मपत्नियाँ और तेजपाल और उनकी धर्मपत्नी अनुपमा देवी की मूर्तियाँ है।

देवरी स० ३१ मे विहरमान के सुबाहु स्वामी की मूर्ति है और देवरी स० ४१ मे, पहले भगवान् महावीर की सुन्दर मूर्ति थी जिसको देवरी स० २२ मे स्थापित की गई है। इस देवरी स० ४१ के पास बडा मण्डप था जिसमे दीवार के सहारे दो बडे सगमरमर के शिलालेख थे जो अब हस्तिशाला मे सुरक्षित रखे हुए है। इनमे वस्तुपाल तेजपाल के परिवार के सदस्यो और इनके द्वारा स्थापित समिति का वर्णन है।

गिरनार तीर्थावतार— लूण-वसहि के बाहर के मडप से गिरनार टूँक पर जाने का रास्ता है। लूण-वसहि गिरनार तीर्थावतार होने से अर्थात् नेमिनाथ का तीर्थ, गिरनार तीर्थ माने जाने से गिरनार के सदृश इस मन्दिर के पास पहाडी के शिखर पर चार टूँके हैं जिनके नाम सोमसुन्दर सूरि के 'अर्बुद-गिरि-कल्प' मे (१) अम्बावतार तीर्थ (२) प्रद्युम्नावतार तीर्थ (३) शम्बावतार तीर्थ और (४) रथ-नेमिअवतार तीर्थ दिए गए हैं। इस समय अम्बिका की दो मूर्तियाँ और शेष तीन देवरियो मे पार्श्वनाथ की (वि स १३८९ मे स्थापित) खडी मूर्ति, सम्भवनाथ की सपरिकर मूर्ति और एक अज्ञात जिन की काली मूर्ति है जिनको वि स १५०० के कुछ पूर्व के जीर्णोद्धार के पहले प्रद्युम्न शम्भव और रथ-नेमि की मूर्तियो के स्थान पर रखी गई हैं।

कर्नल अर्सकिन ने इन दोनो मन्दिर विमलवसहि और तूण-वसहि के वारे मे निम्नांकित शब्दो मे भूरि-भूरि प्रशसा की है।

"कारीगर की टाँकी से यह सब अपरिमित व्यय से किए हुए प्रदर्शनो मे दो मन्दिर अर्थात् आदिनाथ और नेमिनाथ के मन्दिर सर्वोत्तम और विशेप दर्शनीय और प्रशसनीय पाए जाते हैं। दोनो पूरे सगमरमर के बने हुए है और तमाम वारीकी और अलँकार की प्रचुरता से जो कि भारतीय कला के स्रोत इनको निर्माण के समय प्रदान कर सकती थी, खुदे हुए है।

इन रचनाओ पर छतो, दरवाजो, खम्भो, पटो और गोखडो की सूक्ष्म नक्काशी की सजावट का अलकार-युक्त स्वरूप निताात आश्चर्यजनक है जब कि सगमरमर पर दिया हुआ महीन, स्फटिक और खोलीदार (Shell like) काम अन्य कही भी देखे हुए काम से बढ कर है और कुछ आकार तो वास्तव मे सुन्दरता के स्वरूप है।

मन्दिरो की साधारण रचना, इनके खुले स्थान और ढके दालान के साथ-साथ सूर्य की दिशा के हर एक परिवर्तन के साथ प्रकाश और छाया मे बहुत सुखकर प्रतीत होते है।

अन्य मन्दिर

लूण-वसहि का गिरनार तीर्थावतार देख कर और वहाँ से सीमेन्ट की सीढियो से नीचे उतर कर बाएँ हाथ को ओर मुडते है तो चम्पा के वृक्षो और पुष्प-वाटिकाओ से युक्त एक बडे चौक मे आ जाते हैं। यहाँ पर 'दादा साहब' प्रसिद्ध खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनदत्त सूरि की चरणपादुकाएँ वृक्षो की ओट मे सगमरमर की एक छोटी छतरी मे स्थापित की हुई हैं। पास मे पुष्प-पौधो को क्यारियाँ आ गई हैं। यहाँ से फिर कर 'पीतलहर' यानि पीतल के मन्दिर मे जाते हैं।

पीतल-हर—इस मन्दिर को भीमाशाह का मन्दिर भी कहते है क्योकि इसका निर्माण गुजरात के भीमाशाह ने कराया था। इसमे पहले एक बडी धातु की मूर्ति श्री आदिनाथ की थी जो यहाँ से, मेवाड के कु भलमेर या कु भलगढ के जैन मन्दिर मे ले जाई गई है। वर्तमान १०८ मन वजन की श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति विशेषत पीतल की है और इसी कारण इस मन्दिर का नाम 'पीतल-हर पडा। इसकी स्थापना वि० स १५२५ मे अहमदाबाद के सुल्तान मेहमूद बेगडा के मत्री सुन्दर और गदा ने की थी जिससे कुछ लोगो ने इस मन्दिर का निर्माण-काल वि स १५२५ मान लिया। कुछ शिलालेखो के आधार पर इस मन्दिर का निर्माण-काल वि स १३७३ और वि स १४८९ के बीच मे निर्धारित किया गया है। यह मूर्ति परिकर सहित करीब ८ फीट ऊँची और ५ ५ फीट चौडी है। मूलनायक

ऋषभदेव की अकेली मूर्ति कद मे ४१ इच ऊँची है। इस मूर्ति का सूत्रधार महेसाणा (गुजरात) के कलाकार पदम का पुत्र देवा था। इसकी प्रतिष्ठा आचार्य श्री लक्ष्मीसागर सूरि द्वारा हुई थी। इस अवसर पर गदा या गदाराज मत्री आबू यात्रा सघ लाया था और इसने सघ और प्रतिष्ठा दोनो शुभ कार्यो मे एक लाख सुवर्ण सिक्के खर्च किये थे।

इस मन्दिर मे तथा आजू-बाजू, परिक्रमा मे, लगभग १०७ मूर्तियाँ हैं जिनमे से, श्री सुविधिनाथ के मन्दिर मे बहुत सी मूत्तियाँ स्थापित हैं। इस मन्दिर के शिखर पर कलश है और मूर्त्ति भगवान सुविधिनाथ के कुछ नीचे। भगवान ऋषभदेव के मुख्य गन्धर्व श्री पुण्डरीक स्वामी की सुन्दर मूर्त्ति विराजमान है जिसकी स्थापना वि० स० १३६४ मे हुई थी। इस मन्दिर के आगे, परिक्रमा मे, भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी की, वि० स० १५०८ की अकित, मूर्त्ति भी है। पीतलहर के बाहर चबूतरे पर, यक्ष मणिभद्र की एक छोटी देवरी है।

महावीर स्वामी का मन्दिर– 'पीतलहर से निकलकर मन्दिरो के बाहरी दरवाजे के पास आ जाते हैं जिसके सन्निकट, कुछ पश्चिम की ओर, भगवान् महावीर का मन्दिर है। यह मन्दिर २०० या ३०० वर्ष पुराना है। इस मन्दिर के बाहर दालान मे गहरे लाल रग से चित्रित पुष्प, कबूतर, र.ज-दरबार, हाथी-घोडे, नर्तक आदि हैं जिनको वि० स० १८२१ में सिरोही के कारीगरो ने बनाए थे। इसी दालान मे पूर्व की दीवार मे एक बडा सफेद सगमरमर का चतुष्कोण पट्ट है जिस पर त्रिकोण आकार का पाषाण लगा हुआ है और दोनो मे १३३ जिन-मूत्तियाँ छोटी छोटी खुदी हुई हे, बीच मे एक मामूली कद की मूर्ति सफेद सगमरमर की स्थापित की हुई है। 'हीर-सौभाग्यकाव्य' से जिसकी रचना वि० स० १६३९ मे हुई थी, यह अर्थ निकाला जा सकता है कि इस मन्दिर का निर्माण वि० स० १६३९ के बाद और वि० स० १८२१ के पहले हुआ क्योकि 'हीर-सौभाग्यकाव्य' मे इस मन्दिर का कोई वर्णन नही है।

खरतर-वसहि— महावीर स्वामी के मन्दिर से प्रमुख दरवाजे मे होकर बाहर आते हैं तो सेठ कल्याणजी परमानन्दजी पेढी के देलवाडा कार्यालय के सामने एक चौक आता है और वहाँ से तीन नव-निर्मित सीमेन्ट की सीढिये चढ कर दक्षिण-पूर्व की तरफ 'खरतर-वसहि' मन्दिर मे प्रवेश करते हैं। इस मन्दिर को 'कारीगरो का मन्दिर' भी जन-श्रुति के आधार पर कहते हैं। मान्यता यह है कि प्रसिद्ध मन्दिरो के भग्नावशेप से कारीगरो ने श्रमदान करके बिना कोई मुआवजा अपनी मेहनत का लिये हुए इस मन्दिर को बनाया था। यह बात मानने योग्य नही है क्योकि इस मन्दिर के पत्थर भूरे रँग के हैं और प्रसिद्ध मन्दिरो के सफेद सगमरमर से मिलते-जुलते नही हैं। भगवान पार्श्वनाथ की मूत्तियो की लोक-प्रियता

माउंट आबू का गौरव

अचलगढ़ का चौमुखी जैन-मन्दिर

ले० भूरचन्द जैन, बाडमेर (राज०)

माउट आबू—राजस्थान की शान एव कीर्ति का प्रतीक है। ग्रीष्मकाल मे जनमानस प्राकृतिक आनन्द लेने के लिए इस स्थान पर आते हैं। हजारो की तादाद मे राजस्थान के ही नही देश और विदेशो के लोग इस पहाड पर स्वास्थ्य एव मनोवैज्ञानिक चिकित्सा से लाभान्वित होते हैं। आबू पर्वत के पग-पग पर सैलानियो को अपनी ओर आकर्षित करने के नयनाभिराम दृश्य हैं। मन्दिरो की कतारे, देलवाडा मन्दिर की शिल्पकला, नक्की झील का प्राकृतिक सौन्दर्य, गौमुख की स्वादिष्ट जलधारा, अम्बा माताजी के दर्शन, गुरु-शिखर की यात्रा, सूर्यास्त की झलक ये सभी आबू पर्वत के आकर्षण हैं। इन सबके साथ एक और आकर्षण है और वह अचलगढ का चौमुखी जैन-मन्दिर।

पहाडो की ओट मे, चट्टानो के बीच, प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद मे यह जैन-तीर्थस्थान अचलगढ, आबू पर्वत की यात्रा मे चार चॉद लगा देता है। इसे देखने की लालसा स्वतः ही मानव के मनमयूर मे जाग्रत हो उठती है। अचलगढ जैन-धर्मावलम्बियो का तीर्थस्थान है तो सैलानियो का दर्शनीय स्थल भी हे। यहाँ पर पहुँचने के लिए आबू पर्वत के देलवाडा जैन मन्दिर से साढे चार मील पक्की साँप की भाति गोते खाती हुई सडक से जाना पडता है। यह सडक सीधे अचलगढ पहाड की तलहटी तक पहुँचाती है। यहाँ पर महादेव का मन्दिर, मन्दाकिनी कुण्ड, भर्तृहरि की गुफा, रवती कुण्ड, शातिनाथ का मन्दिर, भृगुआश्रम के अतिरिक्त अन्य कई दर्शनीय स्थान देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यहॉ से ओरिया गाँव डेढ मील पगडंडी से जुडा हुआ है। तलहटी मे खडे होकर पहाड की ऊँचाई की तरफ यदि निगाह उठाते हैं तो राजा गोपीचन्द की गुफा और वि० स० १५०६ का प्राचीन अचलगढ दुर्ग (कुम्भा का किला) स्वत ही दृष्टिगोचर होने लगना हैं।

अचलगढ की यात्रा करने के लिए पत्थर की बनी हुई सीढियाँ एव मार्ग को पैदल पार करते हुए ऊँचाई की ओर चढना पडता है। इस बीच मे गणेशपोल, हनुमानपोल, कपूर-सागर, लक्ष्मीनारायण का मन्दिर, चम्पापोल, कुंथुनाथ मन्दिर एव भैरवपोल देखते हुए जैन तीर्थस्थान अचलगढ के चौमुखी मन्दिर मे प्रवेश करते हैं। इस मन्दिर को 'नवता बोध' के नाम से भी जाना जाता है जिसको गयासुद्दीन बादशाह के मन्त्री सघवी सहसा पोरवाल ने

बनाया था जो मालवाना (माडवगढ) के रहने वाले थे। इसकी प्रतिष्ठा सवत १५६६ के फागण सुदि दसम को सम्पन्न हुई थी। मन्दिर दो मञ्जिला है और चौमुखी प्रतिमाओ के साथ है। इसे किसी भी दरवाजे से आसानी से निहारा जा सकता है और सभी प्रतिमाए एक जैसी दिखाई देती है। चौमुखी दो मजिले मन्दिर मे सभी धातु की बडी बडी प्रतिमाए विराजमान की हुई है। इन प्रतिमाओ के आकार, रूप, सौंदर्य और कला दर्शनार्थियो को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नही रहती। मन्दिर मे अनेक प्रतिमाए विभिन्न रूप धारण किए हुए हैं। परन्तु १४ धातु की प्रतिमाए विशेष रूप से दर्शनीय हैं जिनका वजन १४४४ मन है। सबसे भारी प्रतिमा का वजन १२० मन है। मूल नायक श्री आदेश्वर भगवान हैं।

यहा इस चौमुखी मन्दिर के अलावा तीन जैन मन्दिर और कई सरोवर, कुण्ड, गुफाए और प्राकृतिक सौदर्य के स्थल देखने को मिलते हैं विशेष रूप से जब राजा गापीचद की गुफा और अचलगढ दुर्ग (कुम्भा का किला) देखने को जाते हैं तब ऊचाई से नीचे की तरफ चौमुखी जैन मन्दिर की छटा पेडो की ओट मे और भयानक पहाडी चट्टानो के बीच का सौदर्य जनसमुदाय का मन मोह लेता है।

जन-जन के मन मे एक बार अचलगढ के चौमुखी मन्दिर को देखने के पश्चात् यही एक धारणा बन उठती है कि वे मानव जिन्होने अपनी अमूल्य निधि से इसे सजाया है और वे श्रमिक जिन्होने भीषण चट्टानो के बीच ऊचाई पर अपने श्रम से इसे बनाया है वे केवल धन्यवाद के पात्र ही नही हैं अपितु कृपापात्र ही बने हैं। उनकी इस निधि को भुलाया नही जा सकता। वहा दूसरी ओर महन्त मस्त लू भा और लापा शिल्पियो की याद ताजी हो उठती है जिनकी छेनी और हथौडी की मार ने ऐसी कला को निखारा है जिसको देखने के लिए दूर दूर से छोटे बडे सभी आते हैं।

अचलगढ मे धर्मशालाओ और आवास निवास एव खाने पीने की समुचित व्यवस्था है। मन्दिर के अदर की सफाई एव व्यवस्था भी सुंदर एव प्रशसनीय है।

के प्रसङ्ग मे खरतर-गच्छ की कुछ विशेषताएँ, आचार्यों की खुदी हुई मूर्त्तियाँ, उनके आसन आदि पाई जाने से ऐसा जान पडता है कि इस मन्दिर को खरतर-गच्छ के किसी श्रावक ने बनाया था इसी कारण से इसको 'खरतर-वसहि कहते ह ।

यह तीन मन्जिला चौमुखा मन्दिर देलवाडा के जैन मन्दिरो का सब से ऊँचा मन्दिर है। तीनो मन्जिलो मे चौमुख प्रतिमाओ के अतिरिक्त अन्य मूर्तियाँ भी इस मे स्थापित है। मूलनायक चिन्तामणि पार्श्वनाथ हैं और इनके तीनो तरफ सबसे नीचली मन्जिल मे मगल-कर पार्श्वनाथ, मनोरथ कल्पद्रुम पार्श्वनाथ और एक ओर पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है जिसका नाम पढने मे नही आता है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ का परिकर बहुत ही सुन्दर है और मूर्त्ति के मस्तक पर नो फण वाले नाग की आकृति भी बडी मनोहर है। दूसरी मन्जिल के मन्दिर मे दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व को क्रमश तीर्थंकर सुमतिनाथ, पार्श्वनाथ, आदिनाथ और पार्श्वनाथ की मूर्त्तियाँ हैं। तीसरी मन्जिल मे चारो तरफ पार्श्वनाथ की मूर्त्तियाँ स्थापित ह। दोनो मन्जिलो की चतुर्मुखी मूर्त्तियो की स्थापना आषाढ कृष्णा १ वि० स० १५७१ को सिघवी मण्डलिक द्वारा हुई थी और दूसरी मन्जिल की अम्बिकादेवी की काली मूर्त्ति की स्थापना इस से पूर्व वि० स० १५१५ मण्डलिक ने खरतर-गच्छ के आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि के कर-कमलो द्वारा कराई है।

इस मन्दिर का निर्माण प्राच्य शिलालेखो के आधार पर वि० स० १४९७ के बाद और वि० स० १५१५ के पहले माना जाता है। मन्दिर के दूसरी और तीसरी मंजिल से पार्श्ववर्त्ती पर्वतमालाओ और इनके बीच की हरी-भरी घाटियो के दृश्य बहुत सुहावने दिखाई देते हैं। चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मूल मन्दिर के सामने आठ स्तम्भो पर टिका हुआ एक बडा विशाल मण्डप है जिसकी गुम्बज की कारीगरी सुन्दर बनी हुई है। मूल मन्दिर के चारो तरफ दीवारो पर दिक्पालो, विद्या-देवियो, यक्षिणियो और साल भंजिकाओ तथा अन्य युगल देव-देवियो की मूर्त्तियो की कारीगरी बडी ही चित्ताकर्षक है। मूल मन्दिर के जो महराब हैं उस पर च्यवन कल्याणक के दृश्य—तीर्थंकर की माता का जब भगवान् माता के गर्भ मे आते हैं, चौदह स्वप्न बताए गए हैं। यद्यपि इस मन्दिर का पाषाण हल्के दर्जे का है फिर भी इस पर खुदी हुई मूर्त्तियो का शिल्प श्रेष्ठ व उन्नत होना पाया जाता है। सुंदर गुम्बज, विशाल स्तम्भ और मूल मन्दिर के चारो ओर भरपूर देव-देवियो की कलाकृतियाँ इस प्रासाद के शिल्पकारो की रोचक और मन-मोहक कारीगरी का प्रदर्शन कराती हैं।

उपसहार—देलवाडा आबू के जैन मन्दिरो का दिग्दर्शन करने के पश्चात्, यात्री आबू पर्वत के नीचे के मैदानो का अस्त-व्यस्त जीवन की नीरसता को भूलकर और एकदम एकाकी-पन अनुभव कर अपने आपको पूर्ण शाति मे पाता है और विमल-वसहि तथा लूण-वसहि

दोनो मन्दिरो की श्वेत सगमरमर के पाषाण पर, प्रचुर सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त और अनुपम कलाकृतियो को निहार कर, स्वर्गीय आनन्द का आभास पाता है। वैसे देखा जाय तो पत्थर-पाषाण, मनुष्य को समुद्र मे डुबो देता है परन्तु इन मन्दिरो के पत्थर जिन पर दैविक और अधिदैविक कलामय आकृतियाँ अङ्कित हैं, मनुष्य को भवोदधि से उबार लेते हैं।

ये मन्दिर जिनमे कला और कारीगरी का अतुल धन छिपा हुआ है, हमारे राष्ट्र की महान् सम्पति है। इनके प्रवेश और पार्श्ववर्त्तीय स्थलो को, अधिक सुन्दर और विकसित बनाने की परम आवश्यकता है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त य दुप्पट्ठीय सुट्ठियो ।।

आत्मा ही अपने सब दु ख-सुख को बनाने-विगाडने वाली है।
सुपथगामी आत्मा मित्र है, विपथगामी आत्मा शत्रु है।

—महावीर वाणी

* * *

लक्ष' विहाय दातव्य कोटि त्यक्त्वा प्रभु भजेत ।

लाखो कार्यों को छोड कर पहले दान देना चाहिये और क्रोडो कार्य छोड कर प्रभु का स्मरण करना चाहिये।

अचलगढ़ का चौमुखी जैन-मन्दिर

ले० भूरचन्द जैन, बाडमेर (राज०)

माउट आबू—राजस्थान की शान एव कीर्ति का प्रतीक है। ग्रीष्मकाल मे जनमानस प्राकृतिक आनन्द लेने के लिए इस स्थान पर आते हैं। हजारो की तादाद मे राजस्थान के ही नही देश और विदेशो के लोग इस पहाड पर स्वास्थ्य एव मनोवैज्ञानिक चिकित्सा से लाभान्वित होते हैं। आबू पर्वत के पग-पग पर सैलानियो को अपनी ओर आकर्षित करने के नयनाभिराम दृश्य हैं। मन्दिरो की कतारे, देलवाडा मन्दिर की शिल्पकला, नक्की भील का प्राकृतिक सौन्दर्य, गौमुख की स्वादिष्ट जलधारा, अम्बा माताजी के दर्शन, गुरु-शिखर की यात्रा, सूर्यास्त की झलक ये सभी आबू पर्वत के आकर्षण हैं। इन सबके साथ एक और आकर्षण है और वह अचलगढ का चौमुखी जैन-मन्दिर।

पहाडो की ओट मे, चट्टानो के बीच, प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद मे यह जैन-तीर्थस्थान अचलगढ, आबू पर्वत की यात्रा मे चार चाँद लगा देता है। इसे देखने की लालसा स्वत. ही मानव के मनमयूर मे जाग्रत हो उठती है। अचलगढ जैन-धर्मावलम्बियो का तीर्थस्थान है तो सैलानियो का दर्शनीय स्थल भी है। यहाँ पर पहुँचने के लिए आबू पर्वत के देलवाडा जैन मन्दिर से साढे चार मील पक्की साँप की भाति गोते खाती हुई सडक से जाना पडता है। यह सडक सीधे अचलगढ पहाड की तलहटी तक पहुँचाती है। यहाँ पर महादेव का मन्दिर, मन्दाकिनी कुण्ड, भर्तृहरि की गुफा, रवती कुण्ड, शातिनाथ का मन्दिर, भृगुआश्रम के अतिरिक्त अन्य कई दर्शनीय स्थान देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यहाँ से ओरिया गाँव डेढ मील पगडंडी से जुडा हुआ है। तलहटी मे खडे होकर पहाड की ऊँचाई की तरफ यदि निगाह उठाते हैं तो राजा गोपीचन्द की गुफा और वि० स० १५०६ का प्राचीन अचलगढ दुर्ग (कुम्भा का किला) स्वत ही दृष्टिगोचर होने लगता है।

अचलगढ की यात्रा करने के लिए पत्थर की बनी हुई सीढियाँ एव मार्ग को पैदल पार करते हुए ऊँचाई की ओर चढना पडता है। इस बीच मे गणेशपोल, हनुमानपोल, कपूर-सागर, लक्ष्मीनारायण का मन्दिर, चम्पापोल, कुंथुनाथ मन्दिर एव भैरवपोल देखते हुए जैन तीर्थस्थान अचलगढ के चौमुखी मन्दिर मे प्रवेश करते हैं। इस मन्दिर को 'नवता बोध' के नाम से भी जाना जाता है जिसको गयासुद्दीन बादशाह के मन्त्री सघवी सहसा पोरवाल ने

बनाया था जो मालवाना (माडवगढ) के रहने वाले थे। इसकी प्रतिष्ठा सवत १५६६ के फागण सुदि दसम को सम्पन्न हुई थी। मन्दिर दो मञ्जिला है और चौमुखी प्रतिमाओ के साथ है। इसे किसी भी दरवाजे से आसानी से निहारा जा सकता है और सभी प्रतिमाए एक जैसी दिखाई देती है। चौमुखी दो मजिले मन्दिर मे सभी धातु की वडी वडी प्रतिमाए विराजमान की हुई है। इन प्रतिमाओ के आकार, रूप, सौंदर्य और कला दर्शनार्थियो को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नही रहती। मन्दिर मे अनेक प्रतिमाए विभिन्न रूप धारण किए हुए हैं। परन्तु १४ धातु की प्रतिमाए विशेष रूप से दर्शनीय हैं जिनका वजन १४४४ मन है। सबसे भारी प्रतिमा का वजन १२० मन है। मूल नायक श्री आदेश्वर भगवान हैं।

यहा इस चौमुखी मन्दिर के अलावा तीन जैन मन्दिर और कई सरोवर, कुण्ड, गुफाए और प्राकृतिक सौदर्य के स्थल देखने को मिलते हैं विशेष रूप से जब राजा गापीचद की गुफा और अचलगढ दुर्ग (कुम्भा का किला) देखने को जाते हैं तब ऊचाई से नीचे की तरफ चौमुखी जैन मन्दिर की छटा पेडो की ओट मे और भयानक पहाडी चट्टानो के बीच का सौदर्य जनसमुदाय का मन मोह लेता है।

जन-जन के मन मे एक बार अचलगढ के चौमुखी मन्दिर को देखने के पश्चात् यही एक धारणा बन उठती है कि वे मानव जिन्होने अपनी अमूल्य निधि से इसे सजाया है और वे श्रमिक जिन्होने भीषण चट्टानो के बीच ऊचाई पर अपने श्रम से इसे बनाया है वे केवल धन्यवाद के पात्र ही नही हैं अपितु कृपापात्र ही बने है। उनकी इस निधि को भुलाया नही जा सकता। वहा दूसरी ओर महन्त मस्त लू भा और लापा शिल्पियो की याद ताजी हो उठती है जिनकी छेनी और हथौडी की मार ने ऐसी कला को निखारा है जिसको देखने के लिए दूर दूर से छोटे बडे सभी आते हैं।

अचलगढ मे धर्मशालाओ और आवास निवास एव खाने पीने की समुचित व्यवस्था है। मन्दिर के अदर की सफाई एव व्यवस्था भी सुंदर एव प्रशसनीय है।

श्री जीरावला पार्श्वनाथ का संक्षिप्त इतिहास

श्री मानचन्द्र भण्डारी, जोधपुर

समस्त भारत मे जीरावला पार्श्वनाथ जैन तीर्थ विख्यात है। जैन समाज मे इसको अत्यन्त आदर व श्रद्धा प्राप्त है। इसका सक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है—

राजस्थान प्रान्तान्तर्गत सुप्रसिद्ध आबू पर्वत के पश्चिम मे लगभग २४ मील की दूरी पर जीरावला नामक छोटा सा गाँव है। पहिले यह गाँव जीरापल्ली के नाम से प्रसिद्ध था और बहुत अच्छी स्थिति मे था। केवल जैन लोगो के ही अठारह सौ घर थे, किन्तु मुसलमानो के आक्रमण के पश्चात इसकी स्थिति बिगड गई। इस समय जैन लोगो के दस-बारह ही घर हैं। जीरावला आडावला पर्वत की ही एक शाखा है और इसी पर्वत के नाम पर इस गाँव का नाम भी जीरापल्ली पडा जो पीछे जीरावला ही प्रसिद्ध हुआ। गाँव के नाम पर ही यह तीर्थ भी **जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ** कहलाया।

जैन शास्त्रो मे जीरावला तीर्थ का अकथनीय महत्व बताया गया है। जहाँ कही भी प्रतिष्ठा महोत्सव तथा अन्य मागलिक कार्य होते हैं वही मन्दिर के मुख्य द्वार पर 'श्री जीरावला पार्श्वनाथ रक्षा कुरु स्वाहा' लिखा जाएगा। इससे यह सिद्ध होता है कि इस तीर्थ के मूलनायक भगवान का विरद विघ्ननिवारण है।

साधु-मुनिराजो ने समय समय पर इस तीर्थ के प्रति जो भाव प्रकट किए हैं वे इस प्रकार हैं—

१ खरतरगच्छीय वाचनाचार्य श्री समयसुन्दरजी महाराज—तीर्थवन्दन रूप स्तवन मे—

'अन्तरिक अजावरो, अमी झझोरो रे,
जीरावलो जगन्नाथ तीर्थ ते नमू रे।

२ खरतरगच्छ के जैनाचार्य श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ चैत्यवन्दन मे—

आधि व्याधि हरो देवो जीरावलीशिरोमणि।
पार्श्वनाथो जगन्नाथो नतनाथो नृणस्त्रिय ॥

३ तपागच्छीय जैनाचार्य सकलतीर्थ वन्दू कर जोड कर स्तवन मे—

अन्तरिक वरकातो पास, जीरावलो ने थभण पास।

इस तरह इस तीर्थ की महिमा का कई स्थानो मे वर्णन मिलता है। श्री मेरुतुंग सूरि विरचित श्री जीरावला पार्श्वनाथ स्तोत्र त्रय मे तो इसका पूरा विवरण है।

यह मन्दिर कब बना, किसने बनाया इसका उल्लेख इस प्रकार है—

'वीर सवत ३२७ मे श्रेष्ठिवर अमराशाह के कर-कमलो द्वारा मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ। अमराजी नगर के रहने वाले थे। ओसवाल समाज मे उनका जन्म हुआ। चूकि सेठ सदैव धर्मकार्यों मे लिप्त रहते थे इसलिए उनके पुण्योदय से एक बार अधिष्ठायक देव ने उनसे स्वप्न मे कहा 'इस नगर से बाहर पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा पूर्व दिशा मे पर्वत की ओर सात-आठ सौ पग की दूरी पर एक गुफा के द्वार से ईशान कोण मे पाँच हाथ गड्ढा खोदने से प्राप्त होगी। उसे मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठित कर जीवन सफल बनाओ।' उसी नगर मे जैनाचार्य श्री देवसूरिश्वरजी म० विराजमान थे। अधिष्ठायक देव ने स्वप्न मे उनसे भी यही बात कही। प्रात काल होने पर अमराजी उनके दर्शन-वन्दन को गए और स्वप्न की बात कही। आचार्य ने उनसे कहा—सेठ! आप भाग्यशाली हैं—आपका कार्य अवश्य सफल होगा—मुझे भी ऐसा ही स्वप्न हुआ है।

नगर का जैन सघ एकत्रित हुआ। आचार्य देव के बताए अनुसार कार्य करने से अत्यन्त मनोरम मूल्यवान प्रतिमा प्राप्त हुई जिसे देख कर आसपास के गाँव वाले सभी मिल कर जयजयकार करने लगे और अपने अपने गाँव को ले जाने की बात करने लगे। तब आचार्य श्री ने कहा—नही, यह प्रतिमा अमराजी द्वारा बनने वाले मन्दिर मे ही विराजमान की जाएगी। अत· गुरुवर की आज्ञा शिरोधार्य कर वि० स० ३३१ बैशाख शुक्ला १० को शुभ मुहूर्त मे यह कार्य सम्पन्न हुआ। प्रतिष्ठा होने के उपरान्त अधिष्ठायक देव की कृपा से इस नगर की कीर्ति चारो ओर फैलने लगी। नित्य नए नए चमत्कार देखने को मिलने लगे और इस प्रकार यात्रियो की मनोकामनाएँ पूरी होने से मन्दिर तीर्थ के रूप मे विख्यात हो गया।

जीर्णोद्धार

प्रतिष्ठा काल के पश्चात लगभग चार सौ बत्तीस वर्ष उपरात वीर सम्वत ७६३ मे दस सहस्र यात्रियो का एक सघ इस तीर्थ पर आया; सघपति ओसवालकुलभूषण श्रेष्ठिवर जेतासा खेमासा थे और महान प्रभावक आचार्य श्री मेरुसूरीश्वरजी महाराज के सान्निध्य मे निकला। इसका शिलालेख विद्यमान है किन्तु समय अधिक होने से अब पढने मे नही आता इसलिए यह बताना बडा कठिन है कि सघ किस गाँव से आया। सघपति ने मन्दिर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था देख कर गुरुदेव से जीर्णोद्धार का भी अनुरोध किया। आचार्यश्री की अनुमोदना से नवचौकी खेडामण्डप आदि का जीर्णोद्धार कराने मे सेठ ने बहुत सारा द्रव्य व्यय किया। इसके पश्चात लगभग दो सौ सत्तर वर्ष व्यतीत होने पर वी० स० १०३३ मे आचार्य श्री सहजानन्दजी महाराज के सदुपदेश द्वारा नेमला नगर के सेठ श्री हरदास ने बहुत बडा सघ लेकर यात्रा की और जीर्णोद्धार कराया।

स्वप्न और उपद्रव

सघपति सेठ हरदास को रात्रि के समय स्वप्न हुआ कि प्रात काल होने पर भगवान के प्रक्षाल का जल सारे सघ पर छिटक देना जिससे शान्ति रहेगी अन्यथा उपद्रव होने की आशका है। सेठ दूसरे कार्यो मे व्यस्त हो गया और अधिष्टायक देव द्वारा स्वप्न मे कही हुई बात भूल गया। फिर क्या था सघ मे ऐसा रोग फैला कि सँभलना कठिन हो गया। सघपति वहुत चिन्तित हुए, उन्होने गुरुदेव से इस आकस्मिक विपत्ति के निराकरण हेतु निवेदन किया। आचार्यश्री ने परमपावन प्रभु के चरणो मे बैठकर ध्यान लगाया, तव अधिष्टायक देव द्वारा उन्हे भी चेतावनी देकर वही बात कही गई तब प्रात काल होने पर प्रक्षाल का जल छिडका गया और सघ मे शान्ति स्थापित हुई।

मन्दिर पर आक्रमण

इस्लामी शासन मे हिन्दुओ पर अनेक अत्याचार किए गए। राज्य-मद के नशे मे उन्होने धर्मान्धता के कारण मन्दिरो का विनाश कर मूर्तियो को खण्डित करना प्रारम्भ कर दिया। मन्दिरो के सामान से मस्जिदे बना कर शास्त्रो की होली जलाई गई। तात्पर्य यह है कि उन्होने भारतीय सस्कृति को मिटाने मे कोई कमी नही रखी किन्तु जीरावला जैन सघ शक्तिशाली था, उन्होने थोडे समय के उपरान्त ही पुन प्रतिष्ठा कराकर भगवान की सेवा पूजा चालू कर दी।

अद्भुत चमत्कार

जीरावला गाव मे एक कडुकर नामक ब्राह्मण था जो धर्मज्ञ, विद्वान और सेवाभावी था। उसके पास श्वेत रग की एक गाय थी जो दूर जगल मे जाकर सदैव एक स्थान पर सारा दूध टपका आती और घर आकर एक बूद भी दूध नही देती। तव ब्राह्मण ने इसकी चर्चा श्रावक धन्नाशाह से की। उसको स्वप्न मे यही सन्देश मिला कि जहा गाय दूध टपकाती है उसके नीचे भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, उसे पाच दिवस व्यतीत होने पर मन्दिर मे विराजमान करना। धन्नाजी ने ऐसा ही किया। यह शुभ कार्य उपकेशगच्छीय आचार्य श्री देवगुप्तसूरिजी म जीरापल्लीगच्छीय आचार्य श्री रामचद्रसूरिजी म ने सम्पन्न कराया। प्रतिष्ठा का समय शिलालेखानुसार वि स० १४२१ जेठ सुदि १० वुधवार जानने मे आता है।

आचार्यों के चातुर्मास

नगर कितना बड़ा था यह इससे भी जाना जा सकता है कि निम्न आचार्यों ने चातुर्मास किए—

१	आचल	गच्छीय श्री	मेरुतुङ्गसूरिश्वरजी म०	१५२	शिष्यो सहित
२	आगम	,, ,,	हेमराज ,,	७५	,, ,,
३	उपकेश	,, ,,	देवगुप्त ,,	११३	,, ,,
४	आगम	,, ,,	देवरत्न ,,	४८	,, ,,
५	उपकेश	,, ,,	कक्कसूरिश्वर	७१	,, ,,
६	,,	,, ,,		२६	,, ,,
७	खरतर	,, ,,	तिलक ,,	५३	,, ,,
८	तप	,, ,,	कीर्तिरत्न ,,	३१	,, ,,
६	,,	,, ,,	जयतिलक ,,	६८	,, ,,
१०	,,	,, ,,	मुनिसुन्दर ,,	४१	,, ,,
११	जीरापल्ली	,, ,,	उपाध्याय खेमचन्द गणि	५०	,, ,,
१२		,, ,,	रत्नप्रभसूरिश्वरजी म०	६५	,, ,,
		,,	देवचन्द्र ,, ,,	६१	,, ,,

इनके अतिरिक्त कई साधु-मुनिराजो के भी चातुर्मास हुए। अन्य कितने ही धर्मकार्यों के होने का ज्ञान भी शिलालेखो से मिलता है।

दर्शनार्थ आने वाले संघों का विवरण

१ वी० स० ७६३ मे आचार्य श्री मेरुसूरिश्वरजी महाराज के सान्निध्य मे दस हजार यात्रियो का सघ।

२ वी० स० ६४१ मे जैनाचार्य · सूरिश्वरजी म० के सानिध्य मे सत्रह हजार यात्रियो का सघ। सघपति बडली नगर-निवासी लक्ष्मणशाह थे।

३ वी० स० · मे जैनाचार्य श्रीमद्देवसूरिश्वरजी म० के सान्निध्य मे पाँच हजार यात्रियो का सघ। सघपति श्रीमाल गोत्रीय जारहा सेठ थे।

४ वी० स० १२६३ मे पाँच हजार यात्रियो का सघ कोरटगच्छीय जैनाचार्य श्रीकक्कसूरिजी के सान्निध्य मे आया। सघपति पोरवाल जाति के श्रेष्ठीवर ग्रामनिवासी थे।

५ वी० स० १३०३ मे चित्रवालगगच्छीय जैनाचार्य श्री · देवसूरीश्वरजी म के सान्निध्य मे आठ हजार यात्रियो का सघ आया। सघपति श्री थे।

(६) वि स० १३६८ मे तपागच्छीय जैनाचार्य श्री विजयहर्ष सूरीश्वरजी म के सान्निध्य मे पाच हजार यात्रियो का सघ आया। सघपति ओसवाल सचेती गोत्रीय सेठ खेमासा थे।

(७) वी. स० १४६८ मे खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री जिनपद्म सूरीश्वरजी म केसान्निध्य मे ग्यारह हजार यात्रियो का सघ आया। सघपति ओसवाल चौरडिया भानाशाह थे।

(८) वी स० १४७५ मे तपागच्छीय जैनाचार्य श्री हेमन्तसूरीश्वरजी म के सान्निध्य मे आठ हजार यात्रियो का सघ आया। सघपति ओसवाल राका गोत्रीय सेठ .थे।

(९) वी स० १४९१ मे खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री भव्यगणिजी म के सान्निध्य मे पाच हजार यात्रियो का सघ आया। सघपति ओसवाल गोत्रीय सेठ . थे।

(१०) वी स १५०१ के चित्रवालगच्छीय जैनाचार्य के सान्निध्य मे पोरवाल श्रेष्ठिवर श्री पुनाशाह तीन हजार यात्रियो का सघ लेकर आए।

(११) वी स १५२७ मं जीरापल्ली गच्छीय आचार्य भानुचद्र सूरीश्वर वी म के सान्निध्य मे पाच हजार यात्रियो का सघ लेघर सेठ खेमाशाह पोरवाल आए।

(१२)वी स १५३६ मे गच्छीय आचार्य श्री लक्ष्मीसागर सूरीश्वरजी म के सान्निध्य मे पाच हजार यात्रियो का सघ आया। सघपति ओसवाल चौपडा गोत्रीय करमा शाह थे।

यह तो उन सघो का विवरण हैं जिसके लेख विद्यमान है अन्यथा छोटे वडे मूक कीर्ति धारण किए हुए न जाने कितने छोटे वडे सघ आए होगे। जैन धर्म मे सघ का वडा ही महत्व कहा गया है। तनिक सोचिए तो पूर्वकाल मे जब कि मोटर, कारे, रेले व अन्य सवारिया नही थी तब हजारो श्रावक-श्राविकाओ के इस प्रकार के चतुर्विध सघो मे कितना द्रव्य तथा समय लगता होगा।

श्री जीरावला पार्श्वनाथजी तीर्थ बहुत प्राचीन है। यहाँ बावन जिनालय हैं। जीर्णोद्धार भी अभी थोडे वर्षो पूर्व ही हुआ है। मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूल प्रतिमा तो इस समय नही है किन्तु जो भी एक छोटी सी प्रतिमा विराजमान है वह भी बडी चमत्कारी है। तीर्थ मे यात्रियो के ठहरने हेतु एक धर्मशाला भी है। सामने ही एक बडी वाटिका है जिसमे पूजा के लिए पुष्प तो मिलते ही हैं, अरण्य ककडी तथा नीबू आदि भी मिल जाते हैं। यहाँ मन्दिर की एक छोटी बस भी है जो आबू रोड से यात्रियो का सबध स्थापित करती है नि शुल्क।

यह तीर्थ सिरोही से लगभग ४० मील दूर है। वहाँ से भी बसे आती जाती हैं। चातुर्मास मे यात्रियो का आना जाना कम ही होता है। तीन वर्ष पूर्व मुझे भी यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुझे इस बात से बडी प्रसन्नता हुई कि तीर्थ पर सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। मन्दिर के अतिरिक्त प्राकृतिक शोभा भी देखने योग्य है। यही कारण है कि इस तीर्थ की यात्रा से मन को शाति एव सुख प्राप्त होता है। एकान्तवास, शुद्ध वातावरण और निर्मल बुद्धि होने से प्रभु-भक्ति मे विशेष मन लगता है। सक्षेप मे यह विवरण मैंने जीरावला पार्श्वनाथ महात्म्य मे से लिखा है। तीर्थ का विस्तृत इतिहास लिखा जाना अत्यावश्यक है। आशा है कि जैन-अजैन विद्वान इस ओर ध्यान देकर इस कमी को पूरा करने का सद्प्रयत्न अवश्य करेगे।

जैसलमेर जैन-तीर्थ का संक्षिप्त इतिहास

ले० मानचन्द भण्डारी, जोधपुर

सतरहवी शताब्दी मे श्री समयसुन्दरजी म० एक महान कवि हो गए हैं जिन्होने स्तवन, सझाय, रास, इत्यादि ऐसे रोचक ढग से बनाए जिनका जैन सघ मे बडा आदर है। उन्होने सारे तीर्थों का एक स्तवन बनाया उसमे जैसलमेर का वर्णन भी किया है।

जैसलमेर जुहारिये, दुख वारिये रे।
अरिहन्त बिब अनेक, तीर्थ तेनमू रे ।।

वास्तव मे कविवर ने जो लिखा सोलह आना सत्य है। राजस्थान मे जैसलमेर को बरावरी करने वाला कोई तीर्थ नही है। इस युग में भी प्रति वर्ष हजारो यात्री दर्शनार्थ जाते हैं और इसके पीछे ही अन्य तीर्थ नाकोडा, कापरडा, भेरुबाग की आय होती है। यही नही त्यागी वर्ग, साधु-साध्वीजी म० भी इस तीर्थ की यात्रा करने पधारते हैं तो जोधपुर मे उनके दर्शन होते हैं और चतुर्मास भी हो जाते हैं। यदि जैसलमेर तीर्थ की यात्रा का महत्व नही होता तो उपरोक्त क्षेत्र मे न आय होनी न साधु-साध्वियो के दर्शन ही होते अत जैसलमेर तीर्थ की देन है और हमे उसका गौरव व आभार मानना चाहिए।

जैसलमेर भारत व पाकिस्तान की सीमा पर स्थित राजस्थान प्रदेश का उत्तरी केन्द्र है। जैसलमेर जाने के लिए जोधपुर से रेल जाती है और बसे भी जाती हैं। जोधपुर से जैसलमेर लगभग १८०–८५ मील दूरी पर रेगिस्तान मे बसा हुवा है। बाडमेर से १०० मील है और पक्की सडक है। जैसलमेर वि स १२१२ के श्रावण सुदि २ को रावल जैसलजी ने बसाया और उन्होने अपने नाम से इसका नाम जैसलमेर रखा। इसका क्षेत्रफल १६०६१ वर्गमील था इन पर भाटियो का राज्य रहा। इस राज्य मे वर्षा की औसत ५-६ इच है किन्तु यहाँ बरसात पूरी कभी होती ही नही। अभी पिछले ६-७ वर्ष से लगातार अकाल पडने के कारण पशु धन की काफी हानि हुई है, अन्यथा यहा गायो की सख्या लाखो पर थी। यहाँ के ऊँट बडे रूपवान होते हैं जिनको रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। ऊँट अपना पेट अकाल मे भी किसी तरह भर लेते हैं किन्तु इस वर्ष के अकाल ने उन्हे भी परेशानी मे डाल दिया याने काफी सख्या मे ऊँट भी मरे हैं। यह एक प्राकृतिक लीला है जिसको कोई मिटा नही सकता। यहाँ के लोग बडे भद्र हैं।

जैसलमेर की यात्रा पहले बड़ी कठिन थी किन्तु अब रेल व बसो का आवागमन होने

से यात्रा सुलभ बन गई है। जैसलमेर नगर मे विशाल जैन-मन्दिर है जिनमे लगभग ६५०० जिन-प्रतिमाएँ हैं। जैसलमेर मे पत्थर की खान है जिसमे पीला पत्थर निकलता है जिसकी मूर्तियाँ बनती हैं और फर्श मे भी यह पत्थर काम आता है।

पाटन और लोद्रवा नगर का पतन होने से जैसलमेर समृद्धिशाली बना और उसमे २७०० परिवार जैनो के निवास करते थे। काल ने पलटा खाया। आज वहाँ २५-३० घर ही रह गए हैं। जैसलमेर के मन्दिरो की, राजमहलो की और वहाँ के सेठो की हवेलियो की कोरणी देखकर लोग देखते रह जाते हैं। एक कागज पर जो कोरणी नही हो सकती वैसी वहाँ के पत्थर मे की हुई है। वास्तव मे शिल्पकला का खजाना खोल दिया गया है। यहाँ के राजा पहिले जैन धर्म को मान देते थे। यही नही यहाँ की प्रजा को भी जैन धर्म से प्रेम था। इसी कारण किले मे ८ मन्दिर एक पक्ति मे बने हुए हैं जिसकी कोरणी व बनावट देखने योग्य है तथा विवरण निम्न है—

(१) श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिर का तोरण
(२) कलापूर्ण तोरण के द्वार पर अङ्कित भगवान की मूर्ति
(३) शान्तिनाथजी के मन्दिर का सुन्दर शिखर

इसके अतिरिक्त दुर्ग मे गज-निवास, जवाहर-निवास इत्यादि निहारने योग्य हैं—पटवो की हवेली की कोरणी तो दिल को लुभाने वाली है। जैसलमेर मे निम्न जैन-मदिर हैं–

(१) श्री पार्श्वनाथजी का मुख्य मन्दिर। इसमे बावन जिनालय हैं। इस मन्दिर की नीव वि० स० १४५९ मे लगी और १४७३ मे निर्माण कार्य सम्पूर्ण हुआ।

(२) श्री सभवनाथजी का मन्दिर वि० स० १४९४ से १४९७ मे सम्पूर्ण हुआ।

(३) श्री शीतलनाथजी का मन्दिर। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० स० १४७९ मे हुई।

(४) श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १५३६ मे हुई।

(५) श्री कुन्थुनाथजी का मन्दिर। इसमे चौबीस तीर्थंकरो की मूर्तियाँ हैं और अन्य मूर्तियाँ भी कलापूर्ण हैं। प्रतिष्टा कब हुई लिखा हुआ नही है।

(६) श्री चदाप्रभुजी का मन्दिर। इस मन्दिर का निर्माण वि० स० १५०९ मे हुआ है।

(७) श्री ऋषभदेवजी का मन्दिर। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १७८० मे हुई।

(८) श्री महावीर स्वामी का मन्दिर। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १४७३ मे हुई। इस मन्दिर मे कोई खास कारीगरी का काम नही है।

श्री जैसलमेर के एक कलापूर्ण मंदिर का दृश्य
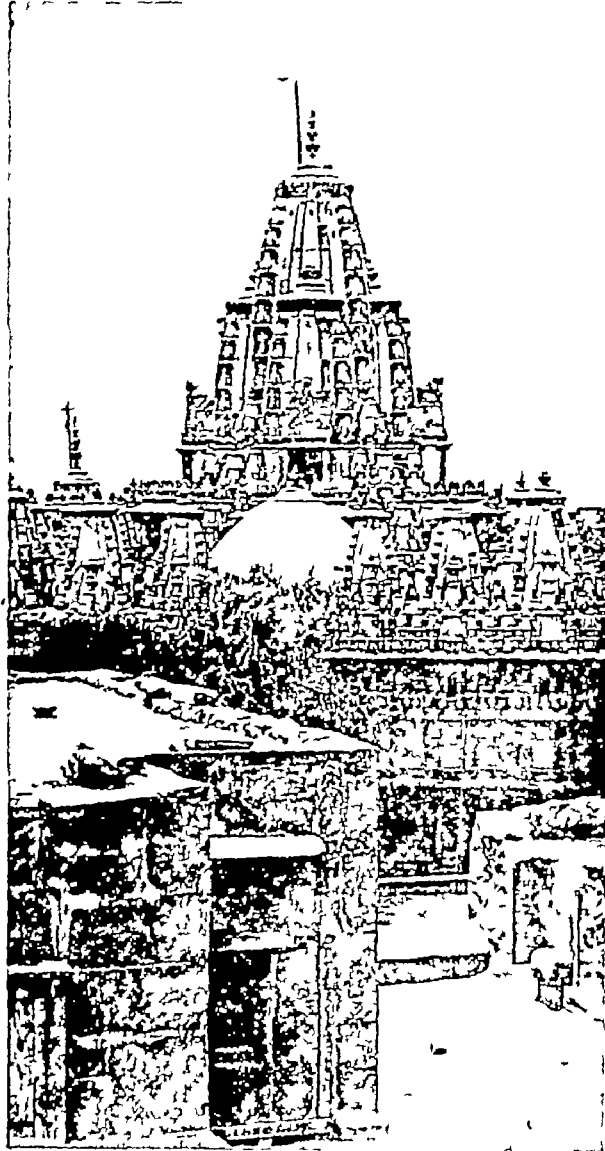
श्री जैसलमेर नगर मे हस्तलिखित जैन शास्त्र
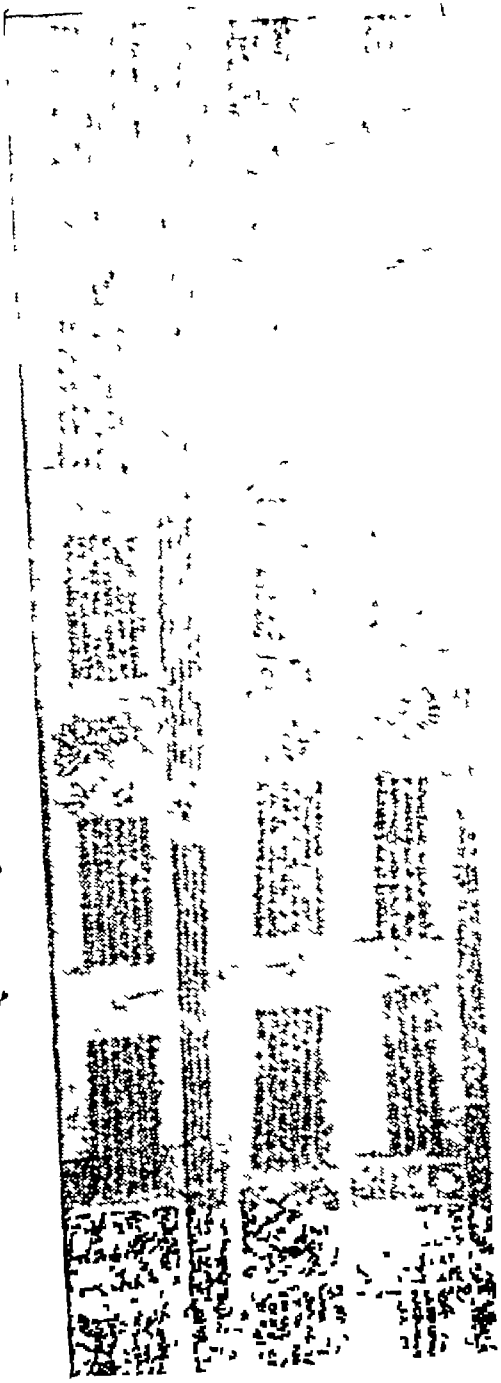
परिचय अगले पृष्ठो पर। यह बहुत प्राचीन भंडार है

यात्रियो का आवागमन बढने से अब वहाँ एक नई धर्मशाला बन चुकी है और यात्रियो को सुविधा के लिए वहाँ भी नए मन्दिर का निर्माण होने वाला है। यहाँ जैन पेढी है और इसकी व्यवस्था श्री जैसलमेर लोद्रवा पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर ट्रस्ट जैसलमेर करता है। ट्रस्ट मे २१ ट्रस्टी भिन्न-भिन्न शहरो के हैं। कार्य ठीक चलता है ऐसा सुना गया है। यहाँ प्राचीन ज्ञान भण्डार हैं जिसका विवरण अगले पृष्ठो पर दिया जा रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत मे रहने वाला प्रत्येक जैनी यहाँ यात्रा करने की इच्छा रखता है और सैकडो कष्ट सहन कर यात्रा करने की इच्छा रखता है। यात्रा कर अपने आपको धन्य मानता है। इस पवित्र भूमि का प्रताप ही ऐसा है कि सैकडो कोस से चल कर इस भूमि को प्रणाम करते हैं।

धन्य जैन शासन ! धन्य जैन आगम !

यहाँ का जैन शास्त्र भडार तो जैन जगत के लिए गौरव की बात है। जितने प्राचीन जैन शास्त्र यहाँ हैं शायद ही कही हो। पाटन मे भी जैन शास्त्रो का भण्डार है किन्तु उसका स्थान इसके पीछे है। इस सबध मे आगम प्रभाकर श्री पुण्यविजयजी महाराज का १५-७-६५ को आकाशवाणी अहमदाबाद केन्द्र से जो समाचार प्रसारित हुआ जिसका हिन्दी अनुवाद विजयानन्द मासिक पत्र अबाला दि० २२-१०-६८ के अक मे छपा उसका विवरण ज्यो का त्यो पाठको की जानकारी के लिए दिया जाता है।

जैसलमेर के जगविख्यात जैन ज्ञान भण्डार यहाँ आए हुए हैं। यह राजस्थान के अनेक देशी राज्यो मे से एक प्राचीन देशी राज्य था। स्वतत्र भारत के अधिकार जमने के बाद अन्य देशी राज्यो की तरह इसका भी विसर्जन हुआ। यह राज्य राजस्थान की वायव्य सरहद पर आया हुआ है। यहाँ से पाकिस्तान की सरहद बहुत दूर नही है। सबसे पहिले इसकी राजधानी लुधरवा (लोद्रवा) मे थी, परन्तु पीछे से राजकीय कारणो से यह जैसलमेर मे लाई गई। तदन्तर यह राज्य जैसलमेर राज्य के रूप मे पहचाना जाने लगा। जैसलमेर मे राजधानी की स्थापना होने के बाद इसकी व्यापार-विषयक आबादी बढने लगी और व्यापारी लोग एव अन्य प्रजा वहाँ बसने लगी। इसके साथ साथ यहाँ जैन-जैनेतर धार्मिक स्थानो का निर्माण होता गया। आज से डेढ सौ वर्ष पहिले जैसलमेर मे जैनो के २७०० घर थे और इसी तरह दूसरी बस्ती भी थी। परन्तु राज्य के साथ किसी बात मे अनबन हो जाने से बहुत से व्यापारी और अन्य प्रजा भी यहाँ से प्रस्थान कर गई। इस तरह राज्य की आबादी घटती गई। पीछे से राज्य के साथ समाधान हुआ। कितने ही व्यापारी आदि वापस आए। फिर भी राज्य की आबादी जम न सकी। इससे व्यापारी आदि लोग धीरे धीरे बाहर जाने लगे। इसलिए आज का जैसलमेर प्राचीन काल के समृद्ध जैसलमेर सा नही रहा। आज यहाँ की प्राचीन आलीशान इमारते इसकी पूर्वकालीन

समृद्धि और आबादी का आभास देती हैं। धीरे धीरे ये इमारते भी गिरती जा रही है और उसके खण्डहर देखने को मिलते हैं।

जैसलमेर के छोटे पहाड पर आए हुए किले मे राज्य के महल हैं, अन्य मकान है और खरतरगच्छीय जैनो द्वारा बनाए हुए, जिसे अति भव्य कला के धाम कह सकें, ऐसे आठ शिखरबद्ध मन्दिर हैं। इनमे अष्टापद चिंतामणि पार्श्वनाथ का युगल मन्दिर और दूसरे दो मन्दिर तो अति भव्य शिल्पस्थापत्य के नमूने हैं। खास करके इन मन्दिरो मे प्रवेश करते इनके तोरणो तथा विविध भावो को प्रकट करती अति भव्य आकृति वाली शालभिकाओ एव उसके स्तम्भो पर उकसाए हुए अनेक विध भव्य रूपो, घुमटो आदि शिल्पसमृद्धि से मन्दिरो की भव्यता मे अनेक गुण-बढावा होता है। हम जब जैसलमेर के भण्डारो को व्यवस्थित कर रहे थे तब यहाँ जर्मन विद्वान डॉ एल आल्सडार्फ आए थे। उन्होने किले के मन्दिरो को देख कर, प्रभावित होकर पूछा कि इन मन्दिरो मे गुजराती कला कहाँ से आई ? यहा के कारीगरो को पूछने पर एक वृद्ध कारीगर ने कहा था कि हमारे गुरु गुजराती थे। गुजरात मे जब मुगलो की सेना फिर रही थी, तब गुजरात की प्रजा उपाधि मे होने से शिल्पियो से काम न ले सकी। इससे वेकार बने हुए शिल्पी निरुपद्रवी राजस्थान प्रान्त मे आए और उन्होने यहाँ की धनाढ्य प्रजा की इच्छानुसार मन्दिर निर्माण का कार्य किया। इसी कारण से यहाँ के और अन्य स्थानो के मन्दिरो की रचना मे गुजराती शिल्पकला का मिश्रण हुआ है।

इस किले मे जैन जैनेतर मन्दिर भी हैं। एक मन्दिर मे सूर्यदेव की मूर्ति है। उससे ऐसा मालूम देता है कि प्राचीनकाल मे यहा सूर्य-पूजा भी होती होगी। यह मन्दिर राज्य के अधीन है। जैसलमेर गाव मे तपागच्छीय श्रावक सघ द्वारा बनाया हुआ जैन मन्दिर है। वह भव्य होने पर भी साधारण प्रकार का है।

जैसलमेर के बाहर घडीसर नामक एक विशाल तालाब है। इसमे जो वर्षा ऋतु मे पानी का आगमन बराबर होता रहे तो यहा की प्रजा दो तीन वर्षो तक पानी का उपयोग करे तो भी पानी न खूटे। इतना पानी का भण्डार इसमे रहता है। यहा पानी के आने के लिए तालाब मे ऐसे रास्ते बनाए गए थे, परन्तु आज इन रास्तो की राज्य ने ऐसी उपेक्षा की है कि जिससे इस तालाब मे प्रजा एक वर्ष मे उपयोग ले सके इतना भी पानी का सग्रह नही हो पाता।

जैसलमेर की आबोहवा के कारण से यहा वर्षा ऋतु मे दो तीन इच पानी बरसे तब तो यह घडीसर तालाब एक महासरोवर जैसा बन जाता है। सामान्यतया जैसलमेर रेगिस्तानमय प्रदेश होने पर भी इसके आसपास की जमीन इतनी मजबूत है कि इस पर पडा हुआ पानी जमीन चूसती नही है। पानी जैसा का तैसा जमा रहता है। इससे लगता

है कि भयकर पवन आदि के कारणो से इस प्रदेश मे कतिपय स्थानो पर रेती जम जाने से रेगिस्तान जैसा हो जाता है। वास्तविक रेती का स्थान तो यहाँ से दूर ही है।

जैसलमेर के वाहर अनेक जैन यतियो की समाधिया है। इसी तरह अन्य अनेक सेठ साहूकार आदि की समाधियाँ भी है, परन्तु उनकी कोई खास देखभाल नही रखी जाने के कारण अमुक समाधियाँ गिरती जा रही है और नई वनती भी जा रही है। यहा आसपास पत्थरो की वडी वडी खाने हैं, जिसमे खारे पत्थरो से मिलते जुलते पत्थर वहुत होते हैं। जैसलमेर मे मकान व वाँध मुख्यतया इन्ही पत्थरो का उपयोग होता है। यहाँ की प्रजा के लिए भी ये पत्थर अति सुलभ हैं। यहाँ के कारीगर इन पत्थरो से कुडियाँ आदि अनेक गृहोपयोगी वस्तुएँ वना कर सस्ते मूल्य पर प्रजा को देते हैं। इसके अतिरिक्त विछिया आदि जाति के पत्थर भी निकलते है, जिसके प्याले, रकावी, खरल आदि अनेक प्रकार की सुन्दर सुन्दर वस्तुएँ बनती हैं। सामान्य प्रजा अपने घरो को रगने मे घडीसर तालाब मे जमी हुई वहुरगी मिट्टी का उपयोग करती है।

इस प्रदेश की सामान्य स्थिति का अवलोकन करने के वाद जैसलमेर के अति महत्व के प्राचीन जैन ज्ञान भडार का अव निरीक्षण करे।

जैसलमेर मे सव मिला कर १० ज्ञान भण्डार हैं। (१) खरतरगच्छीय युगप्रधान आचार्य जिनभद्रसूरि का, (२) खरतरवेगडगच्छ का (३) आचार्य गच्छ का (४) व (५) थाहरू शाह का, (६) डूगरजी का (७) तपगच्छ का (८) लोकागच्छ का (९) आचार्य श्री वृद्धिचदजी महाराज का और (१०) आचार्य श्री लक्ष्मीचदजी महाराज साहव का। इन दस ज्ञान भडारो मे से तपागच्छ और लोकागच्छ के दो ज्ञान भण्डारो को छोड कर बाकी के सव ज्ञानभण्डार खरतरगच्छ की सत्ता और देखरेख मे हैं। इन दस भण्डारो मे से दूसरा, चौथा और आटवाँ इन तीन भण्डारो को किले मे आए हुए खरतरगच्छीय आचार्य जिनभद्रगणी ज्ञानभडार मे मिला दिए गए हैं। ये ज्ञान भडार शान्तिनाथ जैनमदिर के नीचे के भूगर्भ मे अति सुरक्षित रखे गए हैं। इस भूगर्भ के दो दरवाजो को पार करने के पश्चात् छोटीसी खिडकी वाले तृतीय भूगर्भ मे ये भण्डार आए हुए हैं। प्राचीन काल मे पत्थर की मेडी अथवा ताक बनाकर उस पर किले के अति गौरवयुक्त ताडपत्रीय पुस्तक सग्रह को रखा जाता था और उसे वन्द करने के लिए काष्ठ के दरवाजे वनाए जाते थे। अव हमने इन भण्डारो को स्टील के कपाटो मे सुरक्षित रखा है। किले का आचार्य जिन-भद्रीय ज्ञान भण्डार पूरा का पूरा ताडपत्र पर लिखे गए ग्रथो का ही सग्रह है। इसके अतिरिक्त खरतरगच्छीय वडे उपाश्रय मे, आचार्य गच्छ के उपाश्रय मे, और तपागच्छ तथा लोकागच्छ के उपाश्रय मे भी ताडपत्र पर लिखे गए थोडे थोडे ग्रथ हैं। सव मिलाकर ताड़पत्र पर लिखी गई ४०० चार सौ पोथियाँ हैं।

समृद्धि और आबादी का आभास देती हैं। धीरे धीरे ये इमारते भी गिरती जा रही हैं और उसके खण्डहर देखने को मिलते हैं।

जैसलमेर के छोटे पहाड पर आए हुए किले मे राज्य के महल हैं, अन्य मकान हैं और खरतरगच्छीय जैनो द्वारा बनाए हुए, जिसे अति भव्य कला के धाम कह सकें, ऐसे आठ शिखरबद्ध मन्दिर हैं। इनमे अष्टापद चिंतामणि पार्श्वनाथ का युगल मन्दिर और दूसरे दो मन्दिर तो अति भव्य शिल्पस्थापत्य के नमूने हैं। खास करके इन मन्दिरो मे प्रवेश करते इनके तोरणो तथा विविध भावो को प्रकट करती अति भव्य आकृति वाली शालभिकाओ एव उसके स्तम्भो पर उकसाए हुए अनेक विध भव्य रूपो, घुमटो आदि शिल्पसमृद्धि से मन्दिरो की भव्यता मे अनेक गुण-बढावा होता है। हम जब जैसलमेर के भण्डारो को व्यवस्थित कर रहे थे तब यहाँ जर्मन विद्वान डॉ एल आल्सडार्फ आए थे। उन्होने किले के मन्दिरो को देख कर, प्रभावित होकर पूछा कि इन मन्दिरो मे गुजराती कला कहाँ से आई ? यहा के कारीगरो को पूछने पर एक वृद्ध कारीगर ने कहा था कि हमारे गुरु गुजराती थे। गुजरात मे जब मुगलो की सेना फिर रही थी, तब गुजरात की प्रजा उपाधि मे होने से शिल्पियो से काम न ले सकी। इससे बेकार बने हुए शिल्पी निरुपद्रवी राजस्थान प्रान्त मे आए और उन्होने यहाँ की धनाढ्य प्रजा की इच्छानुसार मन्दिर निर्माण का कार्य किया। इसी कारण से यहाँ के और अन्य स्थानो के मन्दिरो की रचना मे गुजराती शिल्पकला का मिश्रण हुआ है।

इस किले मे जैन जैनेतर मन्दिर भी हैं। एक मन्दिर मे सूर्यदेव की मूर्ति है। उससे ऐसा मालूम देता है कि प्राचीनकाल मे यहा सूर्य-पूजा भी होती होगी। यह मन्दिर राज्य के अधीन है। जैसलमेर गाव मे तपागच्छीय श्रावक सघ द्वारा बनाया हुआ जैन मन्दिर है। वह भव्य होने पर भी साधारण प्रकार का है।

जैसलमेर के बाहर घडीसर नामक एक विशाल तालाब है। इसमे जो वर्षा ऋतु मे पानी का आगमन बराबर होता रहे तो यहा की प्रजा दो तीन वर्षो तक पानी का उपयोग करे तो भी पानी न खूटे। इतना पानी का भण्डार इसमे रहता है। यहा पानी के आने के लिए तालाब मे ऐसे रास्ते बनाए गए थे, परन्तु आज इन रास्तो की राज्य ने ऐसी उपेक्षा की है कि जिससे इस तालाब मे प्रजा एक वर्ष मे उपयोग ले सके इतना भी पानी का सग्रह नही हो पाता।

जैसलमेर की आबोहवा के कारण से यहा वर्षा ऋतु मे दो तीन इच पानी बरसे तब तो यह घडीसर तालाब एक महासरोवर जैसा बन जाता है। सामान्यतया जैसलमेर रेगिस्तानमय प्रदेश होने पर भी इसके आसपास की जमीन इतनी मजबूत है कि इस पर पडा हुआ पानी जमीन चूसती नही है। पानी जैसा का तैसा जमा रहता है। इससे लगता

है कि भयकर पवन आदि के कारणो से इस प्रदेश मे कतिपय स्थानो पर रेती जम जाने से रेगिस्तान जैसा हो जाता है। वास्तविक रेती का स्थान तो यहाँ से दूर ही है।

जैसलमेर के बाहर अनेक जैन यतियो की समाधिया हैं। इसी तरह अन्य अनेक सेठ साहूकार आदि की समाधियाँ भी हे, परन्तु उनकी कोई खास देखभाल नही रखी जाने के कारण अमुक समाधियाँ गिरती जा रही हैं और नई बनती भी जा रही हैं। यहा आसपास पत्थरो की बडी बडी खाने हैं, जिसमे खारे पत्थरो से मिलते जुलते पत्थर बहुत होते हैं। जैसलमेर मे मकान व बाँध मुख्यतया इन्ही पत्थरो का उपयोग होता है। यहाँ की प्रजा के लिए भी ये पत्थर अति सुलभ है। यहाँ के कारीगर इन पत्थरो से कुडियाँ आदि अनेक गृहोपयोगी वस्तुएँ बना कर सस्ते मूल्य पर प्रजा को देते है। इसके अतिरिक्त विछिया आदि जाति के पत्थर भी निकलते हैं, जिसके प्याले, रकाबी, खरल आदि अनेक प्रकार की सुन्दर सुन्दर वस्तुएँ बनती हैं। सामान्य प्रजा अपने घरो को रगने मे घडीसर तालाब मे जमी हुई बहुरगी मिट्टी का उपयोग करती है।

इस प्रदेश की सामान्य स्थिति का अवलोकन करने के बाद जैसलमेर के अति महत्व के प्राचीन जैन ज्ञान भडार का अब निरीक्षण करे।

जैसलमेर मे सब मिला कर १० ज्ञान भण्डार हैं। (१) खरतरगच्छीय युगप्रधान आचार्य जिनभद्रसूरि का, (२) खरतरबेगडगच्छ का (३) आचार्य गच्छ का (४) व (५) थाहरू शाह का, (६) डूगरजी का (७) तपगच्छ का (८) लोकागच्छ का (९) आचार्य श्री वृद्धिचदजी महाराज का और (१०) आचार्य श्री लक्ष्मीचदजी महाराज साहब का। इन दस ज्ञान भडारो मे से तपागच्छ और लोकागच्छ के दो ज्ञान भण्डारो को छोड कर बाकी के सब ज्ञानभण्डार खरतरगच्छ की सत्ता और देखरेख मे हैं। इन दस भण्डारो मे से दूसरा, चौथा और आटवाँ इन तीन भण्डारो को किले मे आए हुए खरतरगच्छीय आचार्य जिनभद्रगणी ज्ञानभडार मे मिला दिए गए हैं। ये ज्ञान भडार शान्तिनाथ जैनमदिर के नीचे के भूगर्भ मे अति सुरक्षित रखे गए हैं। इस भूगर्भ के दो दरवाजो को पार करने के पश्चात् छोटीसी खिडकी वाले तृतीय भूगर्भ मे ये भण्डार आए हुए हैं। प्राचीन काल मे पत्थर की मेडी अथवा ताक बनाकर उस पर किले के अति गौरवयुक्त ताडपत्रीय पुस्तक सग्रह को रखा जाता था और उसे बन्द करने के लिए काष्ठ के दरवाजे बनाए जाते थे। अब हमने इन भण्डारो को स्टील के कपाटो मे सुरक्षित रखा है। किले का आचार्य जिन-भद्रीय ज्ञान भण्डार पूरा का पूरा ताडपत्र पर लिखे गए ग्रथो का ही सग्रह है। इसके अतिरिक्त खरतरगच्छीय बडे उपाश्रय मे, आचार्य गच्छ के उपाश्रय मे, और तपागच्छ तथा लोकागच्छ के उपाश्रय मे भी ताडपत्र पर लिखे गए थोडे थोडे ग्रथ हैं। सब मिलाकर ताडपत्र पर लिखी गई ४०० चार सौ पोथियाँ हैं।

पुस्तको की सख्या की दृष्टि से तो ऊपर जिन दस भण्डारो का नाम दिया गया है उन सब मे १२ या १३ हजार से अधिक नही हैं। इसमे सामान्यतया प्राचीन ताडपत्रीय महत्व के ग्रथ हैं। ग्रथ सख्या की दृष्टि से २०-२५ या ५० हजार या उससे भी अधिक ग्रथ सख्या वाले गुजरात मे पाटन, अहमदाबाद, खभात, बडौदा आदि के ज्ञानभडार हैं। परन्तु, उन ज्ञानभडारो के ग्रथ अनेक बार देखे गए होने से तथा उनमे रही हुई साहित्यादि से सबधित सामग्री सहज सुलभ होने से उसका महत्व होने पर भी विद्वानो को वह आकर्षक नही लगती। उसके लिए उनकी उर्मियाँ, उत्कण्ठा बहुत शात होती है, जब कि यहाँ के भण्डार दूर प्रदेश मे तथा इन भण्डारो को साहित्यिक सामग्री का अवलोकन दुर्लभ व दुष्कर होने से इनका महत्व अधिक लगे यह स्वाभाविक ही है।

जैसलमेर के ताडपत्रीय ज्ञान-भण्डार मे काष्ठचित्र-पट्टिकाएँ या स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी आदि ग्रन्थो की अपूर्व व अलभ्य सामग्रियाँ भरी पडी हैं। इनसे यहाँ के ज्ञानभण्डारो का महत्व बहुत बढ जाता है। साथ ही साथ यहाँ के ताडपत्रीय भण्डारो मे से ऐसे बहुत से ग्रन्थ ताडपत्र पर लिखे हुए हैं, जो अति प्राचीन हैं। इनकी प्रतिलिपियाँ अन्यत्र कही मिलना सम्भव नही। इसीलिए ये ग्रन्थ सशोधन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। यहाँ के ज्ञानभण्डारो मे चित्र-समृद्धि तथा प्राचीन काष्ठपट्टिकादि सामग्रियाँ इतनी विपुल प्रमाण मे सग्रहीत या सुरक्षित हैं जिनसे भण्डारो का मूल्य बहुत बढ जाता है। १३वी से १५वी शती तक मे चित्रित की गई काष्ठचित्र पट्टिकाओ का यहाँ इतना बडा सग्रह है कि जो अपनी प्राचीन सस्कृति की गौरवभरी साक्षी रूप है। इन चित्रपट्टिकाओ मे जैन तीर्थकरो के जीवन-प्रसगो, कुदरती दृश्यो, अनेक प्राणियो की आकृतियो आदि से सबधित विविध दृश्य देखने को मिलते हैं, जिन्हे देख कर सब लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

१३वी शती मे चित्रित की गई एक पट्टिका मे जीराफ का चित्र है। उस पर से भारतीय प्रजा को प्राणियो के प्रति कैसा सहजानुराग था, वह जाना जा सकता है। जीराफ भारतीय प्रदेश का प्राणी नही है, यह समझ कर भारतीय प्राणी सग्रहालय मे इसे बसाया गया होगा जिसे देख कर चित्रकार ने प्राणी का चित्र बनाया।

इन पट्टिकाओ के रग, रगो मे मिलाया जाता रोगन (वारनिश) आदि की बनावट इतनी महत्वपूर्ण है कि इन चित्र-पट्टिकाओ को पाँच सात सौ वर्ष बीत जाने पर भी इनके रग फीके या काले नही पडे और न उखडे। यह अति महत्व की बात है।

प्राचीन ताडपत्रीय प्रतियो मे जिन जैन तीर्थकरो, जैन आचार्यों और ग्रन्थ लिखाने वाले श्रेष्ठिवर्यों आदि के चित्र हैं, उनके रग भी आज ज्यो के त्यो दृष्टिगोचर होते हैं। वाटर कलर जैसे ये रग होने पर भी इनमे मिलाया गया श्लेषद्रव्य ऐसे मिलाया गया है कि जिससे रगो मे जरा भी फीकापन या दूसरे पन्नो के साथ रग नही चिपकता। इस पर से

अपने को स्पष्टतया मालूम होता है कि उस काल मे अपने पास रग बनाने आदि से सवधित महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कला थी। इसके अतिरिक्त ताडपत्रीय प्रतियो मे जहाँ-जहाँ ग्रन्थ के खास विभाग और प्रकरण समाप्त होते है वहाँ-वहाँ काली स्याही से चक्र, कमल आदि विविध प्रकार के सुशोभन चित्रित किये जाते थे, जिससे ग्रन्थ की उस विभाग समाप्ति को हम बिना परिश्रम के ढूढ सके। ऐसे सुशोभनो वाली अनेक ताडपत्रीय प्रतियाँ यहाँ किले के ताडपत्रीय ग्रन्थसग्रह मे हैं।

प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थो की समृद्धि सख्या की दृष्टि से पाटन के भण्डार बढेचढे हैं। फिर भी जैसलमेर के भण्डारो मे जो विशेषता है वह अन्यत्र कही नही है। यहाँ के भण्डार मे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित 'विशेषावश्यक महाभाष्य' की प्रति प्राचीन ताडपत्रीय पोथी है। लेखनसवत स्पष्ट नही है फिर भी लिपि के स्वरूप को देखते ही ९वी या १०वी शती के प्रारभ मे पोथी लिखी गई हो ऐसा लगता है। इस पोथी ने यहाँ के भडारो का गौरव अधिक बढाया है। प्राचीन लिपियो के अभ्यासियो के लिए इस पोथी का बहुत ही महत्व है। इस पोथी के आधार पर उस समय की लगभग सम्पूर्ण कही जा सके, ऐसी एक वर्णमाला तैयार की जा सकती है, जो लिपि-विशारदो को उस युग की पहले और पीछे की दो दो शतियो की लिपियो को पढ सकने मे मदद कर सके।

इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी ज्ञानभण्डार मे प्राप्त न हो सके, ऐमी प्राचीन यानि वि० स० १२४६ व १२७८ आदि मे कागज पर लिखे गए षडशीतिटिप्पणक आदि ग्रन्थो का प्राचीन सग्रह किले के भण्डार के साथ सलग्न किए गए खरतर बेगडगच्छ के भण्डार मे है। यह इन भण्डारो की भव्य विशेषता है। डा० वेबर को एशिया के चार कन्द नगर के दक्षिण की ओर दस मील दूरी पर आए हुए कुगिअर गाँव मे से चार नाटको की नकले मिली हैं जो ई० सन् ५वी या ६ठी शती मे लिखी गई मानी जाती हैं। परन्तु अब तक जैन ज्ञान-भण्डारो मे ऊपर बताई गई प्रतियो के सिवाय अन्य कोई कागज पर लिखी गई प्राचीन प्रतियाँ मिली हो, ऐसा सुनने मे नही आया। इस प्रकार ये ज्ञानभण्डार साहित्यिक सशोधन की दृष्टि से अति महत्व के हैं।

जैसलमेर के ज्ञानभण्डारो के विषय मे इतना बता देने के बाद अब हम उसकी साहित्यिक सम्पति का निरीक्षण करे। यहाँ के या अन्य कही के जैन ज्ञानभण्डार यानी दूसरे साम्प्रदायिक ज्ञानभण्डारो की तरह साम्प्रदायिक साहित्य का सग्रह समझना चाहिए। इसी तरह इन ज्ञानभण्डारो के ताडपत्रीय और अन्य ज्ञानसग्रह को भी समझना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करे तो इन भण्डारो को वैदिक जैन और बौद्ध ग्रथो की खानरूप मानना चाहिए। इनमे हर प्रकार के साहित्य का सग्रह होने से भारतीय प्रजा का यह अनमोल खजाना है।

व्याकरण, प्राचीन काव्य, कोष, छद-ग्रथ, अलकार-साहित्य और नाटक आदि की प्राचीन अलभ्य गिनी जा सके ऐसी विशाल सामग्री यहाँ है। इन भण्डारो मे वैदिक तथा बौद्ध साहित्य सशोधन की अपार व अपूर्व सामग्री भी है। दार्शनिक तत्व सग्रह की १२वी शती के उत्तरार्द्ध मे लिखी गई प्रति भी यहाँ मौजूद है।

जैन आगम ग्रथो की प्राचीन प्रतियाँ इस ज्ञानभण्डार मे बहुत हैं जो जैन आगमो के सशोधन आदि के लिए अत्यन्त महत्व की हैं। आगम साहित्य मे से दशवेकालिक सूत्र पर लिखी गई अगस्त्यसिह स्थवर की प्राचीन प्राकृत टीका यानी चूर्णि आज दूसरे किसी भी ज्ञानभण्डार मे नहा है, वह यहाँ है। पादलिप्तसूरिकृत ज्योतिष्करडक प्रकीर्णकवृत्ति की प्राचीन प्रति भी इस भण्डार मे है। जैनाचार्य की यह रचना ज्योतिर्विदो के लिए आकर्षण रूप है। इसकी प्रतिलिपि अन्यत्र कही देखने मे नही आई। बौद्ध दार्शनिक साहित्य पर तत्व सग्रह और उस पर की व्याख्या धर्मोत्तर पर मल्लवादि की और अन्य व्याख्याओ की प्राचीन व मौलिक रचनाओ की अति शुद्ध नकलो की पूर्ति इन्ही भण्डारो से होती है। जयदेवीय छन्दशास्त्र तथा उस पर लिखी गई टीका कई सिट्ठ व उसकी व्याख्या आदि छदग्रथ जैसलमेर मे ही हैं। वक्रोक्ति जीवित और प्राकृत भाषा मे रचे गए अलङ्कार ग्रथ, रुद्रकाव्यालकार, काव्यप्रकाश पर लिखी गई सोमेस्वर की व्याख्या, अभिधावृति, मातृका, महामात्य, अम्बादासकृत कल्पलता और सकेत पर की पल्लवशेष व्याख्या की सम्पूर्ण प्रति भी इसी भण्डार मे सुरक्षित है। इस प्रकार ये भण्डार मात्र साम्प्रदायिक दृष्टि से ही नही परन्तु व्यापक दृष्टि से भी बहुत महत्व के हैं।

साहित्यिक सामग्री के अतिरिक्त इन मे चित्रसमृद्धि, काष्ठपट्टिकाएँ आदि जिनका कि परिचय मैं ऊपर करा चुका हूँ, वे और ग्रन्थो के अन्त मे लिखी गई प्राचीन ग्रन्थ लेखको की पुष्पिकाओ को देखते, उनमे जो ऐतिहासिक, सास्कृतिक बातो की टिप्पणियाँ हैं, वे भी कोई कम मूल्य की नही। उदाहरणत मलधारी हेमचन्द्र सूरिकृत भवभावना प्रकरण स्वोपज्ञ टीका की एक प्रति है जो वि० स० १२४० मे लिखी गई है। उसमे पादरा, वासद आदि गाँवो का उल्लेख है इत्यादि अकल्प्य ऐतिहासिक और सास्कृतिक सामग्री इन भण्डारो मे भरी पडी है। इसलिए ये ज्ञान-भण्डार भारतीय तथा विदेशी जैन-जैनेतर विद्वानो के आकर्षण केन्द्र बने हुए हैं। इनका ऐतिहासिक, साहित्यिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक मूल्य है—यह निर्विवाद कहा जा सकता है। यह एक प्राचीन पावन धरोहर है, जिसका सरक्षण तथा सुरक्षा हमारा परम कर्त्तव्य है।

राजस्थान का पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र जैसलमेर का सुप्रसिद्ध जैन-तीर्थ लोद्रवा

ले० भूरचन्द जैन, बाडमेर (राज०)

पीतवर्णी पाषाणो की नगरी जैसलमेर जिसकी पाषाणकला जगतविख्यात है। रेतीले टीलो की यह धरती प्राकृतिक प्रकोपो के कारण अवश्य ही पीडित रही है, परन्तु देश की अखण्डता और एकता बनाने के लिये इस धरती मे पैदा होने वाले इन्सान ने सदा ही मान-मर्यादा की आन रखी है। एक ओर मातृभूमि की रक्षा करने वाले वीरो ने अपनी तलवार की चमक बताई है तो दूसरी ओर शिल्पकारो ने अपनी छेनी और हथौडी की कला का खुला प्रदर्शन किया है। वीरो की गौरव-गाथाओ से आज इतिहास अमर हो उठा है तो शिल्पकारो की कला से जैसलमेर क्षेत्र का एक एक पाषाण मुँह बोलती कहानी कह रहा है। जाली और झरोखो का जैसलमेर राजसी ठाटबाट के लिए तो विख्यात रहा ही है वहाँ धार्मिक कला के निर्माण मे भी कदापि पीछे नही रहा है। इस धरती की गोद मे एक नही अनेको ऐसे धार्मिक स्थान हैं जिनकी ख्याति समस्त भारतवर्ष मे फैली हुई है, जिनके दर्शन और यात्रा करने के लिये देश के कोने-कोने से यात्री आया करते हैं। ऐसा एक सुप्रसिद्ध जैन तीर्थस्थान लोद्रवा भी है।

लोद्रवा जैसलमेर नगर से १० मील पश्चिमोतर दिशा मे आया हुआ है, जो जैसलमेर की प्राचीन राजधानी के नाम से विख्यात है। जैसलमेर की स्थापना से पूर्व यह नगर लोद्र राजपूतो की राजधानी थी जिसे देवगढ के भाटी देवराज ने लोद्र राजपूतो से यह समृद्धिशाली नगर प्राप्त कर अपनी देवगढ राजधानी को वि० स० १०८२ मे बदल कर लोद्रवा राजधानी बना दी। उस समय लोद्रवा एक विशाल नगर था, जिसके करीबन १२ बडे-बडे प्रवेश-द्वार थे और दस मील के घेरे मे इसके पाषाण अभी भी बिखरे दृष्टिगोचर होते हैं। उस समय जैन धर्मानुयायियो के एक नही अनेको देवस्थान भी थे। भारत का प्राचीन विश्वविद्यालय भी लोद्रवा मे रहा है। लोद्रवा एव इस क्षेत्र के अन्य स्थानो से प्राप्त प्राचीन ग्रन्थो का सग्रह आज भी जैसलमेर किले मे स्थित जैन मन्दिर मे देखने को मिलता है। लोद्रवा के जैन मन्दिर मे २२", २७" का एक शतदल पदमयुक्त यत्र भी क्षतविक्षित हालत मे इस समय भी दर्शको और यात्रियो के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ हे। लोद्रवा का पतन मोहम्मद गौरी ने विशेष रूप से किया और खास कर लोद्रवा जैन मन्दिर का।

लोद्रवा अब वह विशाल नगर नही रहा है। आज लौद्रवा का सबसे बडा आकर्षण है तो वह है सुप्रसिद्ध सहस्त्रफणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का जिनालय, जिसका निर्माण सागर के पुत्र श्रीधर और राजधर ने करवाया था और बाद मे विध्वश हो जाने के पश्चात् श्री भीमसिह ने इसका पुन निर्माण करँवाया। इसका जीर्णोद्धार इनके पुत्र पूनसिंह ने करवाया लेकिन मन्दिर की हालत जीर्णोद्धार करवाने के पश्चात् भी नही सुधर सकी। इस पर पूनसिह के पुत्र जैसलमेर निवासी सेठ थाहरुशाह ने इस मन्दिर की प्राचीन नीवो पर नवीन मन्दिर का निर्माण करवाया और सवत् १६७५ के मार्गशीर्ष शुक्ल १२ को खरतरगच्छाचार्य श्री जिनराजसूरिजी महाराज से प्रतिष्ठा करवाई। बताया जाता है कि मन्दिर में विराजमान सहस्त्रफणी श्यामवर्णी कसौटी पाषाण की प्रतिमा को सेठ थाहरुशाह सिद्धाचल का विशाल सघ निकाल कर लौटते समय पाटन (गुजरात) से श्री पार्श्वनाथ प्रभु की दो प्रतिमाएे खरीद कर लाए थे। कहा जाता है कि इन प्रतिमाओ के बराबर स्वर्ण तोल कर दिया था। वहाँ यह भी कथन किंवदन्ती बना हुआ है कि इन प्रतिमाओ के निर्माण मे एक ही परिवार की चार पीढियो के लोगो ने अपने अमूल्य श्रम से इसका निर्माण किया था। कुछ भी हो आज वास्तव मे मूर्त्ति के चमत्कार और कलाकारो के कला की प्रसशा किए बिना नही रहा जा सकता। एक प्रतिमा मूल मन्दिर मे है और दूसरी उत्तरपूर्व के छोटे से मन्दिर मे दर्शको का आकर्षण बनी हुई है। मूल मन्दिर मे विराजमान प्रतिमा के बारे मे कहा जाता है कि यह प्रतिमा दिन मे तीन रूप बाल, युवा और वृद्ध दिन निकलने, दोपहर और सध्या के साथ साथ बदलती है।

सहस्त्रफणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का भव्य मन्दिर धार्मिक दृष्टिकोण से जैन सम्प्रदाय का तीर्थस्थान बना हुआ है। दर्शको के लिए पाषाणकला का आकर्षण है। मन्दिर का कोई ऐसा भाग शिल्पकार की निगाहो और उसकी छेनी और हथौडी से अछूता नही रह गया है जिस पर उसने कला का प्रदर्शन नही किया हो। छोटे से छोटे जव (गेहूँ) के आकार पर भी जैन तीर्थंकरो की प्रतिमा बना कर अपनी कलाकौशलता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। मन्दिर के स्तम्भो को विभिन्न आकार-प्रकार से, छतो की कगूरो और बेलबूटो से, खम्भो के जोड को विभिन्न मानव एव अन्य आकृतियो से, कोनो को सुन्दर कलात्मक आकृतियो से, दीवारो को पाषाण की बारीक जालियो से और प्रतिष्ठित जैन-प्रतिमाओ के पवासनो, आलो, दरवाजो के बारह भागो को बारीक पाषाणकला से अति सुन्दर और चितआकर्षक बनाया गया है। वहाँ फर्श की सौन्दर्य स्वत ही दर्शको और यात्रियो का चित्त मोह लेती है। मन्दिर के चारो तरफ आतरिक और बाहरी भाग की पाषाणकला बडे ही बेजोड रूप लिये हुए है वहाँ मन्दिर का प्रवेशद्वार कला का रूप पहले से ही बनाने मे सफलीभूत हो उठता है।

लोद्रवा नगर का भव्य जैन-मंदिर
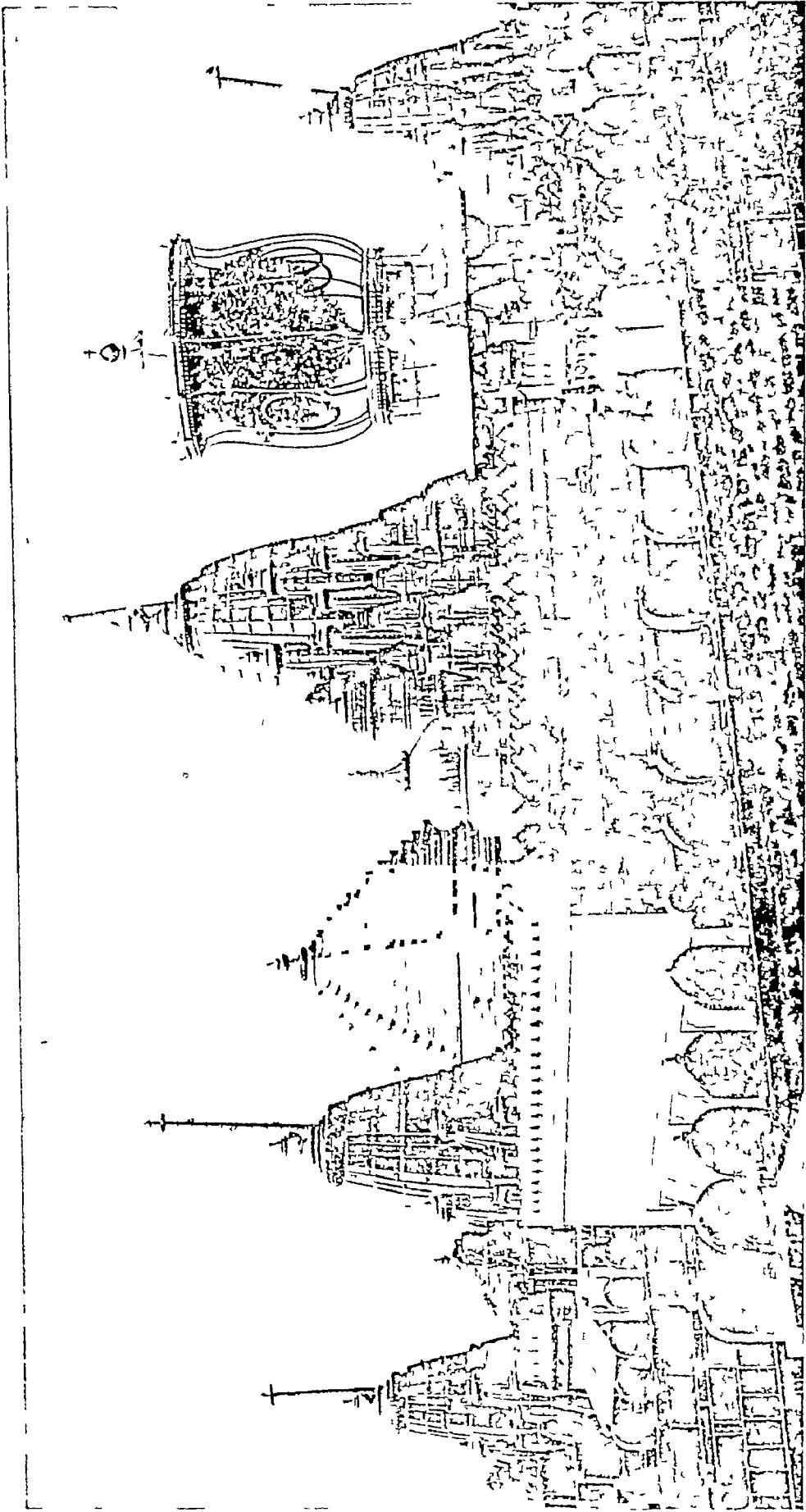
यह मंदिर बहुत ही प्राचीन एव कलापूर्ण है, अवश्य दर्शन कीजिये

लोद्रवा नगर के जैन मदिर के पास कल्प वृक्ष का दृश्य
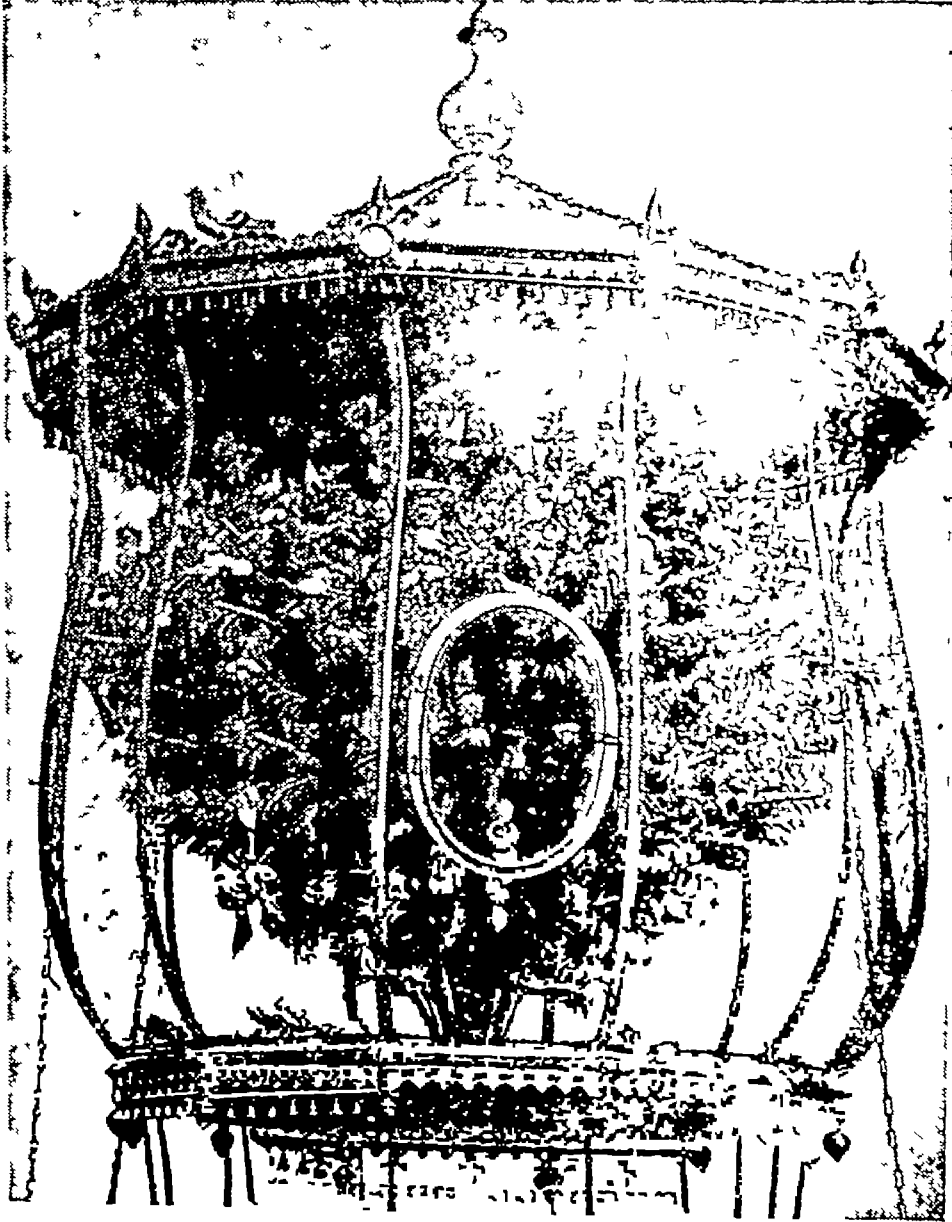
ऐसा कल्प वृक्ष भारतवर्ष मे और कही नही मिलेगा।
इसका दृश्य निहारने योग्य है

लोद्रवा नगर के मंदिर मे विराजमान श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति (प्रतिमा)

यह काले कसौटी के पाषाण की बनी हुई दिल को लुभाने वाली प्रतिमा है। जिसने एक बार दर्शन किया कभी नही भूलेगा। धन्य है भारतवर्ष की शिल्प-कला को

मन्दिर का अत्यन्त ही कलाकृतियो से अलकृत एव आकर्षित भाग है—मन्दिर का तोरण जो मन्दिर के प्रवेश-द्वार और मूल मन्दिर के प्रवेश-द्वार के बीच मे बना हुआ है। यह अपने मे स्वत ही एक अलग इमारत का परिचय देता है जो वास्तव में मन्दिर का ही एक अग है। जो दो खम्भो के ऊपर तोरण का आकार लिए है, जिसके ऊपर भाग के बीचोबीच मे जैन प्रतिमा को बनाने का अद्भुत प्रयत्न किया गया है। तोरण के सबसे नीचे के भाग से लेकर सात टूको तक को कलाकृतियो से सजाने और सवारने का प्रयत्न किया गया है। यदि इस तोरण को मन्दिर के अहाते से परे किया जाय तो मन्दिर के सौन्दर्य मे बडी भारी कमी आ जाती है।

लोद्रवा जैन तीर्थ स्थान मे सबसे अधिक दर्शको और यात्रियो का आकर्षक सहस्त्रफणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा के अतिरिक्त कल्पवृक्ष है जो मन्दिर की सीमा मे त्रिगडा पर अष्टापदजी भाव का सर्वधातु का बना हुआ दूर दूर से आने वालो को दृष्टिगोचर होने लगता है। इस कल्पवृक्ष को वास्तव मे कृत्रिम कलात्मक रूप दिया गया है। इस वृक्ष का निर्माण एक वृक्ष से कतई कम नही है। इसमे डालियाँ, पत्तियाँ, फूल, फल और पक्षी तक हैं। वृक्ष की सुन्दरता को दर्शाने के लिए कलाकार ने विभिन्न पक्षियो को रग-बिरगे रूप मे डालियो पर इस प्रकार आधारित किया है जो हवा के झोको के साथ हिलते-डुलते बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। पवन के थपेडो के साथ फूल, पत्तियो और डालियो की ध्वनि वास्तविक पेड का भान कराये बिना नही रह सकती। इस वृक्ष की रक्षा के लिए जरि और ऊपरी भाग मे छत का निर्माण किया गया है। वृक्ष तक आसानी से पहुँचा जा सकता है, निहारा जा सकता है परन्तु फल और फूलो को छुआ नही जा सकता है पक्षियो को उडा नही सकते। इस वृक्ष के त्रिगडे के पाषाणो के कगूरो, पट्यो और खम्भो पर भी कलाकार ने साधारण परन्तु अत्यन्त ही सुन्दर कलाकृतियाँ प्रस्तुत की हैं।

मुख्य मन्दिर के अहाते मे अन्य छोटे-छोटे चार मन्दिर चारो कोनो पर बने हुए हैं, जो सम्वत् १६७५ से १६९३ तक सेठ थाहरुशाह की पत्नी, पुत्र और पौत्र आदि ने धार्मिक दृष्टिकोण से पुन्यार्थ बनाए थे। दक्षिण पूर्व के मन्दिर मे मूलनायक भगवान श्री आदिनाथ, दक्षिण पश्चिम मे मूलनायक भगवान श्री अजितनाथ, उत्तर पश्चिम मे मूलनायक भगवान श्री सभवनाथ और उत्तर पूर्व मे मूलनायक भगवान श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्दिर के पास ही सीमा के अन्दर जैन दादाबाडी और यात्रियो के ठहरने के लिए छोटी धर्मशाला एव तीन उपाश्रय भी बने हुए हैं। सेठ थाहरुशाह की श्री सिद्धक्षेत्र की यात्रा के पश्चात् पाटन (गुजरात) से जो प्रतिमाएँ रथ पर लाये थे वह शिखरबन्द रथ भी यहाँ देखने को मिलता है।

लोद्रवा के इस प्रसिद्ध जैन मन्दिर के अतिरिक्त हिंगलाज माता का मन्दिर और अमर प्रेम की प्रतीक मूमल की मैडी देखने योग्य है। मूमल का अमिट। व अविचलित प्रेम ऊमर-

कोट के राजकुमार महेन्द्रा से लोद्रवा की काक नदी की साक्षी के साथ आरम्भ हुआ था जिसे मूमल ने जीवन के अन्तिम दम तक निभाया, जहाँ प्रेमिका के वियोग मे प्रेमी महिन्द्रा ने भी मूमल की याद मे तडफ-तडफ कर जीवन व्यतीत किया। आज भी लोद्रवा की मूमल और ऊमरकोट के महेन्द्रा के गीतो ने लोकगीतो का रूप धारण कर उनके अमिट प्रेम को अजर-अमर बना दिया है। इधर जैन तीर्थस्थान लोद्रवा के भक्ति-गान देश के विभिन्न भागो मे श्रद्धा और भक्ति के साथ गुनगुनाए जाते हैं।

नोट—पार्श्वनाथ प्रभु की हजारो प्रतिमाएँ हैं किन्तु, लोद्रवा मे जो प्रतिमा है वैसी शायद ही कही मिले। दर्शन करते ही एक अपूर्व उल्लास होता है और आनद-घनजी म० के इस पद की सार्थकता प्रतीत होती है। अमीय भरी मूर्ति सच्ची रे, उपमा घटे न कोय। शान्त सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय। विमलजिन।

गुणीच गुणानुरागीच. सरलो विरलो जन

स्वय गुणी और गुणानुरागी ऐसे सरल मनुष्य भाग्य से ही मिलते है।

•••

अन्त. मलीन. चिताना, सुख स्वप्नेऽपि दुर्लभम.

अन्दर से मलिन चित्त वालो को स्वप्न मे भी सुख मिलना दुर्लभ है।

बाड़मेर का श्री पार्श्वनाथ का जैन-मन्दिर

ले० भूरचन्द जैन, बाडमेर (राज०)

भारतीय इतिहास के पन्नो मे, सस्कृति के विकास मे धार्मिक भावनाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देश मे होने वाली विभिन्न प्रकार की हलचलो मे धार्मिक भावनाओ ने अपना विशिष्ठ दृष्टिकोण बनाए रखने का प्रयास किया है। हिन्दू और जैनधर्म ने भारत मे अपनी विशेष प्रगति की, जिसके स्मारक आज भी अपनी बोलती गौरव-गाथाओ का इतिहास प्रस्तुत करते हैं।

राजस्थान के पश्चिमी भूखण्ड मे, जहाँ रेतीले इलाके मे भी प्राचीन कला-कौशल के भग्नावशेष आज भी दर्शनीय हैं। जोधपुर से पाकिस्तान (मुनाबा) की तरफ जाने वाली रेलवे लाइन का, जहा भारत व पाकिस्तान से आने जाने वाले यात्रियो का विश्राम एव निरीक्षण केन्द्र का रेलवे स्टेशन बाडमेर ही है जिसकी जनसख्या करीबन ३० हजार से भी ऊपर है। नगर के चारो तरफ पूर्व मे रेलवे लाइन एव रक्षाप्रहरियो के डेरे, पश्चिम मे भव्य जैनमन्दिर, उत्तर मे रेतीले टीबे एव सरकारी कार्यालयो की कतार और दक्षिण मे छोटी २ भाखरियो की कतार परिचय देती है। जैन यात्री और भ्रमणकारियो का जैसलमेर की यात्रा का आनन्द लेकर फिर प्रसिद्ध जैनतीर्थ नाकोडा के दर्शनार्थ आते हैं तो जैसलमेर से १०० मील सडक-मार्ग पर यही बाडमेर बीच का मुख्य नगर आता है। बाडमेर से बालोतरा रेलवे स्टेशन से ७ मील दूर ही प्रसिद्ध और प्राचीन तीर्थ श्री मेवानगर (नाकोडा) आया हुआ है।

बाडमेर के इस जैन मन्दिर का एक अद्भुत एव आश्चर्यचकित करने वाला इतिहास है। वोहरा गोत्र के जैन श्रावक श्री नेमीचन्द्र द्वारा इस भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया गया था, जिन्हें हमेशा देवदर्शन करने के पश्चात् सासारिक कार्यो मे लगने का नियम था। अचानक एक बार आप पास के जैन मदिर मे दर्शन करने के लिए गये लेकिन आपको दर्शन करने के लिए पुजारी ने मन्दिर का द्वार नही खोला। पुजारी ने भावावेश मे कह दिया यदि इतने भक्त हो तो अपना स्वय का मन्दिर क्यो नही बनाते। इसी कारण आपने मन्दिर का निर्माण करवाया जिसकी रागो मे पानी के स्थान पर घी (घिरत) का उपयोग किया।

इस विशालकाय जैन मन्दिर को ई० स० १२०० के आस-पास बनाया गया था। उस समय मुगलकालीन सत्ता का प्रभाव था और उनके पश्चात् अग्रेजो का शासन ही नव-

निर्मित शिखरबन्ध जैन मन्दिर को आधुनिक विशाल रूप देने मे असफल रहा। शिलालेख के अनुसार इस मन्दिर की सवत् १६८५ मे प्रतिष्ठा करवाई गई जिसके पश्चात् आज से २५ वर्ष पूर्व इस मन्दिर को नया रूप देने मे विशेष कार्य एव रुचि रही है।

पहाडी पर स्थित विशाल भीमकाय जैन मन्दिर के अगले भाग में जोधपुर और जैसलमेर के पीले पत्थरो पर शिल्पकला का निर्माण अत्यन्त ही सुन्दर एव आकर्षक है। जोधपुर के पत्थर पर बनाई लक्ष्मी मय पहरियो के अत्यन्त ही लुभायमान लगती है। जैसलमेर के पीले पत्थर पर बना हुआ तोरण द्वार और पास ही लताओ की कलाओ ने मन्दिर की रौनक मे चार चाद लगा दिए हैं। इसी पत्थर पर अकित अप्सराओ, सिंह एव अन्य जनमानस और पशुपक्षियो की आकृतियाँ बिना बोल के बोलती हैं।

मन्दिर का ऊपर का भाग जो सदियो पुराना शिल्पकला का परिचायक था, आज उसकी मरम्मत कर, नया रूप प्रदान कर दिया गया है। श्वेत वर्ण मन्दिर का शिखर जो शहर से ७ मील दूर के स्थानो से भी दृष्टिगोचर होता है। इस देवस्थान के भीतरी भाग मे आधुनिक चित्रकला और मीनागीरी का कार्य दर्शको का मन मोह लेता है। दर्शक घटो एक टकटकी लगाए देखते ही रहते हैं। ऐसा कोई भी भाग शेष नही है जिस पर चित्रकारी एव मीनागीरी न हुई हो। श्री भैरवजी और चक्रेश्वरी माता की प्रतिमाएँ अत्यन्त ही सुन्दर बनी हुई हैं।

श्वेत सगमरमर पत्थर को मन्दिर के भीतरी भाग मे फर्श इत्यादि मे लगाकर और भी साफ एव चमकीला बना दिया है। २०½ इन्च चौडी और ३१ इन्च ऊँचाई की २३वे तीर्थन्कर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा की छबि को निहारने मात्र से ही जीवन सार्थक हो जाता है।

मन्दिर केवल दर्शनीय स्थल ही नही है अपितु इसकी कुछ और भी विशेषताएँ हैं। यही स्थल समाज की गतिविधियो का पचायत केन्द्र है। जैन समाज के नव-विवाहितो को ससारिक जीवन को शान्त एव सुखपूर्वक व्यतीत करने का एकमात्र प्रतीज्ञा-केन्द्र भी है। यही पर भगवान के समक्ष आने वाली नई पीढी को पाग (पदवी) धारण करवाई जाती है। जैन त्यौहारो का उद्गमस्थल है। इसकी सबसे अनोखी विशेषता यह है कि इसे ऋतुराज कहा जाता है। विभिन्न ऋतुओ मे मन्दिर की अदभुत छटा को निहारा जाता है। बरसात के समय दूर दूर के पानी से भरे नदी नालो और तालाबो का सजीव दृश्य, जो ताजो उत्पन्न हरियालो के मध्य अत्यन्त ही सुन्दर दिखाई देती है। ग्रीष्मकाल मे आबू के पहाड समान पवन का रसास्वादन उतना ही आनन्ददायक होता है जितना की शरद ऋतु मे इस स्थान पर भास्कर की किरणो का सेवन।

जैन त्योहारो एव दोपावली पर की जाने वाली रोशनी नगर की सबसे दिव्य एव आकर्षक वस्तु है। मन्दिर की शोभा और सफाई दर्शनीय है।

श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ

ले० अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

जैन धर्म मे सब से ऊँचा पद तीर्थंकर का है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध सघ रूप तीर्थ की स्थापना करने से ही ऋषभदेव-महावीर स्वामी आदि तीर्थंकर कहलाए।

तीर्थ शब्द का अर्थ है जिसके द्वारा तैरा जाय—भव समुद्र के तीर यानि किनारे पहुँचने के जो भी साधन व साधक हैं उन्हें—तीर्थ की सज्ञा दी गई है।

जैन धर्म मे मुख्यत दो प्रकार के तीर्थ माने गए है, जगम तीर्थ व स्थावर तीर्थ। साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भव्य-जीवो को मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग दिखलाते है, इसलिए उन्हे जगम अर्थात् चलता फिरता तीर्थ कहा जाता है।

स्थावर यानि एक जगह स्थिर रहने वाला, ऐसे तीर्थरूप वे स्थान है जहाँ पर तीर्थंकर आदि महापुरुषो का जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान, मोक्ष एव बिहार आदि हुआ हो। महापुरुषो के सबध से वे स्थान तीर्थ की सज्ञा पा जाते है।

वहाँ की यात्रा कर भक्ति व पूजा कर के भव्यात्मा शुभ भावना द्वारा पुण्य एव धर्म का सचय करते है, पाप-क्षय करते हुए आत्मा को पवित्र बनाते है।

स्थावर तीर्थ भी दो प्रकार के है जिन्हें दिगम्बर परिभाषा मे सिद्ध क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।

सिद्ध क्षेत्र वे है जहाँ कोई न कोई महापुरुष, सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए हो, उनकी स्मृति रूप मे वहाँ जो मन्दिर एव मूर्तियाँ स्थापित की जाती है उन्हे सिद्ध क्षेत्र की सज्ञा दी जाती है।

जहाँ कोई सिद्ध नही हुए हो परन्तु वहाँ की मूर्ति चमत्कारी होती है, मन्दिर बडे भव्य व कलापूर्ण होते है, उन्हे अतिशय क्षेत्र कहा जाता है, वहाँ भी लोग बडे भक्तिभाव से यात्रा करने जाते है।

सिद्धाचल, गिरनार, पावापुरी, राजगृह, चम्पापुरी, सम्मेतशिखर आदि सिद्ध क्षेत्र है और आबू, राणकपुर आदि कलाधाम है और शखेश्वर, नाकोडा, फलोधी आदि चमत्कारिक मूर्तियाँ होने से तीर्थ रूप मे प्रसिद्ध है। इन तीर्थों का नामस्मरण करके प्रति दिन चैत्य-

वदन (स्तवनादि) किए जाते है। तीर्थमालाओ, स्तोत्रो, चैत्य परिपाटियो, स्तवनो आदि मे तीर्थों की स्तुति एव नामस्मरण करके गुणगान किया जाता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर इन दोनो समुदायो मे जैन तीर्थों सबधी बहुत बडा साहित्य है। इसका कुछ विवरण मैंने अभिनन्दन ग्रथ मे प्रकाशित मेरे लेख मे दिया है। प्राचीन तीर्थ-मालादि सग्रह ग्रन्थो मे ऐसी कुछ रचनाएँ प्रसिद्ध हुई है पर अभी बहुत सी प्रकाशित होनी बाकी है। स्तवनादि सग्रह मे भी बहुत से तीर्थों के स्तवन छपे है।

वर्तमान २४ तीर्थकरो मे भगवान पार्श्वनाथ २३वे तीर्थंकर है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्धि है। उनके नाम से जितने अधिक तीर्थ-मन्दिर, मूर्तिया-स्तुति-स्तोत्र आदि प्राप्त है उतने अन्य किसी तीर्थंकर के नही।

पार्श्वनाथ के अनेक मत्रगर्भित स्तोत्र मिलते है, और लोगो की यह धारण है कि चिन्तामणि की तरह पार्श्वनाथ के नाम का स्मरण, जप-पूजा, भक्ति आदि करने से समस्त विघ्न, कष्ट निवारण होते है और मनोवाछित फल प्राप्त होता है।

वैसे तो पार्श्वनाथ के १०८ नाम वाले अनेको स्तोत्र और स्तवन है, पर कई स्तवनो मे २००-३०० स्थानो मे पार्श्वनाथ के मन्दिर व मूर्तिये हैं, उन्हे तीर्थ के रूप मे स्मरण किया है। वे स्थान भारत की चारो दिशाओ मे है। मारवाड और गुजरात मे श्वेताम्बर सप्रदाय का बहुत अधिक प्रचार रहा इसलिए पार्श्वनाथ के बहुत से मदिर व मूर्तियाँ इन दोनो प्रान्तो मे पाई जाती है।

पार्श्वनाथ के अनेक तीर्थ है। उनके सबध मे कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। १११ पार्श्वनाथ तीर्थों का विवरण सवत् १९८५ मे जैन सस्ती वाचन माला, भावनगर से प्रकाशित 'श्री प्रगट प्रभावी पार्श्वनाथ तथा जैन तीर्थ माला' नामक ग्रथ मे छपा है। यहाँ उनमे से नाकोडा पार्श्वनाथ सबधी कुछ वर्णन लिखा जा रहा है।

मुनि विशालविजयजी लिखित श्री नाकोडा नामक गुजराती पुस्तक के अनुसार विक्रम पूर्व तीसरी शताब्दी मे एक राजा के वीरमदन्त और नाकोरसेन नामक पुत्र थे, जिन्होने दस कोस के अन्तर से दो गाव बसाए। वीरमदन्त के नाम से वीरमपुर और नाकोरसेन के नाम से नाकोडा नगर प्रसिद्ध हुआ। इन दोनो महाराजाओ ने अपने अपने नगर मे जिन मन्दिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य स्थूलिभद्र से करवाई गई। वीरमपुर मे चन्द्रप्रभ स्वामी और नाकोडा मे सुविधिनाथ की मूर्ति मूलनायक के रूप मे स्थापित की गई। अशोक के पुत्र सप्रति ने इन मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया और आर्य सुहस्ती सूरि के हाथ से वीरनिर्वाण स० २८१ अषाढ सुदि ९ गुरुवार को प्रतिष्ठा करवाई।

तत्पश्चात विक्रम राजा ने आचार्य सिद्धसेन दिवाकर के हाथ से वीरनिर्वाण स० ५०५ के मिगसर सुदि ११ गुरुवार को प्रतिष्ठा करवाई।

फिर मानतुँग सूरि ने ५३२ (वीर सवत) चैत्र सुदि १५ को और देव सूरि ने विक्रम स० ४१५ जेठ सुदि १० बुधवार को वीरमपुर और सवत ४२१ आषाढ सुदि ५ रविवार को नाकोडा मन्दिर का जीर्णोद्धार करके प्रतिष्ठा करवाई।

९वी शताब्दी मे बप्प भट्ट सूरि के उपदेश से ग्राम राजा ने इस तीर्थ की यात्रा की और जीर्णोद्धार कराया।

नाकोडा तीर्थ की पेढी की नोध के अनुसार विक्रम स० ९०९ मे वीरमपुर मे २७०० जैनो के घर थे। आगे तातेड गोत्रीय सेठ हरखचन्दजी ने वीरमपुर तीर्थ का जीर्णोद्धार करवा के मूल नायक महावीर प्रभु की मूर्ति स्थापित की। उपरोक्त विवरण कहाँ तक ठीक है कहा नही जा सकता। सुनी-सुनाई बातो के आधार पर लोकश्रुति को किन्ही लेखको ने अपने ग्रन्थो मे स्थान दे दिया है।

मुनि विशालविजयजी आदि ने पार्श्वनाथ मन्दिर के पुराने पद्मासन पर सवत ११३३ के जीर्णोद्धार का एक लेख बतलाया है पर वह लेख मैंने नही देखा, न कही उसकी नकल ही प्रकाशित हुई है। उन्होने १ कायोत्सर्ग प्रतिमा पर सवत १२०३ का लेख बतलाया है वह शातिनाथ और नेमिनाथ की मूर्तियो पर है। उस लेख पर श्रीवच्छक चैत्ये शब्द आता है—वह चैत्य कहाँ था, पता नही।

मुनि विशालविजयजी ने पहले नाकोडा तीर्थ का इतिहास लिखा था। सवत् १९८७ मे उनका यतीन्द्रविहार दिग्दर्शन भा० २ प्रकाशित हुआ है। इसके पृ० १८१ से २०४ मे नाकोडा का इतिवृत प्रकाशित हुआ है। इससे पहले के श्री प्रगटप्रभावी पार्श्वनाथ नामक ग्रन्थ मे भी लिखा गया है कि पार्श्वनाथ की सवा हाथ ऊँची एक श्याम प्रतिमा वीरमपुर से १० कोस दूर नाकोडा गाव मे एक श्रावक को पत्थर के नीचे दबी हुई खोदते समय मिली थी। कोई यह भी कहते हैं कि नाकोडा के पास की नदी के निकटवर्ती मकान मे से दो प्रतिमाएँ प्रगट हुईं। उन्होने वहाँ से वीरमपुर लाकर तीन शिखर वाला मन्दिर बनाया। स० १५०० के आस-पास मे उन्हे उस मन्दिर मे स्थापित की। यह प्रतिमा तथा उनके पास की दो प्रतिमाएँ सप्रति राजा की घडाई हुई हैं।

सेठ आनन्दजी कल्याणजी पेढो से प्रकाशित जैन तीर्थ सर्वसग्रह भाग १ खण्ड २ के पृष्ठ १८३ से १८४ मे नाकोडा तीर्थ का परिचय छपा है। यतीन्द्रविजयजी तथा विशाल-विजयजी और इस ग्रथ मे प्राय विवरण एक सा है।

प्राचोन तोर्थमालाओ मे नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ का नाम देखने मे नही मिलता। यहाँ जो पहले मन्दिर थे वे शान्तिनाथ आदि के थे फिर पार्श्वनाथ की प्रतिमा नाकोडा से यहा आई तभी से यह पार्श्वनाथ तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। १७वी शताब्दी मे

महोपाध्याय एव महाकवि श्री समयसुन्दरजी ने अपने तीर्थ-मालास्तवन मे नाकोडा पार्श्वनाथ स्तवन की रचना की है। इसीसे नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ को अधिक प्रसिद्धि मिली।

नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ के मन्दिरो मे जो शिलालेख एव मूर्तियाँ हैं वे अधिकाश १६वी, १७वी शताब्दी की हैं। खरतरगच्छ, पल्लीवालगच्छ और तपागच्छ के एक-एक मन्दिर हैं, उनमे खरतरगच्छ का मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। खरतरगच्छ के आचार्य कीर्तिरत्नसूरिजी का जन्म इस महेवे नगर मे सवत १४४६ मे हुआ। कीर्तिरत्न सूरि विवाहलो के अनुसार वहाँ शातिनाथ और वीर भगवान के मन्दिर उस समय थे। पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रसिद्धि अवश्य ही पीछे हुई है। महेपे का वर्णन करते हुए उक्त विवाहलो मे लिखा है—

देस मरु मडल सहिज अति गुञ्जल, महिम हेलइ भासति भाल।
तिलकु जिन सोहए बहुय गण मोहए तिहा महेवापुरे सिरि विसाल।
लोग धनवत गुणवत सुविलासिनी कामिणी गढ मढा वास सत्थ।
दीसई, ज पुर जण पुरदर पुर भोगय मरह सिरि दसवत्थ।
सति जिण वीर जिण नवण धयवड भिसिण तज्जुयलो परममोह सत्रुँ।
साहु जिण भविय गुण अणदिण गाजए राजए राउ जिण धम्म भत्तुँ।

कीर्तिरत्न सूरिजी वीरमपुर के ओसवालवशीय शखवाल गोत्रीय देपा की पत्नी देवल देवी की कुक्षी से उत्पन्न हुए थे। सवत १४४६ के चैत्र सुदि ८ शुक्रवार को उनका जन्म हुवा। वयस्क होने पर वाचनाचार्य क्षेमकीर्ति के महेवेपुर आने पर उनके उपदेश से उन्हे वैराग्य हुआ।

राडद्रहपुर मे जिनवर्द्धन सूरि से इन्होने सवत १४६३ के आषाढ वदि ११ को दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षित नाम कीर्तिराज रखा गया। अनुक्रम से ये पढ लिख कर विद्वान हुए। सवत १४७० मे पाटण नगर मे इन्हे वाचनाचार्य पद दिया गया। स० १४८० मे जिनभद्रसूरिजी ने वैसाख सुदि १० को उपाध्याय पद दिया। स० १४९७ के माघ सुदि १० को जैसलमेर मे जिनभद्रसूरिजी ने आचार्य पद दिया। इनके भ्राता लखा और केल्हा ने आचार्य पदोत्सव मनाया। जिनभद्र सूरिजी के स्वर्गवास होने पर उनके पट्ट पर जिनचन्द्र सूरिजी को कीर्तिरत्न सूरिजी ने स्थापित किया।

स० १५२५ मे २५ दिन पहले अपनी आयु की समाप्ति इन्होने अपने ज्ञान-बल से जानली। १५ दिन के उपवास की सलेखना की। १६वे दिन मे अनशन उच्चरित किया। स० १५२५ के वैशाख वदि ५ को कीर्तिरत्न सूरिश्वरजी स्वर्गवासी हो गए। जिस समय इनका अनशन पूरा हो गया उस समय मन्दिर के किवाड वन्द हो गए और चमत्कार हुआ। वीरमपुर मे उनका स्तूप वनाया गया। आज भी नाकोडा तीर्थ मे इनकी मूर्ति व पादुकाएँ

स्थापित हैं। सवत १५३६ मे साह जेठा पुत्र रोहिणी ने इनकी मूर्ति स्थापित की।

कीर्तिरत्न सूरि के पट्टधर शान्तिरत्नगणिर, गुणरत्न सूरि जब वीरमपुर पधारे तो आचार्य जिनचन्द्र सूरिजी ने स० १५३५ आषाढ वदि ६ मगलवार को आचार्य पद प्रदान किया। सघाधिपति केल्हा धनराज मनराज आदि ने उत्सव मनाया इसका वर्णन गुणरत्न सूरि विवाहलो मे इस प्रकार मिलता है -

क्रमि क्रमि वीरमपुर वरे आविया भाविया मोरूजिम नाचताए,
सकल श्री सघस्यु जिनचद्र सूरि वयसि एकान्ति विमासिउए।
आचरिज पदि शान्ति रत्न गणि, थापि मिउएह प्रकाशिउए।।३७।।

तयणु तेडावज्यो सीस महूरत सूधउ लगन गणावियउए,
पनर पइत्रीसा साढ वदि नवमी मगलवार जणावियउए।।३२।।

सीहासु तन समधर सदभुतसु सुतन साह सदा रग,
भावसो तेण भरावीया, आणद अति उछरग मोरी०।।५

अर्थात् स० १५६४ वैशाख वदि ८ शनिवार को ओसवालवशीय छाजहड गोत्रीय जूठला के वशज सदारग ने मूर्तिया भराई। यह स्तवन मुझे प्राप्त नही हुआ है। इसका उद्धरण जैन तीर्थ सर्वसग्रह आदि से लिया गया है।

सवत् १८३४ मे खरतरगच्छ के आचार्य जिनचद्र सूरिजी ने महेवे के चैत्यो की वदना की थी। संवत् १८६४ मे जिनहर्ष सूरि के उपदेश से भूमिगृह का निर्माण एव प्रतिष्ठा का कार्य हुआ है। सवत् १६१० के माघ सुदि ५ को पाली मे प्रतिष्ठापित मूर्तिया यहा स्थापित की गई हैं। इनके लेख के अनुसार नाकोडा तीर्थ का प्राचीन शान्तिनाथ मन्दिर शखलेचा शाह माला ने बनवाया था। अर्थात् वह मन्दिर खरतरगच्छ का था और उसी मे आगे चल कर पार्श्वनाथजी की प्रतिमा मूलनायक चमत्कारी स्थापित की गई, अर्थात् नाकोडा पार्श्वनाथजी का मूल मन्दिर खरतरगच्छ का शातिनाथ जिनालय है। दूसरा मन्दिर यहा महावीर भगवान का था। सम्भव है वह पल्लीवालगच्छ का हो। स० १६७८-८१-८२ के पल्लीवालगच्छ के लेख हैं। इनमे से स० १६७८ वाले लेख मे महावीर चैत्य श्री सघ ने चतुर्विंशतिका बनाई। ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। तीसरा मन्दिर तपागच्छ का विमलनाथ भगवान का है। जिसमे सवत् १५६२, १६४७, १६६७ तपागच्छ के लेख हैं। इस मन्दिर मे भी खरतरगच्छ के जिनराज सूरिजी के उपदेश से श्री सघ ने नया नाल मण्डप बनवाया और सब मदिरो का जीर्णोद्धार करवाया। खरतरच्छ के दादावाडी मे स० २००० मे जयसागर सूरिजी के नेतृत्व मे जिनदत्त सूरिजी और मणिधारी जिनचद्र सूरिजी और जिनकीर्तिरत्नसूरि की पादुकाए यति नेमिचदजी ने

स्थापित की। इससे पहले भी जिनकुशल सूरिजी जिनदत्तसूरिजी की पादुकाए स्थापित थी पर सवत का उल्लेख नही है।

यहाँ पर अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि युगप्रधान जिनचन्द्रसूरिजी के विजयराज्य मे सवत १६१४ के मिगसर वदि २ को वीरमपुर के शान्तिनाथ प्रभु के मन्दिर मे मण्डप बनाया गया जिसका शिलालेख धरराज उपाध्याय के शिष्य मुनि मेरू ने रावल मेघराज के विजयराज्य मे लिखा है। इसमे पार्श्वनाथ का उल्लेख नही होने से मेरा यह अनुमान है कि सवत १६१४ के बाद ही खरतरगच्छ के शान्तिनाथ मन्दिर मे पार्श्वनाथजी की चमत्कारी मूर्ति स्थापित हुई और यह तीर्थ नाकोडा पार्श्वनाथ के नाम से समयसुन्दरजी ने प्रगट (प्रसिद्ध) किया। पल्लीवालगच्छ के सवत १६७८ आदि के लेखो म भी नाकोडा पार्श्वनाथ के प्रसाद का उल्लेख है।

नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ के प्रतिमा का लेख सबसे पहले सन् १९१८ मे स्व० पूरणचद जी नाहर के जैन लेख सग्रह प्रथम खण्ड के पृष्ठ १७२-१७४ मे लेखाक ७२० से ७२७ मे प्रकाशित हुए। फिर १९२७ मे इसी लेख सग्रह के दूसरे सग्रह के पृ० २२७ मे लेखाक १८८५ से १८८८ के चार लेख छपे। तदनन्तर यतीन्द्रविजयजी और विशालविजयजी के ग्रथो मे एव जैन तीर्थ सर्वसग्रह मे यहाँ के लेख छपे। सवत १९९० के आसपास मे मैं नाकोडा तीर्थ यात्रा करने गया तो लेखो की नकले कर लाया। फिर खरतरगच्छाचार्य हरिसागरसूरिजी ने वहाँ के लेख ले भेजे और गत वर्ष मेरा भ्रातृपुत्र भँवरलाल वहाँ गया तब लेख ले आया इस तरह प्रकाशित व अप्रकाशित जितने भी लेख मेरे सामने आए उनको महोपाध्याय विनयसागरजी से नकल करवा कर यहाँ दिए जा रहे हैं।

बडे ही हर्ष की बात है कि भगवान पार्श्वनाथ और यहाँ के अधिष्ठायक भैरूजी के चमत्कारो से आकृष्ट होकर दिनोदिन अधिकाधिक लोग इस तीर्थ की यात्रा को पहुँच रहे हैं।

और इधर कुछ वर्षो से यहाँ काफी विस्तार हुआ है और यह तीर्थ दिनोदिन उन्नति करता जा रहा है। भगवान पार्श्वनाथजी और अधिष्ठायकजी के प्रसाद से सबका कल्याण हो—यही शुभ कामना है।

ओझाजी के जोधपुर इतिहास में नाकोडा का विवरण

नगर जसोल से तीन मील दक्षिण पश्चिम मे शुष्क बीहड प्रदेश मे बसा हुआ अब यह एक वीरान गाँव है। इसका प्राचीन नाम वीरमपुर था। यहाँ तीन जैन तथा १ विष्णु का मन्दिर है।

जैन मन्दिर पार्श्वनाथ, ऋषभदेव तथा शान्तिनाथ के हैं। इन मन्दिरो की दीवारे प्राचीन हैं और १४वी शताब्दी के आसपास की जान पडती हैं।

इनमे बहुत से लेख हैं जिनमे से अधिकाश बार बार पोताई होने के कारण अस्पष्ट हो गए हैं।

ऋषभदेव के मन्दिर का एक लेख रावल कुंभकण (कुंभकर्ण) के समय का वि० स० १५६८ (चैत्रादि १५६९) वैशाख सुदि ७ (ई० स० १५१२ ता० २२ अप्रेल) गुरुवार पुष्य नक्षत्र का है जिसमे जैनो द्वारा इसके रगमण्डप के निर्माण किए जाने का उल्लेख है। इससे पता चलता हैं कि पहले यह मन्दिर विमलनाथ का था। इसी मन्दिर का दूसरा लेख रावल मेघराज के समय वि० स० १६३७ (चैत्रादि १६३८ शके १५०२ वैशाख सुदि ३ ई० स० १५८७, ६ अप्रेल का) गुरुवार रोहिणी नक्षत्र का है। तीसरा लेख वि० स० १६६७ (चैत्रादि १६६८ द्वितीय आषाढ सुदि ६ का (ई० स० १५११ जुलाई ५) शुक्रवार उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का रावल तेजसिह के समय का है।

शान्तिनाथ के मन्दिर का एक लेख रावल मेघराज के समय का वि० स० १६१४ मार्गषिर वदि २ (ई० स० १५५७, ८ नवम्बर का है।

पार्श्वनाथ के मन्दिर मे रावल जगमाल के समय के दो लेख हैं जिनमे से एक वि०स० १६८१ चैत्र वदि ३ (ई०स० १६२५ ता० १४ फरवरी) सोमवार हस्त नक्षत्र का है और वि० स० १६७८ (चैत्रादि १६७९) शाके १५४४ द्वितीय आषाढ सुदि २ (ई स १६२२ ता० ३० जून रविवार का है।

विष्णु मन्दिर रणछोडजी का है। इसके एक ताक मे हथियारो की लडाई अकित है, जिसके ऊपर वि स १६८६ चैत्र वदि ७ (ई स १६३० ता० २२ फरवरी) मगलवार का एक लेख है जिसमे महारावल जगमल द्वारा इसके बनवाए जाने का उल्लेख है। इसमे इस राजा के पूर्वजो की नामावली भी है।

यह लेख यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग २। पृष्ठ १८४ की टिप्पणी मे छपा हुआ है।

ओझाजी ने महावीर मन्दिर का उल्लेख नही किया जिसका वि स १६७८ के लेख मे भी उल्लेख है। उन्होने शायद इसे हो पार्श्वनाथ मन्दिर माना हो।

अस्तु ।

श्री नाकोड़ा तीर्थ के प्राचीन लेखों का संग्रह

श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर

(१) शान्तिनाथ काउसग्गिया पाषाण मूर्ति—

सम्वत १२०३ वैसाख सुदि १२ श्रीवच्छक चैत्ये । रा० सोलिकिक वशजे उद्धरण अ ·· वराह पिषा के श्रीमदुदेस की यगच्छ प्रतिष्ठित श्री सिद्धाचार्यणिगच्छे पापन सुत जेसलनाढा देढामातृमोहिनी सहिते कारित ॥

(२) नेमीनाथ पाषाणमूर्ति काउसग्गिया—

समत १२०३ वैशाखसुदी १२ श्रीवच्छक चैत्ये सौलकिक वशजै साउद्धरण ··प · चाहापच्चुक्षे (बराहापिषुकै) ।

(३) श्री जिन · ˉ सूरिमूर्ति गर्भगृहम्थ—

समत १३७६ मार्ग व० ५ खरतर श्री जिन · सूरिभि श्रीजिनचन्द्रसूरी ।

(४) आदिनाथ धातुमूर्ति—

१॥ स० १४०५ वैशाखसुदि तीज उएसज्ञातीय छाजेहडगौत्रेसा० गुणधर भार्या ललतू पु० मोहण जैताके पित्रो श्रेयसे श्री आदिनाथ कारित प्रतिष्ठित श्री अभयदेवसूरिभि ॥

(५) मूल ण्डप मे (पाषाण)—

॥ सवत १५०४ वर्षे वैशाख सुदि ७ छाजहडगोत्रे श्रीपार्श्वनाथबिब महकुन्तपालेन कारित ॥

(६) सवत १५०४ वर्षे वैशाख सुदि ७ बुधे । श्री खेडभूम्या महेवा स्थाने श्री ओसवाल पल्लिकीय गच्छे ।

(७) मुनि विशालविजयजी लिखित 'श्री नाकोडा तीर्थ यतीन्द्रविहारदिग्दर्शन भाग २ मे अधिक लेख'—

सवत् १५१२ (१६२) वर्षे आसाढ सुदी १५ दिने राउल श्री वीरमविजयराज्ये विमल-नाथप्रासादे श्री तपागच्छे विमलचन्दगणि उपदेशेन श्री हेमविमलसूरिविजयराजे श्री वीरमगिरी [श्री सघेननवचतुष्किककाकारापिता] सूत्रधार धारसी पुत्रकृत रावलकेन श्रीरस्तु शुभम ।

पृ० २० ऋषभदेव मदिर, नवचौकी के एक पाट पर सवादो हाथ लम्बी चार पक्तियो मे यह लेख खुदा हुआ है ।

(८) कुन्युनाथ पचतीर्थी—

स० १५१३ माघ उकेस वशे सा वाल्टा भा० बूल्ही (सूल्ही) पुत्र बाहउभा गउरी सुत डूगर (सुरजनै) रणधीर श्रेयसे श्रीकुन्थुनाथ बिम्ब कारित प्रतिष्ठित श्रीयशो-देवसूरिभि छाजहड गोत्रे ।।

(६) (A) जिनभद्रसूरिमूर्ति —

सवत १५१८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ४ (५) दिने ऊकेशवशेकाकुशलाकेन

(B) सपरिकवारेण श्रेयोर्थं श्री जिनभद्रसूरि श्वराणा मूर्ति कारिता । प्रतिष्ठिता श्री खरतरगच्छे श्री जिनचन्द्रसूरिभि ।।

(१०) कीर्तिरत्नसूरि पादुका—

सवत् १५२५ वर्षे वैशाख वदि ५ दिने श्री विरमपुरे श्री खरतरगच्छे श्री कीर्तिरत्न-सूरीणा स्वर्ग तत्पादुके सखलेचा गोत्रे सा। काजल पुत्र साह त्रिलोकसिह खेत्रसिह जिणदास गउडीदास कुसलाकेन भरापिते स० १६३१ वर्षे मार्गशिर वदि ३, २ प्रतिष्ठित श्री जिणचन्द्रसूरिभी ।।

(११) स० १५२६ वर्षे आषाढ सुदि नवम्यॉं वा० श्री कीर्ति ' प्रतिष्टित खरतरगच्छे श्रीजिनचन्द्रसूरि विजय ।

(१२) गुरुमूर्ति—

१ ए सवत् १५३६ वर्षे ५ । श्रीकीर्तिरत्नसूरि गुरुभ्योनम सा जेठा पुत्र रोहिणी प्रणमति ।

(१३) धातुमूर्ति—

स० १५५० वर्षे फागण सुदि ११ गुरु श्रीपल्लीवालगच्छे ओसवाल जातीय छाज० सा० भा० लखमादे पु० खेतलदे पु० खेतसी नरसघ वरसघ सहितेन पितृभातृपुण्यार्थं बिब कारित प्रतिष्ठित भ० प्रनेभ्रसूरिपट्टे। उज्जोअणसूरिभि ।। श्री ।।छ।।

(१४) रगमण्डप—

।। सवत् १५६२ वर्षे आशु सुदि १०, ६ दिने राउल श्री घणसिधुविजय राज्ये श्री विमलनाथ प्रासादे । श्री तपागच्छधिराज परम महारिक श्री श्री श्री हेमविमलसूरिशिष्य

महिमसुन्दरगणीना पादुके प्रतिष्ठिते महारक श्री जिनराजसूरि राजेन ।

(२३) गर्भगृहोपरि न० १—

A सवत् १८६४ वर्षे माघ वदि ५ सूर्जवासरे श्री वृहत्खरतरगच्छे सकल महारक ।

B सिरोमणि जगमयुगप्रधानताजो श्री १०८ श्री श्री जिनहर्षसूरिजी सूरीश्वरराज ।

C श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथजी श्री महावीरजी सकल श्रीसघ महितेन श्रीपातान ।

D चैत्य भोयतल नौतन कारापिते प्रतिष्ठित । वि (१ वा) जैराज लीपीकृत देहरा री दरोगाइ सुप्रसादति श्रावक पच ।

E दत्त । श्रीराठोडवशे राजश्री जैसिगदेजी विजे राज्ये । सूत्रधार गजधर गम्भू कृत ।

F जोध हरदेवाजी रो वेटो ।

श्री नाकोड़ा तीर्थ का परिचय

ले० श्री विद्यानन्द विजयजी महाराज

१ यह श्रीनाकोडा तीर्थ वालोतरा से पश्चिम की ओर ७ मील पर स्थित है। इस तीर्थ की शोभा पहाडो के बीच मे होने से अतीव सुशोभनीय है । यहाँ पर मूलमन्दिर ११वी शताब्दी का है जो शिलालेखो से प्रतीत होता है। पहले पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा यहाँ से २४ मील दूर पश्चिम दिशा मे आए हुए नाकोडा गाँव मे विराजमान थी। सवत् १४४३ वैशाख शुक्ला १३ के दिन वादशाह दावीगी लेकर आया और मन्दिरो की तोडफोड़ की। उसके पहले श्रावको ने अपनी निजो सम्पत्ति समझकर पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा को द्रह मे रख दी, जिससे प्रतिमा सुरक्षित रही। स० १५०२ मे प्रतिमा निकालने का सौभाग्य वीरमपुर नगर के सेठ जिनदत्त को स्वप्न आया और उस शुभ स्वप्न को सेठ ने नगर मे विराजमान प०पू० आचार्य भगवन् श्रीमद् कीर्तिरत्नसूरिश्वरजी महाराज साहब को सुनाया। तब आचार्य भगवन श्रीसघ को लेकर नाकोडा गाँव के द्रह पर गए और प्रतिमा

श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर
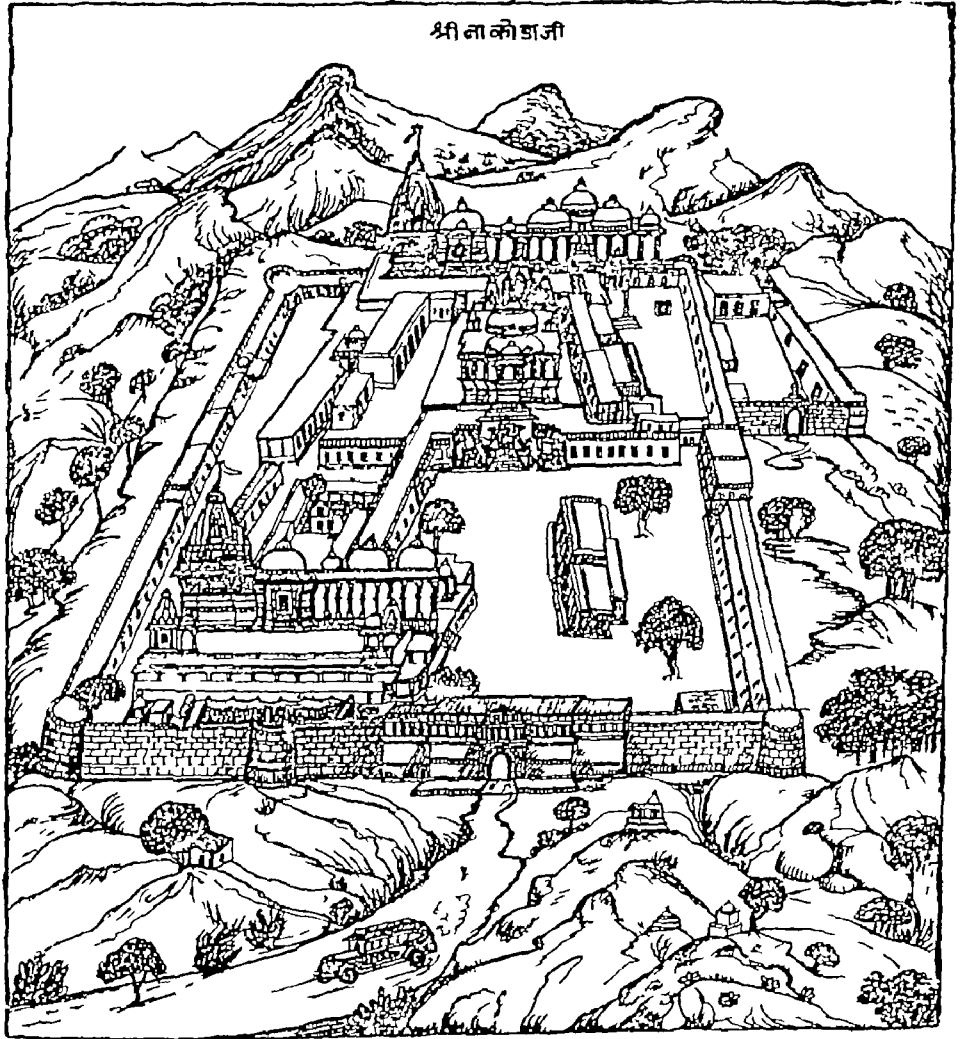
बालोतरा से ७ मील की दूरी पर स्थित प्राचीन चमत्कारी तीर्थ स्थल

को द्रह से निकालकर बडे ही ठाट-बाट के साथ वीरमपुर नगर मे प्रवेश कराकर सहमहोत्सव मदिर मे विराजमान की। तब से यह तीर्थ नाकोडा पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके पहले इस मन्दिर मे महावीर प्रभु की प्रतिमा विराजमान थी जो आज पचतीर्थी मे विराजमान है।

२ इस तीर्थ पर भव्य तीन जिनालय हैं। मूल मन्दिर पार्श्वनाथ प्रभु का है। इस मन्दिर मे अधिष्ठायकदेव की देदीप्यमान एव चमत्कारी प्रतिमा है जो नाकोडा भैरवदेव के नाम से विख्यात है। पहले एक छोटे आले के अन्दर अकृत्रिम स्थापना की हुई थी। स० १९९० मे मुख बनाया और जब स० १९९१ मे प० पू० गुरुदेव अञ्जनशलाका एव प्रतिष्ठा कराने के लिए पधारे तब अधिष्ठायकदेव के आदेश द्वारा एव जैन सिद्धात के अनुसार मुखारविद के नीचे की आकृति बनवाकर स० १९९३ के अन्दर पुन भैरवदेव के आदेशानुसार शुभ मुहूर्त मे बैठाई गई। तब से लगाकर दिनप्रतिदिन तीर्थोन्नति होती जा रही है और बढती रहेगी।

३ दूसरा लाछीबाई का बनाया हुआ आदिनाथ प्रभु का मन्दिर है जो प्राय १५वी शताब्दी का है। तीसरा मालाशाह का बनाया हुआ शान्तिनाथ प्रभु का मन्दिर है वह भी प्राय १५वी शताब्दी का है।

४ इन मन्दिरो की व्यवस्था बालोतरा नगर मे विराजमान भावहरख गच्छ के श्री पूज्य फतेन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहेब करते थे। काल के प्रभाव से मन्दिर जीर्णशीर्ण होते गये। सवत् १९६४ मे अकबर प्रतिबोधक शासन सम्राट सूरि पुरन्दर जगद्गुरु देव श्री मद्विजय हीरसूरीश्वर सतानीय १४वी पाटे विराजमान आगम महोदधि प० पू० पन्यासजी श्री हितविजयजी महाराज साहेब इस तीर्थ की यात्रार्थ पधारे थे। तब इन मन्दिरो की जीर्णशीर्णावस्था देखकर उनके मन मे भारी आघात लगा। गुरुदेव विहार कर वापिस घाणेराव पधार गए और अपने समुदाय मे आगेवान वयोवृद्धा प्रवर्तिनी साध्वीजी सुन्दर श्रीजी को तीर्थ सम्बन्धी बात कही और फरमाया की तुम तीर्थ का उद्धार करा सकती हो। सुन्दर श्रीजी ने गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर नाकोडा की तरफ विहार किया प्रवर्तिनीजी ने अपनी शिष्याओ सहित तीर्थ की यात्रा की। उसके बाद पुन विहार कर बालोतरा गई और वहाँ विराजमान श्री पूज्य फतेन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहेब से मिली और तीर्थ-सम्बन्धी परिचय लिया। पूज्य श्री ने साध्वीजी को देखते ही फरमाया कि तुम प्रभावशाली हो और तीर्थ का उद्धार तुम करा सकती हो ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इस प्रकार कह कर तीर्थ सम्बन्धी कारबार प्रवर्तिनीजी को सुपुर्द कर दिया। साध्वीजी ने बालोतरा श्री सघ को आगेवान कर सवत् १९६५ मे तीर्थ का जीर्णोद्धार कार्य प्रारम्भ किया तब से लगाकर आज दिन तक सुचारु रूप से चल रहा है। साध्वीजी ने अथक् परिश्रम द्वारा

गामोगाम विहार कर लोगो को उपदेश दिया जैसे ४८ सी, जालोरी पट्टा, सिवाणची, मालाणी आदि श्री सघ ने विशेष लाभ लिया और अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया जो आज सामने शोभायमान है। यह सारा श्रेय साध्वीजी श्री सुन्दर श्रीजी को ही है।

मन्दिर सम्बन्धी जीर्णोद्धार कार्य अच्छी तरह से होता हुआ देखकर साथ ही साथ अपनी वृद्धावस्था के कारण इन्होने अपनी मौजूदगी मे प्रतिष्ठा कराना आवश्यक समझ कर श्री सघ के समक्ष तय किया और अपनी साध्वीजी प्रसन्नश्रीजी एव माणकश्रीजी आदि ठा० को घाणेराव मे विराजमान अपने गुरुदेव के शिष्यरत्न प्रतिष्ठा अजनशलाकादि विविध क्रिया कुशल प पू अनुयोगाचार्य पन्यासप्रवर श्री हिम्मतविजयजी महाराज साहेब एव सगीतज्ञ पू मुनिराज श्री गुमानविजयजी महाराज साहेब आदि ठा २ को विनती करने के लिए भेजी। गुरुमहाराज ने भी अपूर्व तीर्थ भक्ति का लाभ समझ कर नाकोडा तीर्थ पर पधारे और अपनी निश्रा मे अञ्जनशलाका एव प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्यक्रम प्रारम्भ कराया। स० १९९१ माघ शुक्ला १३ के दिन शुभ मुहूर्त मे पन्यासजी महाराज साहब के करकमलो द्वारा १२५ प्रतिमाओ की अञ्जनशलाका एव प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न हुई। १७वी शताब्दी मे यहा गाव बसा हुआ था उस समय ठाकुर साहेब और जनता मे मतभेद उत्पन्न हुवा वो म की अमृतमय वाणी से दूर हुवा और शाति की स्थापना हुई जिसके उपलक्ष मे गुरुदेव ने गौशाला के लिए जमीन की याचना की। गुरुवाणी का वहुमान कर इस गाव के ठाकुर श्रीमान दौलतसिहजी ने धर्मशाला के पास मे रही हुई जमीन गौशाला के लिए भेट की वह गौशाला आज भी विद्यमान है जिसमे गौ-सेवा अच्छी तरह से होती है। जिस दिन शुभ मुहूर्त मे इस तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई उस दिन से आज दिन तक दिनोदिन तीर्थ की उन्नति होती जा रही है। स० १९९३ मे तखतगढ वास्तव्य श्रेष्ठिवर्य श्री केसरीमलजी अचलाजी की भावना प्रवर्तिनीजी के सदुपदेश द्वारा सघ निकालने की हुई। सघ मे प० पू० पन्यासजी श्री हिम्मतविजयजी म० प० पू० पन्यासजी श्री सुरेन्द्रविजयजी म प पू पन्यासजी श्री रविविजयजी म वयोवृद्ध पू० मुनिराज श्री जयविजयजी म० पू० मुनिराज श्री गुमानविजयजी महाराजादि ठा० २० एव तीर्थोद्धारीका प्रवर्तिनी साध्वीजी श्री सुन्दरश्रीजी तथा अपनी शिष्या प्रशिष्या माणकश्रीजी, धनश्रीजी, चेतनश्रीजी, श्री प्रसन्नश्रीजी, कर्णश्रीजी और साध्वीजी महाराज आदि ठाणा मिलकर १२० साधु साध्वी और २००० श्रावक श्राविकाओ की उपस्थिति थी। सघ गामोगाम शासन की प्रभावना करता हुआ नाकोडा तीर्थ पर आया। सघवी एव सघवण को माला आरोहनविधि गुरुदेव के करकमलो द्वारा हुई। उस समय साध्वीजी महाराज ने अपनी अतिम अवस्था देख कर सघ के समक्ष तीर्थ का सारा कार्य अपने गुरुदेव को सौंप दिया और कहा कि आज से तीर्थ का सव वोझा आपके ऊपर है। गुरुदेव ने भी साध्वीजी के वचन को मान्य कर तीर्थ सम्बन्धी

भार बोझा अपने ऊपर लिया। उस दिन से लगा कर आज दिन तक जीर्णोद्धार सबन्धी कार्यक्रम पूर्णतया लागणीपूर्वक कराते हैं। दूसरी बार सवत् २०१६ माघ शुक्ला १४ के दिन शुभ मुहूर्त मे ५१ प्रतिमाओ की अञ्जनशलाका एव प्रतिष्टा उपरोक्त गुरुदेव (वर्तमान प० पू० मेवाडकेसरी आचार्य भगवन् श्री मद्विजयहिमाचल सूरिश्वरजी महाराज साहिब) के करकमलो द्वारा हुई है। उस वक्त आदेश्वर भगवान् के मन्दिर मे दाहिनी तरफ छत्री के अन्दर चतुर्मुख प्रतिमा एव प्रभु के सन्मुख गणधर पुण्डरिक स्वामी की प्रतिमा और फिरणी के अन्दर आदेश्वर प्रभु की चरणपादुका मूलनायक के मन्दिर मे पार्श्वनाथ प्रभु के आजूबाजू जगवल्लभ पार्श्वनाथ एव चितामणि पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमाए और भैरवदेव के छत्री ऊपर स्वर्णकलश, दण्डध्वज तथा पू० कीर्तिरत्न सूरिश्वरजी के छत्री ऊपर स्वर्णकलश, दण्डध्वज और चक्रेश्वरी भवन मे बनी हुई छत्री के अन्दर शावला पार्श्वनाथ प्रभु की भव्य प्रतिमा बाजू के साल मे पार्श्वनाथ प्रभु का त्रिगडा एव सरस्वती माताजी की मूर्ति तथा बाहिर के भाग मे पञ्चतीर्थी एव शान्तिनाथ प्रभु के मन्दिर मे फिरणी के अन्दर चारो ही देवकुलिकाओ मे तीन तीन प्रतिमा स्थापित की गई। इस तीर्थ पर पौष कृष्णा ९-१०-११ को हर साल बडा भारी मेला लगता है। इस मौके पर दूर दूर से यात्रीगण आते हैं। उनमे से कई एक भाग्यशाली नवकारसी आदि का भी लाभ उठाते हैं।

इस तीर्थ के चारो तरफ ७-७ मील पर कोई गाव नही है। फिर भी सघ को ठहरने के लिये तीर्थ पर बडी भारी धर्मशाला है एव भोजनशाला आदि की पूर्ण सुविधा है। पहले यहा पर भोजन शाला का अभाव था, तब गुरुदेव ने स० २०१४ मे अथक परिश्रम कर स्थाई भोजनशाला का कार्यक्रम कमेटी द्वारा प्रारम्भ करवाया जिसमे १००१) रुपये की मिति रखी गई है। आने वाले यात्रियो को भाता भी मिलता है कहने का तात्पर्य यह है कि तीर्थ की ओर से सब प्रकार की सुविधा मिलती है। यही कारण है कि दिनोदिन यात्रियो की सख्या बढ रही है और बढती रहेगी।

राजस्थान का एक प्राचीन महा तीर्थ — साँचोर

लेο अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

महापुरुषो का जिस तिथि, नक्षत्र आदि मे जन्म होता है वह समय स्मरणीय वन जाता है। तिथि को पर्वतिथि मानी जाती है।

इसी तरह जहाँ उनका च्यवन, जन्मदीक्षा, कैवल्यज्ञान और निर्वाण होता है वह स्थान भी तीर्थ के रूप मे मान्य हो जाता है।

इन पाँचो घटनाओ से सवधित दिन को या तिथि को कल्याणक दिवस कहा जाता है। भक्तजन उस दिन उपवास आदि तप और जप व धर्मध्यान करके महापुरुषो के प्रति आदर भाव व्यक्त करते हैं।

महापुरुषो के जीवन से सवधित स्थानो की यात्रा करके अपने को धन्य मानते हैं। खुद के शरीर आदि से सवधित वस्तुओ को भी वडे यत्नपूर्वक रखा जाता है और वे वस्तुएँ पूजी भी जाती हैं।

उन सव का उद्देश्य एक ही है कि हमारे हृदय मे महापुरुषो के प्रति श्रद्धा और भक्ति का सचार और वृद्धि हो।

भगवान महावीर का च्यवन, जन्म और दीक्षास्थान क्षत्रिय कुण्ड और कैवल्य ज्ञान प्राप्ति का स्थान ऋजु वालिका नदी का तटवर्ती क्षेत्र और निर्वाण स्थान पावापुरी तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध है।

उन स्थानो मे महावीर भगवान की मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्रतिवर्ष हजारो श्रद्धालु भक्त वहाँ दर्शन, वन्दन और पूजन करने को पहुँचते हैं।

इन स्थानो को कल्याणक भूमि कहा जाता है। ये तीनो स्थान विहार प्रदेश मे हैं। आगे चलकर जैन धर्म का प्रचार पश्चिम, दक्षिण और उत्तर भारत मे वढता गया। तव वहाँ महावीर देव के मन्दिर व मूर्तियाँ स्थापित की गई उनमे से कुछ मूर्तियो के चमत्कार प्रसिद्धि मे आए और वे स्थान भी तीर्थ के रूप मे मान्य हो गए।

राजस्थान मे आज महावीरजी के नाम से एक स्वतन्त्र तीर्थ प्रसिद्ध है। पर वह अधिक पुराना नही है। इसके पहले एक अन्य स्थान महावीरजी के तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध था। शताब्दियो तक उसका तीर्थ मे स्मरण किया जाता रहा, पर वह आज सर्वथा उपेक्षित है। वह स्थान है मारवाड का एक ग्राम—'साँचोर'। श्वेताम्वर समाज मे प्रतिदिन प्रात कालीन

प्रतिक्रमण मे जो सर्वप्रथम चैत्यवदन किया जाता है उसमे शत्रुञ्जय गिरनार आदि तीर्थो के साथ साँचोर के महावीर तीर्थ को भी 'जयउ वीरसच्च उरिय मण्डण' शब्दो द्वारा वदन किया जाता है। प्राकृत सच्चउर को सस्कृत मे सत्यपुर और अपभ्रंश या लोकभाषा मे साँचोर नाम दिया हुआ मिलता है।

इस तीर्थ के प्राचीन वृत्तात और चमत्कारो का वर्णन १४वी शताब्दी के विद्वान जैनाचार्य श्री जिनप्रभसूरि ने अपने 'विविध तीर्थकल्प' मे एक स्वतन्त्र कल्प के रूप मे किया है। इस कल्प का साराश इस प्रकार है—

मरुमण्डल के सत्यपुर नगर मे नाहड राजा का बनाया हुआ और जज्जगसूरि प्रतिष्ठित महावीर स्वामी की पीतलमय प्रतिमा विराजमान है, जिसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

प्राचीन काल मे नड्डल देश के मण्डोवर के राजा को उसके किसी बलवान कुटुम्बी ने मार डाला और नगर को अपने आधीन कर लिया। राजा की रानी गर्भवती थी। वह वहाँ से भागकर बम्भाणपुर गई और वहाँ सर्व शुभलक्षण सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया। एक दिन वह रानी नगर के बाहर एक वृक्ष की डाली पर बाधी हुई झोली मे बालक को सुला कर नजदीक मे ही कोई काम करने लगी। दैवयोग से वहाँ जज्जगसूरि पधारे। वृक्ष की छाया बालक के ऊपर से हट नही रही थी। इससे उन्होने निर्णय किया कि यह कोई पुण्यशाली जीव है और काफी देर तक खडे रहकर बालक को ध्यान से देखने लगे। रानी ने उन्हे पूछा—'महाराज, बडी देर से आप क्या देख रहे हैं? लडके के लक्षण खराब तो नही हैं!' सूरिजी ने कहा 'नही, तुम्हारा यह पुत्र बडा भाग्यशाली है। इसका यत्नपूर्वक पालन-पोषण करो।' इस बालक का नाम नाहड रखा गया। कुछ बडा होने पर सूरिजी ने उन्हे नमस्कार मत्र सिखाया। उसके प्रभाव से नाहड ने स्वर्ण पुरुष सिद्ध किया और समृद्धिशाली और महापराक्रमी हो गया तब उसने अपने पिता का राज्य भी पुन. प्राप्त कर लिया।

जज्जगसूरि के उपदेश से उसने २४ जिनालय बनवाए और एक दिम फिर गुरुश्री से कहा कि आपकी और मेरी कीर्ति लम्बे समय तक बनी रहे ऐसा कोई उपाय बतलाइए। सूरिजी ने कहा जिस स्थान पर गाय के चारो स्तनो से अपनेआप दूध झरने लगे वहाँ जैन मन्दिर बनाओ।

नाहड ने साचोर मे वीरनिर्वाण के ६०० वर्ष बाद गगनचुम्बी शिखर वाला विशाल जैन मन्दिर बनाया और उसमे महावीर स्वामी की पीतलमय प्रतिमा स्थापित की जिसकी प्रतिष्ठा श्री जज्जगसूरि ने की।

इसी मुहूर्त मे सूरिजी ने विंध्यराय की घोडे पर बैठी हुई मूर्ति स्थापित की। शख नामक राजपुत्र ने वहाँ कुआ इसी समय खुदवाया। इसका पानी कभी कभी सूख भी जाता है पर वैशाख सुदि १५ को कुआ पानी से भरा हुवा मिलता है। इसी लगन मे दुग्ग सूग्र और वयणव गॉव मे भी भगवान की प्रतिष्ठा—साधु और श्रावको के बीच वासक्षेप भेज कर की गई।

आपके बनाए हुए साँचोर के चैत्य की प्रतिमा की पूजा नाहड राजा प्रति दिन करता रहा। ब्रह्मशाति यक्ष इस मूर्ति की सेवा और रक्षा करता है। ब्रह्मशाँति यक्ष पहले सूलपाणी यक्ष के नाम से प्रसिद्ध था। महावीर भगवान की छद्मस्थ साधना अवस्था मे उसने उपसर्ग किए थे। अन्त मे वीर प्रभु से प्रतिबोध पाकर उनका भक्त बन गया था और साँचोर की इस मूर्ति के कई चमत्कार ब्रह्म शाति यक्ष ने दिखाए।

सवत १०८१ मे गजनी पति मुसलमान बादशाह गुजरात को लूट कर साँचोर पहुचा और वहाँ महावीर मन्दिर और मूर्ति को तोडने का बहुत प्रयत्न किया। मूर्ति को हटाने के लिए हाथियो को जोड कर खीची गई। मूर्ति तोडने को घनों द्वारा प्रहार किए पर प्रहार बेगमो को लगने लगे। तलवारो के प्रहार भी निष्फल गए। अन्त मे मूर्ति की अगुली काट कर म्लेच्छ लोग भागने लगे तो देवप्रभाव से घोडो की पूछ और सवारो की मूछें दाढी जलने लगी। सैनिक लोग नीचे गिरने लगे और शक्तिहीन होकर रहमान का स्मरण करने लगे। तब देववाणी हुई कि तुम ने मूर्ति की अगुली काटी है, इसका फल चखलो।

गजनी पति चकित होकर सर धुनने लगा और अपने वजीरेआजम को अगुली देकर मूर्ति के पास भेजा। वजीर ने कटी हुई अगुली कटे हुए स्थान पर रखी तो अपनेआप जुड गई। वीर चैत्य मे यह चमत्कार देख कर गीत नृत्य पूजादि होने लगे।

११वी शताब्दी के महाकवि धनपाल ने सत्यपुर मडण महावीर उत्साह नामक १५ पद्यो की भक्तिपूर्ण अपभ्र श स्तुति मे लिखा है कि श्रीमाल देश और अणहिलवाडा चड्डावली, सोरठ, देवलवाडा और सोमेश्वर तुर्कों द्वारा भग्न हो गए पर साँचोर के वीर भगवान का मदिर व मूर्ति भग्न नही हुई—

'भजेवि णु सिरि माल देसु अनुअणहिल वाडउ।
चड्डावलि सोरठ्ठ भग्गु पुणु देउल वाडउ ॥
सोमेसरू सो तेहि भग्गु जण मण आणदणु।
भग्गु न सिरि सच्चउरि वीरू सिद्धत्थह नदणु ॥३॥

कवि धनपाल ने एक अन्य चमत्कारिक घटना का उल्लेख करते लिखा है—कि इससे पूर्व किसी राजा ने घोडे और हाथी जोड़ कर मूर्ति को रस्से से वाँध कर खीचने का प्रयत्न

किया और कुल्हाडे से घाव मारे फिर भी मूर्ति स्थिर रही। कुल्हाडे के घाव आज भी उस पर नजर आते हैं। सच्च उरिय महावीर उत्साह के पद्याक ५-६-७ मे इस घटना का उल्लेख है। कवि ने अनेक तीर्थो की यात्रा की थी पर सबसे अधिक वह साँचोर के महावीर तीर्थ से प्रभावित हुआ। उसने लिखा है—

कोरिट, सिरिमाल, धार, आहाड्ड, नराणउ,
अणहिलवाडउ, विजयकोट्टु, पुण पालिताणु।
पिक्खिवि ताप बहुत ठाम मणि चोज्जु पईसई,
ज अज्जवि सच्चउरि विरू लोयणिहि न दीसई ॥१३॥

जिनप्रभ सूरिजी ने उसके बाद की घटनाओ का उल्लेख करते हुए लिखा है, कि उपरोक्त घटना के काफी समय बाद मालव देश का राजा गुजरात देश को भग्न करते हुए सत्यपुर की सरहद मे पहुँचा। तब ब्रह्म शाति यक्ष ने सेना को बहुत सताप दिया जिससे उस राजा की सेना भाग गई। उसके निवासस्थान मे अपनेआप अग्नि लगी। यह चमत्कार देखकर मालवपति धन माल वही छोड कर भाग खडा हुआ।

विक्रम की १३वी शताब्दी मे कन्नौज के राजा ने महावीर प्रतिमायुक्त देवदार का जैन मन्दिर बनाया। सवत १३४८ मे मुसलमान सेना लूटमार करती हुई यहाँ आ पहुंची और शहर के लोग भय से भागने लगे और मन्दिरो के दरवाजे बन्द करने लगे। मुसलमानी सेना जब साँचोर के नजदीक पहुची तो दूर से ही उन्हे अनाहद वाजिन्त्र का गभीर स्वर सुनाई देने लगा और ब्रह्मशाति यक्ष ने देव माया से बहुत बडी सेना दिखादी। मुसलमानो ने समझा कि गुजरात के महाराजा सारगदेव की सेना आ गई है। वे साँचोर की सरहद मे प्रवेश न करते हुए किनारे से ही भाग खडे हुए।

सवत १३५६ मे अलाउद्दीन खिलजी का छोटा भाई उल्लूखाँ गुजरात पर आक्रमण करने गया तब चित्तौड के समरसिंह ने दड देकर मेवाड का बचाव किया। बागड देश और मोडासा नगर को लूट कर उल्लूखाँ आसावली (अदमदाबाद) पहुचा। वहाँ का कर्णदेव राजा भाग गया। उल्लूखाँ ने, सोमनाथ महादेव के शिवलिंग को तोड कर, गाडे मे डाल कर, दिल्ली भेज दिया। वहाँ से वामस्थली जाकर मडलिकराय को दडित किया। सोरठ मे अपनी आज्ञा प्रवर्ता कर वापस आसावली पहुचा और वहाँ के मठ मदिरो को जला डाला।

क्रमश आगे बढते हुए साँचोर पहुचा, पर वहाँ अनाहत दैवी स्वर सुन कर बिना नुकसान पहुंचाए आगे चला गया। इस प्रकार देव-प्रभाव से कई बार आक्रमण होने पर भी मन्दिर व मूर्ति सुरक्षित रही।

पर सवत १३६१ मे गोमास और लहु के छाँटने से सभवत देवता भाग गए। इसी कारण से ब्रह्मशाति यक्ष वहाँ से दूर चला गया तब अलाउद्दीन ने मूर्त्ति को दिल्ली लेजा कर उसकी आसातना और अपमान किया। इस प्रकार यह महावीर तीर्थ एक चमत्कारी मूर्ति के कारण शताब्दियो तक आकर्षण का केन्द्र रहा, पर १४वी के उत्तरार्ध मे उस मूर्ति के अन्यत्र चले जाने के कारण, इस तीर्थ का वह महात्म्य और प्रभाव सुरक्षित नही रह सका।

मुनि श्री न्यायविजयजी (त्रिपुटी) लिखित 'जैन तीर्थो का इतिहास' के अनुसार साँचोर मे अभी ५ जैन मन्दिर व ५०० श्रावको के घर हैं। ४ गाव मे व १ बाहर मिला कर ५ मन्दिरो मे से २ महावीर स्वामीजी के हैं और अन्य मे से १ जीवित स्वामी का मन्दिर बतलाया है, जिसमे मूलनायक महावीर भगवान की मूर्ति है। मन्दिर विशाल व भव्य है। इनमे खरतरगच्छ का धर्मनाथ, चोदसिया गच्छ का शीतलनाथ और गाँव बाहर पार्श्व-नाथ के मन्दिर हैं।

ओझाजी ने महावीर स्वामी के बनाए मन्दिर को तोड कर उनके पत्थरो से मस्जिद बनाने का उल्लेख किया है। मस्जिद मे दो सस्कृत के लेख सवत १२७७ मे हरिश्चन्द्र द्वारा मडप बनाने सम्बन्धी और १३२२ मे जीर्णोद्धार कराने सम्बन्धी होने का उल्लेख किया है। जीर्णोद्धार ओसवाल भडारी छाधाक ने वै ब १३ को चौहान राज्य भीमदेव के समय करवाया था। ओझाजी ने अन्य वामेश्वरादि जैनेतर मन्दिरो के शिलालेखादि का उल्लेख भी किया है।

पूरणचदजी नाहर के 'जैन लेख-सग्रह भा० १ के पृ २४५ मे साचोर के महावीर चैत्य का सवत १२२५ का एक लेख छपा है लेख इस प्रकार है –

स्वस्ति श्री सवत १२२५ वर्ष वेषाख वदि १३ दिने श्री सत्यपुर महा शुभस्थाने राज श्री भीमदेव कल्याण विजय राज्ये उपकेश शतीय भडारी भजगसिह पुत्र भडारी पाल्हा सुत छोधा केन वृद्ध भ्रातृ भ० साम वधु घासकितेन श्री महावीर चैत्य आत्म श्रेयस चतुष्किका उद्धारकारिता।

१७ वी शताब्दी के महोपाध्याय समयसुन्दरजी का जन्मस्थान साचोर है। वहाँ उन्होने सीताराम चोपई की एक ढाल और महावीर स्तवन सवत १६७७ मे बनाया उसके बीच के चार पद छोड कर बाकी पूरा स्तवन दिया जा रहा है—

श्री साँचोर-तीर्थ महावीर जिनस्तवन

धन्य दिवस मइ आज जुहारयउ, साचोरउ महावीरजी।
मूल नायक अति सुंदर मूरति, सोवन वरण सरीरजी।१।६८

जूनउ तीरथ जगि जाणीजई आगम गथइ सासजी ।
जिन प्रतिमा जिन सारखी जाणउ भगवत इण परि भाखजी ।२।६९

सत्रुञ्जइ जिन श्री आदिसर, गिरनारे नेमिनाथजी ।
मुनि सुव्रत स्वामी, जिम भरू अच्छई, मुक्ति नउ मेल साथजी ।।३।। ध०

मूल नायक जिम मथुरा नगरी, पार्श्वनाथ प्रसिद्धजी ।
तिम साँचोर नगर महँ सोहई, श्री महावीर समृद्धजी ।।४।। ध०

जिन प्रतिमा नई जुहारवा जाता, पग थयउ मुझ सुपवित्तजी ।
मस्तक पण प्रणमता माहरउ, सफल थयउ सुविचित्तजी ।।९।। ध०

नयन कृतारथ आज थया मुझ, मूरति देखता प्रायजी ।
जीभ पवित्र थई वली माहरी, थुणता श्री जिनराजजी ।।१०।। ध०

आज श्रवण सफल थया माहारा, सुणता जिन गुण ग्राम ।
मन निर्मल थयउ ध्यान धरता, अरिहत तउ अभिरामजी ।।११।। ध०

श्री अरिहन्त कृपा करउ सामी, मांगू चेकर जोडोजी ।
आवागमन्न निवार अतुल बल, भव सकट थी छोडीजी ।।१२।। ध०

शासनाधीश्वर तु मुझ साहिब, चउवीस मउ जिनचदजी ।
इकवीस सहस वरस सीमवरते, तीरथ तुम आणदजी ।।१३।। ध०

कलश

इम नगर श्री साँचोर मडण, सिह लंछन सुख करउ ।
सकलाप सूरति सकल मूरति, माता त्रिशला उर धरउ ।।
सवत सोलह सही सत्योतरइ, मास माह मनोहरउ ।
वीनव्यउ पाठक समय सुदर, प्रकट तु परमेसरउ ।।१४।।

राजस्थान के उपेक्षित व अज्ञात तीर्थ की ओर जैन समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिए यह लेख लिखा गया है । अस्तु ।

प्राचीन जैन श्वेताम्बर तीर्थ श्री केसरियाजी

ले० श्री सुपार्श्वचन्द भण्डारी, बी.एस.सी., जोधपुर

यह तीर्थ मेवाड के अन्तर्गत मगरा जिले मे उदयपुर से चालीस मील दूर धुलेवा नगर मे स्थित है। यह तीर्थ शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है। मूलनायक आदिनाथजी की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और मनोहारी है, तीन फुट ऊँची श्यामवर्ण, पद्मासन स्थिति मे है। बावन जिनालय वाली देहरिया भी आस-पास ही हैं। चाँदी, सोने तथा जवाहिरात की आगिया, मुकुट कुण्डल धारण कराए जाने के साथ हजारो तोला केसर भी चढाई जाती है इसीलिए इस तीर्थ का नाम श्री केसरियाजी विख्यात हुआ।

मन्दिर का निर्माण चौदहवी शताब्दी से अधिक पुराना विदित नही होता। कुछ लेखो के आधार पर पन्द्रहवीं शताब्दी मे जीर्णोद्धार होना पाया जाता है। मन्दिर का मध्य भाग वि० १६८५ मे पूर्ण हुआ। बावन जिनालयो मे वि० १७४६ के आसपास प्रतिमाएँ स्थापित हुई। मन्दिर के सामने जो नौ चौकिएँ बनी हुई हैं वे श्वेताम्बराचार्य श्रीमद् जिनलाभसूरिजी महाराज के उपदेश से बनी। एक लेख से यह भी विदित होता है कि श्री पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० १८०१ मे श्री सुमतिचन्द्रजी गणि ने कराई। मन्दिर के चारो ओर जो कोट, किला है वह वि० १८६० से पहिले का है। वि० १८८६ मे नौबतखाना बना। वि० १७६४ मे चारभुजाजी का मन्दिर बना।

मूल प्रतिमा बडौद गाँव से लाई गई। आज भी वहाँ चरण स्थापित हैं और केसर आदि से पूजा की जाती है। मध्य मन्दिर मे मुख्य प्रतिमाजी के दर्शन चाँदी की प्लेटो के कारण दूसरे भाग से नही हो सकते। प्रत्येक पूर्णिमा को भण्डारा भरता है। मूर्ति के श्रृङ्गार के लिए एक लाख पचास हजार के आभूषण लेकर मुख्य कार्यकर्त्ता आता है। पूजा मे सोने चाँदी के बर्तन काम मे लाए जाते हैं। दिन भर भक्तजन प्रतिमाओ के चरणो पर केसर आदि चढाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि श्रद्धालु भक्तजन बच्चो के बराबर केसर तोलकर एक साथ चढा देते हैं। महाराणा फतहसिंहजी ने भी एक बार २३५०००) रुपयो के मूल्य की हीराजटित आगी चढाई थी। लगभग तीन सौ वर्षो से विधिवत श्वेताम्बर पद्धति के अनुसार पूजा होती आ रही है।

इस तीर्थ की यात्रा करने देश के कोने कोने से यात्री आते रहते हैं और नित्य प्रति मेला सा लगा रहता है। चैत वद ८ भगवान ऋषभदेव की जन्मतिथि व दीक्षा की तिथि होने से बहुत बडा मेला लगता है जिसमे आसपास के जैनो के अतिरिक्त अजैन भक्त

पूरा होने पर प्रतिमाजी की तलाश मे रहे । इजिनियर वेलाणी छोटी सादडी ऑफिस मे काम करते थे। जब मालवा मे जीर्णोद्धार का काम देखने गया तो शहाजापुर सारगपुर मडीवा का काम देख रिपोर्ट की कि वहाँ अपूज्य प्रतिमाजी की विशेष सख्या मे स्थापना है। वहाँ से मिल सकेगी, आज्ञा हो तो सग्रह करे। आवश्यकता तो थी ही मैं स्वय देखने गया। प्रतिमाजी सुन्दर, मनमोहक देख आज्ञा दी गई। तदनुसार पाषाण की व सर्व-धातु की प्रतिमा व पचतीर्थियो का धीरे धीरे सग्रह होने लगा और सबको करेडा धर्म-शाला की दो कोठरियो मे रखते गए।

धातु की प्रतिमा पचतीर्थिया, चौबीसिया विशेष सख्या मे थी सो जाहेरात छपवा कर आवश्यकतानुसार दे दी गई। पाषाण की प्रतिमाए बावन जिनालय मे स्थापित करना निश्चय किया गया। तदनुसार सवत १९८३ मे वैशाख सुदि पचमी को प्रतिष्ठित की गई। इसी दिन श्री ऋषभदेवजी धूलेवा नगर मे ध्वजदड चढाने का मुहूर्त था। हमारी इच्छा दोनो जगह उपस्थित होने की नही थी परन्तु श्री परमपूज्य आगमोद्धारक आचार्य महाराज का पत्र आया। करेडा सभालो। आज्ञा शिरोधार्य कर करेडा पहुँचा। विधान के लिए श्रीमान यतिजी महाराज अनोपचदजी पधारे थे। मैंने भी योग्य सेवाए दी। यहाँ पर एक घटना यह हुई कि उदयपुर से श्राविका सघ मे विधवाये आई थी उन्हे मडप मे आने की रोक की गई। वह सब वापस उदयपुर जाने लगी। उनमे से चार बाइयाँ मेरे पास आईं। परिस्थिति सुनकर आश्वासन दिया और सभ्यजन आगेवानो को समझाया कि यहाँ विधवा बाई को प्रतिमा स्थापित करने की स्वीकृति दी गई है, रोक काले वस्त्र की है अत सफेद, किरमची, मू गिया पहिन कर आये तो रोक न की जाय। इस पर स्वीकृति होने से सब ठहर गई। प्रतिष्ठा ठाठ से हुई जिसका वर्णन अखबारो मे छपाया था। इस तरह इस तीर्थ का सक्षेप मे वर्णन है।

विचार और आचार का जिसमे मुमेल होता है उसकी शान्ति का भग सहज मे नहीं हो सकता इसलिये जीवन मे सबसे पहिले यह आवश्यक है कि विचार के साथ आचार का मुमेल हो।

प्राचीन जैन श्वेताम्बर तीर्थ श्री केसरियाजी

ले० श्री सुपार्श्वचन्द भण्डारी, बी.एस.सी., जोधपुर

यह तीर्थ मेवाड के अन्तर्गत मगरा जिले मे उदयपुर से चालीस मील दूर धुलेवा नगर मे स्थित है। यह तीर्थ शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है। मूलनायक आदिनाथजी की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और मनोहारी है, तीन फुट ऊँची श्यामवर्ण, पद्मासन स्थिति मे है। बावन जिनालय वाली देहरिया भी आस-पास ही हैं। चाँदी, सोने तथा जवाहिरात की आगिया, मुकुट कुण्डल धारण कराए जाने के साथ हजारो तोला केसर भी चढाई जाती है इसीलिए इस तीर्थ का नाम श्री केसरियाजी विख्यात हुआ।

मन्दिर का निर्माण चौदहवी शताब्दी से अधिक पुराना विदित नही होता। कुछ लेखो के आधार पर पन्द्रहवी शताब्दी मे जीर्णोद्धार होना पाया जाता है। मन्दिर का मध्य भाग वि० १६८५ मे पूर्ण हुआ। बावन जिनालयो मे वि० १७४६ के आसपास प्रतिमाएँ स्थापित हुई। मन्दिर के सामने जो नौ चौकिएँ बनी हुई हैं वे श्वेताम्बराचार्य श्रीमद् जिनलाभसूरिजी महाराज के उपदेश से बनी। एक लेख से यह भी विदित होता है कि श्री पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० १८०१ मे श्री सुमतिचन्द्रजी गणि ने कराई। मन्दिर के चारो ओर जो कोट, किला है वह वि० १८६० से पहिले का है। वि० १८८९ मे नौबतखाना बना। वि० १७६४ मे चारभुजाजी का मन्दिर बना।

मूल प्रतिमा बडौद गाँव से लाई गई। आज भी वहाँ चरण स्थापित हैं और केसर आदि से पूजा की जाती है। मध्य मन्दिर मे मुख्य प्रतिमाजी के दर्शन चाँदी की प्लेटो के कारण दूसरे भाग सें नही हो सकते। प्रत्येक पूर्णिमा को भण्डारा भरता है। मूर्ति के शृङ्गार के लिए एक लाख पचास हजार के आभूषण लेकर मुख्य कार्यकर्त्ता आता है। पूजा मे सोने चाँदी के बर्तन काम मे लाए जाते हैं। दिन भर भक्तजन प्रतिमाओ के चरणो पर केसर आदि चढाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि श्रद्धालु भक्तजन बच्चो के बराबर केसर तोलकर एक साथ चढा देते हैं। महाराणा फतहसिहजी ने भी एक बार २३५०००) रुपयो के मूल्य की हीराजटित आगी चढाई थी। लगभग तीन सौ वर्षो से विधिवत श्वेताम्बर प्रद्धति के अनुसार पूजा होती आ रही है।

इस तीर्थ की यात्रा करने देश के कोने कोने से यात्री आते रहते हैं और नित्य प्रति मेला सा लगा रहता है। चैत वद ८ भगवान ऋषभदेव की जन्मतिथि व दीक्षा की तिथि होने से बहुत बडा मेला लगता है जिसमे आसपास के जैनो के अतिरिक्त अजैन भक्त

पूरा होने पर प्रतिमाजी की तलाश मे रहे। इजिनियर बेलाणी छोटी सादडी ऑफिस मे काम करते थे। जब मालवा मे जीर्णोद्धार का काम देखने गया तो शहाजापुर सारगपुर मडौवा का काम देख रिपोर्ट की कि वहाँ अपूज्य प्रतिमाजी की विशेष सख्या मे स्थापना है। वहाँ से मिल सकेगी, आज्ञा हो तो सग्रह करे। आवश्यकता तो थी ही मैं स्वय देखने गया। प्रतिमाजी सुन्दर, मनमोहक देख आज्ञा दी गई। तदनुसार पाषाण की व सर्व-धातु की प्रतिमा व पचतीर्थियो का धीरे धीरे सग्रह होने लगा और सबको करेडा धर्म-शाला की दो कोठरियो मे रखते गए।

धातु की प्रतिमा पचतीथिया, चौबीसिया विशेष सख्या मे थी सो जाहेरात छपवा कर आवश्यकतानुसार दे दी गई। पाषाण की प्रतिमाए बावन जिनालय मे स्थापित करना निश्चय किया गया। तदनुसार सवत १९८३ मे वैशाख सुदि पचमी को प्रतिष्ठित की गई। इसी दिन श्री ऋषभदेवजी धूलेवा नगर मे ध्वजदड चढाने का मुहूर्त था। हमारी इच्छा दोनो जगह उपस्थित होने की नही थी परन्तु श्री परमपूज्य आगमोद्धारक आचार्य महाराज का पत्र आया। करेडा सभालो। आज्ञा शिरोधार्य कर करेडा पहुँचा। विधान के लिए श्रीमान यतिजी महाराज अनोपचदजी पधारे थे। मैंने भी योग्य सेवाए दी। यहाँ पर एक घटना यह हुई कि उदयपुर से श्राविका सघ मे विधवाये आई थी उन्हे मडप मे आने की रोक की गई। वह सब वापस उदयपुर जाने लगी। उनमे से चार बाइयाँ मेरे पास आईं। परिस्थिति सुनकर आश्वासन दिया और सभ्यजन आगेवानो को समझाया कि यहाँ विधवा बाई को प्रतिमा स्थापित करने की स्वीकृति दी गई है, रोक काले वस्त्र की है अत सफेद, किरमची, मू गिया पहिन कर आये तो रोक न की जाय। इस पर स्वीकृति होने से सब ठहर गईं। प्रतिष्ठा ठाठ से हुई जिसका वर्णन अखबारो मे छपाया था। इस तरह इस तीर्थ का सक्षेप मे वर्णन है।

> विचार और आचार का जिसमे सुमेल होता है उसकी शान्ति का भग सहज मे नहीं हो सकता इसलिये जीवन मे सबसे पहिले यह आवश्यक है कि विचार के साथ आचार का सुमेल हो।

प्राचीन जैन श्वेताम्बर तीर्थ श्री केसरियाजी

ले० श्री सुपार्श्वचन्द भण्डारी, बी.एस.सी , जोधपुर

यह तीर्थ मेवाड के अन्तर्गत मगरा जिले मे उदयपुर से चालीस मील दूर धुलेवा नगर मे स्थित है। यह तीर्थ शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है। मूलनायक आदिनाथजी की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और मनोहारी है, तीन फुट ऊँची श्यामवर्ण, पद्मासन स्थिति मे हे। बावन जिनालय वाली देहरिया भी आस-पास ही हैं। चाँदी, सोने तथा जवाहिरात की आगिया, मुकुट कुण्डल धारण कराए जाने के साथ हजारो तोला केसर भी चढाई जाती हे इसीलिए इस तीर्थ का नाम श्री केसरियाजी विख्यात हुआ।

मन्दिर का निर्माण चौदहवी शताब्दी से अधिक पुराना विदित नही होता। कुछ लेखो के आधार पर पन्द्रहवीं शताब्दी मे जीर्णोद्धार होना पाया जाता है। मन्दिर का मध्य भाग वि० १६८५ मे पूर्ण हुआ। बावन जिनालयो मे वि० १७४६ के आसपास प्रतिमाएँ स्थापित हुई। मन्दिर के सामने जो नौ चौकिएँ बनी हुई हैं वे श्वेताम्बराचार्य श्रीमद् जिनलाभसूरिजी महाराज के उपदेश से बनी। एक लेख से यह भी विदित होता है कि श्री पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० १८०१ मे श्री सुमतिचन्द्रजी गणि ने कराई। मन्दिर के चारो ओर जो कोट, किला है वह वि० १८६० से पहिले का है। वि० १८८९ मे नौबतखाना बना। वि० १७६४ मे चारभुजाजी का मन्दिर बना।

मूल प्रतिमा बडौद गाँव से लाई गई। आज भी वहाँ चरण स्थापित हैं और केसर आदि से पूजा की जाती है। मध्य मन्दिर मे मुख्य प्रतिमाजी के दर्शन चाँदी की प्लेटो के कारण दूसरे भाग से नही हो सकते। प्रत्येक पूर्णिमा को भण्डारा भग्ता है। मूर्ति के शृङ्गार के लिए एक लाख पचास हजार के आभूषण लेकर मुख्य कार्यकर्त्ता आता है। पूजा मे सोने चाँदी के बर्तन काम मे लाए जाते हैं। दिन भर भक्तजन प्रतिमाओ के चरणो पर केसर आदि चढाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि श्रद्धालु भक्तजन बच्चो के बराबर केसर तोलकर एक साथ चढा देते हैं। महाराणा फतहसिहजी ने भी एक बार २३५०००) रुपयो के मूल्य की हीराजटित आगी चढाई थी। लगभग तीन सौ वर्षो से विधिवत श्वेताम्बर प्रद्धति के अनुसार पूजा होती आ रही हे।

इस तीर्थ की यात्रा करने देश के कोने कोने से यात्री आते रहते हैं और नित्य प्रति मेला सा लगा रहता है। चैत वद ८ भगवान ऋषभदेव की जन्मतिथि व दीक्षा की तिथि होने से बहुत बडा मेला लगता है जिसमे आसपास के जैनो के अतिरिक्त अजैन भक्त

भी बहुत से आते हैं। भगवान की श्याम प्रतिमा होने से आदिवासी इन्हे कालिया बाबा कहते हैं और जब कभी इन्हे अवकाश मिलता है तो नहा धोकर जैन विधि के अनुसार पूजा करते हैं।

केसरियानाथजी के अधिष्ठायक देव इतना सबल है कि वह भव्यजनो का मनोवाछित पूरा करते हैं, इसी कारण मूर्ति को नही मानने वाले भी यहा आकर विधिपूर्वक पूजा कर पुष्प आदि चढाते हैं। भारत मे यही एक ऐसा तीर्थ है जहा मूर्तिपूजको के अतिरिक्त हजारो यात्री आकर प्रभु के दर्शन व पूजा का लाभ लेते हैं। यहा धर्म और जाति का कोई भेद नही रहता है। मुझे भी इस तीर्थ के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ और भगवान की मोहनी मूर्ति को देख कर मुझ पर जो प्रभाव पडा उसका वर्णन नही किया जा सकता। प्रभात होते ही तथा सन्ध्याकाल तक पूजा चालू रहती है उसके बाद आरती व भक्ति मे यात्री गण अधिक लाभ उठाते हैं। यहा किसी ऋतु मे भी जाइए हर समय मन्दिर हरा-भरा दीखेगा। मन्दिर के बाहर बाजार है और उससे निकलते ही दो तीन बडी बडी धर्मशालाए बनी हुई हैं जहा यात्रियो को विश्राम मिलता है। यहा जैन श्वेताम्बर व दिगम्बर पेढिया कार्यशील हैं। इसकी व्यवस्था अब उदयपुर के धर्मपुरे विभाग द्वारा होती है। जैनियो को सेवा पूजा आदि की पूरी सुविधाये प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध मे श्वेताबर मूर्तिपूजक सघ की ओर से उच्च न्यायालय मे आवेदन करने पर यह निर्णय हो चुका है कि यह तीर्थ जैन श्वेताबर मूर्तिपूजको का ही है और वे इसकी व्यवस्था भी कर सकते हैं। दुर्भाग्यवश हमारे दिगम्बर जैन बधुओ ने इसके विरुद्ध आवेदन पत्र प्रस्तुत किया है जिसकी सुनवाई उच्च न्यायालय मे अभी चालू है।

उदयपुर से प्रतिदिन ५–७ बसे आती जाती हैं और भी कई मार्गों से इसका सम्बन्ध है क्योकि धुलेवा गाव आम रास्ते पर आया हुआ है। उदयपुर से हिम्मतनगर जाने वाली ट्रेन भी इधर होकर निकली है किन्तु रेलवे स्टेशन ५–६ मील दूर होने से गुजरात के यात्री प्राय बसो मे ही आते हैं। यहा का जलवायु अत्यत शुद्ध और स्वास्थ्य-वर्धक है। एक बार आकर बार बार आने की प्रेरणा मिलती है।

श्री जैन श्वेताम्बर तीर्थ करेड़ा का वर्णन

ले० चदनमल नागोरी, छोटी सादडी (मेवाड)

करेडा पार्श्वनाथ नामक तीर्थ श्री केसरियाजी की यात्रा जाने वाले को चित्तौड से उदयपुर जाने वाली रेल्वे मे करेडा स्टेशन नाम से प्रसिद्ध था। उसके बाद नाम बदल कर भोपालसागर रक्खा है। मेवाड मे ऐसे अनेक मन्दिर प्राचीन काल मे बने हुए इस समय खण्डहर रूप मे विद्यमान हैं। उनमे करेडा का स्थान भी है। जिन पुरुषो ने इस तीर्थ का यात्रा की वह कह सकेगे कि यहाँ का विशाल जिन मन्दिर और मनोहर श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा अत्यंत शोभनीय है। करेडा मेवाड देश मे एक नामी शहर था। यहाँ की आबादी मे जैनो की सख्या कम नही थी, और व्यवसाय वैभव का अदाजा तो जैन भवन की विशालता देख अब भी कर सकते हैं, क्योकि वैभवशाली पुण्यात्मा महानुभाव हो तभी ऐसा गगनचुम्बी जिनभवन बनवाते हैं। इस तीर्थ की महिमा-उत्तमता का वर्णन अनुमोदनीय है। धनवान, भक्तिवान समुदाय होती है वहाँ प्रभाविक जैनाचार्यो का पदार्पण होता है और उतम पुरुपो के प्रभाव से शासनकर्ता, राजमान्य पुरुष और महाराणा द्वारा उन्नति के साधन सम्पन्न होते हैं। यह मन्दिर बावन जिनालय का बना है। बावन जिनालय मे प्रतिमास्थापन विधान महान प्रभावशाली आचार्यो की निष्ठा मे हुआ है। उसका सक्षिप्त वर्णन प्रशस्तियाँ (शिलालेख) उद्धृत करते हैं।

(१) सवत १०२९ विक्रम सवत मे श्रीमान यशोभद्र सूरिजी[1] ने प्रतिष्ठा कराई जिसका लेख दाहिने हाथ प्रदक्षिणा मे श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिष्ठा कराई जिसके वर्णन का लेख है।

(२) सवत ३०३ वि० सवत मे श्रीमान जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य श्रीमान जिनदेव सूरिजी ने श्री सुमतिनाथ भगवान के बिब की प्रतिष्ठा कराई जिसका लेख दाहिने हाथ पीछे की देहरी के दरवाजे पर है।

(३) विक्रम सवत १३१७ मे देवसूरिजी ने प्रतिष्ठा कराई जिसका लेख है।

(४) विक्रम सवत १३३९ मे साधु श्रीपलदेवने श्री सुमतिनाथ बिब्र की प्रतिष्ठा

---

१ यशोभद्र सूरि साडेरगच्छ के महा तपस्वी थे। इन्होने १०३९ मे नाडोल के चौहान राजा के पुत्र लाखन को जैन बनाकर भडारी जाति से विख्यात किया।

कराई और वादिन्द्र श्री धर्मघोषसूरिजी के शिष्य मुनिचद्रसूरि तत शिष्य गुणचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित ऐसा लेख अद्यापि मौजूद है।

(५) विक्रम सवत १४६६ मे सुदितशिरोरत्नशेखर सूरि बुद्धिपूर्ण चद्रसूरि, दमहसमूरि, सपरिवारा · करहटक प्रतिष्ठित ऐसा लेख स्तम्भ के ऊपर के भाग मे काँच के छडीदार के पास मे विद्यमान है।

(६) विक्रम १४९६ श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने श्री विमलनाथ बिंब प्रतिष्ठित लेख है। श्री पार्श्वनाथ बिव प्रतिष्ठित खरतरगच्छे श्री जिनवर्द्धनसूरि श्री मज्जिनसागरसूरि · दा सग देवराज इस तरह का लेख विद्यमान हे।

जब मैं जीर्णोद्धार हेतु इस तीर्थ की यात्रार्थ गया था तब शिलालेखो की नकल हेतु श्रीमान पूर्णचन्द्रजी साहब नाहर कलकत्ते वालो को आमन्त्रित किया था और आप कई लेखो की नकलें ले गए थे।

ऊपर दर्शा प्रशस्ति लेखो से यह विदित होता है कि इस तीर्थ की महिमा लगभग पाँच सौ वर्ष तक गतानुगतिक बढती गई। और समर्थ आचार्यो के द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न होकर प्रतिष्ठापना होती रही। जिन महानुभावो ने निज हाथो से स्थापन कर पुण्योपार्जन किया है उनको धन्यवाद है।

जिन-प्रभाविक जैनाचार्यो की विद्यमानता मे प्रतिष्ठा कार्य कराने को महाप्रभावी श्रावकवर्ग ने आमन्त्रित कर कार्य सम्पन्न कराया उनको भी कोटिश धन्यवाद है।

जिस समय जीर्णोद्धार समिति के सदस्य अध्यक्ष सहित हम करेडा पहुंचे तब निर्णय हुआ कि यहाँ बावन देहरिया जीर्णावस्था मे आ चुकी हैं, अत उद्धार कराना आवश्यक है। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि प्रतिमा-स्थापन का कार्य भी शीघ्र कराया जाय। आधा काम मेरी देखरेख मे जारी कराया जाय ऐसा तय हुआ। यहाँ से उदयपुर पहुँचे तव करेडा तीर्थ कमेटी के सदस्यो को जीर्णोद्धार कराने की बात कही गई। सुनते ही सबने बम्बई के सज्जनो को धन्यवाद दिया। जीर्णोद्धार का काम श्री कनकमलजी साहब को दृष्टिगत कराया। ज्यो ज्यो काम बढता गया मजूरियाँ होती रही। मूलगभारे मे सग-मरमर का काम कराया गया। काम चलाए बाद पचपन बार मैं काम देखने गया। योजना यह की गई कि यहाँ छात्रावास जारी कर धार्मिक अध्ययन कराया जाय, साथ ही छटी कक्षा तक पढाई कराई जाय। तीन वर्ष का खर्चा सेठ रणछोड भाई गोविन्दजी भाई ने दिलाने का आश्वासन दिया, जिनका वर्णन सवत १९८३ मे रिपोर्ट छपाई उसमे लिखा है परन्तु इस योजना को तीर्थ कमेटी करेडा ने स्वीकार नही किया। जीर्णोद्धार

पूरा होने पर प्रतिमाजी की तलाश मे रहे । इजिनियर वेलाणी छोटी सादडी ऑफिस मे काम करते थे। जब मालवा मे जीर्णोद्धार का काम देखने गया तो शहाजापुर सारगपुर मडौवा का काम देख रिपोर्ट की कि वहाँ अपूज्य प्रतिमाजी की विशेष सख्या मे स्थापना है। वहाँ से मिल सकेगी, आज्ञा हो तो सग्रह करे। आवश्यकता तो थी ही मैं स्वय देखने गया। प्रतिमाजी सुन्दर, मनमोहक देख आज्ञा दी गई। तदनुसार पाषाण की व सर्व-धातु की प्रतिमा व पचतीर्थियो का धीरे धीरे सग्रह होने लगा और सबको करेडा धर्म-शाला की दो कोठरियो मे रखते गए।

धातु की प्रतिमा पचतीर्थिया, चौबीसिया विशेष सख्या मे थी सो जाहेरात छपवा कर आवश्यकतानुसार दे दी गई। पाषाण की प्रतिमाए बावन जिनालय मे स्थापित करना निश्चय किया गया। तदनुसार सवत १९८३ मे वैशाख सुदि पचमी को प्रतिष्ठित की गई। इसी दिन श्री ऋषभदेवजी धूलेवा नगर मे ध्वजदड चढाने का मुहूर्त था। हमारी इच्छा दोनो जगह उपस्थित होने की नही थी परन्तु श्री परमपूज्य आगमोद्धारक आचार्य महाराज का पत्र आया। करेडा सभालो। आज्ञा शिरोधार्य कर करेडा पहुँचा। विधान के लिए श्रीमान यतिजी महाराज अनोपचदजी पधारे थे। मैंने भी योग्य सेवाए दी। यहाँ पर एक घटना यह हुई कि उदयपुर से श्राविका सघ मे विधवाये आई थी उन्हे मडप मे आने की रोक की गई। वह सब वापस उदयपुर जाने लगी। उनमे से चार बाइयाँ मेरे पास आई। परिस्थिति सुनकर आश्वासन दिया और सभ्यजन आगेवानो को समझाया कि यहाँ विधवा बाई को प्रतिमा स्थापित करने की स्वीकृति दी गई है, रोक काले वस्त्र की है अत सफेद, किरमची, मू गिया पहिन कर आये तो रोक न की जाय। इस पर स्वीकृति होने से सब ठहर गईं। प्रतिष्ठा ठाठ से हुई जिसका वर्णन अखबारो मे छपाया था। इस तरह इस तीर्थ का सक्षेप मे वर्णन है।

विचार और आचार का जिसमे सुमेल होता है उसकी शान्ति का भग सहज मे नहीं हो सकता इसलिये जीवन मे सबसे पहिले यह आवश्यक है कि विचार के साथ आचार का सुमेल हो।

भक्ति और कला के संगम का तीर्थ राणकपुर

राणकपुर का मन्दिर 'कला के लिए कला' के पार्थिव सिद्धान्त के बदले 'जीवन के लिए कला' के उमदा और गंभीर सिद्धान्त का एक आदर्श दृष्टान्त है। मानो अपने जीवन का सार-सर्वस्व परमात्मा के चरणो मे भेंट धर कर मानव अपने जीवन को यहाँ कृतकृत्य मानता है।

सुरम्य कला के भण्डार सा यह तीर्थस्थल पश्चिम रेल्वे के फालना स्टेशन से २२ मील दूरी पर आया हुआ है। ऊँचे स्तर पर खडा किया गया यह मन्दिर तिमजिला है। यह जिनालय अपनी ऊँचाई से पीछे की ओर आई हुई ऊँची ऊँची पहाडियो के साथ घुलमिल कर मानो आकाश से बाते न करता हो ऐसा आभास होता है। इसके ऊपर के मजिलो की ऊँचाई क्रमश कम होती जाती है। पूरा मन्दिर आरस के पत्थरो से बनाया गया है।

कलकल नाद से बहते निर्मल झरने के समान नन्ही सी मघाई नदी, स्थिर आसन लगाकर बैठे हुए आत्मसाधको सी अरावली गिरिमाला की छोटी छोटी पहाडियो और शात एकात तथा निर्जन आरण्य-प्रकृति के इस त्रिविध सौन्दर्य के बीच राणकपुर का सुविशाल गगनचुंबी भव्य जिन मन्दिर देखते हैं और मानो कोई सुहावना बालक अपनी तेजस्वी स्नेहल माता की प्यारभरी गोदी मे हँसता खेलता किल्लोल करता हो ऐसा अनुभव होता हैं। प्रकृति का सहज सौन्दर्य तथा मानवनिर्मित कला-सौन्दर्य का सुभग समन्वय सध जाता है, तब वह कैसा सुन्दर अपूर्व योग बनता है, वह मानव के चित्त को कितना आल्हादित करता है और अन्तर की भावनाओ को कितना स्पर्श करता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण राणकपुर का यह तीर्थ है।

राजस्थान शिल्प-स्थापत्य से समृद्ध प्रदेश है। यहाँ की कतिपय कलापूर्ण समृद्धि तो विश्व के विख्यात शिल्पो मे स्थान दिलाए, ऐसी अद्भुत है। इन सब मे राणकपुर का जिन-मन्दिर श्रेष्ठतर गिना जाता है। साथ ही साथ भारतीय शिल्प-कला का भी यह सुंदर नमूना है। भारतीय वास्तु-विद्या कितनी बढी चढी थी और इस देश के स्थापत्य कलाविद कैसे सिद्ध हस्त थे, जिसका यह तीर्थ प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस मन्दिर की निर्माण-कथा के चार मुख्य स्थभ हैं आचार्य सोमसुन्दर सूरि, मन्त्री धरणा शाह, राणा कुम्भा और शिल्पी देपा या देपाक। इन चारो की भावना ने शिल्पकला के सौन्दर्य की पराकाष्ठा के समान इस अद्भुत जिन मन्दिर का निर्माण किया है।

आचार्य सोमसुन्दर सूरि विक्रम की पन्द्रहवी सदी के एक प्रभावशाली आचार्य हो गए हैं। श्रेष्ठि धरणा शाह राणकपुर के समीपस्थ नांदिया गाँव के निवासी थे। पीछे से मालगढ मे जा बसे। इनके पिता का नाम श्रेष्ठि कुरपाल, माता का नाम कामलदे और बडे भाई का नाम रत्ना शाह था। वे पोरवाल वशीय थे। वि० स० १४४६ की साल मे आचार्य सोमसुन्दर सूरि के सपर्क से धरणा शाह विशेष धर्मपरायण बने और कालक्रम से उनकी धर्मभावना मे ऐसी अभिवृद्धि होती गई की बत्तीस वर्ष की युवावस्था मे उन्होने तीर्थाधिराज शत्रुंजय मे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत जैसे कठिन व्रत को अगीकार किया। अपनी कुशाग्र बुद्धि, कार्यशक्ति और काबलियत के बल पर ये राणा कुँभा के मन्त्री बने।

मन्त्री धरणा शाह के हृदय मे भगवान ऋषभदेव का एक भव्य मन्दिर बनाने की भावना जागी। यह मन्दिर शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना और सर्वाग सुन्दर बने ऐसी उनकी मनोकामना थी। एक जनश्रुति तो ऐसी भी है कि मन्त्री धरणा शाह ने एक बार रात्रि के समय सुन्दर स्वप्न देखा और इसमे उन्होने स्वर्ग लोक के नलिनीगुल्म विमान के दर्शन किए। नलिनीगुल्म विमान स्वर्गलोक का सर्वा ग सुन्दर विमान माना जाता है। धरणा शाह ने निश्चय किया कि मुझे ऐसा ही मनोहर जिन-प्रसाद बनाना है।

फिर तो उन्होने अनेक शिल्पियो से नक्शे मगवाए। कई शिल्पियो ने अपने नकशे पेश किए। किन्तु श्रेष्ठि धरणा शाह का मन किसी नकशे से पूर्ण सतुष्ट नही हुआ। आखिर मुँडाडा गाँव के शिल्पी देवा का बनाया हुआ चित्र श्रेष्ठि के मन मे समा गया। शिल्पी देवा मस्त मिजाजी और मनमौजी कलाकार था। अपनी कला के बहुमान की रक्षा के लिए वह गरीबी मे ही सुख से निर्वाह कर लेता था। मन्त्री धरणा शाह की स्फटिक सी निर्मल धर्म-भक्ति देवा के अन्तर को छू गई। उसने मन्त्री की मनोगत भावना के प्रतीक रूप मन्दिर के निर्माण का बीडा उठा लिया। यह मानो धर्मतीर्थ के किनारे भक्ति और कला का सुन्दर सगम हुआ।

मन्त्री धरणा शाह ने राणा कुम्भा के पास मन्दिर के लिए जमीन की माग की। राणा जी ने मन्दिर के साथ ही एक नगर भी बसाने की सलाह दी। इसके लिए माद्री पर्वत की तलहटी मे आए हुए प्राचीन मादगी गाँव की भूमि पसन्द की गई। मन्दिर के साथ ही साथ वहाँ नया नगर भी खडा हुआ। राणा के नाम पर से ही उस नगर का नाम 'राणपुर' रखा गया। लोगो मे वही राणकपुर के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ।

यह मन्दिर बन जाने के बाद इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १४९६ मे हुई। मन्दिर के मुख्य शिलालेख मे भी यही साल लिखा हुआ है। यह प्रतिष्ठा आचार्य सोमसुन्दर सूरि के हाथो से ही हुई। इस प्रकार लगातार चालीस-पचास वर्षों तक मन्दिर के निर्माण का कार्य चलता रहा। फलस्वरूप मन्त्री धरणा शाह की भावना को हुबहू प्रस्तुत करता हुआ देव

भक्ति और कला के संगम का तीर्थ, राणकपुर (राज०)
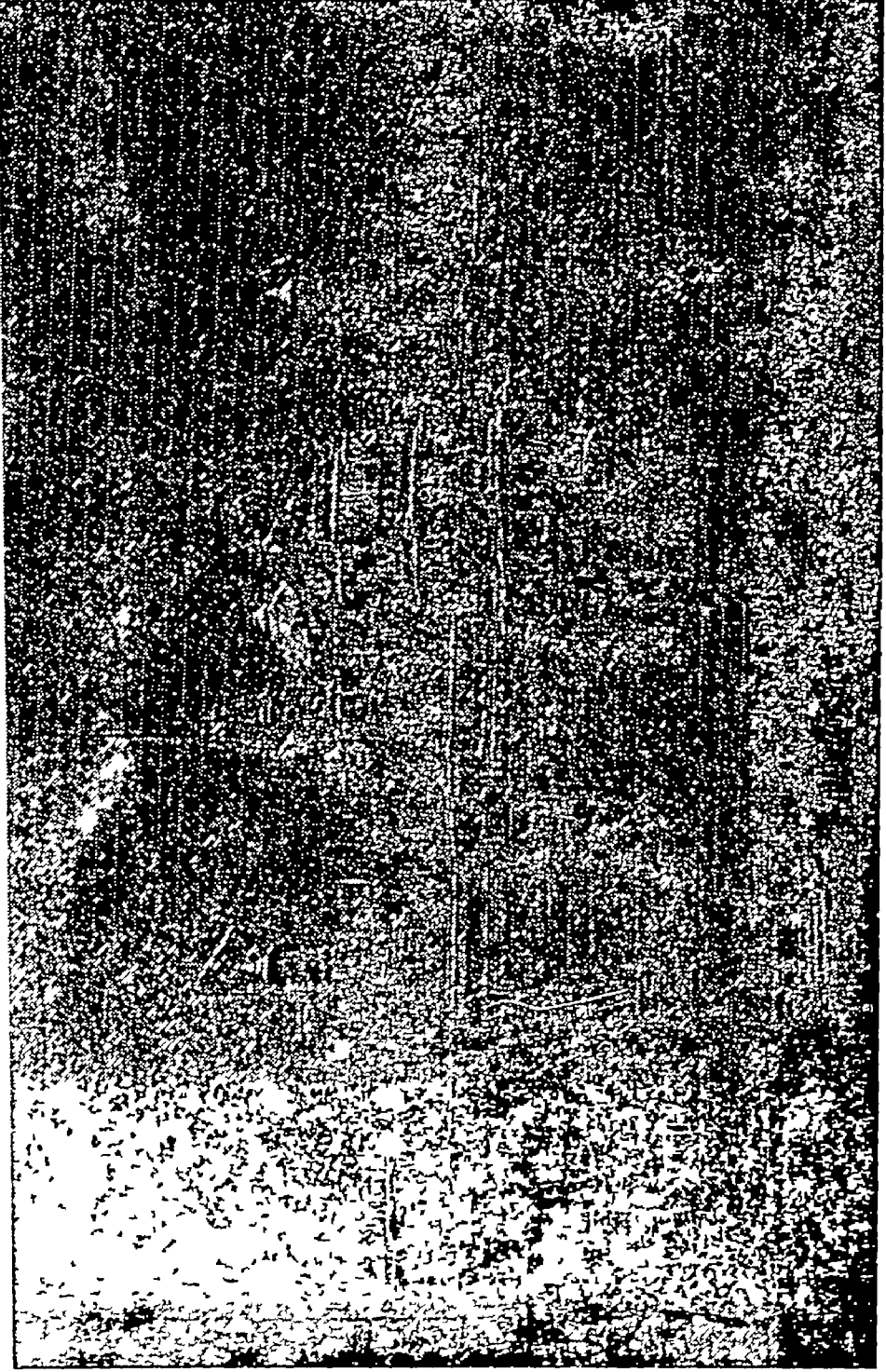
त्रीलोकदीपक देहरा गीरीसेहरा रे। राणकपुर रिसहेस तीर्थ ने नमू रे॥ (समयसुन्दरजी मा०)

विमान के सदृश्य मनोहर जिन मन्दिर का इस धरती पर अवतार हुआ। प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार इस मन्दिर के निर्माण मे निनानवे लाख रुपये खर्च हुए थे। यह मन्दिर इतना विशाल और ऊँचा होने पर भी इसमे नजर आती सप्रमाणता, मोती, पन्ने, हीरे, पुखराज और नीलम की तरह जगह-जगह बिखरी हुई शिल्प-समृद्धि विविध प्रकार की कोरणी से सुशोभित अनेकानेक तोरण और उन्नत स्तम्भ, आकाश मे निरनिराली छटा बिखेरते शिखरो की विविधता कला की यह सब समृद्धि मानो मुखरित बनकर यात्री को मन्त्रमुग्ध बना देती है, साथ ही मन्दिर-निर्माता की ओर से दिखाए गए असाधारण कला-कौशल के लिए उसके अन्तर मे आदर और अहोभाव पैदा करती है।

इस मन्दिर के चार द्वार हैं। मन्दिर के मूल गर्भगृह मे भगवान आदिनाथ की बहत्तर इच जितनी विशाल चारो दिशाओ मे चार भव्य प्रतिमाएँ विराजमान हैं। दूसरे और तीसरे मजिल के गर्भगृह मे भी इसी तरह चार चार जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं, इसीलिए यह मन्दिर चतुर्मुख जिन-प्रसाद के नाम से पहचाना जाता है।

छहत्तर छोटी शिखरबन्द देवकुलिकाएँ रग-मण्डप तथा शिखरो से मण्डित चार बडी देवकुलिकाएँ और चारो दिशाओ मे रहे हुए चार महाधर प्रासाद इस प्रकार कुल चौरासी देवकुलिकाएँ इस जिन भवन मे हैं। मानो ये ससारी आत्मा को जीवो की चौरासी लाख योनियो से व्याप्त भवसागर को पार करके मुक्त होने की प्रेरणा देती हैं।

चार दिशाओ मे आए हुए चार मेघनाद मडपो की तो जोड मिलना ही मुश्किल है। भीनीभीनी सुकुमार और सजीव कोरणी से सुशोभित लगभग चालीस फुट ऊँचे स्थभ, बीच बीच मे मोतियो की मालाओ के सदृश लटकते सुन्दर तोरण, गुँबज मे जडी हुई देवियो की सजीव पुतलियाँ और उभरी हुई कोरणी से युक्त लोलक से शोभित गु बज दर्शक को मुग्ध कर देता है। मेघनाद मण्डप मे से स्वस्थ हृदयी मानव प्रभु-मूर्ति के दर्शन करता हुआ परम-आत्मा के सम्मुख स्वय कितना अल्प आत्मा है इसकी अनुभूति प्राप्त कर के खुद के अह तथा अभिमान को गला देने की भावना का अन्त करण मे अनुभव करता है।

मानो इसी भावना का स्मरण कराती हो ऐसी, पश्चिम की ओर आए हुए मेघनाद मण्डप मे प्रवेश करते समय बाएँ हाथ के एक स्थभ पर मन्त्री धरणा शाह और स्थपति देपा की प्रभु सन्मुख आकृतियाँ कोरी हुई हैं। इन दोनो महानुभावो को देखते हैं तो मन्त्री की भक्ति की कला और स्थापत्य कला की भक्ति के सामने सर झुके बिना नही रहता।

इस मन्दिर के शिखरो के गुँबज और अन्य छतो मे भी कलाविज्ञ और भक्तिशील शिल्पियो की मुलायम छेनियो ने कई पुरातन कथा-प्रसगो को सजीव किया है। कई को वाचा प्रदान की है और कई नए-नए शिल्प किए हैं। इन सब कलाकृतियो का मर्म हृदयगम होने पर भावुक जन मानो स्थलकाल आदि को भूल ही जाता है और इन मूक

आकृतियो की भाव-भगिमा को समझने मे तन्मय बन जाता है। इस मन्दिर मे सहस्रफणा पार्श्वनाथ तथा सहस्रकूट के कलापूर्ण शिलापट्ट भी निराली ही भावना पैदा करते हैं।

मन्दिर की सबसे अनोखी विशेषता है उसकी विपुल स्थभावली। इस मन्दिर को स्थभो की महानिधि या स्थभो का मगर कह सकते हैं। जिस ओर दृष्टि डाले उस ओर छोटे-बडे, मोटे-पतले, सादे या कोरणी से उभरे हुए स्थभ ही नजर आते हैं। मन्दिर के कुशल शिल्पियो ने इतने सारे स्थभो की सजावट ऐसे व्यवस्थित ढग से की है कि ये सब प्रभु के दर्शन करने मे कही भी वाधा रूप नही बनते। मन्दिर के किसी भी कोने मे खडा हुआ भक्त प्रभु के दर्शन पा सकता है। स्तम्भो की इतनी विपुल समृद्धि से ही तो इस मन्दिर मे १४४४ स्तम्भ होने का अनुमान है।

इस मन्दिर के उत्तर की ओर रायण वृक्ष एव भगवान ऋषभदेव के चरण-चिन्ह हैं। ये भगवान ऋषभदेव के जीवन तथा तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय का स्मरण दिलाते हैं। मन्दिर को जैसे दो मजिलो से रमणीय बनाया गया है उसी तरह कतिपय (सभवत नौ) तलघर बनाकर आपत्तिकाल के समय और कुछ नही तो परमात्मा की प्रतिमाओ का रक्षण हो सके ऐसी दूरदर्शी व्यवस्था की गई है। मन्दिर की मजबूती के लिए भी तलघर शायद उपयोगी साबित हुए होगे। इन तलघरो मे बहुतसी जिन प्रतिमाएँ हैं ऐसी लोकोक्ति चली आ रही है।

आबू के मन्दिर अपनी कोरणी के लिए प्रख्यात हैं तो राणकपुर के मन्दिर की कोरणी भी कुछ कम नही है। फिर भी प्रेक्षक का जो विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं वह है इस मन्दिर की विशालता। इससे तो जन-समूह मे 'आबू की कोरणी और राणकपुर की माडणी' यह कहावत प्रसिद्ध हुई है।

इस मन्दिर को चतुर्मुख प्रासाद' के अलावा 'धरणविहार' 'त्रैलोक्य दीपक प्रासाद' एव 'त्रिभुवन विहार' के नाम से भी पहचाना जाता है। इसके निर्माता श्रेष्ठि धरणा शाह होने से 'धरणविहार', तीनो लोक मे यह दीपक समान होने से 'त्रैलोक्यदीपक' 'प्रासाद' तथा 'त्रिभुवन विहार' नाम यथार्थ ही हैं। यह सब इस मन्दिर की महिमा के सूचक हैं।

इस मन्दिर का सब से जानदार वर्णन तो इसे स्वर्गलोक के नलिनीगुल्म विमान की उपमा दने मे समाया हुआ है। मन्दिर का निरीक्षण करता यात्री मानो स्वय कोई सुरम्य स्वप्न प्रदेश मे पहुच गया है और वहाँ कोई स्वर्गीय विमान के सौन्दर्य-वैभव को निरख रहा हो ऐसी अन्तर लगन का अनुभव होता है। चित्त को उन्नत प्रदेश मे विचरण कराना यही तो भक्ति और कला की चरितार्थता है।

यह तीर्थ श्री आनदजी कल्याणजी की पेढी के अधीन है। थोडे वर्षों पहिले इस तीर्थ का जीर्णोद्धार हुआ है जिसमे १२ वर्ष लगे व रु० सात लाख व्यय हुए। इस तीर्थ की पुन

प्रतिष्ठा वि० स० २००६ के फागण सुदि ५ दि० १८-२-५२ को हुई, जिसकी अमर गाथा श्री नेमीचन्द पुखराज अजमेर वालो ने प्रकाशित कराई है वह अक्षरश यहाँ पाठको के हस्त-कमल मे प्रस्तुत है। आशा है इसके पठन से पाठको को इस तीर्थ की विशेष जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

इस तीर्थ-स्थान मे यात्रियो को ठहरने की सुन्दर धर्मशाला है व भोजनशाला का प्रबन्ध भी प्रशसनीय है। यात्रियो के लिए हर तरह से सुविधाजनक स्थान है।

यहाँ आने के लिए फालना से सादडी होकर बसे आती हैं और यहाँ से उदयपुर आदि शहरो के लिए बसे प्राप्य हैं। एकान्त वास, शुद्ध जलवायु के प्राकृतिक सौन्दर्य-आँचल से ढके हुए इस तीर्थ मे दूर दूर से भी बडी सख्या मे यात्री आते हैं। गोडवाड की पचतीर्थी सर्वप्रथम है।

राणकपुरजी तीर्थ की अमर कहानी

तर्ज—सुनो सुनो सब दुनिया वालो! बापू की यह अमर कहानी

सुनो सुनो सब सुनने वालो, राणकपुर की कथा सुहानी।
चमक रही है आज जहाँ पर, अरे 'शाह' की अमर निशानी ॥टेक॥

मत्रीश्वर धन्नाशाह, रत्नाशाह, सहोदर भाई थे।
सूर्य-वश—शिरोमणि राणाजी के परम सहाई थे॥

एक समय धन्नाशाहजी ने, स्वप्न रात्रि मे शुभ देखा।
'नलिनी-गुल्म-विमान' देखकर, इस प्रकार कीना लेखा॥

शहर सादडी पास पहाडों की जमीन को ले डाला।
भव्य जिनालय आदि जिनेश्वर, का निर्माण करा डाला॥

स्वप्न सुनहरा दे देवी ने, 'धन्ना' का जीवन परखा।
राणा 'कुम्भ' वचन अनुसारी, राणकपुर शुभ नाम रखा॥

चौदहवी पीढी पर कायम, घाणेराव निवासी हैं।
ध्वजा रस्म ये अदा करेगे, वर्षों तक उल्लासी हैं॥

शिल्पकार मुंडारावासी, दीपचन्द भी अमर हुआ।
जिसके हाथो दर्शनीय, शुभ मन्दिर का निर्माण हुआ॥

करी 'सोमसुन्दर सूरि' ने, प्रभो! प्रतिष्ठा विधि अनुसार।
सभी खुशी से गीत प्रभू के, गाने आए सब नर नार॥

कैसी छठा सुशोभित है, प्रकृति ने इसे सँभाला है।
देश विदेशो के विद्वानो, तक ने यश गा डाला है ।।
आज विश्व का कोना कोना, बोल रहा अति हर्षानी ।
धन्य! शाहजी ! ! तुम ने धन की, खूब करी है कुर्बानी ।।सुनो।।
सदियो के पश्चात् मिला है, हमे सुअवसर आज यहाँ ।
सभी प्रान्त के स्वधर्मियो का, मेला सुन्दर जुडा जहाँ ।।
जीर्णोद्धार यथावत् चालू, सात लाख का व्यय होगा ।
सब प्रबन्ध श्री 'आणदजी की पेढी' से समुचित होगा ।।
'विजय नेमिसूरीश्वरजी' की, ख्याति जगत मे व्याप रही ।
आज बीस वर्षों की इच्छा, सुन्दर जलवा दिखा रही ।।
कई प्रतिष्ठाओ के थे, सस्थापक जीर्णोद्धार किए ।
परम प्रतापी देव ! आपने, अगणित ही उपकार किए ।।
आज 'उदयसूरीश्वरजी', शास्त्रज्ञ पाट पर शोभित हैं ।
प्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठा करने, जाकर आप बिराजित हैं ।।
'सघ सादड़ी' 'आणदजी कल्याण' वश अति आग्रह से ।
सूरीश्वर चालीस साधुओ, सहित पधारे दल बल से ।।
'नदन सूरि' न्याय, तर्क, 'विज्ञानी' परमोत्साही हैं ।
सभी व्यवस्था प्रभो ! प्रतिष्ठा मे 'कस्तूर' सहाई हैं ।।
मडप, शेतुञ्जय रचना मे, कलाकार श्री 'तारा' हैं ।
'नव नवकारसी' देने वालो का, भी यश विस्तारा है ।।
श्रीयुत् 'छगन पुखराज फूल, श्री तेजमाल,अनराज' अहा ।
श्री 'चन्दन, धन, पन्ना, चदन' सघ सादडी धन्य महा ।।
शतश· साधु साध्वियो ने, शुभागमन है यहाँ किया ।
धन्य ! धन्य!शतबार सभी को, प्रभुदर्शन शुभ लाभ लिया ।।
सुदी पचमी फाल्गुण की, इतिहास अमर बनवायेगी ।
जिस दिन सारी जनता मिलकर, आदिनाथ गुण गाएगी ।।
कई सहस्रो की सख्या मे, छोड शीत का भय प्राणी ।
आए अपना धर्म समझकर, चारो तीरथ हर्षानी ।।
धन्य ! सादडी सघ हुआ है, लाखों की की कुर्बानी ।
'धर्मपाल' निरजन प्रभु का, है प्रताप अति सुखदानी ।।सु०।।

श्री मूँछाला महावीर तीर्थ का संक्षिप्त इतिहास

सग्राहक मानचन्द भडारी

राजस्थान प्रान्त के जोधपुर क्षेत्र के पाली जिले के अन्तर्गत देसूरी तहसील मे घाणेराव कस्बे से २ मील की दूरी पर यह तीर्थ आया हुआ है। इसमे मूलनायक श्री महावीर स्वामी हैं। इनकी विशाल प्रतिमा दिल को लुभाने वाली है। यह तीर्थ प्राचीन है, किन्तु यह मन्दिर किसने वनाया, प्रतिष्ठा कब हुई इसका पता हमे नही लगा। किन्तु इस तीर्थ का नाम मूँछाला महावीर कैसे पडा इस पर विचार करना आवश्यक है, अत पाठको की जानकारी के लिए इसका उल्लेख किया जाता है।

जिसको गोडवाड कहा जाता है। यह पहिले उदयपुर के आधीन था, फिर यह मारवाड (जोधपुर) के आधीन हुआ। कहा जाता है कि मेवाड के महाराणा इस तीर्थ पर आए और प्रभु-पूजा करने की इच्छा प्रकट की। पुजारी ने केसर, चन्दन, वरास की कटोरी तैयार की। उसमे एक काला बाल निकला। महाराणा ने पुजारी से पूछा "क्या भगवान के दाढी मूँछ है, अन्यथा यह बाल कैसे आता।"

पुजारी ने सरल भाव से उत्तर दिया –भगवान चमत्कारी हैं, मूँछ भी उगती हैं।

महाराणा ने पुजारी से कहा कि मूँछ वाले भगवान के हम दर्शन करना चाहते हैं, भगवान का चमत्कार भी देखना चाहते हैं।

उस समय राजा महाराजाओ का कितना भय था। उनके सामने ऐसी बात कह देना जान को जोखिम मे डालना था। फिर भी पुजारी के मुख से जो बात निकली उसके लिए और कोई उपाय नही था।

पुजारी ने प्रभु की शरण लेना ही उत्तम समझा। वह मदिर मे वैठ कर उनके ध्यान मे तल्लीन हो गया और तूँही, तूँही, तूँही, का जाप चलने लगा। इस तरह तीन दिन बीत गए। पुजारी को तीसरे दिन रात को अधिष्ठायक के दर्शन हुए और उसके सत्य व सच्ची भक्ति से प्रसन्न होकर कहा—"घबराने की आवश्यकता नहीं है। तू यह समझ ले कि भगवान के दाढी मूँछ उगे हुए ही हैं।" ऐसे वाक्य सुनते ही पुजारी के हर्ष का पार नही रहा। उसके रोम रोम मे प्रसन्नता छा गई। फिर क्या था महाराणा की अध्यक्षता मे सैकडो मनुष्यो ने मदिर मे प्रवेश किया। ज्योही मूल गभारा खुला देखते क्या हैं कि भगवान के विब के दाढी मूँछ देखने मे आई। सब के मुँह से जयनाद के साथ एक ही आवाज निकली "साचादेव, साचादेव," महाराणा को इस घटना से पूरी श्रद्धा हुई। जहाँ

सज्जन होते हैं वहा दुर्जनो की भी कमी नही रहती। महाराणा के मर्जीदान ने कहा—श्रीमान, यह पुजारी की करामात है, उसने बिब पर दाढी मूँछ लगा कर अपना बचाव किया है। राजा को भी इस पर सन्देह हुआ और उसने स्नान कर पवित्र कपडे पहिने और प्रभु की प्रतिमा के पास गया। मूँछ का बाल खीचा। वह बाल बढता ही गया और मूल गभारे के बाहर तक लम्बा होता गया। अन्त मे वह टूटा तो बिंब मे से दूध की धारा छूटी। यह चमत्कार देख सबने जयनाद किया और मूँछाला महावीर की जय के नारो से पूरा मदिर गूँज उठा।

जिसने ऐसी शका कर महाराणा को भ्रम मे डाला उसके प्रति पुजारी का क्रोध इतना बढा कि उसने उसको शाप दिया और कहा कि उस जीहजूरी का कुटुम्ब नामूछिया होगा।

इस तरह चमत्कारपूर्ण घटना से इस तीर्थ की महिमा बढी और हजारो की सख्या मे यात्री आने लगे। यह बात बहुत पुरानी है किन्तु सवत मिती महाराणा का नाम इत्यादि का विवरण नही होने से ऐतिहासिक प्रमाण की कमी है।

इस तीर्थ पर बहुत बडी धर्मशाला है, भोजनशाला भी है। पास ही कुआ भी है। यहाँ का जलवायु इतना शुद्ध है कि यात्री यहॉ ठहर कर विश्राम लेते हैं। पेढी भी है और यात्रियो की हर प्रकार की सुविधा का ध्यान रखा जाता है। धन्य है जैन शासन, धन्य महावीर प्रभु !

गोडवाड की पचतीर्थी के दो मार्ग हैं एक फालना से आने वाली बस पहिले राणकपुर पहुचाती है, वहाँ से मूछाला महावीर, नारलाई, नाडोल, वरकाणा होकर राणी स्टेशन पर पहुचना पडता है।

दुसरी बस राणी से चलती है वह वरकाणा, नाडोल, नारलाई, मूछाला महावीर होती हुई राणकपुर जाती है। वहाँ से सादडी होकर फालना जाना पडता है। ऊपर राणकपुर और मूछाला महावीर का वर्णन आ चुका है अब नारलाई, नाडोल, वरकाणा का सक्षिप्त वर्णन लिखते हैं क्योकि इसका विस्तृत विवरण वहाँ के कार्यकर्ताओ ने हमारे बहुत आग्रह करने पर भी नही भेजा।

—मानचन्द भण्डारी

नारलाई

यह बहुत पुराना कस्वा है। इसकी वनावट व मन्दिरो को देखने से ज्ञात होता है कि पहिले यह बडा नगर था और यहा जैनो के हजारो घर थे किन्तु आज ऐसी स्थिति नही है। अभी इस गाव मे लगभग ६०-७० जैनों के घर हैं उनमे से भी ज्यादातर वाहर रहते हैं यहाँ धर्मशाला है यात्रियो को हर प्रकार की सुविधा देने का प्रयत्न किया जाता है। पेढी

पर मुनीम भी रहता है। इसकी प्राचीनता का एक प्रमाण यह है कि वि० स० १०१० मे साडेराव मन्दिर का उद्धार साँडेरगच्छीय आचार्यवर श्रीमद् ईश्वर सूरिश्वरजी के पट्टालकार परमतपस्वी श्री यशोभद्र सूरिश्वरजी ने करवाया। यह महापुरुष ८ ग्रास कवल प्रमाण आहार से आयविल करते थे जो जीवनपरयत किया। इनका चतुर्मास नारलाई नगर मे वि० स० १०३८ मे होने का उल्लेख मिलता है और वहाँ से नाडोल जाना और वहाँ के चौहान राजा लाखन को प्रतिबोध देकर जैन धर्मी बनाना और उनका ओसवाल गोत्र मे भण्डारी नाम रखना इतिहास से प्रमाणित होता है। यहाँ कुल ११ जैन मन्दिर हैं जिनमे ९ गाव बाहर हैं, २ मन्दिर पहाडी पर बने हुए हैं जिनको शत्रुंजय, गिरनार के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। ज्यादा मन्दिर होने से जैसी व्यवस्था होनी चाहिए नही है क्यो कि १ पुजारी के जिम्मे १ से ज्यादा मन्दिरो की सेवा-पूजा का कार्य रखा गया है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

नाडोल

नारलाई से नाडोल लगभग ६ मील होगा। यहाँ जैनो के ३०० घर हैं। पेढी, धर्मशाला इत्यादि हैं। यहाँ सबसे पुराना और बडा मन्दिर श्री पद्मप्रभुजी का है। इसके अतिरिक्त तीन मन्दिर और भी हैं। सेवा, पूजा और सफाई आदि का प्रबन्ध ठीक है।

यहाँ आशापुरी माता का मन्दिर गाँव से कुछ ही दूरी पर आया हुआ है। यह चौहान राजाओ की कुलदेवी थी। भडारी चौहानो मे से बने इसलिए उन्होने अपनी कुलदेवी आशा पुरी को ही मान ली। प्रतिवर्ष नवरात्रि मे माताजी के मन्दिर मे झडुला उतारने निमित्त इस जाति के बहुत लोग आते हैं। यो तो दूसरे यात्री व जैनेतर जनता भी दर्शनो का लाभ उठाती है। मन्दिर बहुत सुन्दर है और पास ही कुआ व ठहरने का स्थान है।

वरकाणा

यह नाडोल से तीन मील है। यहाँ पार्श्वनाथ भगवान का बावन जिनालय अति प्राचीन मन्दिर निहारने योग्य है। यहाँ पोष कृष्णा १० का मेला भी भरता है और यात्री प्रतिदिन आते ही रहते हैं। यहाँ पेढी का प्रबन्ध सराहनीय है। यात्रियो को हर प्रकार की सुविधा मिलती है। स्व० श्रीमद् विजयवल्लभसूरिश्वरजी महाराज के सद्उपदेश से यहाँ छात्रालय खुला वह अच्छी स्थिति मे है। लगभग २०० विद्यार्थी यहाँ रहते हैं। विद्यालय भी ११वीं कक्षा तक है जिसको राज्य सरकार से भी सहायता मिलती है। धर्म के सस्कार बच्चो मे पडे इस ध्येय से ही छात्रावास खोला गया और उसका अच्छा परिणाम निकला। छात्रावास की देख-रेख श्री भसालीजी करते हैं जिनका अच्छा व्यवहार व कार्यकुशलता से सब ही सतुष्ट हैं। यहा बहुत वडे भवन बने हुए हैं।

प्राचीन तीर्थ श्री बामनवाडजी (राज०)

ले० श्री सिद्धराज मुणोयत

यह तीर्थ बहुत ही प्राचीन है। इस तीर्थ के विषय मे ऐसी दन्तकथा है कि यह तीर्थ पहिले जीवित स्वामी के नाम से सम्बोधित किया जाता था। कहा जाता है कि इस मदिर को बनाने वाले सप्रति महाराजा थे। यही नही इस तीर्थ की यात्रा करने वे वर्ष मे चार दफे आते थे। श्री जयानदसूरि के उपदेश से पोरवाल मत्री सामत ने वि० स० ८२१ के आसपास इसका जीर्णोद्धार कराया।

इस समय जैनो की बस्ती नही है। धर्मशाला और अन्य जैन-धर्मावलम्बियो के ठहरने के मकान के अतिरिक्त दूसरी बस्ती भी नही है। इस मन्दिर मे मूलनायक श्री महावीर भगवान हैं जिनकी मूर्ति अति मनोहर है। जिस पर मोतियो का लेप कराया हुआ है।

ऐसा कहा जाता है कि भगवान के कानो मे कीले ठोकने की घटना यहाँ घटी। बावन जिनालय मन्दिर था। इसका जीर्णोद्धार होकर पुन. प्रतिष्ठा होने वाली है। कार्य चालू है।

यहाँ महावीर स्वामी के २४ भवो के चित्र दिए हुए हैं जिन पर कॉच मँढे हुए हैं। ये चित्र अति उत्तम, कलात्मक बनाए हुए हैं। इनको निहारने से ऐसा प्रतीत होता है मानो सच्ची घटना ही सामने आ गई हो।

यहाँ यात्रियो के ठहरने के लिए बडी धर्मशाला है, भोजनशाला का भी प्रबन्ध अच्छा है। पेढी पर मुनीम इत्यादि ८-१० कर्मचारी कार्य करते हैं। दीपावली व चैत्र सुदि १३ को यहॉ यात्रियो की सख्या ज्यादा होती है। यहाँ आकर के जाप कर अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं।

पहाडी के ऊपर श्रीमद् विजयशातिसूरिश्वरजी महाराज के ठहरने का स्थान है। श्रीमद् ने १२ वर्ष तक आबू पहाडो मे रहकर योग की साधना की, उसके बाद यहाँ विराजना हुवा। भक्तजनो ने एक छोटा कमरा व ऊपर बडा भवन बना दिया अभी वह खाली है। चोईसी इत्यादि विराजमान होने से सेवा-पूजा करने यात्री ऊपर जाते हैं।

यह तीर्थ सिरोही से आबू रोड जाने वाली सडक पर स्थित है। सिरोही और पिण्डवाडा के बोचोबीच है। मदिर के दरवाजे के समीप ही बस ठहरती है। इसलिए यात्रियो को सुविधा है। इस तीर्थ की यात्रा करने का विचार अवश्य करना चाहिए।

तृतीय खंड

विश्वव्यापी जैन तीर्थ

अनुक्रमणिका

श्री शत्रुंजय तीर्थ का संक्षिप्त वर्णन

ले० मानचन्द भडारी, जोधपुर

जैन ससार मे परम पुनीत तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय नामक महातीर्थ भारत मे विख्यात है। इस भवतारक तीर्थ की महिमा जैन शास्त्रो मे वर्णित की गयी है। इस तीर्थ की शीतल छाया मे करोडो व्यक्तियो ने अपना आत्मकल्याण कर मोक्ष प्राप्त किया, उसका एक बडा इतिहास है। इस सम्बध मे हजारो की सख्या मे स्तवन, स्तुतिये एव लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इस युग मे भी इस तीर्थ का जो प्रभाव जैन जगत पर है शायद ही किसी अन्य तीर्थ का हो। इस तीर्थ पर करोडो नही अरबो रुपये व्यय कर उद्धार कराये गये, सघ लाये गये और अन्य कार्य किये गये। इसका पूरा विवेचन करने मे एक स्वतत्र ग्रन्थ बन जाता है। इस लेख मे केवल हम जीर्णोद्धार का वर्णन करेंगे।

इस तीर्थ को शाश्वत माना गया है और वर्तमान अगोपाग मे इसकी प्राचीनता के कई उल्लेख मिलते हैं।

यह तीर्थ एक पहाड पर है जिसकी ऊँचाई इत्यादि का वर्णन शत्रुंजय रास में निम्न है।

शत्रुंजय पहिले अरे, असी जोयण प्रमाण।
पिहुलो मूल ऊचे पणे, छवीस जोयण जाण॥ १॥

सितर जोयण जाणवो, बीजे अरे विशाल।
बीस जोयण ऊचो कह्यो, मुझ वदण त्रिकाल॥ २॥

साठ जोयण तीजे अरे, पिहुलो तीर्थ राय।
सोल जोयण ऊँचो सही, ध्यान धरूँ चित लाय॥ ३॥

पचास जोयण पिहुल पणे, चोथे अरे मझार।
ऊँचो दस जोयण अचल, नित प्रण मे नरनार॥ ४॥

बार जोयण पचम अरे, मुलतणो विस्तार।
दो जोयण ऊचो अछे, शत्रुंजय तीर्थ सार॥ ५॥

सात हाथ छटे अरे, पिहुलो पर्वत एह।
ऊचो होसे सोधनुष, साश तो तीर्थ एह॥ ६॥

इस तीर्थ के निनाणु नामो की सख्या श्री वीरविजयजी म० ने निनाणु प्रकार की पूजा मे बताई है और एक हजार नाम होने का भी लिखा है किन्तु नामो का विवरण नही है। श्री पदमविजयजी म० की बनाई हुई निनाणु प्रकार की पूजा मे १०८ नामो का उल्लेख है। इस तीर्थ पर इस समय नौ टूक हैं। यो १०८ टूको का वर्णन मिलता है जिसमे २१ टूको का वर्णन शत्रुंजय रास मे लिखा है। इसमे बाहुबलीजी की टूक का भी उल्लेख है किन्तु श्री बाहुबलीजी श्री ऋषभदेव भगवान के साथ अष्टापद पर्वत परमोक्ष पधारे इसलिये यहाँ केवल स्थापना की हुई है। बाहुबलीजी के १०८ पुत्रो ने यहाँ सिद्ध पद प्राप्त किया ऐसा माना जाता है।

जमुद्वीप १, धातकीखड १ और अर्धपुष्करा वरद्वीप इस तरह ढाईद्वीप मे ऐसा कोई तीर्थ होना नही बताया गया है, वास्तव मे ठीक है। आज गिरनार तीर्थ जो इससे पृथक है, किसी युग मे इसी का अग था, ऐसा वर्णन मिलता है जैसे रेवतगिरी-उज्यत गिरनार इत्यादि नामो का उल्लेख है।

इस तीर्थ की यात्रा जैन भाषा मे छ री मे होनी चाहिए ऐसा कहा गया है।

(१) सच्चितपरिहारी—यानि सच्चित चीज का प्रयोग नही करना।
(२) अेकलआहारी—एक बार भोजन यानि एकासना करना।
(३) पदचारी—पैदल चल के यात्रा करना।
(४) भूमि सधारी—जमीन पर शयन करना।
(५) ब्रह्मचारी—पूर्णतया शीलवर्त का पालन करना।
(६) आवश्यक दोयवारी—दोनो टक प्रतिक्रमण करना।

उपरोक्त छ री का पालन करके ही यात्रा करना शास्त्रोक्त है और पुराने युग मे ऐसी यात्रा ही करते थे और इस युग मे भी ऐसा होता है। जैन धर्म मे सघ निकालने का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है और यह परम्परा भगवान रिखबदेव स्वामी के समय से चालू हुई हैं जैसा कि शत्रुंजय रास के कर्ता श्री समयसुन्दरजी गणि ने सबसे पहला सघ भरत चक्रवति का निकालना व प्रथम उद्धार इन महापुरुष द्वारा होने का वर्णन किया है। इसके बाद दूसरा उद्धार दडवीरज राजा का, तीसरा इशानेन्द्र का, चौथा महेन्द्र का, पाचवा पचम इन्द्र का, छठा चमरेन्द्र का, सातवा सागरचक्रवर्ती का, आठवा व्यतरेन्द्र का, नवमा चन्द्रयश राजा का, दसवाँ चक्रायुद्ध राजा का, ग्यारवा श्री रामचन्द्र का, बारवा पाँच पाडवो का, इस तरह बारह उद्धार चौथे आरे मे हुए, जिसका वर्णन निनाणु प्रकार की पूजा की चौथी ढाल मे किया गया है।

अभी पाँचवाँ आरा चल रहा है उसके अन्तर्गत जो उद्धार हुए उसका वर्णन निम्न है (पूजा की ढाल ५)।

तेरहवां उद्धार—

विक्रम समत १०८ मे जावडशा ने कराया। यह जावडशा श्री भावडशाह का पुत्र था। भावडशाह एक ऐतिहासिक पुरुष हुए है जिन्होने अपनी वीरता, उद्धारता से विक्रमादित्य राजा को प्रसन्न कर मधुमति (महुवा सहित बारह ग्राम प्राप्त किए थे)। जावडशा की विनती से इसकी प्रतिष्ठा आचार्यवर श्री वज्र स्वामी ने करवाई। यद्यपि यह समय दुष्काल का था तथापि गुरुकृपा से जावडशा ने इस कार्य को कुशलता-पूर्वक सम्पन्न किया। इसमे कितना द्रव्य व्यय हुआ इसका वर्णन नही मिलता किन्तु यह साधारण कार्य नही था, इसमे करोडो रु० व्यय होने की सभावना है। आज दो हजार वर्ष बीत जाने पर भी जावडशा का नाम लिया जाता है और भविष्य मे भी लिया जायेगा। ऐसे महान आत्मा को धन्य है जिन्होने पुन्यानुबन्धी पुन्य का उपार्जन कर अपनी आत्मा को सफल बनाया। यहाँ जिसके नाम से पालीताना बसा उसका वर्णन किया जाना उचित है।

जैनाचार्य श्री पादलिप्तसूरि भी एक ऐतिहासिक पुरुष थे। आचार्य श्री प्रतिष्ठानपुर, भडौच, मान्नखेड और पाटलीपुत्र आदि नगरो के राजा लोगो के धर्माचार्य भी थे। आप द्वारा विरचित 'तरगवती' नामक कथानक ऐतिहासिक साहित्य मे आदर की दृष्टि से देखी जाती है और प्रसिद्धि पाई है। आप सिद्धयोगी नागार्जुन के भी गुरु थे। नागार्जुन ने अपने गुरु (पादलिप्तसूरी) के स्मारकरूप श्री शत्रुञ्जय गिरिराज की तलहटी मे 'पालीताना' नामक नगर बसाया। यह नगर आजपर्यन्त भी विद्यमान है।

जावडशाह के उद्धार के पश्चात् सौराष्ट्र प्रान्त मे बौद्धो का आना आरम्भ हुआ और जहाँ-तहाँ बौद्धो की ही प्राबल्यता दृष्टिगोचर होने लगी। बौद्धो का जोर अन्त मे इतना वृद्धिगत हुआ कि श्री शत्रुञ्जय तीर्थ भी उनके हस्तगत हो चुका था। यह समय जैनो के लिए सचमुच अति विकट था किन्तु उस गिरी हुई दशा मे भी बडे-बडे दिग्विजयी आचार्यप्रवर अन्य प्रातो मे विहार कर रहे थे। विक्रम सवत ४७७ की बात है कि चन्द्रगच्छीय आचार्य श्री धनेश्वरसूरि ने सौराष्ट्र प्रात मे पदार्पण कर वल्लभीनगरी के राजा शिलादित्य को उपदेश द्वारा जैन बना कर शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराया। इसका नाम बडे उद्धारो मे नही है। आचार्य श्री ने 'शत्रुञ्जय महात्म्य' नाम का ग्रथ बनाया जो आजपर्यन्त विद्यमान है और प० हीरालाल हसराज द्वारा मुद्रित भी हो चुका है।

चौदहवां उद्धार

श्री वहाडदेह (वागभट्ट) ने उद्धार करवाया जिसका वर्णन निम्न है।

सुप्रख्यात गुजरेस्वर सिद्धराज जयसिह के महामन्त्री उद्धायन श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने गया। चैत्य वदन करते समय उसने एक दृश्य देखा कि निज मदिर मे जलते

हुए दीपक की वाट एक ऊन्दरा ले जाता है। उद्धायन मत्री के मन मे यह शका हुई कि यह मन्दिर लकडी का वना हुआ है। यदि इसमे आग लग गया तो वडा अनर्थ हो जायेगा इसलिये इस मदिर को पत्थर का वना दिया जाय तो अच्छा रहेगा। उसने यह पक्की धारणा वनाई कि यह कार्य मेरे हाथ से हो तो अति लाभ का कारण है। थोडे दिन के वाद मत्री महोदय को सिद्धराज की आज्ञा से एक सीमावर्ती राज्य के ऊपर फौज लेकर जाना पडा, युद्ध मे सिद्धराज की विजयपताका फहराई किन्तु उनका शरीर शस्त्रो से घायल हो गया और वहाँ से रवाना होकर राजधानी की तरफ लौटा। किन्तु असहाय वेदना के कारण उनको वीच मे ही ठहरना पडा और उपचार प्रारम्भ करवाया किन्तु उन्होने अपना अन्तिम समय निकट जान कर अपने विश्वासी सुभटो को वुलाया और यह कहा कि मैं वच नही सकूगा। मेरी प्रवल इच्छा थी कि मैं शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार अपने हाथो से करवाऊँ किन्तु ऐसा नही हो सकेगा। मेरे सुपुत्र वागभट्ट को यह सदेशा पहुँचाना कि मेरी अन्तिम इच्छा को पूरा करें। उसके वाद धर्म की आराधना करते हुए अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। सारी फौज मे कोलाहल मच गया और उनके सुभटो ने राजकीय सम्मान के साथ उनके शरीर का अग्निसस्कार किया और शोकातुर होकर अपने देश मे पहुँचे। राजा को भी वडा दुख हुआ किन्तु कोई उपाय नही था। उसका पुत्र (उदायन मन्त्री का पुत्र) श्री वागभट्ट को उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ण करने का सन्देश पहुचाया। सिद्धराज के वाद कुमारपाल गद्दी पर वैठा और उसने वागभट्ट को अपना मन्त्री वनाया। उसने श्री शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार कराया और अपने पिता के मनोरथ को पूरा किया। इस उद्धार मे मन्त्रीस्वर ने एक करोड साठ लाख मुद्राएँ व्यय की। प० सोमधर्म गणि विरचित 'उपदेश सप्ततिका' मे ऐसा उल्लेख है कि इस उद्धार मे दो करोड सतावने लक्ष मुद्राए व्यय हुई। यदि इतना द्रव्य उन्होने ऐसे शुभ कार्यो मे व्यय किया तो कोई विस्मय की वात नही, कारण लाख या करोड की तो क्या विसात उन्होने तो अपना सर्वस्व तक ऐसे पुनीत कार्यो के लिए अर्पित कर दिया था।

यह उद्धार विक्रम समत् १२१३ मे हुआ। जिसके प्रमाण मे दो लेखो की नकले निम्न हैं –

(१) श्रीमद वाग्भट देवोऽपिजीर्णोद्धारमकारयत्।
सदेवकुलिकस्यास्य प्रासादस्याति भक्तित ।।

शिखीन्दु रविवर्षे १२१३ च ध्वजारोपे व्यधापयत्।
प्रतिमा सप्रतिष्ठा श्रीहेमचन्द्र सूरिभी।

वि० स० १३३४ मे रचित ग्रथ 'प्रभावक चरित्र' के पृष्ठ ३३६ के श्लोक न० ६७० और ६७२–

पष्टिलक्षयुता कोटीव्ययितायत्र मन्दिरे।
स श्रीवाग्भटदेवोऽत्रवर्णयतेविबुधै कथम ? ।।

—'प्रबधचितामणि के सर्ग चतुर्थ के पृ० २२० से

प्रतिष्ठा कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् विजय हेमचन्द्रसूरि के करकमलो से हुई।

पन्द्रहवां उद्धार—

जब से गुजरात प्रात की बागडोर यवनो के हाथ मे आई इस तीर्थाधिराज पर भी आक्रमण के बादल मडराने लगे। एक दिन जो सौराष्ट्र प्रात हराभरा, चमन, सुख, शान्ति और समृद्धि के वातावरण मे था वही बाद मे ऊसर और उजडा हुआ दीखने लगा। यवन-शाही की सत्ता ने कुछ का कुछ कर दिया। आक्रमणकारियो को क्रूर दृष्टि हिन्दू और जैनियो के शास्त्रभडारो और तीर्थो पर विशेष रूप से वज्रपात कर रही थी। ऐसी दशा मे शास्त्रो और तीर्थों को सुरक्षित रखना सचमुच टेडी खीर थी। अत्याचारियो के कुतूहल मे हमारी गाढे पसीने की तैयार की हुई साहित्य-सामग्री नष्ट हो रही थी। तीर्थो और ग्रन्थ-भडारो पर आफत की बिजली चमक रही थी। इस अत्याचार और अनाचार के परिणाम-स्वरूप सारे गुजरात प्रान्त मे त्राहि-त्राहि की आवाज सुनाई देती थी।

जब गुजरात के कोने-कोने मे यवनो के उपद्रव हो रहे थे तो यह कब सम्भव था कि यवनो की दृष्टि श्री शत्रुञ्जय जैसे महत्वशाली धार्मिक पुनीत गिरि पर नही पडती। शत्रुञ्जयगिरि पर धावा बोलने के लिए यवनो ने विशेष रूप से तैयारी की।

अलाउद्दीन खिलजी की फौज चढ कर आई और काफी तोडफोड करने के बाद मूल-नायक भगवान की प्रतिमा को खडित किया। यह हमला विक्रम समत् १३६९ मे हुआ और इसकी खबर चारो ओर फैली तो जैनियो को हार्दिक परिताप हुआ। जैन ससार मे हाहाकार मच गया। यह बात पाटन मे बिराजमान श्री सिद्धसूरिजी महाराज को मालूम हुई और उन्होने सोचा कि तीर्थराज का उद्धार शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए। इस कार्य को करने के लिए दो व्यक्ति उपयुक्त दृष्टिगोचर हुए। ये दोनो व्यक्ति पाटण नगर के धर्म-निष्ठ, धनाढ्य, राज्यमान्य, उपकेशवशीय श्रेष्ठिगोत्रिय (वैद्यमुहता) श्रावक शिरोमणि देशलशाह और उनके पुत्ररत्न समरसिंह थे। ये दोनो व्यक्ति ओजस्वी, प्रभाविक और कार्यकुशल थे। आचार्य श्री ने उचित समझ कर श्रीसघ की सम्मतिपूर्वक पुनीत तीर्थोद्धार करने का भार उपर्युक्त दोनो महापुरुषो को सौपा।

परम सौभाग्य की बात है कि जैनाचार्य उस समय की घटनाओ को लेखबद्ध कर गये जिससे अब हमे सरलता से उस समय की उन्नति और अवनति की सब बाते मालूम हो सकती हैं और इसी आधार पर यह लेख लिखा जा रहा है। श्री समरसिंह श्रेष्ठिगोत्रिय श्री

देशलशाह का पुत्र था। देशलशाह की आज्ञानुसार समरसिह ने श्री सिद्धसूरीजी महाराज के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरे शरीर मे शोणित का एक बूद रहेगा वहा तक मैं शस्त्रो और लाखो बाधाओ के उपस्थित रहते हुए भी इस तीर्थ का उद्धार कराके रहूँगा और जब तक तीर्थ का उद्धार न होगा तब तक मैं—

(१) ब्रह्मचर्य व्रत का अविरल पालन करूँगा।
(२) भूमि पर शय्या बिछाकर लेटूगा। (खाट या पलग का प्रयोग नही करूँगा)
(३) दिन मे केवल एक बार ही भोजन करूँगा।
(४) छ विगय मे से प्रतिदिन केवल एक विगय का ही सेवन करूँगा।
(५) शृगार के लिए उवटन और तेल-मर्दन करके स्नान नही करूँगा।

देशलशाह के पास भुजबल, पुत्रबल, धनबल, मित्रबल और राजबल तक विद्यमान थे। श्री समरसिह राजनीति मे कुशल थे इसलिए उन्होने इस कार्य मे सबसे पहिले राज्य की सहायता लेना सर्वथा उपयुक्त व उचित समझा और उन्होने इसके लिए प्रयत्न किया। उस समय गुजरात का सूबेदार अलपखान था और यह समरसिह का मित्र था। उसने अपनी मित्रता निभाने हेतु समरसिंह को यह आश्वासन दिया कि यह कार्य अवश्य पूरा करा दिया जायगा। इस तीर्थ का पुनरुद्धार कराने मे इस प्रकार समरसिह ने सफलता प्राप्त की।

तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा वि० स० १३७१ के माघशुक्ला १४ सोमवार को समरसिंह ने कराई उसका लेख इस प्रकार है—

आसन वृद्ध तपागणे सुगुरुवो रत्नाकरह्वा प्राऽय
रत्नाकर नामभृत प्रववृते येभ्यो गणो निर्मल ।
तैश्चक्रै समराख्य साधु रचितोद्धारे प्रतिष्ठा शशि-
द्वीप व्येकमतिषु १३७१ विक्रम नृपादद्वेश्वतीतेपुच ॥

प्रशस्त्यन्तरेपि—

वर्षे विक्रमत० कु-सप्त-दहनैकस्मिन १३७१ युगादि प्रभु
श्री शत्रुञ्जय मूलनायक मति प्रौढ प्रतिष्ठोत्सवम्।
साधु श्री समराभिधास्त्रि भुवनी मान्यो वदान्य क्षितौ
श्री रत्नाकरसूरिभिर्गणधरैर्यैं स्थापयामासिवान ॥

सवत तेर एकोतरे—श्री ओसवश शणगार रे—
शाह समरो द्रव्य व्यय करे पचदशमोद्धार रे। धन्य—
श्री रत्नाकर सुरिवरू वडतपगच्छ शणगार रे—
स्वामी ऋषभज थापिया समरे शाहे उदार रे। धन्य—

श्री समरसिंह को इस तीर्थ के उद्धार कराने मे कितना कष्ट सहन करना पडा, उसका पूरा विवरण यदि लिखा जाए तो पृथक ही एक ग्रन्थ बन सकता है। श्री ज्ञान-सुन्दरजी म० ने समरसिंह नाम की जो पुस्तक लिखी है उसमे पूरा वर्णन किया गया है। उसका अवलोकन करने से जाना जा सकता है कि उनमे कितना धर्मप्रेम था और उनके पूर्वज तथा वशजो ने कितने उच्च सस्कार प्रस्तुत किए जिनके आधार पर वे अपने जीवन को सकट मे डालकर भी इस कार्य को पूरा कर गए। इसमे कितना द्रव्य व्यय हुआ होगा, इस का अनुमान लगाना कठिन है। जैन समाज को ऐसे नर-वीरो के होने का गौरव है।

सोलहवा उद्धार—

समरसिंह के उद्धार के लगभग दो सौ वर्ष उपरान्त श्री करमाशाह ने उद्धार कराया। श्री करमाशाह चित्तौड के राज्य-काल मे निपुण व्यक्तियो मे शुमार था। अहमदाबाद का लघु शाहजादा इनके आश्रय मे रहा, जब वह राज्यगद्दी पर बैठा, तब उसके प्रत्युपकार हेतु शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार कराने की उसे स्वीकृति प्रदान की। करमाशाह ने विपुल धन लगा कर उसका उद्धार कराया और वि० १५८७ वैशाख वदि ६ को बडे समारोहपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई। उस समय सभी गच्छो के आचार्य एकत्रित हुए थे। प्रतिष्ठा आँचल गच्छ के आचार्य ने कराई इसका लेख विद्यमान है।

भविष्य मे कब उद्धार होगा और कौन कराएगा, इसका उल्लेख ९९ प्रकार की पूजा मे किया गया है जो पाठको की जानकारी मे है।

उपरोक्त विवरण बडे उद्धारो का है। यो इस तीर्थ पर समय-समय पर उद्धार होने मे करोडो रुपए व्यय हो चुके हैं और इसकी तलहटी के नीचे लगभग ६०-७० विशाल धर्म-शालाएँ बनी हुई हैं। पालीतणा नगर बसा हुआ है। आनन्दजी कल्याणजी की पेढी भी है जो व्यवस्था व यात्रियो को सुख-सुविधाएँ जुटाने का हर सभव प्रत्यन करती है। जिसने इस तीर्थ की यात्रा नही की उसको गर्भावास मे ही बताया गया है। यह पतित-पावन तीर्थ घोर पापियो को भी तारता है। यहाँ की भूमि इतनी पवित्र है कि यहाँ आने पर पूर्व सचित पाप कर्म स्वत ही नष्ट हो जाते हैं। यहाँ का जलवायु अत्युत्तम है।

प्रतिवर्ष यहाँ तीन बडे मेले होते हैं (१) कार्ति की पूर्णिमा (२) चैत्री पूर्णिमा और (३) अक्षय तृतीया को। इन मेलो मे कभी-कभी तो इतने यात्री एकत्रित होते हैं जिनको ठहरने तक जगह भी नही मिलती।

कई पुण्यशाली यहाँ चार मास रह कर चातुर्मास व्यतीत करते हैं। कई ९९ यात्राएँ करने हेतु तीन चार मास पर्यन्त निवास करते हैं। तलहटी से उतरते ही भाता

मिलता है जिसका इतना सुन्दर प्रबन्ध है कि जिसको देख कर यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि यह कार्य हमे भी करना चाहिए। कडकडाती धूप मे आए हुए यात्रियो को विश्राम लेने हेतु हवादार निवास, पीने के लिए मधुर जल, नाश्ता के लिए गाठिए व मिष्ठान्न मिल जाते हैं उससे आत्मा को सतोष होता है। दो आविल खाते भी चालू हैं और कई भोजनशालाएँ भी। इस तीर्थ पर किसी प्रकार का कष्ट नही उठाना पडता। ऐसे महान तीर्थ का दर्शन कर जीवन सफल बनाने की भावना रखते हुए यह लेख समाप्त किया जाता है।

अन्य स्थाने कृत पापं, तीर्थस्थाने विनश्यति।
तीर्थ स्थाने कृतपापं, वज्रलेपी भविष्यति ॥

और स्थान मे किये हुए पापो का नाश तीर्थ स्थानो पर हो सकता है किन्तु तीर्थ स्थान पर किया हुआ पाप वज्रलेप के समान होता है? अत सावधानी रखो, तीर्थो पर पाप से बचो।

वर्तमान चौईसी के तीर्थंकरों की निर्वाण-भूमि का संक्षिप्त वर्णन

ले० मनमोहनचद भडारी, एम.कॉम., जैतारण, हाल गोहाटी (आसाम)

तीर्थङ्करो के जन्मकल्याणक भूमि से भी बढ कर निर्वाणकल्याणक भूमि का महत्त्व विशेष है। वर्तमान चौईसी के चौईस तीर्थंकरो के मुक्ति पधारने के स्थानो का एक ही स्तुति मे वर्णन किया वह निम्न है –

अष्टापदे श्री आदि जिनवर, वीर पावापुरी वरूँ।
श्री वासू पूज्य चम्पापुरी, नेम रेवत गिरि वरूँ ।।
सम्मेत शिखरे बीस जिनवर, मुक्ति पहोच्या मुनिवरूँ।
चौबीस जिनवर नित्य वदूँ, सयल सघे सुख करूँ ।।

इसका अर्थ यह होता है कि अष्टापद पर्वत पर श्री आदिनाथ भगवान, पावापुरी मे महावीर स्वामी, चम्पापुरी मे वासुपूजजी, गिरनार पर्वत पर नेमिनाथजी और बीस जिनवर (तीर्थंकर) सम्मेतशिखर पर्वत पर मोक्ष पधारे।

उपरोक्त वर्णन मे श्री सम्मेतशिखर तीर्थ का महत्व बहुत ऊँचा है और यह तीर्थ बहुत प्राचीन और महान है। इस पर प्रकाश डालना उचित होगा। सबसे पहले यह देखना है कि अष्टापद तीर्थ कहाँ है? इस तीर्थ की महिमा केवल सूत्रकथाओ तक ही सीमित रही है, वहाँ जाकर कोई दर्शन नही कर सकता। यही नही वह कहा है? इसका भी पता नही है। ऐसा सुनने को मिलता है कि भरत महाराज ने इस तीर्थ की यात्रा की और वहाँ चौईस तीर्थंकरो की प्रतिमाओ की स्थापना की। उसके बाद आठवाँ प्रति वासुदेव रावण इस तीर्थ पर गया और भक्ति मे लीन होकर उसने वहा तीर्थकर गोत्र-कर्म बाँधा। इसके पश्चात् महावीर स्वामी के प्रथम गणधर गौतम स्वामी वहाँ यात्रार्थ गए और अपनी लब्धि से उस पर्वत पर चढकर दर्शनवन्दन किया। इसके बाद कोई वहाँ गया हो ऐसा सुनने मे नही आया। कहा जाता है कि वहाँ देवता पूजा करते हैं। वहाँ के मदिरो का आकार-प्रकार व सब तरह का वर्णन शास्त्रो मे लिखा है अत हमे उस पर श्रद्धा रखकर यह मान लेना चाहिए कि अष्टपद तीर्थ है अवश्य। उसके सम्बन्ध मे और कुछ नही लिखा जा सकता।

सम्मेतशिखर का उल्लेख शास्त्रो मे बहुतायत से मिलता है और यह तीर्थ पूर्व देश मे

बिहार प्रांत मे है यहाँ हजारो नही, लाखो जैन बधु यात्रार्थ जाते हैं। इस पर थोडा प्रकाश डालना आवश्यक है।

इस तीर्थ की महिमा के दो ग्रथो का उल्लेख यहाँ किया जाता है—

(१) नागोरी तपागच्छ शाखा के ४८वे पट्टधर आचार्य रत्नसेखर सूरि हुए जिनका जन्म १३७२, दीक्षा वि० स० १३८५, आचार्य पद वि० १४०० (विलाडा) और स्वर्गवास वि० १४२८ मे हुआ। उन्होने खरतरगच्छ के आचार्य जिनप्रभसूरि के पास ज्ञानाभ्यास किया और उनको 'मिथ्याधकार' नभोभणि का विरुद मिला था। उन्होने इस तीर्थ का वर्णन वि० की १४०० शताब्दी के बाद सस्कृत मे १६०० पदो मे लिखा किन्तु यह उपलव्ध नही है। खोज करने पर कई ज्ञानभण्डारो मे मिल सकता है।

(२) सम्मेत शिखर रास तपागच्छ के गीतार्थ प० रूपरुचिगणि के शिष्य कवि प० ध्यारुचिगणि ने स० १८३५ महासुद ५ को शिवपुरी मे लिखा। उसमे इस तीर्थ की प्राचीनता का पता लगता है। जिस तरह शत्रुञ्जय तीर्थ के १२ उद्धार चौथे आरे मे हुए, उसी तरह इस तीर्थ के २० उद्धारो का वर्णन चौथे आरे मे होने का विस्तारपूर्वक लिखा है। इतिहास यह बताता है कि विक्रम की ८वी शताब्दी के अन्त तक पूर्व भारत मे जैन धर्म खूब ही चमका। उसके बाद उस देश मे जैनधर्म की अवनति हुई।

श्री शकराचार्य ने वि स ७८८ से ८२० तक जैन धर्म पर खूब ही प्रहार किए और उनके अनुयायियो ने तो जैन मन्दिरो को काफी नुकसान पहुंचाया, जैन साधुओ को भी काफी कष्ट दिया। इसलिए पूर्व देश से जैन बस्ती बिखर कर मेवाड, मालवा, मारवाड, सौराष्ट्र आदि प्रान्तो मे जाने से आज वहाँ जैनो की सख्या बहुत अल्प है।

दिग्विजय आचार्य बडगच्छ, वादिदेवसूरिगच्छ, तपगच्छ, रुद्रपल्लीगच्छ, खरतरगच्छ, अचलगच्छ, विजयगच्छ इत्यादि ने इसकी यात्रा की और श्रावक श्राविकाओ को भी साथ ले गए और इस तीर्थ का प्रचार भी जोरो से किया।

इसके पीछे का इतिहास यह बताता है कि ई सन १५९२ वि स १६४९ मे विजय-हीरसूरिश्वरजी म० ने अकबर से एक फरमान निकलवाया जिसमे सिद्धाचल, गिरनार, तारगा, सम्मेतसिखर, केसरियानाथजी, आबू, राजगृही के तीर्थ श्वेताम्बर जैनो के होने का उल्लेख कर इन पहाडो के आसपास की भूमि मे हिंसा न करने का एलान किया। इसका उल्लेख जैन परम्परा का इतिहास भाग २ के पृ ४८७ मे है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री सम्मेतशिखर तीर्थ को श्री शकराचार्य ने नष्टभ्रष्ट किया जो इस्लामधर्मी शासको के समय मे जैनो के कब्जे मे आया।

इसके बाद अहमदशाह ने मुर्शिदाबाद के सेठ मेहताब राय को वि० स० १८०५ में

जगतसेठ की पदवी देकर वि स १८०६ मे मधुवनकोठी, जयपारना, जलहरिकुंड, पार्श्व-नाथतलहटी के वीच की ३०१ वीघा भूमि भेट की। वि स १८१२ मे पालगज के शासको ने पार्श्वनाथ पहाड को करमुक्त किया। इस तीर्थ का २१वॉ उद्धार जैसलमेर के सेठ फूलचद के सुपुत्र सेठ सुगालचद ने १८२५ के महा सुद ५ को कराकर विजयधर्म सूरि के करकमलो से प्रतिष्ठा करवाई।

श्री सुगालचद के वधवो ने मधुवन मे एक वडा भवन (कोठी) वनवाया। साथ ही धर्मशाला व ७ जिनप्रासाद वनाकर चारो ओर किले की तरह परकोटा बनाया और भोमियाजी का मन्दिर भी वनवाया।

जव भारत मे अग्रेजो की सत्ता कायम हुई उस समय ब्रिटिश सरकार ने स्वरूपचदजी के सुपुत्र उद्धतचद को महाराजा की उपाधि दी और जगतसेठ के पद को समाप्त कर दिया।

वि० स० १८२५ के पश्चात यह तीर्थ दिनोदिन उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। उसके वाद कई सघ आए, महोत्सव इत्यादि हुए।

बाईसवां उद्धार

वि० स० १९२५ से १९३३ मे विजयगच्छ के भट्टारक श्री शातिसागर सूरिश्वरजी व खरतरगच्छ के भट्टारक जिनहससूरिश्वर, व चन्द्रसूरिश्वरजी के करकमलो से देहरियो मे चरण-स्थापना हुई।

जैनो की निर्वलता कहिए या वेदरकारी इस पहाड पर पालगज के राजा ने अपना कब्जा वता कर वेचने का अधिकार ब्रिटिश सरकार से प्राप्त कर लिया। जैनो ने तीन लाख रुपये देकर दि० ९-३-१९१८ को इस पहाड का वेचान पालगज के राजा से अपने हक मे कराकर उस पर कब्जा किया जबसे यह पहाड जैन श्वेतावर सघ के कब्जे मे है।

इसकी पुन प्रतिष्ठा वि० स० २०१७ के फागण वद ७ को हुई। उसके पहले से ही सारा कार्य व्यवस्थित रूप से चल रहा है। अव तो प्रतिवर्ष आसोज सुद १५ के वाद यहाँ कई सघ आते हैं और हर समय मेला सा लगा रहता है।

इस तीर्थ पर तीर्थकरदेव कितने मुनियो के साथ मोक्ष को पधारे उसका विवरण निम्न है—

सख्या	तीर्थंकर भगवान का नाम	कितने मुनियो के साथ
१.	श्री अजीतनाथजी	१००० मुनियो के साथ
२	,, सभवनाथजी	१००० ,,
३	,, अभिनन्दनजी	१००० ,,

४.	श्री सुमतिनाथजी	१०००	मुनियो के साथ
५.	,, पदमप्रभुजी	३१८	,,
६.	,, सुपार्श्वनाथजी	५००	,,
७.	,, चद्रप्रभस्वामी	१०००	,,
८	,, सुवधिनाथजी	१०००	,,
९.	,, शीतलनाथजी	१०००	,,
१०.	,, श्रेयासनाथजी	१०००	,,
११.	,, विमलनाथजी	६०००	,,
१२.	,, अनतनाथजी	७०००	,,
१३	,, धर्मनाथजी	१०८	,,
१४.	,, शातिनाथजी	९००	,,
१५.	,, कुँथुनाथजी	१०००	,,
१६.	,, अरनाथजी	१०००	,,
१७.	,, मल्लिनाथजी	५००	,,
१८.	,, मुनि सुव्रतस्वामी	१०००	,,
१९.	,, नमीनाथजी २१वे ती०	१०००	,,
२०.	,, पार्श्वनाथ स्वामी	२३	,,
	योग	२७३४९	

इसके अतिरिक्त करोडो मुनि इस पर्वत पर मोक्ष पधारे इसलिए यह तीर्थ दर्शनीय, वन्दनीय और पूजनीय है।

इस महान तीर्थ के दर्शनो का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ इसलिए मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। मैं २० वर्ष की आयु में कलकत्ता गया। मेरे साथ मेरी उम्र का एक मित्र था। अगस्त का महीना था। कलकत्ता से वापिस आते समय हम दोनो का विचार इस तीर्थ की पवित्र भूमि के दर्शन करने का हुआ। यह सब बचपन के पडे हुए धर्मसस्कारो का फल था। हम दोनो पार्श्वनाथ हिल स्टेशन पर उतर कर धर्मशाला मे पहुँचे। वहाँ दूसरे यात्री नही थे। पहुँचने पर पता चला कि चतुर्मास मे यात्रा करने कोई नही आता और इस समय ऊपर चढना खतरे से खाली नहीं है। फिर भी हम अपने विचारो पर दृढ रहे और हिम्मत करके चढ ही गए। भगवान की कृपा कहिए या हमारी शुद्ध भावना का परिणाम, शातिपूर्वक दर्शन कर सकुशल वापिस लौट आए। जब हमने पहाड पर चढकर भगवान की चरणपादुका एव मूर्ति के दर्शन किए तो हमारे अग मे आनन्द की जो लहर सी

उठी उसका वर्णन करना इस लेखनी की शक्ति के बाहर है। धन्य है जैन धर्म के सिद्धान्त एव मान्यताओ को। वास्तव मे यह धर्म पतित को पावन बनाने वाला धर्म है। हमारे जैसे बालबुद्धि वाले अज्ञानियो की श्रद्धा मजबूत होने का एक मात्र कारण सच्ची भक्ति व प्रभुदर्शन की तमन्ना थी।

इसके पश्चात तीसरा नम्बर पावापुरी का आता है, जहाँ आज मे २४९५ वर्ष पूर्व भगवान महावीर स्वामी मोक्ष पधारे। जहाँ भगवान के शरीर का अग्निसस्कार हुवा उस स्थान पर ८४ बीघे का तालाब है। ऐसा कहा जाता है कि अग्निसस्कार हो जाने के बाद भस्मी को दर्शक अपने घर मे ले गये। दर्शक बहुत ज्यादा सख्या मे थे अत सब को भस्मी प्राप्त नही हो सकने के कारण भूमि को खोद खोद कर ले जाते रहे, जिसका तालाब बन गया। यह भूमि बहुत पवित्र है। प्रति वर्ष दीवाली की रात्रि को वहाँ हजारो यात्री एकत्रित होकर उनके गुणगान कर अपनी आत्मा को पवित्र बनाते हैं। इस स्थान पर एक बहुत रमणीय सगमरमर का मन्दिर बन गया है।

भगवान महावीर को पावापुरी के निकट ही रजुवाला नदी के किनारे केवलज्ञान उत्पन्न हुवा था। वहाँ समवसरण की रचना विद्यमान है। इसका जिर्णोद्धार स० १९३० मे हुवा था इसमे बाईसवे तीर्थंकर श्री नेमीनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है। रजुवाला का दूसरा नाम आकर भी कहा जाता है यहाँ से मधुवन ११ माइल है जहाँ सुंदर जिनमदिर है।

पूर्व देश मे भगवान महावीर का विचरण ज्यादा हुवा अत इस भूमि मे तीर्थस्थान निकट निकट ही आए हुवे हैं। इस भूमि की रज माथे चढाने योग्य है।

चौथे स्थान पर चम्पापुरी तीर्थ आता है, जहाँ बारहवे तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य स्वामी का मोक्ष हुआ। यह भी पूर्व देश के तीर्थो मे है जो अति पवित्र तथा दर्शन करने योग्य है। यहाँ भी हजारो यात्री प्रतिवर्ष जाते हैं।

पाँचवे स्थान पर गिरनार तीर्थ है, जहाँ भगवान नेमीनाथ के तीन कल्याणक हुए हैं। दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष। इसलिए गिरनार तीर्थ की महिमा भी कम नही है। यह तीर्थ सौराष्ट्र मे जूनागढ के पास है। जूनागढ से गिरनारजी की तलहटी ३ मील है और फिर आगे यहाँ ऊपर चढना पडता है जहाँ सीढियाँ बँधी हुई हैं। रास्ते मे विश्राम करने के स्थान भी हैं। यहाँ केवल जैन यात्री ही नही आते बल्कि वैष्णव, शिव इत्यादि सब धर्म के लोग आते हैं और इस तीर्थ को महा पवित्र मानकर इसकी धूलि सिर पर चढा कर अपना जन्म सफल मानते हैं।

यहाँ सबसे ऊँची पाँचवी टूक है। जैनो की पाचो टूको पर स्थापना है जिसका विवरण निम्न है—

(१) पहली गिरनारजी की टूक आती है। यहाँ का मन्दिर बहुत प्राचीन है और विक्रम सवत् ६०९ मे देवसानिध्य से यहाँ प्रतिमाजी प्रकट होना बताया जाता है।

(२) दूसरी टूक मानसघ भोजराज की है। यहाँ के मन्दिर मे श्री सम्भवनाथ भगवान की प्रतिमा मूलनायक के रूप मे विराजमान है।

(३) तीसरी टूक मेरकवसहि की है। यहाँ के मन्दिर मे श्री सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम सवत १८५९ मे हुई। प्रदक्षिणा मे अष्टापद पर्वत की रचना अति मनोहर है।

(४) चौथी टूक सग्राम सोनी की है। यह १५वी शताब्दी मे हुए थे जिन्होने मदिर बनवाया। इस मदिर मे मूलनायक सहस्रफण पार्श्वनाथ भगवान विराजमान हैं।

(५) पाचवी कुमारपाल महाराज की टूक है। यहाँ महाराजा कुमारपाल ने वि० स० ११४४ मे मन्दिर बनवाया ऐसा लिखा हुआ है, किन्तु यह ठीक नही जँचता, क्योकि कुमारपाल तथा हेमचन्द्रसूरि के सम्बन्ध इसके बाद का है।

(६) छठी टूक वस्तुपाल तेजपाल की है। इन युगल बन्धुओ ने जैनधर्म की जो ध्वजा फहराई वह जगजाहिर है। इन्होने करोडो रुपये खर्च कर जो कार्य किया शायद ही किसी ने किया हो। इस टूक मे ३ मन्दिर हैं। मूलनायक सावला पार्श्वनाथ है और प्रतिष्ठा विक्रम सवत १३०६ मे होने का उल्लेख है।

(७) सातवी सप्रति राजा की टूक है। इस नरपति ने भारत भूमि को जैन मन्दिरो से अलकृत कर अपना नाम अमर किया है। कहा जाता है कि इन्होने सवालक्ष नए मन्दिर बनवाए तथा लाखो प्रतिमाओ की अजनशलाका कराई। आज भी हजारो प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इस टूक मे सुन्दर व प्राचीन मन्दिर हैं और कुल २२ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इन टूको के अतिरिक्त और भी मन्दिर हैं, जहाँ प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। यहाँ से एक साफ मार्ग सहसावन को जाता है, जहाँ भगवान नेमिनाथ ने दीक्षा ले केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष प्राप्ति का भी यही स्थान है। यहाँ का शुद्ध जलवायु, एकान्त स्थान अति मनोहर है। यहाँ धर्मशाला भी हैं। यात्रियो को हर प्रकार की सुविधा है। यहाँ एक रात तो रहना ही पडता है। क्योकि चढ कर वापिस उतरना कठिन है अत रात को विश्राम यहाँ करके प्रात समय यात्रा कर मध्याह्न मे वापिस जाना ही श्रेयष्कर है। अशक्त यात्रियो के लिए डोलियो का भी प्रबन्ध है।

महान चमत्कारी तीर्थ श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ

राजस्थान मे केसरियानाथजी नाकोडाजी इन दोनो तीर्थो से भी बढकर उपरोक्त तीर्थ विख्यात है, उसका वर्णन निम्न है ।

गुजरात राज्य के राधनपुर जिले मे यह तीर्थ स्थित है । रेल्वे स्टेशन हारीज लगता है जहाँ से बीस मील की दूरी पर यह तीर्थ है । बसे जाती हैं। मेहसाना, पाटन इत्यादि से भी बसो का आना-जाना है । डामर रोड पर आ जाने से इस तीर्थ की प्रसिद्धि ज्यादा हुई है। ऐसा कहा जाता है कि श्रीकृष्ण वासुदेव और जरासध प्रति वासुदेव के युद्ध मे जरासध ने एक ऐसा बाण फेंका जिससे कृष्णवासुदेव की सेना अचेत हो गई । इससे कृष्ण वासुदेव का चिंतित होना स्वाभाविक ही था ।

श्री नेमीनाथ भगवान साथ मे ही थे और वो स्वय २२वें तीर्थकर थे । तीर्थंकर का बल इतना होता है कि वो चक्रवर्ती को भी पराजित कर सकता है । किन्तु नेमीनाथ ने अपने बल का प्रयोग नही किया और उनके पीछे होने वाले २३वे तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ की महिमा बढाने हतु उन्होने कृष्ण वासुदेव को यह कहा कि तुम पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त कर उनके पक्षाल का जल सेना पर छाँटोगे तो यह जरा (अचेतपणा) दूर होगी। कृष्ण महाराज ने तेला कर देव को आराधना की। देव उपस्थित हुआ। कृष्ण महाराज ने पार्श्वनाथ की प्रतिमा लाने को कहा। देव ने कहा यह प्रतिमा देवलोक मे पूजी जाती है। मैं यहाँ कैसे ला सकता हूँ फिर भी परोपकार की दृष्टि से कृष्ण महाराज को प्रतिमा लाकर दी। कृष्ण महाराज ने प्रतिमा का पक्षाल कर विधिपूर्वक पूजा की और पक्षाल का जल सेना पर छाँटा और अपने सख से ध्वनि की इससे सारी सेना सचेत हो गई और जरासध की सेना से युद्ध किया उसमे कृष्ण की जीत हुई और जरासध मारा गया।

श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा को वही विराजमान कर सेवा-पूजा का प्रबन्ध कर दिया। सखध्वनि के कारण इस स्थान का नाम सखेश्वर पड गया। जब से यह तीर्थ सखेश्वर पार्श्वनाथ के नाम से व्याख्यात हुआ उसके पश्चात वि० स० ११५५ मे सज्जन सेठ ने मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कराई उसके बाद जीर्णोद्धार होता रहा है। यह मन्दिर बावन जिनालय है। पार्श्वनाथ की प्रतिमा मनोहर और सहस्रफणयुक्त है। यहाँ बहुत बडी धर्मशाला है। भोजनशाला भी है। पोष कृष्ण १० का मेला होता है। साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाएँ चतुर्विध सघ यहाँ आते रहते हैं। पोष वदि ९-१०-११ इन तीनो दिन का तेला कर कई व्यक्ति यहा जाप किया करते हैं। यो प्रत्येक दिन यहा मेला सा ही लगा

रहता है। अब तो यात्रियो की सख्या इतनी बढ गई है कि धर्मशाला विशाल होने पर भी स्थान नही मिलता। यहा पेढी पर काफी कर्मचारी काम करते हैं, आय भी अच्छी है। यहा नोपत प्रति दिन समय समय पर बजती रहती है। शाम को प्रभुभक्ति व आरती का दृश्य देखने योग्य है। यो इसका इतिहास बहुत पुराना है कहा जाता है कि गत चौइजी के नवमे तीर्थंकर के समय मे अषाढी श्रावक ने इस प्रतिमा को बनवाई और लाखो वर्ष तक देव-विमानो मे पूजा होती रही। और उसके बाद उपरोक्त बनाव बना। पार्श्वनाथ पच कल्याण पूजा मे श्री वीरविजयजी महाराज ने इसका उल्लेख किया है। हो सकता है यह सत्य घटना हो। इस युग मे जाप, स्मरण सखेश्वर पार्श्वनाथ का ही ज्यादा होता है। इनके सैकडो स्तवन स्तोत्र इत्यादि बने हुए हैं। किसी कारण यात्रा का लाभ किसी को नही मिला हो तो अवश्य यात्रा कर जन्म सफल करना चाहिए। अनेक चमत्कारिक कथाएँ हैं किन्तु यहा सक्षिप्त मे ही वर्णन किया है।

प्राचीन तीर्थ श्री भद्रेश्वरजी

यह तीर्थ कच्छ प्रदेश मे आया हुआ है। एकान्त पड जाने से जैन-बन्धुओ का अधिक ध्यान आकर्षित नही कर सकने से प्रसिद्धि अर्जित करने मे पूर्णता प्राप्त नही कर सका। पहिले यहाँ भद्रावती नगरी थी और जैनो की सख्या भी अधिक थी। धनकुबेर जगडू शाह जैसे दानवीर इसी नगर मे रहते थे जिन्होने बारह वर्ष पर्यन्त दुष्काल मे जनता का उदरपोषण किया। जिस नगर मे इतने धनाढ्य रहते हो—वहाँ ऐसे भव्य एव विशाल मन्दिर का होना स्वाभाविक ही है। नदीश्वर दीप की सख्या वाला, वामन जिनालय, नलिनी गुल्म विमान की आकृति वाला यह मन्दिर लगभग २४५० वर्ष पूर्व का है। वीर निर्माण से ४५ वर्ष पश्चात ही इसकी प्रतिष्ठा होने का अनुमान है। पहिले यहाँ मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान थे। उनकी अजनशलाका सुधर्मा स्वामी के शिष्य कपिल केवली ने की थी। भूकम्प हो जाने के कारण इस मन्दिर को भारी क्षति उठानी पडी। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा को पिछली देहरी मे स्थापित कर महावीर स्वामी को मूलनायक की गद्दी पर विराजमान किया गया। मन्दिर की शिल्पकला देखने योग्य है। मीठडी स्टेशन से गाँधीधाम हो कर यहा आने मे सुविधा रहती हे।

चतुर्विध सघ के यहाँ आने मे कठिनाई यह पडती है कि कच्छ का रण पार करना पडता है और निकट ही एक ओर समुद्र आ गया और दूसरी ओर खुला मैदान। राणकपुर जी के मन्दिरो का निर्माण इसी मन्दिर के मानचित्र के अनुसार हुआ हो, ऐसा माना जाता हे। क्योकि, दोनो की शिल्पकला मे बहुत अधिक सामजस्य है।

कठिनाइया कितनी भी हो—जैन बधुओ को अवश्य ही इसकी यात्रा करनी चाहिए क्योकि अभार, मुद्रा, भुज व मुथरी आदि जिनालयो के दर्शन का लाभ भी प्राप्त होता है।

प्राचीन तीर्थ श्री तारंगाजी

ले० मानचद भडारी

उत्तर गुजरात प्रात मे जैन मन्दिरो की सख्या बहुत ज्यादा है। जिसमे श्री तारगाजी तीर्थ अति प्राचीन और प्रसिद्ध है। महेसाना स्टेशन से एक छोटी लाइन की रेलगाडी प्रतिदिन तीन समय यहा आकर तारगा हिल स्टेशन पर ठहरती है और वहा से वापिस महेसाना जाती है।

पाटन के जैन भडारो मे हस्तलिखित कई ग्रथ हैं उनमे तारगा तीर्थ का उल्लेख भी मिलता है। यह ही नही शिलालेख व राज्य सरकार के रिकार्ड मे भी इसकी प्राचीनता का विवरण मिलता है। पुरातन प्रबध सग्रह (जो कुमारपाल राजा के स्वर्गवास होने के कुछ ही समय बाद लिखा गया) मे श्री जिनमडनगिरिजी ने लिखा है कि कुमारपाल ने श्री हेमचन्द्रसूरि से जैन धर्म स्वीकार करने के पूर्व मरु प्रदेश के दूरजय गढ पर राजा कुमारपाल ने ११ बार चढाई की किन्तु वह उस पर जयपताका नही फहरा सका। इस पर कुमारपाल को खेद हुआ और वाग्भट मत्री जो उदायन मत्री का पुत्र था जिसने श्री शत्रुंजय तीर्थ का चौदहवा उद्धार कराया। उससे उसका उपाय पूछा उसने कहा पाटण शहर मे श्री अजीतनाथ भगवान की प्रतिमा बडी चमत्कारी है उसकी उपासना करने से आपका कार्य सिद्ध हो सकता है। कुमारपाल राजा ने मदिर मे जाकर नमस्कार कर स्तुति की। दैवयोग से कुमारपाल की इच्छा पूरी हुई। वापस लौटते तारण का मनोहर पर्वत देखा। कुछ समय बाद हेमचद्रसूरि का समागम हुआ और जैन धर्म को स्वीकार कर जैन धर्म के सिद्धातो के अनुसार कार्य करने लगा। गुरु महाराज ने तारण पर्वत की महिमा को विस्तारपूर्वक बताया और कहा यहा अनेक त्यागी वरो ने अनसन कर मोक्ष प्राप्त किया कुमारपाल ने गुरु के उपदेश से तारण पर्वत पर मदिर बनवा कर पाटण से श्री अजीतनाथ स्वामी की प्रतिमा लाकर प्रतिष्ठा कराई। यह घटना वि स १२१६ से १२३० के दरमियान की है। ऐसा कहा जाता है कि तारण माता की गुफा यहा थी इसलिए इसका नाम तारण पर्वत पडा। और कई वर्षो बाद इसको तारगा नाम से कहने लगे। इसका कारण यह भी बताया जाता है कि इस पर्वत के निकट ही तारा नगर नाम का बडा शहर बसाया गया। वह अब नही है। किन्तु ईसवी सन १८७६ मे जब यहा रेलवे लाइन बनी तो खुदाई के समय उस समय की वस्तुए प्राप्त हुई।

वि स. १२८० का एक लेख वस्तुपाल के सम्बन्ध मे लिखा हुआ है। उसने 'तारंग का पर्वत' लिखा है। आचार्य श्री प्रभाचन्द्र सूरि ने प्रभाव चरित्र मे इसको तारंग .... लिखा है। उसके बाद इसका नाम तारगनाथ भी हुआ। और फिर यह तारगा नाम से सम्बोधित हुआ।

सफेद पत्थर पर जो शिल्पकला और कारीगरी का काम किया गया है वास्तव मे सराहनीय है। भारत की शिल्पकला बेजोड थी। और ऐसे मंदिरो की शिल्पकला देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यहां के शिल्पी कितने दक्ष और चतुर थे।

यहा मुख्य मन्दिर अजीत बिहार के नाम से प्रसिद्ध है। इसके समीप ही विशाल चौक है। जिसकी लम्बाई चौडाई २३० फीट है। चौक के बराबर मध्य मे मन्दिर बना हुआ है जिसकी ऊचाई १४२ फीट लम्बाई १५० फीट चौडाई १०० फीट है। इस तरह मन्दिर का कुल घेराव ६३४ फीट का माना जाता है। इस मन्दिर के स्तम्भो की जाडाई देखकर आश्चर्य होता है।

इस मन्दिर का रग मडप १६० फीट के घेराव वाला है। उसके बाद गर्भगृह मे प्रवेश करना पडता है जिसकी लम्बाई ३८ फीट व चौड़ाई २३ फीट है।

इस मन्दिर पर जो घुमठ बना हुआ है उसको सुरक्षित रखने के लिए १६ स्तम खड़े किए गए हैं। उन स्तम्भों की ऊँचाई १५ फीट और जाडाई समचौरस ८ फीट की है।

इस मन्दिर को बनाने वाला सूत्रधार कौन था इसका पता नही लगा। इतना कहा जा सकता है कि उसने अपने मस्तिष्क से जो कार्य किया वह आज नही हो सकता। कला का मानो भडार खोल दिया। इस मन्दिर को देख कर उस समय की शक्ति और भक्ति का ध्यान सहज मे आ सकता है। मन्दिर इतना भारी व विशाल होने से उसकी रक्षा हेतु मन्दिर मे बहुत बडे वजनदार पत्थरो का आलबन लिया गया है। ये ही नही एक,ऐसे काष्ठ का उपयोग किया गया है जो इतने भारी पत्थरो को भी टिकाए रखे। इस काष्ठ को गुजराती भाषा मे सफेद खर कहा जाता है। और इस किस्म के काष्ट डूगरपुर के जगलो मे होना बताया जाता है। ऐसे काष्ठों का उपयोग सिद्धपुर, पाटण आदि स्थानो मे भी किया गया है। लन्दन मे भी ऐसे काष्ठो का उपयोग होता है। कर्नल जेम्स टॉड के कथनानुसार इस काष्ठ को 'अलमुज काष्ठ कहा जाता है। यह न सड़ता है, न गलता है और न ही अग्नि से जलता है। यह तांबे के रग का होता है।

गर्भगृह मे विराजमान श्री अजीतनाथ स्वामी की प्रतिमा बहुत विशाल है जिनकी पूजा करने के लिए निसरणी पर चडना पड़ता है। यहाँ मूर्ति कैसे आई, किसने तैयार की इसका वर्णन भी करना आवश्यक है—

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि श्री तारगा तीर्थ पर पाटण शहर से अजीतनाथजी की प्रतिमा लाई गई। उसकी प्रतिष्ठा हेमचन्द्रसूरि ने कराई। श्री हेमचन्द्रसूरि का स्वर्गवास वि स १२२९ मे हुआ। अत यह मानना पडेगा कि इसके पहिले मन्दिर का निर्माण हुआ और उसी समय प्रतिमा विराजमान की गई।

किन्तु वर्तमान प्रतिमाजी पर जो लेख खुदा हुआ है उसमे वि स १४७९ के आस-पास का समय लिखा हुआ है इससे यह माना जा सकता है कि कुमारपाल ने जिस प्रतिमा की स्थापना की वह नही है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण करके मन्दिरो की तोड-फोड कर मूर्तियो को खण्डित किया। इसमे इस मूर्ति को भी खण्डित किया होगा। गुजरात के तीर्थो व मदिरो की जो हानि अलाउद्दीन खिलजी ने पहुँचाई शायद ही किसी दूसरे ने पहुँचाई हो। शत्रुञ्जय जैसे महान तीर्थ मे तोड-फोड कर मूर्ति खण्डित की। यह घटना वि स १३६९ की है। हो सकता है उसके कुछ समय पूर्व यहाँ हमला हुवा हो।

ऐसा ज्ञात होता है कि वर्तमान प्रतिमाजी को बनवाने वाला ईडर के सेठ गोविन्दशाह थे। जिनके पास करोडो की सम्पदा थी। उसको अम्बिका देवी का इष्ट था। देवी वचनो से उसने नई प्रतिमा बनवाकर आचार्यदेव श्री सोमसुन्दरसूरिस्वरजी महाराज से अजन-शलाका कराकर वि. स १४७९ के आस-पास तारगा मन्दिर मे प्रतिष्ठा कराकर विराजमान की। ऐसा लेखो से ज्ञात होता है।

इस प्रतिमा के दर्शन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इसको तैयार करने वालो ने अपनी इतनी चतुराई दिखाई कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। प्रतिमा के दर्शन करते ही इतना आनन्द आता है मानो साक्षात भगवान के सामने ही खडे हैं।

मन्दिर के दक्षिण की ओर एक तालाब है जिसका नाम लाडुसर है। यहा चौमुखी प्रतिमा है। दिगम्बर सप्रदाय की देहरिया भी हैं। यहा कोटिशिला पर करोडो मुनियो के मोक्ष जाने का उल्लेख जैन ग्रन्थो मे मिलता है।

मुख्य मन्दिर के पूर्व दिशा मे आधा मील की दूरी पर एक छोटी सी टेकरी है। जो मोक्ष बारी के नाम से प्रसिद्ध है। मार्ग मे खडहर बिखरे पडे हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि किसी समय यहा कोई मन्दिर बना हुआ था। इसके आगे एक देहरी मे प्रतिमा बिराजमान है। उसके ऊपर जो परिकर है उस पर वैसाख सुदि ३ सवत् १२०५ का लेख है। अजीत-नाथ भगवान की चरणपादुका भी हैं।

गुजरात के तीर्थो मे तारगाजी की महिमा भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। चैत्यवदन मे 'तारगे श्री अजीतनाथ नेमनमू गिरनार' लिखा है। यह तीर्थ बहुत प्राचीन है।

तारगा हिल स्टेशन पर जैन श्वेताम्बरो की धर्मशाला है। वहाँ वैलगाडियो से ऊपर जाया जा सकता है। छोटी बस भी जाती है। लगभग आधा माइल का चढाव है। पैदल जाने मे भी कोई दिक्कत नही होती है। वाहन के बनिस्पत पैदल मार्ग निकट पडता है। ऊपर भी धर्मशाला है। सेवापूजा इत्यादि का अच्छा प्रबन्ध है। पेढी है और यात्रियो को कोई कष्ट नही होता। शुद्ध जल तालाब या बावडी से आता है।

ऐसा भी कहा जाता है कि किसी समय शत्रुँजय का विस्तार तारगा तक था। भरत महाराज के समय मे बड नगर (आणदपुर) शत्रु जय की तलहटी कही जाती थी। शत्रुँजय के १०८ नामों मे तारगिरी भी है। ज्ञानी भगवत कह सकते हैं कि सत्य क्या है जैसी कथाएँ प्रचलित हैं उसके आधार पर लोकवाणी बनती है।

प्राचीन तीर्थ श्री भीलड़ी

डीसा के पश्चिम दिशा मे १६ मील दूर भीलडी नाम का एक छोटा सा गाव है। भीलडी स्टेशन भी है। जोधपुर से समदडी-जालोर-भीनमाल-राणीवाडा होकर सीधी गाडी जाती है। इसलिए इसकी यात्रा अब सुविधाजनक हो गई है। यहा से राधनपुर होते हुए भद्रेश्वर तीर्थ जाने का मार्ग है। भद्रेश्वर तीर्थ के वर्णन मे स्टेशन का नाम मीठडी भूल से छपा है, वास्तव मे उसका नाम भीलडी है। पाठक सुधार कर पढे।

पहले इसका नाम (ताम्रलिप्त) भीमपल्ली था। यहाँ बहुत बडी बस्ती थी। कहा जाता है कि ई स के ६०० वर्ष पूर्व राजग्रह का राजकुमार श्रणिक यहाँ आया और भील जाति की एक कन्या से उसके प्रेम हो जाने से वहाँ नगर बसाकर उसका नाम भीमपल्ली रखा। बाद मे अपभ्र स होकर इसका नाम भीलडी हुआ।

इस नगर की प्राचीनता के सम्बन्ध मे कुछ प्रमाण भी मिलते हैं। यहाँ सैकडो कुए वावडिये हैं। श्री गौतमस्वामी को मूर्ति पर लेख मे स० ११ लिखा है और कहा जाता है कि यहा पहले सवासौ मन्दिर थे।

इस नगर की जाहोजलाली १४ वी शताब्दी तक रहने का ग्रन्थो से ज्ञात होता है। और यह कहा जाता है कि चौदहवी शताब्दी के मध्य भाग मे यहाँ सोमप्रभसूरि का चतुर्मास था। उन्होने चतुर्मास के एक महिने पहले विहार किया। इसका कारण यह बताया जाता है कि इस नगर मे अग्नि का कोप होने वाला था और हुवा भी। इस नगर के लोग निकट ही एक नगरी बसा कर रहने लगे। उसका नाम अभी राधनपुर है।

चतुर्थ खंड

जैन धर्म की विभूतियाँ एव नर - रत्न

अनुक्रमणिका

(आचार्य एवं उपाध्याय भगवन्त)

नररत्न

श्रीमद आचार्यवर श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र

सग्राहक—मानचन्द भण्डारी (पार्श्वनाथ परम्परा के इतिहास से)

युगपुरुष श्री रत्नचूड का जन्म वीर निर्वाण सवत एक मे होना कहा जाता है। आपके पिताजी का नाम महेन्द्रचूड व माताजी का नाम महालक्ष्मी था जो रथनुपुर नगर के राजा थे। आपका जन्म नाम रत्नचूड था। आप विद्याधर कुल मे उत्पन्न हुए थे अत विद्याभ्यास आपका जन्मसिद्ध हक था अत आप सारी विद्या मे पारगत हुए। आपने आचार्य श्री स्वयप्रभसूरि का उपदेश सुना और ससार की असारता जानकर वीर निर्वाण के ४० वे वर्ष मे आचार्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की। आपने गुरु चरणो मे रहकर जैन धर्म के तत्वो को समझा और पूर्व भव के शुभ कर्मो व सस्कारो से आप चौदह पूर्व धारी हुए। आपकी योग्यता देखकर वी नि ५२ मे आपको आचार्य पद दिया गया। आप बड ही प्रतिभाशाली थे। आपका उपदेश मधुर, रोचक एव प्रभावोत्पादक होता था। आप अहिसा परमोधर्म का प्रचार करने हेतु गॉव गाव विहार करते थे। आपके तप, सयम की प्रशसा सारे भारत मे फैली हुई थी।

आपको मरुधर भूमि की ओर विहार करने का सकेत चक्रेश्वरी देवी से मिला। फलस्वरूप आप भी नमाल नगर मे पधारे और लाखो मूक प्राणियो को जीवन प्रदान कर लाखो भक्त बनाए। वहाँ से विहार कर ५०० मुनियो के साथ आप उपकेशपुर पधारे। आपके पधारने का समय वी निर्वाण के बाद ७० वर्ष का बताया जाता है। उपकेशपुर वाम मार्गियो से घिरा हुआ था, अत आचार्य श्री की किसी ने पूछ नही की। फिर भी देवी वचन से लाभ जानकर आचार्य श्री ने चतुर्मास वही किया किन्तु आहार पानी मिलता नही था फिर भी आप सारे कष्ट सहन कर तप, सयम की साधना करते रहे। कहा जाता है कि तप के प्रभाव से वहाँ की अधिष्ठात्री देवी प्रसन्न हुई। सयोगवश वहाँ के मुख्य मत्री उहड के पुत्र त्रिलोकसिह को भयकर सर्प ने डसा जिसका विष सारे शरीर मे व्याप्त हो गया। इसकी सूचना मिलने पर सारे नगर मे कोलाहल मच गया। मन्त्रतत्र वादियो ने विष उतारने का खूब ही प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नही मिली और वे मृतकपुत्र को जलाने हेतु श्मसान ले जा रहे थे। रास्ते मे एक साधु ने कहा कि साँप का काटा हुआ तुरन्त मरता नही है। हो सकता है यह मन्त्री पुत्र भी अचेत

हो गया हो, मरा नही हो। मेरी सम्मति मे इस पहाडी पर विराजमान आचार्य देव अपने तप सयम के प्रताप से इसको सचेत कर सकते हैं। मन्त्री वहाँ गया और दुख के साथ सारा वृत्तान्त कहकर अपने पुत्र को जीवन दान देने की प्रार्थना की।

आचार्य देव के शिष्य वीर धवल उपाध्याय ने गर्म जल लाने का कहा। वह लाया गया, उससे आचार्य देव के अगूठे को धोकर जल छीटा गया जिससे मत्री पुत्र सचेत हुआ और सारे नगर मे यह सुखद समाचार फैल गया।

राजा और मन्त्री ने यह चमत्कार देखा। इस बात का दुख प्रकट किया कि ऐसे महान त्यागी तपस्वी हमारे नगर मे पधारे और हमने ध्यान नही दिया। यह हमारी मूर्खता एव अज्ञानता है। राजा और मन्त्री ने आचार्य देव से क्षमा मागी और नगर मे पधारने की विनती की। आचार्य म० ने शिष्य मण्डली के साथ नगर प्रवेश किया। राजा ने उनका बडा ही सत्कार किया।

आचार्य श्री ने राजा प्रजा को धर्म देशना दी। फलस्वरूप उनकी जैन धर्म के प्रति श्रद्धा हुई और आचार्य ने वासक्षेप डालकर उनको जैन बनाकर 'ओसवाल जाति' बनाई। जिस उपकेशपुर का ऊपर वर्णन किया गया है जिसको आज 'ओसियाँ' कहते हैं जो ओसवालो की उत्पत्ति का स्थान माना जाता है। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि उपकेशपुर से ओसवालो की उत्पत्ति हुई। किन्तु सवत मे मतभेद अवश्य है। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास जो ज्ञानसुन्दरजी म० ने लिखा उसमे इस तरह से सिद्ध किया गया है कि ओसवालो की उत्पत्ति वी० निर्वाण ७० वर्ष के बाद हुई और इसके लिए प्रबल प्रमाण भी दिए हैं। वही नाम फिर आ सकता है। अत हमे यह मानकर चलना पडेगा कि ओसियाँ के मन्दिर व कोरटा के मन्दिर की प्रतिष्ठा वी० निर्वाण सवत ७० मे एक ही मुहूर्त्त मे हुई और उपरोक्त आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि के कर कमलो द्वारा हुई। कहा जाता है कि मूल शरीर से ओसियाँ (उपकेशपुर के मन्दिर की) प्रतिष्ठा कराई गई और वैक्रिय शरीर से कोरटा मे। कुछ भी हो रत्नप्रभसूरि महान प्रतापी, सयमी, चमत्कारी आचार्य थे। यह पार्श्वनाथ स्वामी की परम्परा मे छटे पाट पर थे। इनका गच्छ उपकेश गच्छ कहा जाता है। बाद मे कमला गच्छ हुआ। इस गच्छ की जाहोजलाली १६वी शताब्दी तक रही। बाद मे शिथिलता आनी प्रारम्भ हुई। इस गच्छ के अनेक यति श्री, पूज्य साधु-साध्वी थे किन्तु आज १-२ यतियो के अतिरिक्त न तो साधु हैं, न साध्वियाँ, न श्री पूज्य। इस गच्छ का प्रचार पूज्य देवगुप्तसूरीश्वरजी (प्रसिद्ध नाम ज्ञानसुन्दरजी म०) ने बहुत ही किया। वे स्वय इस गच्छ की परम्परा को मानते थे। उनके शिष्य प्रेमसुन्दरजी का स्वर्गवास हो जाने के बाद अब इस गच्छ मे कोई मुनि नही रहा, काल की कुटिलता इसी का नाम है। श्रीरत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास वि० निर्वाण सवत ८४ के माघ सुदि १५ को हुआ।

श्रीमद् सिद्धसेन 'दिवाकर' का संक्षिप्त जीवन चरित्र

(विक्रम की पहली शताब्दी)

आचार्य वृद्धवादी सूरिगच्छ नायक होकर धरा पर विहार करते हुए एक समय उज्जैन नगरी की ओर आ रहे थे। उस समय उज्जैन मे राजा विक्रमादित्य राज्य कर रहे थे। इसी नगरी मे देवर्षि नामक ब्राह्मण राजा का मन्त्री था जिसकी स्त्री का नाम देवश्री था और इनका पुत्र सिद्धसेन जो चार वेद अठारह पुराणादि ब्राह्मण धर्म के सर्व शास्त्रों का पारगामी था। विद्या का उसको इतना गर्व था कि मेरे जैसे दुनिया भर मे कोई पण्डित ही नही है। कई कथाओ मे तो यहाँ तक भी लिखा मिलता है कि सिद्धसेन अपने पेट पर एक पट्टा बाँधा हुआ रखता है। पूछने पर कहता था कि मुझे डर यह है कि कही विद्या से मेरा पेट फट न जाय। पण्डितजी एक हाथ मे कुदाल और एक हाथ मे निसेनी भी रखते थे। पूछने पर कहते थे कि यदि कोई वादी आकाश मे चला जाय तो इस निसेनी से उसकी टाग पकड ले आऊँ और पाताल मे चला जाय तो इस कुदाल से पृथ्वी खोदकर उसकी चोटी पकड कर खीच लाऊ। यह गर्व की सीमा थी। इतना होने पर भी एक प्रतिज्ञा उसने ऐसी भी कर ली थी कि जिसके साथ मैं शास्त्रार्थ करू और मध्यस्थ लोग कह दे कि सिद्धसेन हार गया तो मैं जीतने वाले का शिष्य बन जाऊँगा इत्यादि।

एक समय जगल मे इधर से तो आचार्य वृद्धवादी आ रहे थे उधर सिद्धसेन जा रहा था। दोनो की आपस मे भेट हुई। सिद्धसेन ने कहा—कि जैन मुनि मेरे साथ शास्त्रार्थ करेगा ? वृद्धवादी सूरि ने कहा—'हाँ' सिद्धसेन ने कहा—'तब कीजिए शास्त्रार्थ !' वृद्धवादीसूरि ने कहा यहाँ जगल मे कैसे शास्त्रार्थ किया जाय। कारण यहा हार जीत का निर्णय करने वाला मध्यस्थ नही है। किसी राज सभा मे चलो जहा राजा एव पण्डितो के समक्ष शास्त्रार्थ किया जाय, जिससे जय-पराजय का फैसला मिले। सिद्धसेन ने कहा—'मेरा तो पेट फटा जाता है, आप यहा ही शास्त्रार्थ करे। यहा जगल के गोपाल हैं। इनके ही मध्यस्थ रख लीजिए। ये अपने दोनो के सम्वाद सुन कर हार जीत का निर्णय कर देगे। सिद्धसेन का आग्रह देख आचार्य वृद्धवादी ने स्वीकार कर लिया और गोपालो को बुला कर मध्यस्थ मुकर्रर कर दिए।

पहिले सिद्धसेन ने अपने पाण्डित्य का परिचय देने सस्कृत मे इस प्रकार का कथन किया कि जिसको श्रवण कर देवता भी प्रसन्न हो जाय पर मध्यस्थ

तो थे गोपाल। वे बिचारे सस्कृत भाषा मे क्या समझे। उनको तो उल्टा खराब ही लगा। गोपालो ने कहा कि तुम ठहर जाओ। कुछ पढे तो हो नही और व्यर्थ ही बकवास करते हो। अब इन बूढे बाबा को बोलने दो। अत समय के जानकार आचार्य वृद्धवादी बोलने लगे। उनके ओघा तो कमर पर बधा हुआ ही था और शरीर को घुमाते हुए गोपालो की भाषा मे गोपालो के गीत की राग मे ऊँचे स्वर से गाने लगे—

नवि मारीइ नवि चोरीइ परदारा गमन न कीजइ।
थोडास्युँ थोडु दीजई, तउ टगिमगि सगि जाइइ ॥१॥
गाय भैंसिजिमनिलुचरइ तिम तिम दूध दुणो भरइ।
तिमतिम गोवला मनि ठरइ, छाछिदे यता तेडु करइ ॥२॥
गुलस्युँ चावइ तील तडुली, बडे बजाइ बाँसली।
पहिरण ओढणि हुइ धावली गोवाला मन पुगीरली ॥३॥
मोटा जोटा मित्या पिढार, माहोमाहि करिये विचार।
महीषी दूझणी सरजी भली, दीइ दाबोटा पुगी रली ॥४॥
बन माहि गोवला राज, इन्द तणि घरि परवा न आज।
भमर मिस दूझीवली सोल, सुखि समाधि हुई रँगरोल ॥५॥
वाटउ भरीउ दहीने घोल, जीमणो कर लेइ घेसि बोल।
इणि परेइ मुंडोमेलावउ करइ, स्वर्गतणी बातज बिसरइ ॥६॥
हडहडाटन बिक्रीजेघणु मर्म्म न बोली जे कहे तणु।
कुडी साखी न दीजे आल, एतुम्ह धर्म्मकहुं गोवाल ॥७॥
अरडस विच्छु नवि मारइ मारतओ पण उघारइ।
कुड कपट थी मन बारीइ, इणि परइ आप कारज सारइ ॥८॥
वचन नव कीजइ कही तणु, यह बात साची भणु।
कीजई जीव दयानु जतन, सावय कुल चिंतामणि रतन ॥९॥

वृद्धवादी के इस गीत (उपदेश) को सुनकर गोपाल बराबर समझ गये और उनको बडी भारी खुशी हुई। तब वे गोपाल ताली देकर कहने लगे।

गोवालिया उठ्या गहगही, हरखित ताली देता सही।
भलो यही ज गरडो डोकरउ, नही भणियो येहीजछोकरउ ॥१॥
भट्ट जे बोल्यो भूत पल्लाप, फोड्या कान विघोयो आप।
जीत्यो गरडो हरयो तु हल्ल, पाये लागो करइएगुरमल्ल ॥२॥

प्रवन्धकार लिखता है कि गोपालो के सामने सिद्धसेन ने कहा कि ससार मे कोई सर्वज्ञ नही है। उत्तर मे आचार्य वृद्धवादी ने गोपालो से पूछा कि तुमने सर्वज्ञ देखा है ? गोपालो ने उत्तर दिया कि नगर के मन्दिर मे सर्वज्ञ वीतराग बैठा है। जिसको हम लोगो ने प्रत्यक्ष देखा है और सब लोग उसको सर्वज्ञ वीतराग ईश्वर कहते हैं। यह बात सत्य है फिर यह पण्डित झूठ क्यो बोलता है इत्यादि। गोपालो ने वृद्धवादी को सच्चा और सिद्धसेन को झूठा कह कर फैसला दे दिया।

बस, फिर तो था ही क्या ! सत्यवादी सिद्धसेन ने गुरु महाराज के चरणो मे सिर झुका कर कहा—'हे पूज्यवर ! आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बनाइए, कारण मैंने पहिले से ही ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिससे हार जाऊँ उसका शिष्य बन जाऊँ। सूरीजी ने कहा—'सिद्धसेन तू वास्तव मे पडित है पर कमी है तो समझ न होने की है। यदि तू जैन दीक्षा लेना चाहता है तो बहुत अच्छा है पर यदि तेरी इच्छा हो तो अभी किसी राजसभा मे चलकर विद्वान पडितो के समक्ष शास्त्रार्थ कर फिर वहाँ जय-पराजय का निर्णय हो जायेगा।' सिद्धसेन ने कहा—'नही प्रभो ! निर्णय तो यहाँ हो गया है और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आपके सामने मैं कुछ भी नही हूँ, अत आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करके अपना शिष्य बनाले।' सूरिजी ने विधिविधान से सिद्धसेन को दीक्षा देकर उसका नाम कुमुदचन्द्र रख दिया। मुनि कुमुदचन्द्र ने जैन दीक्षा लेने के बाद वर्तमान जैन साहित्य का अध्ययन कर लिया। आचार्य वृद्धवादी ने सर्वगुण सम्पन्न जान कुमुदचन्द्र को आचार्य पद से विभूषित कर उनका प्रसिद्ध नाम 'सिद्धसेन सूरि' रख दिया और अन्य साधुओ को साथ देकर विहार करवा दिया। आचार्य सिद्धसेन सूरि की ज्ञानप्रभा यहाँ तक फैल गई कि वे सर्वज्ञ पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

आचार्य सिद्धसेनसूरि उज्जैन नगर मे विराजते थे। एक समय[1] कही जाकर वापिस आ रहे थे। राजा विक्रमादित्य हस्ती पर आरूढ होकर आचार्य के पास से निकल रहे थे। उसने सर्वज्ञपुत्र की परीक्षा के लिए हस्ती पर बैठे हुए मन मे ही सूरिजी का वन्दन किया उस चेष्टा को देखकर सूरिजी ने उच्च स्वर से कहा 'धर्मलाभ'। राजा ने कहा कि बिना वन्दन किए ही आप धर्मलाभ किसको दे रहे हैं ? सूरिजी ने कहा 'हे नरेश! आपने मुझे मन से वन्दन किया जिसके बदले मे मैंने धर्मलाभ दिया है।' राजा ने हस्ती से उतर कर सूरिजी को वन्दन कर कहा कि मेरे दिल मे शका थी कि लोग आपको सर्वज्ञपुत्र कहते

---

१ श्री सिद्धसेनसूरिश्चान्यदा बाह्य भुविव्रजन्। दृष्ट श्री विक्रमार्केण राज्ञाध्वगेन स ॥६१॥
अलक्ष्य भूप्रणाम स भूपस्तस्मै च चक्रिवान्। त धर्मलाभयामास गुरुरुच्चतरस्वर ॥६२॥
तस्य दक्षतयातुष्टा प्रीतिदानेददौनृप। कोटि हाटकटकाना लेखक पत्रकेऽलिखित् ॥६३॥
धर्मलाभ इतिप्रोक्त दूरादुद्धतपापये। सुरये सिद्धसेनाय ददौ कोटि नराधिप ॥६४॥

हैं। यह केवल शब्द मात्र की प्रशसा है पर आज मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि आप वास्तव मे सर्वज्ञपुत्र हैं। इस गुण से प्रसन्न होकर मैं करोड सुवर्ण मुद्रा आपको भेट करता हूँ। आप स्वीकार करे। सूरिजी ने कहा कि—'हे राजन ! हम निस्पृही निर्ग्रन्थों को इन स्वर्ण मुद्राओं से क्या प्रयोजन है, हम तो केवल भिक्षावृत्ति पर ही गुजारा करते हुए जनता को धर्मोपदेश करते हैं।' राजा ने कहा कि मैंने मन से जिस धन को अर्पण कर दिया है उसको रख नही सकता हूँ। सूरिजी ने कहा कि इसके लिए अनेक रास्ते हैं। दुखी मनुष्यो को सुखी बना सकते हो, मन्दिरादि धर्मस्थानो के जीर्णोद्धारादि कार्यो मे लगाकर पुण्योपार्जन कर सकते हो इत्यादि। राजा ने जैन मुनियो की निस्पृहता की प्रशसा की और अर्पण किया हुआ द्रव्य सूरिजी की आज्ञानुसार अच्छे कामो मे लगा दिया।

आचार्य सिद्धसेन सूरि एक समय भ्रमण करते हुए चित्रकूट नगर मे पधारे। वहा एक स्तम्भ आपको दृष्टिगत हुआ। वह स्तम्भ न पत्थर न मिट्टी न काष्ट का था, पर औषधियो के लेप से बना हुआ था। सूरिजी ने प्रतिकूल औषधियो से स्तम्भ का एक विभाग खोला तो उसमे कई हजारो पुस्तके भरी हुई थी, जिसमे से एक पुस्तक को लेकर उसका एक श्लोक पढा तो उसमे सुवर्ण सिद्धि विद्या थी, फिर दूसरा श्लोक पढा तो उसमे सरसाव से सुभट बनाने की विद्या थी। उन दोनो श्लोको को याद कर आगे तीसरे श्लोक को पढना चाहते थे कि पुस्तक स्तभ मे चली गई और स्तभ लेपमय था वैसा ही बन गया केवल दो विद्या आचार्य श्री के हाथ लग गईं। उसको स्मृतिपूर्वक याद रखली।

आचार्य श्री विहार करते हुए पूर्व देश के कुमरि[2] पधारें वहा देवपाल नामक राजा था। सूरिजी के उपदेश से उसने जैनधर्म स्वीकार कर सूरिजी का परम भक्त बन गया[3]

---

१ अन्यदा चित्रकूटा हो विजहार गुनीश्वर । गिरेर्नितब एकत्रस्तभमेकढदर्शच ॥६७॥
नैव काष्टमयो ग्रावमयो ननचमृण्यम । विमृशन्नोषधक्षोदमयनिरचतोच्चतम ॥६८॥
तद्गस्पर्शगधादिनिरीक्षाभिर्मतिर्वलात् । औषधानिपरिज्ञायतत्प्रत्यर्थीन्यमीमिलन् ॥६९॥
पुन पुनर्निवृष्याथसस्तभेछिद्रमातनीत् । पुस्तकानाँ सहस्त्राणितन्मध्येचसमैक्षत ॥७०॥
एक पुस्तकमादायपत्रमेकतत प्रभु । विवृत्यवाचयामासतदीयामोलिमेककाम् ॥७१॥
सुवर्ण सिद्धियोग स तत्र पैक्षत विस्मित । सर्सर्प सुभटाना च निष्पत्तिश्लोकएक्के ॥७२॥

२ सावधान पुगे यावद्वाचयत्येप हर्पभू । तत्त्वत्र पुस्तक चाथ जह्रे श्रीशासनामरी ॥७३॥
तादृक्पूर्वगतग्रथवाचनेनास्ति योग्यता । सत्वहानियतकालदौस्थ्यादेतादृशामपि ॥७४॥ प्र० च०

३ न पूर्वदेशपर्य्यन्ते व्यहार्पीच परेद्यवि । कमरिनगर प्रापविद्यायुगयुत सुधी ॥७५॥
देवपाल नरेन्द्रोऽस्ति तत्र विख्यात विक्रम । श्रीसिद्धसेनसूरिं स न तुमभ्याययौरयात ॥७६॥
ततो दिवाकर इति ख्यातास्या भवतु प्रभो तत प्रमृतिगीत श्री सिद्धसेन दिवाकर ॥८५॥
तन्यराज्ञो दृट मान्य सुखासनगजादिपु । बलादारोपितो भक्त्यगच्छति क्षितिपालयन ॥८६॥
इति ज्ञातवा गुरुर्वृद्धवादी सूरिर्जनश्रुते । शिष्यस्य राजसत्कार दर्प भ्रान्त मति स्थिते ॥८७॥
अराहुल्ली फुल्ल मतोड्डु मन आरामा ममोड्डु । मणकुसुमेहिं अच्चि निरजणु हिंडहकाइ वणेण वणु
॥९२॥

ओर बहुत आग्रह कर सूरिजी को अपने यहाँ रख हमेशा ज्ञान-गोष्ठी किया करता था। एक समय विजयवर्मा राजा सेना लेकर देवपाल पर चढ आया। राजा घबराया और सूरिजी के पास आकर अपनी दु खगाथा कह सुनाई। सूरिजी ने सुवर्ण विद्या से सोना और सरसप विद्या से असख्य सुभट बना दिए जिससे देवपाल ने विजयवर्मा को भगा दिया। इससे देवपाल ने सूरिजी को दिवाकर उपाधि से विभूषित किया। इतना ही नही पर राजा ने भक्तिवश होकर सूरिजी को छत्र, चँवर, पालकी और हस्ती तक देकर एक बादशाही ठाट सा बना दिया और आचार्य श्री अपने चारित्र से विस्मृत होकर उन सब ठाट के साधना को उपयोग मे भी लेने लग गए।

जब आचार्य वृद्धवादी ने यह बात सुनी कि सिद्धसेन चारित्र से शिथिल होकर पालकी एव हस्ती पर चढ कर चँवरादि राजसी ठाट भोग रहा है तो सूरिजी को बडा भारी अफसोस हुआ कि सिद्धसेन जैसो का यह हाल है तो दूसरो का तो कहना ही क्या है। अत अपने योग्य शिष्य का उद्धार करने के लिए स्वय ही सूरिजी वेश बदल कर कुमरि नगर मे आए, और जिस समय सिद्धसेन सुखासन पर बैठ कर बहुत लोगो के परिवार से राजमार्ग से निकल रहा था उस समय वृद्धवादी सूरि ने उसके पास जाकर एक गाथा कही।

अणहुल्ली फूल्ल म तोडहु मन आराम म मोडहू।
मण कुसुमेहिं अच्चिनिरजणुहिंडह काइवणेणवणु ॥[1]

इस गाथा के अर्थ के लिए सिद्धसेन ने बहुत उपयोग लगाया पर गाथा के भाव को नही समझ सका अटम् पटम् अर्थ कहा पर बूढे ने मजूर नही किया तब सिद्धसेन ने बूढे से कहा कि तुम इस गाथा का भाव कहो। बूढे ने गाथा का भाव कहते ही सिद्धसेन की सूरत ठिकाने आई और सोचा कि सिवाय मेरे गुरु के ऐसा विद्वान नही कि इस प्रकार की गाथा कह सके। तुरन्त ही पालकी से उतर कर गुरु के चरणो मे गिर पडा और अपने अपराध की क्षमा माँगी। गुरु महाराज ने सिद्धसेन को यथायोग्य प्रायश्चित देकर स्थिर किया और गच्छ का भार सिद्धसेन को सौप कर आप अनशन एव समाधि के साथ सर्वधाम को पधार गए।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर शुरू से सस्कृत के अभ्यासी एव अनुभवी थे। शायद प्राकृत एव मागधी भाषा उनको अच्छी नही लगी हो या इनके गूढ रहस्य को समझने मे कठिनाइयो का अनुभव करना पडा हो या उस जमाने की जनता पर विशेष उपकार की

---

१ अभी पानकुरकाभा सप्तापि जलराशय। यद्यशो राजहसस्यपजर भुवनत्रयम् ॥१॥
भयमेकमनेकेभ्य शत्रुभ्यो विधिवत्सदा। ददासि तच्चते नास्ति राजश्चित्रमिदमहत् ॥२॥

भावना हो एव किसी भी कारण से प्राकृत भाषा को ग्रामीण भाषा समझकर जैनागमो को सस्कृत मे बना देने के इरादे से श्रीसघ को एकत्र कर अपने मनोगत भाव श्रीसघ के सामने प्रदर्शित किए कि आप सम्मति दे तो मैं इन सब आगमो को सस्कृत मे बना दू । सूरिजी के वचन सुनकर श्रीसघ सख्त नाराज हुआ और कहा कि तीर्थंकर सर्वज्ञ थे और गणधर भी जिनतुल्य ही थे । उन्होने चौदह पूर्व का ज्ञान सस्कृत और एकादशाग का ज्ञान प्राकृत भाषा मे बनाया है । इसमे उनकी जनकल्याण की भावना ही मुख्य थी जैसे कहा है कि—

बालस्त्रीमूढमूर्खादि जनानुगहणाय स. ।
प्राकृता तामिहाकार्पीदनास्थात्र कथहिव. ।।

अत तीर्थंकर गणधरो के रचे हुए आगमो का अनादर रूप महान् आशातना का प्रायश्चित लेना चाहिए । कारण इस प्रकार मूलअग सूत्रो को वदल दिए जायँ तो फिर जिन वचनो पर विश्वास ही क्या रहेगा इत्यादि ।

सत्पक्षी सिद्धसेन दिवाकरजी की समझ मे आ गया कि मेरी ओर से आशातना अवश्य हुई है । श्रीसघ से कहा कि जो दड सघ दे वह मुझे मजूर है । श्रीसघ ने विनय के साथ कहा कि दड देने का हमे क्या अधिकार है । हम तो आपकी आज्ञा के पालन करने वाले हैं । हाँ, दड स्थविर भगवान दे सकते हैं । स्थविरो से याचना करने पर उन्होने विचारणापूर्वक दशवा पारचिक प्रायश्चित दिया कि इस प्रायश्चित की अवधि बारह वर्ष तक है परन्तु आप किसी बडे राजादि को प्रतिबोध कर जैन धर्म की प्रभावना करे तो श्रीसघ को अधिकार है कि इसमे रियायत भी कर सके । आत्मकल्याण की भावना वाले सूरिजी ने उस प्रायश्चित को स्वीकार कर लिया और गच्छ का भार अन्य योग्य स्थविर को सौप कर आप गच्छ से अलग हो गए और ओघा मुँहपत्ति गुप्त रख अवधूत के वेष मे सयम की रक्षा करते हुए भ्रमण करने लग गए ।

इस भ्रमण मे दिवाकरजी ने ७ वर्ष व्यतीत कर दिए । बाद एक समय उज्जैनी नगर मे गए । राजा के द्वारपाल ने कहा कि तू राजा के पास जाकर निवेदन कर कि एक अवधूत हाथ मे चार श्लोक लेकर आया है और वह आपसे मिलना चाहता है । अत

---

१ अन्यदालोकवाक्येन जातिप्रत्ययतस्तथा । आवाल्यात्सस्कृताभ्यासी कर्मदोषात्प्रबोधित ।।१०९।।
सिद्धान्त सस्कृत कुर्तुमिच्छत्सघ व्यजिज्ञपत् । प्राकृते केवलज्ञानिभाषितेऽपि निरादर ।।११०।।
वालस्त्रीमूढमूर्खादिजनानुग्रहणाय स. । प्राकृतातामिहाकार्षीदनास्थात्र कथ हि व ।।११६।।
इति राज्ञा स सन्मानमुक्तोऽभ्यर्णे स्थितो यदा । तेन साक ययौ दक्षः स कुडगेश्वरे कृती ।।१३१।।
श्रुत्वेति पुनरासीन शिव लिङ्गस्य स प्रभु । उदाजह्रेस्तुतिश्लोकान् तार स्वर करस्तदा ।।१३८।।प्र.च.

आपकी आज्ञा हो तो अन्दर आने दिया जाय। राजा ने आज्ञा दे दी। दिवाकरजी राजा के पास आए और निम्नलिखित श्लोको द्वारा राजा की स्तुति की—

अपूर्वेय धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुत।
मार्गणौध समस्येति गुणो यति दिगन्तरम् ॥१॥
सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मी करससोरुहे।
कीर्त्ति किं कुपिता राजन्! येन देशान्तर गता ॥२॥
किर्तिस्ते जात जाड्ये चतुरम्भोधि मज्जनात्।
आतपाय धरानाथ! गता मार्तण्डमण्डलम् ॥३॥
सर्वदा सर्वदोऽसीतिमिथ्यासस्तूयसे जनै।
नारयो लेभिरे पृष्ठ न वक्ष परयोषित ॥४॥

इन श्लोको को सुनकर राजा मत्रमुग्ध बन गया और बडे ही सम्मान के साथ अपनी सभा मे रखा और हमेशा ज्ञानगोष्ठि करता रहा। सब पडितो मे सिद्धसेन का आसन उचा समझा जाता था।

एक समय राजा विक्रमादित्य कुण्ढगेश्वर महादेव के दर्शनार्थ जा रहा था। दिवाकरजी को भी साथ चलने को कहा। इस पर दिवाकरजी भी साथ हो गए। राजा ने महादेव को नमस्कार किया पर दिवाकरजी बिना नमस्कार किये ही खडे रहे। राजा ने कहा कि आप जाति के ब्राह्मण और इतने विद्वान होते हुए भी देव को नमस्कार नही करते हो। इसका क्या कारण है?

दिवाकरजी—मेरे नमस्कार को सहन करने वाला देव दूसरा ही है। यह देव मेरे नमस्कार को सहन नही कर सकेगा।

राजा ने इसका कारण धर्मभेद समझ कर पुन कहा कि हम देखते हैं। आप नमस्कार करे। फिर यह देव कैसे सहन नही करेगा?

दिवाकरजी—राजन्! आप हठ न करे, मैं ठीक कहता हूँ। यदि मैं नमस्कार करूँगा तो आपके दिल को भी आघात पहुँचेगा?

राजा—खैर! कुछ भी हो आपतो महादेव को नमस्कार कीजिए?

दिवाकरजी राजा के आग्रह से न्यायावतार[1] सूत्र की स्तुति और कल्याण मन्दिर

---

१ न्यायावतार सूत्रच श्रीवीरस्तुतिमप्यथ। द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्या स्तुतीरपि ॥१४३॥
ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्ता स्तुतिमसौ जगौ। कल्याणमन्दिरेत्यादि विख्याता जिनशासने ॥१४४॥
अस्य चैकादश वृत्त पठतोऽस्य समाययौ। धरणेन्द्रोदृढा भक्तिर्न साध्य तादृशा किमु ॥१४५॥
शिवलिंगात्ततो धूमस्तत्प्रभावेण निर्ययौ। यथाॅधतमसस्तोमैर्मध्याह्नेऽपि निशाभवत् ॥१४६॥
यथाविह्वलितोलोको नष्टुमिच्छन् दिशोनहि। अक्षासीदाश्मनस्तभत्रितिप्वारफालितो भृशम् ॥१४७॥
ततस्नस्कृपयेवास्माद् ज्वालामाला विनिर्ययौ। मध्येसमुद्रमावर्त्तवृत्ति सवर्त्तकोपमा ॥१४८॥
ततस्च कौस्तुभस्येव पुरुपोत्तम हृत्स्थिते। प्रभो श्री पार्श्वनाथस्य प्रतिमा प्रकटाभवेत् ॥१४९॥

स्तोत्र बनाकर देव की स्तुति करने लगे तो महादेव के लिंग के अंदर से धुआ निकलना शुरू हुआ जिसको देख कर लोग कहने लगे कि शिवजी का तीसरा नेत्र प्रकट हुआ है। शायद शिवजी का अपमान करने वाले को जला कर भस्म कर डालेगा। जब कल्याण मंदिर का तेरहवा श्लोक उच्चारण किया कि धरणेन्द्र साक्षात आया और महादेव के लिंग की नीबू की भांति चार फाके होकर अन्दर से आवन्ति पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हो गई जिसको देख राजा प्रजा उपस्थित लोगो को बडा ही आश्चर्य हुआ। राजा ने इसका कारण पूछा तो दिवाकरजी ने कहा कि भद्रा सेठानी के पुत्र अवन्ति कुमार ने बत्तीस रमणिएँ और करोडो द्रव्य त्याग कर जैन दीक्षा ली और उसके पुत्र ने इस स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की जिसको आवन्ति पार्श्वनाथ कहते थे पर ब्राह्मणो की प्रबलता में पार्श्वनाथ की मूर्ति दबा कर ऊपर लिंग स्थापित कर दिया। वही आज आपके आग्रह से प्रकट हुआ है। इस चमत्कारी घटना को देख कर राजा ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया और कट्टर जैन बन गया। 'यथा राजा तथा प्रजा' और भी बहुत से लोगो ने जैन धर्म स्वीकार किया, जिससे जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई। इस प्रभाव के कारण श्री सघ दे शेष ५ वर्ष माफ कर दिवाकरजी को श्री सघ मे लेकर पुन गच्छ का भार उनके सुपुर्द कर दिया।

राजा विक्रम ने सूरिजी के उपदेश से श्री शत्रुंजय तीर्थ का एक विराट सघ निकाला जिसमे हजारो साधु साध्विया और लाखो गृहस्थ सघ मे साथ थे। इस सघ का जैन ग्रथो मे बडे विस्तार से वर्णन किया है।

आचार्य दिवाकरजी एक समय ऊँकार नगर मे पधारे। वहा के श्रीसघ ने आपका बडा ही समारोह के साथ स्वागत किया। एक समय वहाँ के श्री संघ ने सूरिजी से अर्ज कि कि हे प्रभो! हमारी इच्छा एव भक्ति होने पर भी मिथ्यात्वी लोग हमको जैन मदिर नही बनाने देते। पूज्यवर! आपकी मौजूदगी मे हम लोगो की आशा सफल न हो यह एक अफसोस की बात है। सूरिजी ने कहा 'ठीक, मैं प्रयत्न करूँगा।' सूरिजी वहाँ से चलकर पुन उज्जैन पधारे। राजा विक्रम को अपने ज्ञान से इतना प्रसन्न किया कि उसने कहा कि पूज्यवर! आज्ञा फरमाओ कि मैं आपकी क्या सेवा करू? सुरिजी ने कहा— 'हमारी क्या सेवा करनी है, यदि आपकी इच्छा हो तो ऊँकार नगर मे शिवमन्दिर से ऊँचाई मे एक जैन मन्दिर बनाकर पुण्योपार्जन करे।' राजा ने सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर बिना विलम्ब तत्काल ही जैन मन्दिर बना दिया और सूरिजी के करकमलो से उस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई अत. ऊँकारपुर के श्रीसघ के मनोरथ सफल हुए।

सूरिजी महाराज वहाँ से विहार कर भरोच नगर की ओर जा रहे थे। रास्ते मे

उन्होने कई गोपालो को धर्म उपदेश दिये जैसे कि वृद्धवादी आचार्यों ने गवालो की भाषा मे उपदेश दिया था। उसकी स्मृति के लिए गोपालो ने वहाँ पर तालारसिक नाम का ग्राम बसा दिया। इस प्रकार धर्मोन्नति करते हुए सूरिजी महाराज भरोच पधारे। उस समय भरोच मे राजा वलमित्र का पुत्र धनजय राज करता था। सूरिजी महाराज का परम भक्त था और सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश महोत्सव बडे ही समारोह से किया।

एक समय भरोच पर किसी दुश्मन राजा की सेना ने आक्रमण किया। दुश्मनो की सेना इतनी विशाल सख्या मे थी कि धनजय राजा घबरा गया। उसने आकर सूरिजी से सब हाल निवेदन किया। सूरिजी चित्तौड मे जो विद्या प्राप्त की थी, उसके प्रभाव से सरसव प्रयोग से इतने सुभट बना दिए कि उन्होने क्षण भर मे ही दुश्मनो की सेना को भगा दिया। तदनन्तर राजा धनजय ने सूरिजी के पास मे दीक्षा ले ली। इस प्रकार शासन की प्रभावना करते हुए दक्षिण प्रान्त के प्रतिष्ठनपुर नगर मे पधारे। वहाँ के राजा प्रजा ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। वहाँ धर्मोपदेश देते हुए सूरिजी को ज्ञात हुआ कि मेरा आयुष्य अल्प है। अत आपने अपने योग्य शिष्य को सूरिपद पर प्रतिष्ठित कर आप अनशन एव समाधिपूर्वक स्वर्ग पधारे।

वहाँ का वैतालिक नाम का चारण फिरता हुआ उज्जैन नगरी मे आया। वहाँ पर सिद्धसेन दिवाकर की बहिन सिद्ध श्रीसाध्वी ने उस वैतालिक चारण से अपने भाई सिद्धसेन दिवाकरजी के समाचार पूछे। इसके जवाब मे निरानन्द होकर चारण ने श्लोक का पूर्वार्द्ध कहा—

'स्फुरन्ति वादिखद्योता' साम्प्रतदक्षिणापथे।'

अर्थात् इस समय दक्षिण देश मे वादीरूपी खद्योत स्फुरायमान हो रहे हैं। इस पर साध्वी सिद्धोश्री ने अपने अनुमान से श्लोक का उत्तरार्द्ध कहा कि—

'नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकर।'

अर्थात् सिद्धसेन दिवाकरसूरि का स्वर्गवास हो गया तभी तो वादी स्फुरायमान हो रहे हैं। वैतालिक को पूछने से साध्वी का अनुमान ठीक निकला। साध्वी ने उसी दिन से अनशन कर दिया और रतनत्रिय की आराधना करती हुई स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार विद्याधर वश मे पादालिप्तसूरि वृद्धवादीसूरि एव सिद्धसेन दिवाकरसूरि प्रभाविक आचार्य हुए। प्रबन्धकार फरमाते हैं कि—विक्रम स० १५० के बाद श्रावक मिलकर बिहार तथा गिरनार पर्वत के मुकट समान श्रीनेमीनाथ मदिर का जीर्णोद्धार कराते हुए बरसात के कारण नष्ट हुआ एक मठ के अन्दर मिली हुई प्रशस्ति या कई प्राचीन विद्वानो के ग्रथो से सग्रह करके इन महापुरुषो का चारित्र लिखा।

श्रीमद अभयदेवसूरि

(वि० ११वी व बारहवीं शताब्दी)

[illegible]—[illegible]

आप एक महान आचार्य हुए है। आप चन्द्र कुल के श्री [illegible] [illegible] [illegible] जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य थे। आपका पदार्पण गुजरात मे हुआ। [illegible] से २८ व कही १११८ से ३५ तक की बताई गई है। [illegible] का ऐसा नियम हे कि वह राजा, रंक त्यागी वर्ग किसी को नहीं [illegible]। [illegible] तीर्थकर भगवान को भी बँधे हुए कर्म भुगते बिना केवल ज्ञान नहीं होता। [illegible] जाहिर है। हमारे चरित्रनायक को भी असाता वेदनी नाम का अशुभ [illegible] और उनके शरीर मे रक्तपात (कोढ) की बीमारी हुई। [illegible] गए और धर्मध्यान मे बाधा पडती देख उन्होंने अनशन करने का विचार किया। [illegible] रात शासन देवी ने उनको पूछा—'प्रभो, आप जागते है या निद्रा मे है?' [illegible] 'मेरे पीछे ऐसा रोग लगा है कि निद्रा आना तो दूर रहा [illegible] भी चैन नहीं पडती। देवी ने कहा, सूत की नव कोकडियो को आप 'उकेलो'। [illegible] फिर भी उन्होंने देवी के कहे अनुसार किया। तब देवी ने कहा, आपके हाथो से नव अंग की टीका होगी और उस टीका से शासन की बडी सेवा होगी। आचार्य स० ने कहा मै इस तरह के रोग मे फँसा हुआ टीका कैसे कर सकूंगा। देवी ने कहा—'स्तंभनपुर नगर के पास से ही नदी के किनारे खाखरा के वृक्षो के नीचे महा प्रभावशाली पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। यह प्रतिमा 'नागार्जुन' विद्या सिद्ध करने के लिए कान्तिपुर नगर से धनदत्त सेठ घर से लाया था और विद्या सिद्ध हो जाने पर उपरोक्त स्थान मे भंडार कर दी। उस प्रतिमा को प्रकट कर उसके पक्षाल का जल छाँटने से आपका रोग दूर होगा और आप स्वस्थ होकर नव अग की टीका कर सकेगे।'

प्रात काल देवी के वचनो की बात श्रावको को सुनाई। सबने यह कहा देवी का वचन कभी मिथ्या नही होता, अवश्य भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन होंगे। आचार्य देव संघ के साथ नदी के किनारे गए। वहाँ पर एक खाखरा के वृक्ष के नीचे एक गाय का दूध भरता था। आचार्य श्री ने वहाँ जाकर जयति हुवण स्तोत्र बनाकर प्रभु की स्तुति की। कहा जाता है कि जब १७वी गाथा का उच्चारण किया तो वहाँ पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रगट हुई। उसके बाद १३ गाथा और बनाकर यह ३० गाथा का स्तोत बनाया

जिसका पाठ आज भी हमारे बन्धु करते हैं। यह महान चमत्कारी स्तोत्र है। खरतरगच्छ वाले प्रतिक्रमण मे इसकी पाच गाथा चैत्यवदन के रूप मे बोलते हैं और पाक्षिक प्रति-क्रमण मे पूरा जयति हुवण का चैत्यवन्दन करते हैं।

प्रतिमा के दर्शन होते ही जयनाद से आकाश गूज उठा और श्रावको ने भगवान की अष्टप्रकारी पूजा कर पक्षाल के जल को आचार्यश्री से शरीर पर छिडका। उसी समय प्रभु के अतिशय से उनके रोग का नाश हुआ और उन्होने नव अग की टीका की जो आज जैन सघ मे सर्वमान्य है।

आचार्य महाराज के करकमलो से वही प्रतिमा की स्थापना की गई (यानि प्रतिष्ठा कराई) और यह तीर्थ स्थान के नाम से विख्यात हुआ।

कहा जाता है कि आज जिसको खम्भात कहते हैं पहले इसका नाम (त्रबावटी) था किन्तु चमत्कार पूर्व प्रतिमा प्रकट होने से 'स्थभन तीर्थ' पडा। समय एक सा नही रहता, यवनो का जोर बढा। मूर्ति को ले जाने के लिए दूसरो ने भी षडयत्र रचे। ऐसी दशा मे इस प्रतिमा पर लेप कराया गया और खभात शहर के मदिर मे विराजमान की जिनके दर्शन प्रत्येक जैन करता है।

खभात शहर आज भी समृद्धिशाली है और वहां स्तभन पार्श्वनाथ का मदिर तीर्थधाम वना हुआ है। धन्य है ऐसे तप, त्याग, सयम मे रमण करने वाले महात्मा को !

मैंने उस व्यक्ति को, जो सुबह जल्दी उठता हो, मेहनती हो, दूरदर्शी, ईमानदार और मितव्ययी हो कभी दुर्भाग्य का रोना रोते नही देखा। —**एडीसन**

०•०

जीवन का कोई क्षण सोने की करोड मुद्राएँ देने पर भी वापिस नही मिल सकता। उसे नष्ट करने से वडी हानि क्या हो सकती है ? —**चाणक्य**

जंगम जुगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी

(वि० स० ११४१ से १२११)

अवोद् भाति युगप्रधानपदवीविभ्राजमान पुन ,
ज्योतिर्व्यन्तरदेवनागमनुजै ससेवित सन् सदा ।
आप्तोक्ति स्मरता च जैन सुकृता नर्मीकृता श्रावका ,
भूयाच्छ्रीजिनदत्तसूरगणभृत्सर्वार्थ कल्पद्रुम ॥१॥

दासानुदासा इव सर्वदेवा, यदीय पादाब्ज तले लुठन्ति ।
मरुस्थली कल्पतरु स जियाद्, युग प्रधानो जिनदत्तसूरि ॥२॥

विक्रम सवत् १०८० मे पाटन की राज सभा मे शास्त्रार्थ द्वारा शिथिलाचारी चैत्यवासियो को परास्त करके खरतर विरुद प्राप्त करने वाले श्री जिनेश्वरसूरि पट्टालङ्कार, नवाङ्गी टीकाकार श्री अभयदेवसूरि पट्टालङ्कार, श्री जिनवल्लभसूरि पट्टालङ्कार एक लाख तीस हजार अजैनो को जैन बनाने वाले महान शासन प्रभावक जगम युगप्रधान दादाजी श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज एक युगपुरुष हुए हैं।

आपका जन्म गुजरात के धोलका नगर मे हुबड जाति के सेठ वाछिगसा मन्त्री की भार्या वाहडदेवी की कुक्षि से सवत ११३२ मे हुआ था। ९ वर्ष की अल्पायु स ११४१ मे इन्होने श्री धर्मदेव गणि के पास दीक्षा अङ्गीकार करली और सोमचन्द्र मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ ही वर्षो मे शास्त्रो का अध्ययन करके महान् गीतार्थ हुए।

उन दिनो पश्चिम भारत मे चैत्य वासियो का प्राबल्य था। मुनि सोमचन्द्र ने पश्चिम भारत के प्रधान केन्द्रो मे जाकर चैत्यवासियो को परास्त कर जो अनुकरणीय कार्य किया, इसका प्रभाव वृद्धजनो पर काफी पडा।

समस्त जैन सघ ने अनुभव किया कि इस मुनि मे विद्वत्ता के साथ समाज को सचालित करने की पूर्ण क्षमता है। इस भावना से प्रेरित हो विक्रम सवत् ११६९ वैशाख वदी छट को चित्तौड मे विराट मानव मेदिनी के समक्ष उत्तारदायित्वपूर्ण आचार्य पद देने के लिए श्री देवभद्रसूरिजी से भी विनती की। उन्होने शुभ मुहूर्त्त मे आचार्य पद पर इन्हे अधिष्ठित कर श्री जिनदत्तसूरि नाम से घोषित किया। अपने उत्कृष्ट चारित्र के प्रभाव से शाकम्भरी के अरुणो राजराना एव त्रिभुवनगिरि के कुमारपाल आदि चार नरेशो को प्रबुद्ध किया।

आचार्य महाराज का प्रभाव राजस्थान, गुजरात एव समस्त सिंध प्रान्त मे था। सूरिजी महाराज के जीवन मे यो तो कई घटनाएँ ऐसी घटित हुई हैं, जिनसे हम प्ररणा प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ मैं केवल एक ही प्रसग का उल्लेख उचित समझता हूँ। वह है भी सामयिक; सूरिजी ने सच्चे अर्थों मे श्रमण सस्कृति को आदर्श माना था।

इस महान आचार्य ने जैन शासन की अमूल्य सेवा करके जैन शासन को उज्ज्वल किया है और इस बीसवी शताब्दी मे भी जो कार्य कठिन प्रतीत होता है ऐसे शुद्धि के कार्य को आज से साढे आठ सौ वर्ष पहिले के जमाने मे कर दिखाया था। अपनी महान् चमत्कारी शक्ति द्वारा ब्राह्मण, क्षत्री और माहेश्वरी आदि अजैन भाइयो को प्रतिबोध देकर जैनधर्मी बनाया। यही नही उन्हे जैनियो के सम्पूर्ण अधिकार दिलवाकर ओसवाल जाति मे दूध पानी की तरह मिला दिया। उनकी सख्या सैकडो नही, हजारो नही वरन्च एक लाख तीस हजार थी। उन्हे जैनधर्म मे दिक्षित कर, समकक्षता का जो उदार परिचय दिया वह आज भी, यदि हम सच्चे अर्थो मे जैन हैं एव जनता का नैतिक स्तर जैन साहित्य के आदर्शानुसार ऊँचा उठाना चाहते हैं, तो कम अनुकरणीय नही है। बल्कि स्पष्ट शब्दो मे कहा जाय तो जब प्रतिकूल परिस्थिति मे आचार्य महाराज ने इतना बडा सास्कृतिक कार्य कर डाला तो क्या सभी दृष्टि से उपयुक्त आज की अनुकूल परिस्थिति मे हम अधिक सरलतापूर्वक यह कार्य नही कर सकते हैं? जातिगत ऊँचनीच की निम्न भावनाओ को छोडना होगा। आज के जैन समाज के द्वारा अजैनो को प्रभावित करने का प्रयास कही नही हो रहा है परन्तु खुद ही व्यवहारिक जीवन तक मे जैन सस्कृति के उदात्त तत्वो को नही उतार पा रहे हैं। आज भी एकान्तिक प्राचीनता का मोह हमारी प्रगति मे बाधा पहुँचा रहा है। विशुद्ध, सास्कृतिक तत्व भी रुढियो के पर्दो मे ढक गया है जिन्हे फाडकर जब तक हम नही फेक देगे तब तक हमारी जाति प्रगति के प्रशस्त पथ का अनुसरण नही कर सकती। बिना प्रगति के सस्कृति का अस्तित्व असम्भव है। आचार्य महाराज का सम्पूर्ण जीवन हमे इन्ही बातो की ओर इगित करता है।

जिनके चारित्र और तप के प्रभाव से ५२ वीर, ६४ योगिनि और सिन्ध देश के ५ पीर उनकी आज्ञा पालन करने मे अपना अहोभाग्य समझते थे, उस महापुरुष ने सात राजाओ को प्रतिबोध देकर जैन धर्म के विजय का डका बजाया था। साथ ही इनकी साहित्य सेवा भी स्मरणीय है। आचार्य महाराज के साहित्य को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है स्तुति, औपदेशिक एव प्रकीर्णक। स्तुतिपरक ग्रथ रचनाओ मे गणधर सार्धशतक अत्यन्त उच्च कोटि का ग्रथ है, जिसका महत्व गुजरात के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही अधिक है। यदि विस्मरण न होता तो गुर्जर भूमि के लिए 'गुज्जरात्ता' शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग आपने ही इस ग्रथ मे किया है। औपदेशिक साहित्य मानव सस्कृति

के उत्थान मे मूल्यवान सहयोग देना है क्योकि सामान्य मनुष्य को इनसे अपना जीवन स्तर उच्चकोटि मे लाने की अद्भुत प्रेरणाएँ मिलती हैं। महापुरुषो द्वारा कहे गए उपदेश उनके कोमल हृदय पर अपना स्थायी स्थान प्राप्त कर लेते हैं। 'सवि जीव करू शासन रसी ऐसी भाव दया मन उल्लसी' उल्लेख के सिद्धान्त का साक्षात्कार आपके साहित्य मे होता है। आपका औपदेशिक साहित्य ही एक स्वर से इस प्रकार की विचार-धारा प्रभावित करता है जिसकी तुलना हरिभद्रसूरिजी महाराज के सम्बोध प्रकरण के वाक्यो से सरलतापूर्वक की जा सकती है।

चरित्रनायक और अपभ्रंश भाषा

श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज ने संस्कृत और प्राकृत भाषाओ मे अपने निज ग्रंथो की रचनाएँ की हैं वे केवल विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण नही परन्तु तत्कालीन साहित्य और भाषा विज्ञान के इतिहास की दृष्टि से भी बहुत ही मूल्यवान हैं।

प्रत्येक समय जैन साहित्य के रचयिताओ ने लोकभाषा का समादर किया है। अप-भ्रंश भाषा भी एक समय मे भारत की उन्नतिशील एव प्रधान भाषा मानी जाती थी। उच्च श्रेणी के विद्वान इस भाषा मे रचना करने से अपने को गौरवान्वित समझते थे। परन्तु हमे कहते बडा हर्ष हो रहा है कि इस भाषा के साहित्य भण्डार को जितना जैन श्रमणो ने परिपुष्ट किया है उसका शतांश भी जैनेतर विद्वानो मे नही।

आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिजी का स्थान हिन्दी और अपभ्रंश भाषा के इति-हास मे महत्वपूर्ण है। आपने इस भाषा मे रचना कर हिन्दी भाषा विज्ञान के लिए अध्ययन की सुन्दर से सुन्दर सामग्री प्रदान की है।

भारतवर्ष मे समय समय पर कई जैनाचार्यो ने सांस्कृतिक चेतना द्वारा जन कल्याण के लिए अथक परिश्रम किया और जन जागरण मे योग दिया है। परम प्रभावक आचार्य श्री जिनदत्त सूरिजी महाराज ऐसे ही युग प्रवर्त्तक आचार्यो की कोटि मे आते हैं। आपकी अनुपम सेवाएँ युगो तक चिरस्मरणीय रहेगी।

इति।

दिग दिगन्त मे व्याप्त आपकी गौरव महिमा,
है अकथ्य शत शेष शारदा से तव महिमा।
यावच्चन्द्र—दिवाकर अक्षय कीर्ति रहेगी,
जगतीतल पर कथा आपकी अमर रहेगी॥

ये सिन्धु, रावि, चिनाव, सतलज और झेलम नाम की।
हैं बह रही नदियाँ सरस ज्ञानेन्द्रियाँ पंजाब की॥
ये पाँच मुस्लिम पीर उनके तीर रहते थे मुदा।
हैं मुख्य रहते विषय दुर्जय इन्द्रियो मे ज्यो सदा॥

× × ×

करते उपद्रव हिन्दु साधु-सन्त लोगो के प्रति।
क्या म्लेच्छ जीवो मे सहज देखी कही करुणामति?
वह थी शताब्दी बारवी जब जैन शासन गगन मे।
ज्योतिर्धरो की ज्योतियाँ फैली हुई थी भुवन मे॥

× × ×

योगीन्द्र युग प्रधान श्रीजिनदत्तसूरीश्वर महा।
शासन प्रभावक पुण्य जीवन दिव्य दादा के अहा?॥
जिनमे तपोबल योगवल वर ब्रह्म बल आदर्श था।
अतएव भारतवर्ष मे तब जैन का उत्कर्ष था॥

× × ×

पजाब को गुरुदेव ने जब स्वपन से पावन किया।
उपसर्ग भी जल को बढा तब पाँच पीरो ने किया॥
ऐसे अकारण दुश्मनो से लोक तीनो हैं भरे।
पर क्या कही कर्त्तव्य करने से सुजन भी हैं डरे॥

× × ×

अह! देख के अतिशायिनी गुरु शाति को वे पीर भी।
बस शान्त हो सविनय स्वय करने लगे सेवा सभी॥
पारस फरस लोहा बने ससार मे सुवटन सही।
सत्सग की महिमा सुखद चिन्तामणि थे कम नही॥

× × ×

देवोपसर्ग विद्रोप से जब पचदत जल बढ गया।
आश्रित मनुज तारक तभी गुरुदेव कम्बल हो गया॥
क्या प्रभावक पूज्य पुरुषो से प्रतिष्ठित मूर्तियाँ।
भव्य जीवो को न देती दिव्य जीवन फूर्तियाँ?॥

× × ×

की एक बार कुचाल भैरव खोटिया ने भी पर।
वह सका न जरा परम गुरुदेव का तेजो भाग।।
किंकर बना आखिर वही, क्या सूर्य की स्पर्द्धा कहीं।
जुगनु विचारा कर सकेगा? प्रकृति कहती है नहीं।।

× × ×

भगवान् जिन हरि पूज्य श्रीविभुवीर शासन में हुए।
गुरुदेव के सुकवीन्द्र कीर्तित भाव ये अद्भुत हुए।।
'नथमल' सुचित्रित पट्ट में प्रत्यक्ष गुणसागर।
जिनदत्त सूरीश्वर मह वन्दे पर योगीश्वरम्।।

भगवान प्रेममय, करुणामय एवम् मगलमय, ज्ञानमय व सर्वमय हैं। वो ही एक मात्र शरण भूत हैं।

परम करुणामय परमात्मा का ही आपको शरण हो! जगत के सर्व जीवों के प्रति प्रेम रखना सीखने मे ही परमात्मा की पहिचान है।

सर्व के प्रति अपने मे रहा हुआ पूर्ण प्रेम व पूर्ण ज्ञान प्रगट हो।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्रीमद् हेमचन्द्रसूरिश्वरजी महाराज

(वि० स० ११५० से १२२९)

मूल लेखक पूज्य मुनिराज श्री जबूविजयजी

हिन्दी अनुवादक–प्रतापचद अार शाह, गोहीली (जि० सिरोही, राजस्थान)

जैन शासन के महान ज्योतिघर, कलिकालसर्वज्ञ, आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिश्वरजी महाराज के पुनीत नाम से जैन प्रजा मे भाग्य से ही कोई अपरिचित होगा। इतना ही नही परन्तु विश्व के किसी भी कोने मे बसे हुए सस्कृत साहित्य के अभ्यासी तमाम जैन जैनेतर विद्वानो मे भी उनका नाम अत्यत प्रसिद्ध है। भारतीय सस्कृति के निर्माण मे और भारतीय साहित्य मे उन्होंने जो अपना अमूल्य और महान योगदान दिया है उसके प्रति विश्व का सर्व सुज्ञ विद्वान वर्ग अत्यत आदर और पूज्य भाव रखता है।

सर्व धर्मों के साहित्य का मौलिक और सपूर्ण ज्ञान एव साहित्य की सर्व शाखाओं मे उनकी पारगतता उनके प्रत्येक साहित्य मे प्रगट होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि वे कलिकालसर्वज्ञ थे, और ज्ञान रूप समुद्र को जाने पी चुके थे, वे मात्र साहित्यकार ही नही थे बल्कि एक महान योगीश्वर भी थे। सच कहे तो उन्हे प्राप्त प्रत्येक क्षेत्र (विषय) मे सफलता का बीज उनकी योग साधना के प्रभाव मे ही रहा हुआ है। तदुपरात वे एक महान और पवित्र राज्य-द्वारी पुरुष भी थे, समग्र प्राणी मात्र की हित दृष्टि को आदर्श मान कर उन्होने राजनीति मे अहिंसा के प्रचार को महत्वपूर्ण क्रियान्वयन किया है, जो उनके जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों मे से पुनीत कार्य है, उनके जीवन की विविध अलौकिक शक्तियाँ और सिद्धियाँ आज भी विद्वानो को आश्चर्य-मुग्ध कर देती हैं।

महर्षि हेमचद्र सूरि के प्रति जगत के निष्पक्ष विद्वानो को कितना आदर है एव उनके भारत पर किए उपकारो का कितना मूल्य है यह वास्तव मे श्री के अेम पाणिकर जैसे सस्कृत साहित्य के महान विद्वान एव इतिहासवेत्ता के लेख से भी व्यक्त होता है। श्री कवलम माधव पाणिकर, जो बीकानेर राज्य के भूतपूर्व मत्री व वर्तमान मे भारत सरकार द्वारा चीन मे राजदूत के पद पर सुशोभित हैं, सस्कृत साहित्य के उच्चकोटि के अभ्यासी व विद्वान हैं। इतिहास मे तो वे निष्णात ही गिने जाते हैं तदुपरात पत्रकारिता एव राजनीति के सफल व्यक्ति हैं और अच्छा नाम कमाया है। उन्होने अल्पकाल पूर्व—

A Survey of Indian History नामक इतिहास का ग्रन्थ लिखा है। यह पुस्तक इतनी सुन्दर है कि अभी वह I.A S की परीक्षा मे इतिहास के ग्रन्थ के रूप मे अनिवार्य नियुक्त है। इस पुस्तक मे राजाओ के जन्ममरण, राज्यारोहण या युद्ध की तवारीखो या मितियो का वर्णन नही है, किन्तु अन्तिम पाँच हजार वर्षो मे भारत के किस प्रकार धार्मिक, राजनीतिक व आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से उत्थान एव पतन कैसे हुआ, उनके पीछे किन-किन बलो ने कैसा कार्य किया है एवम् भारतीय संस्कृति बहुत से आघात प्रत्याघातो को सहने पर भी कैसे जीवन्त रही है—इसमे उसका बहुत ही युक्तियुक्त वर्णन है। इतिहास के विषय मे यह पुस्तक अपने अनोखे ढग की है और अत्यन्त आदरणीय है। इस ग्रन्थ के 'इस्लाम और भारत' (Islam and India) नाम के प्रकरण मे श्री के एम पाणिकर आचार्य हेमचद सूरि के भारतवर्ष के प्रति किए हुए उपकारो के सम्बन्ध मे आदरपूर्ण शब्दो मे लिख रहे हैं।

('In fact due to crisis brought about by Islam religion and literature tended to become less the monopoly of the learned and more and more a cause of the common people

It would however, be unture to say that Sanskrit literature ceased to be cultivated We have in Gujrat the great resurgence of Sanskrit associated with Hemchandrasuri and the magnificent and learned court of Virshawala whose minister Vastupala, himself a poet of imminence, revived the traditions of Bhoja in the west ... . unconnected with the influence of Islam but contemporarious with it is the great revival of Jainism. The religion of Virdhaman had been eclipsed for long due to success of Buddhism. But from the Hathigumpha inscription of Kharvela we know that the Kalling monarch was a follower of the Tirthankaras. It seems to have bad also a considerable vogue in the south in the first six centuries of the christian era as we know from pallav records and South Indian literature. In Gujrat it had at all times a vigorous, if restricted, life In the twelth century, however, when Kumarpala comes to power it suddenly rises into prominence An Acharya of outstanding ability, scholarship and wide vision, comparable only to Shanker, arose among them Hemchandrasuri ascetic, biographer, epic writer and teacher is indeed a unique personality, one of the greatest that India has produced His main contribution to Jainism may be generally described as a successful attempt to combine the Aryan culture with Jain thought. In his lives of Great men, the Purusha Charit an epic in many volumes Hemchandra popularised in a Jain garh the entire mythology of the Hindus The stories of the Mahabharat and

the Ramayana and the great traditions of the past were all embodied in this monumental work, which earned for its author the title of Kalikala Vyasa Hemchandra is one of the makers of modern Indian mind and takes his place with Valmiki, Vyasa and Shankara.

Hemchandra wrote in Sanskrit and gave impetus to language, which was no doubt responsible for the great amount of Sanskrit literature produced at this time in Gujrat. Balachandrasuri (Vasant Vilas 1296), Yasapala, the author of Maha Maha Vijaya, Ramchandrasuri (Nala Vilasa) Vastupala himself (Narnarayaniya) to mention but a few are among the prominent Jain authors of the thirteenth Century who contributed to the richness of Sanskrit Jainism after Hemchandra took its place as a great virtue of Sanskrit culture

—(A survey of Indian History, P 164-165)

भारतवर्ष मे मुस्लिम धर्म के आने से जो सकटकालीन स्थिति उत्पन्न हुई, उसका एक परिणाम यह हुआ कि धर्म और साहित्य विद्वान् मनुष्यो के ठेके की चीज न रह कर अधिकाधिक आम जनता के विषय बनने लगे थे।

ऐसा होने पर भी सस्कृत साहित्य की परपरा रुक चुकी थी ऐसा कहना असत्य नही होगा। श्री हेमचन्द्रसूरि और राजा वीरधवल की श्रेष्ठ एवम् विद्वान राज सभा के साथ सकलित सस्कृत साहित्य का महान् पुनरुद्धार दृष्टिगत होता है। राजा वीरधवल के मन्त्री वस्तुपाल ने जो स्वय सस्कृत के एक नामाकित कवि थे भोजराजा की विनष्ट परम्परा को पश्चिम मे पुन सजीवित किया था।

हालाँकि मुस्लिम धर्म के असर के साथ कुछ सबध नही है, तो भी मुस्लिम धर्म के प्रवेश के साथ जैनधर्म का भी महान उदय हुआ था। बौद्ध धर्म के उदय से भगवान महावीर का धर्म बहुत समय तक आच्छादित था किन्तु उडीसा की हस्ती गुफा के राजा खारवेल के शिलालेखो से हम जान सकते हैं कि कलिग महाराजा खारवेल तीर्थंकरो के अनुयायी थे। ईस्वी सन् के आरम्भ से छ शताब्दियो मे दक्षिण भारत मे भी जैन धर्म बडे प्रमाण मे प्रचलित था। वह भी आप पल्लवो के इतिहास व दक्षिण भारत के साहित्यो से जान सकते हैं। गुजरात मे जैन धर्म मर्यादित स्वरूप मे भी सदा बलवान रहा है, फिर भी बारहवी शताब्दी मे एकाएक अभ्युदय होने लगा। असाधारण शक्ति वाले विद्वत्ता एव दीर्घ दृष्टिधारी शकराचार्य के समकक्ष आचार्य हेमचन्द्रसूरि जैनो को प्रकाश मे लाए। श्री हेमचन्द्रसूरि योगी (महर्षि) थे, शब्द शास्त्र के निर्माता थे, वे महान् कवि थे, धर्मोप देशक भी थे, उनका व्यक्तित्व सचमुच अद्वितीय था। भारतवर्ष ने जिन महान् पुरुषो को जन्म दिया है उनमे से श्री हेमचन्द्रसूरि भी एक हैं।

आर्य सस्कृति के साथ जैन विचारो के समन्वय साधने का आपने जो अत्यन्त सफल प्रयत्न किया है उसे 'जैन धर्म के उनके मुख्य योग दान' के रूप मे हम वर्णन कर सकते हैं। त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र जो बहुत विभागो मे विभाजित एक महान काव्य है, उसमे श्री हेमचन्द्रसूरि ने हिदुओ की प्राचीन कहानियो को जैन स्वरूप मे अत्यन्त रोचक शैली मे प्रस्तुत की है। महाभारत व रामायण की कथाओ को एवम् भूतकाल की महान परपराओ को उनके स्मरणीय ग्रन्थ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र मे, जो उन्होने गूथ लिया है, उसीसे सचमुच कलिकालसर्वज्ञ का विरुद प्राप्त किया था। आचार्य हेमचन्द्रसूरि वर्तमानकालीन भारतीय मानस के निर्माताओ मे से एक हैं और (भारतीय इतिहास मे) उनका स्थान वाल्मीकि (रामायण के कर्ता) व्यास (महाभारत रचयिता) व शकराचार्य जैसा है।

श्री हेमचन्द्रसूरि ने सस्कृत भाषा मे साहित्य का निर्माण किया है और इस काल मे गुजरात मे जो विपुल प्रमाण मे सस्कृत साहित्य रचा गया है, वह सब श्री हेमचन्द्रसूरि ने जो सस्कृत भाषा मे प्राण फूका था उसी के आभारी हैं। इसमे सशय को स्थान नहीं है।

बालचन्द्र सूरि (वसन्त तिलका के कर्ता १२९६) यशपाल महामोहविजय (मोह पराजय के कर्ता) रामचन्द्रसूरि (नलविलास के कर्ता) तथा वस्तुपाल मन्त्री (नरनारायणीय के कर्ता) तेरहवी शताब्दी के महान ग्रन्थकार हैं। इन्होने सस्कृत भाषा की समृद्धि मे बहुत बडा योग दान दिया है और वास्तव मे हेमचन्द्राचार्य के बाद जैन धर्म ने सस्कृत सस्कृति के महा वाहन के रूप मे स्थान ग्रहण किया है।

ऊपर के लेख से हम देख सकते हैं कि नामांकित जैनेतर विद्वान भी आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि के प्रति कितना बहुमान रखते हैं। देश विदेशो के बहुत बडे बडे विद्वानो ने उनकी मुक्त कठ से प्रशसा की है व निष्पक्ष विद्वान उनके नाम का गुणगान करते थकते नही हैं।

यह तो श्री हेमचन्द्र सूरि की ही बात हुई है परन्तु व्यापक दृष्टि से देखे तो सपूर्ण जैन वाङ्मय ही ऐसी वस्तु है कि भारतीय सस्कृति के निर्माण मे उसका बहुत बडा सहयोग है। भारत के समाज विकास एव लोक प्रवृत्ति आदि अनेक विषयो मे उसकी गहरी छाप देखने मे आती है कारण कि अतीत काल मे जैन धर्म भारत के किसी छोटे अश तक ही मर्यादित नही था किन्तु पूर्व मे बगाल से लगाकर पश्चिम मे गधार (आज का अफगानिस्तान) और उत्तर मे कश्मीर से लगाकर दक्षिण मे कन्या कुमारी के छोर तक भारतवर्ष की प्रजा मे चारो ओर व्यापक रूप मे आचरित धर्म था।

जैन धर्म का वाङ्मय आज भी बहुत खूब प्रमाण मे अनेकानेक भडारो मे सुरक्षित अवस्था मे प्राप्त होता है, देश विदेशो के जिन जिन विद्वानो ने भारतीय प्राचीन स्वरूप का अध्ययन, अवगाहन एवम् सशोधन किया है, उन्होने इस वास्तविकता को स्वीकार

किया है कि भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, स्थापत्य, चित्रकला, रीति-रिवाज आदि जानने के लिए अनमोल सामग्री जैन वाङ्गमय मे सगृहीत है और उसके बिना प्राचीन भारत के सबध मे ज्ञान अपूर्ण या त्रुटिमय ही रहेगा।

तदुपरात विशाल जैन वाङ्गमय मे कथाओ का भी बहुत बडा भडार भरा हुआ है। ये कथाएँ आध्यात्मिक, धार्मिक एवम् नीतिबोधक मर्मवेधक पद्धति से लिखी होने से आज के युग की दृष्टि से भी बहुत ही उपयोगी व लाभदायक हैं। उसमे लोकरजन व लोक-कल्याण करने की बहुत बडी शक्ति समाविष्ट है। फिर भी असतोष की बात यह है कि बाह्य जगत का बहुत अल्प भाग ही इसके परिचय मे आया है। उनको आकर्षित कर परिचय कराने के लिए प्रयत्न करने की उपेक्षा कर रहे हैं, तो भी इतनी बात तो अवश्य है कि जगत मे उसके अनेक जिज्ञासु व पिपासु भी बसे हुए हैं। तृषा शाँत करने के लिए सरोवर कहाँ है इसकी उन्हे खबर नही है। अब तो सरोवर को प्यासे के पास जाना होगा, एक वार उनकी प्यास बुझेगी तो अपने आप सत्य ज्ञान के पिपासु इस ओर आगे बढ़ेगे।

इस दृष्टि से हमे सशोधन, प्रकाशन, सपादन, प्रस्ताव लेखन, नूतन साहित्य निर्माण आदि करके जगत को यथासभव पहुचाना चाहिए। ऐसा करेगे तभी अपनी सर्व कल्याण-कर जैन सस्कृति जगत के उद्धार मे बहुत बडा योगदान दे सकेगी, अन्यथा नही।

—जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १७, अक १ मे से साभार उद्धृत

वीर बनो और ललकार कर कहो कि मै भारतीय हूँ। भारत मेरा प्राण है, मेरा जीवन है। प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। अपढ भारतीय, विधर्मी भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय, नीची जाति का भारतीय सब मेरे भाई हैं। उनकी प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा है, उनका गौरव मेरा गौरव है। —स्वामी विवेकानन्द

जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरिजी

लें० श्री शशिभूषण शास्त्री

(वि० स० १५६६–१६''')

जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र कहा करते थे—'देश-कल्याण का आधार अधिकारियो अर्थात् सत्ताधारियो की अनुकूलता पर अवलम्बित है, इसलिए उनका विश्वास था लाखो मनुष्यों' को उपदेश देने से जितना लाभ होता है उतना ही लाभ एक राजा को प्रतिबोध देने से हो सकता है। इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखने से मालूम होता है कि राजाओ को प्रतिबोध देने मे मुख्यत· जैनाचार्य ही सफल मनोरथ हुए हैं। इसका विशेष कारण था—उनका सचरित्र और उनकी विद्वता। कौन इतिहासकार नही जानता है कि सम्पति राजा को प्रतिबोध देने का सम्मान आर्य सुहस्ति ने, आम राजा को प्रतिबोध करने का सम्मान बप्प भट्टी ने, हस्ति कुण्ड के राजाओ को प्रतिबोध देने का सत्कार वासुदेवाचार्य ने, वनराज को प्रतिबोध देने का सम्मान शीलगुणसूरि ने और सिद्धराज तथा कुमारपाल को प्रतिबोध देने का सम्मान हेमचन्द्राचार्य ने प्राप्त किया था। ये और दूसरे ऐसे कितने ही जैनाचार्य हो गए हैं जिन्होने राजा महाराजाओ को प्रतिबोध देकर देश मे शान्ति और आर्य धर्म के प्रधान सिद्धान्त—अहिंसा का प्रचार करने मे सफलता लाभ की थी। इतना ही क्यो? महमूद तुगलक, फिरोजशाह अलाउद्दीन और औरङ्गजेब के समान क्रूर हृदयी व निष्ठुर मुसलमान बादशाहो पर भी जिनसिह सूरि, देवसूरि और रत्नशेखर सूरि के समान जैनाचार्यो ने कितने ही अशो मे प्रभाव डाल कर धर्म तथा देश की सेवा की थी।

चरित्रनायक श्री हरिविजयसूरि भी उन्ही आचार्यों मे से एक थे जिन्होने अकबर के दरबार मे रह कर सम्राट से परिचय कर देश के अभ्युदय मे बडा योग दिया था।

श्री हीरविजयसूरिजी का जन्म गुजरात प्रान्त के पालनपुर नगर मे विक्रम सवत् १५८३ की मार्गशीर्ष शुक्ला ६ सोमवार के दिन ओसवाल जातिभूषण कुराशाह की धर्म-पत्नी नाथादेवी के कुक्षि से हुआ था। सवत १५९६ की कार्तिक वदि २ के दिन १३ वर्ष की आल्पायु मे श्रीविजयदानसूरिजी महाराज के पास पाटन मे दीक्षा अगीकार की। स० १६०७ में आपको पण्डित और १६०८ में वाचक पदवी दी गई। सवत १६१० मे आपको सिरोही मे आचार्य पद से विभूषित किया गया जिसकी स्मृति को बनाए रखने हेतु श्री सघ सिरोही ने अपने नवनिर्मित विशाल उपाश्रय का नाम इन्ही के नाम पर रखा है।

देश मे भ्रमण करते हुए तथा जीव दया का उपदेश देते हुए मुनि महाराज का यशः सौरभ दिग्दिगन्तो मे फैल गया। भारत के तत्कालीन सम्राट अकबर ने भी उनकी गुणगाथा सुनी और उनको बुलाया। मुनि महाराज की गौरवगाथा किस प्रकार अकबर के कर्ण-गोचर हुई इसकी भी एक कहानी 'जगद्गुरु काव्य' मे लिखी है।

एक वार अकबर शाही महल के झरोखे मे बैठे हुए नगर की शोभा देख रहे थे। उस समय उसको बाजे बजते हुए सुनाई दिए। बाजो की ध्वनि को सुनकर उसने अपने नौकर से पूछा—'यह धूम क्या है?' उसने उत्तर दिया—'चम्पा नाम की एक श्राविका ने छ मास का उपवास किया है।'

'छ महीने का उपवास' इस वाक्य को सुन कर अकबर को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—जब मुसलमान लोग केवल एक महीने के रोजे करते हैं उनमे रात्रि के समय आवश्यकतानुसार भोजन खा लेने पर भी कितना कष्ट प्रतीत होता है, तब छ महीने तक लगातार कुछ न खाकर जीना अति कठिन है।

एक दिन बादशाह ने बहुत बडा जुलूस देखा। अनेक प्रकार के बाजे और हजारो मनुष्यो की भीड उसके दृष्टिगत हुई। उसने टोडरमल से पूछा—'ये बाजे क्यो बज रहे हैं? इतनी भीड क्यो हुई है!' टोडरमल ने उत्तर दिया—'सरकार! जिस औरत ने छ महीने के उपवास प्रारम्भ किए थे वे आज पूरे हो गए हैं। उसी की खुशी मे श्रावको ने आज जुलूस निकाला है।'

बादशाह ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया—'क्या वह औरत भी इस जुलूस मे शामिल है?'

टोडरमल ने उत्तर दिया—'हाँ श्रीमान्!'

दोनो मे इस प्रकार बाते हो रही थी इतने मे वरघोडा किले के सामने आ पहुँचा। बादशाह ने विवेकी मनुष्यो को भेजकर चम्पा को बडे आदर के साथ अपने पास मे बुलाया और नम्रता से पूछा—'माता, आपने कितने उपवास किए और कैसे किए?'

चम्पा ने उत्तर दिया—'पृथ्वीनाथ! मैंने छ महीने तक अनाज बिल्कुल नही खाया। सिर्फ जब कभी बहुत प्यास लगती है तब दिन के समय थोडासा गरम पानी पी लेती थी। इस तरह आज मेरा छ मासी तप पूरा हुआ है।'

बादशाह ने आश्चर्य से पूछा—'तुमने इतने उपवास कैसे किए?'

चम्पा ने दृढ श्रद्धा के साथ कहा—'मैं अपने गुरु हीरविजयसूरि के प्रताप से ही इतने उपवास कर सकी हूँ।'

चम्पा की बाते सुनकर बादशाह को सतोप हुआ। उसने पूछा—'हीरविजयसूरि इस समय कहाँ हैं ?'

चम्पा ने उत्तर दिया—'वे इस समय गुजरात प्रान्त के गन्धार शहर मे है।'

अकबर ने सूरिजी को बुलाने के लिए अहमदाबाद के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमदखाँ के नाम एक फरमान पत्र लिखकर भेजा और उसको आज्ञा दी कि जिन हीरविजयसूरि की कीर्ति और शिक्षा से समस्त उत्तर भारतवर्ष गूज रहा है, उनको शीघ्र यहाँ दरबार मे भेजो।

बादशाह का निमत्रण पाकर सूरिजी ने अपने शिष्यो सहित फतहपुर सीकरी की तरफ प्रयाण किया। मार्ग मे सब छोटे-छोटे राजाओ ने महाराज का अपूर्व सम्मान किया। समस्त भारत पर जिसका एकछत्र राज्य था। अकबर ने ही जब सूरिजी को बडे सत्कार के साथ बुलाया था तो फिर ऐसे महत्वशाली पुरुष को छोटे-छोटे राजाओ ने आदर दिया इसमे तो आश्चर्य की कोई बात तो नही है।

सवत १६३९ के ज्येष्ठ मास मे महाराज फतहपुर सीकरी पहुँचे। अकबर ने अपने प्रधान मन्त्री अबुलफजल को सूरि महाराज के अतिशय सत्कार करने की आज्ञा दी और उसने महाराज से कुरान और खुदा के विपय मे अनेक प्रश्न किए।

बादशाह अपने कार्य से निवृत्त होकर दरबार मे आए और महाराज को बुलाने के लिए एक आदमी भेजा। समाचार मिलते ही सूरिजी अपने कई विद्वान शिष्यो सहित दरबार मे पधारे। बादशाह ने दूर ही से इस साधुमण्डल को आते देख कर अपना सिहासन छोड दिया और सविनय सूरिजी से कुशलमगल पूछा। उसके पश्चात सूरिजी के साथ धार्मिक विषयो पर वार्तालाप करके अकबर को बडा आनन्द हुआ।

महाराज के उच्च विचारो को श्रवण कर अकबर का मन बडा प्रसन्न हुआ और उसने महाराज की विद्वता की भूरि-भूरि प्रशसा की। उसको निश्चय हो गया कि ये असाधारण महापुरुष हैं।

अकबर के पुस्तकालय मे जैन साहित्य की पुस्तकें थी जो उसने किसी महात्मा को भेट करने के लिए रक्खी थी। अकबर ने इससे उत्तम समय कोई अन्य न समझकर मुनि महाराज के सम्मुख वे किताबे रखी और उनसे प्रार्थना की कि वे उन पुस्तको को ग्रहण करे। बादशाह की इस उदारवृत्ति को देखकर सूरिजी को बहुत आनन्द हुआ, परन्तु पुस्तकें लेने से उन्होने इन्कार कर दिया। उन्होने कहा—'हम जितने ग्रन्थ उठा सकते हैं, उतने ही अपने पास रखते हैं, विशेष नही। हमको प्राय जिन ग्रन्थो की आवश्यकता पडती है वे हमे विहारस्थल के भण्डारो मे से मिल जाते हैं। एक बात और भी है। इतनी

पुस्तके यदि हम अपनी कर के रखें तो सम्भव है कि उन पर हमारा ममत्व हो जाय, इसलिए यही श्रेष्ठ है कि, हम ऐसे कारणो से दूर रहें।'

थोडे दिन फतहपुर सीकरी मे रहने के बाद सूरिजी आगरे पधारे और आगरा से चतुर्विध श्री सघ के साथ श्री शौरीपुरजीतीर्थ को वन्दन करने गए। आगरा सघ के निवेदन पर स० १६३९ मे ही श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथजी की प्रतिष्ठा भी अपने ही सानिध्य मे कराई। इस वर्ष का चातुर्मास आगरे मे ही करने का विचार किया। पर्यूषण के दिन निकट आए तब आगरे के श्रावको ने मिलकर विचार किया कि, बादशाह की सूरिजी महाराज पर बहुत भक्ति है, इसलिए महाराज की ओर से यदि पर्यूपणो मे जीवहिंसा बद करने के लिए बादशाह को कहा जाएगा तो बादशाह जरूर बन्द करा देगा। श्रावकों ने सूरिजी से इस विषय की आज्ञा लेकर बादशाह के पास जाकर निवेदन किया 'सूरिजी महाराज ने आपको धर्मलाभ कहालाया है।' सूरिजी का आशीर्वाद सुनकर बादशाह प्रसन्न हुआ और उत्सुकता के साथ पूछने लगा—

'सूरिजी महाराज सकुशल हैं ? उन्होने मेरे लिए कोई आज्ञा तो नही दी ?' श्रावको ने उत्तर दिया—

'महाराज बडे आनन्द मे हैं। उन्होने अनुरोध किया है कि—हमारे पर्यूषणो के पवित्र दिन निकट आ रहे हैं, उनमे कोई मनुष्य किसी जीव की हिंसा न करे तो हमे बडी प्रसन्नता हो।' बादशाह ने आगरे मे यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि आठ दिन तक कोई आदमी किसी भी जीव को न मारे।

चातुर्मास का समय व्यतीत होने पर मुनीश्वर पुनः फतहपुर आए। अपने शहर मे सूरिजी के शुभागमन का समाचार पाकर सम्राट ने फिर उनके दर्शनो से लाभ उठाना चाहा। तत्काल ही उनके दर्शन किए और भक्तिवश होकर हाथी, घोडे, बहुमूल्य रत्नादि की भेट उनके सामने रखी, पर मुनिजी ने कहा—'हे राजन् ! यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो आप मेरे कहने से कैदियो को छोड दे और जितने पक्षी पिजरे मे बन्द कर रक्खे है, उन सबको मुक्त करदे। हमारे पर्यूषणो के पवित्र दिनो मे आपके समस्त राज्य मे कोई भी किसी प्रकार प्राणी हिंसा न करे—ऐसे फरमान लिख कर मुझे देने की उदारता करे।'

अकवर ने सहर्ष स्वीकार किया। कैदी तथा पक्षी मुक्त कर दिए गए और पर्यूषण के आठ दिन ही नही परन्तु उनमे चार दिन और मिलाकर १२ दिन तक जीव-वध न करने के लिए ६ फरमान लिख दिए। आचार्य श्री को 'जगद्गुरु' की उपाधि से भूपित किया और आचार्य श्री के निवेदन पर जैन तीर्थो के लिए भी जैनो के हक मे फरमान लिखकर शहशाह ने उदारता का परिचय दिया।

—श्वे० जैन आगरा के जैनाचार्य अक दि० १-४-५५ के सौजन्य से

चम्पा की बाते सुनकर बादशाह को सतोप हुआ। उसने पूछा—'हीरविजयसूरि उस समय कहाँ हैं ?'

चम्पा ने उत्तर दिया—'वे इस समय गुजरात प्रान्त के गन्धार शहर मे है।'

अकबर ने सूरिजी को बुलाने के लिए अहमदाबाद के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमदखाँ के नाम एक फरमान पत्र लिखकर भेजा और उसको आज्ञा दी कि जिन हीरविजयसूरि की कीर्ति और शिक्षा से समस्त उत्तर भारतवर्ष गूज रहा है, उनको शीघ्र यहाँ दरबार मे भेजो।

बादशाह का निमत्रण पाकर सूरिजी ने अपने शिष्यो सहित फतहपुर सीकरी की तरफ प्रयाण किया। मार्ग मे सब छोटे-छोटे राजाओ ने महाराज का अपूर्व सम्मान किया। समस्त भारत पर जिसका एकछत्र राज्य था। अकबर ने ही जब सूरिजी को बडे सत्कार के साथ बुलाया था तो फिर ऐसे महत्वशाली पुरुप को छोटे-छोटे राजाओ ने आदर दिया इसमे तो आश्चर्य की कोई बात तो नही है।

सवत १६३९ के ज्येष्ठ मास मे महाराज फतहपुर सीकरी पहुँचे। अकबर ने अपने प्रधान मन्त्री अबुलफजल को सूरि महाराज के अतिशय सत्कार करने की आज्ञा दी और उसने महाराज से कुरान और खुदा के विपय मे अनेक प्रश्न किए।

बादशाह अपने कार्य से निवृत्त होकर दरबार मे आए और महाराज को बुलाने के लिए एक आदमी भेजा। समाचार मिलते ही सूरिजी अपने कई विद्वान शिष्यो सहित दरबार मे पधारे। बादशाह ने दूर ही से इस साधुमण्डल को आते देख कर अपना सिहासन छोड दिया और सविनय सूरिजी से कुशलमगल पूछा। उसके पश्चात सूरिजी के साथ धार्मिक विषयो पर वार्तालाप करके अकबर को बडा आनन्द हुआ।

महाराज के उच्च विचारो को श्रवण कर अकबर का मन बडा प्रसन्न हुआ और उसने महाराज की विद्वता की भूरि-भूरि प्रशसा की। उसको निश्चय हो गया कि ये असाधारण महापुरुष हैं।

अकबर के पुस्तकालय मे जैन साहित्य की पुस्तकें थी जो उसने किसी महात्मा को भेट करने के लिए रक्खी थी। अकबर ने इससे उत्तम समय कोई अन्य न समझकर मुनि महाराज के सम्मुख वे किताबे रखी और उनसे प्रार्थना की कि वे उन पुस्तको को ग्रहण करे। बादशाह की इस उदारवृत्ति को देखकर सूरिजी को बहुत आनन्द हुआ, परन्तु पुस्तकें लेने से उन्होने इन्कार कर दिया। उन्होने कहा—'हम जितने ग्रन्थ उठा सकते हैं, उतने ही अपने पास रखते हैं, विशेष नही। हमको प्राय. जिन ग्रन्थो की आवश्यकता पडती है वे हमे विहारस्थल के भण्डारो मे से मिल जाते हैं। एक बात और भी है। इतनी

गच्छ का सुधार करने के लिये गच्छनायक को ही सर्व प्रथम क्रियाउद्धार करना अनिवार्य है। शुद्ध चारित्र पालन करने से ही इष्ट ध्येय की सिद्धि हो सकती है इत्यादि विचार करके सम्वत १६१४ (गुजराती स० १६१३) मे बीकानेर मे क्रियोद्धार किया। इस अवसर पर मन्त्री सग्रामसिह बच्छावत ने बहुतसा धन व्यय करके उत्सव किया। ३०० गृही यतियो मे से १६ ने सर्वथा परिग्रह त्याग कर आचार्य श्री के साथ ही क्रियोद्धार किया और शेष को साधुवेश से अलग कर उनके मस्तक पर पगडी बधवादी गई। वे अब तक मथेरण गृहस्थ कहलाते हैं। कई महात्मा के नाम से सबोधित किये जाते हैं और कुलगुरु तरीके बही वचा बाचते हैं। यह सुधार कार्य करने मे आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी महाराज को भगीरथ प्रयत्न करना पडा था।

आचार्य श्री ग्रामानुग्राम विहार करते हुये पाटण पधारे और सवत १६१७ का चातुर्मास वही किया। उस समय अपनी विद्वता के बल पर जिन शासन को छिन्न भिन्न होते हुए बचाने का श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वह इन्ही दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को ही है।

पाटण से विहार कर आपने खम्भात, राजनगर, वीसलनगर, बीकानेर, जैसलमेर आदि बडे-बडे नगरो और ग्रामो मे धर्म का प्रचार करते हुए स० १६२६ का चातुर्मास बीकानेर मे किया। स० १६२७ का चातुर्मास महिम किया। यहाँ से विहार कर अपने शिष्य परिवार सहित आगरा नगर मे पधारे। आगरा नगर मे १ महीने का मास-कल्प स्थित करके आप श्रीसघ के साथ श्री शौरीपुरीजी यात्रार्थ पधारे। वहाँ श्री नेमिनाथजी के च्यवन और जन्म कल्याणक से पवित्र होने वाले तीर्थभूमि और मन्दिरो के दर्शन कर सीधे हस्तिनापुरजी पधारे। वहाँ श्री शान्तिनाथ, कुंथूनाथ, अरहनाथ और मल्लिनाथजी के स्तूपो के दर्शन करके वापिस आगरा पधारे। श्री सघ के विशेष आग्रह से स० १६२८ का चातुर्मास १९ ठाणा से आगरा मे ही किया।

पर्यूपण पर्वाराधन के पश्चात आपने एक पत्र 'साभलि नगर' के सघ को दिया था। वह असली पत्र श्री अगरचन्दजी नाहटा के सगह मे मौजूद है। इस पत्र के अनुसार आगरा के शाह लक्ष्मीदासादि (जिनके नाम से आगरा मे सेठ गली बसाई गई थी आज भी उसी नाम से मौजूद है) ने पर्वाराधन बडे उत्साह से कराया था और उसी पत्र मे श्री शौरीपुरजी की यात्रा का वर्णन आया है। स० १६२९ मे दिल्ली के निकटवर्ती रोहतक ग्राम मे आपका चातुर्मास हुआ। इसी प्रकार चारो ओर धर्म की दुदुभि बजाते हुए आपने १६४४ का चातुर्मास खम्भात मे किया। खम्भात से विहार कर अहमदाबाद पधारे, अहमदाबाद से सघपति योगीनाथ और सोमजी के सघ सहित सूरिजी महाराज ने महातीर्थ श्री सिद्धाचलजी की यात्रा की।

दादा श्री जिनचन्द्रसूरिश्वरजी महाराज

(वि स १६०४ से १६७०)

भगवान महावीर की अविच्छिन्न परम्परा मे श्री जिनमाणिक्यसूरिजी महाराज के पट्टालङ्कार चौथे दादाजी श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज का जन्म मारवाड प्रान्त के जोधपुर राज्यान्तर्गत खेतसर नामक एक रमणीय ग्राम मे ओसवाल कुलदीपक रीहड गोत्रीय श्रीवन्त शाह की सुशीला धर्मपत्नी श्रीमती श्रियादेवी की कुक्षि से सवत् १५९५ मे हुआ था। कामदेव के सदृश रूपलावण्य वाला, सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को प्राप्त कर इनके परिवार वालो ने बालक का नाम 'सुलतान कुमार' रक्खा।

विक्रम सवत १६०४ मे खरतरगच्छनायक श्री जिनमाणिक्यसूरिजी महाराज अपने समुदाय के साथ खेतसर ग्राम मे पधारे। उनके उपदेश वचनामृत श्रवण कर सुलतानकुमार के निर्मल हृदय पर भारी असर हुआ। केवल ९ वर्ष की आयुवाला बालक वैराग्य रग मे रग गया। बालक के पूर्व जन्म के सस्कारो ने भी जोर मारा और उसने अपने माता पिता को समझाकर सच्चे सुख देने वाले चारित्र धर्म को अङ्गीकार करने की अनुमति ले ली। गुरुदेव ने भी योग्य देखकर इसे श्रीसघ के सम्मुख दीक्षा दी और इनका नाम सुमतिधीर मुनि प्रसिद्ध किया।

विलक्षण बुद्धि वाले गुरुभक्त श्री सुमतिधीर मुनि अल्पकाल मे ही प्रकाण्ड विद्वान बन गए। सवत् १६१२ मे देराउर से जैसलमेर जाते हुए आसाढ शुक्ला ५ के दिन आचार्य श्री जिनमाणिक्यसूरिजी का स्वर्गवास हो जाने से जब श्री सुमतिधीरजी मुनि २४ ठाणा से जैसलमेर पधारे तब समस्त श्रीसघ और वहाँ के राउल श्री मालदेवजी (जिनका राज्यकाल १६०७ से १६१८ तक था) ने श्री पूज्यजी, श्री गुणप्रभसूरिजी की सम्मति से इन्हे आचार्य पद प्रदान किया। जैसलमेर नरेश की ओर से नन्दी महोत्सव करके आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी नाम देकर इन्हे श्री जिनमाणिक्यसूरिजी के पद पर स्थापित किया।

बीकानेर के मन्त्री सग्रामसिह वच्छावत के आग्रह पर ही आप बीकानेर पधारे। वहाँ का प्राचीन उपाश्रय शिथिलाचारी यतियो द्वारा रोका हुआ देखकर मन्त्रीजी ने अपनी अश्वशाला मे ही इनका चातुर्मास कराया। वह स्थान रागडी चौक मे आजकल बडे उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरिजी गच्छ मे फैले हुए शिथिलाचार को देख कर सहम गए। उन्होने सोचा कि

हुआ। एक दिन थाल मे अशर्फिया (स्वर्णमुद्रा) मगा कर आचार्यजी के सामने रखवाईं। आचार्य श्री ने कहा 'हम साधु हैं, हमे इनका क्या करना है। जैन साधु एक पैसा भी अपने पास नही रखते। आपकी भक्ति अवश्य ही सराहनीय है।' बादशाह बहुत खुश हुआ और जैनाचार्य के विशिष्ट गुणो की सभा मे प्रशसा की।

सूरिजी का उपदेश का अकबर पर अत्यधिक प्रभाव पडा। अहिसा की ओर दिनों-दिन उसकी रुचि बढती गई।

एक दिन मन्त्री कर्मचन्द्र को समाचार मिला कि नौरङ्गखा नामक किसी अधिकारी ने द्वारिका के जैन मन्दिरो का विनाश कर दिया है। यह सुनकर कर्मचन्द्र ने सूरिजी से कहा—'भगवान ! यदि सम्राट को उपदेश देकर तीर्थरक्षा के लिये उपाय न किया गया तो किसी भी समय अन्य तीर्थों का विनाश होते देर न लगेगी' सूरिजी ने भी अवसर पाकर सम्राट को उपदेश दिया और सम्राट से तीर्थो की रक्षा के लिए एक फरमान पत्र लिखवाया और अपनी मोहर लगाकर समस्त जैन तीथो को मत्री करमचन्द्र के अधीन कर दिए।

यह फरमान पत्र इलाही सन् ३६ के सहरपुर महीने मे लिखा गया था और जिसकी एक नकल बीकानेर ज्ञान-भण्डार मे सुरक्षित है।

सूरिजी की वाणी और अहिंसात्मक उपदेश बराबर सुनने से सम्राट का हृदय दया से ओतप्रोत हो गया। प्रति वर्ष आसाढ शुक्ला ९ से १५ तक समस्त जीवो को अभयदान देने के लिए १२ सूबो मे शाही फरमान लिखवा कर भेज दिए गए जिसकी नकल यहाँ उद्धृत करते हैं —

फरमान जलालुद्दीन मोहम्मद बादशाह गाजी—

हुक्काम किराम व जागीरदारान व करोरियान व सायर मुत्सद्दियान मुहिम्मात सूबै मुलतान विदानन्द।

'कि चू हमारी तवज्जोह खातिर खैरदेश दर आसूदगी जमहूर अनाम बल काफफए जाँदार मशरुफ व मातूफस्त कि तबकात आलम दरमहाद अमनबूदा बफरागे बाल बाइ-बादत हजरत एजिद मुतआल इश्तगाल नुमायद। व कब्लअजी मुरताज खैरअन्देश जैचद-सूर खरतरगच्छ कि वर्फ जे मुलाजिमत हजरते माशरफ इखति सास यरफता हकीकत वखुदा तलबी ओ ब जहूर पैय (व) स्तावूद। ओरा माशगूल मराहिम शाहशाही फरमू-दैय। मुशारत ईले हैं इलतिमास नबू (मू) द कि पेश अजी हीरविजयसूरि सागर शरफ मुलाजिमत दर्यापता वूद। दर हर साल दोवाजदह रोज इस्तदुआ नमूदा वूद की दरा अय्याम दर मुमालिके महरुसा तसतीख जाँदारे ,न शवद। व अहदे पैरामून मुर्ग व माही व अमसोल आ न गरदद। व अजरुय मेहरबानी व जा पखरी मुल्तससे ऊदरजे कबूलयाफ्त।

एक दिन लाहौर की राज्य सभा मे बैठे हुए सम्राट अकबर ने उपस्थित विद्वानों से जैनाचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी की बहुत प्रशसा सुनी। इससे सम्राट को सूरिजी के दर्शन करने और जैन धर्म का विशेष बोध प्राप्त करने के लिये इच्छा हुई। बादशाह ने पूछा 'यह आचार्य महाराज का भक्त शिष्य कौन है, जिससे उनका पता जाना जाय।' तब विद्वान मडली ने कहा—मन्त्री कर्मचन्द्र हैं। बादशाह ने कर्मचन्द्रजी से पूछा—'तुम्हारे गुरुदेव कहा हैं ?' मन्त्री ने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'वे अभी खम्भात म विराजते हैं, किन्तु वृद्धावस्था के कारण इस ग्रीष्म ऋतु मे दूर देश से आने मे उन्हे बहुत कष्ट होगा। वे किसी सवारी पर चढते नही हैं।' तब बादशाह ने कहा 'अगर वे शीघ्र नहीं आ सके तो उनके शिष्य को बुलाने के लिए दो शाही पुरुषो को फौरन भेज दो।'

बादशाह की आज्ञानुसार विनती पत्र सहित दो शाही पुरुष भेजे गए और आचार्य महाराज ने भी वाचक श्री महिमराजजी को अन्य ६ साधुओ के साथ लाहौर भेज दिया। वाचकजी से मिलकर सम्राट बहुत खुश हुआ और इनकी विद्वता देख कर जिनचन्द्रसूरिजी से मिलने की इच्छा और भी बढ गई। मन्त्री कर्मचन्द से कहा कि शिघ्रगामी चतुर शाही पुरुषो को विनती पत्र देकर खम्भात भेजो और अपने गुरुदेव को यहाँ बुलाओ। आमन्त्रण भेजा गया और विक्रम स० १६४८ की फाल्गुन शुक्ला १२ के दिन पुण्ययोग मे अपने ३१ विद्वान शिष्यो के साथ विहार करते हुए गुरुदेव लाहौर पधारे।

नगर के समीप पहुंचने पर कर्मचन्द्र ने बादशाह से अर्ज की कि 'हजूर! आपके निमन्त्रित जैनाचार्य लाहौर के निकट आगए हैं।' बादशाह ने हुक्म दिया कि उनको बडी इज्जत के साथ लाया जाय। सूरिजी का स्वागत करने के लिए सभी प्रतिष्ठित शाही पुरुष आगे गए। बडे आडबर के साथ मत्री कर्मचन्द्र और लाहौर के जैन सघ ने गुरुदेव का पदार्पण स्वागत किया। बादशाह अकबर ने श्री जिनचदसूरिजी से मिलते ही कहा—'आपको खभात से लाहौर तक पैदल आने मे कष्ट तो हुआ ही होगा परन्तु आपकी प्रशसा सुन कर आपसे मिलने की मेरी प्रबल इच्छा थी। यहा पधार कर आपने मुझ पर असीम कृपा की है।'

सूरिजी ने बडे ही मिष्ठ वचनो से उत्तर दिया—'सम्राट! मार्ग-श्रम का तो हमें जरा भी खेद नही है। आपकी धर्म-जिज्ञासा देख कर हमे परम आनन्द हुआ है। सद्धर्म का प्रचार करना हमारा कर्त य है और सर्वत्र विचरते रहना हमारा आचार है।'

गुरु महाराज की शात मुद्रा और मिष्ट वचनो से बादशाह अकबर बडा प्रसन्न हुआ। समय समय पर धर्मगोष्ठी होती और गुरुदेव की अमृतमयी देशना सुन कर अकबर प्रसन्न होता था। गुरुदेव का सम्राट पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा और करुणा का बीज परिपुष्ट

हुआ। एक दिन थाल मे अशर्फिया (स्वर्णमुद्रा) मगा कर आचार्यजी के सामने रखवाईं। आचार्य श्री ने कहा 'हम साधु हैं, हमे इनका क्या करना है। जैन साधु एक पैसा भी अपने पास नही रखते। आपकी भक्ति अवश्य ही सराहनीय है।' बादशाह बहुत खुश हुआ और जैनाचार्य के विशिष्ट गुणो की सभा मे प्रशसा की।

सूरिजी का उपदेश का अकबर पर अत्यधिक प्रभाव पडा। अहिंसा की ओर दिनों-दिन उसकी रुचि बढती गई।

एक दिन मन्त्री कर्मचन्द्र को समाचार मिला कि नौरङ्गखां नामक किसी अधिकारी ने द्वारिका के जैन मन्दिरो का विनाश कर दिया है। यह सुनकर कर्मचन्द्र ने सूरिजी से कहा—'भगवान ! यदि सम्राट को उपदेश देकर तीर्थरक्षा के लिये उपाय न किया गया तो किसी भी समय अन्य तीर्थों का विनाश होते देर न लगेगी' सूरिजी ने भी अवसर पाकर सम्राट को उपदेश दिया और सम्राट से तीर्थो की रक्षा के लिए एक फरमान पत्र लिखवाया और अपनी मोहर लगाकर समस्त जैन तीथो को मत्री करमचन्द्र के अधीन कर दिए।

यह फरमान पत्र इलाही सन् ३६ के सहरपुर महीने मे लिखा गया था और जिसकी एक नकल बीकानेर ज्ञान-भण्डार मे सुरक्षित है।

सूरिजी की वाणी और अहिंसात्मक उपदेश बराबर सुनने से सम्राट का हृदय दया से ओतप्रोत हो गया। प्रति वर्ष आसाढ शुक्ला ९ से १५ तक समस्त जीवो को अभयदान देने के लिए १२ सूबो मे शाही फरमान लिखवा कर भेज दिए गए जिसकी नकल यहाँ उद्धृत करते हैं —

फरमान जलालुद्दीन मोहम्मद बादशाह गाजी—

हुक्काम किराम व जागीरदारान व करोरियान व सायर मुत्सद्दियान मुहिम्मात सूबै मुलतान विदानन्द।

'कि चू हमारी तवज्जोह खातिर खैरदेश दर आसूदगी जमहूर अनाम बल काफफए जाँदार मशरुफ व मातूफस्त कि तबकात आलम दरमहाद अमनबूदा बफरागे बाल बाइ-बादत हजरत एजिद मुतआल इश्तगाल नुमायद। व कब्लअजी मुरताज खैरअन्देश जैचद-सूर खरतरगच्छ कि वफैजे मुलाजिमत हजरते माशरफ इखति सास यरफता हकीकत वखुदा तलवी ओ ब जहूर पैय (व) स्तावूद। ओरा माशगूल मराहिम शाहशाही फरमूदैय। मुशारत ईले हैं इलतिमास नवू (मू) द कि पेश अजी हीरविजयसूरि सागर शरफ मुलाजिमत दर्यापिता वूद। दर हर साल दोवाजदह रोज इस्तदुआ नमूदा वूद की दरा अय्याम दर मुमालिके महरुसा तसतीख जाँदारे ,न शवद। व अहदे पैरामून मुर्ग व माही व अमसोल आ न गरदद। व अजरुय मेहरवानी व जा पखरी मुल्तससे ऊदरजे कवूलयाफ्त।

अकतू (नू) उम्मेदवारम् कि यक हफ्ते दीगरईइवागोय मिसले आ हुक्मे आली शर्फ सुदूर यादव। बिनावर उमूम ग (रा) फत हुक्म फरमुदैम कि अज तारीखे नौमि ता पूरनमासी अज शुक्ल पछ असाढ दर हर साल तसलीख जॉदरे न शवद। व अहदे दर मकाम आजाद जाँदार मोरे नागरदद। व अस्ल व खुद आँनस्त कि चू हजरते बै चू अज बराए आदमी चदी इन्थामतहाय गुनागू मुहय्या करदा अस्त। दर हेच वक्त दर आजार जानवर व शवद। व शिकमे खुदरा गोर हैवानात न साजद। लेकिन वजेहत वाजे मसालह दानायान पेश तजवीज नमूदा अद। दरी विला आचार्य जिनसिंहसूरि उर्फ मानसिंह व अरज अशरफ अकदरा रसानीद की फरमाने के कव्ल अजी वगरह सदर सुदूरयाफ्ता बूद गुमशुदा। बिना बरा मुताबिक मजमून हुमा फरमान मुजद्दद फरमान मरहमत फरमुदैम। मे बायद कि हस्बुल मस्तूल (र) अमल नमदा व तकदीम रसानद। व अज फरमुदह तखल्लुफ व इनहिराफ नबरजद। दरीबाव निहायत एतहमाम व कदगन लाजिम दानिस्ता तगइयुर व तबद्दुल व कवायद आँ राह न निहद। तहरीरन् फीरोज रोज सी व यकुम माह खुरदाद् इलाही सन् ४९।'

(१) 'ब रिसालए मुकर्रबुल हजरत दौलतखाँ दर चौकी (उमदे उमरा)'

(२) 'जुबद तुल आयान राय मनोहर दर नौबत वाकया नवीसी खाजा लालचद'।

हिन्दी-अनुवाद—फरमान अकबर बादशाह गाजी का

'सूबे मुलतान के बड़े बड़े हाकिम, जागीरदार, करोडी और सब मुत्सद्दी (कर्मचारी) जान ले कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यो और जीव जन्तुओ को सुख मिले, जिससे सब लोग अमन चैन मे रह कर परमात्मा की आराधना मे लगे रहे। इससे पहिले शुभचिन्तक तपस्वी (जिनचन्द्र) सूरि खरतर (गच्छ) हमारी सेवा मे रहता था। जब उसकी भगवद् भक्ति प्रकट हुई तब हमने उसको अपनी बडी बादशाही की महरबानियाँ मे मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि 'इससे पहिले हीरविजयसूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल १२ दिन मागे थे, जिनमे बादशाही मुल्को मे कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवो को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अब मैं भी आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय।' इसलिए हमने अपनी आमदया से हुक्म फरमा दिया कि आसाढ शुक्ल पक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल मे कोई जीव न मारा जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सताए। असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भाँति भाँति के पदार्थ उपजाये हैं तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओ का मरघट न बनाए। परन्तु कुछ हेतुओ से अगले बुद्धिमानो ने वैसी तजवीज की है। इन दिनो आचार्य 'जिनसिंह'

उर्फ मानसिंह ने अर्ज कराई कि पहले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है इसलिए हमने उस फरमान के अनुसार नया फरमान इनायत किया है। चाहिए कि जैसा लिख दिया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय। इस विषय मे वहुत बडी कोशिश और ताकीद समझकर इसके नियमो मे उलटफेर न होने दे। दिनाक ३१, खुरदार इलाही सन् ४९। हजरत बादशाह के पास रहने वाले दौलतखाँ को हुकुम पहुचाने से उमदा अमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख्वाजा लालचद के वाकिया (समाचार लिखने की बारी मे लिखा गया।'

[नोट—यह फरमान लखनऊ के वर्तमान श्री पूज्यजी श्री जिन विजयसेनसूरिजी के भण्डार मे सुरक्षित है।] —सम्पादक

सम्राट के अमारी फरमान प्रकाशित करने से अन्य राजाओ पर भी प्रभाव पडा। प्राय सभी ने अपने अपने यहाँ विविध दिनो मे अमारी घोषणा करी। फलस्वरूप असख्य जीवो को सुख शान्ति मिली।

किसी समय सम्राट की सभा मे किसी विद्वान ने जैन धर्म के 'एगस्स सुत्तस्स अनन्तो अत्थो' वाक्य पर उपहास किया। सूरिजी के विद्वान प्रशिष्य श्री समयसुन्दरजी को बुरा लगा और उन्होने इस वाक्य की सार्थकता सिद्ध करने के लिए 'राजानो ददते सौख्य' वाक्य पर व्याकरणसिद्ध 'अस्ट लक्षी ग्रन्थ' रचकर दरबार मे सुनाया। इस अद्भुत ग्रन्थ को सुनकर सम्राट तथा विद्वत् मडली ने भूरि-भूरि प्रशसा की। बादशाह जैन धर्म का विशेष रागी बना और आचार्य महाराज को युग-प्रधान पद से विभूषित किया।

सम्राट अकबर न्यायपरायणता से राज्य करते हुए विक्रम स० १६६२ मिती कार्तिक शुक्ला १४ को कालधर्म को प्राप्त हुए। इनके बाद बादशाह जहाँगीर गद्दीनशीन हुआ। सम्राट जहाँगीर से भी स० १६६९ मे श्री जिनचन्द्रसूरिजी आगरा आकर मिले तथा उस पर भी अलौकिक और अनुपम प्रभाव डाला। आगरा के जैन श्रीसघ की आग्रहपूर्ण विनती को मानकर स० १६६९ का चातुर्मास भी वही किया।

एक समय दशा पोखाल सदाजी और सोमजी नाम के दो भाइयो को प्रतिबोध देकर उनको जैन धर्मानुरागी बनाया। दोनो श्रावको ने भी जैन धर्म की खूब सेवा की। इन दोनो भाइयो ने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जयजी का सघ निकाला और गिरिराज की खरतरवसी मे चौमुखाजी का मन्दिर बनाया तथा सम्पूर्ण खरतरवसी का जीर्णोद्धार कराया।

गुरुदेव ने वहुत स्थानो पर प्रतिष्ठा कराई और अनेक भव्यात्माओ को ससार की असारता समझा कर दीक्षित किया। इतिहास देखने से पता लगता है कि इन भव्यात्माओ की सख्या लगभग १५०० के होगी।

गुरुदेव आगरा का चातुर्मास पूरा करके मेडता नगर मे पधारे। मेडता मे विलाडा सघ के आगेवानो ने आकर बिलाडा ग्राम मे पधारने की आग्रहपूर्ण विनती की। उनके आग्रह से ज० यु० दादा जिनचन्द्रसूरिजी महाराज कुछ शिष्यो के साथ बिलाडा पधारे और विक्रम स० १६७० का चातुर्मास बिलाडा (मारवाड) मे किया।

श्री पर्यूषन पर्व तो सानन्द आराधन किए किन्तु आश्विन कृष्णा २ (गुजराती भादरवा वदी २) के दिन उस सुन्दर और पूज्य देह ने सदा के लिए उत्तर दे दिया। वह तेजमयी प्रभा सदा के लिए विलीन हो गई। आपकी आत्मा स्वर्ग सिधार गई। गुरुविरह के दुःख से समस्त सघ म्लानमुख होकर शोक सागर मे डूब गया।

—श्वे० जैन आगरा के जैनाचार्य अक, दि० १-४-५५ के सौजन्य से

कलिबुध्धि. कुरुक्षेत्रे यथा स्नेहवतामपि।
तथा स्याद् धर्मशालायाम्, अधर्मस्यापि धर्मधी. ॥२०॥

स्नेही मनुष्यो को भी कुरुक्षेत्र मे झगडा करने की वुद्धि उत्पन्न होती है जबकि धर्मस्थान मे अधर्मी को भी धर्मबुद्धि उत्पन्न होती है।

•••

सह कलेवर खेदमचिन्तयन् स्ववशता पुनस्तव दुर्लभा।
धनतर सहिष्यसि जीव रे परवशो न च तत्र गुणोऽस्तिते॥

हे शरीर ! तू बगैर किसी दुख के सहन कर क्यो कि स्वाधीनतापूर्वक सहन करने की क्षमता दुर्लभ होती है। हे जीव ! भविष्य मे बहुत कुछ सहन करना पडेगा और पराधीनता मे सहन करने से कोई लाभ होने वाला नही है।

अर्हं नमः

श्रीमद् यशोविजयजी

ले० मुनि भद्रगुप्त विजयजी आत्मानद, जैन भवन, जयपुर

भारतीय सस्कृति हमेशा धर्मप्रधान सस्कृति रही है, क्योकि धर्म से ही जीव मात्र का कल्याण होता है। धर्म से ही मनुष्य को शान्ति व प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है, और धर्म के माध्यम से ही मनुष्य को वास्तविक सुखी बनाया जा सकता है। जीवो की कक्षा के अनुसार धर्म का पालन भिन्न-भिन्न होता है। सब जीवो के लिए एक ही धर्माचरण नही होता है।

ससार के जीवो को धर्म-मार्ग बताने का कार्य पवित्र जीवन जीने वाले साधु पुरुष करते आए हैं और करते रहे हैं। साधु पुरुष स्व जीवन मे उच्चतम धर्म का पालन करते हैं और ससार को धर्म का मार्ग बताते हैं यह है साधु पुरुषो की विश्व-सेवा।

धर्म का उपदेश देना और धर्म ग्रथो का निर्माण करना यह है साधु जीवन की मुख्य प्रवृत्ति। उस प्रवृत्ति के अलावा साधु पुरुष अपनी आत्मविशुद्धि के लिए ज्ञान-ध्यान, योग-साधना आदि मे निरत रहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी दुराचार, परिग्रह के पापो से सर्वथा निवृत्त होते हैं, बिना पाप किए भी मनुष्य जी सकता है इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है हमारे भारत का एक जैन मुनि।

भगवान महावीर स्वामी के धर्म सघ मे निरन्तर ऐसे साधु पुरुष होते आए हैं जो आत्मकल्याण के साथ ससार के जीवो को परम सुख शान्ति का पथप्रदर्शन करते आए हैं। ऐसे ही एक पवित्रतम साधु पुरुष विक्रम की १७ वी शताब्दी मे हो गए हैं। वे पुण्य नाम धेय थे—श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय। १७ वी शताब्दी के ही एक ग्रथ 'सुजस वेली भास' मे श्रीमद् यशोविजयजी का यथार्थ जीवन वृत्तात सक्षेप मे प्राप्त होता है। हालाकि उनके विषय मे बहुत सी लोक कथाएँ और किंवदन्तिया लोकजिव्हा पर प्रच-लित हैं किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से 'सुजस वेलि भास' ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

गुजरात की धरती पर उत्तर मे कनोडा गाव आज भी है। वहा नारायण सेठ और सौभाग्यदेवी सेठानी बसते थे। पति-पत्नी सदाचारी व धर्मनिष्ठ थे। उनके दो पुत्र थे, बडे का नाम था जसवत और छोटे का नाम पर्दसिह था।

जसवन्त की वुद्धि सूक्ष्म थी। बालक होने पर भी उसमे महान् गुण दिखाई पडते थे। वि० स० १६८८ मे उस काल के प्रखर विद्वान मुनिराज श्रीनयविजयजी पदविहार करते करते कनोडा पधारे। कनोडा की जनता श्रीनयविजयजी का वैराग्यपूर्ण उपदेश सुन कर मुग्ध हो गई। उपदेश सुनने नारायण सेठ का परिवार भी गया था। उपदेश तो सबने सुना परन्तु उपदेश का असर जो जसवन्त की आत्मा पर हुआ, और किसी पर नही हुआ। जसवत की आत्मा मे जन्म-जन्मातर के त्याग वैराग्य के सस्कार जागरित हो गए। उसने ससार छोड कर साधुजीवन जीने की भावना अपने माता पिता के सामने रखी।

श्रीनयविजयजी ने भी जसवन्त की वुद्धि-प्रतिभा को और गुणमय जीवन को देखा। उन्होने नारायण सेठ व सौभाग्यदेवी को कहा—'पुण्यशाली ! आप धन्य हो कि आपको ऐस. पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है। एक बार ही धर्म का उपदेश सुनकर जसवन्त वैरागी बना है। जसवत भले ही आज बच्चा है ·· · लेकिन उसकी आत्मा कच्ची नही है। उसकी आत्मा महान् है। यदि आप पुत्रस्नेह को सयमित कर जसवन्त को चारित्रमार्ग पर चलने की आज्ञा प्रदान करे तो जसवन्त भविष्य मे भारत की भव्य विभूति वन सकता है और हजारो लाखो मनुष्यो का उद्धारक बन सकता हे। कहिए, आपका अन्त·स्तल क्या चाहता है ?'

नारायण और सौभाग्यदेवी की आँखो मे आँसू भर आए, पर वे आँसू थे हर्ष के, आॅसू थे पुत्र-विरह की व्यथा के। पुत्र त्याग के पथ पर चलकर स्व - पर आत्मा का महान कल्याण करेगा, परमात्मा महावीरदेव के शासन को उज्ज्वल करेगा— इस कल्पना से माता-पिता हर्षान्वित बने। साथ ही विनयी, प्रसन्न मुख और सुकुमार पुत्र घर छोड कर, माता-पिता व स्नेही-स्वजनो को छोडकर चला जायगा ?—इस कल्पना से शोकाकुल वन गए। गुरुदेव श्रीनयविजयजी ने वहाॅ से विहार किया। चातुर्मास के लिए पाटण पधारे।

कनोडा मे जसवन्त व्याकुल था। उसका मन गुरुदेव का सानिध्य चाहता था। खाने, पीने · खेलने से उसका मन उठ गया, उसकी आँखो मे आँसू भर-भर आने लगे। सुकोमल जसवन्त की तीव्र वैराग्य भावना ने माता पिता के हृदय को परिवर्तित कर दिया। माता-पिता जसवत को लेकर पाटण पहुँचे। पाटण मे जसवत की दीक्षा हुई। जसवत श्रीमद् यशोविजयजी वने।

वडे भाई का अनुसरण किया छोटे भाई ने, पर्सिह ने भी ससार त्याग दिया—वे बन गए पद्मविजयजी, यशोविजयजी व पद्मविजयजी की अच्छी जोड वन गई।

चारित्र के पश्चात् दोनो भाई ज्ञानार्जन मे लीन हो गए, दिन व रात शास्त्राभ्यास।

वि० स० १६६६ मे अहमदावाद पधारे। वहाँ उन्होने जनता को अपूर्व स्मरण शक्ति का परिचय कराने वाले अवधान प्रयोग करके बताए। यशोविजयजी की यशोज्ज्वल प्रतिभा को देखकर अहमदावाद के श्रेष्ठि रत्नधनजी सूरा अति प्रभावित हुए। वे आए गुरुदेव श्री नयविजयजी के पास, वेदना कर उन्होने कहा—

'गुरुदेव ! मैं एक प्रार्थना करने आया हूँ।'

'कहिए क्या बात है ?'

'गुरुदेव ! श्री यशोविजयजी ज्ञान के अत्युत्तम पात्र हैं, दूसरे हेमचन्दसूरि बन सकते हैं, आप उन्हे काशी भेजे, वहाँ षड्दर्शन का अध्ययन कराएँ।'

गुरुदेव मौन रहे। उनके मुख पर गभीरता छा गई। धनजी सूरा कुछ समझ नही पाए, उन्होने पूछा—

'क्यो मेरी बात से दुःख हुआ है गुरुदेव ?'

नही दुःख की बात नही है, मैं भी चाहता हूँ कि यशोविजयजी काशी जाकर अध्ययन करे लेकिन ।'

'लेकिन क्या गुरुदेव ?'

'वहाँ के भट्टाचार्य बिना पैसा नही पढाते हैं' गुरुदेव ने कहा।

'धनजी सूरा गुरुदेव की गभीरता का रहस्य समझ गए।'

उन्होने कहा—'गुरुदेव ! काशी मे यशोविजयजी के अध्ययन का जो खर्च होगा उसका लाभ मुझे देने की कृपा कीजिए।'

श्रीमद् यशोविजयजी ने काशी जाकर षड् दर्शन के अखण्ड ज्ञाता प्रकाण्ड विद्वान भट्टाचार्य के पास अध्ययन प्रारम्भ किया। भट्टाचार्य के पास ७०० शिष्य मीमासा आदि दर्शनो का अध्ययन करते थे। यशोविजयजी ने शीघ्र गति से अध्ययन किया—न्याय, मीमासा, बौद्ध, जैमिनी, वैशेपिक आदि दर्शनो का तलस्पर्शी-ज्ञान प्राप्त कर लिया। चिन्तामणि जैसे न्याय ग्रथो का भी अवगाहन कर लिया। काशी के मूर्धन्य विद्वानो की श्रेणी मे यशोविजयजी गिने जाने लगे। यशोविजयजी ने इस अध्ययन के साथ जैन दर्शन के सिद्धान्तो का भी परिशीलन कर समन्वयात्मक अध्ययन किया।

वह जमाना था वाद-विवाद का। एक महान सन्यासी बडे आडबर के साथ काशी आया था। उसने काशी के विद्वानो को चुनौती देदी। कोई विद्वान उस सन्यासी की चुनौती का जवाब देने को तैयार न हुआ। यशोविजयजी ने सन्यासी को ललकारा। वाद-विवाद प्रारभ हुआ। यशोविजयजी ने सन्यासी को पराजित कर काशी की विद्वत्सभा को विस्मित कर दिया।

जनता ने बाजे-गाजे के साथ यशोविजयजी का जुलूस निकाला। विद्वानो ने और आम जनता ने यशोविजयजी का अभूतपूर्व स्वागत किया। इस प्रसग पर उनको न्यायविशारद की गौरव-

पूर्ण उपाधि प्रदान की गई। ब्राह्मणो ने किसी जैन मुनि का स्वागत किया हो, गौरव प्रदान किया हो और उच्चतम उपाधि प्रदान कर जय पुकारी हो यह प्रथम ही प्रसग था। काशी मे तीन वर्ष बिताये।

वहाँ से पधारे आगरा। आगरा मे उस समय एक प्रौढ न्यायाचार्य थे। यशोविजयजी ने ४ वर्ष तक उन न्यायाचार्य के पास न्याय-तर्क का अध्ययन किया, दुर्दम्यवादी बन गए, वहाँ से पधारे अहमदाबाद।

काशी की कीर्ति श्री यशोविजयजी के पीछे पीछे भटकती अहमदाबाद की गलियो मे आगई। अहमदाबाद के अनेक भट्ट वादी, यापक-भोजन सब यशोविजयजी के दर्शन कर धन्य हो गए।

नागोरी धर्मशाला यशोविजयजी के पधारने से एक जगम तीर्थभूमि बन गई थी। गुजरात का मुगल सूबेदार महावतखान भी यशोविजयजी की प्रशसा सुनकर दर्शन को आया। खान की प्रार्थना से यशोविजयजी ने १८ अद्भुत अवधान प्रयोग किए। खान की खुशी बेहद बढ गई। जिन शासन का जय जयकार हो गया। यशोविजयजी के समकालीन श्री कान्तिविजयजी लिखते हैं—

जिन शासन उन्नति त्या थईजी, वाधी तपगच्छ शोभ।
गच्छ चोराशी सहु कहेजी, ए पडित अक्षोभ॥

—सुजस वेली भास

उस समय तपागच्छाधिपति थे आचार्य श्रीविजयदेवसूरि। सघ ने आचार्य श्री से निवेदन किया—

'आचार्यदेव, बहुश्रुत ऐसे यशोविजयजी को उपाध्याय पद प्रदान करने की कृपा करे।'

आचार्य श्री ने अपनी सम्मति प्रदान की। यशोविजयजी ने 'बीस स्थानक' तप की आराधना कर शुद्ध सवेग के साथ सयम की शुद्धि को बढाया। वि०स० १७१८ मे श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय पद से अलकृत बने। 'लघुहरिभद्र' के नाम से वे प्रसिद्ध हुए।

वि० स० १७४३ का चातुर्मास डभोई (गुजरात) मे किया, अनशन कर देवगति प्राप्त की।

आज भी डभोई मे श्रीमद् यशोविजयजी की स्वर्गवास भूमि पर स्तूप बना हुआ है। आज भी स्वर्गवास का दिन जब आता है वहाँ से न्याय की ध्वनि प्रकट होती है।

यह तो है श्रीमद् यशोविजयजी का सक्षिप्त जीवन-परिचय।

अब हम देखे उनकी अखड उज्ज्वल कीर्तिकला रचनाएँ।

श्रीमद् यशोविजयजी ने चार भाषाओ मे साहित्य सृजन किया है—सँस्कृत, प्राकृत, गुजराती और मारवाडी । न्याय, योग, अध्यात्म, दर्शन, धर्म, नीति, इत्यादि विषयो पर उनकी लेखनी तीव्र गति से चली है । उन्होने जैसे कठिन दार्शनिक व सैद्धातिक ग्रन्थो की रचना की है वैसे ही कथा साहित्य की भी रचना की है ।

उन्होने जैसे मौलिक ग्रन्थो का निर्माण किया है वैसे प्राचीन सस्कृत प्राकृत भाषा के ग्रन्थो पर टीकाओ की रचना भी की है, गद्य भी लिखा है, पद्य भी ।

महत्वपूर्ण बात यह है कि यशोविजयजी ने जैसे जैन ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया था वैसे अन्य धर्मो के ग्रन्थो का तलस्पर्शी अध्ययन । उनके ग्रन्थो मे एक असाधारण विशेषता यह है कि उनमे तर्क और सिद्धान्त की समतुला अखँड रही है । स्व सप्रदाय या पर सप्रदाय, जिसमे उनको सिद्धान्त-विसवाद और तर्कहीनता प्रतीत हुई, उन्होने निष्पक्ष हो कर खडन किया है । ऐसे खडनात्मक ग्रन्थो मे 'अध्यात्म मत परीक्षा' दिक्पट ८४ बोल देवधर्मपरीक्षा, प्रतिमा शतक, 'महावीर स्तवन' इत्यादि मुख्य हैं ।

जैन न्याय शैली के अद्भुत ग्रन्थो मे 'जैन तर्क भाषा, नयप्रदीप, नयरहस्य, नयामृत-रगिणी, नयोपदेश, स्याद्वादकल्पलता, न्यायालोक, खण्डन खण्ड खाद्य, अष्ट सहस्त्री टीका' आदि प्रमुख हैं । इन ग्रथो की रचना कर यशोविजयजी ने उदयमाचार्य, गगेश उपाध्याय, रघुनाथ शिरोमणि एव जगदीश की प्रतीक्षा का जैन न्याय-साहित्य को नैवैद्य चढाया है ।

अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानसार जैसे योग विषयक ग्रथो का सृजन कर गीता, योगवाशिष्ट आदि ग्रथो के साथ सबध जोड दिया है । योग पर बत्तीस बत्तीसियाँ की रचना की । पातजल योग दर्शन पर छोटी सी टीका बनाकर योग सूत्रो की त्रुटि का समार्जन किया । हरिभद्रसूरिजी रचित योग विंशिका एव षोडसक पर टीकाओ की रचना की ।

श्रीमद् यशोविजयजी के सब ग्रथ आज उपलब्ध नही हैं । जो ग्रथ उपलब्ध हुए हैं और मुद्रित हुए हैं ऐसे ग्रथ ५० से ज्यादा नही हैं । मुद्रित ग्रथो की सूची निम्न है—

१ अध्यात्मसार	१९ प्रतिमाशतक
२ देव धर्मपरीक्षा	२० पातजल योगसूत्र-वृत्ति
३ अध्यात्मोपनिषद	२१ योगविंशिका
४ अध्यात्मिक मतखण्डन	२२ अध्यात्म मत-परीक्षा
५ यवि लक्षण समुच्चय	२३ स्याद्वाद् कल्पलता
६ ज्ञानसार	२४ षोडशक-टीका
७ नयरहस्य	२५ उपदेश रहस्य

८ नयप्रदीप
९ नयोपदेश
१० जैन तर्कपरीक्षा
११ ज्ञानबिन्दु
१२ द्वात्रीशत द्वात्रीशिका
१३ कर्म प्रकृति-टीका
१४ अस्प्रशद् गतिवाद
१५ गुरुतच्च विनिश्चय
१६ रामाचारी प्रकरण
१७ आराधक विराधक चतुर्भगी
१८ न्यायामृत तरगिणी
२६ न्यायालोक
२७ न्याय खण्डन खाद्य
२८ भाषा रहस्य
२९ तत्वार्थ वृत्ति (१ अध्याय वृत्ति)
३० वैराग्य कल्पलता
३१ धर्मपरीक्षा
३२ चतुर्विंशति-जिनस्तुति
३३ परम ज्योति-पच-विंशिका
३४ प्रतिमा स्थापन न्याय
३५ प्रतिमाशतक
३६ मार्गपरिशुद्धि

ये ग्रथ हैं सस्कृत एव प्राकृत भाषा मे। इन ग्रथो मे से कुछ ग्रन्थो का गुजराती भाषा मे भाषातर हुआ है। हिन्दी भाषा मे किसी ग्रथ का अनुवाद हुआ हो तो ज्ञात नही है। यदि इस महापुरुष के इन ग्रथो का हिन्दी भाषा मे अवतरण किया जाय तो एक अत्युत्तम कार्य होगा। इस से हमारी जैन सस्कृति यथार्थ रूप मे विश्व के सामने आएगी।

इतने महान ज्ञानी पुरुष होते हुए भी श्रीमद् यशोविजयजी अपने परमापकारी गुरुदेव के प्रति कितने विनम्र थे।

माहरे तो गुरु चरण पसाए अनुभव दिल माँहे पेठो।
ऋद्धि-वृद्धि प्रगटी घट माँही आतम रति हुई बैठोरे॥
मुज साहिब जगनो तूठो

—श्रीपालरास

श्रीमद् यशोविजयजी को उनके समकालीन विद्वानो ने कलिकाल-केवली कहा है। ऐसे महान श्रुतधर महर्षि को भावपूर्ण वन्दना कर उनके द्वारा बहाई हुई ज्ञान गगा मे स्नान कर निर्मल बने, पवित्र बने, जीवन को सफल करे यही कामना है।

योगीराज और उपाध्यायजी

ले० सोहनराज भसाली, जोधपुर

लगभग तीन सौ वर्ष पहले की बात है।
एक थे परम योगी, महान ग्रध्यात्मिक पुरुष,
ग्रानन्दघनजी महाराज।
एक थे महान नैयायिक धुरन्धर विद्वान,
उपाध्याय यशोविजयजी महाराज।

दोनो ही जैन मुनि थे। दोनो की सस्कृति एक थी, ग्रादर्श एक थे, फिर भी दोनो के दृष्टिकोण मे भिन्नता थी, सोचने-समझने मे ग्रन्तर था।

उपाध्याय यशोविजयजी के साथ चलती थी विजय-पताकाएँ। ये पताकाएँ उन्होने ग्रपने एक विरोधी को शास्त्रार्थ मे पराजित कर उससे प्राप्त की थी। उपाध्यायजी महाराज इन पताकाग्रो को विजय का प्रतीक मान कर ग्रपने साथ लेकर घूमा करते थे।

दैवयोग से एक बार योगीराज व उपाध्यायजी का एक गाँव मे ग्रचानक समागम हुग्रा। दोनो का सम्पर्क बना।

उपाध्यायजी ने गाँव में खूब ठाठ-बाट से प्रवेश किया। वे गाँव के एक बडे उपाश्रय मे ठहरे। प्रतिदिन उनका उपाश्रय मे व्याख्यान होता। बडी सख्या मे लोग उनका व्याख्यान सुनने ग्राते।

इसी गाँव के एक दूसरे उपाश्रय मे ग्रानन्दघनजी ठहरे हुए थे। वे व्याख्यान नही देते थे। वे तो थे ग्रध्यात्मिक पुरुष, ग्रपने ध्यान मे मस्त रहने वाले योगी।

एक दिन योगिराज ग्रानन्दघनजी उपाध्यायजी महाराज के व्याख्यान मे गए। उपाध्यायजी महाराज ने योगीराज का बड़े ही प्रेम ग्रौर श्रद्धा के साथ स्वागत किया। उन्हे उच्च स्थान पर बिठाया। व्याख्यान समाप्त हुग्रा। श्रोतागण ग्रपने ग्रपने घर को रवाना हुए, पर योगीराज वही रुके।

योगीराज ने उपाध्यायजी से प्रेमपूर्वक प्रश्न किया—

'महाराज, गणधरो मे कितना ज्ञान होता है?'

'ग्रपने से ग्रनन्तगुणा ग्रधिक' उपाध्यायजी ने उत्तर दिया।

'चौदह पूर्वियो मे कितना ज्ञान होता है?' योगीराज ने दूसरा प्रश्न किया।

'गणधरो से कम परन्तु ग्रपने से ग्रनन्त गुणा ग्रधिक।' उपाध्यायजी ने उत्तर दिया।

'तो फिर इन गणधरो और चौदह पूर्वियो के साथ कितनी पताकाएँ चलनी होगी ?' योगीराज ने बडे ही विनीत एव मधुर स्वर मे प्रश्न किया।

योगीराज के इस मार्मिक एव अन्तरस्पर्शी प्रश्न को सुन उपाध्यायजी चौके। उनका विवेक जगा। उनमे आन्तरिक ज्ञान की ज्योति जागरित हुई। उन्हे अपनी भूल का भान हुआ।

उपाध्यायजी उठे। योगिराज के चरणो मे गिर पडे और गद्‌गद् होकर बोले 'आपने मेरी मिथ्या धारणा दूर की है, झूठा अभिमान भगाया है, मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की हे। आपके इस उपकार का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ।'

सचमुच योगीराज के उपकार को उपाध्यायजी जन्म भर नही भूले। उन्हे योगीराज की स्तुति मे आनन्दघन अष्टपदी की रचना की। उन्होने इस अष्टपदी मे आनन्दघनजी के सम्पर्क का वर्णन करते हुए कहा है—

'आनन्दघन के सग सुजस मिले जब, तब आनन्द सम भयो सुजस।
पारससग लोहा जो परसात, कचन होत ही ताको कस॥'

उपाध्यायजी समर्थ तार्किक, नैयायिक व महान् विद्वान तो थे ही पर योगीराज के सम्पर्क से उनके जीवन मे परिवर्तन आया। जिस प्रकार पारस के सम्पर्क से लोहा कचन बन जाता है। बस वैसे ही अध्यात्मनिष्ट योगी आनन्दघनजी के सम्पर्क से उपाध्यायजी महाराज अध्यात्मिक ज्ञानी बने। उन्होने ज्ञानससार, अध्यात्मसार, अध्यात्मोनिषद जैसे विद्वतापूर्ण ग्रथो की रचना कर डाली।

काश ! आज यदि योगीराज श्रीआनन्दघनजी महाराज जीवित होते तो वे वर्तमान युग के आचार्यो, मुनियो, श्रावको को भी पाठ पढाते। उनकी पदलोलुपता व अहभाव को देख वे सुनाते—

अवधू क्या मॉगू गुन दीना, पे गुन ज्ञानप्रवीना।
गाय न जानू बजाय न जानू, न जानू सुर भेवा।
रीझ न जानू रिझाय न जानू, न जानू पद सेवा। अव०।
वेद न जानू किताब न जानू, जानू न लछन छन्दा।
तरक वाद-विवाद न जानू, न जानू कवि फदा। अव०।
जाप न जानू ताप न जानू, न जानू कची बाता।
भाव न जानू भगति न जानू, न जानू सीरा ताता। अव०।
ज्ञान न जानू विज्ञान न जानू, न जानू भज नामा।
आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे, रतन करूँ गुण धामा॥अव०॥

दीर्घ तपस्वी श्री जिनयशःसूरिश्वरजी महाराज

बीसवी शताब्दी मे जगतपूज्य मुनि श्रीमोहनलालजी महाराज जैन समाज के प्रकाशमान नक्षत्रो मे सर्वाधिक शासन प्रभावक और तपस्वी मुनिराज हुए हैं। आपने सर्वप्रथम मकसीजी तीर्थ मे श्री पूज्यजी श्रीविजयमहेन्द्रसूरिजी से यति दीक्षा ली थी। फिर ४३ वर्ष की आयु मे स्वय ही क्रियोद्धार करके अजमेर मे श्रीसभवनाथ की प्रतिमा के सम्मुख सवेग धारण कर लिया। इनके मुनिवेष धारण करते ही अजमेर श्रीसघ मे हर्ष छा गया। सवत् १९३० मे मुनि श्री मोहनलालजी अजमेर से विहार कर मारवाड की ओर बढे और स० १९३१ का चातुर्मास पाली, १९३२ का सिरोही, १९३३ का पाली, १९३४ का सादरी, १९३५ का जोधपुर, १९३६ का अजमेर, १९३७ का पाली, १९३८ का जोधपुर, १९३९ का सिरोही चातुर्मास करके आप नवासर ग्राम पधारे। वहाँ जेठमल नाम का एक श्रावक आपके पास आया और आपका उपदेश सुनकर बोला—'गुरुदेव! मैं जोधपुर से आया हू। मैं श्री पूनमचन्दजी साँड का पुत्र हूँ। आप मारवाड की उस भूमि को अपनी अमृतवाणी से सिंचन कर पल्लवित कर रहे हैं। वर्षों से मेरी इच्छा पचमहाव्रत अङ्गीकार करने की थी, कृपया अब आप मेरी इच्छा की पूर्ति कीजिए।'

'भाग्यशाली! तुमने अपने माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर ली है?' महाराज बोले

'गुरुदेव! मेरे पिता तो छोटी उम्र मे ही स्वर्गवासी हो गये थे और माताजी ने थोडे दिन हुए भागवती दीक्षा अङ्गीकार करली है। अब आज्ञा माँगने के लिए घर मे कोई नही है।' श्रावक ने उत्तर दिया।

'क्या तुम जानते हो कि जैन साधुओ के आचार कितने कठिन हैं?' महाराज का प्रश्न था।

'हाँ कृपालु, कुछ परिचित हूँ, क्योंकि जैन पाठशाला मे वर्षों धार्मिक अध्यापक के रूप मे रहा हूँ। ४५ और ५१ उपवास तक की तपस्या भी कर चुका हूँ। अब तो आपके चरणो मे रह कर आत्म-कल्याण करने की भावना है।' श्रावक ने सविनय उत्तर दिया।

'तुम सुपात्र और सुयोग्य हो। तुम्हारी भावना पूर्ण होगी। बोलो दीक्षा लेने का भाव कहाँ है?' महाराज ने फरमाया।

'गुरुदेव! यदि आप जोधपुर पधार सके तो मैं अपनी जन्म भूमि मे ही दीक्षा अगीकार कर लूगा।' श्रावक ने कहा।

'अच्छा, जिसमे तुम्हे सुख हो वही किया जायगा।' महाराज वोले।

गुरुदेव मुनि श्री मोहनलालजी महाराज जोधपुर पधारे और सवत् १९४० की ज्येष्ठ शुक्ला ५ के दिन जेठमल को दीक्षित करके उनका शुभनाम जसमुनि रख दिया। मनचाहा गुरु मिल जाने से जेठमल परम हर्षित हुए। श्री सघ ने मुनि श्री मोहनलालजी और नव दीक्षित श्री जसमुनिजी के जयघोष से आकाश गुँजा दिया।

श्री जसमुनि ने थोडे ही दिनो मे विनय, भक्ति और सेवा भाव से गुरुदेव के मन को जीत लिया। जसमुनि को विद्वान और धर्म-प्रचारक वनाने मे गुरुदेव ने भी कोई बात उठा न रक्खी। कई वर्षो तक गुरु की सेवा मे रहने से जसमुनि पूर्ण विद्वान हो गए।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गुरु शिष्य कई ठाणो से पालीताना पधारे। यात्रा करने के पश्चात् इन्होने पालीताना से विहार किया। उधर अजीमगज के रायवहादुर धनपतसिहजी की धर्मपत्नी रानी मीनाकुमारी को स्वप्न होता है कि अजनशलाका और प्रतिष्ठा कार्य परम प्रतापी मुनि श्री मोहनलालजी के वरद हस्त से होना चाहिए। रानी साहब ने जाग्रत होकर पिछली शेप रात्रि सप्तस्मरण पढ कर विताई और सवेरा होते ही वावू साहब ने कहा कि मुझे यह स्पप्न आया है। अधिष्टायक की मरजी मुताविक ही काम कराइए। रायबहादुर धनपतसिहजी ने कहा कि मेरी भावना भी यही थी किन्तु गुरु-देव तो बिहार कर गए। दोनों ने परामर्श कर अपने पुत्र बाबू नरपतसिहजी को गुरुदेव के पास भेज कर स्वप्न की बात कहलाई और जैसे भी हो वापिस पालीताना आने की विनती की।

बाबू नरपतसिहजी के पहुँचने पर श्री जसमुनि ने भी बावूसाहव की विनती स्वीकार कर लेने की प्रार्थना की। तब गुरुदेव ने पुन पालीताना तीर्थ की ओर विहार किया। यह मालूम होते ही बाबू साहब के कुटुम्ब मे भी आनन्द की वृद्धि हुई सौर जोरो के साथ प्रतिष्ठा की तैयारी होने लगी। सवत १९४९ की माघ शुक्ला १० के दिन हजारो मनुष्यो की उपस्थिति के बीच तलहटी के मन्दिर मे विधि-विधान सहित श्री आदीश्वर भगवान आदि जिन विम्बो की प्रतिष्ठा सानन्द हो गई। यह तलहटी का स्थान आज धनवासी टूक के नाम से प्रख्यात है।

गुरु आज्ञा से जसमुनिजी शिष्य परिवार सहित सूरत पधारे। स० १९५२-५३ के चतुर्मास सूरत मे ही किए। वहाँ से अहमदावाद पधारे। स० १९५४-५५ और १९५६ के चातुर्मास अहमदावाद मे किए। वहाँ से सिद्धान्त शैली के विद्वान पन्यास श्री दयाविमलजी

महाराज के पास आगमो का योगोद्वन किया। आपकी योग्यता देखकर चतुर्विध श्रीसघ ने जसमुनिजी को पन्यास पद से अलकृत किया। सवत् १९५८ का चातुर्मास लाल बाग बम्बई मे हुआ। एक दिन गुरुदेव ने फरमाया कि पन्यासजी ! तुम विद्वान हो, शात हो, तपस्वी हो, अत मेरी इच्छा है कि तुम मारवाड़ मे जाकर धर्मप्रचार करो। गुरुदेव की आज्ञानुसार अपने ७ शिष्यो सहित मारवाड की ओर बिहार किया। ग्रामानुग्राम बिहार करते हुए सवत् १९६० का चातुर्मास जोधपुर मे और १९६१ का चातुर्मास अजमेर मे हुआ।

सघ के आगेवानो की विनती

सवत १९६१ मे पूज्यपाद मुनि श्री मोहनलालजी महाराज बम्बई मे और पन्यास जसमुनिजी अजमेर मे विराजमान थे। इसी बीच बम्बई मे श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेस मे पधारे हुए कलकत्ता के राय बद्रीदास बहादुर, रतलाम के सेठ चादमलजी साहब पटवा, ग्वालियर के सेठ नथमलजी गोलेच्छा और फलौदी के सेठ फूलचदजी गोलेच्छा ने मुनि श्री मोहनलालजी महाराज के पास जाकर अर्ज की कि गुरुदेव हम लोग विनती करने हाजिर हुए हैं।

गुरुदेव ने फरमाया, कहो बिना सकोच कहो। तुम्हारे जैसे धर्म-धुरन्धरो और सघ के आगेवानो की बात तो उपयोगी ही होगी।

कृपालु ! आपने तो बिहार करके धर्म का खूब उद्योत किया। आप जैसे महात्मा तो विरले ही होगे। परन्तु अब श्रावको को तथा आगे की सतान को दृढ रखने के लिए तथा धर्म की रक्षार्थ आपने किसको तय्यार किया है ? मारवाड, मेवाड, युक्तप्रान्त और बँगाल मे धर्म को टिकाये रखने के लिए कोई तो चाहिए। हमे क्रियाकाण्ड मे आलम्बन रूप कौन है ?

महानुभावो ! तुम्हारी बात सत्य है। तुम्हारे क्रियाकाण्ड मे आलम्बन रूप उत्तराधिकारी की व्यवस्था तो होनी चाहिए। अच्छा, पन्यास हर्षमुनि को बुलाओ तो।

पन्यासजी आए। गुरुदेव ने फरमाया कि हर्ष मुनि ! यह लोग विनती करते हैं सो तुम पारख गोत्रीय खरतरगच्छ के हो, तुम ही इनकी इच्छा की पूर्ति करो।

पन्यासजी ने उत्तर दिया कि मेरा परिचय इस प्रान्त मे विशेष है, इस ओर का कार्य मै सम्हाल सकूगा।

श्री मोहनजी महाराज ने कुछ सोचा और बोले—अच्छा, मेरा एक शिष्य तपागच्छ की क्रिया मे इस प्रान्त को सम्हाल लेगा और दूसरा यशोमुनि तुम्हारे लिए योग्य है वह खरतरगच्छ की क्रिया करेगा। मेरे लिए तो तपा और खरतर दोनो समान हैं। अत

जाइए वे मुनिजी अजमेर मे हैं उन्हे मेरा पत्र देना वे तुम्हे हताश न होने देगे। श्री सघ के चारो आगेवानो ने पत्र लिया और कान्फ्रेंस का अधिवेशन पूर्ण करके अजमेर पहुँचे। गुरुदेव का पत्र पन्यास यशोमुनिजी को दिया और सब कैफियत बताई। पन्यासजी थोड़ी देर चुप रहे फिर बोले—

'बाबू साहब! गुरुदेव की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। मैं तो गुरु महाराज का एक सिपाही हू। सिपाही को तो आज्ञानुसार ही कार्य करना है परन्तु यह काम भारी जिम्मेदारी का है।'

'महाराज साहब! आपकी मधुर वाणी, तपस्वी जीवन और शान्त मूर्ति देख कर हम लोग अत्यत हर्षित हुए हैं। अब आप हमारे पथ-प्रदर्शक बने और धर्म का उद्योत करे।' वे बोले।

'गुरुदेव का आशीर्वाद और तुम्हारे जैसे श्रद्धालु श्रावको की शुद्ध भावना से सब अच्छा ही होगा।' यशोमुनिजी बोले।

खरतरगच्छ के श्रावको को अपने गच्छ का ऐसा योग्य नायक मिलने से परम आनन्द हुआ।

पन्यासजी महाराज धर्म प्रचारार्थ ग्रामानुग्राम बिहार कर रहे थे कि पता चला श्री गुरुदेव अस्वस्थ हो गए हैं। अत उग्र बिहार करके सूरत पहुँचे और गुरु-सेवा मे लग गए। चतुर्दशा का दिन था, श्री मोहनजी महाराज ने अपने शिष्य-प्रशिष्यो को अपने पास बुलाया और फरमाया—

'मेरी वृद्धावस्था है, आज तक धर्म की वृद्धि के लिए जो कुछ बन सका, किया। अब तुम सब अनुभवी और विद्वान हो, जिस क्षेत्र मे जाना, वहाँ प्रमाद छोड कर धर्म का उद्योत करना। जैन शासन एव अपने सघाडा की शोभा बढे वैसा ही करना अपना धर्म समझना। यह मेरी शिक्षा कभी भी नही भूलना। दूसरी खास बात यह कहनी है कि श्री हर्ष मुनि ने तपागच्छ की जवाबदारी ली है और श्री जसमुनि को खरतरगच्छ की जवाबदारी दी गई है। दोनो साधु मेरे ही हैं। दोनों मेरे लिए दो आँखो के समान हैं। जिन साधुओ को जिस समुदाय मे शाति और आनन्दपूर्वक रहना हो, रहे। यह जान कर कि सब एक ही गुरु के शिष्य हैं, परस्पर प्रेम भाव रखना। दोनो ही जैन धर्म की पताका ऊँची फहराना और धर्मप्रभावना करते रहना।'

यह सुनकर प्राय सब ही साधुओ की आँखो से आँसू निकल पडे। सबने ही कहा कि हमे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

पन्यास जसमुनिजी गुरुदेव की आज्ञानुसार श्रीसिद्धाचलजी की यात्रार्थ रवाना हुए।

मार्ग मे वल्लभीपुर पहुँचते ही समाचार मिला कि मुनि श्री मोहनलालजी महाराज वैसाख वदी १२ स० १६६३ के दिन स्वर्गवासी हो गए। एकदम सन्नाटा छा गया। परन्तु यहाँ किसका जोर चलता है। देववन्दन किया और श्रीसिद्धाचलजी की ओर चल दिए। सवत १६६४ का चातुर्मास पालीताना किया। ग्रामानुग्राम बिहार करते हुए सं० १६६५ का चातुर्मास ग्वालियर मे किया। यहाँ श्री गुमानमुनिजी, श्री ऋद्धिमुनिजी और श्री केशर-मुनिजी को पन्यास पद से सुशोभित किया।

लश्कर से बिहार कर यह कानपुर, लखनऊ, बनारस, पावापुरीजी, समेतशिखरजी होते हुए कलकत्ता पहुँचे। फिर वहाँ से विहार कर स० १६६६ का चातुर्मास बालूचर किया। स० १६६७ का चातुर्मास अजीमगज और १६६८ का चातुर्मास पुन. बालूचर करना पडा।

श्रीसघ के कुछ आगेवानो ने पन्यासजी से आकर कहा—

'गुरुदेव! मुर्शिदाबाद, बालूचर, अजीमगज और कलकत्ता के श्रीसघो की भावना आपको आचार्य पद देने की है। आप जैसे प्रतापी महात्मा को यह पदवी देने का हम लोगो को सौभाग्य प्राप्त हो तो हमारा अहोभाग्य।'

'महानुभावो! लाप गुरुभक्ति बताते हो सो ठीक है, परन्तु इतनी बडी जिम्मेदारी का काम कैसे लिया जाय। यह पदवी लेना तो सहज है, परन्तु फिर उस भार को सम्हालने मे भी योग्यता चाहिए। मैं तो अपने आपको इस योग्य नही समझता।' पन्यासजी बोले।

'दयालु! हमने तो अन्य नगरो से भी सम्मति मँगाली है। यह देखिए मुनि श्री कृपा-चन्दजी महाराजादि साधुओ के सम्मति पत्र। जगतसेठ फतहसिहजी, रायबहादुर सेठ केशरीसिहजी, रायबहादुर बद्रीदासजी तथा सेठ नथमलजी गोलेच्छा के पत्र भी देख लीजिए।' श्रावको ने सविनय कहा।

जब सभी मुनिराजो और श्रावको की यही इच्छा है तो मुझे मानना ही पडेगा। यह सुनते ही श्री महावीर स्वामी के जय-घोष से उपाश्रय गूज उठा। अठाई महोत्सव प्रारम्भ हुआ वाहर के वहुत से भाई इस उत्सव मे आकर सम्मिलित हुए। १६६६ की ज्येष्ठ शुक्ला ६। के दिन आपको आचार्य पद अर्पण किया गया और सवने एक स्वर से श्री जिनयश सूरिजी महाराज की जय से आकाश गुंजा दिया।

आचार्य महाराज आसाढ चौमासी से ६ मास तक मौनव्रत धारण कर ध्यानावस्था मे रहे। ६ मास तक एकासन किए। आपकी भावना थी कि शक्ति प्राप्त करके पूर्वाचार्यों

की भाँति जिन शासन की सेवा भली प्रकार से की जाय। परन्तु होनहार के आगे किसी का जोर नही चलता। ग्रामानुग्राम बिहार करते हुए पावापुरीजी पधारे। वहाँ आश्विन शुक्ला से मासक्षमण की तपस्या प्रारम्भ को परन्तु भाव चढने से ५३ उपवास किए। मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को श्रीसघ के आग्रह से पारणा किया परन्तु उसी दिन से तबियत खराब हो गई और मार्गशीर्ष शुक्ला ३ सवत् १९७० को महावीर की निर्वाण भूमि पर स्वर्गवासी हो गए।

—श्वे० जैन आगरा के जैनाचार्य अक दि १-४-५५ के सौजन्य से

रे जिह्वे ? कुरु मर्यादा, भोजने वचने तथा।
वचने प्राणसन्देहो, भोजने चाजीर्णता ॥९॥

हे जीभ ! तू भोजन मे और बोलने मे मर्यादा कर। क्योकि वचन मे प्राण जाने का और खाने मे अजीर्ण होने का भय है।

•०•

अपने मे ज्ञान ज्यादा है या कम है यह महत्व की वस्तु नही है लेकिन महत्व की वस्तु तो अपना अत करण पवित्र है या अपवित्र है, भद्रता, सरलता और पवित्रता ये धर्म के बीज-स्वरूप है। ०

आपके जीवन मे यह भद्रता और पवित्र बनी रहे ! तीनो लोक के सर्व जीवो के हित की भावना एवम् उस के अनुसार शक्य प्रवृत्ति, यह अक्षय सुख का बीज है। ०

आपके हृदय मे बोए हुए बीज से आत्म-हितकारी सर्व प्रकार की सुख-समृद्धि आपको प्राप्त हो ! •

पूज्य आचार्य देव
श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-परिचय

आपका जन्म वि स १९२९ कार्तिक शुक्ला १ को सौराष्ट्र के महुवा कस्बे के अन्दर बीसा श्रीमाली श्रेष्ठिवर लक्ष्मीचन्दजी भाई की धर्मपत्नी दिवाली बहिन की कुक्षी से हुआ। प्राचीन काल मे महुवा एक अच्छा कस्बा था और मधुपुरी के नाम से विख्यात था। यहाँ पर अनेक जैन रत्न उत्पन्न हुए, जिन्होने जैन धर्म की महान् सेवाएँ की।

पुत्र रत्न की प्राप्ति पर श्रीमाली परिवार मे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कई दिवस पर्यन्त उत्सव मनाया गया। पुत्र का नाम 'नेमीचन्द' रक्खा गया। बालक होनहार और तेजस्वी था अतएव शीघ्र ही सर्वप्रिय, सर्वमगलाकाक्षी एव सबको आनन्द देने वाला बन गया। युवावस्था मे आते ही आपके हृदय मे वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई, भावना इतनी प्रबल हुई कि केवल सोलह वर्ष की अवस्था मे ही स० १९४५ ज्येष्ठ शुक्ला ७ को श्री वृद्धि विजयजी महाराज के पास भगवती दीक्षा अगीकार करली। दीक्षोपरान्त आपका नाम 'नेमीविजय' रक्खा गया।

दीक्षा लेने के उपरान्त पूज्य गुरुदेव ने सस्कृत का अभ्यास कर जैन शास्त्रो का गम्भीर रूप से अध्ययन किया, व्याख्यान-शक्ति तो आपकी अपूर्व थी ही, चूकि वाणी मे ओज था और वे जो कुछ भी कहते, वह हृदयग्राही होता था अतएव अति शीघ्र आपका प्रभाव चारो ओर फैल गया, यहा तक कि बडे बडे राजा महाराजा भी आपका सम्मान करने लगे। पन्यासजी श्री गम्भीरविजयजी महाराज ने आपको स० १९६० मे गणी पद व पन्यास पद और स० १९६४ के ज्येष्ठ शुक्ला ५ को आचार्य पद से विभूषित किया, तभी से आप आचार्य श्री विजयनेमी सूरीश्वरजी महाराज नाम से विख्यात हुए।

पूज्य आचार्य श्री ने कई छोटे बडे सघ निकलवाए। एक बहुत बडा सघ अहमदाबाद निवासी श्रेष्ठि श्री माणकलाल मनसुख भाई की ओर से महाराज श्री का आदेश पाकर निकलवाया गया। सघ मे लगभग एक सहस्र साधु-साध्विओ तथा बीस सहस्र धर्म-प्रिय व्यक्ति शोभित थे। सब ने शत्रुंजय, गिरनार और कदम्बगिरि आदि तीर्थों की यात्रा की, साथ मे शिखरबन्द जिनालय, त्रिगडा मेरु पर्वत चादी के थे। सैकडो मोटर छकडे सामान से भरे हुए साथ चल रहे थे, देखभाल स्वय सेठ और सेठानी ने की।

पूज्य आचार्य देव के पुराने तीर्थो का जीर्णोद्धार कराने की वडी लगन थी। पूज्य श्री द्वारा सौराष्ट्र मे कदम्बगिरि, रोहिशाला, श्री तलाजा, श्री वलवीपुर, श्री वडवान व श्री स्तभ तीर्थ (गुजरात मे) तथा श्री केशरियाजी, वामनवाड, पोसिना श्री राणकपुरजी, श्री कुमारियाजी व श्री कापरडाजी आदि अनेक छोटे बडे तीर्थो का राजस्थान मे जीर्णोद्धार कराया। प्रतिष्ठा करवाने से तो आचार्य देव ने अपने प्राणो तक की चिन्ता नही की। यावत्पर्यंत धर्म का स्तम्भ उपस्थित रहेगा। तावत्पर्यंत आचार्य श्री की कीर्ति लहराती रहेगी।

आचार्य श्री ने ग्रामोग्राम पैदल विहार कर अनेक जीवो को प्रतिवोध देकर कहे स्थानो मे पिंजरापोल स्थापित कराए व शासन प्रभावना के अतर्गत कई अन्य अनेक कार्य किए। अनेक राजा महाराजा तथा सेठ साहूकार ज्ञानवर्धन हेतु आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ करते थे। आपकी बेजोड मेधा शक्ति, धर्मप्रियता, विद्वता और कार्यकुशलता विश्वविख्यात थी।

पूज्य आचार्य श्री ने कार्तिक कृष्णा ३० स० २००५ दीपावली के दिन सायकाल प्रतिक्रमण कर अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। आपका स्वर्गवास महुवा गाव मे ही हुआ और जन्मभूमि भी वही थी। आपकी श्मशान यात्रा मे असख्य व्यक्ति दूर दूर से आकर सम्मिलित हुए थे। शवयात्रा के जुलूस की शोभा भी देखने योग्य थी।

पूज्य गुरुदेव का साधु समुदाय बहुत बडा है जिसमे आठ आचार्य पदवी से विभूषित किए गए। यह पदवी स्वय गुरुदेव ने अपने कर-कमलो से प्रदान किए जिनके नाम निम्न हैं—

१ प पू आ श्री विजयउदय सूरीश्वरजी मा सा
२ ,, ,, ,, ,, दर्शन सूरी ,, ,, ,,
३ ,, ,, ,, ,, विजयनन्दन सूरी ,, ,, ,,
४ ,, ,, ,, ,, विजयविज्ञान सूरी ,, ,, ,,
५. ,, ,, ,, ,, विजयपद्म सूरी ,, ,, ,,
६. ,, ,, ,, ,, विजयअमृत सूरी ,, ,, ,,
७ ,, ,, ,, ,, विजय लावण्य सूरी ,, ,, ,,
८ ,, ,, ,, ,, विजय कस्तूर सूरी ,, ,, ,,

उपर्युक्त आचार्यो के अतिरिक्त कई मुनिराज, गणी पद व पन्यास पदवी से विभूषित हैं। कुल साधु-साध्वियों की सख्या लगभग एक सौ पच्चास है। वर्तमान मे १६ आचार्य होना सुना है।

आचार्य श्री देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज

प्रसिद्ध नाम

श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-चरित्र

आपका जन्म जोधपुर तहसील के ग्राम बीसलपुर मे श्री नवलमलजी वैद मूथा की धर्मपत्नी रूपादेवी की कुक्षी से वि० स० १९३७ के आसोज शुक्ला १० को हुआ था। आपका नाम श्री घेवरचन्द रक्खा गया। यह भी कितने सयोग की बात है कि कापरडा द्वारा प्रभावित भूमि अर्थात् लगभग दस मील की दूरी पर ही आपका ग्राम आता है अत. यदि तीर्थ की ओर आपने निजी ध्यान दिया तो यह स्वाभाविक ही था।

बाल्यकाल समाप्त होने पर जब आपकी यौवनावस्था प्रारम्भ हुई तब सालावास निवासी श्रीमान् भानूरामजी बागरेचा की पुत्री श्री राजकुँवरी के साथ मार्गशीर्ष कृष्णा १० वि० स० १९५४ को आपका विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। उस समय में व्यावहारिक पढाई ही कराई जाती थी, अगरेजी आदि की पढाई केवल बडे-बडे नगरो तक ही सीमित थी। आप अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे। इतनी सी पढाई से आप अत्यन्त व्यवहार-कुशल बन गए। साधुओ के प्रवचन भी आप समय-समय पर सुनते ही रहते थे। शास्त्र और सूत्र भी पढा करते थे। इन समस्त बातो का परिणाम यह हुआ कि आपको स० १९५८ श्रावण मास मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। यद्यपि आपके मार्ग मे कई बाधाएँ थी किन्तु स० १९६३ मे स्थानकवासी पूज्य श्रीलालजी महाराज से आपने दीक्षा ले ही ली। यौवनावेग, पूर्ण पच्चीस वर्ष की आयु-युक्त सुन्दर शरीर, कोमलागी रूपसी, साध्वी पत्नी, तथा भाइयो का मोह और सासारिक सुख भी आपको रोक नही सके। उस समय सस्कृत, व्याकरण और साहित्य का पठन-पाठन भी कम था किन्तु इनकी बुद्धि इतनी विलक्षण थी कि साधारण पढाई मे भी सूत्रो का अर्थ समझ लेते थे। थोकडे तो आपको मौखिक हो गए। ज्यो ज्यो आप सूत्रो का अध्ययन करते गए, मूलपाठ इत्यादि मे आपको मूर्तिपूजा, मुँह पर बाँधने वाली मुखवस्त्रिका, बासी न रखने आदि पर शकाएँ उत्पन्न हो ी चली गई। पूज्य महाराज श्री से चर्चा भी होती किन्तु समाधान नही होता। अन्त मे वि० स० १९७२ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ (मौन एकादशी) को ओसिया तीर्थ पर चरम तीर्थकर भगवान महावीर के मन्दिर मे भगवान की प्रतिमा की साक्षी से योगिराज श्री रतनविजयजी महाराज के करकमलो से सवेगी दीक्षा ग्रहण की। स्थानकवासी दीक्षा के समय वही नाम रखते हैं जो सही नाम होता है किन्तु सवेगी दीक्षा

होती है तो गृहस्थ का नाम नही रक्खा जाता इसलिए आपका नाम मुनि ज्ञानसुन्दरजी रक्खा गया और उपकेश गच्छ की क्रिया करने का आदेश हुआ। यह क्रिया तपागच्छ क्रिया के समान ही है। स्थानकवासी समाज मे घेवर मुनिजी का अच्छा सम्मान था। वे उच्च कोटि के साधु माने जाते थे इसलिए उधर से निकल जाने से उन लोगो को पश्चाताप होना स्वाभाविक था, किन्तु कोई मार्ग नही देख पडता था। उधर रहने के लिए जितने प्रयत्न करने चाहिए वे सब किए गए किन्तु सफलता नही मिली और एक वीरात्मा के समान जैन धर्म का डका बजाकर आपने धर्म की यावज्जीवन जो सेवा की, उसका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। आपने चालीस वर्ष पर्यन्त सवेगी दीक्षा का पालन किया इस लम्बे अवसर मे श्री कापरडा तीर्थ के लिए मुनीजी ने जो भी बन पडा वह सब कुछ किया।

मुनि ज्ञानसुन्दरजी महाराज ने सर्व प्रथम इस तीर्थ के दर्शन स० १९८३ मे किए। तभी से तीर्थ के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा हो गई थी। उसे समस्त भारतवर्ष मे चमकाने हेतु आपने कोई प्रयत्न उठा नही रक्खा। आपने बिलाडा, पीपाड, जोधपुर और पाली आदि मे चातुर्मास किए। उस समय सेवा काल मे आप यहाँ पधारते। स० १९८९ का चातुर्मास भी इसी तीर्थ पर किया। जैन-जाति महोदय नामक अनमोल ग्रथ तथा अन्य कई छोटी बडी पुस्तके भी आपने यही लिखी।

मुनिजी ने तीर्थ के बडे पोस्टर बनवा कर नगरो मे, कस्बो मे और बडे बडे ग्रामो मे भिजवाए, रेल्वे स्टेशनो पर लगवाए। १९८३ वि० स० के पश्चात् आपने जितने भी ग्रन्थ लिखे उन सब मे तीर्थ के चित्र लगवाए। परिणाम यह हुआ कि समूचे देश मे तीर्थ की प्रसिद्धि हो गई। जैन समाज मे श्रद्धा उत्पन्न होने से यात्रियो का आना जाना भी बढ गया। आपने इस तीर्थ पर छात्रावास भी बनवाया, इस हेतु दो बडे बडे हॉल और दो कमरे भी आपके उपदेश से बने, किन्तु विद्याप्रेम की न्यूनता अथवा उत्साहहीनता के कारण कुछ समय उपरान्त ही छात्रावास बन्द हो गया। बाद मे वे हॉल और कमरे यात्रियो के विश्राम करने के काम मे आने लगे। आप ही ने इस तीर्थ का इतिहास भी लिखा। आपके शिष्य—श्री गुण सुन्दरजी ने बाईस वर्ष स्थानकवासी साधु रह कर वि० स० १९८४ चैत्र शुक्ला ३ को बिलाडा मे आपके समक्ष सवेगी दीक्षा ग्रहण की और जीवन-पर्यन्त आप मुनिजी की सेवा मे ही रहे। आपका पूर्व नाम श्री गम्भीरमलजी था और स्थानकवासी साधु की स्थिति मे आप श्री नथमलजी के शिष्य थे।

वि स २००० मे श्री ज्ञानसुन्दरजी को इसी तीर्थ पर आचार्य की पदवी से विभूषित किया गया और आपका नाम श्री देवगुप्त सूरी रक्खा गया। तत्पश्चात् तेरहपन्थी साधु श्री पार्श्वमलजी को जोधपुर मे दीक्षा देकर उनका नाम श्री प्रेमसुन्दरजी रक्खा गया।

परमपूज्य जैनाचार्य पजाब केशरी
श्रीमद् विजय वल्लभसूरिश्वरजी महाराज

जन्म	वि० स० १९२७
दीक्षा	,, १९४४
आचार्य पद	,, १९८१
स्वगवास	,, २०११

मरुधर केशरी इतिहास प्रेमी
श्रीमद् विजय देवगुप्त सूरिश्वरजी महाराज

जन्म	१९३७
स्था० दीक्षा	१९६३
स्वर्ग दीक्षा	१९७२
आचार्य पद	२०००
स्वर्गवास	२०१२

आप अद्यावधि आचार्य श्री के पदचिन्हो पर चलते आ रहे हैं। आपने गागाणी तीर्थ का उद्धार करा कर अच्छी ख्याति प्राप्त की। आपका स्वर्गवास जोधपुर शहर मे सं० २०१२ को हो गया। आपके कोई शिष्य नही है।

मुनि ज्ञानसुन्दरजी महाराज ने अनुमानत: कुल ३२५ पुस्तके लिखी, जिनकी मुद्रित सँख्या लगभग चार लाख है। इनमे निम्नलिखित पुस्तके ग्रथ के रूप मे हैं। इन पुस्तको को पढने से जैन इतिहास का पूरा पता चलता है और साथ ही जैनत्व क्या है का भी। पूर्वजो ने क्या किया, हम कहा हैं इन सारी बातो का ध्यान होता है।

(१) जैन जाति महोदय पृष्ठ सख्या १००० चित्र सख्या ४३
(२) समरसिंह पृ० सख्या २५५
(३) मूर्ति पूजा का इतिहास पृ० सख्या ४३२ चित्र सख्या २८
(४) श्रीमान लोकाशाह पृष्ठ सख्या ३३६ चित्र सख्या ११
(५) पार्श्वनाथ की परम्परा प्रथम खड } दोनो की पृ० सख्या १५६८
(६) ,, का इतिहास द्वितीय खड } चित्र सख्या ९२

आपकी लिखी हुई पुस्तको का सूचीपत्र रत्ना प्रभाकर, ज्ञान पुष्पमाला (फलोदी) राजस्थान से प्राप्त हो सकता है।

समस्त जैन समाज मे इन पुस्तको का अत्यन्त सम्मान हुआ है। हिन्दी भाषा मे जितनी पुस्तके आपने लिखी, इतिहास सम्बन्धी आपने जो अन्वेषण किया, वह सर्वथा सराहनीय है। यही कारण है कि आपको 'मरुधरकेशरी' के नाम से सम्मान प्राप्त था। वास्तव मे आपका यह नाम यथार्थ था। तर्कबुद्धि तो आपके अन्दर इतनी थी कि प्रश्न का अविलम्ब उत्तर मिलता था। मूर्ति-पूजा के विषय मे तो आपके प्रवचन अकाट्य, मेधापूर्ण और हृदय-ग्राही होते थे, इसीलिए मूर्ति विरोधी आपके नाम ही से घबराया करते थे।

जोधपुर नगर मे भादवा शुक्ला ८ वि० स० २०१२ को जन्मना जायते मृत्यु के अनुसार आपने अपना शरीर छोड दिया अर्थात् आपका स्वर्गवास हो गया। आपके निधन से जैन जगत को जो क्षति उठानी पड़ी, उसकी पूर्ति के लिए हम भगवान से सादर करबद्ध प्रार्थना करते हैं।

श्रीमद् विजयवल्लभसूरिश्वरजी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र

आपका जन्म बडौदा नगर (गुजरात) मे वि स १९२७ के कार्तिक शुक्ल २ को श्रेष्ठिवर्य श्री दीपचदजी की धर्मपत्नी श्रीमती इच्छादेवी की कुक्षी से हुआ। आपका नाम श्री छगनलाल रखा गया। जब आपकी आयु १५ वर्ष की हुई तो वहाँ आचार्यवर श्री आत्मारामजी म० का पदार्पण हुआ। आपका व्याख्यान सुनकर आपको ससार के प्रति घृणा हुई और दीक्षा लेने का विचार हुआ। कुटुम्बी जनो ने मोह के वस इसमे काफी रोडे अटकाए किन्तु आप अपने विचारो मे अडिग रहे और वैशाख सुदी १३ वि० स० १९४४ को राधनपुर मे आपकी दीक्षा आचार्यवर के करकमलो से पूर्ण हुई। आपका नाम श्री वल्लभविजयजी रखा गया और श्री हर्षविजयजी के शिष्य घोषित किए गए।

आपकी बडी दिक्षा पाली (मारवाड) मे नवलखाजी के मदिर के आगन मे वि० स० १९४६ के वैशाख सुदि १० को आचार्य म० की निष्ठा मे हुई।

आपके गुरु हर्षविजयजी का स्वर्गवास वि० स० १९४७ चैत्र सुदि १० को दिल्ली मे हुआ। लघु आयु होने पर भी हमारे चरित्रनायक ने अपने गुरु की खूब ही सेवा-सुश्रुषा की। यह ही नही अन्त समय मे अच्छी आराधना भी कराई।

गुरु महाराज के वियोग से अपको काफी सताप हुआ। फिर भी आचार्य श्री की कृपा से आप उनके चरणो मे रहे और ज्ञानाभ्यास किया। किन्तु आचार्य म० श्री विजयानद-सूरीश्वरजी (प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी) का वि० स० १९४३ के ज्येष्ठ सुदि ७ की रात को स्वर्गवास हो गया। उस समय आपने आचार्य श्री के चरणो मे नमस्कार किया। उनकी आशीष ली और उसके बाद आपने पचाब को सभाला। व्याख्यान बाँचना, साधुओ को पढाना इत्यादि सारा भार आप पर आ पडा और आपने उसको अच्छी तरह से निभाया।

वि० स० १९४८ से १९६३ तक लगातार १६ चतुर्मास आपने पचाब मे किए। इस अवधि मे आप स्थानकवासी साधुओ से शास्त्रार्थ भी किए, जिसका निर्णय स० १९६२ मे नाभा नरेश का छप चुका है। आपका ज्ञानवल व स्मरणशक्ति इतनी तेज थी कि आपके वक्तव्य से सेठ-साहूकार तो क्या राजा महाराजा भी प्रभावित हो जाते। पालनपुर के नवाब

साहिब तो आपके पक्के भक्त बन गए थे। आपने १३ वर्ष तक गुजरात काठियावाड़ को धर्मोपदेश सुनाया। फिर मारवाड मे पदार्पण हुआ और फिर पजाब पधारे। आपको वि० स० १९८१ के मार्ग शीर्ष ५ को लाहौर मे आचार्य पद दिया गया और पजाब केसरी की उपाधि से सुशोभित किया गया। पजाब का जैन श्वेताम्बर सघ आप ही को सब कुछ मानता है। आपकी आज्ञानुसार कार्य करने मे वे हर समय तैयार रहते हैं।

आपने मारवाड मे जो उपकार किया वह भुलाया नही जा सकता। गोडवाड मे कई चल रही रूढियो को उपदेश द्वारा बन्द कराया। यह ही नही वहाँ की जैन प्रजा विद्वान वने उसके लिए श्री वरकाणा तीर्थ पर जैन विद्यालय व छात्रालय की स्थापना कराई। फालना स्टेशन पर डिग्री कॉलेज की स्थापना आप ही के उपदेश का फल है।

आपने श्रीकापरडा तीर्थ के दर्शन वि० स० १९७७ मे किए। आपका ध्यान ज्यादातर ज्ञानवृद्धि पर था। इसलिए वहाँ छात्रालय का उपदेश दिया और एक धर्मशाला वनाने हेतु भी उपदेश दिया। उसके अनुसार छात्रालय भी खुला और धर्मशाला भी बनी। आपने श्रीकापरडा तीर्थ के इतिहास के रूप मे एक छोटीसी पुस्तक लिखी और दो स्तवन वनाये जो इस ग्रथ मे प्रकाशित किए जा रहे हैं।

आपका स्वर्गवास वि० स० २०११ के आसोज वदि १० ता० २२-९-५४ को बम्बई मे हुआ जिसका समाचार सुनते ही जैन जगत मे निराशा छा गई। इस युग मे ऐसे आचार्य महाराज की जो क्षति हुई निकट भविष्य मे पूर्ति होना मुश्किल है, फिर भी कालचक्र से किसी का बस नही चलता।

लगभग ६७ वर्ष का दीक्षा प्र.य पालकर आपने जैन व अजैनो मे धर्म व सुसस्कारो का जो बीजारोपण किया उनके हम सदा ऋणी रहेगे। उनकी आत्मा देवलोक मे विराज-मान होगी। ऐसा हमे पूर्ण विश्वास है। जहाँ कही भी उनकी आत्मा हो हमारा करबद्ध भक्ति सहित वदना स्वीकार हो।

उनका जीवन चरित्र बहुत विशाल है, जिनकी एक बडी पुस्तक 'आदर्श जीवन' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। इस तीर्थ पर आपकी पूर्ण कृपा रही अत हम यह सक्षिप्त जीवनी इस ग्रन्थ मे प्रकाशित कर अपना कर्तव्य पूरा होना समझते हैं। 'जय हो गुरु वल्लभ की।'

वे क्या चाहते थे उनके शब्दो मे सुनिए—

मैं क्या चाहता हूँ ?

'हो कि न हो, परन्तु मेरी आत्मा यही चाहती है कि साम्प्रदायिकता दूर होकर जैन

समाज, मात्र श्री महावीर स्वामी के झण्डे के नीचे एकत्र होकर, श्री महावीर की जय वोले तथा जैन शासन की वृद्धि के लिए ऐसी एक 'जैन विश्वविद्यालय' नामक सस्था स्थापित हो जिससे प्रत्येक जैन शिक्षित हो, धर्म को बाधा न पहुँचे। इस प्रकार राज्याधिकार मे जैनो की वृद्धि हो।

फलस्वरूप सभी जैन शिक्षित हो और भूख से पीड़ित न रहें। शासन देवता मेरी इन सब भावनाओ को सफल करे। यही मेरी चाहना है।'

—वल्लभसूरि

इसी मगल कामना के साथ परिचय का पटाक्षेप करते हैं।

अपने सुख में से दूसरों को हिस्सा बाट कर दो और दूसरो के दु ख मे से अपना हिस्सा माग के लेलो।

०००

वो वृक्ष, वो धूपसलाई और वो चदन काष्ट अपनी मूक भाषा मे महत्व का उपदेश दे रहे है कि सह जाना, जल जाना, घिस जाना।

०००

आपके जीवन में सहनशीलता, अनुकपा और परार्थकारिता प्रगट हो।

०००

किसी के छोटे से छोटे उपकार को भूलना नही और किसी के वडे से वडे उपकार को याद न लाना, सुख और शाति का यह राजमार्ग है।

०००

सुख और शाति वह ऐसा उत्तर है कि जो जितना ज्यादा आप दूसरे पर छिडकेंगे खुशबू उनसे ज्यादा आपको प्राप्त होगी।

मेवाड़ केसरी श्री नाकोड़ा तीर्थोद्धारक
आचार्य देव श्रीमद् विजय हेमाचल सूरीश्वरजी म०

जनम वि. स १९६४
दीक्षा : „ १९८०

पन्यासपद वि. स. १९८५
आचार्यपद . „ २०००

साहित्य प्रेमी बाल ब्रह्मचारी
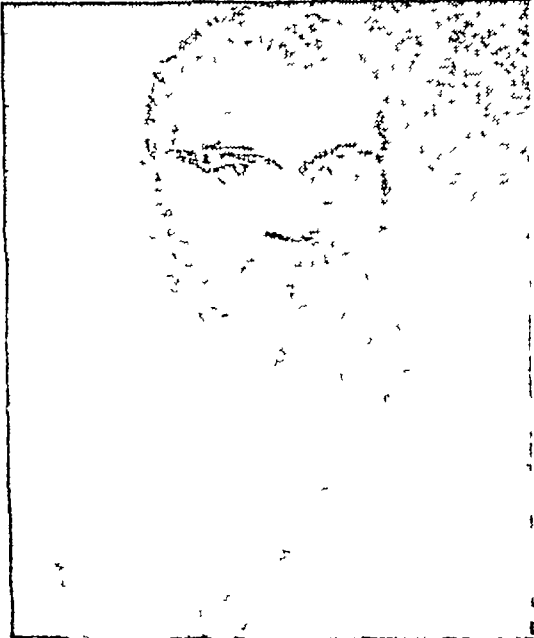
मुनि श्री भद्रगुप्त विजयजी महाराज

प्रसिद्ध वक्ता शासन प्रभावक

मुनि श्री कांतिसागरजी महाराज

'शाह खैमा दैदाणी'

जैन धर्म मे अनेक शूरवीर-परोपकारी-धर्मसेवी-समाजसेवी हुए है जिनका वर्णन जैन-साहित्य मे भरा पडा है। आज हम एक ऐसे महान पुरुष का विवरण लिख रहे है जिसने गुजरात देश की प्रजा को अकाल से बचाया। आप उनकी सादगी व विनम्रता का वृतान्त पढकर चकित हो जायगे। जैनो ने देशहित, प्रजाहित, धर्महित, समाजहित के जो कार्य किए उसका गौरवशाली इतिहास स्वर्ण अक्षरो से लिखने योग्य है।

—मानचद भडारी

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है किन्तु इस देश के कई प्रात ऐसे हैं जिनमे वर्षा से ही काम चलता है। वर्षा भी औसत के अनुसार आए जब तो ठीक अन्यथा लाभ नही होता जैसे बरसात की कमी बिल्कुल अभाव या अधिकता यह दोनो अकाल के रूप हैं, जिसको सूखा अकाल और लीला अकाल कहते हैं। सूखे अकाल मे धान व चारे की उपज नही होती जब कि नीले अकाल मे पानी व चारे की कमी नही रहती। यदि भारतवर्ष का पुराना इतिहास देखा जाय तो ऐसे कई दुष्काल पडे हैं। 'दुष्काल' यह सस्कृत शब्द हैं जिसका अर्थ 'बुरा समय' होता है इसका दूसरा शब्द 'दुर्भिक्ष' भी है जिसका अर्थ 'भिक्षा का अभाव'। अकाल मे भिक्षा मिलना भी दुर्लभ हो जाता है। ऐसे अकालो का वर्णन जैन शास्त्रो मे आता है। सक्षेप मे उसका यहा वर्णन किया जाता है।

वीर स० १४० मे उत्तर हिंद (मगध देश) मे लगातार बारह वर्ष तक अकाल पडा। ऐसे समय साधु समुदाय को भी महान कष्ट सहना पडा, यहाँ तक कि उनको समुद्र के किनारे जाना पडा। दुष्काल समाप्त होने पर यह समुदाय पाटलीपुर मे आया। ऐसा उल्लेख ग्रन्थो मे लिखा मिलता है।

वीर स० ५८४ (वि० स० ११४) मे वज्रस्वामी के समय मे 'उत्तरापथ' मे दुष्काल पडा। इसी तरह वीर स० ८२७ से ८४० तक १२ वर्ष का लगातार दुष्काल उत्तरहिन्द मे फिर पडा उसका उल्लेख जिनदास गणी शक सवत ५९८ मे रची हुई चूर्णिण पत्र (८) मे लिखा है। इस समय जैन साधुओ को श्रुत के पठन पाठन और चितन से वाचित रहना पडा। श्री स्कदिलाचार्य के सानिध्य मे मथुरा मे साधु-समुदाय एकत्र होकर कालिक श्रुत को सगृहीत किया।

वि० स० ११७५ मे श्री माल नगर (जिसको अभी भीनमाल कहा जाता है) मे ऐसा

दुष्काल पडा कि यहाँ के जैन लोग अपने नगर को छोडकर गुजरात जा बसे जो वापिस नही आए। गुजरात मे श्रीमाल जाति बहुतायत से है। उपरोक्त नगर से गई हुई है।

वि० स० १३१२ से १३१५ तक भयकर दुष्काल पडने का उल्लेख भी मिलता है और इस दुष्काल ने कुछ गुजरात इत्यादि प्रदेश को भी प्रभावित किया भद्रेश्वर नगर के श्रीमाल जाति के श्री जगडुशाह ने सिध, काशी, गुजरात इत्यादि प्रान्तो मे काफी अनाज भेज कर वहाँ दानशालाएँ खुलवाई, इसका वर्णन सर्वनन्द सूरिकृत जगडुचरित्र मे लिखा मिलता है। इसके लिए जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास देखना चाहिए।

वि स १३७६-७७ मे दुष्काल पडने का उल्लेख राज्यपट्टावली मे मिलता है, इसमे भी कहा गया है कि 'गुर्जर' जाति के स्वाभिमान ने इस दुष्काल मे विपुल दान दिया। एक ऐतिहासिक प्रशस्ति मे ऐसा भी लिखा गया है कि वि स १४६८ और उसके बाद दो वर्ष दुष्काल पडे। उस समय पर्वत और रामा ने दानशालाए खोलकर जनता की अच्छी सेवा की। इसके अतिरिक्त पेथड के प्रपौत्र ने भी अन्न इत्यादि से काफी सहायता पहुचाई।

विक्रम सवत् १५३९ मे गुजरात मे दुष्काल पडा। उस समय खेमा देदाणी नामक श्रावक ने जो कार्य किया उसका विवरण इस प्रकार है। खेमा देदाणी का जो रास रचा गया उसमे इस घटना का पूरा पूरा विवरण लिखा गया है।

गुजरात के सुल्तान महमूद देगडा के समय की बात है कि चापसी मेहता चापानेर के नगरसेठ थे और सादूलखाँ चापानेर का उमराव था। यह दोनो राज दरबार मे साथ साथ जा रहे थे। मार्ग मे एक चारण मिला जिसने नगरसेठ की बहुत प्रशसा की और अत मे कहा 'भलो भलो शाहा' बादशाह। उसके कहने का तात्पर्य यह था कि पहले शाह और फिर बादशाह।

सादूल खा को चारण के ऐसे वाक्य बुरे लगे और बादशाह को सारा वृतान्त कहा। बादशाह ने चारण को बुलाकर पूछा क्यो बे बणिये की इतनी तारीफ क्यो करता है। चारण ने कहा इनके पूर्वजो ने बहुत बडे बडे कार्य किए हैं। बादशाह ने कहा क्या—बादशाह के पहिल शाह शब्द का प्रयोग हो सकता है।

चारण ने उत्तर मे बताया कि शाहा लोगो मे इतनी शक्ति है कि वह दुनिया का भला कर सकते हैं। १३१५ के दुष्काल मे इसी शाहा के परिवार जगडूशाह ने प्रजा को मरने से बचाया था। भवितव्यता से दूसरे वर्ष ही ऐसा दुष्काल पडा कि बादशाह के राज्य मे अन्न नही मिलने से हाहाकार मच गया। नदियो और तालाबो के पानी सूख गए, वरनो की तृप्ति करने वाले पेय नही आने से निराशा छा गई। बादशाह ने विचार

किया चारण ने जो शाहा की प्रशसा की थी उसकी परीक्षा का समय आ गया है। चारण को वुला कर कहा कि तू अपनी कही गई बात को सिद्ध कर, अन्यथा दण्ड दिया जायेगा। मुसलमानो के राज्य मे सब कुछ हो सकता था।

अत चारण को घबराहट होना स्वभाविक था। फिर भी चारण को विश्वास था कि ऐसे विकट समय मे शाहा लोगो की सहायता से ही कार्य हो सकता है। वह चापाजी नगर सेठ के यहाँ गया और कहा सेठजी इस समय आपने उदारता नही बतलाई तो बादशाह मुझे तो मौत के घाट उतारेगा ही आपकी भी यह शाह पदवी रहने की नही है। सेठ ने गम्भीरतापूर्वक कहा सब कुछ ठीक ही होगा। बादशाह से १ महीने की अवधि माँग लो। चारण ने ऐसा ही किया जैसा ऊपर बताया गया है। चाँपसी महता चापानेर का नगर सेठ था। उसने सारे महाजनो को एकत्रित कर बीती बात सुनाई। सब ने इस कार्य मे सहायता देने का वचन दिया, किन्तु यह साधारण कार्य तो था नही। किसी ने १ दिन का किसी ने २-३-५ दिन तक व्यय अपने द्रव्य से करने को कहा। बहुत से धनाढ्य परिवार निवास करते थे। अत ४ महीने की मितियाँ मँडाई, फिर भी आठ महीने बाकी थे उसके लिए टीप लेकर बाहर जाने का निश्चय हुआ, नगर सेठ व दो चार और अच्छे सज्जनो ने इस कार्य के लिए प्रस्थान किया।

इस राज्य मे सबसे बडा शहर पाटण था और वहाँ कई धनाढ्य रहते थे। अत चापा सेठ व अन्य सज्जन वहाँ पहुँचे। बडा प्रयत्न करने पर २ महिने की मितिया वहाँ मडी। वहाँ से धोलके गए वहाँ १० मितियाँ मडी। इस तरह १६० दिन मड गए किन्तु इस कार्य के करने मे २० दिन लग गए। बादशाह को १ महिने मे उत्तर देना था। अब केवल १० दिन ही बाकी रहे और कार्य आधा ही हुआ। अत चाँपाजी को चिंता होना स्वाभाविक था। फिर भी यह कार्य किए बगैर छुटकारा नही था। अत धोलका से धधुका जाने के लिए रवाना हुए। मार्ग मे एक छोटा सा ग्राम आया जिसका नाम 'हडाला' था। यहा श्री खेमा देदाणी रहता था। खेमा अपनी भैस को पानी पिलाने कुए पर गया।

उधर धधुका जाने हेतु आए हुए सेठो को देख खेमा ने कहा—'सेठ साहब मेरी विनती सुनो। खेमा वाहर का रहने वाला था। भेषभूषा भी ठीक नही थी अत सेठो ने समझा कुछ मागने आया है। उन्होने कहा जो कहना हो कह दो। खेमा ने कहा 'भोजन का समय होने वाला है। आप मेरे यहाँ पधार कर भोजन कर आगे पधारो।' प्राचीन समय मे कैसा अतिथि-सत्कार था। बगैर जानपहचान अपने गाँव मे आए हुए को भोजन कराए बगैर नही जाने देना अपना कर्त्तव्य समझते थे जब कि आज के युग मे भोजन की बात को टालने का प्रयत्न किया जाता है। आखिर सेठो ने खेमा की विनती स्वीकार की और उसके साथ उसके घर की ओर चल दिए। घर साधारण कच्चा बना हुआ था न फरनीचर

था, न कोई शालीनता थी फिर भी स्वच्छ व साफ था। एक मॉचा ला कर विछा दिया। सब वहाँ बैठ गए, खेमा विनयवान था। उसकी स्त्री लक्ष्मी थी। उसने मिष्ठान्न भोजन भावभक्तिपूर्वक कराया। इसके वाद खेमा ने पूछा—श्रीमान ! आप वडे शहर के रहने वाले सेठ लोग धु धका क्यो पधार रहे हैं आपत्ति न हो तो मैं जानना चाहता हूँ ? खेमा के मिष्ठवचनो से सेठ प्रभावित हुए और जो वनाव वना था सव कह सुनाया और खेमा से कहा यथाशक्ति आप भी इसमे कुछ सहायता रूप धनराशि दे तो अच्छा हे। खेमा सरलस्वभावी पिता का आज्ञाकारी सुपुत्र था। अत उसने कहा मैं अपने पिताजी से पूछ कर उत्तर देता हूँ। खेमा के पिताजी वृद्ध थे। अन्दर एक तरफ सोते थे खेमा ने सारा वृत्तात सुनाया। खेमा के पिता ने कहा, वत्स ! ऐसा अवसर कभी आने वाला नही है। शाहा की लाज रहती है। अपने पास धन की कमी नही है। यह शहर मे रहने वाले प्रतिदिन शुभकार्य मे पैसा खर्च करते ही हैं। हम इससे वचित रहते हैं। घर वैठे गगा आगई है, अत तू बारह महिने का खर्चा देना स्वीकार कर, यश का भागी वन।

खेमा तो पहिले से ही यह चाहता था फिर पिताजी ने स्वीकृति दे दी। अव क्या देर थी। आया उन सेठो के पास और बोला—सेठ साहब ! यह लाभ तो मुझे ही लेने दीजिए। सेठो ने सोचा यह पागल तो नही हो गया है। चापासर मे ४ महीने और पाटण मे दो महीने मडे। यह १२ महीने का खर्चा देने को कहता है। यह इस वात को समझ नही सका है, अत ऐसा बात करता है। उन्होने कहा बन्धु ! सोच समझ कर वोलना चाहिए। लक्षाधिपति जहाँ बसते हैं वहाँ भी वर्ष भर का खर्चा देना कठिन हो गया तो आपकी क्या हस्ती है ? जो कुछ भी एक दो मिति मडाना चाहे मडा दे। मालूम है कितना खर्चा होगा ? खेमा ने कहा—कितना भी हो यह लाभ तो मुझे ही मिलना चाहिए। सेठ हैरान थे। यह क्या कह रहा हे। अन्त मे खेमा समझ गया कि इनको मेरा रहन-सहन देख कर सदेह होता है। उसने कहा—सेठ साहब ! अन्दर पधारो। सेठो को साथ ले जाकर जब उसने अपने भडार खोले तो सेठ लोग देखकर चकित हो गए। उन्होने कहा धन्य है ऐसे भाग्यशाली को ! हमारा सारा गर्व चूर हो जाता है। हमारी सपदा तो इसके १ हीरे और ककर जितनी भी नही है। सेठो ने उसका आभार मानकर सम्मान के साथ अपने साथ लेकर चपासर जाने को उतावले हो गए। तीसरे दिन बादशाह के दरबार मे चारण को साथ लेकर सब महाजन एकत्रित होकर उपस्थित हुए। बादशाह ने पूछा—२५ दिन हो गए हैं। क्या अपनी इज्जत रख सकोगे ? नगर सेठ ने गर्व के साथ कहा—हमारी इज्जत तो बनी ही रहेगी। हमारे यहाँ तो ऐसे भाग्यशाली हैं कि एक वर्ष का खर्चा एक ही व्यक्ति दे सकता है। यह सुनकर वादशाह को आश्चर्य हुआ और खेमा की ओर देख कर कहा—सेठ आपके कितने ग्राम हैं ? उसने कहा दो, एक पली और एक पायली। उसने दोनो का अर्थ बताया—पली से तेल बेचा जाता है और पायली से अन्न खरीदा जाता है—यही मेरी

जागीरी है। धर्म के प्रभाव से मैं सुखी हूँ और यह जो शुभ अवसर मेरे हाथ लगा है मैं अपना सौभाग्य समझ रहा हूँ। बादशाह ने प्रसन्न होकर शाबासी दी और चारण के कहे हुए वचन अक्षरक्ष सत्य प्रमाणित हुए इसका उसको सतोप हुआ।

श्री खेमा ने वर्ष भर गुजरात की जनता को अन्न देकर मरने से बचाया और उन सब की आशीश से फला-फूला। उसने यात्रा व अन्य शुभ कार्यो मे भी अपना धन व्यय किया।

आज खेमा ससार मे नही है, किन्तु उसका किया हुआ परोपकार का कार्य स्वर्ण अक्षरो से लिखा हमे प्रेरणा दे रहा है।

धन्य खेमा शाहा तुम्हारी उदारता व साहस को!

दानवीर भामाशाह

ले० चदनमल नागौरी, छोटी सादडी (मेवाड)

भामाशाह नाम से इतिहासकार परिचित हैं। आप ओसवशीय कावडिया गौत्र के वीर पुरुष थे। मेदापटदेश मे महाराणा साँगा के बाद महाराणा उदयसिहजी हुए जिन्होने उदयपुर बसाया। आप के राजाकाल मे मेवाड की उन्नति नही हो पाई। आप के शासन काल मे बादशाह ने मेवाड के कई किले सर कर लिए और समय सयोग ऐसा आया कि चित्तौड का किला भी बादशाह के आधीन हो गया। यह घटना मेवाड देश की पराजय-सूचक थी। इस किले को अविचल और सजीवन मानते थे और देश की आबरू किले के कारण प्रसिद्धि मे आई थी। दुनिया मे किले बहुत हैं, परन्तु कहावत है कि "गढ नो चितौड गढ और सब गढैयाँ" कारण यह है कि इस किले पर कृपि, जलाशय और आवास का ठाठ था। किले मे रहकर सेना सग्राम करती, वरसो तक सग्राम करने पर भी अन्न-जल से वचित नही रहते थे। पहाड पर किला होते हुए भी जल-स्रोत के कारण अटूट जल था। एक स्थान पर गौमुखी झरना है जो अब तक विद्यमान है, परन्तु यह पता नही कि यह कहाँ से आया है। मूल स्थान का पता अभी तक नही पा सके और तालाब हुए भी विशेष

थे, अत अन्न उत्पन्न करने मे भारी सहायता मिलती थी । इस कारण गढ तो चितौडगढ अपनी विशेषता, अद्वितीयता के कारण कहलायेगा ।

महाराणा प्रताप ने देश हित और निज गौरव के लिए तन-मन-धन और बल-शक्ति का बलिदान दिया । आप के कर्तव्य काल का इतिहास देखते आप की जोड का मिलना कठिन है । आपने कई बार बादशाह की सेना को पराजित किया । लोहा लेने की शक्ति-बल का वर्णन "टाड राजस्थान" मे विशेष रूप से किया है ।

ओसवशीय भामाशाह आपके दीवान पद पर थे । राजशासन सचालन मे आपकी निपुणता का वर्णन वीर विनोद ग्रन्थ मे और अन्य पुस्तको मे विस्तार से लिखा है ।

बादशाह की सेना पराजित होने से अकबर बादशाह को भारी दुख हो रहा था कारण लाखो की सख्या मे सेना थी । मेवाड मे तो बाईस हजार जन सेना मे होने का उल्लेख मिलता है । बादशाह की सेना ने बाईस बार आक्रमण किया, परन्तु विजय नही पाई । तब बादशाह ने अपने पुत्र सलीम के नेतृत्व मे महाराजा मानसिंह को सेनाधिपति बना कर भेजा और हल्दी घाटी की वीर भूमि पर घमासान युद्ध हुआ । प्रचड आक्रमण था । इस युद्ध मे कई योद्धा पुरुष थे । प्रधान भामाशाह शक्तिशाली थे, आप भी शस्त्रसज्जित हो महाराणा प्रताप के साथ ही लोहा ले रहे थे । भामाशाह की सलाह को प्रताप मान देते थे । समय ने पलटा खाया और पराजय के चिह्न दिखाई देने लगे । कई वीर क्षत्रिय योद्धा और भामाशाह ने प्रताप को युद्ध क्षेत्र से हटाने का प्रयत्न किया, परन्तु प्रताप पीठ दिखाना नही चाहते थे । आपने कहा कि क्षत्रियत्व को कलकित नही करूँगा चाहे यही प्राण पूरे हो जायँ । आपने किसी की एक न मानी । भामाशाह ने समय देख कहा—देश का भला चाहते हो तो इस समय हट जाइये । इतने मे राणाभक्त राजपूत अधिक बल से लोहा ले रहे थे ।

प्रताप हट कर रहे थे । इतने मे वीरशिरोमणि, बडी सादडी के उमराव ने प्रताप को बलपूर्वक हटा कर, आप उनकी जगह खडे हो, लोहा लेने लगे । जितना बल या कला थी, बुद्धि थी, उसका उपयोग किया गया । सेना अल्पसख्या मे थी, परन्तु अल्पसख्यक भी लड रहे थे । अन्त मे पराजय आती देख रण भूमि से हट गए । महाराणा प्रताप तो कुभलमेर किले में पहुंच गये थे । समय ने साथ नही दिया । भोजन पानी के अभाव से सेनानी चल बसे और धनहीनता आने से निवास, परिवार और शिशुओ को लेकर मेवाड़ का त्याग कर गिरिगुफा मे जाने की ठान ली । आपत्तिकाल आता है तब घबराहट का पार नही आता । प्रताप व परिवार अन्नाभाव से घास के बीज और वन-फल का भोजन करते थे । धीरज कहाँ तक रक्खे ? पिछली रात को विदा होना था । निंद्रा का नाश तो हो ही चुका था । शस्त्र सज धज कर बैठे थे । इतने मे मेवाड के सपूत देशभक्त, राज-

भक्त भामाशाह का आगमन हुआ, आपने कहा—'मेवाड का त्याग कर प्रयाण करना तो कायरो का काम है, देश त्यागना तो कुल के कलक लगाने के बराबर है। बाहुबल से वैरी को पराजित कीजिए। घबरा कर जाना कायरता है। मैं हर्गिज नही जाने दूगा। अतएव सेना एकत्र कीजिए और फिर से बदला लीजिए। प्रताप बोले—'सेना एकत्र करना मामूली बात नही है। धन चाहिए, वह कहाँ से लाऊँ। उत्तर दिया—जितना धन चाहिए मैं नजर करूँगा। धन की कमी नही है। सारी सम्पति देश हेतु है, प्रताप सदिग्ध हो गए। सोचा पुष्कल धन चाहिए। भामाशाह की विनती पर सदेह हुआ। भामाशाह चतुर थे। भाँप गए, आपने कहा—मुझे पवित्र करने मेरे घर पधारिए। तत्काल उठे। पाँवो मे बल आ गया। तेजी से भामाशाह के आवास पर आए, भामाशाह का परिवार अपार हर्ष मे विभोर हो गया। मोतियो का थाल भर आपको बधाया गया। और भामाशाह ने निज सम्पति का अवलोकन करवाया। देखते ही हर्ष का पार नही रहा। आपने भामाशाह को धन्यवाद दिया। और कहा 'वाहरे सपूत राजभक्त। तूने मुझे अनमोल भेट दी।' प्रताप परम प्रसन्न थे। भामाशाह साथ ही थे। निज स्थान पर वापिस आए और प्रात ही सेना एकत्र करने की घोषणा की। भामाशाह के धन-बल से फिर सग्राम हुआ और विजय पाई। इस घटना का सम्बन्ध भामाशाह के जीवन से है। एक जैन-कुल-भूषण, वीर-शिरोमणि, भामाशाह नाम अमर कर दिया। आपने देशहित मे जो हाथ बंटाया और राजसेवा कर गौरव पाया वह बेजोड है।

भामाशाह दान गुण से परिचित थे। आपकी उदारता जगजाहिर थी। जिसका सक्षिप्त वर्णन श्रीकेशरियाजी तीर्थ के इतिहास, दूसरी आवृति की प्रस्तावना मे छपा है। उसे उद्धृत करते हैं।

'इस पुस्तक की प्रथमावृति प्रकाशित होने के बाद हमे भामाशाह की वशावली का पता लगा जिसमे तीर्थ केशरियाजी ने ध्वज, दण्ड चढाने व जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख है। यह सम्भव है, क्योकि भामाशाह की राजसेवा, सघसेवा, जातिसेवा और धर्मश्रद्धा प्रशसनीय थी। जिसका वर्णन साढे चम्मोतरशाह के वर्णन मे भी आया है जिसकी नकल हमारे पास है, उसमे पता चलता है कि भामाशाह ने तीर्थयात्रा कर लेण दी और ध्वज-दड चढाने की प्रतिलिपि हम उदधृत करते हैं।

'सवत १६४३ वर्ष माह सुदी तेरस शाह भामाजी केन धुलेवरा श्री ऋषभदेवजी महाराज रा मदिर को जीर्णोद्धार कारा पितगकराया, दड प्रतिष्ठा कराई, पछे फेर समत १६५२ वर्ष से लगात समत १६५३ वर्षे सुधी माघ शुक्ला १३ तिथी शाह भामाजी सर्व देश री यात्रा कीधी अने लेणवारी ६९,००००० गुणहत्तर लाख खर्च किया। पुन्यार्थ मेदपाट, मारवाड, मालवो, मेवाड, आगरा, अहमदाबाद, पाटण, खम्भात, गुजरात, काठिया-

बाड, दिखण, वगैरा सर्व देश लेण वारी। मोहर एक (सोने की मोहर) नाम सयहस्ते दत्वा बामणा ने जीव धर्मदराय प्रवलदान दीधा। भोजक पोखरणा पोलकाल ने जगनहज्जी ने मोहरा पाँच से रो वटवो, मोत्या री माला एक दीवी, घोडा पाच से सर्व करी सुकादान एक लाख दे अजाचूकता कीदा। गुरा ने जाये, परणे मोहरदो चवरी री लाग कर दी। पोसल रा भट्टारकजी श्रीनरवद राजेन्द्रसूरीजी ने सोने री मूत्र वोहरा-व्या, मोत्या री माला एक, कडा जोडी एक, डोरो एक गच्छ, पेरामणी दी दी' आदि वर्णन है।

सक्षेप भामाशाह का जीवनवृत प्रशसा योग्य है। धर्मश्रद्धा अनुमोदनीय है। विशेप वर्णन इतिहास मे है। यहाँ तो सक्षेप वर्णन भूमिका तुल्य लिखा हे। अस्तु—

मंत्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत

श्री भँवरलाल नाहटा, बीकानेर

इस ग्रन्थ मे जैन दानवीर, सूरवीर, परोपकारी महापुरुपो का जीवन - परिचय देने का हमारा विचार हुआ और ऐसे पुरुपो के जीवन-चरित्र एकत्रित करने का प्रयास किया। श्री कर्मचन्दजी वच्छावत वीकानेर के राज्यमत्री थे और उन्होने जो कार्य किए वे अनुमोदनीय एव अनुकरणीय होने से उनका जीवन-परिचय हमारी प्रार्थना पर नाहटाजी ने लिखकर भेजा। इसके लिए हम उनके आभारी है। लेख देर से आने और ज्यादा लम्बा होने से अक्षरश उसे स्थान नही दे सके। सक्षिप्त मे प्रकाशित कर रहे है। आशा है लेखक महोदय हमे क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

ओसवाल वश की स्थापना का समय ऐतिहासिक दृष्टि से इतना प्राचीन नही लगता। सम्भवतः ६-७वी ८वी शताब्दी मे जैन जातिया सगठित हुई हो। इन जातियो मे सबसे अधिक विस्तार ओसवाल जाति का हुआ। कहते हैं कि इस जाति के १४४४ गोत्र थे। इनमे से अनेक गोत्रो के मूल पुरुपो को खरतरगच्छ के आचार्यो ने जैन धर्म का प्रतिबोध दिया था। इनमे बोथरा बच्छावत भी एक है। बोहिथ नामक व्यक्ति से बोथर गोत्र प्रचलित हुआ और इस गोत्र के वच्छराज या बछोजी की सतान बछावत कहलाई। इसी परम्परा मे १७वी शताब्दी के महान मत्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत हुए

आपका जन्म वि स १५९९ के पोष कृष्ण १० को हुआ। आपके पिताजी का नाम सग्रामसिहजी था जो राज्य के मुख्यमत्री थे। श्री कर्मचन्दजी के लघुभ्राता का नाम जसवत था। श्री कर्मचन्दजी की जन्मपत्री 'राजस्थान भारती' मे प्रकाशित हो चुकी है। कर्मचन्दजी का भाग्य प्रबल था। पूर्वभव में अच्छे कर्म किये थे अत अच्छे घराने मे उत्पन्न हुए। लाडप्यार में पले, धार्मिक सस्कार मिले और विचक्षण बुद्धि के कारण आपको मत्रीपद भी मिला। बीकानेर बसाने मे आपका पूर्णतया सहयोग रहा। यहा का किला भी आपकी ही देखरेख मे बना। बीकानेर बसाते समय एक-एक जाति व गोत्र वालो की पृथक-पृथक गवाडी की सुन्दर व्यवस्था की जो आज भी बीकानेर मे दिखाई देती है।

किला बन जाने के बाद बीकानेर के राजा रार्यसिह से किसी बात पर मनमुटाव हो गया और कर्मचन्दजी बीकानेर छोड कर देहली के सम्राट अकबर के पास चले गये जहा इनको सम्मान मिला और देहली दरबार मे ही रहने लगे। दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए मिर्जा इब्राहिम आ रहा है ऐसा समाचार सुन कर कर्मचन्दजी फौज सहित उनके सामने गए। नागौर के समीप युद्ध मे उसको परास्त किया। राजा रार्यसिह कर्मचन्द की बढती हुई कीर्ति को देखकर मन ही मन जलता था और अवसर आने पर इसको नीचे गिराने की ताक मे था। कर्मचन्द भी राजा की इस बुरी नीयत से सचेत थे और वह हर समय सभल कर रहते थे। यो राजक्रिया के अनुसार दोनो एक दूसरे से बडा प्रेम बताते थे किन्तु अन्दर से रायसिह कर्मचन्द को समाप्त करने की सोचता था।

अकबर की ओर से रार्यसिह के साथ फौज लेकर गुजरात मे गये और मिर्जा मोहम्मद-हुसेन को परास्त किया और सोजत, समियाणा आदि को प्राप्त कर जवालीपुर के स्वामी को जीतकर रार्यसिह के चरणो मे गिराया। बादशाह ने इस कार्य से प्रसन्न होकर आबू मे मन्दिरो की रक्षा हेतु फरमान लिख दिया। मन्त्री ने वहाँ जाकर भगवान के दर्शन किए। और वहाँ से सिरोही जाकर बन्दीजनो को छुडवाया। वि० स० १६३५ के दुष्काल मे १२ महीने तक दानशालाएँ चालू रखी और बिना किसी जाति भेद के प्रजा की सेवा की। मुगल तुरमसखा द्वारा शिवपुरी व सिरोही को लूटकर लाई गई सहस्रो प्रतिमाओ को सम्राट अकबर से प्राप्त कर बीकानेर लाकर विराजमान की जो अद्यावधि पूजी जाती हैं। इस समय पैरो मे सोना कोई पहन नही सकता था। सम्राट अकबर ने कर्मचद की कार्य-कुशलता और युद्ध मे वीरता देख प्रसन्न होकर इनको व इनकी पत्नी को सोना बक्षीष किया।

इन्होने शत्रुञ्जय, गिरनार इत्यादि तीर्थो की यात्रा कुटम्ब सहित की। जयसागर उपाध्याय से ग्यारह अगो को सुना और सिद्धात लिखाने मे भी लक्ष्मी का सदुपयोग किया।

रार्यसिह अन्दर से अप्रसन्न होते हुए भी बाहर से कर्मचन्द के प्रति सहानुभूति बताना

था । वह समझता था कि इस पर बादशाह अकबर की कृपा है । कभी ऐसा न हो कि मुझ पर हाथ सफा कर बैठे अत कर्मचन्द जो भी कहता वह करने को तैयार रहता । कर्मचन्द भी पक्का था वह अपने लिए कुछ नही कहता । जब रायसिह कर्मचन्द से कुछ कार्य की माग करने को कहता तो परोपकार की कुछ माग कर लेता । बीकानेर राज्य मे कुंभार, तेली आदि समस्त लोग चौदस, पूनम और अमावस एव चतुर्मास के चार महीनो मे आरम्भ (हिंसायुक्त व्यापार) नही करे ऐसी माँग को महाराजा ने स्वीकार कर सनदे लिखदी ।

जैन धर्म व गुरुओ के ऊपर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी । प्रतिदिन उनकी ओर से मन्दिरो मे स्नात्र पूजा चालू रहती थी । फलौदी मे दादाजी श्री जिनदत्तसूरीश्वरजी व कुशलसूरि-श्वरजी के स्तूप निर्वाण कराये ।

मत्रीश्वर की पत्नी जीवादे और अजायवदे के पुत्रजन्म की सूचना बादशाह अकबर को मिलने पर उन्होने उनके नाम भाग्यचद और लक्ष्मीचद रखा ।

कर्मचन्द पर बादशाह अकबर की पूर्ण कृपा थी । अकबर बादशाह मुसलमान होते हुए भी प्रत्येक धर्म के धर्मगुरुओ से उपदेश सुनने की तमन्ना रखता था । एक समय अपने दरबार मे जिनचन्द्रसूरि की महिमा सुनी । बादशाह ने कर्मचन्द को अपने धर्मगुरु को देहली बुलाने को कहा । बादशाह का शाही फरमान भेजकर गुरु महाराज को पधारने की प्र.र्थना की । श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वरजी दिल्ली पधारे तो उनका स्वागत राजशाही ठाठ से कराकर बादशाह से धर्मगोष्ठी कराई । बादशाह विद्वतापूर्ण उपदेश से प्रभावित होकर जीवदया निमित्त फरमान लिख दिए । उसका विवरण श्रीजिनचन्द्रसूरि के जीवन - चरित्र मे है ।

अकबर बादशाह ने कर्मचन्द की सलाह से श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज को युगप्रधान पद की पदवी से विभूषित किया और उनके शिष्य मानसिहजी को आचार्य पद दिलाकर उनका नाम सिहसूरि रखा । कर्मचन्द ने इसका अठाई महोत्सव कराया और याचको को इतना दान दिया कि वस्तुपाल तेजपाल को भुला दिया ।

कहा जाता है कि इस उत्सव मे उन्होने लाखो रुपये व्यय किए । इस तरह जैन धर्म की ध्वजा फहराने व परोपकार करने मे कर्मचन्दजी ने जो कार्य किया शायद ही किसी ने किया हो ।

वश प्रबन्धवृति के अनुसार मन्त्री का स्वर्गवास वि०स० १६५६ मे चैत्र सुदि ८ को हुआ । राजा रायसिह तो मरते समय तक कर्मचन्द का कुछ बिगाड नही कर सका क्योकि इनके पुण्य प्रबल थे । किन्तु उसके पुत्र महाराज सूरसिह ने कर्मचन्द के पुत्र भागचन्द व लक्ष्मीचन्द को बीकानेर बुलाकर कुछ दिन उनको वहाँ सम्मान से रखा और स० १६७६

के फागण सुदि ३ को मकान के चारो ओर घेरा डलवा कर उनके कुटुम्ब का विनाश किया। भाग्ययोग से लक्ष्मीचन्द के दो पुत्र रामचन्द्र व रुगनाथचन्द्र उदयपुर अपने ननिहाल गए हुए थे, वे बच गए और उनके वशज अब तक विद्यमान हैं।

कर्मचन्दजी ने कई मन्दिरो के जीर्णोद्धार कराए। अपने गुरुओ के चरणो की कई जगह स्थापना की उसका एक बडा इतिहास है। उनके पुत्र लक्ष्मीचन्द ने वि० स० १६६१ के मार्गशीर्ष वदि ११ को महाराज सुरताण के राज्य मे सिरोही मे दोनो दादासाहब की मूर्तियो की प्रतिष्ठा कराई।

इस तरह हम कह सकते हैं कि मन्त्रीश्वर कर्मचन्दजी तलवार के धनी व युद्धनिपुण सैनानी थे। वे कलम पकडना जानते थे तो तलवार चलाना भी उन्हे आता था। जहाँ वे राज्यतत्र मे पटु थे वहाँ धार्मिक कार्यों को पूरा करने मे किंचित मात्र भी प्रमाद नही करते थे। सचमुच ऐसे महापुरुषो का जीवन हमारे लिए पठनीय एव अनुकरणीय है।

अथ नीसाणो करमचन्द मुहतै री मलभट्ट री कही लिख्यते

मल पहिली नाम ले पूरण ब्रह्म जहान का।
जिण धरती धारी नीर मे निरधार धर्या असमान का।
तिण पीछै समरू सारदा मोहि अक बतावे ज्ञान का।
मैं आदि वरनुँ करमचद नाम लियुँ पुरखान का।
सागर राजा देवडा नाडूल पहली थान का।
जिण देवलवाट बसाइ कै माल लिया मलवान का।
तिस पाटै उदया बोहिथराव जिण देस उजात्या भान का।
राणौ भयौ करन्न राव गढ लीया मछदर आन का।
जिण गिरद नवाया गढ गिल्या काल जवन्न खुरसान का।
मव साहस मधर ऊधरे, जिण जैन धर्या जीय ध्यान का।
सैत्रुंजै गिरनार जाइ कर नाम कहाया दात का।
फोफलीया भया तेजपाल धन सायर सात समान का।
वील्हा मुंहता मघली मन्न मत्र कुली दीवान का।
कडवा मुंहता महिपत चीतौड हुकमगढ रान का।

मेर महता मेर ही रिण खाग किमर करवान का।
माडण मुंहता भीम जांण भुज अरजन जैसे खान का।
ऊदा मुंहता मारका जिण सध बली वेवान का।
नागर दे मुंहता देवही कुल आलम सवे विहान का।

जेसल मुंहता करण का दे कचण बारै वान का।
बछराज मुंहता महि धनी जिण वल वव्या क्षत्रियान का।
कहु मुंहता करमसी जिण पाण रख्या बीकाण का।
वरसिंघ मुंहता ऊजला उजवालै दादान का।

नगराज मुंहता राजवी बल बोलन को अभिमान का।
नगै गई फेरी धरन करिकै बल वुद्धि समांन का।
तब सग्रामउ खाटे गढपती चढि दिली मज्या खत्रियान का।
अब करमचद आबू लीया जित कोटड रै अवरान का।

जिन पैतीसै (१६३५) द्रुग्भर मैं वड दान दिया धनधान का।
लाहोर महोछव करमचद कीया जुग प्रधान का।
पद वडा जिनसिंहसूरि कु दे आदर बहुमान का।
बेकीमत खरच्या दरब कोई कीमत करै नवियान का।

सवाकोडि नो गाम नौहाथीया पाचसै अैराकी रान का।
करमचद कुद्धा करै कुल आलम सबे जहान का।
खग तपै तिहु लोक मे लखमीचद सुजान का।
गुरु कै न्यातै मात्रकु गाव दीया तोसाम का।

परवार अमर करमैत धू जा जब लग गाव पुरान का।
वे करमचद मत्री भया दिल्ली के सुलतान का।

पंचम खंड

विविध लेख : गुजराती व हिन्दी भाषा में

अनुक्रमणिका

आराधक बनवानो मार्ग

लें० पू० पन्यासजी महाराज श्री भद्र करविजयजी गणिवर

[१]

[आ एक अमारा महान सद्भाग्यनी वात छे के श्री कापरडाजी तीर्थ स्वर्ण जयती महोत्सव ग्रन्थना प्रारभमा ज अमे श्री नमस्कार महामत्र आदि तात्त्विक विपयोना खास चितक परम पूज्य पन्यासजी म० श्री भद्र कर विजयजी गणिवरश्रीना मननपूर्ण बे निबधो मेलववा भाग्यशाली थया छीए। प० पू० पन्यासजी महाराजश्रीना हृदय मथनमाथी नीतरेली आ अमृतोदगारनी परपरा आजे चारे बाजू जडवादनी आगमा सतप्त जीवोने अमृत-स्नान करावी परम समता भावनी प्राप्तिमा जरूर हेतु भूत बनशे एवी अमने सपूर्ण श्रद्धा छे।]

सहजमलनो ह्रास अने भव्यत्वनो विकास

कर्मना सबधमा आववानी जीवनी पोतानी योग्यताने सहजमल कहेवाय छे अने मुक्तिना सबधमा आववानी जीवनी योग्यताने भव्यत्व स्वभाव कहेवाय छे। दरेक जीवनी योग्यता भिन्न भिन्न होय छे तेने तथाभव्यत्व कहेवाय छे।

सहजमलनो ह्रास अने तथाभव्यत्वनो विकास त्रण साधनोथी थाय छे। तेमा पहेलुं दुष्कृतगर्हा छे, बीजुं सुकृतानुमोदन छे अने त्रीजुं अरिहतादि चारनुं शरणगमन छे।

दुष्कृतगर्हानो प्रतिबधक मुख्यत्वे रागदोष छे, सुकृतानुमोदननो प्रतिबधक द्वेष दोष छे अने शरण गमननो प्रतिबधक मोह दोष छे। राग दोप ज्ञान गुण वडे जीताय छे। द्वेष दोष दर्शन गुण वडे जीताय छे अने मोह दोष चारित्र गुण वडे जीताय छे।

ज्ञान गुणनी पराकाष्ठा 'नमो' भावमा छे। दर्शन गुणनो पराकाष्ठा 'अर्हं' भावमा छे, अने चारित्र गुणनी पराकाष्ठा 'शरण' भावमा छे। ज्ञान गुण मगलरूप छे, दर्शन गुण लोकोत्तम स्वरूप छे अने चारित्र गुण शरणागतिरूप छे। ए रीते रत्नत्रयीनो विकास आत्मानी मुक्तिगमन योग्यतानो परिपाक करे छे अने ससारभ्रमण योग्यतानो नाश करे छे।

स्वदोष दर्शन अने परगुण दर्शन

चार वस्तु मगल छे, चार वस्तु लोकमा उत्तम छे अने चार वस्तु शरण करवा योग्य छे। मगलनी भावना ज्ञान स्वरूप छे। उत्तमनी भावना दर्शन स्वरूप छे। शरणनी भावना

ज्ञानदर्शन गुणनो विकास अरिहंतादिनी मंगलमयता अने लोकोत्तमताने जोवाथी अने तेमनु शरण स्वीकारवाथी थाय छे ।

दुष्कृत एटले स्वकृत अनंतानंत अपराध

अने

सुकृत एटले परकृत अनंतानंत उपकार

वीतराग परमात्मा निग्रहानुग्रह सामर्थ्ययुक्त अने सर्वज्ञसर्वदर्शित्व गुणने धारण करनारा होवाथी सर्व पूज्य छे ।

राग दोष जवाथी करुणागुण प्रगटे छे । द्वेष दोष जवाथी माध्यस्थ्य भाव प्रगटे छे । करुणा गुणनो स्थायी भाव अनुग्रह छे अने माध्यस्थ्य गुणनो स्थायी भाव निग्रह छे । जातनो पक्षपात ते राग छे । पोतानी जात सिवाय सर्वनी उपेक्षा ते द्वेष छे ।

राग ए स्वदुष्कृत गर्हानो प्रतिबन्धक छे अने द्वेष ए पर सुकृतानुमोदननो प्रतिबंधक छे । अही दुष्कृत एटले स्वकृत अनंतानंत अपराध अने सुकृत एटले परकृत अनंतानंत उपकार । पोताना अपराधनी गर्हा अने बीजाना उपकारनी प्रशंसा तो ज थाय के अप्रशस्त रागद्वेष जाय । ज्ञान दर्शन गुण रागद्वेषना प्रतिपक्षी छे। एटले रागद्वेष जवाथी एक बाजु अनंत ज्ञान दर्शन गुण प्रगटे छे अने बीजी बाजु निग्रहानुग्रह सामर्थ्य प्रगटे छे । अने ते बनेना कारणभूत करुणा अने माध्यस्थ्य भाव जागे छे ।

वीतराग एटले करुणाना निधान अने माध्यस्थ्य गुणना भंडार तथा वीतराग एटले अनंत ज्ञान दर्शन स्वरूप केवलज्ञान अने केवल दर्शनना मालिक, सर्व वस्तुने जाणनारा अने जोनारा छता सर्वथी अलिप्त रहेनारा । सर्व ऊपर पोतानो प्रभाव पाडनारा पण कोईना पण प्रभाव नीचे कदी पण नही आवनारा ।

आत्मामां रहेली अचिन्त्य शक्तिनो स्वीकार

वीतरागता ए आ रीते निष्क्रियता स्वरूप नही पण सर्वोच्च सक्रियतारूप (Most Dynamic) छे । ते क्रिया अनुग्रह-निग्रहरूप छे अने अनुग्रह-निग्रह ए रागद्वेषना अभाव-माथी उत्पन्न थयेल आत्मशक्तिरूप छे ।

आपणे जोयु के आत्मानी सहज शक्ति ज्यारे आवरण रहित थाय छे त्यारे तेमाथी एक बाजु सर्वज्ञता-सर्वदर्शिता प्रकटे छे । अने बीजी बाजु निग्रह अनुग्रह सामर्थ्य प्रगटे छे । ते बन्नेने प्रगटाववानो उपाय आवरण रहित थवु ते छे । आवरण रागद्वेष अने अज्ञानरूप छे। अज्ञान टालवा माटे स्व अपराधनो स्वीकार अने परकृत उपकारनो अंगीकार अने ए बन्ने पूर्वक अचिन्त्य शक्तियुक्त आत्मतत्वनो आश्रय अनिवार्य छे ।

चारित्र स्वरूप छे। ज्ञानवडे राग दोष जाय छे। दर्शन वडे द्वेष दोष जाय छे। चारित्र वडे मोह दोष जाय छे।

राग जवाथी पोताना दोष देखाय छे। द्वेष जवाथी बीजाना गुण देखाय छे अने मोह जवाथी शरणभूत आज्ञानु स्वरूप जणाय छे।

स्वदोष दर्शन दोषनी गर्हा करावे छे। परगुण दर्शन परनी अनुमोदना करावे छे अने आज्ञानु स्वरूप समजवाथी आज्ञाना शरणे रहेवानी वृत्ति पेदा थाय छे।

गुणवाननी आज्ञा ज स्वीकारवा योग्य छे। दोष जवाथी ज गुण प्रगटे छे। आज्ञानु आराधन करवाथी ज दोष जाय छे, तेथी आज्ञानु आराधन मोक्षने माटे थाय छे अने आज्ञानी विराधना ससार ने माटे थाय छे।

स्वमति कल्पनानो मोह आज्ञापालनना अध्यवसायथी ज जाय छे। अने ते जवाथी शरण स्वीकारवामा बल पेदा थाय छे।

अरिहतनु शरण, सिद्धनु शरण, साधुनु शरण अने केवली प्रज्ञप्त धर्मनु शरण अे अरिहतादि चारनी लोकोत्तमताना ज्ञान ऊपर आधार राखे छे। अे चारनी लोकोत्तमता ए चारनी मगलमयताना स्वीकार ऊपर आधार राखे छे। अे चारनी मगलमयता तेमना ज्ञान, दर्शन, चारित्रनी मगलमयताना आधारे छे। अने ज्ञान, दर्शन, चारित्रनी मगलमयता राग, द्वेष अने मोहनो प्रतिकार करवाना सामर्थ्यमा रहेली छे।

योग्यनु शरण लेवाथी योग्यता विकसे छे

जीवने सौथी अधिक राग स्वजात ऊपर होय छे। ते रागना कारणे पोतामां रहेला अनतानत दोपोनु दर्शन थतु नथी। स्वजातनो राग पर प्रत्ये द्वेषनो आविर्भाव करे छे। ए द्वेषना प्रभावे पर गुण दर्शन थतु नथी। स्वदोष दर्शन अने परगुण दर्शन न थवाना कारणे मोहनो उदय थाय छे। मोहनो उदय थवाथी बुद्धि अवराय छे। बुद्धिनु आवरण शरण करवा योग्यनु शरण स्वीकारवामा अतरायभूत थाय छे।

योग्यनु शरण न स्वीकारवाथी पोतानी अयोग्यता उपर काबू आवतो नथी पोतानी अयोग्यता कर्मबधनना हेतुओ प्रत्ये दुर्लक्ष्य करावे छे अने कर्मक्षयना हेतुओनु सेवन करवामा प्रतिबधक थाय छे, कर्म बधना हेतुओथी पराङ्मुख थवा माटे अने कर्मक्षयना हेतुओनी सन्मुख थवा माटे योग्यता विकसाववी जोईए।

योग्यनु शरण लेवाथी योग्यता विकसे छे। योग्यनु शरण लेवानी योग्यता स्वदोष दर्शन अने परगुण ग्रहणथी पेदा थायछे। रागद्वेषनी मदता थवाथी परगुण अने स्वदोषदर्शन थाय छे। अने रागद्वेषनी मदता ज्ञान-दर्शन गुणनो विकास थवाथी थाय छे।

ज्ञानदर्शन गुणनो विकास अरिहतादिनी मगलमयता अने लोकोत्तमताने जोवाथी अने तेमनु शरण स्वीकारवाथी थाय छे ।

दुष्कृत एटले स्वकृत अनतानत अपराध

अने

सुकृत एटले परकृत अनतानंत उपकार

वीतराग परमात्मा निग्रहानुग्रह सामर्थ्ययुक्त अने सर्वज्ञसर्वदर्शित्व गुणने धारण करनारा होवाथी सर्व पूज्य छे ।

राग दोष जवाथी करुणागुण प्रगटे छे । द्वेष दोप जवाथी माध्यस्थ्य भाव प्रगटे छे । करुणा गुणनो स्थायी भाव अनुग्रह छे अने माध्यस्थ्य गुणनो स्थायी भाव निग्रह छे । जातनो पक्षपात ते राग छे । पोतानी जात सिवाय सर्वनी उपेक्षा ते द्वेप छे ।

राग ए स्वदुष्कृत गर्हानो प्रतिबन्धक छे अने द्वेप ए पर सुकृतानुमोदननो प्रतिबधक छे । अही दुष्कृत एटले स्वकृत अनतानत अपराध अने सुकृत एटले परकृत अनतानत उपकार । पोताना अपराधनी गर्हा अने बीजाना उपकारनी प्रशसा तोज थाय के अप्रशस्त रागद्वेष जाय । ज्ञान दर्शन गुण रागद्वेपना प्रतिपक्षी छे। एटले रागद्वेष जवाथी एक बाजु अनत ज्ञान दर्शन गुण प्रगटे छे अने बीजी बाजु निग्रहानुग्रह सामर्थ्य प्रगटे छे । अने ते बनेना कारणभूत करुणा अने माध्यस्थ्य भाव जागे छे ।

वीतराग एटले करुणाना निधान अने माध्यस्थ्य गुणना भडार तथा वीतराग एटले अनत ज्ञान दर्शन स्वरूप केवलज्ञान अने केवल दर्शनना मालिक, सर्व वस्तुने जाणनारा अने जोनारा छता सर्वथी अलिप्त रहेनारा । सर्व ऊपर पोतानो प्रभाव पाडनारा पण कोईना पण प्रभाव नीचे कदी पण नही आवनारा ।

आत्मामां रहेली अचिन्त्य शक्तिनो स्वीकार

वीतरागता ए आ रीते निष्क्रियता स्वरूप नही पण सर्वोच सक्रियतारूप (Most Dynamic) छे । ते क्रिया अनुग्रह-निग्रहरूप छे अने अनुग्रह-निग्रह ए रागद्वेषना अभाव-माथी उत्पन्न थयेल आत्मशक्तिरूप छे ।

आपणे जोयु के आत्मानी सहज शक्ति ज्यारे आवरण रहित थाय छे त्यारे तेमाथी एक बाजु सर्वज्ञता-सर्वदर्शिता प्रकटे छे । अने बीजी बाजु निग्रह अनुग्रह सामर्थ्य प्रगटे छे । ते बन्नेने प्रगटाववानो उपाय आवरण रहित थवु ते छे । आवरण रागद्वेष अने अज्ञानरूप छे । अज्ञान टालवा माटे स्व अपराधनो स्वीकार अने परकृत उपकारनो अगीकार अने ए बन्ने पूर्वक अचिन्त्य शक्तियुक्त आत्मतत्वनो आश्रय अनिवार्य छे ।

आत्म तावनो आश्रय अेटले प्रथम आत्मामा रहेली अचिन्त्य शक्तिनो स्वीकार। (Consciousness of the Eternal Soul Power) ए स्वीकार थवाथी अनतानुवधी राग-द्वेष टली जाय छे। पूर्वे कदी न अनुभवेलो एवो समत्व भाव प्रगटे छे। ए समत्व भाव अपक्षपातिता अने मध्यस्थवृत्तितारूप छे।

मोटामा मोटो पक्षपात स्वदोष छे। पोते निर्गुण अने दोपवान होवा छता पोताने निर्दोष अने गुणवान मानवानी वृत्तिरूप पक्षपात समत्व भावथी टली जाय छे।

वीतराग अवस्था ज परम पूजनीय छे

पोते करेला उपकारना महत्त्व जेटलु ज के तेथी अधिक परकृत उपकारोनु महत्व छे, एवो मध्यस्थवृत्तितारूप समत्व भाव ए द्वेष दोपना प्रतिकार स्वरूप छे। उभय प्रकारनु समत्व रागद्वेषने निर्मूल करी आत्माना शुद्ध स्वभावरूप केवलज्ञान-केवलदर्शनने उत्पन्न करे छे। तेमा लोकालोक प्रतिभासित थाय छे, परतु ते कोईथी प्रतिभासित थतु नथी, केमके ते स्वयभू छे। तेथी वीतराग अवस्था ज परम पूजनीय छे अने तेने प्राप्त करवाना उपायभूत दुष्कृत गर्हा, सुकृतानुमोदन अने शरण गमन ए परम उपादेय छे।

वीतरागोऽप्यसौ देवो, ध्यायमानो मुमुक्षुभि ।
स्वर्गापवर्गफलद, शक्तिस्तस्य हि तादृशी ॥१॥

आ देव वीतराग होवा छता मुमुक्षु वडे ज्यारे ध्यान कराय छे त्यारे ते स्वर्गापवर्गरूपी फलने आपे छे केमके तेमनी निश्चित तेवा प्रकारनी शक्ति छे।

वीतरागोऽप्यसौ ध्येयो, भव्याना स्याद् भवच्छिदे ।
विच्छिन्नबन्धनस्यास्य, तादृग् नैसर्गिको गुण ॥

आ ध्येय वीतराग होवा छता भव्य जीवोना भवोच्छेदने माटे थाय छे। बधन जेओना छेदाई गया छे, तेओमा आ नैसर्गिक गुण होय छे।

वीतराग आत्माओनो स्वभाव ज तेमनु ध्यान करनाराओना रागद्वेष छेद करवानो छे 'स्वभावोऽतर्कगोचर ।' स्वभाव तर्कनो अविषय छे। वस्तु स्वभावना नियम मुजब वीत-राग वस्तुनो स्वभाव ज स्व पर भवोच्छेदक छे। कोई पण वस्तुस्वभाव तर्कथी अग्राह्य छे।

परार्थभाव ए ज साची दुष्कृत गर्हा
अने
कृतज्ञता गुण ए साचु सुकृतनु अनुमोदन

दुष्कृत मात्रनु प्रायश्चित्त परार्थवृत्ति छे। केमके परपीडाथी दुष्कृतनु उपार्जन छे तेथी तेनी विपक्ष परार्थवृत्तिनु सेवन तेना निराकरणनो उपाय छे।

कृति मात्र मन वचन कायाथी थाय छे। तेमा दुष्टत्व लावनार परपीडानो अध्यवसाय छे, अने ते अध्यवसाय राग भावमाथी, स्वार्थभावमाथी जन्मे छे। स्वार्थभावनो प्रतिपक्षीभाव परार्थभाव छे, तेथी परार्थभाव ए ज भव्यत्व परिपाकनो तात्त्विक उपाय छे, परन्तु ते परार्थभाव परपीडाना प्रायश्चित्त रूप होवो जोईए।

परार्थभावथी एक तरफ नूतन परपीडानु वर्जन थाय छे अने बीजी तरफ पूर्वे करेली परपीडानु शुद्धिकरण थाय छे। तेथी परार्थभाव ए ज साची दुष्कृतगर्हा छे। दुष्कृत गर्हणीय छे, त्याज्य छे, हेय छे, एवी साची बुद्धि तेने ज उत्पन्न थयेली गणाय के जेने सुकृत ए अनुमोदनीय छे, उपादेय छे, आदरणीय छे, एवो भाव स्पष्ट थयेलो होय।

परपीडा ए दुष्कृत छे, तो परोपकार ए सुकृत छे, परोपकारमा कर्त्तव्यबुद्धि पेदा थवी ए ज दुष्कृत मात्रनु साचु प्रायश्चित्त छे। परोपकार जेने कर्त्तव्य लागे तेनामा एक बीजो गुण उत्पन्न थाय छे, तेनु नाम कृतज्ञता छे।

बीजानो पोता ऊपर थयेलो उपकार जेने स्मरण पथमा नथी ते परोपकार गुणने समज्यो ज नहि। कृतज्ञता गुण सुकृतनुँ अनुमोदन करावे छे तेथी परोपकार वृत्ति दृढ थाय छे। एटलु ज नथी पण परार्थकरणो अहकार तेथी विलीन थईजाय छे। पोते जे कई परार्थकरण करे छे, ते पोता ऊपर बीजाओनो जे उपकार थई रह्यो छे तेनो शताश, सहस्राश के लक्षाश भाग पण होतो नथी परार्थभावनी साथे कृतज्ञता गुण जोडायेलो होय तो ज ते परार्थभाव तात्त्विक बने छे।

अरिहतादिनुं शरण गमन

परार्थवृत्ति अने कृतज्ञता गुण बडे दुष्कृतगर्हा अने सुकृतानुमोदनरूप भव्यत्व परिपाकना बे उपायो नु सेवन थाय छे। त्रीजो उपाय अरिहतादि चारनु शरण गमन छे। अहिं शरण गमननो अर्थ ए छे के जेओ परार्थभाव अने कृतज्ञता गुणना स्वामी छे, तेओने ज पोताना एक आदर्श मानवा, तेमना ज सत्कार, सन्मान, आदर बहुमानने पोताना कर्त्तव्य मानवा।

परार्थ भाव अने कृतज्ञता गुणना साचा अर्थी जीवोमा ते बे भावनी टोचे (Climax) पहोचेलाओनी शरणागति, भक्ति, पूजा, बहुमान वगेरे सहजपणे आवे छे। जो ते न आवे तो समजवु के तेने अतरथी दुष्कृतगर्हा के सुकृतानुमोदन थयेलु नथी। एटलु ज नही पण दुष्कृतगर्हा के सुकृतानुमोदननो भाव तेनामा उत्पन्न थयो होय तो पण ते सानुबध नथी। ज्ञान श्रद्धापूर्वकनो नथी।

ज्ञान अने श्रद्धाथी विहीन एवो दुष्कृतगर्हा अने सुकृतानुमोदननो भाव निरनुबध बने छे। क्षणवार टकीने चाल्यो जाय छे। तेथी तेने सानुबध बनाववा माटे ते बे गुणोने पामेला अने तेनी टोचे पहोचेला पुरुषोनी शरणागति अपरिहार्य छे।

ए शरणागति परार्थभाव अने कृतज्ञता गुणने सानुबध बनाववा माटेनु सामर्थ्य पुरु पाडे छे, वीर्य वधारे छे, उत्साह जगाडे छे अने तेमनी जेम ज्या सुधी पूर्णत्व प्राप्त न थाय अर्थात् ते बे गुणोनी क्षायिक भावे सिद्धि न थाय त्या सुधी साधनामा विकास थतो रहे छे। तेने अनुग्रह पण कहेवाय छे। साधनामा उत्तरोत्तर विकास वधारी सिद्धि सुधी पहोचाड-नार श्रेष्ठ प्रकारना आलबनो प्रत्ये आदरनो परिणाम अने तेथी प्राप्त थती सिद्धि ए तेमनो अनुग्रह गणाय छे। कह्यु छे के —

आलबनादरोद्भूतप्रत्यूहक्षययोगत ।
ध्यानाद्यारोहणभ्र शो, योगिना नोपजायते ॥

—अध्यात्मसार-

ऊँचे चढवामा आलबनभूत थनारा तत्त्वो प्रत्ये आदरना परिणामथी सिद्धिनी आडे आवता विघ्नोनो क्षय थाय छे अने ते विघ्नक्षयथी योगी पुरुषोने ध्यानादिना आरोहणथी भ्र श थतो नथी।

आलबनोना आदरथी थता प्रत्यक्ष लाभने ज शास्त्रकारो अरिहतादिनो अनुग्रह कहे छे।

अरिहतादि चारनु अवलम्बन स्वरूपना बोधनु कारण छे

जेनु आलबन लइने जीव आगल वधे छे तेनो उपकार हृदयमा न वसे तो ते पाछो पतनने पामे छे। एटले परार्थवृत्तिरूपी दुष्कृत गर्हा, कृतज्ञता गुणना पालन स्वरूप सुकृतानु-मोदना अने ते गुणोनी सिद्धिने वरेला महापुरुषोनी शरणागति, ए त्रणे उपायो मलीने जीवनी मुक्तिगमन योग्यता विकसावे छे अने भवभ्रमणनी शक्तिनो क्षय करे छे।

साची दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानुमोदना दुष्कृत रहित अने सुकृतवान तत्त्वोनी भक्ति साथे जोडायेली ज होय छे। तेथी एक भक्तिने ज मुक्तिनी दूती कहेली छे।

कृतज्ञता गुण सुकृतनी अनुमोदना रूप छे। परार्थ वृत्ति दुष्कृतनी गर्हा रूप छे। दुष्कृतनी गर्हारूप परार्थ वृत्ति अने सुकृतनी अनुमोदनारूप कृतज्ञताभावथी विशुद्ध थयेल अत करणमां शुद्ध आत्मतत्त्वनु प्रतिबिब पडे छे। शुद्ध आत्मताव अरिहत, सिद्ध, साधु अने केवली कथित धर्मथी अभिन्नस्वरूपवालु छे।

अरिहतादि चारनु शरण गमन ए मुक्तिनु अनन्य कारण छे। मुक्ति ए स्वरूपलाभरूप छे। स्वरूपनो बोध ए अरिहतादि चारना अवलबनथी थाय छे। अरिहतादि चारनु अवलबन स्वरूपना बोधनु कारण छे। आत्मामा आत्माथी आत्माने जाणवानु साधन अरिहतादि चारनु शरण-स्मरण छे। ए चारनु स्मरण ए ज तत्त्वथी आत्मस्वरूपनु स्मरण छे।

आत्मानु स्वरूप निश्चयथी परमात्म तुल्य छे, एवो बोध जेने थयेलो छे, तेने परमात्म स्मरण ए ज वास्तविक शरण गमन छे।

आत्मतत्त्वनु स्मरण विशुद्ध अंतःकरणमां थायछे

आत्मतत्त्ववनु स्मरण विशुद्ध अंत करणमा थाय छे। अंत करणनी विशुद्धि दुष्कृत-गर्हा अने सुकृतानुमोदनथी थाय छे।

दुष्कृत परपीडारूप छे। तेनी तात्त्विक गर्हा त्यारे थाय छे के ज्यारे परपीडाथी उपार्जन करेला पापकर्मने परोपकार वडे दूर करवानो वीर्योल्लास जागेछे।

परार्थकरणनो वीर्योल्लास ए ज परपीडाकृत पापनी साची गर्हाना परिणाम स्वरूप छे। दुष्कृत गर्हामा परार्थकरणनी वृत्ति छूपाएली छे। सुकृतानुमोदनमा परार्थकरणनु हार्दिक अनुमोदन छे। चतु शरण गमनमा परार्थकरण स्वभाववाला आत्मतत्त्वनो आश्रय छे।

आत्मतत्त्व पोते ज परार्थकरण अने परपीडाना परिहार स्वरूप छे। आत्मानो ते मूल स्वभाव प्राप्त करवा माटे ज परपीडानु गर्हण अने परोपकार गुणनु अनुमोदन छे।

शुद्ध स्वरूपने प्राप्त थयेला अरिहतादि चार सर्वथा परार्थकरणोद्यत होय छे। तेथी ते स्वरूपनु शरण स्वीकारवा योग्य छे, आदरवा योग्य छे, उपासना करवा लायक छे।

शुद्ध आत्मतत्त्व हमेशा पोताना स्वभावथी ज शुद्धिकरणनु कार्य करे छे तेथी ते ज पुन पुन स्मरणीय छे, आदरणीय छे, ज्ञेय छे श्रद्धेय छे अने ध्येय छे। सर्व भावथी शरण्य छे-शरण लेवा लायक छे।

ज्यासुधी स्वकृत-पोतेकरेला दुष्कृतनी गर्हा थती नथी, एक नानु पण दुष्कृत गर्हाना विषय विनानु रहे छे, त्या सुधी स्वपक्षपातरूपी रागदोषनो विकार विद्यमान छे एम समजवु। गर्हाना स्थाने अनुमोदना होवाथी ते मिथ्या छे, तेथी वास्तविक अनुमोदनानु स्थान जे पर सुकृत तेनी अनुमोदना पण साची थती नथी।

परकृत अल्प पण सुकृतनु अनुमोदन बाकी रही जाय छे त्या सुधी अनुमोदनना स्थाने अनुमोदनना बदले उपेक्षा कायम रहे छे अने ते उपेक्षा पण एक प्रकारनी गर्हा ज बने छे।

सुकृतनी गर्हा अने दुष्कृतनुँ अनुमोदन अंशे पण विद्यमान होय त्या सुधी साचुँ शरण प्राप्त थतुँ नथी। दुष्कृतनुँ अनुमोदन रागरूप छे अने सुकृतनुँ गर्हण द्वेषरूप छे। तेना पायामा मोह या अज्ञान या मिथ्याज्ञान रहेलु छे।

ए मिथ्याज्ञानरूपी मोहनीय कर्मनी सत्तामा अरिहतादिनुँ शुद्ध आत्म स्वरूप ओलखातुँ नथी केमके ते रागद्वेष रहित छे।

वीतराग अवस्थानो सूझ बूझ

रागद्वेष रहित शुद्ध स्वरूपनी साची ओलखाण थवा माटे दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानु-मोदन सर्वाश शुद्ध थवु जोईए। ए थाय त्यारे ज रागद्वेष रहित अवस्थावाननी साची

अरिहत अने सिद्धनु वीतराग स्वरूप छे। साधुनु निर्ग्रन्थस्वरूप छे अने केवलिकथित धर्मनु दयामय स्वरूप छे। धर्म ए ध्रुव छे, नित्य छे, अनत अने सनातन छे। तेनुं प्रधान लक्षण दया छे।

दयामा पोताना दुखना द्वेष जेटलो ज द्वेप बीजाना दुखो प्रत्ये पण जागे छे। पोताना सुखनी इच्छा जेटली ज इच्छा बीजाना सुखो प्रत्ये पण उत्पन्न थाय छे। ए इच्छा रागात्मक होवा छता परिणामे रागने निर्मूल करनारी छे।

दयामा बीजा बधाना दुखो प्रत्ये पोताना दुख जेटलो ज द्वेप छे। छता ते द्वेप, द्वेषवृत्ति ने अते निर्मूल करे छे। जेम काटाथी ज काटो नीकले छे अने अग्निथी अग्नि शमे छे तथा विषथी विप नाश पामे छे, ए न्याये रागद्वेषनी वृत्ति रूपी काटाने काढवा माटे सर्व जीवोना सुखनो राग अने सर्व जीवोना दुखनो द्वेप अन्य काटानु काम करे छे।

अप्रशस्त कोटिना राग द्वेपरूपी विपने शमाववा माटे बीजा विषनु कास करे छे। स्वजातना सुख विषयक राग अने स्वजातना दुख विपयक द्वेषरूपी आर्त्तध्याननी अग्निने बुझाववा माटे सर्वजीवोना सुखनी अभिलापारूपी राग अने सर्व दुखी जीवोना दुख प्रत्येनो द्वेष धर्मध्यान रूपी अग्निनी गरज सारे छे।

धर्मवृक्षना मूलमा दया छ तेथी धर्मवृक्षना फलमा पण दया ज प्रकटे छे

दया लक्षण धर्म ए रीते अप्रशस्त रागद्वेषनुं शल्य दूर करवामा साधनरूप बनी, जीवने सदाने माटे रागद्वेष रहित वीतराग अवस्था पमाडनार थाय छे।

वीतराग अवस्था अवश्य सर्वज्ञता अने सर्वदर्शिता अपावनारी होवाथी दया प्रधान धर्म, सर्वज्ञता अने सर्वदर्शिताने पमाडनार पण थाय छे। दया छे प्रधान जेमा एवो केवलिकथित धर्म जे कोई त्रिकरणयोगे यावज्जीवित प्रतिज्ञा पूर्वक साधनारा छे, तेओ साधु-निर्ग्रन्थ गणाय छे। रागद्वेषनी गाठथी घणा छूटेला होवाथी अने शेष अशथी स्वल्प कालमा ज अवश्य छुटनारा होवाथी तेओ पण शरण्य छे।

निर्ग्रन्थ अवस्था वीतराग अवस्थाने अवश्य लावनारी होवाथी ते प्रच्छन्न वीतरागता ज छे। दया प्रधान धर्मनुं प्रथम फल निर्ग्रन्थता छे अने अतिम फल वीतरागता छे। क्षयोपशम भावनी दयानुं परिपूर्ण पालन ते निर्ग्रन्थता छे अने क्षायिक भावनी दयानुं प्रकटीकरण ते वीतरागता छे।

निर्ग्रन्थता (साधु धर्म) ए प्रयत्न साध्य दयानुं स्वरूप छे अने वीतरागता ए सहज साध्य दयामयता छे। दया सर्वमा मुख्य छे, पछी ते धर्म हो के धर्मने साधनारा साधु हो के साधुपणाना फलस्वरूप अरिहत के सिद्ध परमात्मा हो।

धर्म वृक्षना मूलमा दया छे तेथी धर्म वृक्षना फलमा पण दया ज प्रकटे छे। साधु दयाना भडार छे तो अरिहत अने सिद्ध ए दयाना निधान छे। दयार्दृष्टि अने दयानी प्रवृत्तिमा तारतम्यता भले हो पण बधानो आधार एक दया ज छे, ते सिवाय बीजुं कशुं ज नथी।

अरिहत अने सिद्ध परमात्मानुं ध्यान ए कर्मक्षयनु असाधारण कारण छे

जीवनुं रूपातर करनार रसायणना स्थाने एक दया छे, ते कारणे तीर्थकरोए दयाने ज वखाणी छे। धर्मतत्त्वनुं पालन पोषण अने सवर्धन करनारी एक दया ज छे अने ते दुखी अने पापी प्राणीओना दुख अने पापनो नाश करवानी वृत्ति अने प्रवृत्तिरूप छे तथा क्षायिक भावमा सहज स्वभावरूप छे। ते स्वभाव दुखरूपी दावानलने एक क्षणमात्रमा शमाववा माटे पुष्करावर्त्त मेघनी गरज सारे छे। पुष्करावर्त्त मेघनी धारा जेम भयकर दावानलने पण शात करी दे छे, तेम आत्मानो सहज शुद्ध स्वभाव जेओने प्रगट थयो छे, तेओना ध्यानना प्रभावथी दुख दावानलमा दाझता ससारी जीवोना दुख दाह एक क्षणवारमा शमी जाय छे।

शुद्ध स्वरूपने पामेला अरिहतादि आत्माओनुं ध्यान तेमना पूजन वडे, स्तवन वडे, तेमनी आज्ञाना पालन आदि वडे थाय छे। शुद्ध स्वरूपने पामेला आत्माओनुं ध्यान ए ज परमात्मानुं ध्यान छे अने ए ज निज शुद्धात्मानुं ध्यान छे।

ध्यान वडे ध्याता ध्येयनी साथे एकतानो अनुभव करे छे ते समापत्ति छे। अने ते ज एक कर्मक्षयनुं असाधारण कारण छे। निज शुद्ध आत्मा द्रव्य, गुण अने पर्यायथी अरिहत अने सिद्ध समान छे, तेथी अरिहत अने सिद्ध परमात्मानुं ध्यान द्रव्य, गुण अने पर्यायथी पोताना शुद्ध आत्माना ध्याननुं कारण बने छे। कारणमाथी कार्य उत्पन्न थाय छे, ए न्याये अरिहत अने सिद्ध परमात्माना ध्यान वडे सकल कर्मनो क्षय थवाथी पोतानुं शुद्ध स्वरूप प्रगटे छे।

कर्मक्षयनुं असाधारण कारण शुद्ध स्वरूपनुं ध्यान छे। कह्यु छे के—

मोक्ष कर्म क्षयादेव,
स चाऽत्मज्ञानतो भवेत्।
ध्यानसाध्य मत तच्च,
तद्ध्यान हितमात्मन ॥१॥

सकल कर्मना क्षयथी मोक्ष उत्पन्न थाय छे। अने सकल कर्मनो क्षय आत्मज्ञानथी थाय छे। आत्मज्ञान परमात्माना ध्यानथी प्रगटे छे, तेनी पोताना शुद्ध आत्मस्वरूपना

लाभरूप मोक्ष मेलववा माटे परमात्माना ध्यानमा लीन थवु जोईये केमके ते ध्यान ज आत्माने मोक्षसुखनु असाधारण कारण होवाथी अत्यत हित करे छे।

स्वरूपनी अनुभूति

अरिहतादि चारनु शरण ए शुद्ध आत्मस्वरूपनु स्मरण करावनार होवाथी अने तेना ध्यानमा ज तल्लीन करनार होवाथी तत्त्वत शुद्ध आत्मस्वरूपनु ज शरण छे। अने शुद्ध आत्मस्वरूपनु शरण एज परम समाधिने अर्पनार होवाथी परम आदेय छे। ते माटेनी योग्यता दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानुमोदनथी प्राप्त थाय छे तेथी दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानु-मोदना पण उपादेय छे।

दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानुमोदना सहित अरिहतादि चारनु शरण ए भव्यत्व परिपाकना उपाय तरीके शास्त्रमा वर्णवेलु छे, ते युक्ति अने अनुभवथी पण गम्य छे।

दुष्कृतगर्हा अने सुकृतानुमोदन परार्थवृत्ति अने कृतज्ञता भावने उत्तेजित करनार होवाथी अत करणनी शुद्धता करे छे, ए युक्ति छे अने शुद्ध अन्त करणमा ज परमात्म स्वरूपनु प्रतिबिंब पडी शके छे, एवो सर्व योगी पुरुषोनो छे पण अनुभव छे।

समुद्र के सरोवर ज्यारे निस्तरग बने छे त्यारे ज तेमा आकाशादिनु प्रतिबिंब पडी शके छे। तेनी जेम अन्त करणरूपी समुद्र के सरोवर ज्यारे सकल्प विकल्परूपी तरगोथी रहित बने छे त्यारे ज तेमा अरिहतादि चारनुं अने शुद्धात्मानुं प्रतिबिंब पडे छे।

अत करणने निस्तरग अने निर्विकल्प बनावनार दुष्कृतगर्हा अने सुकृतानुमोदनना शुभ परिणाम छे अने तेमा शुद्धात्मानुं प्रतिबिंब पाडनार अरिहतादि चारनुं स्मरण अने शरण छे।

स्मरण ध्यानादि वडे थाय छे अने शरणगमन आज्ञापालनाना अध्यवसाय वडे थाय छे। आज्ञापालननो अध्यवसाय निर्विकल्प चिन्मात्र समाधिने आपनारो छे। अने निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि अर्थात् शुद्धात्मानी साथे एकतानी अनुभूतिने अग्रेजीमा Self Identification (सेल्फ आइडेन्टीफिकेशन) स्वरूपनी अनुभूति पण कहे छे।

ए रीते परंपराए दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानुमोदननुं अने साक्षात् श्री अरिहतादि चारना शरणगमननुं फल होवाथी ते त्रणेने जीवनुं तथाभव्यत्व, मुक्तिगमन योग्यत्व पकावनार तरीके शास्त्रमा ओलखाववामां आवेल छे, ते यथार्थ छे।

दुर्लभ एवा मानव जीवनमा ते त्रणे साधनोनो भव्यत्व पकाववाना उपाय तरीके आश्रय लेवो ए प्रत्येक मुमुक्षु आत्मानु परम कर्त्तव्य छे।

महामंत्रनी अनुप्रेक्षा

लेखक पू० पन्यासजी महाराज श्री भद्रकरविजयजी गणिवर

[२]

मननुं बल मन्त्रथी विकसे छे

नमस्कार मनुष्यनी पोतानी पुंजी छे । नमवुं ए ज मानवमन अने बुद्धिनुं तात्त्विक फळ छे । नम ए दैवी गुण अने आध्यात्मिक सपत्ति छे ।

बीजाना गुण ग्रहण करवानी शक्ति (Receptivity) नमस्कारमा रहेली छे । शरीरने मन करता वधु महत्त्व न मलवुं जोईए । शरीर ए गाडी छे अने मन ए घोडो छे । मनरूपी घोडो शरीररूपी गाडीनी आगळ जोडवो जोईए ।

मन वडे ज तत्त्वनी प्राप्ति थाय छे । शाश्वत सुख अने साची शाति अतरमाथी मेलववानी छे । हाथीनुं शरीर मोटुं अने वजनदार छे परन्तु कामी छे । सिहनुं शरीर नानुं अने हलकुं होवा छता कामनो विजेता छे, तेथी हाथीने पण सिह जीती जाय छे । मानवीनुं मन सिह करता पण बळवान होवाथी सिहने पण वश करीने पाजरामा पूरे छे ।

मननुं बळ मत्रथी विकसे छे । मत्रमा सौथी श्रेष्ठ मत्र नमस्कार मत्र छे । तेथी अतरना शत्रु काम, क्रोध अने लोभ, राग, द्वेष अने मोह त्रणे जीताय छे ।

नमस्कार मत्रमा पापनी घृणा छे अने पापीनी दया छे । पापनी घृणा आत्मबळ ने वधारे छे, नम्रता अने निर्भयता लावे छे । पापीनी घृणा आत्मबळने घटाडे छे, अहकार अने कठोरता लावे छे, साचो नमस्कार प्रेम अने आदर वधारे छे, स्वार्थ अने कठोरतानो त्याग करावे छे ।

जेटलो अहकार तेटलु सत्यनु पालन ओछु । जेटलु सत्यनु पालन ओछु तेटलु जितेन्द्रियपणु ओछु तथा काम, क्रोध अने लोभनु बल वधारे । नमस्कारथी वाणीनी कठोरता, मननी कृपणता अ ' बुद्धिनी कृतघ्नता नाश पामे छे, कोमलता, उदारता अने कृतज्ञता विकसित थाय छे ।

नमस्कार वडे मनोमय कोषनी शुद्धि

नमस्कारमा न्याय छे, सत्य छे, दान छे अने सेवानो भाव रहेलो छे । न्यायमा क्षात्रवट छे । सत्य अने तेना वहुमानमा ब्रह्मज्ञान छे । दान अने दयामा श्री अने वाणिज्यनी सार्थकता

छे। सेवा अने शुश्रूषामा संतोष गुणनी सीमा छे, नमस्कार वडे क्षत्रियोनु क्षात्रवट, ब्राह्मणोनु ब्रह्मज्ञान, वैश्योनो दानगुण अने शुद्रोनो सेवागुण एक साथे सार्थक थाय छे।

समर्पण, प्रेम, परोपकार अने सेवाभाव ए मानव मनना अने विकसित बुद्धिना सहज गुण छे।

मनुष्य जन्मने श्रेष्ठ बनावनारी कोई चीज होय तो ते पवित्र बुद्धि छे। जीव, देह अने प्राण तो प्राणी मात्रमा छे, पण विकसित मन अने विकसित बुद्धि तो मात्र मनुष्यमा ज छे। बधु होय पण सद्बुद्धि न होय तो बधानो दुरुपयोग थईने दुर्गति थाय छे। बीजु काई न होय पण सद्बुद्धि होय तो तेना प्रभावे बधु आवी मळे छे।

मानव मनमा अहकार अने आसक्ति ए बे मोटा दोष छे। बीजाना गुण जोवाथी अने पोताना दोष जोवाथी अहकार अने आसक्ति जाय छे। नमस्कार ए बीजाना गुण ग्रहण करवानी अने पोतानामा रहेला दोषो दूर करवानी क्रिया छे। नमस्कारथी सद्-बुद्धिनो विकास थाय छे अने सद्बुद्धिनो विकास थवाथी सद्गति हस्तामलकवत् बने छे।

नमस्काररूपी वज्र अहकाररूपी पर्वतनो नाश करे छे। नमस्कार मानवना मनोमय कोषने शुद्ध करे छे। अहकारनु स्थान मस्तक छे। मनोमय कोष शुद्ध थवाथी अहकार आपोआप विलय पामे छे।

नमस्कारमा कर्म, उपासना, अने ज्ञान ए त्रणेनो सुमेळ छे। कर्मनु फळ सुख, उपा-सनानु फळ शान्ति अने ज्ञाननु फळ प्रभुप्राप्ति छे। नमस्कारना प्रभावे आ जन्ममा सुख-शाति अने जन्मान्तरमा परमात्मपदनी प्राप्ति सुलभ बने छे। कर्मफळमा विश्वासात्मक बुद्धि ते सद्बुद्धि छे। सद्बुद्धि शातिदायक छे। नमस्कारथी ते विकास पामे छे। अने तेना प्रभावे हृदयमा प्रकाश प्रकटे छे। ज्ञान-विज्ञाननु स्थान बुद्धि छे अने शाति-आनदनु स्थान हृदय छे। बुद्धिनो विकास अने हृदयमा प्रकाश ए नमस्कारनु असाधारण फळ छे।

बुद्धिनी निर्मलता अने सूक्ष्मता

मानव जन्म दुर्लभ छे, तेथी पण दुर्लभ पवित्र अने तीव्र बुद्धि छे। नमस्कार शुभ कर्म होवाथी तेना वडे बुद्धि तीक्ष्ण बने छे। नमस्कारमा भक्तिनी प्रधानता होवाथी बुद्धि विशाल अने पवित्र बने छे। नमस्कारमा सम्यग्ज्ञान होवाथी बुद्धि सूक्ष्म पण बने छे।

बुद्धिने सूक्ष्म, शुद्ध अने तीक्ष्ण बनाववानुँ सामर्थ्य आ रीते नमस्कारमा रहेलुँ छे। परमपदनी प्राप्ति माटे बुद्धिना ते त्रणे गुणोनी आवश्यकता छे। सूक्ष्म बुद्धि विना नमस्कारना गुणो जाणी शकाता नथी। शुद्ध बुद्धि विना नमस्कार्य प्रत्ये प्रेम प्रगटी शकतो

नथी अने तीक्ष्ण बुद्धि विना नमस्कारना गुणोनुं स्मरण चित्तरूपी भूमिमा सुदृढ करी शकातुं नथी ।

नमस्कार कर्तामा रहेलो न्याय, नमस्कार्य तत्त्वमा रहेली दया, नमस्कार क्रियामा रहेलुं सत्य बुद्धिने सूक्ष्म, शुद्ध अने स्थिर करी आपे छे । ए रीते बुद्धिने सूक्ष्म, शुद्ध अने स्थिर करवानुं सामर्थ्य नमस्कारमा रहेलुं छे ।

नमस्कारमा अहकार विरुद्ध नम्रता छे, प्रमाद विरुद्ध पुरुपार्थ छे अने हृदयनी कठोरता विरुद्ध कोमळता छे । नमस्कारथी एक बाजु मलिन वासना, बीजी वाजु चित्तनी चचळता दूर थवानी साथे ज्ञाननुं घोर आवरण जे अहकार ते टळी जाय छे । नमस्कारन क्रिया श्रद्धा, विश्वास अने एकाग्रता वधारे छे । श्रद्धाथी तीव्रता, विश्वासथी सूक्ष्मीता अने एकाग्रताथी बुद्धिमा स्थिरतागुण वधे छे ।

नमस्कारथी साधकनुं मन परम तत्त्वमा लागे छे अने बदलामा परम तत्त्व तरफथी बुद्धि प्रकाशित थाय छे । ते प्रकाशथी बुद्धिना दोष मदता, सकुचितता, सशययुक्तता, मिथ्याभिमानितादि अनेक दोषो एक साथे नाश पामे छे ।

नमस्कार मत्र ए सिद्ध मत्र छे

नमस्कार एक मत्र छे अने मत्रनो प्रभाव मन पर पडे छे । मनथी मानवानु अने बुद्धिथी जाणवानु काम थाय छे । मत्रथी मन अने बुद्धि बने परम तत्त्व ने समर्पित थई जाय छे । श्रद्धानु स्थान मन छे अने विश्वासनु स्थान बुद्धि छे । ए बने प्रभुने समर्पित थई जाय छे, त्यारे ते बनेना दोषो बळीने भस्मीभूत थई जाय छे ।

स्वार्थाधताना कारणे बुद्धि मद थई जाय छे, कामाधताना कारणे बुद्धि कुबुद्धि बनी जाय छे, लोभाधताना कारणे बुद्धि दुर्बुद्धि बनी जाय छे, क्रोधाधताना कारणे बुद्धि सशयी बनी जाय छे, मानाधताना कारणे बुद्धि मिथ्या बनी जाय छे, कृपणाधताना कारणे बुद्धि अतिशय सकुचित बनी जाय छे । नमस्काररूपी विद्युत चित्तरूपी बेटरीमा ज्यारे प्रगट थाय छे, त्यारे स्वार्थथी माडीने काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, दर्प आदि सघळा दोषो दग्ध थई जाय छे अने चित्तरत्न चारे दिशाएथी निर्मलपणे प्रकाशी उठे छे । समता, क्षमा, सतोप, नम्रता, उदारता, नि स्वार्थता आदि गुणो तेमा प्रगटी नीकळे छे ।

शब्द ए नमस्कारनु शरीर छे, अर्थ ए नमस्कारनो प्राण छे अने भाव ए नमस्कारनो आत्मा छे । नमस्कारनो भाव ज्यारे चित्तने स्पर्शे छे, त्यारे मानवने मळेल आत्मविकास माटेनो अमूल्य अवसर धन्य बने छे । नमस्कारथी आरभ थयेल भक्ति अते ज्यारे समर्पणमां पूर्ण थाय छे त्यारे मानवी पोताने प्राप्त थयेल जन्मनी सार्थकता अनुभवे छे ।

नमस्कार मन्त्र ए सिद्ध मन्त्र छे । ए मन्त्रनुँ स्मरण करवा मात्रथी आत्मामा जीवराशि ऊपर स्नेह परिणाम जागृत थाय छे । ए माटे स्वतन्त्र अनुष्ठान के पुरश्चरणादि विधिनी पण जरूर पडती नथी । तेमा मुख्य कारण पच परमेष्ठि भगवतोनो अनुग्रहकारक सहज स्वभाव छे, तथा प्रथम परमेष्ठि अरिहत भगवतोनो "जीव मात्रनु आध्यात्मिक कल्याण थाओ" एवो सिद्ध सकल्प छे ।

अभेदमां अभय अने भेदमां भय

गुण बहुमाननो परिणाम अचिन्त्य शक्तियुक्त कह्यो छे । निश्चयथी बहुमाननो परिणाम अने व्यवहारथी बहुमाननो सर्वोत्कृष्ट विषय, बेऊ मळीने कार्य सिद्धि थाय छे ।

गुणाधिकनुँ स्मरण करवाथी रक्षा थाय छे, तेमा वस्तु स्वभावनो नियम कार्य करे छे । ध्याता अतरात्मा ज्यारे ध्येय परमात्मानु ध्यान करे छे, त्यारे चित्तमा ध्याता-ध्येय-ध्यान ए त्रणेनी एकता रूपी समापत्ति थाय छे, तेथी क्लिष्ट कर्मनो विगम थाय छे अने अतरात्माने अद्भूत शाति मळे छे, तेनुँ ज नाम मन्त्रथी रक्षा गणाय छे ।

परना सुकृतनी अनुमोदनारूप सुकृत अखडित शुभ भावनुँ कारण छे । परम तत्त्व प्रत्ये समर्पण भाव एक बाजु नम्रता अने बीजी बाजु निर्भयता लावे छे अने ए बेना परिणामे निश्चिन्तता अनुभवाय छे ।

अभेदमा अभय छे अने भेदमा भय छे । नमस्कारना प्रथम पदमा 'अरिह' शब्द छे, ते अभेदवाचक छे, तेथी तेने करातो नमस्कार अभयकारक छे । अभयप्रद अभेदवाचक 'अरिह' पदनुँ पुन पुन स्मरण त्राण करनारू, अनर्थने हरनारू छे तथा आत्मज्ञानरूपी प्रकाशने करनारू होवाथी सौ कोई विवेकीने अवश्य आश्रय लेवा लायक छे ।

नमस्कार मन्त्र ए महा क्रिया योग छे

पच मगलरूप नमस्कार मन्त्र ए महाक्रिया योग छे, केमके तेमा बने प्रकारना तप, पाचे प्रकारनो स्वाध्याय अने सर्वोत्कृष्ट तत्त्वोनुँ प्रणिधान रहेलुँ छे ।

बाह्य आभ्यतर तप ए कर्म रोगनी चिकित्सारूप बने छे । पाचे प्रकारनो स्वाध्याय ए महामोहरूपी विषने उतारवा माटे मन्त्र समान बनी रहे छे । अने परम पचपरमेष्ठिनुँ प्रणिधान भवभयनुँ निवारण करवा माटे परम शरणरूप बने छे ।

नमस्काररूप पचमगलनी क्रिया ए अभ्यतर तप, स्वाध्याय अने ईश्वर प्रणिधानरूप महाक्रियायोग छे, एनुँ स्मरण अविद्यादि क्लेशोनो नाश करे छे अने चित्तनी अखड समाधि-रूप फलने उत्पन्न करे छे । क्लेशनो नाश दुर्गतिनो क्षय करे छे । अने समाधिभावना सद्-गतिनुँ सर्जन करे छे ।

नथी अने तीक्ष्ण बुद्धि विना नमस्कारना गुणोनुँ स्मरण चित्तरूपी भूमिमा सुदृढ करी शकातुँ नथी ।

नमस्कार कर्तामा रहेलो न्याय, नमस्कार्य तत्त्वमा रहेली दया, नमस्कार क्रियामा रहेलुँ सत्य बुद्धिने सूक्ष्म, शुद्ध अने स्थिर करी आपे छे । ए रीते बुद्धिने सूक्ष्म, शुद्ध अने स्थिर करवानुँ सामर्थ्य नमस्कारमा रहेलुँ छे ।

नमस्कारमा अहंकार विरुद्ध नम्रता छे, प्रमाद विरुद्ध पुरुषार्थ छे अने हृदयनी कठोरता विरुद्ध कोमळता छे । नमस्कारथी एक बाजु मलिन वासना, बीजी बाजु चित्तनी चचळता दूर थवानी साथे ज्ञाननुँ घोर आवरण जे अहकार ते टळी जाय छे । नमस्कारन क्रिया श्रद्धा, विश्वास अने एकाग्रता वधारे छे । श्रद्धाथी तीव्रता, विश्वासथी सूक्ष्मता अने एकाग्रताथी बुद्धिमा स्थिरतागुण वधे छे ।

नमस्कारथी साधकनुँ मन परम तत्त्वमा लागे छे अने बदलामा परम तत्त्व तरफथी बुद्धि प्रकाशित थाय छे । ते प्रकाशथी बुद्धिना दोष मदता, सकुचितता, सशययुक्तता, मिथ्याभिमानितादि अनेक दोषो एक साथे नाश पामे छे ।

नमस्कार मत्र ए सिद्ध मत्र छे

नमस्कार एक मत्र छे अने मत्रनो प्रभाव मन पर पडे छे । मनथी मानवानु अने बुद्धिथी जाणवानु काम थाय छे । मत्रथी मन अने बुद्धि बने परम तत्त्व ने समर्पित थई जाय छे । श्रद्धानु स्थान मन छे अने विश्वासनु स्थान बुद्धि छे । ए बने प्रभुने समर्पित थई जाय छे, त्यारे ते बनेना दोषो बळीने भस्मीभूत थई जाय छे ।

स्वार्थाधताना कारणे बुद्धि मद थई जाय छे, कामाधताना कारणे बुद्धि कुबुद्धि बनी जाय छे, लोभाधताना कारणे बुद्धि दुर्बुद्धि बनी जाय छे, क्रोधांधताना कारणे बुद्धि सशयी बनी जाय छे, मानाधताना कारणे बुद्धि मिथ्या बनी जाय छे, कृपणाधताना कारणे बुद्धि अतिशय सकुचित बनी जाय छे । नमस्काररूपी विद्युत चित्तरूपी बेटरीमा ज्यारे प्रगट थाय छे, त्यारे स्वार्थथी माडीने काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, दर्प आदि सघळा दोषो दग्ध थई जाय छे अने चित्तरत्न चारे दिशाएथी निर्मलपणे प्रकाशी उठे छे । समता, क्षमा, सतोष, नम्रता, उदारता, नि स्वार्थता आदि गुणो तेमा प्रगटी नीकळे छे ।

शब्द ए नमस्कारनु शरीर छे, अर्थ ए नमस्कारनो प्राण छे अने भाव ए नमस्कारनो आत्मा छे । नमस्कारनो भाव ज्यारे चित्तने स्पर्शे छे, त्यारे मानवने मळेल आत्मविकास माटेनो अमूल्य अवसर धन्य बने छे । नमस्कारथी आरभ थयेल भक्ति अते ज्यारे समर्पणमां पूर्ण थाय छे त्यारे मानवी पोताने प्राप्त थयेल जन्मनी सार्थकता अनुभवे छे ।

नमस्कार मत्र ए सिद्ध मत्र छे । ए मत्रनुं स्मरण करवा मात्रथी आत्मामा जीवराशि ऊपर स्नेह परिणाम जागृत थाय छे । ए माटे स्वतत्र अनुष्ठान के पुरश्चरणादि विधिनी पण जरूर पडती नथी । तेमा मुख्य कारण पच परमेष्ठि भगवतोनो अनुग्रहकारक सहज स्वभाव छे, तथा प्रथम परमेष्ठि अरिहत भगवतोनो "जीव मात्रनुं आध्यात्मिक कल्याण थाओ" एवो सिद्ध सकल्प छे ।

अभेदमां अभय अने भेदमां भय

गुण बहुमाननो परिणाम अचिन्त्य शक्तियुक्त कह्यो छे । निश्चयथी बहुमाननो परिणाम अने व्यवहारथी बहुमाननो सर्वोत्कृष्ट विषय, बेऊ मळीने कार्य सिद्धि थाय छे ।

गुणाधिकनुं स्मरण करवाथी रक्षा थाय छे, तेमा वस्तु स्वभावनो नियम कार्य करे छे । ध्याता अतरात्मा ज्यारे ध्येय परमात्मानु ध्यान करे छे, त्यारे चित्तमा ध्याता-ध्येय-ध्यान ए त्रणेनी एकता रूपी समापत्ति थाय छे, तेथी क्लिष्ट कर्मनो विगम थाय छे अने अतरात्माने अद्‌भूत शाति मळे छे, तेनुं ज नाम मत्रथी रक्षा गणाय छे ।

परना सुकृतनी अनुमोदनारूप सुकृत अखडित शुभ भावनुं कारण छे । परम तत्त्व प्रत्ये समर्पण भाव एक बाजु नम्रता अने बीजी बाजु निर्भयता लावे छे अने ए बेना परिणामे निश्चिन्तता अनुभवाय छे ।

अभेदमा अभय छे अने भेदमा भय छे । नमस्कारना प्रथम पदमा 'अरिह' शब्द छे, ते अभेदवाचक छे, तेथी तेने करातो नमस्कार अभयकारक छे । अभयप्रद अभेदवाचक 'अरिह' पदनुं पुन· पुन स्मरण त्राण करनारू, अनर्थने हरनारू छे तथा आत्मज्ञानरूपी प्रकाशने करनारू होवाथी सौ कोई विवेकीने अवश्य आश्रय लेवा लायक छे ।

नमस्कार मत्र ए महा क्रिया योग छे

पच मगलरूप नमस्कार मत्र ए महाक्रिया योग छे, केमके तेमा बने प्रकारना तप, पाचे प्रकारनो स्वाध्याय अने सर्वोत्कृष्ट तत्त्वोनुं प्रणिधान रहेलुं छे ।

बाह्य आभ्यतर तप ए कर्म रोगनी चिकित्सारूप बने छे । पाचे प्रकारनो स्वाध्याय ए महामोहरूपी विषने उतारवा माटे मत्र समान बनी रहे छे । अने परम पचपरमेष्ठिनुं प्रणिधान भवभयनुं निवारण करवा माटे परम शरणरूप बने छे ।

नमस्काररूप पचमगलनी क्रिया ए अभ्यतर तप, स्वाध्याय अने ईश्वर प्रणिधानरूप महाक्रियायोग छे, एनुं स्मरण अविद्यादि क्लेशोनो नाश करे छे अने चित्तनी अखड समाधिरूप फलने उत्पन्न करे छे । क्लेशनो नाश दुर्गतिनो क्षय करे छे । अने समाधिभावना सद्‌गतिनुं सर्जन करे छे ।

नमस्कारमा 'नमो' पद पूजा अर्थमा छे अने 'पूजा' द्रव्यभाव सकोच अर्थमां छे। द्रव्य सकोच कर-शिर-पादादिनु नियमन छे अने भाव सकोच ए मननो विशुद्ध व्यापार छे।

बीजी रीते नमो ए स्तुति, स्मृति अने ध्यानपरक तथा दर्शन, स्पर्शन अने प्राप्तिपरक पण छे। श्रुति वडे नामग्रहण, स्मृति वडे अर्थभावन अने ध्यान वडे एकाग्र चितन थाय छे। तथा दर्शन वडे साक्षात्करण, स्पर्शन वडे विश्रातिगमन अने प्राप्ति वडे स्वसवेद्य अनुभवन पण थाय छे। नामग्रहण आदि वडे द्रव्यपूजा अने अर्थभावन, एगाग्रचिन्तन, तथा साक्षात्करणादि वडे भावपूजा थाय छे।

जेम जल वडे दाहनु शमन, तृपानुं निवारण अने पकनु शोपण थाय छे, तेम नमो पदना अर्थनी पुन पुन भावना वडे कषायना दाहनुं शमन थाय छे। विपयनी तृषानु निवारण थाय छे, अने कर्मनो पक शोषाई जाय छे, जेम अन्न वडे क्षुधानी शान्ति, शरीरनी तुष्टि अने बलनी पुष्टि थाय छे, तेम नमो पद वडे विषय क्षुधानु शमन, आत्माना सतोषादि गुणोनी तुष्टि तथा आत्माना बल-वीर्य-पराक्रमादि गुणोनी पुष्टि थाय छे।

ऋणमुक्तिनुं मुख्य साधन नमस्कार

मानवजीवननु साचु ध्येय ऋणमुक्ति छे। ऋणमुक्तिनु मुख्य साधन नमस्कार छे। नमस्कार ए विवेकज्ञाननु फळ छे अने विवेकज्ञान ए समाहित चित्तनु परिणाम छे। परमेष्ठि स्मरणथी चित्तसमाधिवाळु बने छे। "साधक समाहित चित्तवाळा बनो" एवो सकल्प सर्व परमेष्ठि भगवतोनो छे। तेथी तेमनु स्मरण अने नामग्रहण साधकना चित्तने समाधि वाळु करे छे। समाधिवाळा चित्तमा विवेक स्फुरे छे अने विवेकी चित्तमा ऋणमुक्तिनी भावना प्रगटे छे। ऋणमुक्तिनी भावनामाथी प्रकटेली नमस्कृति अवश्य ऋणमुक्ति-साचा अर्थमा कर्ममुक्तिने अपावे छे।

नमस्कार मत्र वडे पचमगल महाश्रुतस्कधरूप श्रुतज्ञाननु आराधन थाय छे। तेमा थती पच परमेष्ठिनी स्तुति वडे सम्यग् दर्शन गुणनु आराधन थाय छे, अने त्रिकरण योगे थती नमन क्रिया वडे चारित्र गुणनु आराधन थाय छे।

ज्ञान गुण पाप-पुण्यने समजावे छे, दर्शनगुण पापनी गर्हा अने पुण्यनी अनुमोदना करावे छे अने चारित्रगुण पापनो परिहार तथा धर्मनुं सेवन करावे छे। ज्ञानथी धर्म मगळ समजाय छे। दर्शनथी धर्म मगळ सद्दहाय छे। अने चारित्रथी धर्म मगळ जीवनमा जीवाय छे।

गुणोमा उपादेयपणानी बुद्धि ए साची श्रद्धा छे। उपादेयपणानी बुद्धि गुणो प्रत्ये उपेक्षा बुद्धिनो नाश करे छे। पचपरमेष्ठिओ गुणोना भडार होवाथी तेमनो नमस्कार गुणोमा उपादेयपणानी बुद्धिने पुष्ट करे छे। पचपरमेष्ठिओए पाच विषयोने तज्या छे, चार कपायोने जीत्या छे, तेओ पाच महाव्रतो अने पाच आचारोथी सपन्न छे, आठ प्रवचन-

माता अने अढार हजार शीलाग रथना धोरी छे। तेमने नमस्कार करवाथी तेमनामा रहेला वधा गुणोने नमस्कार थाय छे, गुणो प्रत्ये अनुकूलतानी बुद्धि अने दोषो प्रत्ये प्रतिकूलपणानी सन्मति जागे छे।

राग द्वेष अने मोहनो क्षय

नवपद युक्त नवकारथी नवमु पापस्थान लोभ अने अढारमु पापस्थान मिथ्यात्वशल्य नाश पामे छे। नवकार ए दुन्यवी लोभनो शत्रु छे केमके एमा जेने नमस्कार करवामा आवे छे, ते पाचे परमेष्ठि भगवतो ससार सुखने तृणवत् समजी तेनो त्याग करनारा छे मने मोक्षसुख ने प्राप्त करवा माटे परम पुरषार्थ करनारा छे। नवकार जेम सासारिक सुखनी वासना अने तृष्णानो त्याग करावे छे, तेम मोक्षसुखनी अभिलाषा अने तेने माटे ज सर्व प्रकारनो प्रयत्न करता शीखवे छे।

नवकार ए पापमा पापवुद्धि अने धर्ममा धर्मबुद्धि शीखवनार होवाथी मिथ्यात्वशल्य नामना पापस्थानकनो छेद उडावे छे अने शुध्ध देव, गुरु तथा धर्म उपर प्रेम जगाडी सम्यक्त्व रत्नने निर्मळ वनावे छे। नवकारथी भवनो विराग जागे छे, ते लोभ कषायने हणी नाखे छे अने नवकारथी भगवद्-बहुमान जागे छे ते मिथ्यात्वशल्यने दूर करी आपे छे।

राग दोषनो प्रतिकार ज्ञानगुण वडे थाय छे। ज्ञानी पुरुष निष्पक्ष होवाथी पोतामा रहेला दुष्कृत्योने जोई शके छे। निरन्तर तेनी निंदागर्हा करे छे। अने ते द्वारा पोताना आत्माने दुष्कृत्योथी उगारी ले छे।

द्वेष दोषनो प्रतिकार दर्शन गुणवडे थाय छे। सम्यग् दर्शन गुणने धारण करनार पुण्यात्मा नमस्कारमा रहेला अरिहतादिना गुणोने, सत्कर्मोने अने विश्वव्यापी उपकारोने जोई शके छे, तेथी तेने विषे प्रमोदने धारण करे छे, सत्कमो अने गुणोनी अनुमोदना तथा शसा द्वारा पोताना आत्माने सन्मार्गे वाळी शके छे।

ज्ञान-दर्शन गुणनी साथे ज्यारे चारित्र गुण भळे छे, त्यारे मोह दोषनो मूळथी क्षय थाय छे। मोह जवाथी पापमा निष्पापतानी अने धर्ममा अवर्तव्यतानी बुद्धि दूर थाय छे। ते दूर थवाथी पापमा प्रवर्तन अने धर्ममा प्रमाद-बेदरकारी अटकी जाय छे। पापनु परि वर्जन अने धर्मनु सेवन अप्रमत्तपणे थाय छे। ते आत्मा चरित्र धर्मरूपी महाराजना राज्यनो वफादार सेवक बने छे अने मोक्ष साम्राज्यना सुखनो अनुभव करे छे।

नवकारमा सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन अने सम्यक् चारित्र ए त्रणे गुणोनी आराधना रहेली होवाथी दुष्कृत गर्हा, सुकृतानुमोदना अने प्रभु आज्ञानु पालन प्रतिदिन वधतुं जाय छे, तेथी मुक्ति सुखना अधिकारी थवाय छे।

निर्वेद अने सवेग रस

नवकारमा निर्वेद अने सवेग रसनु पोषण थाय छे। निगोददिमा रहेला जीवोना दु खनो विचार करीने चित्तमा ससार प्रत्य उद्वेग धारण करवो ते निर्वेद रस छे अने सिद्धिगतिमा रहेला सिद्ध भगवतादिना सुखने जाईने आनदनो अनुभव थवो ते सवेगरस छे। दु खी जीवोनी दया अने सुखी जीवोना प्रमोदवडे राग, द्वेष अने मोह ए त्रणे दोषोनो निग्रह थाय छे।

बधा दु खी आत्माना दु ख करता नरकना नारकीनु दु ख वधी जाय छे, तेथी पण अधिक दु ख निगोदमा रहेलु छे। बधा दु खी आत्माओना सुख करता अनुत्तरना देवोनुँ सुख चडी जाय छे तेथी पण एक सिद्धना आत्मानु सुख अनत गुण अधिक छे। एक निगो-दनो जीव जे दु ख भोगवे छे, ते दु खनी आगळ निगोद सिवायना सर्व दु खी जीवोनु दु ख एकत्र थाय तो पण काई वीसातमा नथी। एक सिद्धना जोवनु सुख देव अने मनुष्यना त्रणे काळना सुखनो अनतवार गुणाकार के वर्ग करवामा आवे तो पण तेनी सरखामणीमा घणु वधारे छे।

पोताथी अधिक दु खीना दु खने दूर करवानी बुद्धिरूप दयाना परिणामथी पोतानु दु ख अने तेथी आवेली दीनता नष्ट थाय छे। पोताथी अधिक सुखीनु सुख जोइने तेमा हर्ष के प्रमोदभाव धारण करवाथी पोताना सुखनो मिथ्या गर्व के दर्प गळी जाय छे।

दीनता के दर्प, भय के द्वेष, खेद के उद्वेग आदि चित्तना दोषोनु निवारण करवा माटे गुणाधिकनी भक्ति अने दु खाधिकनी दया ए सरळ अने सर्वोत्तम उपाय छे, तेने ज शास्त्रनी परिभाषामा सवेग-निर्वेद गणाव्या छे। नवकारमा ते बने प्रकारना रसो पोषाता होवाथी जीवनी मानसिक अशाति अने असमाधि तेना स्मरणथी दूर थाय छे।

सेवन कारण पहेली भूमिका-अभय अद्वेष अखेद

नमस्कार मत्रनी साधनाथी शुद्ध आत्माओ साथे कथचित् अभेदनी साधना थाय छे। ज्या अभेद त्या अभय ए नियम छे। भेदथी भय अने अभेदथी अभय अनुभव सिद्ध छे। भय ए चित्तनी चचलतारूप बहिरात्मदशारूप आत्मानो परिणाम छे। अभेदना भावनथी ते चचलता दोष नाश पामे छे अने अतरात्मदशारूप निश्चलता गुण उत्पन्न थाय छे।

अभेदना भावनथी अभयनी जेम अद्वेष पण सधाय छे। द्वेष अरोचक भावरूप छे, ते अभेदना भावनथी चाल्यो जाय छे। अभेदना भावनथी जेम भय अने द्वेष टळी जाय छे, तेम खेद पण नाश पामे छे। खेद ए प्रवृत्तिमा थाक रूप छे। ज्या भेद त्या खेद अने ज्या अभेद त्या अखेद आपोआप आवे छे। नमस्कार मत्रना प्रभावे जेम अभेद वुद्धि दृढ थती जाय छे तमे भय, द्वेष अने खदे दोष चाल्या जाय छे अने तेना स्थाने अभय, अद्वेष अने अखेद गुण आवे छे।

भय द्वेष अने खेद जे आत्माना तात्त्विक स्वरूपना अज्ञानथी उत्पन्न थता हता ते आत्मानु शुद्ध अने तात्त्विक स्वरूप नु सम्यग् ज्ञान थतानी साथे दूर थई जाय छे। नमस्कार मत्रमा रहेला पाचे परमेष्ठिओ शुद्ध स्वरूपने पामेला होवाथी तेमनो नमस्कार ज्यारे चित्तमा परिणाम पामे छे, त्यारे आत्मामा सर्वनी साथे आत्मपणाथी तुल्यतानु ज्ञान तथा स्वस्वरूपथी शुद्धतानु ज्ञान आविर्भाव पामे छे अने ते आविर्भाव पामतानी साथे ज भय, द्वेष अने खेद चाल्या जाय छे।

नमस्कारमत्र वैराग्य अने अभ्यास स्वरूप छे। वैराग्य ए निर्भ्रान्त ज्ञाननु फळ छे अने अभ्यास ए चित्तनी प्रशान्तवाहितानु नाम छे। चित्त ज्यारे प्रशमभावने पामे छे, विश्वमैत्रीवाळु बने छे, जे चित्तमा वैर विरोधनो एक अश पण रहेतो नथी त्यारे ते अभ्यास-रूप गणाय छे। वैराग्य ज्ञानरूप छे अने अभ्यास प्रयत्नरूप छे। ज्ञाननी पराकाष्ठा ते वैराग्य अने समतानी पराकाष्टा ते अभ्यास। ज्ञान अने समता ज्यारे पराकाष्ठाए पहोचे छे, त्यारे मोक्ष सुलभ बने छे।

नमस्कार मत्र दोषनी प्रतिपक्ष भावना स्वरूप छे

श्रीनमस्कार मत्र दोषनी प्रतिपक्ष भावना स्वरूप पण छे। योगशास्त्रमा कह्यु छे के—

यो य स्याद्बाधको दोष स्तस्य तस्य प्रतिक्रियाम्।
चिन्तयेद्दोषमुक्तेषु, प्रमोद यतिषु व्रजन् ॥१॥

—यो शा प्र ३ श्लो —१३६

स्वोपज्ञ टीकाकार महर्षि आ श्लोकना विवरणमा फरमावे छे के—

'सुकर हि दोषमुक्त-मुनिदर्शनेन प्रमोदात् आत्मन्यपि दोषमोक्षणम्।'

जे दोष पोताने बाधक लागे ते दोषने दूर करवानो इलाज ते दोषथी मुक्त थयेला मुनिओना गुणोने विषे प्रमोदभाव धारण करवो ते छे।

दोषमुक्त यतिओना गुणोने विषे प्रमोद भावने धारण करतो एवो जीव ते ते दोषोथी स्वयमेव मुक्त बनी जाय छे। पच परमेष्ठि नमस्कार मत्रनु स्मरण परमेष्ठि पदे बिराज-मान महामुनिओना गुणोने विषे बहुमान भाव उत्पन्न करे छे, तेथी स्मरण करनारना अत -करणमा रहेला ते ते दोषो स्वयमेव उपशातिने पामे छे।

काम दोषनो प्रतिकार स्थूलभद्र मुनिनु ध्यान छे। क्रोध दोषनो प्रतिकार गजसुकुमाल मुनिनु ध्यान छे। लोभ दोषनो प्रतिकार शालिभद्र अने धन्य कुमारमा रहेला तप, सत्य, सतोष आदि गुणोनु ध्यान छे। ए रीते मानने जीतनार बाहुबलि अने ईन्द्रभूति, मोहने जीतनार जबू स्वामी अने वज्रकुंवर, मद-मान अने मायाने जीतनार मल्लीना, नेमनाथ अने भरत चक्रवर्ती आदि महान आत्माओनु ध्यान ते ते दोषोने जीतावनार थाय छे।

श्रीनमस्कार महामन्त्रमा त्रणे काळना अने सर्व स्थळोना महापुरूषो के जेमणे मद, मान, माया, लोभ, क्रोध, काम अने मोह आदि दोषो उपर विजय मेळव्यो छे, ते सर्वनु ध्यान थतु होवाथी ध्याताना ते ते दोषो काळक्रमे समूलपणे विनश्वर थाय छे। ए रीते नमस्कार मन्त्र दोषोनी प्रतिपक्ष भावनारूप बनीने गुणकारी थाय छे।

ए ज अर्थने जणावनार नीचेनो एक श्लोक अने तेनी भावना नमस्कारनीज अर्थ भावना स्वरूप बनी जाय छे।

"धन्यास्ते वन्दनीयास्ते, तैस्त्रैलोक्य पवित्रितम्।
यैरेव भुवन-क्लेशी, काममल्लो विनिर्जित ॥१॥"

—धर्मबिन्दु टीका

ते पुरूषो धन्य छे, ते पुरुषो वदनीय छे अने ते पुरुषोए त्रणे लोकने पवित्र कर्या छे, के जेओए कामरूपी मल्लने जीती लीधो छे।

ए ज रीते क्रोधरूपी मल्ल, लोभरूपी मल्ल, मोहरूपी मल्ल, मानरूपी मल्ल, अने बीजा पण आकरा दोषरूपी मल्लो जेणे जेणे जीती लीधा छे, ते ते पुरुषो पण धन्य, वद्य अने त्रैलोक्यपूज्य छे, एवी भावना करी शकाय छे। अने ते बधी भावनाओ श्रीनमस्कार मन्त्रना स्मरण समये थई शके छे।

ईष्टनो प्रसाद अने पूर्णतानी प्राप्ति

मत्र जपमा नित्य नवो अर्थ प्राप्त थाय छे शब्द तेना ते ज रहे छे अने अर्थ नित्य नूतन प्राप्त थाय छे, धान्य तेनु ते छे, छता नित्य तेमा नवो स्वाद क्षुधाना प्रमाणमा अनुभवाय छे। तेज वात तृषातुरने जळमा अने प्राण धारण करनार जीवने पवनमा अनुभवाय छे।

तृषा तथा क्षुधा ने शमाववानी अने प्राणने टकाववानी ताकात ज्यासुधी जळ, अन्न अने पवनमा रहेली छे, त्या सुधी तेनी उपयोगिता अने नित्य नूतनता मानवी मनमा टकी रहे छे। नाम मन्त्रनो जाप पण आत्मानी क्षुधा-तृपा ने शमावनार छे अने आत्माना बळ-वीर्यने वधारनार छे, तेथी तेनी उपयोगिता अने नित्य नूतनता स्वयमेव अनुभवाय छे।

नमस्कार मन्त्रनो जाप एक बाजु ईष्टनु स्मरण चिंतन अने भावन करावे छे अने बीजी बाजु नित्य नूतन अर्थनी भावना जगाडे छे, तेथी ते मन्त्रने मात्र अन्न, जळ अने पवन तुल्य ज नहि किन्तु पारसमणि अने चिंतामणि कल्पवृक्ष अने कामकुम्भ करता पण वधारे मुल्यवान मान्यो छे।

मानवी मनमा नरकनु स्वर्ग अने स्वर्गनु नरक उभु करवानी ताकात छे। उत्तम मन्त्र वडे ते नरकनु स्वर्ग रची शके छे। श्रद्धा अने विश्वासपूर्वक उत्तम मन्त्रनो जप करनारा सर्वदा सुरक्षित छे। नाम अने नमस्कार मंत्र वडे ईष्टनो प्रसाद अने पूर्णतानी प्राप्ति थाय

छे। ईष्टनु नाम सर्व मुश्केलीओमाथी जीवने पार उतारनारू सर्वोत्तम साधन छे। ईष्टनो नमस्कार सर्व पापवृत्ति अने पाप प्रवृत्तिनो समूल विनाश करे छे।

ईष्ट तत्त्वनी अचिन्त्य शक्ति

धर्म मात्रनुं ध्येय आत्मज्ञान छे। मंत्रना ध्यान मात्रथी ते सिद्ध थाय छे। मंत्रनु रटण एक बाजु हृदयनो मेल, ईर्षा-असूयादिने साफ करवानुं कार्य करे छे। बीजी बाजु तन, मन, धननी आधि, व्याधि अने उपाधिओने टाळी आपे छे।

शरीरनो व्याधि असाध्य होय अने कदाच न टले तो पण मननी शांति अने बाह्य व्याधि मात्रने समताथी सहन करवानी शक्ति तो ते आपे ज छे। ते केवी रीते आपे छे, ए प्रश्न अस्थाने छे। केटलाक प्रश्न अने तेना उत्तर बुद्धिथी के बुद्धिने आपी शकाय तेवा होता नथी। हृदयनी वात हृदय ज जाणी शके छे। श्रद्धानी वात श्रद्धा ज समजी शके छे। परमात्मतत्त्व अने तेनी शक्ति न माननारने मन पोतानो 'अहं' ए ज परमात्मानु स्थान ले छे। सर्व समर्थनु शरण लीधा विना अहं कदी टळतो नथी। अने अहं टळतो नथी त्यांसुधी शांतिनो अनुभव आकाश कुसुमवत् छे।

पू० उपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजश्रीए 'अध्यात्मसारग्रन्थ'ना अनुभवाधिकारमा कह्यु छे के –

"शान्ते मनसि ज्योति, प्रकाशते शान्तमात्मन सहजम्।
भस्मीभवत्यविद्या, मोहध्वान्त विलयमेति ॥१॥"

शान्त चित्तमा आत्मानो सहज शुद्ध स्वभाव प्रकाशित थाय छे, ते वखते अनादिकालीन अविद्या-मिथ्यात्वमोहरूप अंधकार नाश पामे छे।

परमात्मा अने तेना नामनो लाभ बधाने नहि पण सदाचारी, श्रद्धावान अने भक्त हृदयने ज मळे छे। परमात्मानी अचिन्त्यशक्ति उपर मनुष्यने ज्यारे पूरे पूरी श्रद्धा बेसे छे, त्यारे तेनी साते धातुओनुं रूपांतर थाय छे। तेथी परमात्मानु नाम ए भक्त माटे ब्रह्मचर्यनी दशमी वाड पण छे, नव वाड करता पण तेनु सामर्थ्य अधिक छे।

मंत्रयोगनी सिद्धि

मंत्र ए शब्दोनो समूह छे, जेनो कोई अर्थ नीकळतो होय छे। आ शब्दोना अर्थ ने साकार थवु ए ज मंत्रने सिद्ध थवुं गणाय छे। शब्दथी वायु पर आघात थाय छे, ज्यारे कोई शब्द बोलाय छे, त्यारे अनंत एवा वायुरूपी महासागरमा तरंग पेदा थाय छे। तरंगथी गति, गतिथी गरमी अने गरमीथी स्वास्थ्य सुधरे छे। प्राणायामनो पण ए ज उद्देश छे। अने ते उद्देश मंत्र जापथी सिद्ध थाय छे।

श्रीनमस्कार महामंत्रमा त्रणे काळना अने सर्व स्थळोना महापुरूषो के जेमणे मद, मा
नाया, लोभ, क्रोध, काम अने मोह आदि दोषो उपर विजय मेळव्यो छे, ते सर्वनु ध्य
यतु होवाथी ध्याताना ते ते दोषो काळक्रमे समूलपणे विनश्वर थाय छे। ए रीते नमस्व
मत्र दोषोनी प्रतिपक्ष भावनारूप बनीने गुणकारी थाय छे।

ए ज अर्थने जणावनार नीचेनो एक श्लोक अने तेनी भावना नमस्कारनीज
भावना स्वरूप बनी जाय छे।

"धन्यास्ते वन्दनीयास्ते, तैस्त्रैलोक्य पवित्रितम् ।
यैरेव भुवन-क्लेशी, काममल्लो विनिर्जित ॥१॥"

—धर्मबिन्दु टीका

ते पुरूषो धन्य छे, ते पुरुषो वदनीय छे अने ते पुरुषोए त्रणे लोकने पवित्र कर्या
के जेओए कामरूपी मल्लने जीती लीधो छे।

ए ज रीते क्रोधरूपी मल्ल, लोभरूपी मल्ल, मोहरूपी मल्ल, मानरूपी मल्ल,
बीजा पण आकरा दोषरूपी मल्लो जेणे जेणे जीती लीधा छे, ते ते पुरुषो पण धन्य, वद्य
त्रैलोक्यपूज्य छे, एवी भावना करी शकाय छे। अने ते बधी भावनाओ श्रीनमस्कार म
स्मरण समये थई शके छे।

ईष्टनो प्रसाद अने पूर्णतानी प्राप्ति

मत्र जपमा नित्य नवो अर्थ प्राप्त थाय छे शब्द तेना ते ज रहे छे अने अर्थ नित्य
प्राप्त थाय छे, धान्य तेनु ते छे, छता नित्य तेमा नवो स्वाद क्षुधाना प्रमाणमा अनुभ
छे। तेज वात तृषातुरने जळमा अने प्राण धारण करनार जीवने पवनमां अनुभवाय छे

तृषा तथा क्षुधा ने शमाववानी अने प्राणने टकाववानी ताकात ज्यासुधी जळ, अन्न
पवनमा रहेली छे, त्या सुधी तेनी उपयोगिता अने नित्य नूतनता मानवी मनमा टके
छे। नाम मत्रनो जाप पण आत्मानी क्षुधा-तृषा ने शमावनार छे अने आत्माना बळ-
वधारनार छे, तेथी तेनी उपयोगिता अने नित्य नूतनता स्वयमेव अनुभवाय छे।

नमस्कार मन्त्रनो जाप एक बाजु ईष्टनु स्मरण चिंतन अने भावन करावे छे
बीजी बाजु नित्य नूतन अर्थनी भावना जगाडे छे, तेथी ते मन्त्रने मात्र अन्न, जळ
पवन तुल्य ज नहि किन्तु पारसमणि अने चिंतामणि कल्पवृक्ष अने कामकुम्भ करत
वधारे मुल्यवान मान्यो छे।

मानवी मनमा नरकनु स्वर्ग अने स्वर्गनु नरक उभु करवानी ताकात छे। उत्तम
वडे ते नरकनु स्वर्ग रची शके छे। श्रद्धा अने विश्वासपूर्वक उत्तम मन्त्रनो जप कर
सर्वदा सुरक्षित छे। नाम अने नमस्कार मत्र वडे ईष्टनो प्रसाद अने पूर्णतानी प्राप्ति

छे। ईष्टनु नाम सर्व मुश्केलीओमाथी जीवने पार उतारनारू सर्वोत्तम साधन छे। ईष्टनो नमस्कार सर्व पापवृत्ति अने पाप प्रवृत्तिनो समूल विनाश करे छे।

ईष्ट तत्त्वनी अचिन्त्य शक्ति

धर्म मात्रनु ध्येय आत्मज्ञान छे। मत्रना ध्यान मात्रथी ते सिद्ध थाय छे। मत्रनु रटण एक बाजु हृदयनो मेल, ईर्षा-असूयादिने साफ करवानु कार्य करे छे। बीजी बाजु तन, मन, धननी आधि, व्याधि अने उपाधिओने टाळी आपे छे।

शरीरनो व्याधि असाध्य होय अने कदाच न टले तो पण मननी शाति अने बाह्य व्याधि मात्रने समताथी सहन करवानी शक्ति तो ते आपे ज छे। ते केवी रीते आपे छे, ए प्रश्न अस्थाने छे। केटलाक प्रश्न अने तेना उत्तर बुद्धियी के बुद्धिने आपी शकाय तेवा होता नथी। हृदयनी वात हृदय ज जाणी शके छे। श्रद्धानी वात श्रद्धा ज समजी शके छे। परमात्मतत्त्व अने तेनी शक्ति न माननारने मन पोतानो 'अह' ए ज परमात्मानु स्थान ले छे। सर्व समर्थनु शरण लीधा विना अह कदी टळतो नथी। अने अह टळतो नथी त्यामुधी शातिनो अनुभव आकाश कुमुमवत् छे।

पू० उपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजश्रीए 'अध्यात्मसारग्रन्थ'ना अनुभवाधिकारमा कह्य छे के –

"शान्ते मनसि ज्योति, प्रकाशते शान्तमात्मन सहजम्।
भस्मीभवत्यविद्या, मोहध्वान्त विलयमेति ॥१॥"

शान्त चित्तमा आत्मानो सहज शुद्ध स्वभाव प्रकाशित थाय छे, ते वखते अनादिकालीन अविद्या-मिथ्यात्वमोहरूप अधकार नाश पामे छे।

परमात्मा अने तेना नामनो लाभ बधाने नहि पण सदाचारी, श्रद्धावान अने भक्त हृदयने ज मळे छे। परमात्मानी अचिन्त्यशक्ति उपर मनुष्यने ज्यारे पूरे पूरी श्रद्धा बेसे छे, त्यारे तेनी साते धातुओनु रूपातर थाय छे। तेथी परमात्मानु नाम ए भक्त माटे ब्रह्मचर्यनी दशमी वाड पण छे, नव वाड करता पण तेनु सामर्थ्य अधिक छे।

मत्रयोगनी सिद्धि

मत्र ए शब्दोनो समूह छे, जेनो कोई अर्थ नीकळतो होय छे। आ शब्दोना अर्थ ने साकार थवु ए ज मत्रने सिद्ध थवु गणाय छे। शब्दथी वायु पर आघात थाय छे, ज्यारे कोई शब्द बोलाय छे, त्यारे अनत एवा वायुरूपी महासागरमा तरग पेदा थाय छे। तरगथी गति, गतिथी गरमी अने गरमीथी स्वास्थ्य सुधरे छे। प्राणायामनो पण ए ज उद्देश छे। अने ते उद्देश मत्र जापथी सिद्ध थाय छे।

मत्रनो जाप हृदयमाथी दूषित भावनाओने बहार काढी अन्त करणने शुद्ध करे छे । मत्र जाप वडे गरमी वधवाथी मस्तिष्कनी गुप्त समृद्धिनो कोष खुली जाय छे अने ए द्वारा धार्यु कार्यसिद्ध थाय छे ।

शब्द रचनानी शक्ति अत्यन्त प्रबळ होय छे । जे कार्य वर्षोमा नथी थई शकतु, ते कार्य योग्य शब्द रचना द्वारा थोडी ज क्षणोमा थई शके छे । नमस्कार मन्त्र ए कारणथी मोटो मत्र गणाय छे अने मोटामा मोटा असाध्य-दु साध्य कार्यो पण एनाथी सिद्ध थता जोवाय छे ।

'उत्साहान्निश्चयात् धैर्यात्, सतोषात्तत्त्वदर्शनात् ।
मुनेर्जनपदत्यागात्' षड्भिर्योग प्रसिध्यति ॥'

बीजा योगनी जेम मत्रयोगनी सिद्धि पण उत्साहथी, निश्चयथी, धैर्यथी, सतोषथी, तत्त्व-दर्शनथी अने लोकसपर्कना त्यागथी थई शके छे ।

अमूर्त अने मूर्त वच्चेनो सेतु

नमो ए धर्मवृक्षनु मूळ छे, धर्म नगरनु द्वार छे, धर्म प्रासादनो पायो छे, धर्मरत्ननु निधान छे, धर्म जगतनो आधार छे अने धर्म रसनु भाजन छे। नमस्कार रूपी मूळ विना धर्मवृक्ष सूकाय छे। नमस्कार रूपी द्वार विना धर्म नगरमा प्रवेश अशक्य छे। नमस्कार रूपी पाया विना धर्म पासाद टकी शकतो नथी। नमस्कार रूपी निधान विना धर्मरत्नोनु रक्षण थतु नथी। नमस्कार रूपी आधार विना धर्म जगत् निराधार छे। नमस्काररूपी भाजन विना धर्मरस टकी शकतो नथी अने धर्मनारसनो स्वाद चाखी शकातो नथी ।

'विनय-मूलो धम्मो ।' धर्मनु मूळ विनय छे। नमस्कार ए विनयनो ज एक प्रकार छे। गुणानुराग ए धर्म द्वार छे अने नमस्कार गुणानुरागनी क्रिया छे। श्रद्धा ए धर्म-महेलनो पायो छे, नमस्कार ए श्रद्धा अने रुचिनु ज बीजु नाम छे। मूल गुणो अने उत्तर गुणो ए रत्नो छे, नमस्कार तेनु मूल्याकन छे। चतुर्विध सघ अने मार्गानुसारी जीवो ए धर्मरूपी जगत छे, तेमनो आधार नमस्कार भाव छे। समता भाव, वैराग्य भाव, उपशम-भाव ए धर्मनो रस छे। ते रसास्वाद माटेनु भाजन पात्र के आधार नमस्कार छे ।

विनय, भक्ति, श्रद्धा, रुचि, आर्द्रता, निरभिमानिता वगेरे नमस्कार भावना ज पर्याय-वाचक विभिन्न शब्दो छे। तेथी नमस्कार भाव एज धर्मनु मूल, द्वार, पीठ, निधान, आधार अने भाजन छे। अमूर्त अने मूर्त वच्चे एक मात्र पुल, सेतु के सधि होय तो ते नमस्कार छे ।

नवकारमां सर्व सग्रह

नवकारमा चौद 'न' कार छे, (प्राकृत भाषामा 'न' अने 'ण' बन्ने विकल्पे आवे छे)

ते चौद पूर्वोने जणावे छे, अने नवकार चौद पूर्वरूपी श्रुतज्ञानन‍ो सार छे अेवी प्रतीति करावे छे। नवकारमा बार 'अ' कार छे, ते बार अगोने जणावे छे। नव 'ण' कार छे, ते नवनिधानने सूचवे छे।

पाच 'न' कार पाच ज्ञानने आठ 'स' कार आठ सिद्धिने, नव 'म' कार चार मगळ अने पाच महाव्रतोने, त्रण 'ल' कार त्रण लोकने, त्रण 'ह' कार आदि मध्य अने अत्य मगळने, बे 'च' कार देश अने सर्व चारित्रने, बे 'क' कार बे प्रकारना घाती-अघाती कर्मोने, पाच 'प' कार पाच परमेष्ठिने, त्रण 'र' कार (ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी) त्रण रत्नोने, त्रण 'य' कार (मन, वचन, कायाना) त्रण योगो अने तेना निग्रह ने, बे 'ग' कार (गुरु अने परमगुरु अेम) बे प्रकारना गुरुओने, बे 'ए' कार सात राज उर्ध्व अने सात राज अधो एवो चौद राज लोकने सूचवे छे।

मूळ मत्रना चोवीस गुरू अक्षरो चोवीस तीर्थकरोरूपी परम गुरूओने अने अगीआर लघु अक्षरो वर्तमान तीर्थपतिना अगीआर गणधर भगवतोरूपी गुरुओने पण जणाव-नारा छे।

प्राणशक्ति अने मनस्तत्त्व

नमस्काररूपी क्रिया द्वारा श्वासनु मनस्तत्वमा रूपान्तर थई जाय छे। जेम जेम नमस्कारना जापनी सख्या वधती जाय छे। तेम तेम आध्यात्मिक उन्नति थतानी साथे साधक श्वासप्रश्वासने मननी ज क्रिया रूपे जाणी शके छे। तेथी मनना सकल्प विकल्पो शमी जाय छे।

मनने सीधे सीधी रीते प्राणशक्ति द्वारा ज सयममा लेती क्रिया-प्रणालि अनन्तने पहोचवानो सहेलामा सहेलो, खूब ज असर कारक अने सपूर्णरीते वैज्ञानिक रस्तो छे। नमस्कारनी क्रिया अने जपद्वारा आ मार्गनी सरळ पणे सिद्धि थती जाय छे, तेथी जाप द्वारा थती नमस्कारनी क्रियानो मार्ग अनन्त एवा परमात्मस्वरूपने पामवानो झडपी, सुनिश्चित अने अनेक महापुरुषो वडे अनुभवीने प्रकाशेलो राजमार्ग छे। तुलसीदासजी नु पण कथन छे के '—

नाम लिया उसने सब कुछ लिया,
ए सब शास्त्रका भेद,
नाम लिये बिना नरक मे पडे,
पढ पढ पुरान अरु वेद।

मंत्रना शब्दोमा थतो प्राणनो विनियोग कोई एक अर्थमा ज पुराई न रहेता शास्त्र निर्दिष्ट सर्व अर्थोमा व्यापि जाय छे, शरीर, प्राण, इन्द्रियो, मन, बुद्धि अने प्रज्ञा पर्यंत सर्व

करणो शुद्धिने अनुभवे छे। अने आध्यात्मिक आनन्दनी अनुभूति पर्यंत जीवात्माने लई जाय छे। मत्रना शब्दो वडे मन-बुद्धि आदिनु प्राणतत्त्वमा रूपातर थाय छे। अने प्राण तत्त्व सीधेसीधी आत्मानुभूति करावे छे। प्राणतत्त्व आत्माना वीर्यगुणनी साथे निकटनो सबध धरावे छे।

शब्दना बे अर्थ होय छे, एक वाच्यार्थ अने बीजो लक्ष्यार्थ। वाच्यार्थनो सबध शब्द कोष साथे छे। लक्ष्यार्थनो सबध साक्षात् जीवन साथे छे। पचमगलनो लक्ष्यार्थ प्राण तत्त्वनी शुद्धि द्वारा साक्षात् जीवनशुद्धि करावनारो थाय छे।

कर्मनो निरनुबध क्षय

चित्तमा अरति, उद्वेग, कटाळो जणाय त्यारे जाणवु के मोहनीय कर्मनो उदय अने तेनी साथे अशुभ कर्मनो विपाक जाग्यो छे। तेने टाळवानो उपाय शास्त्रकारो ए पच मगल ने कह्यो छे। एकाग्रतापूर्वक पच मगलनो जाप शात चित्ते करवाथी अशुभ कर्म टळी जई शुभ बनी जाय छे। तेनो अर्थ ए छे के उदयमा आवेलु कर्म अवश्य भोगववु पडे छे, तेने ज्ञानी ज्ञानथी, समताथी अने अज्ञानी अज्ञानथी, आर्तरौद्र ध्यानथी वेदे छे। ज्ञानीने नवीन बध थतो नथी, अज्ञानीने थाय छे।

सत्तामांथी एटले सचितमाथी उदयमा आववा सन्मुख थयेला कर्ममा वर्तमानना शुभाशुभ भावथी फेरफार थई शके छे। पचमगलना जाप अने स्मरणमा ज्ञानीना ज्ञान गुणनी, साधुना सयम गुणनी, तपस्वीओना तप गुणनी अनुमोदना थाय छे। अने ते ते गुणोनु मानसिक आसेवन थाय छे, तेथी जे शुभ भाव जागे छे, तेनाथी कर्मनी स्थिति अने अशुभ रस घटी जाय छे अने शुभ रस वधी जाय छे। तथा उदयागत कर्म समताभावे वेदन थई जतु होवाथी तेनो निरनुबध क्षय थई जाय छे।

पच मगलथी भावधर्मनु आराधन थाय छे केमके तेमा रत्नत्रयधरोने विषे भक्ति प्रकटे छे। तेमनी आज्ञा पालन करवानो उत्साह जागे छे। सर्वना शुभनी ज एक चिन्तानो भाव प्रगटे छे अने अशुभ ससार प्रत्ये निर्वेदनी भावना जन्मे छे। कह्यु छे के—

'रत्नत्रयधरेष्वेका, भक्तिस्तत्कार्यकर्म च।
शुभैकचिन्तासंसार-जुगुप्सा चेति भावना॥

आ भाव धर्म दान, शील, तप आदि द्रव्य धर्मनी वृद्धि करे छे। अने ते द्रव्य धर्मनी वृद्धि पाछी भाव धर्मनी वृद्धि करे छे। एम उत्तरोत्तर द्रव्य-भाव धर्मनी वृद्धि तेनी पराकाष्ठाने पामी सर्व कर्म रहित मोक्षनु कारण बने छे।

नवकार मंत्रना पदोमा गुण-गुणिनी उपासना उपरात शब्द द्वारा शुभ स्पदनो उत्पन्न

करवानी जबरदस्त शक्ति छे। तेथी तेने सर्व मगळोमा पहेलुं मगळ अने सर्व कल्याणोमा उत्कृष्ट कल्याण कह्यु छे।

चारे निक्षेपा वडे थती पाचे परमेष्ठिओनी भक्ति नवकार मत्रमा रहेली होवाथी सर्व प्रकारना शुभ, शिव अने भद्र तथा पवित्र निर्मळ अने प्रशस्त भावो पेदा करवानुं सामर्थ्य तेमा रहेलुं छे।

अनिर्णीत वस्तुनो नामादि द्वारा निर्णय करावे, शब्द द्वारा अर्थनो अने अर्थ द्वारा शब्दनो निश्चित बोध करावे तथा अनभिमत अर्थनो त्याग अने अभिमत अर्थनो स्वीकार कराववामा उपयोगी थाय ते निक्षेप कहेवाय छे।

नवकार मत्रना पदो नाम, स्थपना द्रव्य अने भाव ए चारे निक्षेपोनी साथे सबध धरावनारा होवाथी समग्र विश्वनी सुभ वस्तुओ साथे सबध करावे छे। ए द्वारा अशुभ कर्मनो क्षय अने शुभ कर्मनो बध करावी परपराए मुक्ति सुखने मेळवी आपे छे। तेथी नवकार मत्र ए सर्व सुखोमा उत्कृष्ट सुख, सर्व मगलोमा उत्कृष्ट मगल पण कहेवाय छे।

मोक्ष मार्गमां पुष्टावलबन

नवकार मत्र ए जीवने पोतानी उन्नति साधवामा पुष्टावलबन छे। अलक्ष्यने साधवा माटे लक्ष्यनु अवलब लेवुं ते सालबन ध्यान छे। आलबन वडे ध्येयमा उपयोगनी एकता थाय छे।

उपयोग एटले बोधरूप व्यापार अने एकता एटले सजातीय ज्ञाननी धारा। निमित्त कारणो बे प्रकारना छे। एक पुष्ट अने बीजा अपुष्ट। पुष्ट निमित्तनु लक्षण ते छे के जे कार्य सिद्ध करवानु होय ते कार्य अथवा साध्य जेमा विद्यमान होय ते पुष्ट निमित्त छे। मोक्ष मार्गमा साध्य सिद्धत्व छे। ते श्री अरिहत सिद्धादि परमेष्ठिओमा छे, तेथी तेमनु निमित्त ए पुष्ट निमित्त छे, तेमनु आलबन ए पुष्ट आलबन छे।

पाणीमा सुगधरूपी कार्य उत्पन्न करवु होय तो पुष्पो ए पुष्ट निमित्त छे, कारण के पुष्पमा सुगध रहेली छे। पुष्ट निमित्तोनु आलबन स्मरण, विचिन्तन अने ध्यान वडे लई शकाय छे।

पुष्ट निमित्तोना स्मरणने शास्त्रोमा मोक्ष मार्गनो प्राण कह्यो छे। स्मरण ए सर्वसिद्धियो ने आपवामा अचिन्त्य चिन्तामणि समान गणाय छे। निमित्तोनी स्मृतिरूपी चिन्तामणि रत्न प्रशस्त ध्यानादि भावोने प्राप्त करावी प्रशस्त फळोने अभिव्यक्त करे छे।

पुष्ट निमितोना स्मरण वडे इन्द्रियोनो बाह्य विषयोथी प्रत्याहार थाय छे। ए रीते चित्तथी विशेष प्रकारे स्थिरतापूर्वक चिन्तन ते विचिन्तन छे। चित्तनो विजातीय वृत्तिथी

अस्पृष्ट सजातीय वृत्तिनो एक सरखो प्रवाह ते ध्यान छे । तेने प्रत्ययनी एकतानता पण कहे छे ।

स्मरण, विचिंतन अने ध्यान ए साधनानु जीवित, प्राण अने वीर्य छे । पुष्ट निमित्तोना आवलम्बनथी ते प्राप्य छे । तेथी पुष्ट निमित्तो साधनाना प्राण गणाय छे ।

श्रीसिद्धसेनसूरिजी फरमावे के –

'पुष्टहेतुर्जिनेन्द्रोऽयम्, मोक्ष-सद्भाव-साधने ।'

मोक्षरूपी कार्यनी सिद्धि माटे श्री जिनेन्द्र भगवान अने उपलक्षणथी पाचे परमेष्ठिओ पुष्ट निमित्त छे । तेथी श्रीनमस्कार मत्र सर्व साधकोने पुष्ट आलबनरूप थईने साध्यनी सिद्धि करावे छे ।

देहनुं द्रव्य स्वास्थ्य अने आत्मानु भाव स्वास्थ्य

पचमगल महाश्रुतस्कधरूप होवाथी सम्यग् ज्ञान स्वरूप छे । पच परमेष्ठिनी स्तुतिरूप होवाथी सम्यग् दर्शन स्वरूप छे । तथा सामायिकनी क्रियाना अगरूप अने मन, वचन, कायानी प्रशस्त क्रियारूप होवाथी कथचित् चारित्र स्वरूप पण छे । ज्ञानमा प्रधानता मननी, स्तुतिमा प्रधानता वचननी अने क्रियामा प्रधानता कायानी रहेली छे ।

आयुर्वेद मुजब वात, पित्त अने कफनी विषमता ते रोग अने समानता ते आरोग्य छे । ज्या मन त्या प्राण अने ज्या प्राण त्या मन ए न्याये सम्यग् ज्ञान वात वैषम्यने शमावे छे । ज्या दर्शन, स्तवन, भक्ति आदि होय त्या मधुर परिणाम होय छे, अने ते पित्त प्रकोपने शमावे छे । ज्या कायानी सम्यक् क्रिया होय त्या गति छे, अने ज्या गति त्या उष्णता होय ज । उष्णता कफना प्रकोपने शमावे छे । ए रीते श्री पच मगळमा शरीरनु अस्वास्थ्य निपजावनार त्रिदोषने शमाववानी शक्ति छे ।

बीजी रीते विचारता राग ए ज्ञान गुणनो घातक छे, द्वेष ए दर्शन गुणनो घातक छे अने मोह ए चारित्र गुणनो घातक छे । तेथी विपरीत पच मगळमां ज्ञान छे, दर्शन छे, चारित्र छे तथा मननी, वचननी, कायानी प्रशस्त क्रिया छे । तेथी पचमगलमां देहने दूषित करनार वात, पित्त अने कफ दोषने शमाववानी शक्ति छे, तेम आत्माने दूषित करनार राग, द्वेप अने मोहने शमाववानी पण शक्ति छे ।

विकृत ज्ञान ए राग छे,, विकृत श्रद्धा ए द्वेष छे अने विकृत वर्तन ए मोह छे । रागी दोपने जोतो नथी, द्वेषी गुणने जोतो नथी अने मोही जाणवा छता ऊधु वर्तन करे छे । गुण अने द्वेपनु यथार्थ ज्ञान करवा माटे राग अने द्वेषने जीतवा जोईए तथा यथार्थ वर्तन करवा मोहने जीतवो जोईए ।

ज्या ज्या वर्तनमा दोप जणाय त्यां त्या ज्ञान दूषित ज होय, एवो नियम नथी । ज्ञान

यथार्थ होवा छता वर्तन दूषित थवामा कारण प्रमादशीलता, दु सग अने अनादि असदभ्यास छे। ते कारणे रागादि दोपोनो निग्रह करवा माटे एक बाजु यथार्थ ज्ञान अने बीजी बाजु यथार्थ वर्तननो अभ्यास जरूरी छे।

ज्ञान मनमा, स्तुति-स्तव वचनमा अने प्रवृत्ति कायावडे थाय छे। कफ दोप कायानी क्रियानी साथे सबंध राखे छे। पित्त दोप वचननी क्रियानी साथे सबध राखे छे अने वात दोष मननी क्रियानी साथे सबध राखे छे। राग, द्वेप अने मोह ए त्रण दोपो पण अनुक्रमे मन, वचन कायानी क्रियानी साथे सबध धरावे छे। रागनी अभिव्यक्ति मुख्यत्वे मनमा, द्वेषनी अभिव्यक्ति मुख्यत्वे वचनमा अने मोहनी अभिव्यक्ति मुख्यत्वे क्रिया द्वारा थाय छे।

पचमगल ज्ञान, दर्शन चारित्र स्वरूप होवाथी तथा तेमा मन, वचन, काया त्रणेनी प्रशस्त क्रिया होवाथी आत्माने दूषित करनार राग, द्वेप अने मोह तथा शरीरने दूषित करनार वात, पित्त अने कफनो निग्रह करवानी शक्ति तेमा रहेली छे। तेथी श्री पचमगलनुं आराधन आत्मानुं भावस्वास्थ्य अने देहनुं द्रव्यस्वास्थ्य उभयने आपवानी एक साथे शक्ति धरावे छे।

प्रथम पदनो अर्थ भावनापूर्वक जाप

समग्र नवकारनी जेम नवकारना प्रथम पदना जापथी मन-वचन कायाना योगो अने आत्माना ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुणोनी शुद्धि थाय छे। देहनी त्रण धातुओ वात, पित्त अने कफ तथा आत्माना त्रण दोषो राग-द्वेष-अने मोह अनुक्रमे, त्रण योगनी अने त्रण गुणनी शुद्धि वडे दूर थाय छे।

'नमो' पद वडे मनोयोग अने ज्ञानगुणनी, 'अरिह' पद वडे वचन योग अने दर्शनगुणनी तथा 'ताण' पद वडे काययोग अने चारित्रगुणनी शुद्धि थाय छे। त्रण योगनी शुद्धि वडे वात, पित्त अने कफना विकरो तथा त्रण गुणनी शुद्धि वडे राग, द्वेष अने मोहना दोषो नाश पामे छे। तेथी श्रीनवकार मन्त्रना प्रथम पदना जाप वडे शरीर अने आत्मा उभयनी शुद्धि थाय छे।

शुभ मनोयोगथी वात विकार जाय छे, शुभ वचनयोगथी पित्त विकार जाय छे। अने शुभ काययोगथी कफ विकार जाय छे। सम्यग् ज्ञान वडे राग दोष जाय छे, सम्यग् दर्शन वडे द्वेष दोष जाय छे अने सम्यक् चारित्र वडे मोह दोष जाय छे।

मननी शुद्धि 'नमो' पद अने तेना अर्थनी भावना वडे थाय छे। वचननी शुद्धि 'अरिह' पद अने तेना अर्थनी भावना वडे थाय छे। कायानी शुद्धि 'ताण' पद अने तेना अर्थनी भावना वडे थाय छे।

नमो पद मंगल सूचक छे। अरिहं पद उत्तमतानुं सूचक छे। अने ताणं पद शरण अर्थने सूचवे छे, मंगल उत्तम, अने शरणने जणावनार प्रथम पदनी अर्थ भावना अनुक्रमे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनी शुद्धि करे छे।

साचुं ज्ञान दुष्कृतवान एवा पोताना आत्मानी गर्हा करावे छे, साचुं दर्शन सुकृतवान एवा अरिहंतादिनी स्तुति करावे छे अने साचुं चारित्र आज्ञा पालनना भावनो विकास करे छे। दुष्कृत प्रत्येनो राग, सुकृत प्रत्येनो द्वेष अने आज्ञापालन प्रत्येनो प्रमाद सम्यग् ज्ञान, दर्शन अने चारित्र गुणना विकासथी नाश पामे छे। अने ए त्रणे गुणोनो विकास प्रथम पदनी अर्थ भावनापूर्वक थता तेना जाप वडे सुसाध्य बने छे।

नवकार-चौदपूर्व- अष्ट प्रवचनमाता

महामंत्रनो मुख्य विषय योगशास्त्रमां वर्णवेल लक्षणवाली मनोगुप्ति छे। त्यां कह्युं छे के—

'विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम्।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता॥'

आर्त-रौद्रध्याननो त्याग, धर्मध्यानमां स्थिरता अने आत्मारामवालुं शुक्लध्यान जेमां होय तेने ज्ञानी पुरुषोए मनोगुप्ति कही छे।

नवकार मंत्रना जापथी ते त्रणे कार्यो ओछा वधता अंशे सिद्ध थता देखाय छे। तेथी मनोगुप्तिनी जेम नवकारने पण चौद पूर्वनो सार कह्यो छे।

चौद पूर्वनो सार जेम नवकार मंत्र छे, तेम अष्टप्रवचनमाता पण छे। अष्टप्रवचन-मातामां पण मनोगुप्ति प्रधान छे। बाकीनी गुप्ति अने समितियो मनोगुप्तिने सिद्ध करवा माटे ज कहेली छे। बीजी रीते चौद पूर्वनो अभ्यास करीने पण छेवटे अष्टप्रवचनमाताना परिपूर्ण पालन स्वरूप पंच परमेष्ठि पदने ज प्राप्त करवानुं छे।

महामंत्रनो जाप अने चिन्तवन पांचे परमेष्ठि उपर प्रीति अने भक्ति जगाडे छे तथा ए स्वरूप पामवानी तालावेली उत्पन्न करे छे, अने अंते ते स्वरूप पमाडीने विरमे छे। तेथी नवकार, चौदपूर्व अने अष्ट प्रवचन माता एक ज कार्यनी सिद्धि करनार होवाथी समानार्थक—एक प्रयोजनात्मक अने परस्पर पूरक बनी जाय छे।

तत्त्वरुचि - तत्त्वबोध - तत्त्व परिणति

नवकारना प्रथम पदनी अर्थ भावना अनेक रीते विचारी शकाय छे।

नमो पदथी तत्त्व रुचि, अरिहं पदथी तत्त्वबोध अने ताणं पदथी तत्त्व परिणति लई

शकाय छे । नमो पद आत्मतत्त्वनी रुचि जगाडे छे, अरिह पद शुद्ध आत्मतत्त्वनो बोध करावे छे अने ताण पद आत्मतत्त्वनी परिणति उभी करे छे ।

श्री विमलनाथ प्रभुना स्तवनमा पू० उपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराज फरमावे छे के :–

'तत्त्व प्रीति कर पाणी पाए
विमलालोके आजीजी,
लोयण गुरु परमान्न दिए तव
भ्रम नाखे सवि भाजीजी ।'

परमात्मानु ध्यान तत्त्व प्रीतिकर पाणी छे, तत्त्वबोधकर निर्मळ नेत्राजन छे अने सर्व-रोगहर परमान्न भोजन छे । नवकारना प्रथम पदमा थतु अरिहत परमात्मानु ध्यान ते त्रणे कार्योनि करे छे ।

नमो पदथी मिथ्यात्वनो त्याग, अरिह पदथी अज्ञाननो त्याग अने ताण पदथी अविर-तिनो त्याग थायछे । नमनीयने न नमवु ते मिथ्यात्व छे । आत्माना शुद्ध स्वरूपने न जाणवु ते अज्ञान छे । अने आचरवा लायकने न आचरवु ते अविरति छे । नवकारना प्रथम पदना आराधनथी नमनीयने नमन, ज्ञातव्यनु ज्ञान अने करणीयनु करण थतु होवाथी त्रणे दोषोनु निवारण थई जाय छे ।

बहिरात्मभाव–अतरात्मभाव–परमात्मभाव

नवकारना प्रथम पदथी बहिरात्मभावनो त्याग, अतरात्मभावनो स्वीकार अने परमात्मभावनो आदर थाय छे । श्री आनन्दघनजी महाराज सुमतिनाथ भगवानना स्तवनमा फरमावे छे के –

'बहिरातम तजी अतर आतमा-
रूप थई थिर भाव, सुज्ञानी,
परमातमनुं हो आतम भाववु,
आतम अरपण दाव, सुज्ञानी,
सुमति चरण कज आतम अरपणा–'

सुमतिनाथ भगवानना चरण कमळमा आत्मानु अर्पण करवानो दाव ते छे, के बहि-रात्मभावनो त्याग करी, अतरात्मभावमा स्थिर थई, पोतानो आत्मा तत्त्वथी परमात्मा छे, एवा भावमां रमण करवु ।

नमो पद वडे बहिरात्मभावनो त्याग अने अतरात्मभावनो स्वीकार थाय छे तथा अरिह

अने ताण पद वडे आत्मानु परमात्म [illegible] भावन [illegible] परिणामे [illegible]।
त्रणे भावोनु पृथक् पृथग् दर्शन करता तेओश्री फरमावे छे —

'आतम बुद्धे हो कायादिक ग्रह्यो,
बहिरातम अघरूप, सुज्ञानी,
कायादिकनो हो साखीधर रह्यो,
अंतर आतमरूप, सुज्ञानी, सुमति चरण।
ज्ञानानंदे हो पूरण पावनो
वरजित सकल उपाधि, सुज्ञानी,
अतीन्द्रिय गुण गण मणि आगरु
ईम परमातम साध, सुज्ञानी, सुमति चरण।

काया, वचन, मन, आदिने एकात आत्मबुद्धिथी ग्रहण करनार बहिरात्मभाव छे, अने ते पापरूप छे। ते ज कायादिनो साक्षी भाव अंतरात्म स्वरूप छे। परमात्मस्वरूप ज्ञानानदथी पूर्ण छे, सर्व बाह्य उपाधिथी रहित छे, अतीन्द्रिय गुण समूहरूप मणिओनी खाण छे तेनी साधना करवी जोईए।

नवकारना प्रथम पदनी साधना बहिरात्मभावने छोडावी, अंतरात्मभावना स्थिर करी, परमात्मभावनी भावना करावे छे, तेथी पुन पुन करवा योग्य छे। कह्यु छे के —

'बाह्यात्मनमपास्य, प्रसत्तिभाजाऽन्तरात्मना योगी।
सतत परमात्मन, विचिन्तयेत्तन्मयत्वाय ॥
—योगशास्त्र, प्र० १२ श्लो० ६

बाह्यात्मभावनो त्याग करी, प्रसन्न एवा अन्तरात्मभाववडे, परमात्मतत्त्वनु चितन, तन्मय थवा माटे योगी निरन्तर करे।

प्रथम पदनो जाप अने तेना अर्थनु चिन्तन योगीओनी आ भावनानो अभ्यास करावनार थाय छे।

गति चतुष्टयथी मुक्ति अने अनत चतुष्टयनी प्राप्ति

नवकारनु प्रथम पद 'नमो' सद्विचारनु प्रेरक छे। अरिह पद सद्विवेकनु प्रेरक छे। अने ताण पद सद्वर्तननु प्रेरक छे। सद्विचार, सद्विवेक अने सद्वर्तन ए ज निश्चयथी रत्नत्रयी छे।

व्यक्तिनिष्ठ अह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान अने मिथ्याचारित्रथी युक्त छे। ते ज अह ज्यारे समष्टिनिष्ठ बने छे, त्यारे सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त बने छे।

व्यवहारथी संसारी जीव मात्र कर्मवद्ध छे अने ते कारणे जन्म मरण कर्या करे छे। निश्चयनयथी जीव मात्र अनंत चतुष्टयवान छे, अष्ट कर्मथी भिन्न छे, एवी श्रद्धा, ज्ञान अने तदनुरूप वर्तन थाय छे, त्यारे अह पोते ज अर्हं रूप बनी जन्म मरणरूप चार गतिनो अंत करे छे।

नवकारना प्रथम पदनुं आराधन, चिन्तन अने मनन जीवने मिथ्या रत्नत्रयथी मुक्त करी सम्यग् रत्नत्रयथी युक्त करे छे, अने परिणामे अनंत चतुष्टयथी युक्त करी गति चतुष्टयथी मुक्त बनावे छे।

नवकारनुं प्रथमपद पररूपेण नास्तित्वरूप शून्यतानुं बोधक छे, स्वरूपेण अस्तित्वरूप पूर्णतानुं बोधक छे अने उभयरूपे युगपद अवाच्यत्वरूप स्वसंवेद्यत्वनुं बोधक छे। तेथी शून्यता, पूर्णता अने एकतानी भावना करावी जीवने भक्ति, वैराग्य अने ज्ञानथी परिपूर्ण बनावे छे।

पूर्णतानो बोध भक्ति प्रेरक छे, शून्यतानो बोध वैराग्य प्रेरक छे अने एकतानो बोध तत्त्वज्ञाननो प्रेरक छे।

चतुर्थ गुणस्थानके भक्तिनी प्रधानता, छट्ठा गुणस्थानके वैराग्यनी प्रधानता अने ते उपरना गुणस्थानकोए तत्त्वज्ञाननी मुख्यता मानेली छे। प्रथम पद आ रीते सर्व गुणस्थानकोने योग्य साधनानी सामग्री पूरी पाडे छे, तेथी तेने सिद्धान्तना सार रूप कहेल छे।

इच्छायोग-शास्त्रयोग-सामर्थ्ययोग

नवकारना प्रथम पदमां इच्छायोग, शास्त्रयोग अने सामर्थ्ययोग ए त्रणे प्रकारना योगनो समावेश थयेलो छे। नमो पद इच्छायोगनुं प्रतीक छे। अरिह पद शास्त्रयोगनुं प्रतीक छे अने ताण पद सामर्थ्ययोगनुं प्रतीक छे।

इच्छायोग प्रमादी एवा ज्ञानीनी विकल क्रिया छे। शास्त्रयोग अप्रमादी एवा ज्ञानीनी अविकल क्रिया छे अने सामर्थ्ययोग ए एथी पण विशेष अप्रमत्तभावने धारण करनारनी शास्त्रातिक्रान्त प्रवृत्ति छे।

'नमो' पद शास्त्रोक्त क्रियानी इच्छा दर्शावे छे तेथी प्रार्थना स्वरूप छे। 'अरिह' पद शास्त्रोक्त क्रियानुं स्वरूप बतावे छे तेथी स्तुति स्वरूप छे अने 'ताण' पद शास्त्रोक्त मार्गे चालीने तेनुं पूर्ण फळ बतावे छे तेथी उपासना स्वरूप छे। नवकारना प्रथम पदमां आ रीते सदनुष्ठाननी प्रार्थनारूप इच्छायोग, सदनुष्ठाननी स्तुतिरूप शास्त्रयोग अने सदनुष्ठाननी उपासनारूप-सामर्थ्ययोग गुंथायेलो होवाथी त्रणे प्रकारना योगीओने उत्तम आलंबन पूरू पाडे छे।

इच्छायोगथी योगावचकतानी प्राप्ति, शास्त्रयोगथी क्रियावचकतानी प्राप्ति अने सामर्थ्ययोगथी फलावचकतानी प्राप्ति थाय छे। अणे प्रकारना अवचक योग प्रथम पदना आराधकने अनुक्रमे प्राप्त थाय छे।

कारणमा कार्यनो उपचार करीने प्रथम पदनी आराधनाने अहीं इच्छायोग, शास्त्रयोग अने सामर्थ्ययोगना नाम घटे छे अने तेना फल रूपे सदगुरुनी प्राप्तिरूपी योगावचकता, तेमनी आज्ञाना पालनरूपी क्रियावचकता अने तेना फलस्वरूप परम पदनी प्राप्तिरूपी फलावचकता पण घटे छे।

हेतु, स्वरूप अने अनुबधथी शुद्ध लक्षणवालु धर्मानुष्ठान

धर्मनो हेतु सदनुष्ठाननु सेवन, धर्मनु स्वरूप परिणामनी विशुद्धि अने धर्मनु फल आलोक परलोकना सुजदायक फलो तथा मुक्ति न मले त्या सुधी पुन पुन सद्धर्मनी प्राप्तिरूप अनुबध छे, ए त्रणे वस्तुओनी प्राप्ति नमस्कार मत्र अने तेना प्रथम पदना आराधकने प्राप्त थाय छे तेथी ते हेतु, स्वरूपअने अनुबधथी शुद्ध लक्षणवालु धर्मानुष्ठान बने छे।

शास्त्रोमा धर्मनु स्वरूप नीचे मुजब कह्यु छे—

'वचनाद्यदनुष्ठानमविरुद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसयुक्त, तद्धर्म इति कीर्त्यते ॥'

पूर्वापर अविरुद्ध एवा वचनने अनुसरीने मैत्र्यादि भावयुक्त यथोक्त अनुष्टानने धर्म कहेल छे। नवकारनी आराधना अविरुद्ध वचनानुसारी छे, सर्व प्रकरना गुणस्थानकोए रहेला जीवोने तेमनी योग्यतानुसार विकास करनारी छे तथा मैत्री प्रमोदादि भावोथी सहित छे, तेथी यथोक्त धर्मानुष्ठान बने छे। अने तेनु फल आ लोकमा अर्थ, काम, आरोग्य, अभिरति अने परलोकमा मुक्ति, ते न मले त्या सुधी सद्गति उत्तमकुलमा जन्म अने सद्बोधनी प्राप्ति वगेरे अवश्य मले छे।

बीजी रीते नमो ए धर्मनु बीज छे, केमके तेमा सद्धर्म अने तेने धारण करनारा सत्पुरुषोनी प्रशसादि रहेला छे, धर्मचिन्तादि तेमा अकुरा छे अने परपराए निर्वाणरूप परमफल रहेलु छे तेथी तेनु आराधन अत्यत आदरणीय छे। ते माटे कह्यु छे के।

'वपन धर्म बीजस्य, सत्प्रशसादितद्गतम्।
तच्चिन्ताद्यकुरादिस्यात्, फलसिद्धिस्तुनिर्वृत्ति ॥

'नमो अरिहताण।' ए पदना आराधनमा धर्मबीजनु वपन, धर्मचिन्तादि अकुरादि अने फलसिद्धिरूपी निर्वाण पर्यंतना सुख रहेला छे।

आगम-अनुमान-ध्यानाभ्यास

नमो पदथी धर्मनु श्रवण, अरिह पदथी धर्मनु चिन्तन अने ताण पदथी धर्मनी भावना थाय छे। श्रुत, चिन्ता अने भावनाने अनुक्रमे उदक, पय अने अमृत तुल्य कह्या छे। उदकमा तृषाने छीपाववानी ताकात छे, तेथी अधिक पय मा अर्थात् दूधमा छे अने तेथी पण अधिक अमृतमा छे।

धर्मनु श्रवण विपयनी जे तृषाने छीपावे छे, तेथी अधिक तृपाने धर्मनी चिन्तवना आदि छीपावे छे। अने तेथी पण अधिक धर्मनी भावना-ध्यान-निदिध्यासनादि छीपावे छे। विपयनी तृपा अने क्षुधाने तृप्त करवानी ताकात प्रथम पदनी अर्थभावनामा रहेली छे, केमके तेना त्रणे पदोवडे धर्मना श्रवण-मनन निदिध्यासनादि त्रणे कार्यो सिद्ध थाय छे। धर्मनी अने योगनी सिद्धि माटे जे त्रण उपायो शास्त्रकारोए दर्शाव्या छे, ते त्रणेनी आराधना प्रथम पदनी आराधनथी थाय छे। ते माटे योगाचार्योए कह्यु छे के—

'आगमेनानुमानेन, ध्यानाभ्यासरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञा, लभते योगमुत्तमम्॥

आगम, अनुमान अने ध्यानाभ्यासनो रस ए त्रणे उपायोथी प्रज्ञाने ज्यारे समर्थ बनाववामा आवे छे, त्यारे उत्तम एवा योगनी अथवा उत्तम प्रकारे योगनी एटले मोक्ष मार्गनी प्राप्ति थाय छे।

योग वडे जे मोक्षनी साधना करवानी होय छे, ते योग अने मोक्ष ए बन्नेनी प्रथम श्रध्धा आगमना श्रवण वडे थाय छे। पछी अनुमान, युक्ति आदिना विचार वडे प्रतीति थाय छे अने छेल्ले ध्यान-निदिध्यासन वडे स्पर्शना-प्राप्ति थाय छे।

आगम, अनुमान, ध्यान अथवा श्रुत, चिन्ता अने भावना ए अनुक्रमे श्रवण, मनन अने निदिध्यासनना ज पर्यायवाचक शब्दो छे। अने ते त्रणे अगोनी आराधना प्रथम पदनी अर्थभावनायुक्त आराधना वडे थाय छे।

धर्मकाय, कर्मकाय अने तत्त्वकाय अवस्था

तीर्थंकरोनी धर्मकाय, कर्मकाय अने तत्त्वकाय एम त्रण अवस्था होय छे। तेने शास्त्रनी परिभापामा अनुक्रमे पिंडस्थ, पदस्थ अने रूपातीत नामथी सबोधवामा आवे छे।

धर्मकाय अथवा पिंडस्थ अवस्था प्रभुनी सम्यक्त्व प्राप्ति अनतर थती धर्म साधनाने कहेवामा आवे छे। यावत् छेल्ला भवनी अदर पण ज्या सुधी घातीकर्मनो क्षय थतो नथी, त्यां सुधी तेमनी जन्मावस्था, राज्यावस्था अने चारित्र ग्रहण कर्या बाद केवलज्ञान न थाय त्या सुधीनी छद्मावस्थानी आराधना ए धर्मकाय अवस्था कही छे। त्यार बाद घातीकर्मनो

क्षय अने कैवल्यनी प्राप्ति थया बाद धर्मतीर्थनी स्थापना, निरन्तर धर्मोपदेशादि वडे परोपकारनी प्रवृत्ति ते कर्मकाय अवस्था छे। अने योग निरोधरूप शैलेशीकरणने तत्त्वकाय अवस्था कही छे।

ए त्रणे अवस्थानु ध्यान अने आराधन नवकारना प्रथम पदनी आराधनाथी थाय छे। तेमा नमो पद धर्मकाय अवस्थानु प्रतीक बने छे। अरिह पद कर्मकाय अवस्थानु प्रतीक बने छे अने ताण पद तत्त्वकाय अवस्थानुं प्रतीक बने छे।

ए रीते प्रभुनी पिंडस्थ, पदस्थ अने रूपातीत अवस्थाओनी आराधनानु साधन नवकारना प्रथम पद वडे थतु होवाथी प्रथम पदनो जाप, ध्यान अने अर्थचिन्तन पुन. पुन करवा लायक छे।

अमृत अनुष्ठान

प्रथम पद वडे परमात्मानी स्तुति, परमात्मानु स्मरण अने परमात्मानु ध्यान सरलताथी थइ शके छे। नामग्रहण वडे स्तुति, अर्थभावन वडे स्मरण अने एकाग्रचिन्तन वडे ध्यान थइ शके छे।

श्रद्धा वडे, मेधा वडे, धृति वडे, धारणा वडे अने अनुप्रेक्षा वडे थती प्रभुनी स्तुति, स्मृति अने ध्यान अनुक्रमे बोधि, समाधि अने सिद्धिनु कारण बने छे।

'नमो अरिहताण।' ए पद योगनी इच्छा योगनीप्रवृत्ति, योगनु स्थैर्य अने योगनी सिद्धि करावे छे। एटलु ज नहि पण प्रीति-भक्ति-वचन अने असग ए चारे प्रकारना अनुष्ठाननी प्राप्ति करावी निर्विघ्नपणे जीवोने मोक्षमा लई जाय छे।

योगना पाच अगो स्थान, वर्ण, अर्थ, आलबन अने अनालबन तथा आगमोक्त योगनी आठ अवस्था तच्चित्त, तन्मन, तल्लेश्य, तदध्यवसाय, तत्तीव्रअध्यवसाय, तदर्थोपयुक्त, तदर्पितकरण अने तद्भावनाभावित पर्यंतनी अवस्था प्रथम पदना आलवन वडे सिद्ध करी शकाय छे।

द्रव्य क्रियाने भाव क्रिया बनावनार अने तद्हेतु अनुष्ठानने अमृत अनुष्ठान बनावनार जे चित्त वृत्तिओने शास्त्रकारोए फरमावी छे, ते सौनु आराधन प्रथम पदना अवलबन वडे थई शके छे।

अर्थनु आलोचन, गुणनो राग अने भावनी वृद्धि ए त्रण गुण द्रव्यक्रियाने भावक्रिया बनावे छे। तथा तद्गत चित्त, शास्त्रोक्त विधान, भावनी वृद्धि, भवनो भय, विस्मय, पुलक अने प्रधान प्रमोद ते तद्हेतु अनुष्ठानने अमृत अनुष्ठान बनावे छे। ते माटे कह्युं छे के –

तद्‌गत चित्तने समय विधान,
भावनी वृद्धि भय भव अति घणो जी;
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान,
लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणो जी ।

भाव प्राणायामनु कार्य

नमो पद बाह्य भावनो रेचक करावे छे, आतर भावनो पूरक करावे छे अने परमात्मभावनो कुंभक करावे छे, तेथी ते भाव प्राणायामनु कार्य पण करे छे ।

भाव प्राणायाम ज्ञानावरणनो क्षय तथा योगना उपरना ध्यानादि अगोनी सिद्धि करावनार होवाथी मात्र शरीर स्वास्थ्यने सुधारनार द्रव्य प्राणायामनी अपेक्षाए उत्कृष्ट छे । अने तेनु आराधन प्रथम पदना आलबनथी सुन्दर रीते थतु होवाथी प्रथम पद अत्यत उपादेय छे ।

आगमोमा नमस्कार पदनो अर्थ नीचे मुजब कह्यो छे —

'मणसा गुणपरिणामो, वाया गुणभासण च पचण्ह ।
कायेण सपणामो, एस पयत्थो नमुक्कारो ॥'

मनथी पच परमेष्ठिना गुणोनुं परिणमन, वाणीथी पच परमेष्ठिना गुणोनु भाषण तथा कायाथी पच परमेष्ठि भगवतोने सम्यक् प्रणाम करवो, ते नमस्कार पदनो अर्थ छे ।

नमो पद वडे मनमा गुणोनु परिणमन थाय छे, अरिह पद वडे गुणोनु भाषण थाय छे अने ताण पद वडे कायानुं प्रणमन थाय छे । अथवा त्रणे पदो मळीने परमेष्ठि भगवतोना गुणोनु परिंणमन, भाषण अने प्रणमन करावे छे । तेथी मन, वचन, कायाना त्रणे योगोनु सार्थक्य थाय छे ।

भव्यत्व परिपाकना त्रण उपाय अने छ अभ्यतर तप

नवकारना प्रथम पदना जाप अने ध्यान वडे भव्यत्व परिपाकना त्रणे उपायो अनुक्रमे दुष्कृतगर्हा, सुकृतानुमोदन अने शरणगमन एकी साथे सधाय छे । अने अभ्यतर तपना छए प्रकारो, अनुक्रमे प्रायश्चित्त, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान अने कायोत्सर्गनु पण एक साथे सेवन थाय छे ।

नमो पद दुष्कृतनी गर्हा करावे छे, अरिह पद सुकृतनी अनुमोदना करावे छे अने ताण पद शरण गमननी क्रिया करावे छे ।

ए ज रीते नमो पद वडे पापनुं प्रायश्चित्त अने गुणोनो विनय थाय छे । अरिह पद

वडे भावथी वैयावच्च अने स्वाध्याय थाय छे अने ताण पद वडे परमात्मानु ध्यान अने देहात्मभावनु विसर्जन थाय छे ।

दुष्कृत गर्हादि वडे जीवनी मुक्तिगमन योग्यता परिपक्व थाय छे तथा प्रायश्चित्त-विनयादि तप वडे क्लिष्ट कर्मोनो विगम तथा भाव निर्जरा थाय छे ।

समापत्ति, आपत्ति अने सपत्ति

नवकारना प्रथम पदमा ध्याता, ध्येय अने ध्यान तथा ते त्रणेनी एकतारूप समापत्ति सधाय छे । तेथी तीर्थंकर नाम कर्मना उपार्जनरूप आपत्ति अने तेना विपाकोदयरूप सपत्तिनी पण प्राप्ति थाय छे ।

नमो ए ध्यातानी शुद्धि सूचवे छे अरिह ए ध्येयनी शुद्धि सूचवे छे अने ताण ए ध्याननी शुद्धि सूचवे छे । ए त्रणेनी शुद्धि वडे त्रणेनी एकतारूप समापत्ति अने तेना परिणामे आपत्ति अर्थात् तीर्थकर नामकर्मनुँ उपार्जन तथा बाह्यातर सपत्ति प्राप्त थाय छे ।

ज्ञानसार ग्रन्थना ध्यानाष्टकमा कह्यु छे के —

'ध्याता ध्येय तथाध्यान,
त्रय यस्यैकता गतम् ।
मुनेरनन्यचित्तस्य,
तस्य दु ख न विद्यते ॥१॥
ध्याताऽन्तरात्मा ध्येयस्तु,
परमात्मा प्रकीर्तित ।
ध्यान चैकाग्र्यसवित्ति',
समापत्तिस्तदेकता ॥२॥
आपत्तिश्च तत पुण्य-
तीर्थकृत् कर्मबन्धत ।
तद्भावाभिमुखत्वेन,
सपत्तिश्चक्रमाद्भवेत् ॥३॥
इत्थ ध्यानफलाद्युक्त,
विशतिस्थानकाद्यपि ।
कष्टमात्र त्वभव्याना-
मपि नो दुर्लभ भवे ॥४॥'

ध्याननु फळ समापत्ति, आपत्ति (तीर्थकर नाम कर्मनु उपार्जन) अने संपत्ति (तीर्थ-

कर नाम कर्मनो विपाकोदय) रूप होवाथी विंशतिस्थानक तप आदिनु आराधन सफळ मान्युं छे। जेने ते फळ थतु नथी ते अभव्योनु आराधन कष्ट मात्र फळवाळुं छे अने ते तो आ भवचक्रमा अभव्योने पण दुर्लभ नथी।

नवकारना प्रथम पदनु भावथी थतु आराधन आ रीते समापत्ति आदि भेद वडे सफळ थतु होवाथी अत्यत उपादेय छे।

धर्मध्यान अने शुक्लध्यान

शास्त्रोमा आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय अने सस्थानविचयादि चार प्रकारनुं धर्मध्यान कह्यु छे। ते धर्मध्यान नवकारना प्रथम पदना नमो पदनी अर्थ भावना वडे साधी शकाय छे।

नमस्कारमा प्रभुनी आज्ञानो विचार छे, रागादि दोषोनी अपायकारकता अने ज्ञाना-वरणीयादि अष्टविध कर्मना विपाकनी विरसतानो पण विचार छे। तथा चौद राजलोक रूप विस्तारवाळा आकाश प्रदेशोमा धर्मस्थाननी प्राप्तिनी अत्यत दुर्लभताना विचाररूपी सस्थानविचय ध्यान पण तेमा रहेलु छे।

अरिह पदमा शुक्ल ध्यानना प्रथम बे भेद पृथक्त्ववितर्क-सविचार अने एकत्ववितर्क-अविचार तथा ताण पदमा शुक्ल ध्यानना छेल्ला बे भेद सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति अने व्युप-रतक्रिया-अनिवृत्तिनो विचार रहेलो छे।

ए रीते अर्थ भावनापूर्वक प्रथम पदनो जाप धर्मध्यानना चारे पाया तथा शुक्ल-ध्यानना चारे पायानो एक साथे सग्रह करावनार होई अति उज्ज्वळ लेश्याने पेदा कराव-नारो थाय छे, तेथी सात्मार्थी जीवोने अत्यत उपादेय छे अने पुन पुन करवा लायक छे।

तप, स्वाध्याय अने ईश्वर प्रणिधान

योगशतकमा कह्यु छे के :—

सरण भए उवाओ,
रोगे किरिया विसम्मि मतो य।
[illegible] पावकम्मो-
[illegible]क्कमभेया उ तत्तेण ॥१॥

[illegible] य इत्थं,
[illegible]रिया उ तवो त्ति कम्मरोगम्मि।
[illegible]सज्झाओ,
विसविणासणो पवरो ॥२॥

बीजाथी भय उत्पन्न थाय त्यारे तेनो उपाय जेम समर्थनु शरण छे, कुष्ठादि व्याधि उत्पन्न थाय त्यारे तेनो उपाय जेम योग्य चिकित्सा छे तथा स्थावरजगमरूप विपनो ज्यारे उपद्रव थाय त्यारे तेनु निवारण जेम देवाधिष्ठित अक्षर न्यास रूपे मत्र छे, तेम भयमोह-नीयादि पापकर्मोनो उपक्रम अर्थात् विनाश करवाना उपाय पण शरण वगेरेने ज कहेला छे।

शरण्य गुरुवर्ग छे। कर्म रोगनी चिकित्सा वाह्य-आभ्यतर तप छे अने मोह विपनो विनाश करवामा समर्थ मत्र पाच प्रकारनो स्वाध्याय छे।

पातजल योगसूत्रमा पण कह्यु छे के –

तप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग ।
समाधिभावनार्थ क्लेशतनूकरणार्थश्च ।। (२–१–२)

तप, स्वाध्याय अने ईश्वर प्रणिधान ए क्रिया योग छे। ते वडे क्लेशनी अल्पता अने समाधिनी प्राप्ति थाय छे।

नवकारनु प्रथम पद 'नमो अरिहताण।' पद समाधिनी भावना अने अविद्यादि क्लेशोनु निवारण करेछे। नमो पद वडे कर्मरोगनी चिकित्सारूप वाह्य-आभ्यतर तप, अरिह पद वडे स्वाध्याय अने ताण पद वडे ईश्वर प्रणिधान–एकाग्रचित्ते परमात्म स्मरण थाय छे। प्रथम पदना विधिपूर्वक जाप वडे श्रद्धा वधे छे, वीर्य-उत्साह वधे छे, स्मृति-समाधि अने प्रज्ञा वधे छे तथा अते कैवल्यनी प्राप्ति थाय छे।

अष्टाग योग

योगना आठ अग यम, निमय, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, अने समाधि कहेला छे। ते प्रत्येक अगनी साधना विधियुक्त नवकार मत्रने गणनारने सधाय छे।

नवकार मत्रने गणनार अहिंसक बने छे, सत्यवादी थाय छे, अचौर्य, ब्रह्मचर्य अने अपरिग्रहव्रतनो पण आराधक थाय छे। नवकार मत्रना आराधकने वाह्यातर शौच अने सतोप तथा पूर्वे कह्या मुजब तप, स्वा याय अने ईश्वर प्रणिधानरूप नियमोनी साधना थाय छे। नवकार मत्रने गणनार स्थिर सुखआसननी अने वाह्यआभ्यतर प्राणायामनी साधना करनारो पण थाय छे।

नवकारनो साधक इन्द्रियोनो प्रत्याहार, मननी धारणा अने बुद्धिनी एकाग्रतारूप ध्यान तथा अत करणनी समाधिनो अनुभव करे छे।

नमो पद वडे नादनी अरिह पद वडे बिंदुनी अने ताण पद वडे कलानी साधना थाय छे।

नवकार मत्र वडे नास्तिकता, निराशा अने निरुत्साहता नाश पामेछे तथा नम्रता, निर्भयता अने निश्चितता प्राप्त थाय छे।

नवकार मत्रमा पोतानी कर्मबद्ध अवस्थानो स्वीकार थाय छे। अरिहतोनी कर्ममुक्त अवस्थानुं ध्यान थाय छे तथा कर्ममुक्तिना उपायो स्वरूप ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनु आराधन थाय छे।

क्षायिक भावनी प्राप्ति

नवकार मत्र वडे औदयिक भावोनो त्याग, क्षायोपशमिक भावोनो आदर अने परिणामे क्षायिक भावनी प्राप्ति थाय छे।

नवकार मत्रना आराधकने मधुरपरिणामनी प्राप्तिरूप साम भाव, तुला परिणामनी आराधनारूप समभाव अने क्षीर खड युक्त अत्यत मधुर परिणामनी आराधनारूप सम्मभावनी परिणतिनो लाभ थाय छे।

नवकारनी आराधना वडे चिंतामणि, कल्पवृक्ष अने कामकुंभथी पण अधिक एवा श्रद्धेय, ध्येय अने शरणनी प्राप्ति थाय छे।

नमो पद वडे क्रोधनो दाह शमे छे, अरिह पद वडे विषयनी तृषा जाय छे अने ताण पद वडे कर्मनो पक शोषाय छे। दाह शमवाथी शाति थाय छे, तृषा जवाथी तुष्टि थाय छे अने पक शोषावाथी पुष्टि थाय छे, तेथी आ मत्रने तीर्थ जळनी अने परमान्ननी उपमाओ यथार्थपणे घटे छे। नमो ए उपशम छे, अरिह ए विवेक छे अने ताण ए सवर छे।

परमान्ननु भोजन जेम क्षुधानु निवारण करे छे तथा चित्ताने तुष्टि अने देहने पुष्टि करे छे, तेम आ मत्रनुं आराधन पण विषय क्षुधानुं निवारण करनार होवाथी मनने शाति, चित्ताने तुष्टि अने आत्माने पुष्टि करे छे।

नवकार मत्रमा कृतज्ञता अने परोपकार, व्यवहार अने निश्चय, अध्यात्म अने योग, ध्यान अने समाधि, दान अने पूजन, शुभ विकल्प अने निर्विकल्प, योगारभ अने योगसिद्धि, सत्त्वशुद्धि सत्त्वातीतता, पुरुषार्थ अने सिद्धि, सेवक अने सेव्य, करुणापात्र अने करुणावत वगेरे साधनानी सघळी सामग्री रहेली छे। ईच्छा ज्ञान अने क्रियानो सुंदर सुमेळ होवाथी आत्मशक्तिना विकास माटे परिपूर्ण सामर्थ्य तेमा रहेलुं छे। ते कारणे शास्त्रोमा कह्युं छे कै :—

एसो अणाइ कालो,
अणाइ जीवो य अणाइ जिणधम्मो ।
तइयावित्ते पढता,
एसुच्चिय जिण नमुक्कारो ।।

काल अनादि छे, जीव अनादि छे अने जिनधर्म पण अनादि छे, तेथी आ नमस्कार अनादि काळथी भणातो आव्यो छे अने अनत काळ सुधी भणाशे अने ए भणनार तथा भणावनारनुँ अनत कल्याण करशे ।

भौतिकवाद ना आ युगमां अध्यात्मवादना अमीपान करवामाटे श्री नमस्कार महामंत्र समान कोइ उत्तम साधन नथी, कोई निर्मळ अने सरल मत्र नथी, आ महामत्र कुविकल्पोथी मननु' रक्षण करे छे, खोटा विचारो थी मननु' रक्षण करवु' ए एक महत्वनी वस्तु छे । वर्तमान युगमा धन सत्ता के वैभवनु रक्षण करवा माटे देहबल के आरोग्यनु' रक्षण करवा माटे अनेक साधनो योजायां छे, अने योजाय छे, पण सकल्प विकल्प थी मननु' रक्षण करवा माटे एक पण समर्थ साधन शोधयानु' सांभल्यु' नथी, ते माटे नवकार मत्र एक समर्थ साधन छे, पूर्व महर्षिओए मनना रक्षण माटे अनेक प्रकार ना मंत्र योजेला छे, आवा सर्व मत्रोमा श्री नमस्कार महामत्रनु स्थान श्री जैन शासनमां मोखरे छे ।

अनाहतनुं स्वरूप

ले० अभ्यासी

अनाहतनु ज्ञान आत्म साधनामा हेतु छे

परमोपकारी शास्त्रकार भगवतोए शास्त्रोमा अनाहतनु स्वरूप यत्र, मत्र, ध्यान अने योगनी दृष्टिए विस्तारथी बतावेलु छे। तेनु ज्ञान मेळववाथी आत्मसाधनामा आगळ वधवा माटेनी अलौकिक दृष्टि प्राप्त थाय छे।

मत्र दृष्टिए अनाहत

भिन्न भिन्न यत्रोमा भिन्न भिन्न आकृतिवाला अनाहतनु आलेखन करेलु छे। तेनुं गूढ रहस्य तो ते विषयना विशेप अनुभवी महात्माओ पासेथी ज जाणी शकाय।

अनाहतना भिन्न भिन्न आकारो

ॐ घटित, ह्रीं घटित, शुद्ध गोलाकाररेखाद्वय, लबगोलाकारे रेखाद्वय, चतुष्कोणाकारे रेखाद्वय, अनेक रेखारूप, अर्धचद्राकार विगेरे।

प्रकटप्रभावी पूर्वोद्धृत श्रीसिद्धचक्र महायत्रमा त्रण स्थले अनाहतनु आलेखन करवामा आवेलु छे।

१. प्रथम वलयनी कर्णिकामा (केन्द्रस्थाने) आवेल 'अर्हं' चारे बाजुथी ॐ ह्रीं सहित अनाहतथी वेष्टित छे।

२ द्वितीय वलयमा स्वरादि आठ वर्गो अनाहतथी वेष्टित छे।

३ तृतीय वलयमा तो ॐ सहित आठ अनाहतोनी स्वतत्र स्थापना करी तेने आराध्य देवरूप मानी पूजन करवानु बताव्यु छे।

आ रीते यत्रना केन्द्रस्थानमां रहेल अर्हं अने स्वरादिना ध्यानथी अनुक्रमे 'अनाहत' नादनी जागृति थाय छे, तथा अनाहत ध्यान करनारने अडतालीश प्रकारनी महान लब्धिओ प्रगटे छे। जिन, केवलज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी अवधिज्ञानी, श्रुतकेवली, दशपूर्वधर वगेरे महर्षिओ पण अनाहतना ध्यानथी ज ते ते लब्धिओने प्राप्त करे छे। आ गुप्त रहस्य तृतीय वलयना लब्धि पदोना मध्यमा आठ अनाहतनी स्थापना द्वारा बतावेल छे।

अनाहत शुं छे ?

अनाहतनु आलेखन श्रीसिद्धचक्र महायत्रना आराध्य विभागमा (जे अत्यंत महत्त्वनो होवाथी अमृतमडल कहेवाय छे) थयेल होवाथी ते पण अरिहत पदोनी जेम पूजनीय छे। जो 'अनाहत' कोई अधिष्ठायक देव होत, तो तेनु पूजन तथा आलेखन अधिष्ठायक देवोना वलयमा थवु जोईतु हतु, पण ते रीते थयेल नथी माटे 'अनाहत' ए श्रुतज्ञान अने तपरूप छे, एम मानवामा कोईपण प्रकारनो विरोध जणातो नथी। नीचेनी वावतोथी आ वात वधारे स्पष्ट थशे।

१ यत्रमा 'अनाहत' सूचक जे आकृतिनु आलेखन छे, ए श्रुतज्ञान छे।

२ मत्र ('ह') रूपे 'अनाहत' नु स्मरण तथा ध्यान ए स्वाध्याय अने ध्यानरूप तप छे।

३ अनक्षरताने प्राप्त थयेलु 'अनाहत' नादनु ध्यान ए निरालवन ध्यानरूप छे, माटे ते अभ्यतर तप अने भाव चारित्ररूप छे। आ प्रमाणे सूक्ष्म वुद्धिथी विचारणा करता समजी शकाय छे के 'अनाहत' ए ज्ञान अने क्रियारूप छे, माटे मुमुक्षु आत्माने ते परम आराध्य छे।

४ 'अर्हं' ए समग्र जिनशासनना सारभूत नवपदोनु बीज अने नवकार महामत्रना प्रथम पदमा रहेला अरिहत परमात्मानो वाचक छे। वळी स्वरो अने व्यजनो ए समग्र श्रुतसागरना मूळ छे। तेमनी साथे ज 'अनाहत' नु आलेखन थयु छे, ते तेना महत्त्वने बताववा माटे ज छे। आ महान रहस्य साधक आत्माने अनुभवथी ज जणाशे।

मत्र, ध्यान अने योगनी दृष्टिए अनाहत

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचद्राचार्य भगवाने योगशास्त्रमा 'अनाहत' नादनु स्वरूप आ प्रमाणे वताव्यु छे—'अर्हं' ना ध्यान पछी तेमाथी रेफ-नाद-बिन्दु अने कला रहित उज्ज्वल वर्णवाला 'ह' नु ध्यान करवु, ते सिद्ध थया पछी अर्धकलाना आकारने पामेलो अने अनक्षरताने प्राप्त थयेलो 'ह' अक्षर चितववो, सूर्य समान तेजस्वी अने सूक्ष्म एवा ते अनाहत देवनु एकाग्रताथी ध्यान करवु जोइए। अनुक्रमे सतत ध्यानाभ्यासथी सूक्ष्म-सूक्ष्मस्वरूप चितवता मात्र वालना अग्रभाग जेटलु सूक्ष्म 'अनाहत' नु ध्यान करवु। अने ते पछी "समग्र विश्व जाणे ज्योतिर्मय छे", एम विचारवु।

आ प्रमाणे आकारने छोडी निराकारनु आलबन लेवु, पछी ते लक्ष्यमाथी पण मनने धीमे धीमे खसेडी अलक्ष्यमा स्थिर करवु। अलक्ष्यमा मननी स्थिरता थतानी साथे ज अतरमा इन्द्रियातीत (इन्द्रियने अगोचर), अलौकिक एवी अक्षय ज्योति प्रगटे छे अने ते वखते

आत्माने परमशांतिनो अनुभव थाय छे। आ रीते 'अनाहत' नादना अभ्यास वडे लक्ष्यमाथी अलक्ष्यमा जइ शकाय छे। अलक्ष्यमा निश्चल मनवाला मुनिओने सर्व प्रकारनी लब्धिओ प्रगटे छे।

ज्ञानार्णवना ३८मा प्रकरणमा पदस्थ ध्यानना अधिकारमा पण 'अनाहत' सबधी हकीकत उपर प्रमाणे ज बतावी छे। त्या पण 'अर्हं' ना ध्याननी प्रक्रिया बताव्या पछी ज 'अनाहत' नु स्वरूप विस्तारथी बताव्यु छे। तेमज 'अनाहत' नु शिव (एतत्तत्त्व शिवाख्य वा) एवु बीजु नाम पण बताव्यु छे। ते उपरथी समजी शकाय छे के अनाहत-नादनु ध्यान ए जीवमाथी शिव थवानी महान रहस्यात्मक प्रक्रिया छे।

योगनी दृष्टिए अनाहत

'अनाहत' नाद ए प्रशस्त ध्यानना सतत अभ्यास द्वारा प्रगटेली एक महान आत्मशक्ति छे, माटे ते आत्मसाक्षात्कारनो द्योतक छे। योगसाधनामा तेनी विशिष्ट महत्ता छे। अनाहतनादना प्रारभथी साधकने आत्मदर्शन थवानी पूर्ण श्रद्धा प्रगटे छे। तेनो मगल प्रारभ सविकल्प ध्यानना सतत अभ्यासथी थाय छे। अने ते वखते ध्याता, ध्येय अने ध्याननी एकता सिद्ध थाय छे। तेनी मधुर ध्वनिना श्रवणथी आत्मा आनदमा तरबोल बनी जाय छे। कह्यु छे के—

"तुज मुज अतर अतर भाजशे, वाजशे मगलतूर,
जीव सरोवर अतिशय वाधशे, आनदघन रसपूर।"

योगप्रदीपमा 'अनाहत' नादनु स्पष्ट स्वरूप आ प्रमाणे बताव्यु छे—

"परमानन्दास्पद सूक्ष्म, लक्ष्य स्वानुभवात् पर।
अधस्तात् द्वादशातस्य ध्यायेन्नादमनाहतम्॥"

गाथार्थ—परमानदनु स्थान, अत्यत सूक्ष्म, स्वानुभवगम्य, अनुपम एवा अनाहतनादनु ध्यान ब्रह्मरध्रनी नीचे हमेशा करवु। श्लोक—११५।

अविच्छिन्न तेलनी धारा जेवा, मोटा घटना रणकार जेवा, प्रणवनाद (अनाहतनाद) ना लयने जे जाणे छे, अनुभवे छे, ते खरेखरो योगनो जाणकार छे। श्लोक—११६।

अनाहतनादने घटनाद साथे सरखाववान् कारण ए छे के जेम धीमे धीमे शात थतो घटनो नाद अतमा अत्यत मधुर बने छे, तेम 'अनाहत' नाद पण धीमे धीमे शात थतो अने अते अत्यत मधुर बनतो आत्माने अमृत रसनो आस्वाद करावे छे। श्लोक—११७।

आ त्रण श्लोको सक्षेपथी 'अनाहत' नादनु स्वरूप, उद्गमस्थान, तैलधारा तथा

घटानादना दृष्टात द्वारा तेनो अस्खलित गतिए चालतो प्रवाह अने ते प्रवाहमा लयलीन बनेलो आत्मा खरेखर योगनो अनुभवी छे, एम बतावेल छे।

सर्व जीवोना हृदयमा स्थित थयेलो ते अनाहतनाद अव्यक्तपणे-गुप्तरीते चालतो ज (सचरतो ज) होय छे। तेथी प्रगट रीते सभळातो नाद ए अनाहत नाद नथी (श्लोक—११८)।

ते नाद सर्व देह व्यापी होवा छता नासिकाना अग्रभाग उपर व्यवस्थित होय छे। तेम ज ते नाद सर्व प्राणीओने देखातो नथी पण ध्याननना अभ्यासीओने ज ते लक्ष्यमा आवी शके छे। धर्मध्याननना सतत अभ्यास पछी ज अनाहतनादनो प्रारभ थाय छे। तेथी ध्याननना प्राथमिक अभ्यासीने के मद अभ्यासीने नादनुँ स्वरूप प्रत्यक्ष न थाय ते सभवित छे। अनाहत नादना अनहद आनद ने अनुभववा माटे गुरुगमथी सतत अभ्यास करवो जोइए, ते आ श्लोकनुँ तात्पर्य छे।

शब्दध्वनिथी रहित, विकल्परूप तरग विनानुँ अने समभावमा स्थिर थएलु चित्त, ज्यारे सहज अवस्थाने पामे छे, त्यारे ते चित्तवडे अनाहतनादनो प्रारभ थाय छे। (श्लो०—१२०)

पदस्थ (अक्षर) पिडस्थ, रुपस्थ ध्यानमा अक्षर के आकृतिनुँ आलवन लेवुँ पडे छे, माटे तेने सालवन ध्यान कहेवामा आवे छे। सालबन ध्यानमा सविकल्प दशा होय छे अने ते अनेक प्रकारे थई शके छे। योगशास्त्रादि ग्रथोमा बतावेला सालबन ध्याननना प्रकारोमाथी कोइपण प्रकारनो सतत अभ्यास करवामा आवे, तो सालबन ध्याननी परिपक्व अवस्थामा तेना फळरूपे अनाहत नादनो प्रारभ थाय छे। अक्षरमाथी अनाहत-नादरुप अनक्षरता प्रगटे छे। स्थूल आकृतिना बदले अत्यत सूक्ष्म अनाहतनादनुँ ज आलबन होय छे। तेथी (ते अर्थमा) तेने अनक्षर ध्यान के निरालबन ध्यान कहेवामा वाधो नथी। जे वखते चित्त समभावमा झीलतुं होइने सहज अवस्थाने पामे छे, ते वखते अनाहतनादनो प्रारभ थाय छे।

अनाहतनादनुँ ध्यान नित्य नियमित करवाथी अनुक्रमे ते निर्मळ बनतुँ जाय छे। अने ज्यारे साधक योगीने अभ्यासवडे अनाहतनादनुँ ध्यान शुद्ध थाय, त्यारे ते निराकार एवा ब्रह्मरध्रमा मनने स्थापित करे छे। (श्लो०—१२१)

आ प्रमाणे परोपकारी पूर्वाचार्योए स्वानुभवपूर्वक आत्मासाक्षात्कार करवानी चावीओ बतावेली छे। प्राथमिक अवस्थामा स्थूल आलबन द्वारा ध्यानाभ्यासनो प्रारभ करवो जोइए। ते सिद्ध थता सूक्ष्म, सूक्ष्मतर आलवन लेवुं जोइए। तेना सतत अभ्यासथी 'अनाहत' नादनो आविर्भाव थाय छे, अने अनाहतनादनी सिद्धि थता द्वादशात ब्रह्मरध्रमा प्रवेश थई शके छे।

ब्रह्मरध्रभा प्रवेश निराकार परमात्मस्वरूपना चिंतनथी थाय छे। माटे ते वखते बहिरात्मभाव अने अतरात्मभावने गौण करी पोताना आत्माने परमात्मस्वरूप मानी तेनु ज ध्यान योगी पुरुषो करे छे (श्लोक–१२८)

अनाहत नवपदोनु अग छे

श्री सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनत उपकारी जिनेश्वर भगवते बतावेल मोक्ष मार्गमा सर्वप्रकारना योगोनो समावेश थयेलो छे। कह्यु छे के –

"योग असख्य जिन कह्या, नवपद मुख्य ते जाणो रे ,
एह तणे अवलबने, आतम ध्यान प्रमाणो रे ।।"

आ रीते जैन दर्शनमा विस्तारथी योगोना असख्य प्रकार बताववामा आव्या छे। छता सक्षेपथी एक, बे, त्रण, चार, पाच, छ अने नव आदि प्रकारो भिन्न भिन्न अपेक्षाए दर्शाव्या छे। तेमा पण नवपदनी आराधनामा समग्र जिनशासननी आराधनानो समावेश थई जाय छे। केमके नवपदमय श्रीसिद्धचक्रमा बे प्रकारनी रत्नत्रयी (देव, गुरु, धर्मरूप अने सम्यग्-दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप) रहेली छे। अर्थात् विश्वमा एवो कोई योग के योगनु अग नथी के जेनो नवपदमा समावेश न थतो होय।

आ रीते विचारता अनाहत पण नवपदोनु अग छे, नवपदना अनुभवी आराधकने तेनो साक्षात् अनुभव थई शकशे।

प्रत्यक्ष-प्रभावी एवा श्रीसिद्धचक्र बृहद्यत्रमा त्रणवार आलेखन थयेल अनाहतनु अद्भूत रहस्य समजवा शक्य प्रयास करीए तो आजे पण महायत्रमा रहेला योगना अनुपम गुप्त रहस्योनो आछो ख्याल जरूर आवी शके।

महायत्रमा प्रथमवलयनी कर्णिकामा आवेला 'ऽर्हं' पदने 'ॐह्रीँ' स्वर अने 'अनाहत' वडे वेष्टित करवामा आव्यु छे, तेनु गुप्त रहस्य शु छे? ते प्रथम विचारीए।

ॐ ह्रीँ स्फुटानाहतमूलमत्र, स्वरै पटीत

१ एक प्रकार-सम्यग् आचार। बे प्रकार—सर्व विरति-देश विरति अथवा ज्ञान क्रिया। त्रण प्रकार-सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र। चार प्रकार-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप, अथवा दान, शील, तप, भाव। पाच प्रकार—पाच महाव्रत। छ प्रकार—पाच महाव्रत अने छट्ठु रात्रि भोजन [illegible]। नवप्रकार—नवपद।

विश्व के उद्धारक

ले० श्री अभयसागरजी महाराज गणीवर्य

[श्री तीर्थंकर भगवतो के आदर्शस्वरूप को समझाने वाली शास्त्रीय उपमाओ का स्पष्टीकरण]

ससार मे अनेक प्रकार के प्राणी दिखाई देते हैं उनमे से बहुत से अपना उदरभरण अत्यन्त कठिनाईपूर्वक कर लेते हैं परन्तु अपने आश्रितो का पालन-पोषण पूर्णरूपेण क मे असमर्थ हैं और कितने ही उत्तम पुरुष अपने आश्रितो को सुचारु रूपेण पालने के उप भी दीन, दुखी, अनाथ प्राणियो को भी आश्वासनदायक सहकार देकर अनेक मूक आ र्वाद के पात्र बनते हैं। परन्तु उगलियो पर गिने जायँ उतने जगत के उत्तमोत्तम महा तो अखिल विश्व के समस्त प्राणियो को सम्पूर्ण रूप से त्रिविध ताप से बचाकर वास्त सुख शाति के यथार्थ मार्ग पर पहुँचा कर निष्कारण वात्सल्यपूर्ण सीमातीत उपकार क वाले होते हैं।

ऐसे सर्वोत्तम महापुरुष अपने उच्च आदर्शानुकूल क्रियाशील जीवन से जो ध ससार को देते हैं उसे समझने के लिए शास्त्रकारो ने विविध प्रकार की उपमाएँ श मे विचित्र ढग से समझाई हैं उनकी अन्तर्निहित विशेष महत्त्वपूर्ण कुछ उपमाओ शास्त्रीय ढग से विचार इस लघु लेख मे किया जा रहा है।

न्यायविशारद्, न्यायाचार्य, पूज्य उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराज श्रीनवपद (ढाल १ गाथा ४) मे श्रीतीर्थङ्कर भगवतो की लोकोत्तर उपकारिता समझाते फरमाते है —

> महागोप महामाहण कहिए, निर्मायक सत्यवाह।
> उपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमीए उछाए रे ॥१॥
> भविका ! सिद्धचक्र पद वदो ॥

श्रीतीर्थङ्कर परमात्मा के अद्भुत व्यक्तित्व के यथार्थ परिचय कराने वालो ने म गोप, महामाहण महानिर्यामक और महासार्थवाह की चार रूपक उपमाएँ बाल जीवो अत्युपयोगी होती हैं अत उसका क्रमश विवेचन किया जाता है।

१. महागोप—

> जीव निकाया गावो, जते पालेति महागोवा।
> मरणाइ भयाहि जिणा, णिव्वाणवणच्च पावेति ॥
>
> —श्रीआवश्यकनिर्युक्ति गाथा

जिस प्रकार ग्वाला अपनी या गाँव की गाएँ, भैसें, भेडे, बकरिएँ आदि पशुओं का यथोचित पालन-पोषण करता है, अच्छा घास, चारा, मीठे जल आदि पदार्थो के हेतु जगलो मे ले जाता है और जगलो मे हिंसक पशु बाघ, सिंह, चीते आदि के त्रास-रक्षार्थ सदैव प्रयत्नशील रहता है , उसी प्रकार छ जीव निकाय रूपी सम्पूर्ण अज्ञान प्राणियो को धर्म की आराधना के सुयोग्य मार्गदर्शनरूपी व्यवस्थित सभाल करते हुए आत्मिक स्वरूप की रमणता रूपी सुन्दर घास, पानी से परिपूर्ण मनोहर मोक्ष रूपेण जगल मे ले जाते हैं और रागद्वेप रूपी वाघ, शेर एव पुराने अशुभ सस्कार रूप शिकारी पशुओ के त्रास से छ जीव निकाय की जयणा पालने के मधुर उपदेश द्वारा बचाते रहते हैं ।

अत श्रीतीर्थंकर परमात्मा वास्तव मे अखिल विश्व के छोटे-बडे प्राणी मात्र के सच्चे सरक्षक होने से महागोप का चोगा पहनकर अपनी लोकोत्तर जीवन शक्ति का परिचय देते हैं ।

२ महामाहण—

सव्वेपाणा सव्वे भूषा सव्वे जीवा ।
सव्वे सत्ताणहतव्वा णअज्जावे पव्वाण ।
परिघेत्तव्वा ग परियाणेपव्वाण उद्वषेयव्वा ।।

—श्री आचारागसूत्र अध्या० ४३ सू० १

इस अवसर्पिणी के आद्य तीर्थंकर श्रीऋषभदेव भगवत के पुत्र और आद्यचक्रवर्ती श्री भरतचक्रवर्ती ने अपनी विवेक बुद्धि को जागृत रखने हेतु व्यवस्थित रूप से तैयार किए आदर्श महाश्रावक जिस प्रकार यदा तदा होने वाली हिंसा को 'माहण माहण' शब्दो से रोकने थामने की चेष्टा करते थे, उसी प्रकार लोकोत्तर उपकारी श्रीतीर्थंकर परमात्मा भव्यात्माओ को सम्बोधन की निरन्तर घोषणा कर रहे हैं—'माहण माहण' किसी जीव की हिंसा मत करो, हिंसा मत करो । 'शक्य जयणा बुद्धि के समन्वय से अनर्थ दड का सर्वथा त्याग कर अर्थदण्ड के रूप मे विवशता से आवश्यक रूप मे की जाने वाली हिंसा के क्षेत्र मे भी सकोच करते रहो ।'

उपरोक्त अभयसदेश श्रीतीर्थंकरदेव भगवन् ससार के निखिल प्राणियो को अभय मुद्रा से निरतर सुना रहे हैं ।

३. महानिर्यामक—

'णिज्जाय मगरयणाण, अमूढणाणमई कण्णधाराव ।
वदायि विणयपणओ, तिविहेनतिदण्ड विरयाण ।।'

—श्रीआवश्यकनिर्युक्ति गाथा ९१४

जैसे समुद्र की यात्रा करने वाले को जहाज की दृढता के साथ जहाज को चलाने वाले कप्तान, खलासी, मल्लाह एव सुकानी की निपुण कार्यपद्धति की अत्यन्त आवश्यकता रहती है क्योकि उसके बिना सुदृढ जहाज भी पानी की गहराई मे छिपे हुए जलावर्त्त पानी के भँवर (चक्करदार पानी) मे फँसकर या छोटी बडी पहाडियो से टकरा कर चूरचूर हो जाता है। सभवत पुण्य सयोग से जहाज सुरक्षित भी रह गया तो भी बिना निपुण कप्तान के जहाज अपने ल य को सुगमतापूर्वक नही पहुँच सकता।

इसी प्रकार ससाररूपी समुद्र मे अज्ञान कुहरे मे फँसकर विपरीत मार्ग जा रहे ससारी जीवो के जीवन-जहाज को श्रीतीर्थकर भगवान् स्वय कप्तान बन कर सम्यक् ज्ञानरूपी सुकान की तजबीज के साथ ज्ञानक्रिया करते हुए मोक्ष रूपी समक्ष किनारे सम्पूर्ण योग-क्षेत्र के साथ निर्विघ्न ले जाते हैं।

४. महासार्थवाह—

'पावति निव्वुइपुर, जिणोवइट्ठे ण चेव मग्गेण।
अडवीइ देशीयत, एव पोय जिणिदाण ॥'

—श्री आवश्यक निर्युक्ति गाथा, ६०६

प्राचीन काल मे स्थल मार्ग से व्यापारादि के लिए जाने वाले व्यापारी वर्ग पूर्व के पुण्ययोग से मिली हुई सम्पत्ति, शक्ति एव साधनो के सदुपयोग करने के शुभ ध्येय से साधनहीन अन्य व्यापारियो की, जो मार्ग की विकटता, चौकीदारियाँ, अन्नादि की व्यवस्था एव शिष्ट सहयोग के अभाव से अर्थोपार्जन के लिए अकेले विदेश यात्रा करने का साहस नही कर सकते थे, सादर प्रेमपूर्वक निमत्रण देकर अपने साथ विदेश ले जाते थे। वे रास्ते मे आने वाले भयकर जगलो मे व्यवस्थित चौकीदारी, जगली हिसक पशुओ से सम्पूर्ण रक्षण एव खानेपीने की पूर्ण व्यवस्था आदि सुयोग्य उत्तरदायित्व के साथ कुशलतापूर्वक बडे-बडे विकट जगलो को पार करवा कर बडे बडे नगरो मे ले जाते, जिसको जहाँ भी जाना होता पहुँचा देते और व्यापार के लिए आवश्यक धन-राशि भी अपनी ओर से देते तथा वापिस लौटते समय उन सबको सुरक्षित रूप से साथ लेकर सकुशल अपने अपने घर पहुँचा देते।

ऐसे उदार हृदय व्यापारियो को प्राचीन काल मे सार्थवाह की मानपूर्ण पदवी दी जाती और उनकी बडी प्रतिष्ठा होती और वह भी असहाय व्यापारी एव दुखी वणिक पुत्रो को सर्व प्रकार से सहायता कर अपनी सार्थवाह की पदवी चरितार्थ करते थे।

इसी प्रकार श्री तीर्थंकर परमात्मा भी ससार रूपी महा भयकर जगल मे से आत्म-कल्याण की साधना रूपी व्यापार के अर्थी मुमुक्षु जीवो को सन्मार्ग के उपदेश द्वारा पार उतार कर तथा राग-द्वेष आदि आक्रमणकारियो के त्रास से बचाकर और आवश्यकता-

नुसार सयम के पालने मे उपयोगी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अमूल्य धन सम्पति देकर मोक्ष-रूपी महानगर मे सुगमता से पहुँचा कर आत्मिक शक्तियो के अखूट खजाने के मालिक बनाकर सदाकालीन सुख समृद्धि के पात्र बना देते हैं।

अत श्री तीर्थंकर भगवत विश्व के सुयोग्य मुमुक्षु जीवो को सन्मार्गोपदेश द्वारा कर्मो के बधनो से छुडा कर परम शाश्वत सुख के भोक्ता बना कर माह सार्थवाह के रूप मे जगत् के सच्चे उद्धारक माने गए हैं।

इस प्रकार जगत् के महान् तारणहार, लोकोत्तर महिमाशाली, अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी श्री तीर्थंकर परमात्मा को सच्चे स्वरूप मे पहचानने, समझने के लिए ये चार शास्त्रीय उपमाएँ अत्युपयोगी हैं।

इन्हे जानकर मुमुक्षु आत्मा योग्य विवेक बुद्धि के साथ श्री तीर्थंकर परमात्मा के आदर्श जगत् के हितकारी यथार्थ स्वरूप को सोच-समझ कर यथार्थ सेवा-उपासना के द्वारा अपने शुद्धात्मस्वरूप को स्मरण कर, उसकी प्राप्ति के लिए सम्यक प्रकार से प्रयत्न-शील बने—यही शुभेच्छा है।

यत्न कामार्थयशसा, कृतोऽपि निष्फलो भवेत्।
धर्म-कर्म-समारम्भ', सकल्पोऽपि न निष्फल ॥

काम, धन और यश के लिए किया हुआ प्रयत्न निष्फल जाता है
पर धर्म-क्रिया करने का सकल्प निष्फल नही जाता।

• •

पूआ, पच्चक्खाण, प्रतिक्रमण, पोसहोपरुवयोरा।
पच पयारा जस्सउ, नपयारो नस्स ससारे॥

पूजा, पच्खाण, प्रतिक्रमण, पौषध और परोपकार जिसके पास
ये पाँच पकार है वह आत्मा ससार मे परिभ्रमण नही करता।

प्रभु-दर्शन के समय तीर्थंकरों के नामों की शुभ विचारणा

ले० श्री अभयसागरजी महाराज, गणीवर्य

प्रभु-मन्दिर मे अतरग परिणामो की शुद्धि एव उदात्त विचारधारा को प्राप्त करने मे मुख्य हेतु रूप श्री तीर्थंकर भगवन्त की मनोहर शान्त मुद्रा वाली मूर्ति है, इसका भाव-पूर्वक आलम्बन लेने से चाहे कैसे भी उत्कट राग, द्वेष एव विकारो की विचारधारा का शमन अनुभव सिद्ध है। इस चीज का रहस्य गुरुमुख से शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार समझ कर प्रयोगात्मक रूप से जीवन मे उतारना चाहिए

अत प्रभु-दर्शन करते समय चौबीस तीर्थंकरो मे से जिस तीर्थंकर प्रभु की प्रतिमा हो उस भगवान के नाम का जीवनोपयोगी भावार्थ समझते हुए प्रभु दर्शन से राग, द्वेष एव विषय कषायो का शमन कैसे होता है—यह अनुभवसिद्ध रहस्य प्रत्येक मुमुक्षु आत्माओ को समझना जरूरी है।

इसीलिए वर्तमान चौबीशी के समस्त तीर्थंकरो के नामो का मार्मिक रहस्य श्री 'आवश्यक सूत्र' एव उसकी निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य तथा पूज्य आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज और श्री मलयगिरि महाराज-रचित वृत्ति के आधार पर बाल जीवो के हितार्थ दिया जा रहा है।

प्रत्येक तीर्थंकरो के नामो के दो अर्थ बताए गए है (१) सामान्य अर्थात् व्यावहारिक अर्थ (२) विशेष अर्थात् आध्यात्मिक जीवनोपयोगी अर्थ। इन दोनो को विवेकपूर्वक पढ कर प्रभु-दर्शन का अपूर्व रहस्य समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

१. ऋषभदेव प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु, आपके गर्भ मे आने पर माता मरुदेवी ने चौदह स्वप्नो मे प्रथम वृषभ (बैल) को देखा था, अत आपका श्री ऋषभदेव नाम हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु, जैसे वृषभ (बैल) कृषि के कार्यो मे उपयोगी होकर धान्योत्पादन की वृद्धि द्वारा सारे ससार को सासारिक शान्ति देता है उसी तरह वर्तमान—अवसर्पिणी काल मे धर्म की खेती की नीव आपने सर्व प्रथम धर्म-शासन-स्थापना के द्वारा लगाई और अनेक मुमुक्षु भव्यात्माओ को, शाश्वत शान्ति रूप मोक्ष मार्ग का हितकर मार्ग उपदेश द्वारा बतलाया। हे प्रभु! आपके बताए मार्ग पर चलने की मुझे शक्ति पैदा हो।

२. श्री अजितनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता विजयारानी अपने पति से सीगठेवाजी के खेल मे दाव जीत जाती थी, हारती ही नही थी। इसलिए आपका 'श्री अजीतनाथ' नाम हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके दर्शन आन्तरिक विचारधारा मे परिवर्तन होकर विषय कषायो के दाँवपेच मे मेरा जीवन फँसने न पाए ऐसा मुझे बल प्राप्त हो !

३ श्री संभवनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर सारे देश मे सम्भव बहुत प्रमाण मे धनधान्यादि की पैदायश, प्राप्ति हुई अत: आपका नाम श्री सभवनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके दर्शन से मेरी आत्मा मे रहे हुए ज्ञानादि गुणो का यथार्थ भान होकर उसे प्रकट करने के लिए अपूर्व वीर्योद्भास शक्ति की सभव उत्पत्ति, प्रादुर्भाव हो जिससे मेरी शक्तियो को दबोच कर बैठे हुए कर्मों के प्रपची जाल दूर कर सकूँ।

४. श्री अभिनन्दन प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर असख्य देवो के स्वामी देवेन्द्र भी रोज आपकी माता को रत्न-कुक्षिधारिणी के रूप मे अभिनन्दन करने आते थे इसीलिए आपका नाम श्री अभिनन्दन हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके लोकोत्तर गुणो का एव जगतवत्सलता का परिचय आपके दर्शन द्वारा होकर मुझ मे वैसी शक्तियो का अस्तित्व महसूस होने से मेरी आत्मा अभिनन्दित, प्रसन्न हुई है एव उसके विकास के लिए योग्य पुरुषार्थ करने की उत्कठा पैदा हुई है, इसकी शीघ्र सफल सिद्धि हो !!!

५. श्री सुमतिनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के बाद आपकी माता ने अपने पति के राज्यकार्य मे एक बार किसी सौतेले लडके के अटपटे झगडे का फैसला गर्भस्थ आपके प्रभाव से उपजी हुई विलक्षण सुमति-सदबुद्धि के द्वारा इतना सरल और सुन्दर रूप मे किया, जिसे हल करने मे बडे से बडे बुद्धि-विचक्षण मत्री और न्यायाधीश लोगो के दिमाग चक्कर खा गए थे।

इसीलिए हे प्रभु ! आपका 'श्री सुमतिनाथ' नाम हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके दर्शन से मुझमे आपके नाम के अनुरूप हमेशा सुमति सद-

बुद्धि पैदा हो ताकि मेरी अन्तरात्मा को मलिन करने वाली विषय-कषायो की लाग-लपेट मे मेरा जीवन फँसने न पाए ।।।

६ श्री पद्मप्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु । आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता को पद्मो की शय्या पर सोने का दोहद विचार हुआ था, जिसे कि देवो ने पूर्ण किया था, अत आपका नाम श्री पद्म प्रभु हुआ ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! पद्म जैसे कीचड से पैदा होकर पानी से वृद्धि पाकर कीचड और पानी दोनो से अधर रहता है, उसी तरह आपके दर्शन द्वारा मेरी वृत्तियो मे से बहिर्मुखता दूर होकर सांसारिक भोगो का कीचड एव तृष्णा रूपी जल दोनो का असर मुझ पर न हो और मैं त्याग-भाव की प्रधानता को बढा सकूँ, ऐसा अन्तरग आत्मबल आपके दर्शनो से पैदा होने वाली विवेक बुद्धि द्वारा बढता रहे ।।।

७. श्री सुपार्श्वनाथप्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु । आपके गर्भ मे आने पर माता की दोनो पसलियो मे से विकार-खराबी दूर हो गई, अत आपका नाम श्री सुपार्श्वनाथ हुआ ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु । आपके दर्शनो से हस दृष्टि मुझ मे पैदा हो, जिससे कि गुण दोष का विवेक भली भाँति कर सकूँ। और इससे मुझ मे रहे हुए शुभ सस्कारो की जागृति सु=गुणवान पुरुषो के पार्श्व=सगति के असर से होने पाए। ऐसा सजोग पैदा करने का बल मुझे शीघ्र प्राप्त हो ।!

८. श्री चन्द्रप्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु । आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता को चन्द्रपान का दोहद हुआ था, जोकि देवसहाय से पूर्ण हुआ और अपका शरीर चद्र जैसा उज्ज्वल-निर्मल था, इसलिए आपका नाम श्रीचद्रप्रभु हुआ ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु । चन्द्र जैसी सुविशुद्ध निर्मल ज्ञानादि गुणो की सपदा मे है, ऐसा यथार्थ भान आपके गुणानुवाद पूर्ण दर्शन आदि से प्राप्त हो ताकि कर्मो के बधनों की अज्ञानादि से मजबूत करने के बजाय शांति, समता, मध्यस्थ भाव आदि से करने का प्रयत्न चालू हो ।

९ सुविधिनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु । आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता धर्मनिष्ठ होते हुए

भी गर्भस्थ आपके प्रभाव से विशिष्ट रूप से धार्मिक आचारो मे विधि विधानपूर्वक प्रवृत्त हुई अत आपका नाम श्री सुविधिनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु! मेरी तुच्छबुद्धि और अज्ञान जन्य कदाग्रह ममत्व आदि के कारण धर्म आराधना, गुरु-निष्ठा मे शास्त्रीय मर्यादानुसार कर नही पाता हूँ। अत, आपके सद्गुणबोधक दर्शन, स्तवनादि से मुझ मे सम्यक प्रकार से विधिपूर्वक सुविधिरूप धर्माराधन बढने पाए!

१० शीतलनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु! आपके गर्भ मे आने के बाद आपकी माता ने अपने पति के दाहज्वर को मात्र हाथ फेर करके शमन कर दिया था अत आपका नाम श्री शीतलनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु! चन्द्रादि के द्वारा जैसे गर्मी दूर होकर परम शीतलता का अनुभव होता है, उसी तरह आपके गुणानुवाद आदि द्वारा मेरी अन्तरात्मा मे सुलगती हुई रागद्वेषादि की अशातिपूर्ण आग ठडी हो जाय एव सद्विचार-सदाचार की शीतलता मेरे जीवन मे पैदा हो!

११ श्रीश्रेयांसनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—ह प्रभु! आपके गर्भ मे आने के बाद आपकी माताजी श्रेयान्स नामक कुल देवता से अधिष्ठित शय्या पलग (जिस पर कोई निरुपद्रव रूप मे सो नही सकता था) पर आराम से शयन कर सकी अत आपका नाम श्री श्रेयासनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभो! आपके प्रभाव से मेरे सस्कारो मे अवनति की ओर घसीटने का सामर्थ्य कम हो और श्रेय = कल्याण का अश = भाग बढने पाए ताकि सस्कारो के उर्ध्वमुखी विकास के सहारे जीवन उन्नत बन सके!

१२. श्री वासुपूज्य प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु! आपके गर्भ मे आने के वाद देवेन्द्रो द्वारा और वसु नाम के विशिष्ट देवो द्वारा आपकी माताजी का वहुत सम्मान, सत्कार होता रहा, अत आपका नाम श्री वासु पूज्य स्वामी हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु! देवदुर्लभ आपके दर्शनादि शुभ निमित्त से वसुअन्तरग आत्म-शक्ति का अखूट धन सपत्तियो को प्राप्त करने के क्रमिक विकासशील पुरुषार्थ को वढाकर वास्तविक रूप मे पूज्यपूजा के योग्य वन सकने का सामर्थ्य प्राप्त हो!

१३ श्री विमलनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भस्थ होने के बाद विवेक-सम्पन्न भी आपकी माता विशिष्ट रूप से विमल बुद्धि वाली और निर्मल शरीर वाली हुई अत आपका नाम 'श्री विमलनाथ' हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! रासायनिक द्रव्यो द्वारा या औषधि विशेष से जैसे गन्दा जल भी निर्मल हो जाता है, उसी तरह आपके दर्शन वन्दनादि के समय उठने वाले शुभ परिणाम अध्यवसायो के बल पर रागादि के मैल से परिपूर्ण मेरा मानस विमल, शुद्ध एव स्वच्छ बन जाए ऐसी ताकत पैदा हो !

१४ श्री अनन्तनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर माता ने अनन्त—बहुत बडी विशाल मणियो की माला स्वप्न मे देखी, अत आपका नाम 'श्री अनन्तनाथ' हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके अद्भुत लोकोत्तर गुणो का परिचय दर्शनादि के द्वारा क्षणिक, विनश्वर, शान्त और पौद्‌गलिक ससार के जड पदार्थो से प्रेम-मोह का नाता टूट कर शाश्वत, स्थायी और अनन्त आत्मा के मौलिक गुणो मे अन्तरग रुचि पैदा हो !

१५ श्री धर्मनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के बाद धार्मिक ससार वाली भी आपकी माता विशेष करके धर्म-क्रिया मे प्रवृत्त हुई, अत आपका नाम 'श्री धर्मनाथ' हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके प्रभाव से मेरी बुद्धि मे धार्मिकता के प्रति आकर्षण बढता रहे और धर्म आराधना विशिष्ट शक्ति द्वारा आत्मिक विकास होता रहे !

१६ श्री शांतिनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के बाद सारे देश मे फैले हुए भयकर उपद्रव का शमन हुआ, अत आपका नाम श्री शातिनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके नाम-स्मरण एव भक्ति-भावपूर्वक आपके दर्शन वन्द-नादि से रागादि विकारो का शमन होकर मुझ मे आध्यात्मिक-मानसिक शाति और चित्त-समाधि बढ़ती रहे, ताकि धर्म की आराधना प्रतिदिन चढते परिणाम से करता रहूँ !

१७ श्री कुन्थूनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता ने स्वप्न मे कु=भूमि पर थू=बडा भारी अत्यन्त ऊँचा रत्नो का स्तूप देखा था अत. श्री कुन्दननाथ नाम हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! मेरी आत्मा अनन्त शक्तियो से भरपूर विराट स्वरूप होते हुए भी अज्ञान, मिथ्यात्व, कषाय और योगो की दुष्प्रवृत्ति आदि के कारण बाँधे हुए कर्मों के आवरण से दबकर कुंथू नामक सूक्ष्म जन्तु के समान शक्तिहीन एव नाम मात्र की शक्ति वाली बन गई है अत आपके दर्शनादि द्वारा अपूर्व गुणानुराग एव सम्यक दृष्टि का बल पैदा होकर मेरी शक्तियो का यथार्थ विकास करने की क्षमता मुझे प्राप्त हो !

१८. श्री अरनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ— हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के बाद आपकी माता ने रत्नमय अर= आरो (पहिये मे लगने वाले चक्राकार बीच के टुकडे) का स्वप्न देखा था, अत आपका नाम श्री अरनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! 'अयन्तेऽधिगम्यन्ते ज्ञानादि गुणा, मोक्षादि सम्पूदो वायेतेति अर' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिससे ज्ञानादि गुणो की या मोक्ष वगैरह सुख सम्पदा की प्राप्ति की जाय उसे अर कहते हैं। इस अर्थ के मुताबिक मुझ मे आपके लोकोत्तर गुणो का शुभचिंतनदर्शन पूजनादि द्वारा पैदा होकर आत्मिक शक्तियो की प्राप्ति मे सहायक विशिष्ट निमित्तो का सयोग मुझे प्राप्त हो !

१९ श्री मल्लिनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के बाद आपकी माता को पुष्पो की माला से भरपूर शय्या मे शयन करने का दोहद हुआ था, अत आपका नाम श्री मल्लिनाथ हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपने मोहादि बडे बडे कर्म महत्रो को, सत्पुरुषार्थ के द्वारा महान् इस तरह का अपूर्व आत्मबल मुझ मे प्रकट करे कि अपनी कमजोरियो के बावजूद कर्मों का जाल मेरे आसपास गूँथने न पाए !

२०. श्री मुनिसुव्रतस्वामी प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आप गर्भ मे आने के बाद आपकी माता मुनि के समान सुव्र =सयमधारिणी बन गई थी, अत आपका नाम श्रीमुनिसुव्रतस्वामी हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके उपदेश की प्रधान ध्वनि हमेशा त्याग मार्ग एव विरति की प्रधानता की है, उसके अनुसार मैं भी अपने जीवन मे त्याग-सयम की प्रतिष्ठा कर सकूँ तथा पाप मार्ग से पीछे हटने का बल पैदा कर सकूँ। ऐसा बल आपके दर्शन वन्दनादि के शुभ परिणामो के आधार पर प्राप्त हो !

२१. श्री नमिनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के बाद दुश्मन राजाओ के आक्रमण एव घेरा डाल कर नाकाबदी कर देने के मौके पर किले की दीवार पर आपकी माता को देखते ही तमाम प्रबल शत्रु भी आपके पिता के चरणो मे शरणागत भाव से नमस्कार करते उपस्थित हुए, अत आपका नाम श्रीनमिनाथ हुआ ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके दर्शन वन्दनादि द्वारा मेरी आत्मा मे अध्यवसाय शुद्धि होकर कर्मो की निर्जरा की ताकत बढने पाए और रागादि सस्कारो का प्रभाव नरम हो जाय ऐसा विशिष्ट फल प्राप्त हो !

२२. श्री नेमिनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता ने स्वप्न मे रिष्टरत्न-जडित नेमि=चक्र (गाडी का पहिया) का स्वप्न देखा था, रिष्ट शब्द व्याकरण की दृष्टि से अमगलवाचक होने से विद्वानो की सूक्ष्म प्रज्ञा के आधार पर आपका नाम श्री अरिष्ट-नेमी हुआ, जो कि सक्षिप्त शैली से श्री नेमिनाथ कहा जाता है ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! रिष्ट अशुभ पाप कर्म के सस्कारो को दूर करने वाला अरिष्ट =याने महामगलकारी आत्मशक्तियो को प्रकट होने मे प्रबल निमित्तरूप नेमि=धर्म चक्र आपने भव्य जीवो के हितार्थ प्रवर्त्ताया, उसका यथार्थ लाभ मेरे जीवन मे घुसे हुए विभाव दशा, अशुभ सस्कारो का जोर आदि सब शत्रुओ को पराजय करने योग्य हो सके ऐसा बल आपके शात-सुधा सपूर्ण, निखरते हुए वीतराग भाव से भरपूर भव्यमुद्रा को देखकर उत्पन्न हो रहे प्रशस्त अध्यवसायो के बल पर प्राप्त हो !

२३. श्री पार्श्वनाथ प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने पर आपकी माता ने गर्भस्थ आपके प्रभाव से पार्श्व—पास मे—सरकते हुए काले साँप को अधेरे मे भी देख लिया था अत आपका नाम श्री पार्श्वनाथ हुआ ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! पार्श्व याने पास मे रही हुई आत्मा के ज्ञानादि गुणो की अक्षय सपत्ति को ठुकरा कर सासारिक जड पदार्थो के व्यामोह सुख-शाति की कल्पना-जन्य दिवा-स्वप्नो के चक्कर मे इधर-उधर भटक रहा हूँ । अत, आपके दर्शन द्वारा अन्त-रात्मा का यथार्थ दर्शन कर सकूँ और अन्तरग सद्गुणो की सम्पत्ति, जो कि मेरे पास होते हुए भी मेरी अज्ञान दशा से बेकार सी पडी है, उसे उपयोग मे लाने योग्य पुरुषार्थ मुझ मे पैदा हो !

२४. श्री वर्द्धमान महावीर प्रभु

सामान्य अर्थ—हे प्रभु ! आपके गर्भ मे आने के प्रभाव से धनधान्य, राज्यसपत्ति, मान-सम्मान आदि की बहुत वृद्धि होने के कारण आपके माता-पिता ने गुणानुरूप श्री वर्द्धमान नाम रक्खा एव बचपन मे भी देव के भयकर स्वरूप को देख कर डरे नही और घोर परुप उपसर्गो मे भी वीर-वीर बन कर मेरुवत सुदृढ रहे। अत श्री महावीर प्रभु नाम भी आबाल वृद्ध प्रसिद्ध हुआ।

विशेष अर्थ—हे प्रभु ! आपके दर्शन से मेरी कर्मो की परवशता की लौह-शृङ्खला तोडने की आध्यात्मिक वीरता मुझ मे प्रकट हो, तथा पौद्गलिक पदार्थो के प्रति मोह-माया-ममता के कारण शरीर-इन्द्रिय एव इनके भोग-साधनो के मिलने न मिलने पर हर्ष-शोक की कमजोरी मेरी वृत्तियो मे से दूर होकर सच्चिदानन्द स्वरूप मेरे आत्मस्वरूप को पहचानने मे उपयोगी आपकी आध्यात्मिक वीरता का आलम्बन दर्शन-वन्दनादि मेरे आचार-विचार मे गूँजते रहें !

इस प्रकार वीतराग देव परमात्मा की शात रसपूर्ण भाववाही मूर्ति के सामने प्रशात चित्त से विचारणा करने से रागद्वेषो की कमी की और चित्त-समाधि तथा धर्म-ध्यान की वृद्धि सहज मे हस्तगत हो सकती है। इसके लिए प्रत्येक विवेकी मुमुक्षु को प्रयत्न करना चाहिए।

विरला जाणति गुणा, विरला पिच्छन्ति अत्तणो दोसे।
विरला परकज्जकरा, परदुक्खे दुक्खिआ विरला ॥

दूसरों के गुण जानने वाले विरले होते हैं और स्वय दोष देखने वाले भी विरले होते हैं, यही नहीं दूसरो को दुखी देख दु:ख करने वाले भी विरले ही होते हैं।

आत्म-शिक्षा

ले० श्री कैलाशसागरजी म० साहिब

छिज्जो भिज्जो जाय रकओ, जी इह में हु शरीर ।
अप्पा भावे निम्मलो, ज पावे भवतीर ॥१॥

भव्य जीवो को ऐसा चिन्तन करना चाहिए—'चाहे यह शरीर छिन्न-भिन्न हो जाय या एकदम नष्ट हो जाय पर इससे क्या ? वह पौद्गलिक है, पर वस्तु है, एक न एक दिन अवश्य उसका त्याग होगा ही, तो भी अपनी आत्मा का निर्मल ध्यान न छोडना चाहिए कि जो ध्यान ससार से पार उतारने वाला है ।'

'एहिज अप्पा सो परमप्पा, कम्मवसे सो जायोजप्पा ।
इय मे देवज्जा परमप्पा, बहु तुम्हे अप्पो अपा ॥'

हे जीव ! यही अपनी आत्मा जो शरीर मे है, निश्चय से परमात्मा—शुद्ध ब्रह्म है, परन्तु कर्म रूप उपाधि के वश से जन्म मरण करता हुआ ससार मे भ्रमण करता है । जिस समय यह जीव अपने स्वरूप को जानेगा उस समय वह कर्म रूप उपाधि को दूर करेगा, जिससे परमात्मा होगा । इसलिए अपनी आत्मा को ही तरण तारण जहाज मान कर एकाग्रचित से उसका ध्यान करके उसी मे लीन हो जाना चाहिए । इसी बात को कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने वीतराग स्तोत्र मे इस तरह कही है—

'य परमात्मा पर ज्योति, परम परमेष्ठिनाम् ।
आदित्य वर्ण तमस परस्तादामनन्ति यम् ॥१॥'

यह जीव ही परमात्मा परम ज्योति है और पाँच परमेष्ठियो से भी अधिक पूज्य है क्योकि पाँच परमेष्ठि तो मोक्षमार्ग की दर्शक है, किन्तु मोक्ष को प्राप्त करने वाला तो अपना जीव ही है । जीव ही अज्ञान को मिटाने वाला और सब कर्मक्लेशो का नाश करने वाला है, शुद्ध है, परम श्रेय का कारण है । इसलिए आत्मा का ही ध्यान (चिन्तवन) करना चाहिए, उसी को उपादेय समझ कर सलग्न होना चाहिए और जितना जिससे बन सके उतना त्याग, वैराग्य रखना चाहिए अर्थात् धन को पर-वस्तु जानकर उसका सुपात्र मे उपयोग करना चाहिए । इन्द्रियो के विकारो को कर्मबन्ध का कारण मान कर छोडना चाहिए । शील-ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । आहार भी पर वस्तु है—पौद्गलिक है, शरीर की पुष्टि का कारण है और शरीर को पुष्ट करने से इन्द्रियो के

विषयो की पुष्टि होती है। यह स्वभाव है, अज्ञान और ससार का कारण है, ऐसा समझ कर आहार का यथाशक्ति त्याग करना चाहिए। आहार त्याग एक प्रकार का तप है। अरिहतदेव ने मोक्षमार्ग हमे वतलाया है इससे वे भी हमारे परोपकारी हैं। उन उपकारी की बहुमान के साथ भक्ति करनी चाहिए, पूजा करनी चाहिए। यह दान, शील, तप, भावना, पूजा आदि बिना जीव-अजीव के स्वरूप को जानकर करना पुण्यरूप होने से आगामी काल मे इन्द्रियो के सुख के कारण होते है। और जो जीव को ही उपादेय समझ कर विना इच्छा के पूर्वोक्त दानादि किए जाते हैं वे निर्जरा के कारण होते ह। इस प्रकार भगवती सूत्र मे साता वेदनीय कर्म को कारण कहा गया है। तात्पर्य यह है कि सम्यग् ज्ञान से जो धर्म-कृत्य किए जायँ तो वे सब निर्जरा के कारण होते हैं और विना ज्ञान के किए हुए धर्म कृत्य कर्मबध के कारण होते हैं। इसलिए भगवद्देवोक्त उपदेश है कि ज्ञान का खूब अभ्यास करना चाहिए। ऐसे ज्ञान कारण श्रुत ज्ञान है। उसका खूब आदर करना चाहिए।

श्री थानाङ्गसूत्र उत्तराध्ययन सूत्र और भ
अनुपेक्षा और धर्म कथाएँ (इन) पाँच प्रकार के

स्वाध्याय करने से ज्ञानवर्णीय कर्मो का ना
की प्रवृति होती है जो महानिर्जरा का कारण है
जिससे मिथ्यात्व, मोहनीय कर्म का क्षय होता
की जाय, त्यो त्यो समकित निर्मल होता है। अ
सात कर्मो की स्थिति का रस पतला पड जाता
ज्ञान की आराधना से अज्ञान का नाश होता
करना चाहिए, क्योकि आजकल इस पचम आरे
ज्ञानी भी इस क्षेत्र मे कोई नही है, इसलिये एव
ही कहा गया है—

> 'कत्थ अम्हारिसा पाणी, दु
> हा अणाहा कह हुन्ता, न

यदि जिन आगम न होता तो हमारे जैसे
दुषमा काल मे जन्म लिया है ? साराश
आधार है। इससे आगम और आगमो के
चाहिए। विनय का फल श्रवण, श्रवण का

आत्म-शिक्षा

ले० श्री कैलाशसागरजी म० साहिब

छिज्जो भिज्जो जाय रकओ, जी इह मे हु शरीर ।
अपा भावे निम्मलो, ज पावे भवतीर ॥१॥

भव्य जीवो को ऐसा चिन्तन करना चाहिए—'चाहे यह शरीर छिन्न-भिन्न हो जाय या एकदम नष्ट हो जाय पर इससे क्या ? वह पौद्गलिक है, पर वस्तु है, एक न एक दिन अवश्य उसका त्याग होगा ही, तो भी अपनी आत्मा का निर्मल ध्यान न छोडना चाहिए कि जो ध्यान ससार से पार उतारने वाला है ।'

'एहिज अप्पा सो परमप्पा, काम्मवसे सो जायोजप्पा ।
इय मे देवज्जा परमप्पा, वहु तुम्हे अप्पो अपा ॥'

हे जीव ! यही अपनी आत्मा जो शरीर मे है, निश्चय से परमात्मा—शुद्ध ब्रह्म है, परन्तु कर्म रूप उपाधि के वश से जन्म मरण करता हुआ ससार मे भ्रमण करता है । जिस समय यह जीव अपने स्वरूप को जानेगा उस समय वह कर्म रूप उपाधि को दूर करेगा, जिससे परमात्मा होगा । इसलिए अपनी आत्मा को ही तरण तारण जहाज मान कर एकाग्रचित से उसका ध्यान करके उसी मे लीन हो जाना चाहिए । इसी बात को कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने वीतराग स्तोत्र मे इस तरह कही है—

'य परमात्मा पर ज्योति, परम परमेष्ठिनाम् ।
आदित्य वर्ण तमस परस्तादामनन्ति यम् ॥१॥'

यह जीव ही परमात्मा परम ज्योति है और पाँच परमेष्ठियो से भी अधिक पूज्य है क्योकि पॉच परमेष्ठि तो मोक्षमार्ग की दर्शक है, किन्तु मोक्ष को प्राप्त करने वाला तो अपना जीव ही है । जीव ही अज्ञान को मिटाने वाला और सब कर्मक्लेशो का नाश करने वाला है, शुद्ध है, परम श्रेय का कारण है । इसलिए आत्मा का ही ध्यान (चिन्तवन) करना चाहिए, उसी को उपादेय समझ कर सलग्न होना चाहिए और जितना जिससे बन सके उतना त्याग, वैराग्य रखना चाहिए अर्थात् धन को पर-वस्तु जानकर उसका सुपात्र मे उपयोग करना चाहिए । इन्द्रियो के विकारो को कर्मबन्ध का कारण मान कर छोडना चाहिए । शील-ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । आहार भी पर वस्तु है—पौद्गलिक है, शरीर की पुष्टि का कारण है और शरीर को पुष्ट करने से इन्द्रियो के

कषायों की भयंकरता

लें० मुनि श्रीजिनप्रभविजयजी महाराज

क्रोधात प्रीतिविनाश मानाद्विजयोपधातमाप्नोति ।
शाठयात् प्रत्ययहानि, सर्व गुण विनाशन लोभात् ।।

परम पूज्य वाचक वृन्द श्रीउमास्वाति महाराज ने प्रशमरतिग्रथ वनाया है उसमे वताया है कि क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से विश्वास का लोप होता है और लोभ से सर्वगुणो का नाश होता है।

क्रोध सवको दु ख देने वाला—उद्वेग लाने वाला एव वैर भाव पैदा करने वाला है साथ ही सद्गति का नाश करने वाला है।

क्रोध मी खुराक है–प्रीति, सयम और विवेक। क्रोध मानव के तीन गुणो को खा जाता है। क्रोधी मनुष्य दुबला रहता है कारण कि वह हमेशा अन्दर से जला करता है।

मनुष्य के तीनो गुणो का नाश होता हो तो भी वह क्रोध को छोडने को तैयार नही है। आप अपने दिन भर के कार्य मे अनेक बार काम करते हैं पर क्षमा से काम लेते नही। कारण क्षमा से काम सिद्ध होता है इसका आपको विश्वास नही ? क्षमा की मूर्तियो को वदन जरूर करते हो, उनके नामकी माला फेरते हो, साथ-साथ उनकी जय बोलते हो। उनके जन्म कल्याणक के दिन मोटा वरघोडा निकालते हो पर जव जव जीवन मे क्षमा प्राप्त करने का अवसर आता है तब उसे धक्का मारकर वाहर फेक देते हो। क्रोध के लिए सदा अपने द्वार खुले हैं।

आग के ऊपर ठडा पानी डालने से आग वुझ जाती है, उसी प्रकार गरम पानी से भी वुझ जाती है। इस प्रकार अपनी मान्यता है, फिर भी दुनिया की तीन अरव की बस्ती मे एक भी ऐसा मूर्ख नही मिलेगा जो आग लगे तव उसे वुझाने के लिए पानी को गरम करने के लिए बैठता हो। जो कोई क्रोध को दवाने के लिए स्वय क्रोध का आश्रय ले तो आग वुझाने के लिए पानी गरम करने के सदृश्य है। क्षमा ठडा पानी है और क्रोध उवलता पानी है।

अनन्त काल से [illegible] ने क्रोध को अपना रखा है। सिंह और वाघ के भव मे क्रोध स्वय का हा[illegible] हुआ है। साँप और विच्छू के भव मे क्रोध से काम [illegible] है। कुत्ते [illegible] से भव मे भी क्रोध को ही आगे रखा है। नारकी के

श्रद्धा को शुद्ध रखना चाहिए। श्रद्धा ही मोक्ष का मूल है। इन्द्रिय सुख तो इस जीव ने अनन्त बार पाया है। ऐसी कोई जाति नही है जिसमे इस जीव ने जन्म न लिया हो। इस जीव को ससार मे भ्रमण करते करते अनन्त पुद्गल परावर्तन व्यतीत हो चुके, फिर भी धर्म की सामग्री मिली न थी। अब मनुष्य भव, श्रावक कुल, निरोग शरीर, समर्थ इन्द्रियाँ, निर्मल वुद्धि और सुगुरु की सगति प्राप्त करके धर्म के विषय मे खूब प्रयत्न करना ही भव्य जीवो के लिए उचित है। फिर से ऐसी सामग्री मिलनी मुश्किल है। इससे प्रमाद न करना चाहिए। शरीर, धन, कुटुम्ब, आयुष्य ये सब चचल हैं, क्षणविनश्वर है। इसलिए, मिले हुए पॉचो समवाय कारणो से मोक्ष रूप कार्य को सिद्ध करना चाहिए।

आर्ता देवान् नमस्यन्ति, तपः कुर्वन्तिरोगिणः।
निर्धनाविनय यान्ति, क्षीणदेहाः सुशीलिनः॥

मनुष्य दुख मे देवों को नमस्कार करता है, रोगी होनें पर तप करता है, निर्धन होता है तो सब का विनय करता है और शरीर क्षीण होने लगता है तव सदाचारी बनता है।

• • •

प्रियवाक्यप्रदानेन, सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदेव वक्तव्य, वचने का दरिद्रता॥

प्रिय वोलने से सारे प्राणी प्रसन्न होते हैं इसलिये प्रिय वोलना हितकर है, वचनो मे कन्जूसी क्यो ?

कषायों की भयंकरता

ले० मुनि श्रीजिनप्रभविजयजी महाराज

क्रोधात प्रीतिविनाश मानाद्विजयोपघातमाप्नोति ।
शाठयात् प्रत्ययहानिं, सर्व गुण विनाशन लोभात् ।।

परम पूज्य वाचक वृन्द श्रीउमास्वाति महाराज ने प्रशमरतिग्रथ बनाया है उसमे बताया है कि क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से विश्वास का लोप होता है और लोभ से सर्वगुणो का नाश होता है।

क्रोध सबको दु ख देने वाला—उद्वेग लाने वाला एव वैर भाव पैदा करने वाला है साथ ही सद्गति का नाश करने वाला है।

क्रोध मी खुराक है – प्रीति, सयम और विवेक। क्रोध मानव के तीन गुणो को खा जाता है। क्रोधी मनुष्य दुबला रहता है कारण कि वह हमेशा अन्दर से जला करता है।

मनुष्य के तीनो गुणो का नाश होता हो तो भी वह क्रोध को छोडने को तैयार नही है। आप अपने दिन भर के कार्य मे अनेक बार काम करते हैं पर क्षमा से काम लेते नही। कारण क्षमा से काम सिद्ध होता है इसका आपको विश्वास नही ? क्षमा की मूर्तियो को वदन जरूर करते हो, उनके नामकी माला फेरते हो, साथ-साथ उनकी जय बोलते हो। उनके जन्म कल्याणक के दिन मोटा वरघोडा निकालते हो पर जब जब जीवन मे क्षमा प्राप्त करने का अवसर आता है तब उसे धक्का मारकर बाहर फेंक देते हो। क्रोध के लिए सदा अपने द्वार खुले हैं।

आग के ऊपर ठडा पानी डालने से आग बुझ जाती है, उसी प्रकार गरम पानी से भी बुझ जाती है। इस प्रकार अपनी मान्यता है, फिर भी दुनिया की तीन अरब की बस्ती मे एक भी ऐसा मूर्ख नही मिलेगा जो आग लगे तब उसे बुझाने के लिए पानी को गरम करने के लिए बैठता हो। जो कोई क्रोध को दबाने के लिए स्वय क्रोध का आश्रय ले तो आग बुझाने के लिए पानी गरम करने के सदृश्य है। क्षमा ठडा पानी है और क्रोध उबलता पानी है।

अनन्त काल से अपने जीव ने क्रोध को अपना रखा है। सिंह और बाघ के भव मे क्रोध स्वय का हथियार बनाया हुआ है। साँप और बिच्छू के भव मे क्रोध से काम लिया है। कुत्ते और बिल्ली से भव मे भी क्रोध को ही आगे रखा है। नारकी के

भव मे भी क्रोध द्वारा अनेक जीवो को पीडा पहुँचाई है। इस तरह मनुष्य क्रोध से लिपटा हुआ है। क्रोध छोडने की बात करो तो क्रोध आता है। करोडो की सम्पति को छोडा जा सकता है। आलीशान बँगला छोडना सरल है। कुटुम्ब परिवार को भी छोडा जा सकता है। स्नेही पत्नी व पुत्र पुत्रियो का भी त्याग किया जा सकता है, परन्तु क्रोध छोडना कठिन है।

एक भाई को एक शास्त्र की नकल तैयार करने के लिए कहा गया। वे एक महीने मे कार्य पूरा करके लाए। उनकी लिखावट देखकर एक भाई ने कहा कि लिखावट तो बढिया है परन्तु लिपि थोडी अशुद्ध है। बस इतना कहने के साथ ही पहले भाई का दिमाग गरम हो गया और उसने अपनी की हुई नकलो के टुकडे टुकडे कर डाले।

महामहोपाध्याय श्रीमद यशोविजयजी महाराज सज्झाय मे फरमाते हैं—

पूरब कोडि चरणगुणेकरी भाव्यो छे आत्मा जेणे रे।
क्रोध विवश हुता दोय घडी हरिए सविफल तेणे रे॥

करोड पूर्व का चारित्र पालकर उसके गुण से आत्मा को उन्नत बनाया है ऐसे महात्मा २ घडी के क्रोध से परवश होकर उसका सारा फल हार जाते हैं, इसलिए क्रोध से साव-धान रहना चाहिए। किसी कारण के बिना क्रोध करना ये तो निरी मूर्खता है। क्रोध करने वाले के सामने क्रोध करना यह तो गन्दगी मे गन्दगी डालकर वृद्धि करने जैसा है। यह तो क्रोध रूपी कीचड मे पत्थर फेकने जैसी बात है। जिस तरह कीचड मे पत्थर फेकने वाला व्यक्ति उसके छीटो से बच नही सकता, उसी प्रकार क्रोध के सामने क्रोध करने वाला व्यक्ति उसके दुष्परिणाम से बच नही सकता। क्रोध के सामने क्षमा धारण करने वाला स्वय व उभय दोनो का लाभ कर सकता है।

दृष्टात—एक गाँव मे एक स्त्री को लडने का शौक था। किसी के साथ लडे बगैर उसे भोजन भी अच्छा नही लगता। वह हमेशा किसी न किसी के साथ लडती। इससे गाँव वाले सब दुखी हो गए। ठाकुर साहब तक बात पहुँचाई। ठाकुर साहब ने स्त्री को बुलाकर कहा—'माजी तुम हमेशा लडती रहती हो इससे तुम्हे क्या लाभ मिलता है?'

माजी बोली—'ठाकुर साहब ! लडे बगैर मुझे भोजन भाता ही नही ? ठाकुर साहब ने एक उपाय विचारा और वृद्धा से कहा कि तुम्हारे पास एक व्यक्ति रोज आया करेगा, तुम उसके साथ लडती रहना, पीछे तो दूसरो को तग नही करोगी न ? ।'

वृद्धा ने मजूर किया। रोज एक एक व्यक्ति उसके पास आने लगा। उसके साथ वह स्त्री लडती और अपने क्रोध को शात करती।

एक दिन एक क्षमावान स्त्री का नम्बर आया। पढी हुई तथा सस्कारयुक्त यह स्त्री

वृद्धा के पास आई और बोली—'कहिए क्या जरूरत है ? आपका क्या कार्य करूँ ? बूढी स्वभावानुसार गाली देने लगी पर वह स्त्री एक अक्षर भी नही बोली । वह तो सुनने लगी । अपने साथ लाई हुई पुस्तक पढने लगी ।

वृद्धा ने देखा कि यह कुछ भी बोलती, नही है इससे वह और जोर से गालियाँ देने लगी और कहने लगी कि क्यो नही बोलती, बहरी हो क्या ? तो भी वह स्त्री कुछ बोली नही । स्वय का कार्य करती रही । बूढी गालियाँ बककर थकी तब स्त्री ने कहा—'माजी, अब आराम करो । तब वृद्धा ने यह निश्चय किया कि यह लडने की कोई दूसरी प्रणाली है । यह तो जवाब ही नही देती, मैं लडू तो किसके साथ ?'

क्रोध के सामने, क्रोध करने से विजय नही मिलती, परन्तु क्षमा रूपी शस्त्र से जीता जा सकता है । उपदेश माला मे धर्मदास गणिवर फरमाते हैं —

फरुसवयणेण दिणतव, अहिक्खिवतो अ हणइ
मासतव वरिसतव सवमाणो हणइ हइ हणतो अ सामण्ण ॥

दूसरो को कठोर वचन कहने से एक दिवस के तप (सयम) का नाश होता है । हल्का शब्द कहने से महीने के तप का नाश होता है । श्राप देने से एक वर्ष का तप वह हार जाता है और ताडन करने (मारने-पीटने) से सम्पूर्ण साधुत्व का ही नाश कर लेता है । इसलिए क्रोध को त्याग कर क्षमा का शरण अगीकार करो ।

मान से विनय का नाश होता है । देवता को लोभ, नारकी को क्रोध, तिर्यच को माया और मनुष्य को मान विशेष होता है । मान से रावण ने लका का राज्य खोया । मान से स्थूलिभद्र चौदह पूर्व का सम्पूर्ण अर्थ नही प्राप्त कर सके । बाहुबली एक वर्ष तक काउसग्ग मे रहे । मान से लाभ होता नही । नम्रता से महान लाभ होता है । 'नमे सो सबको गमे' । जो घडा पानी में नमता है वह भर जाता है । कुए मे घडा डालो और देखो तो दिखेगा कि घडा पानी मे है, घडे के चारो तरफ पानी है परन्तु घडा स्वय खाली है उसमें एक बूँद पानी भरता नही है । पर जब वह नमता है तब उसमे पानी भरता है । उसी प्रकार जीवन के घडे को ज्ञान रूपी जल से भरना हो तो नमना पडेगा, इसी लिए तो व्याख्यान मे आने वाले श्रोता पहले गुरुमहाराज को वन्दना करते हैं । फिर व्याख्यान सुनते हैं ।

माया से विश्वास का लोप होता है, और लोभ से सब गुणो का नाश होता है । अशाति का मूल है क्रोध, मान, माया और लोभ, इसीलिए दसवे कालिक सूत्र मे बताया है 'बमे चत्तारि दोसा इच्छन्तो हियम्मप्पणो' ।

सोने के अक्षरो से लिखकर रखने योग्य सूत्र है । जो तुमको आत्म शाति प्राप्त करनी हो तो एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना चारो दोषो को हटाओ ।

इस लेख का पठन कर जीव चारो दोषो से मुक्त बने यही मेरी भावना है ।

सच्चे सुख के लिए

ले० मफतलाल सघवी, डीसा

प्रतिमा देवादिदेव की · ।
उसके दर्शन मे अगर हम खो जाएँ
तो अवश्य अपनेपन को पा सके !

श्रेयस्कर स्वभावदशा की ओर ले जाने वाली श्री वीतरागदेव की प्रतिमा मे हम पाने जैसा सब कुछ पा सकते हैं।

मदिर, मत्र और आगम यह तीनो, आज हमारे पास होते हुए भी, हम इधर उधर मारे मारे क्यो फिर रहे हैं, यह मेरी समझ मे नही आता है।

मदिरस्थ जिन प्रतिमा हमे आत्मा की ओर ले जाती है, मत्राधिराज श्री नवकार सच्चे मित्र की तरह हमे सब प्रकार के सत् कार्यों मे सहायता करता है और पूज्यतम आगम-शास्त्र दीपक की तरह हमे सम्यक्पथ दिखाते हैं।

फिर भी हमारी आज की दशा, निराधार सी क्यो है ?

क्या हम अपने को किसी के समर्थ कर-कमल मे समर्पित कर देने को तैयार नही हैं ? या हमारी मति ही वक्र हो गई है ?

श्री वीतराग जैसे देव मिलने पर भी अगर हम, इच्छा रहित विश्वमय दृष्टि पा नही सकेंगे तो मुझे दु ख के साथ कहना पडेगा कि हमे प्यार सच्चे जीवन से नही है, हम तो केवल इच्छा के दास होकर जीवन का बोझ ढोने के लिए ही जी रहे हैं।

पर पदार्थो के राग का त्याग, हमारे जीवन मे बढना चाहिए या कम होना चाहिए, यह भी अगर हम तय नही कर पाएँगे तो कौन तय करेगा ?

हमारे सामने जो निमित्त आते हैं, उस के साथ हम कैसे नाता जोडते हैं यह भी हमे सोचना होगा।

समझ लो कि एक नई कार हमारे सामने आकर खडी हो गई, उससे हम अगर प्रभावित हो गए तो अर्थ यह हुआ कि हमारी दृष्टि सम्यक प्रकार की नही है वर्ना हम कार को कार के रूप मे ही देख पाते और उससे प्रभावित न होते।

प्रतिकूलता के प्रति भी आजकल हमारा ऐसा ही वर्ताव देखने मे आता है। प्रतिकूलता

आने पर चिल्लाना, अस्वस्थ हो जाना, जीवन से छुटकारा पाने का विचार करना यह सब असभ्य प्रकार के जीवन के लक्षण है।

श्री वीतराग परमात्मा का सच्चा सेवक तो
राग का त्यागी होता है,
त्याग का रागी होता है।

जड पदार्थो का राग जीव के द्वेष मे परिणत होता है यह सत्य उसके हृदय मे दिन रात जगमगाता है।

जीव का द्वेष मुझे जिन भक्ति से गिरा देगा यह समझ उसके प्राणो मे छा जाती है।

अधम से अधम कृत्य करने वाले मानव या प्राणी के प्रति भी उसे दुर्भाव नही होता है क्योकि वह अच्छी तरह से समझता है कि 'दुर्भाव से मानवभव कलकित हो जाता है।'

पच महाव्रत के पालक गुरुदेव के आगे वह अपना दिल खोलने मे बडा ही सौभाग्य समझता है। वहाँ जाकर कुछ भी छिपाना उसका मतलब अपने को ही धोखा देना। ऐसी धोखेबाजी से जीवन की शुद्धि कैसे होगी ?

अगर हम अपनी कमजोरियो से मुक्त होने की भावना रखते हैं, तो हमे दिल मे छिपा कर क्यो रखनी चाहिए ? चोर, डाकू को अपने घर मे पनाह देना अगर राज्यापराध है तो अपनी कमजोरियो को दिल में ही छिपा रखना भी विश्वापराध है।

श्री वीतरागदेव द्वारा प्रकाशित सर्वश्रेयस्कर-धर्म के प्रति अगर हमे परम पूज्य भाव है तो अनेकान्त दृष्टि के प्रति भी हमे पूज्यभाव होना चाहिए। यही एक ऐसी दृष्टि है जो हमे इस दुनिया मे श्री वीतराग कथित कल्याणकर पथ पर चलने की क्षमता प्रदान करती है।

अनेकान्त दृष्टि से देखने वाला महाशय, राग और द्वेष के द्वन्द्व से मुक्त होता हुआ जीवन की प्रगति मे आगे बढता है और बनता है श्री वीतराग के वचन मे अनन्य निष्ठावान।

श्री जिनेश्वर देव मे हम अपने मे श्री जिनेश्वरदेव को देखने की क्षमता तब ही पा सकेंगे जब हमारी दृष्टि मे समभाव का सूर्य प्रकाशित होगा।

भाव का असमत्व भव को और भारी बनाकर जीवन को निष्फल बना देता है।

जाग्रत जीवन का जो जीवन हास्य है उसका ही नाम है समभाव।

यह समभाव को खोकर पाने जैसा कोई पदार्थ त्रिभुवन मे है नही ।

समभाव के स्वामी श्री तीर्थङ्कर देव की प्रतिमा मे हम अपने को कहाँ तक पा सकते हैं। उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे भीतर समभाव उतनी मात्रा मे विकसित हुआ है ।

श्री वीतरागदेव से नाता जोडने वाला धन्यात्मा, क्या यह विश्व के साथ मानसिक सबध नही रख सकता है । विश्व के जीवो की कल्याण-कामना तो उसको अपने ही कल्याण की कामना जैसी प्रियतर प्रतीत होती है ।

सच्चे मन से अगर हम नमन करते रहेगे तो श्री पचपरमेष्ठि भगवान को तो जीवन हमारा सच्चाई का एक महास्रोत बन कर सर्वत्र श्रेयस्कर जीवन की शुद्ध हवा पैदा करने मे अवश्य सफल बनेगा ।

सुख के लिए बाहर ही फिरने से हम थक जाएँगे और मिलेगा कुछ भी नही ।

आओ ! हम सब सर्व श्रेयस्कर धर्म की साधना के लिए आत्मा के घर की ओर दृढ मन से कदम बढाएँ ।

गगा पाप, शशि ताप, दैन्य कल्पतरुस्तथा ।
पाप, ताप, दैन्य च, हरति साधुसमागम ।।

र मे कहा जाता है कि गगा पाप हरती है, चन्द्रमा गरमी को हरता है, कल्पवृक्ष दीनता को दूर करता है जब साधु महाराज का समागम इन तीनो का एक ही साथ नाश करता है ।

अभय मंत्र

ले० शौरीलालजी नहार, व्यावर

प्रिय मित्र ! मैं आपको जीवन सम्वन्धी महत्वपूर्ण प्रश्न पूछ रहा हूँ। यह प्रश्न अनन्त काल के लिए आपके सुख दुःख का आधार रूप है।

प्रश्न यह है—

क्या आप सुरक्षित हो चुके हो ?

वात यह नही कि—

आप कितने धर्मात्मा हो ? अथवा आप कैसा सदाचारी जीवन जीते हैं ?

परन्तु प्रश्न तो यह है—क्या आप सुरक्षित हो चुके हो ?

क्या आप सनाथ हो गए हो ?

अनादि काल से यहाँ जीव अनाथ असुरक्षित वना हुआ चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण कर रहा है और अपार दुःख भोग रहा है।

'इह खलु अणाइ जीवे, अणाइ जीवस्स भवे।
अणाइ कम्म सजोग विवत्तिए, दुक्ख रूपे—
दुःक्ख फले दुःक्खाणु वधे ॥'

इस ससार मे ऐसी कोई जाति नही, ऐसी कोई योनि नही, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई कुल नही, जहाँ पर सभी जीव अनन्तवार जन्म धारण न कर चुके हो—

'नसा जाई न सा जोणी, न त ठाण न त कुल।
न जाया मुआ जत्थ, सव्वे जीवा अणत सो ॥'

जीव अनादि मोह से ग्रसित है और पाप के दण्डरूप नरक निगोद मे उत्पन्न होकर अपार दुःख सहन करता है ?

प्रिय मित्र !

क्या आपको इस पाप के दण्ड से छूटना है ?

क्या पाप के फलरूप अनन्त जन्म-मरण का अन्त लाना है ?

क्या भव भ्रमण को सीमित करना है ?

क्या दुर्गति के द्वार वन्द करने हैं ?

प्रिय !

तो परमात्मा के शासन मे आओ,

परमात्मा के शासन मे जीव मात्र की सुरक्षा का विधान है,

आप सुरक्षित होना चाहते हो ?

आप सनाथ बनना चाहते हो ?

तो सर्व प्रथम आप अपने पापो को स्वीकार करो, निष्कपट हृदय से आप यह स्वीकार करो मैं पापी हूँ,

'अपने सुख के लिए दूसरो के सुख का घातक हूँ'

भाई !

जिस किसी ने भी सरलता एव नम्रतापूर्वक परमात्मा के समक्ष अपने पापो का प्रायश्चित किया उसे परमात्मा ने अपनी शरण मे ले लिया, उसका निश्चित उद्धार हो गया ।

प्यारे बन्धु !

क्या आप नही जानते कि दृट प्रहारी जैसा हत्यारा भी परमात्मा की शरण मे आकर अपने पापो का प्रायश्चित करके मुक्ति मे चला गया ।

अर्जुन माली प्रतिदिन ७ व्यक्तियो का घातक था परन्तु परमात्मा के समक्ष अपने दुष्कृतियो की भर्त्सना करने से उसकी दुर्गति के द्वार वन्द हो गए ।

काम लक्ष्मी जैसी पाप मूर्ति भी अपने पापो की स्पष्ट आलोचना करके मोक्ष की अधिकारणी बन गई ।

प्रिय मित्र !

अहकार छोड दो । परमात्मा के सामर्थ्य की शरण स्वीकार किए बिना आप अनादि राग द्वेष मोह के चगुल से नही छूट सकेगे । महापोत का सहारा लिए बिना आप अपने भुज-बल से ही महा सागर के पार जाने का साहस केवल बाल भाव है ।

परमात्मा के सामर्थ्य को भूले हुए ही आप भव सागर मे ठोकरे खा रहे हो । अब परमात्मा की शरण मे चले आओ, आप भव सागर से पार उतर जाएँगे ।

वस्तुत अरिहत परमात्मा का अस्तित्व ही जीव मात्र के कल्याण का हेतु है, सब जीवो को पाप मुक्त करने के तीव्र अध्यवसाय से ही उन्होने इस पद को प्राप्त किया है ।

उन्हे क्षपक श्रेणी आरोहण के समय अन्तर्मुहूर्त के सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

याद रखो कि योगारोहण के समय जो इतना सामर्थ्यवान होता है वह योगारूढ

होने के पश्चात तेरहवे चौदहवे गुण स्थानक मे चला तो नही जाता वरन वृद्धिगत होता है और स्थिर रहता है ।

'नामाकृति द्रव्य भावै पुनत स्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नहर्तं समुपास्महे ।।'

अरिहत परमात्मा मे तीनो जगत के जीवो को पवित्र करने की अद्‌भुत शक्ति है, अरिहत परमात्मा का नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चारो निक्षपो द्वारा जगत के जीवो को पाप-मुक्त कर रहा है । द्रव्य निक्षेप से स्वर्ग मे तीर्थंकर नाम कर्म अर्जित किए हुए असख्य अरिहत भगवतो की आत्माएँ विद्यमान हैं, जो जगत के समस्त जीव कल्याण की तीव्रभिलाषा से सदैव ओतप्रोत रहती हैं ।

अत· अरिहत का नाम एव उनको किया गया प्रणाम जगत के जीवो के पापो का नाश करने वाला है ।

भाई !

यह सशय न करो कि यदि अरिहत परमात्मा के नाम स्मरण और प्रणाम से पापो का नाश हो जाता है, तो फिर तप सयम आदि की क्रिया की क्या आवश्यकता है ?

सच्ची बात तो यह है कि अरिहत परमात्मा तथा उनके नामादि मे अपने कर्मों को क्षय करने की जो अचिन्त्य शक्ति विद्यमान है उस पर विश्वास करने वाली आत्मा जैसे जैसे सवेग एव श्रद्धा मे विकास को प्राप्त होती है, वैसे वैसे परमात्मा को प्रणाम केवल काया, वचन और मन से ही नही अपितु तीन कारण, तीन योग, सात धातु, दस प्राण, ३॥ करोड रोम तथा असख्यात आत्म प्रदेशो से करने मे तत्पर बनती है, तथा उस प्रणाम को सिद्ध करने हेतु ही साधु अथवा श्रावक की समाचारी रूप सब क्रियाएँ करता है, अथवा प्रणाम भाव को सुदृढ बनाने का कारण बनती है ।

असल बात तो यह है–'प्रभु मे पाप नाश करने की अचिन्त्य शक्ति है' यह दृढ श्रद्धा होनी चाहिए ।

अपने ही प्रयत्न—स्वपुरुषार्थ से पापो का नाश सभव नही । ऐसी मान्यता वाले व्यक्ति मे उग्र क्रिया करते हुए भी कभी अहकार उत्पन्न नही होता है ।

वह तो परिणाम को शुद्ध व सुदृढ करने के लिए शुभ व शुद्ध क्रिया का त्याग नही करता अपितु उनमे अधिकाधिक तत्पर बनता जाता है ।

स्नेही बन्धु !

याद रखो कि जो कोई भी मुक्ति मे गए हैं या आगे जाएँगे वे सभी अरिहत को शरण लेने से ही सफलीभूत हुए हैं ।

जे केई गया मोक्ख गच्छन्ति व कम्ममल मुक्का ।
दे सव्वे चिय जाणइ जिण नमुक्कार पभावेण ॥

जे सिज्झा सिज्झेतित सिज्झि सति अनत ।
जसु आलबन ठविय मन, सो नेवो अरिहत ॥

प्रिय !

अरिहत के अचिन्त्य सामर्थ्य को स्वीकार करो सभी जीव उनकी सेवा करके सिद्धि-पद को प्राप्त हुए हैं ।

परसहस्रा शरदा परे योगमुपसताम् ।
हन्तार्हन्त मना सेव्य गन्तारो न पर पदम् ॥

प्यारे !

अच्छी तरह सावधान होकर महापुरुषो के वचन हृदयाकित करलो कि भले आप कितना भी दान-पुण्य कर लो, लाखो वर्षो तक तप-जप करलो, सब प्रकार की योग-क्रियाएँ करलो परन्तु विश्वनाथ करुणासिधु अरिहत की सेवा बिना कभी भी आपको मुक्ति नही होगी । आप सुरक्षित नही होगे, आप दुर्गति से नही बच सकोगे, आपके भव भ्रमण का अन्त नही आ सकेगा ।

प्यारे भाग्यशाली !

क्या विचार करते हो ? आज ही अपने दुष्कृत्यो का निष्कपट हो कर प्रायश्चित करते हुए अरिहत परमेश्वर की शरण स्वीकार करलो ।

प्रमाद न करो !

'समय गोयम मा पमायए' (प्रभु महावीर) वृक्ष के सूखे पत्ते कभी भी नीचे गिर सकते हैं, वैसे ही इस अनमोल अवसर को हाथ से जाते देरी नही लगेगी ।

प्यारे बन्धु !

जागो, आँखे खोलो, परम कल्याणस्वरूप अरिहत परमात्मा के सामर्थ्य मे श्रद्धावान बनकर उनके प्रति समर्पित हो जाओ ।

बस फिर तुम्हारे जन्म-मरण के दु खो का अन्त आ जाएगा । स्वर्गीय मानुषिक एव सिद्धि के परम सुख तुम्हारे स्वाधीन हो जाएंगे ।

सुरक्षित हो जाने के पश्चात् नित्य तीन बाते करते रहो—

१ परमात्म शक्ति—अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप दर्शन ।

२ परमात्मा की वाणी का स्वाध्याय अर्थात् आत्म स्वरूप का बोध ।

३ परमात्मध्यान—अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप मे रमण । परमात्मा के शासन मे सर्वप्रथम यही सूत्र है ।

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणी मोक्षमार्ग '

यही मुक्ति का निश्चित मार्ग है ।

सभी जीव सरल स्वभावी बनकर परम कृपालु अरिहत की शरण स्वीकार कर पूर्णानन्द के भोक्ता बने ।

त्याग की महिमा

ले० मिश्रीमल जैन 'तरगित'

अहिंसा, तप, कायाकष्ट, सदाचार के समकक्ष ही जैन धर्म मे त्याग का विशेष महत्व है। यह जैनधर्म की धमनियो मे रमने वाली प्राणवान रक्तधारा है, जैन लोगो के दैनिक जीवन की व्यावहारिक विशिष्टता है जो स्पष्ट परिलक्षित होती है।

जैनधर्म मे त्याग की विशेषता का एक अनुक्रम है। आप यथाशक्ति त्याग कीजिए, कोई दबाव, प्रतिबध या बलप्रयोग नही। हो सके तो आप हरे शाक का सीमित त्याग कीजिए, सदा नही तो पचतिथियो मे ही सही। आप रूखासूखा खाइए, आयबिल, नीवी कीजिए। एक आसन पर बैठकर एक असन, एक बार भोजन कीजिए। फिर आप गरम पानी शीतल करके पी सकते हैं, पर दिन भर चरने-विचरने की छूट नही। यह नही कि एकासन करके भी आप भूखभजक, निद्रानाशक, बहुमूत्रक चाय पीते रहे, धुंआधार सिगरेट के छल्ले छोडे, सिनेमा-सरकश देखे और सैर-सपाटा करे और पेट को कचरे की पेटी समझकर दिनभर उसमे कुछ न कुछ डालते ही रहे, फिर भी आपके एकासन मे कोई अन्तर नही आए। आपको एक सयमित, नियन्त्रित जीवन बिताना पडेगा। दिन मे केवल एक बार भोजन, गरम पानी, सायकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, रात्रिभोजन का निषेध, धार्मिक पटन-पाठन आपके एकासन के अविच्छिन्न अङ्ग है।

आप इससे भी आगे बढ जाइये, उपवास कीजिए—एक, दो, तीन, आठ, महीना, छ महीना, अनशन। सीमातीत तपस्या है, त्याग है। प्रश्न यह है कि आपकी शक्ति क्या है ? इतना नही कर सकते तो ऊपर क्यो चढते हैं, नीचे उतर आइए, कही दम फूल जायगा। आप, दुविहार, तिविहार, चौविहार कीजिए। रात्रिभोजन का निषेध कीजिए। रात मे पक्षी भी नही खाते, फिर आप तो मनुष्य हैं। उन्नत प्राणी हैं, बुद्धिजीवी हैं, युक्ति-सगत और तर्कसगत हैं। रातभर अन्न जल का त्याग करने से आधे उपवास का फल होता है—कितनी सरलता से। रात को थकान से सानद सोइए सवेरे सूरज अपनी मुस्कान भरी किरणो से उठा देगा। सूरज ही क्यो उठाए आप उषाकाल मे उठिए, आराधना कीजिए। आप देखेगे कि सारा दिन निर्विघ्न बीतता है और सरल त्याग जीवन मे अनुपम अनुराग भर देता है।

कदाचित् यह भी आपके लिए एक कठिन कार्य है। आप दूसरे पथ का अवलम्बन कीजिए। आप लहसुन, प्याज, बेगन, काशीफल का त्याग कीजिए। मधु-मक्खन छोडिए,

अभक्ष्य अनताकाय पदार्थ छोडिए। जमीकद छोडिए–आलू, कचालू, रतालू, पिटालू, शलजम, गोभी, शकरकद इनमे से जो भी बन आए अथवा सभी।

हो सकता है आप भूल कर बैठे। आप गुरुमहाराज से पच्चखाण ले लीजिए। फिर तो पूरी पाबदी हो गई। आप बीडी का मुँह जलाते है, और बीडी आपका। कैसी प्रतिद्वन्द्विता है! आप लहसुन खाते है जिससे दूसरे लोग तो क्या श्रीमतीजी भी आप से कतराती है। आप तत्काल गुरुमहाराज के पास पहुँच कर सौगन्ध ले लीजिए, आपका कल्याण हो जायगा।

रात्रि भोजन का निषेध, मद निषेध, मासाहार का परिहार प्रत्येक जैन के जन्मजात सस्कार है। नशा व्यसन, कुटेव, लत, इल्लत बनकर आपके लिए जिल्लत बन गए है। क्यो नही आप इनके परित्याग का प्रयत्न करते? आप इनको बदरी के मृत बच्चे की तरह छाती से चिपका कर क्यो चलते है? इसमे सडाध पैदा होगई है, साँप की केंचल की तरह फेंक क्यो नही देते है?

नशा नाश तन का कर देवे,
बल, बुद्धि, विद्या हर लेवे।

आप इस त्रिविध ताप से परित्राण क्यो नही पाते? आप मे असीम शक्ति है, आत्म शक्ति को पहिचानिए और अपनी उदात्त मनोवृत्तियो द्वारा इन नशा, व्यसन, कुटेव, लतो को लात मार कर निकालिए, इनकी कोई बपौती नही जो आपके भीतर घर बना कर बैठ जायँ।

जैनधर्म की त्रिविद्या है— सम्यक ज्ञान, दर्शन, चारित्र। चरित्रविचार, कर्म, स्वभाव के उपराँत पल्लवित होने वाली चरम सीढी है। अँगरेजी मे एक कवि ने कहा है—

We sow our thoughts and reap our actions,
We sow our actions and reap our habits
We sow our habits and reap our character,
We sow our character and reap our destiny

इसका हिंदी रूपाँतर होगा—

बोते है हम विचार, पनपते कर्म तदतर,
बोते है हम कर्म, स्वभाव विलसता मृदुतर,
बोते है हम स्वभाव, परिणत चरित्र सुखकर,
बोते है हम चरित्र, भाग्य बनता है दृढतर।

इस प्रकार आप देखते है कि विचार, कर्म, स्वभाव, चरित्र, भाग्य का अन्योन्याश्रित सबध है। इस क्रमागत विकास मे त्याग का महत्वपूर्ण हाथ है।

साधु महात्माओ का जीवन त्याग की एक दुधारी तलवार है। कठिन सयम, कठोर व्रत, तपोभूत दिनचर्या, पैदल प्रयाण, शास्त्राध्ययन-प्रवचन, निर्लिप्त कमलवत् जीवन—जैन मुनियो का जीवन एक कठोर साधना पथ है, जो अद्वितीय है। जैनधर्म का वास्तविक पालन जैनमुनि ही करते हैं।

जैनी नाम धराना सहल है, पालना मुश्किल जैन धरम,
तलवार से तेज, वाल से वारीक, पुष्प के माफिक वहुत नरम।
ऐसा कुसुमादपि कोमल, बज्रादपि।

कठोर धर्म के यावत् पालन करने वाले मुनिराज वास्तव मे धन्य है। ये जीवत त्याग-मुखी, सेवानुखी, कल्याणतत्पर, धर्माभिमुख तपस्वी, मनस्वी, चारित्र चूडामणि साधु एक निश्चित पारपरिक जीवन बिताते हैं, जो हमारे आत्म विकास के साधन, माध्यम हैं।

चतुर्मास मे जब भी किसी प्रभावशाली मुनि महाराज का पदार्पण होता है तो धार्मिक वातावरण मुखरित हो उठता है। उपाश्रय मे सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवचन, पच्चटखाण, सौगध, त्याग का एक दौर उठ जाता है, तो मदिरो मे सेवापूजा की धूम, और समाज मे भ्रातृत्व, मेलजोल, तपस्या, उपासना तथा सहधर्मीवात्सल्य की सरगर्मी। धर्म से कतराने वाले लोग भी अनायास इस ओर आकृष्ट हो जाते हैं और पर्यूषण पर्व तो एक अत्यन्त आह्लादक स्थल बन जाता है।

अब आप गृहस्थो के त्याग की ओर भी आइए। भारत तप-त्याग का केन्द्रस्थल है। हमारे पौराणिक महापुरुषो ने अनेक त्याग किए। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचद्रजी ने सीता का, राजपाट का, लक्ष्मण ने उर्मिला तथा राजसी ठाट का, भगवान बुद्ध ने यशोधरा तथा राहुल का, चौबीस तीर्थंकरो ने सासारिक वैभव का तृणवत् त्याग किया। ऐसी स्थिति मे हमे भी त्याग करना चाहिए।

पर प्रश्न यह है कि एक साधारण गृहस्थ क्या त्याग करे? मँहगे भाव, व्यावहारिक वस्तुओ का अभाव, मुनाफाखोरो, जमाखोरो, मिलावट करने वाले घातक तत्वो के कारण प्रयोजनीय वस्तुओ का प्रचुर तथा कृत्रिम अभाव हो गया है। लोग घुल घुल कर बतासा बन रहे हैं।

महँगाई मारे सभी, बने बतासा लोग।
कम खा, गम खा, कसम खा, यही पडा सयोग॥

इस चक्काजाम परिस्थिति मे उबारने के लिए आप लोभी, आत्मकल्याण तत्पर व्यापारियो से कहिए कि वे अनन्त लाभ, अपार लोभ का त्याग कर सुलभ वस्तुओ को दुर्लभ न बनाएँ। आप भेट पसद, रिश्वत रजित, डाली दूषित, उपहार भूषित अफसरो से कहिए कि वे इतने आत्मविभोर न बन जायँ कि नाक के आगे देख भी न सके। आखिर उनकी भीमभूख, सुरसा ललक की भी कोई सीमा है।

ऐसी स्थिति मे साधारण व्यक्ति ने भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार भुला दिया है। वह गीले

मे गोबर और सूखे मे पत्थर का त्याग करता है। किन्तु, यह सकुचित मनोवृत्ति है। वास्तव मे अब भी त्याग की विशाल सभावनाएँ हैं। हमे पारस्परिक कलह, वैमनस्य, वैर, फूट की भावना का त्याग करना चाहिए। इन दुर्गुणो से मेल का द्वार वद होता है और अनवन की बन आती है। अधिक लाभ, लोभ, स्वार्थ, सकीर्णता, जातीयता, प्रातीयता, आपाधापी व छीना-झपटी का त्याग करना चाहिए क्योकि इनके वशीभूत होकर व्यक्ति नरमेध यज्ञ कर डालता है।

किन्तु, ऐसा होता क्यो है ? इसीलिए कि आजकल लोग पेट नही भरते वरच घर भरते हैं। वे कुटिया नही महल बनाना चाहते हैं। वस्तुत इसीलिए वे औरो का ध्यान नही रखते। उनका दृष्टिकोण व्यापक और हितकारी नही वरच सीमित, अहितकर और हिसात्मक है। यदि उनका रवैया हितकर, अहिसक बन जाय तो उनकी कर्कशता कोमलता मे रूपातरित होते देर न लगे।

आजकल नशाबदी पर जोर है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वात है। पर अव तो आसव की बाढ आ गई है। न जाने इनके कितने रूप हैं—रक्तासव, कामासव, नामासव, स्वार्थासव, लूटासव आदि। सच तो यह है कि बुद्धिवादी प्राणी श्रद्धा से वचित हो गया है। वह त्याग को व्यर्थ समझता है। इस दृष्टिकोण को परिवर्तित करना आवश्यक है।

सच तो यह है कि त्याग वही करे जिसके पास कुछ है। किन्तु आश्चर्य है कि जिनके पास कुछ है, वे स्वय कुछ त्याग करना नही चाहते। बताइए, क्या धन-कुवेर अपना वैभव, सत्ताधारी अपनी सत्ता, पदाधिकारी अपना आतकपूर्ण पद-प्रभाव छोड सकते ह ? फिर निर्बलो, असहायो से ही यह क्यो आशा की जाय कि वे कुछ त्याग करे। भला वे क्या त्याग करे—देह, गेह या स्नेह।

विचारधारा भी जलधारा की तरह सदैव ऊपर से नीचे की ओर चलती है। यह ध्रुव सत्य है कि जब तक तथाकथित बडे आदमी—महापुरुष, धनीवर्ग, पदाधिकारी, प्रभावशाली वर्ग त्याग नही करेगे तथा कर्त्तव्यपरायण, सेवाभावी, सदाचारी नही बनेगे तब तक छोटे आदमी तदनुकूल आचरण नही करेगे। ऐसी स्थिति मे सद्गति और प्रगति की सभावना कोरी कल्पना है। उसे मूर्तिमान, साकार, सक्रिय रूप देने की पहल बडे आदमियो को करनी होगी।

'बिजली, पानी, हवा, तम, करतब भ्रष्टाचार।
ऊपर से नीचे चले, सद्गति, प्रगति, विचार॥'

समष्टि मे बिजली, पानी का प्रवाह, हवा का सचार, अधकार का प्रसार, कर्त्तव्य और भ्रष्टाचार का विस्तार, सद्गति, प्रगति तथा विचार का व्यवहार सदैव ऊपर से नीचे की ओर चलता है। हमे भी यह उलटी गगा बहानी पडेगी क्योकि यह एक विरोधी तत्व नही है वरच केवल एक विरोधाभास एव युगसत्य है।

कलिग चक्रवर्ती महा मेघवान महाराजा

खारवेल

(राज्याभिशेपक ई स १७३ वर्प पूर्व)

ले० शकरलाल मुणोत, व्यावर

मगध देश का निकटवर्ती प्रदेश कलिग भी जैनो का वडा केन्द्र था। ईस्वी सन् के ४५८ वर्प और विक्रमाव्द से ४०० वर्प पूर्व जैन धर्म का इतना प्रचार उडीसा मे था कि जिनमूर्तियाँ भगवान महावीर के निर्वाण के कोई ७५ ही वर्प बाद वहाँ प्रचलित हो गईं। जैन सूत्रो मे लिखा हुआ है कि भगवान श्री महावीर स्वय उडीसा गए थे और वहाँ उनके पिता के एक मित्र राजा राज्य कर रहे थे। यहाँ कुमारी पर्वत पर याने खडगिरि पर धर्म विजय चक्र फिरा था अर्थात् जैनधर्म का उपदेश श्री महावीर भगवान ने स्वय दिया था अथवा उनके पूर्व किसी तीर्थकर ने उपदेश दिया था। खण्डगिरि भुवनेश्वर से ३ मील उत्तर मे है। यह पर्वत ३ विभागो मे विभाजित है अर्थात् खण्डगिरि, उदयगिरि और नील-गिरि। खण्डगिरि १२३ फुट ऊँचा तथा उदयगिरि ११० फुट ऊँचा है। मुख्य गुफाएँ उदय-गिरि मे ४४, खण्डगिरि मे १८ तथा नीलगिरि मे ३ हैं। पृथक २ गुफाओ मे भिन्न २ शिलालेख हैं। उदयगिरि की जितनी गुफाएँ ह उनमे से सबसे बडी और सब से उत्तम चित्रकारी से चित्रित 'रानी हसपुरी गुफा' है। इस गुफा मे वहुत से दृश्य अकित हैं। वे दृश्य यद्यपि विगड गए ह तथापि साफ साफ एक साधु की यात्रा को दिखलाते हैं, जो धार्मिक उत्सव मे नगर के भीतर चल रहे है। लोग अपने घरो से उनका दर्शन कर रहे हैं। घोडे जा रहे हैं, हाथी चल रहे हैं, प्यादे जा रहे हैं, तथा स्त्री पुरुष हाथ जोडे हुए साधु के पीछे पीछे जा रहे हैं। कही कही खडे लोग झुक जाते हैं और फल आदि चढाते ह। इस पर्वत मे श्री पार्श्वनाथ स्वामी वहुत अधिक प्रतिष्ठित हैं। इसी से यह अनुमान किया जाता है कि यह उत्सव या तो भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का हो या उनके किसी एक शिष्य का हो।

खण्डगिरि पर एक काय-निर्मित अर्थात् जैन स्तूप था जिसमे किसी अर्हत की हड्डी गडी हुई थी। इस पर्वत पर अनेक गुफाएँ और मन्दिर हैं, जिन पर पार्श्वनाथ के चिह्न और पादुकाएँ हैं। ब्राह्मी अक्षरो के लेख युक्त खुदे हुए खारवेल या उसके पहले के समय के हैं। जैन साधु वहाँ रहा करते थे इसका उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि यह स्थान एक जैन है और वहुत पुराना है।

कलिग चक्रवर्ती म्हाराजा खारवेल का ऐतिहासिक परिचय खण्डगिरि पर्वत पर हस्ती गुफा के शिला लेख से मिला है। पहाड से काट काट कर वहुतेरे मकान वरामदेदार जैन मदिर और जैन साधुओ के लिए मठ स्वरूप गुफा गृह वहाँ प्राचीन काल से वने हुए है। इनमे से कई एक मकानो पर विक्रम स० से २०० वर्ष पूर्व के लगभग के सम्कृत अक्षरो मे जिसे ब्राह्मी लिपि कहते है प्राकृत भाषा मे लेख खुदे हुए हैं। इन सब को वहाँ गुफाँ अर्थात् गुफा कहते हैं। हाथी गुफा का शिला लेख १५ फुट के लगभग लम्वा और ५ फीट से अधिक चौडा है।

ऐतिहासिक घटनाओ और जीवन को अङ्कित करने वाला भारतवर्ष का यह सब से पहला शिला लेख है। मालूम रहे कि कोई जैन ग्रन्थ इतना पुराना नही मिलता जितना कि पुराना यह लेख है। इस लेख की भाषा पाली से एकदम मिलती है और इसके प्रयोग-जातक तथा बौद्ध पिटक से मिलते हैं। शब्दविन्यास रचयिता की काव्यकुशलता प्रगट करता है। शब्द तुले हुए हैं, शैली सक्षिप्तता मे सूत्र की स्पर्द्धा करती है। कई प्रकार के अक्षर हैं। यह लेख कई अशो मे गलित हो गया है, कई पक्तियो के आदि के वारह अक्षर पत्थर के चप्पड के साथ उड गए हैं, और कई पक्तियो मे वीच के अक्षर एकदम उड गए है। कही पानी से घिस गए हैं, कही कही अक्षरो की कटाने बढ गई है, और भ्रम उत्पन्न करने वाले चिह्न जल स्रोत तथा दूसरे कारण से पैदा हो गए हैं। कही छेनी की निशानी है, कही काल कृत भ्रम जाल है—यही हल करना इस लेख का सामुद्रिक जानना है, उपनिषद या रहस्य है।

यह शिलालेख सन् १९१७ के पहले पूरा-पूरा पढा नही जा सकता था। पादरी स्टर्लिग ने इसकी चर्चा सन् १८३५ मे की। इस शिलालेख के पढने मे प्रिसेप डॉक्टर राजा राजेन्द्रलाल और जनरल कनिंहाम ने बडे प्रयास किए पर सफलता प्राप्त नही हुई।

सन् १८८५ मे डॉक्टर पण्डित भगवानलालजी इद्रजी ने प्रथम बार एक ऐसा पाठ प्रकाशित किया, जिससे लेख के महत्व का थोडा पता चला। आखिर बिहार के लाट सर एडवर्ड गेट के लिखने पर पुरातत्व विभाग से पडित राखलदास बनर्जी खडगिरि भेजे गए, जिन्होने कालीदास नाग की मदद से शिलालेख की दो बडी छापे कडी मेहनत से तैयार की। इसमे से एक श्री काशीप्रसादजी जायसवाल को दूसरी डॉक्टर टामस लन्दन को भेजी गईं। काशीप्रसादजी जायसवाल ने कई महीनो के घोर परिश्रम, चिन्तन और मनन कर लेख का पाठ और अर्थ निकाल कर बिहार उडीसा की रिसर्च सोसाइटी की जनरल पत्रिका मे सन् १९१७ मे प्रकाशित किया। सन् १९१८ मे जायसवाल पत्रिका मे पाठ फिर दुहराया। विलायती मिट्टी से अक्षरो पर साँचा उतरवा कर तैयार किया गया। आखिर कई प्रयत्नो के बाद श्री राखलदासजी व काशीप्रसादजी दोनो ने मिलकर खडगिरि

जाकर पाठ दुहराया। सन् १९२७ मे सशोधित नए पाठ तैयार कर विहार पत्रिका मे प्रकाशित किया।

जैन धर्म का यह शिलालेख अब तक के सब लेखो से प्राचीन लेख है। इससे ज्ञात होता है कि पाटली पुत्र के नद के समय मे उत्कल या कलिग देश मे जैन धर्म का प्रचार था और जिन बिम्ब पूजी जाती थी। 'कलिग जिन' नामक मूर्ति नद उडीसा से पाटली-पुत्र उठा लाए थे और खारवेल ने मगध पर चढाई कर शताब्दियो बाद बदला चुकाया, तब वे उस कलिग जिन बिम्ब को वापिस ले आए, और साथ ही, अग मगध बादशाही का बहुतसा धन कलिग ले आए। मगध मे कई नद हुए हैं। एक नद ने अपना सवत्सर चलाया था, जिसे अलबेरुनी ने सन् १०३० के लगभग मथुरा मे चलते पाया। नद सवत विक्रम सवत मे ४०० जोड देने से निकल आता था। यह गणना अलबेरुनी ने दी है। अर्थात् वह विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व चला था। यह समय नदवर्धन का है जो पहला नद हुआ है। नद सवत का हस्ती गुफा के शिलालेल मे उल्लेख है, उसी सवत के एकसौ तीसरे वर्ष मे एक नहर खोदी गई थी। इस नहर को बढा कर खारवेल कलिग की राजधानी मे ले आए।

हस्ती गुफा का शिलालेख

(भाषानुवाद सहित)

सकेत—मूल लेख मे मुख्य शब्द के पहले जगह छूटी हुई है। ऐसे शब्दो को स्थूल अक्षरो मे यहाँ छापा जा रहा है। विराम के लिए स्थान छूटा हुआ है। वह खडी पाई से दिखाया गया है। गलित प्राय अक्षर कोष्टबद्ध कर दिए हैं। उड गए हुए अक्षर बिंदियो से सूचित किए गए हैं।

(पक्ति १) नमो अराहतान [।] नमो सव सिधान [।] ऐरेन महाराजेन माहा मेघ वाहने चेति राज वस वधनेन पस्तसुमतखनेन चतुरत नुठि त गुनोपहिते न कलिगधि-पतिनाश्विरि खारवेलेन।

(१) अरहतो को नमस्कार, सिद्धो को नमस्कार। ऐर (एल) महाराज, महा मेघ-वाहन (महेद्र) चेदिराज—वशवर्धन प्रशस्त शुभ लक्षण वाले चतुरत पहुँचे इए गुणो वाले कलिगापधिपति श्री खारवेल ने

(पक्ति २) पद रस वसानि सिरि कडार - सरीर - वता कीडिता कुमार कीडिका, [।] ततो लेख रूप गणना वव हार विधि विसार देन सव विजावदतिन नववसानि योवरज प्रसासित]।] सपुण चदुवीसति - यसोतदानि वधमान सेसयो बेनामि विजयो ततिये,

(२) पद्रह वर्ष तक श्रीकडार (गौर वर्ण वाले) शरीर से लडकपन के खेल (क्रीडाए) खेले। तिसके बाद बाद लेख्य (सरकारी हुक्मनामे) रूप (टकसाल) गणना (सरकारी हिसाब - किताब, आय व्यय) कानून (व्यवहार) और धर्म (विधि) (शास्त्रो) मे विशारद होकर सर्वविद्यावदत्त (सब विद्याओ से परिशुद्ध) (उन्होने) उन्होने युवराज पद पर नौ वर्ष तक शासन किया तब चोवीस वर्ष पूरे हो चुकने पर आप जो बचपन ही से वर्धमान है जो अभिविजय के वेन (राज) है।

(पक्ति ३) कलिंग राजवस-पुरिस युगे माहाराजा मिसेचने पापुनाति [।] अभि सितमतो च पधने वसे वातविहत-गोपुर-पाकार निवेसन पटिसखारयति [।] कलिंग नगरि [f] खवीर-इसि ताल तडाग-पाडियो च वधापयति [।] सवुयान पटि सेठपनच।

(३) पुरुष युग मे (तीसरी पीढी) मे कलिंग के राजवश मे महाराज्याभिपेक को प्राप्त हुए। अभिषेक होते ही प्रथम राज्य वर्ष मे, तूफान से घिरे हुए (राजधानी के) फाटक और शहर पनाह की इमारतो की मरम्मत कराई, कलिंग नगरी (राजधानी) मे ऋषि खिवीर के ताल-तडाग बाँध बँधवाए सव बागो की मरम्मत।

(पक्ति ४) कारयति [ ] पनती साहि सतस हसोहि पकतियो च रजयति [।] दुतिये च वसे अचितयिता सात कणि पछिम दिस हय गज-नर-रध-वहुल दड पठापयति [।] कन्ह वेना गताय च सेनाय वितासित मुसिक नगर [।] ततिये पुनवसे।

(४) कराई, पैंतीस लाख प्रकृति (रिआया) का रजन किया दूसरे वर्ष मे, सात कर्णि (राजा) की कुछ परवाह (चिता) न करते हुए पश्चिम दिशा पर चढाई करते हुए-घोडे हाथी पैदल रथ वाली बडी सेना भेजी। कन्हवेना (कृष्णवेला नदी) पर पहुँची हुई सेना से मूषिक नगर को बहुत त्रस्त किया फिर तीसरे वर्ष।

(पक्ति ५) गधव-वेद बुधो दप-नव गीतवादित सदसनाहि उसव-समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरि [।] तथा च बुधे वसे विजाधराधिवास अहत पुँव कालिग पुवराज निवेसित वितध मकुट सबित मढिते च निखित छत।

(५) [आप] गधर्व वेद के पडितो ने दप [डफ?] नृत्य-गीत वादित्र (बाजे) के सदर्शनो (तमाशो) से उत्सव समाज (नाटक दगल आदि) कराते हुए, नगरी को खेलाया तथा चोथे वर्ष विद्याधराधिवास को जिसे कलिंग के पूर्व राजाओ ने बनवाया था और जो पहले कभी गिरा न था व्यर्थ जिनके मुकुट हो गए हैं, जिनके जिरहबख्तर दो पल्ले काट-कर कर दिए गए हैं काट कर गिरा दिए गए हैं जिनके छत्र।

(पक्ति ६) मिगारे हित्त-रतन-सापते ये सब रठिक भोजके पादे पदापयति [।] पचमे

च दानी वसे नदराज-ति-वस सस-ओधाटित तनसुलिय वाटा पनाडि नगर पवेस [य] ति [।] सो मिसितो च राजसुय [ ] सदस यतो सवकर वणा।

(६) और शृगार (राजसी चिन्ह सोने चाँदी गहुण भारी) छीन लिए गए हैं, रत्न और स्वाप तेय (धन) जिनके (ऐसे) सब राष्ट्रिक भोजको से अपने चरणो मे वदना करवाई। अब पाँचवे वर्ष मे नदराज के १०३ वर्ष (सवत्) मे खोदी गई। नहर को तन सुलिटावाट (सडक या बाडे) से राजधानी के अन्दर ले आए [छटे वर्ष मे] अभिषिक्त हो राजसूय दिखलाते हुए कर (टेक्स) के सब रुपये।

(पक्ति ७) अनुग्रह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोर जानपद [।] सतमच वस पसासतो बजिर घरव [ ] ति धुसित धरि नीस [मतुक पद] पुंना [ति ? कुमार] [।] अठमे च वसे महता सेना · गोरध गिरि।

(७) छोड दिए—अनुग्रह ‡ (नए हक) अनेको लाखो पोर जानपद को बखशे। सातवे वर्ष मे राज्य करते हुए [आप] की गृहिणी वज्रधर (कुल) वाली धुषिता (नाम-वाली) मातृ पदवी को प्राप्त हुई (?) [कुमार ?] आठवे वर्ष मे महा सेना गोरध गिरि।

पक्ति (८) धाता पयिता राज गह उप पीडा पयति [।] एतिन च वामापदान-सनादेन सवित सेन-वाहनो विपमुंचितु मधुर अपयातो यवन राज डिमित [मो?] यछति [वि] · पलव ·

(८) को तोड कर राजगृह को घेर दबाया। इनके कर्मो के अवदान (वीर कथा) के सनाद से यूनानी राजा (यवनराज) डिमित (Demetrioo) ने अपनी सेना और छकडे (कमसरियट) बटोरते हुए मथुरा त्यागने को पीछे पैर दिए नवे वर्ष [आप खारवेल] देते हैं पत्तो [से मरे हुए]।

(पक्ति ९) कपरूखे हय-गज रथ सह-यते सवधरावास-परिवसेने स अगिण ठिया [।] सव गहन च कारयितुं बम्हणान जाति परहार ददाति [।] अरहतो व न गिय।

(९) कल्प वृक्ष, घोडे, हाथी रथ, हाँकने वालो समेत, मकान और शालाएँ अग्नि-कुण्डो सहित। इन सब को ग्रहण कराने के लिए ब्राह्मणो की जाति को जागीर दी। अर्हत के

(पक्ति १०) . [क] f मान [ति] रा [ज सनिवास महा विजय ५.‌ाद कारयति अठ तिसाय सत सहसेहि [।] दसमे च वसे दड सधी - साम - भयो - भरध - वस पठान महि - जयन ति कारापयति [निरितय] उयातान च मनि-रतन [नि[उपलभते [।]

(१०) शाही इमारत (राजसनिवास) महाविजय (नामक) प्रासाद आपने अडतीस लाख (पण रुपयो) से बनवाया। दसवे वर्ष मे दड - सधि - साम [नीति] मय [आपने] मही जय करने भारतवर्ष को प्रस्थान किया जिन पर चढाई की उनके मणी रत्न प्राप्त किए।

(पक्ति ११) मडच अवराज निवेसित पीथुड - गदम - नगलेन कासयति [ ] जनस दमावन च तेरस पस - सतिक [ ] तुभिदति तमर देह - सघात [।] वारस मे च वसे , हस के ज सवसे हि त्रितासयनि उतरापथ - राजानो

(११) ग्यारहवे वर्ष मे बुरे राजा (अप-राज) के बनवाए हुए मड (बाजार या या यडप) को बडे गदहो के हलसे जुतवा डाला, जिन (भगवान) के प्रतिदेन कराने वाले एक सौ तेरह वर्ष वाले (सीस तमर) के मूर्तिसघात को तोड डाला।

बारहवे वर्ष मे से उत्तरापथ के राजाओ को खूब त्रस्त किया।

(पक्ति १२) मगधान च विपुल मय जनेतो हथी सुगगीय [ ] पाययति पाययति [।] मागध च राजान वहसति मित पादे वदायति [।[नदराज - नीत च कालिग जिन सनियेस गह रतनान पडिहारेहि अग मागध वसुं च नेयाति [।]

(१२) मगध वालो को एकदम भयभीत करते हुए हाथियो सुगागेध (प्रासाद) पर पहुँचाया, और मगध के राजा बृहस्पतिमित्र को अपने पैरो गिरवाया (पैरो मे वदना करवाई) राजा नद के ले गए हुए कलिग जिन मूर्ति को और गृहरत्नो को ले बदला चुकाते हुए प्रतिहारो ने) अगमगध का धन ले आए।

(पक्ति १३) तु [ ] जठर लिखित - बरानि सिहरानि नीवेसयति सतवेसिकन परिहारेन [।] अमुत मछरिय च हथि - नावन परीपुर सब - तेन, हय - हथी रतना [मा] निक पडराजा देदानि अनेकानि भुतभणि रतना नि अहरापयति इध सतो,

(१३) भीतर से लिखे (खुदे) हुए सुन्दर (या 'बडे' व रानि) शिखर बनवाए साथ ही सौ कारीगरो को जागीरे दी। अद्भुत आश्चर्य हाथियो वाले जहाज भरे हुए सब नजर हय, गय, रत्न, माणिक्य पाडय राजा के यहाँ से इस समय अनेक मोती मणि रत्न हरवा लाए वहाँ पर इस शक्त (लायक महाराज) ने

(पक्ति १४) सिनो वसी करोति [।.] तेरसमे च वसे सुपवत-विजय चक्र कुमारी पवते अरिहिते [य ?] पखीण - ससितेहि कायनिसी दीपाय याप - जावकेहि राज मितिनि चिनव तानि बसा सितानि [।] पूजायरत - उवास खारवेल - सिरिना जीव देह सिसिका परिखिता [।]

(१४) . . सियो को वसी किया। तेरहवे वर्ष मे पूज्य कुमारी पर्वत पर जहाँ (जैन धर्म का) विजयचक्र सुप्रवृत है, प्रक्षीण - ससृति (जिन्होने जन्म-मरण मिटा डाला है) कायनिषीदो (स्तूप) पर (रहने वाले) पाप बतलाने वाले पाप-ज्ञापको) के लिए व्रत पूरे हो जाने पर मिलने वाली राज भृतियाँ कायम करदी (शासित कर दी) पूजा मे उपवास पूरा कर खारवेल श्री ने जीव और देह की श्री परीक्षा करली (जीव देह परख डाला)

(पक्ति १५) . [सू] कति—समण सुविहितान [तुं?[च सत - दिसान (तु ?) जानिन तपसि – इसिन सघियन (नु ?) [,] अरहत्त—निसी दिया समीपे पभारे वराकर –समुथपिताहि अनेक योजना हित्ताहि ए, सि ओ . सिलाहि सिहपथ–रानिसि [ ] धुडाय निसयानि . . सुकृति श्रमण सुविहित शत

(१५) दिशा के ज्ञानी तपस्वी ऋषि सखी (सघ) लोगो का । अर्हत की निषीदी के पास पहाड पर अच्छी खानियो से निकाल लाए हुए अनेक योजनो से ले आए गए पत्थरो से सिह प्रस्थ वाली रानी सिधुला के लिए निश्चय ।

(पक्ति १६) · घटालयुक्त और चार स्तभ जिन मे वेडूरिय-गमे वामे पति ठापयति [,] पानतरिया सत-सहसेहि [।] खेम राजा सवठ राजा स भिखु राजा धमराजा पसतो सुनतो अनुभवतो कलाणानि ।

(१६) · घटा युक्त और ['] और चार स्तभ जिनमे वैडूर्य रतन जडे हुए हैं स्थापित किए पचहत्तर लाख [के व्यय से] मौर्य काल मे अच्छे दिन (चौसठ अध्याय वाले) अगसप्तिक का चतुर्थ भाग फिर से प्रस्तुत करवाया इस क्षेम राज ने, वृद्धि राज ने, भिक्षु राज ने धर्मराज ने कल्याण को देखते और अनुभव करते।

(पक्ति १७) गुण-विसेस-कुसल सव-पाखड-पूजको सव देवायतन सकार कार को [अ] पति-हत-चकि वाहि निवलो, चकधुरो गुत चको पवत चकोराजसि-वस-कुल-विनिश्रितो महा-विजयो राजा खारवेल सिरि ।

(१७) है गुण विशेष कुशल, सब सब मजहथो (पथो) का आदर करने वाला सब के देव मदिरो की मरम्मत कराने वाला, अस्खलित रथ और सैन्य वाले, चक्र (राज्य) के धुर (नेता) गुप्त (रक्षित) चक्रवाले प्रवृत्त चक्रवाले राजर्पि-वश-कुल विनिसृत महाविजय राजा खारवेलजी ('खारवेल श्री) ।

लेख के बढने के भय से शिला लेख का विशेषार्थ नही दिया है। कलिग की पहाडियो मे केवल यह खारवेल का ही शिलालेख नही मिला है पर·पृथक पृथक गुफाओ मे भिन्न भिन्न शिला लेख भी प्राप्त हुए हैं। गुफाओ मे भीतो पर पद्मासन तीर्थंकरो की मूर्तियाँ अकित हैं।

कलिंग देश का इतिहास बहुत प्राचीन है। चिरकाल तक इस प्रदेश का यही नाम चलता रहा है। वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत और पुराणो मे भी इस देश का जहाँ तहाँ कलिग नाम से उल्लेख हुआ है, भगवान महावीर के शासन तक इसका नाम कलिग ही कहा जाता था।

श्री पन्नवण सूत्र मे जहाँ साढे पच्चीस आर्य क्षेत्रो का वर्णन है उनमे से एक का नाम कलिग लिखा हुआ है।

'राजगिह मगह चपा अगा, तह तामलि तिवगाय।
कचण पुर कलिग वणारसी चैव कागीय।'

उस समय कलिग की राजधानी काचनपुर थी। जैन भारत के दक्षिण पूर्व-कलिग तक फैले हुए थे।

महाराजा खारवेल ने आध्र महाराष्ट्र और विदर्भ देशो को कलिग के आधीन किया। सपूर्ण भारतवर्ष मे उत्तरापथ से लेकर पाड्य राज्य तक उसकी विजयपताका लहराई।

अर्थात् हिमालय से कन्याकुमारी तक भारतवर्ष मे अपने राज्य और प्रभुत्व विस्तार कर राजाधिराज हुए।

महाराजा खारवेल के वश और सतति के विषय प्रामाणिक निर्णय प्राप्त नही हो सका। थोडे काल पहले पुराने भडार की सभाल करते एक हेमवत (थेरावली) उपलब्ध हुई हे जिसमे कलिग के इतिहास की थोडी बहुत सामग्री है।

हेमवत पट्टावली के निर्माणकर्ता आचार्य हेमवत सूरि जो प्रसिद्ध अनुयोग द्वार एव माधुरी वाचना के नायक आचार्य स्कदिल सूरि के शिष्य एव पट्टधर थे। आपका समय विक्रम की चौथी शताब्दी है।

नदी सूत्र मे भी आपके नाम का उलेख पाया जाता है। जैन पट्टावलियो मे सब से प्राचीन एव महत्व वाली यह हेमवत पट्टावली हे। इसमे वर्णित घटनाएँ प्राय ऐतिहासिक कही जाती है।

इस पट्टावली का केवल कलिग के साथ सबध रखने वाली घटना का साराश उद्धृत किया जाता है।

पाटली पुत्र के मौर्य राज्य शाखा को पुण्य मित्र तक लिखने के बाद थैरावली कार ने कलिंग देश के राज वश का वर्णन किया है।

अजात शत्रु के साथ की लडाई मे चेटक राजा के मरने पर उसका पुत्र शोभनराज वहाँ से भाग कर किस प्रकार कलिंग राजा के पास गया इत्यादि वृत्तान्त थैरावली मे इस प्रकार है।

वैशाली का राजा चेटक तीर्थकर महावीर का उत्कृष्ट श्रमणोपासक था। चपा नगरी का अधिपति राजा कोहीक जो चेटक का भानेज था (अन्य ग्रथो मे कोणिक को चेटक का दोहिता बतलाया है) वैशाली पर चढाई कर युद्ध मे चेटक को पराजित किया। युद्ध मे पराजित हुआ चेटक अन्नजल त्याग कर अनशन कर स्वर्ग गया। चेटक के शोभनराय नाम का एक पुत्र वैशाली से भागकर अपने ससुर कलिगाधिपति सुलोचन की शरण में गया। सुलोचन के पुत्र नही था, इसलिए शोभनराय को कलिंग देश का राज्यासन देकर परलोक गया। वीर निर्वाण के १८ वर्ष बाद शोभनराय का कलिग की राजधानी कचनपुर मे राज्याभिषेक हुआ। शोभनराय जिन धर्म का उपासक था। उसने तीर्थ स्वरूप कुमार पर्वत की यात्रा की।

शोभनराय के वश से पाँचवी पीढी मे चडराय नामका नृप हुआ, जो वीर निर्वाण १४९ वर्ष पूर्ण होने पर कलिग के राज्य सिहासन पर बैठा। चडराय के समय मे पाटली पुत्र मे आठवाँ नद राजा राज्य करता था, जो अभिमानी और अति लोभी था। उसने कलिंग देश पर चढाई कर उसे नष्ट भ्रष्ट कर तीर्थ कुमारगिरि पर राजा श्रेणिक के बनाए हुए जिन मदिर को तोड उसमे प्रतिष्ठित ऋषभदेव की स्वर्णमयी प्रतिमा को उठा कर पाटली पुत्र ले आया।

शोभनराय की आठवी पीढी मे क्षेमराज कलिंग का राजा हुआ। वीर निर्वाण के बाद जब २२७ वर्ष पूरे हुए तब कलिग के राज्यासन पर क्षेमराज का अभिषेक हुआ और वीर निर्वाण से २३९ वर्ष बीतने पर मगधाधिपति अशोक ने कलिग पर चढाई की, क्षेमराज को परास्त कर उसे अपनी आज्ञा मनवाई।

[कलिग की चढाई करने का जिक्र अशोक के शिला लेख मे भी है, पर वहाँ अशोक के राज्याभिषेक के आठवे वर्ष बाद कलिग विजय का उल्लेख है, जब कि थेरावलि कार ने वीर निर्वाण २१० मे इसे राज्याधिकार मिला और २३९ मे उसने कलिंग विजय को बतलाया]।

महावीर निर्वाण से २७५ वर्ष बाद क्षेमराज का पुत्र वुड्ढराय को कलिग का सिहासन प्राप्त हुआ। वुड्ढराय जैनधर्म का परम उपासक था। उसने कुमारगिरि और कुमारगिरि नाम के दो पर्वतो पर श्रमण और निर्ग्रन्थियो के चातुर्मास करने योग्य ११ गुफाए खुदवाई थी।

भगवान महावीर के निर्वाण को जब ३०० वर्ष पूरे हुए तब वुड्ढराय का पुत्र भिक्खु राय कलिग का राजा हुआ। भिक्खुराय के नीचे लिखे अनुसार तीन नाम कहे जाते हैं।

निर्ग्रन्थ भिक्षुओ की भक्ति करने वाला होने से उसका एक नाम 'भिक्खुराय' था। पूर्व परपरागत 'महामेघ' नामक हाथी उसका वाहन होने से उसका दूसरा नाम 'महामेघ

वाहन' था। उसकी राजधानी समुद्र के किनारे पर होने से उसका तीसरा नाम 'खार-वेलाधिपति' था।

भिक्षुराज अतिशय पराक्रमी और अपनी हाथी की सेना से पृथ्वी मडल का विजेता था। उसने मगध देश के राजा पुण्य मित्र को २ बार पराजित करके अपनी आज्ञा मनवाई। पहले नद राजा ऋषभदेव की जिस प्रतिमा को उठा ले गया था उसे वह पाटलि पुत्र नगर से अपनी राजधानी मे ले गया और कुमारगिरि तीर्थ पर श्रेणिक के बनवाए हुए जिन मदिर का पुनरुद्धार करा के आर्य सुहस्ती के शिष्य सुस्थित सुप्रतिबुद्ध नाम के स्थाविरो के हाथ से उसे फिर प्रतिष्ठित करा के उसमे स्थापित किया।

पहले जो बारह वर्ष तक दुष्काल पडा था उसमे आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तीजी के अनेक शिष्य शुद्ध आहार न मिलने के कारण कुमारगिरि नामक तीर्थ मे अनशन करके शरीर छोड चुके थे।

उसी दुष्काल के प्रभाव से तीर्थकरो के गणधरो द्वारा प्ररूपित बहुतेरे सिद्धान्त भी नष्ट-प्राय हो गए थे। यह जानकर भिक्खुराय ने जैन सिद्धान्तो का सग्रह और जैन धर्म का विस्तार करने के लिए सप्रति राजा की भाँति श्रमण निर्ग्रंथि तथा निर्ग्रन्थियो की एक सभा वहाँ कुमारी पर्वत नामक तीर्थ पर इकट्ठी की जिसमे आर्य महागिरिजी के परपरा के बतिस्सह, बोधिलिग, देवाचार्य, धर्म सेनाचार्य, नक्षत्राचार्य आदि दो सो जिन कल्प की तुलना करने वाले जिन कल्पी साधु तथा आर्य सुस्थित, आर्य सुप्रति बुद्ध उमा स्व ति, श्यामाचार्य प्रभृति तीनसौ स्थविर कल्पी निर्ग्रन्थ आए। आर्या पोइडणी आदि तीन सौ निर्ग्रन्थी साध्वियाँ भी वहाँ इकट्ठी हुई थी। भिक्खुराय, सीवद, चूर्णक, सेलक आदि सातसौ श्रमणोपासक और भिक्खुराय की स्त्री पूर्ण मित्रा आदि सातसौ श्राविकाएँ भी उसी सभा मे उपस्थित थी।

पुत्र-पौत्र और रानियो के परिवार से सुशोभित भिक्खुराय ने सब निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को नमस्कार करके कहा—हे महानुभावो! अब आप वर्धमान तीर्थंकर प्ररूपित जैनधर्म की उन्नति और विस्तार करने के लिए सर्वशक्ति से उद्यमवत हो जाएँ। भिक्खुराय के उपर्युक्त प्रस्ताव पर सर्व निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ मगध, मथुरा, बग आदि देशो मे तीर्थकर प्रणीत धर्म की उन्नति के लिए निकल पडे।

उसके बाद भिक्खुराय ने कुमारगरि और कुमारगिरि नामक पर्वतो पर जिन प्रतिमाओ से शोभित अनेक गुफाएँ खुदवाई। वहाँ जिन कल्प की तुलना वाले निर्ग्रथ वर्षा काल मे रहते और जो स्थविर कल्पी निर्ग्रन्थ होते थे वे कुमारगिरि पर की गुफाओ मे वर्षाकाल मे रहते थे।

उपर्युक्त सर्व व्यवस्था से कृतार्थ हुए भिक्खुराय ने बलिस्सह, उमास्वाति, श्यामाचार्यादिक को नमस्कार करके जिनागमो मे मुकुट समान दृष्टिवाद अग का सग्रह करने की प्रार्थना की ।

भिक्खुराय की प्रेरणा से पूर्वोक्त स्थविर आचार्यो ने अवशिष्ट दृष्टिवाद को श्रमण समुदाय ने थोडा २ ज्ञान एकत्र कर भोजपत्र, ताडपत्र और बल्कल पर अक्षरो से लिपिबद्ध किया और इस प्रकार वे आर्य सुधर्म रचित द्वादशागी के सरक्षक हुए ।

१ उसी प्रसग पर श्यामाचार्य ने निर्ग्रंथ साधु-साध्वियो के सुखबोधार्थ 'पन्नवणसूत्र' की रचना की ।

२. स्थविर श्रीउमास्वातिजी ने निर्युक्ति सहित 'तत्थार्थ सूत्र' की रचना की ।

३ स्थविर आर्य बलिस्सह ने विद्याप्रवाद पूर्व मे से 'अग विद्या' आदि शास्त्रो की रचना की ।

इस प्रकार जिन शासन की उन्नति करने वाला भिक्खूराय अनेक विधि धर्म कार्य करके महावीर निर्वाण से ३३० वर्षो के बाद स्वर्गवासी हुआ ।

उपरोक्त पदावली का वर्णन हस्ती गुफा का खारवेल के शिलालेख से बराबर मिलता हुआ है अत· इस पदावली की घटना को ऐतिहासिक घटना होने मे सदेह करने का थोड़ा भी स्थान नही हैं ।

विणओ सासणे मूल, विणओ सजमोतवो ।
विणयाओ विप्पम्मुक्कस्स, कओ धम्मोकओतवो ॥१॥

जैन शासन मे विनय धर्म का मूल है, विनय से सयम और तप प्राप्त होता है । विनय रहित आत्मा को धर्म और तप कैसे हो सकता है ।

जैन धर्म का सांस्कृतिक प्रभाव

ले० श्री भैरोंसिह महता

अहिंसा जैनधर्म का प्रमुख, प्राणवान, प्रभावशाली सिद्धात है। जीवन की व्यावहारिकता मे अहिसा रचपच गई है, उसका हर क्षेत्र मे प्रवेश और समावेश है। हर स्थिति मे, परिवेश मे प्राणीमात्र की मन, वचन, कर्म से रक्षा करना अहिंसा का व्यापक रूप है। अकारण जाने, अनजाने मे चीटी से लेकर हाथी तक, वच्चे से लेकर बूढे तक, जन्तु और तन्तु को न सताना इसका विशेष अभिप्राय है। विज्ञान तो अब वनस्पति मे प्राण-प्रतिष्ठा कर पाया है पर जैन धर्म ने तो सहस्रो वर्ष पूर्व ही वनस्पति मे प्राण की कल्पना कर, उनकी सुख-दु ख की अनुभूतियो का चित्रण किया है।

पानी छान कर पीना एक जैन पद्धति है। इतर लोगो मे इसका देखादेखी प्रचार हुआ। धान-चून छानना, अनाज को धूप दिखाकर उसे जीव सकुलता से बचाना, सूखे साग खाना भी जैन कुलाचार है। रात्रि भोजन निषेध, अधिक आरभ (आयोजन) मय जेवनार का त्याग, मांसमदिरा परिहार जैन लोगो के विशिष्ट अहिसात्मक प्रयोग हैं। लहसुन प्याज, काशीफल बेगन, मधु-मक्खन, अभक्ष्य अनताकाय खाद्य पदार्थो का त्याग जैन जीवन प्रद्धति है। अपेक्षाकृत कम जल का प्रयोग, जूठा नही डालना, झाडू फूस की सफाई, जीव रक्षा के सप्रयोजन प्रयोग हैं।

सत्य—अब हम दूसरे सिद्धात सत्य की ओर आते हैं। यो तो यह एक सर्व धर्म-स्वीकृत तथ्य है पर जैन धर्म इसके सूक्ष्म प्रतिपादन पर जोर देता है। झूठ किसी भी रूप मे बुरा माना जाता है—झूठी साक्षी, वडा झूठ, हँसी मजाक मे भी अतिरजित झूठ निदनीय है। व्यापार-व्यवसाय मे झूठ का अत्यधिक प्रयोग भी वर्जित है। व्यावहारिक लाभ मात्र से सतोष प्राप्त करना, एक दाम, एक बोल, एक मोल का सहज स्वीकृत सत्य ही जैन व्यापारियो की सफलता की कु जी है। जव से लाभ-लोभ की मात्रा बढी तव से पतन प्रारभ हो गया। आटे मे नमक अथवा चाँदनी रात मे तारो के समान लाभ ही फलदायी सिद्ध हो सकता है। काठ की हाँडी केवल एक ही वार चढती हे, दुबारा नही। एक वार सिटमिटाया या सिर पिटाया ग्राहक दुबारा नही आता। वह औरो को भी जाने से रोकता है और एक व्यवधान खडा करता है।

इसी प्रकार कम तोलना, अधिक लेना, कम देना, कहना कुछ, करना कुछ, बताना कुछ, देना कुछ—ऐसी वातो से जैन लोग स्वभावत कतराते हैं और उनकी लोकप्रियता

का कारण यही व्यावहारिक सत्य परक विशेषता है। इस निष्ठावान, सत्यप्रिय जीवन का प्रभाव औरो पर भी पडता है।

अस्तेय—पराई वस्तु को बिना अधिकार, स्वीकृति और आज्ञा के उचकाना, हथियाना चोरी है।

मातृवत् परदारेषु, पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषू, सपश्यति स पडित ॥

इस सिद्धात का ढिढोरा तो सभी पीटते हैं, पर उसे जीवन मे कितने उतारते हैं ? छल-कपट, धोखा-धडी, माया-मिथ्यात्व द्वारा औरो की आँखो मे धूल डालना अथवा दिन मे तारे दिखाकर माल मारना, चकमा देकर छूमन्तर करना सामान्य चीजें बन गई हैं।

गरीबी और अभाव से अधिक नैतिक स्तर की गिरावट एक चरित्र पतन की निशानी है। खाद्यान्न मे मिलावट एक जघन्य चोरी है। घी मे कोकोगोल्ड, मावे मे मैदा, केसर मे तरी, हीग मे गोद, चाँदी मे चोट, सोने मे खोट, मोल मे ज्यादा, तौल मे कम इतना अधिक होगया है कि जन जीवन का चारित्रिक पतन हो गया है। जैन लोग इस अनायास लाभ की ओर लालायित नही होते सो बात तो नही पर उनके प्रतिक्रमण मे इन सूक्ष्म परिहारो का निर्देश है, निषेध है। इसके उपरात भी यदि वे इन कुकृत्यो को अपनाते हैं तो घृणास्पद हैं।

अपरिग्रह—जैनधर्म मे अपरिग्रह पर विशेष बल दिया जाता है। जैन साधु मुनिराज अल्पतम आवश्यकताओ पर जीवनयापन कर लेते हैं पर श्रावक श्राविकाएँ अपरिग्रह का मूल्याकन भूल रहे हैं। उनकी सग्रह प्रवृत्ति बढ रही है। सचयशीलता, सपन्नता, शालीनता की निशानी मानी जाती है, जो भ्रामक है। आजकल जीवन की जटिलता एक ओर अधिक आबादी, धनाभाव, साधनहीनता, कम उत्पादन के कारण हैं तो दूसरी ओर अपव्यय, परिग्रह, आपाधापी भी इसमे योग देते हैं।

मँहगाई का मूलमत्र है—एक अनार, सौ बीमार। यदि माँग न हो तो मँहगाई बढे ही नही अतएव अपनी आवश्यकताओ को समेटना, उसके पख काटना, नियन्त्रित करना अवश्यभावी है।

जैनधर्म मे मितव्ययिता का बडा मूल्य है। सूत्र सूक्ष्म हैं मानो गागर मे सागर, सीपी मे समुद्र। बोलिए तो कम पर प्रिय एव सत्य। इसी प्रकार समय के अधिकतम उपयोग का विधान है। शक्ति का सचय और सद्व्यय कीजिए, इसी का दूसरा नाम क्षमा है। जैन लोग लोकोपकार मे सभवत सपत्ति का उचित उपयोग करते हैं। इसका औरो पर भी प्रभाव पडता है।

अगरेजी मे एक कहावत है—

Economy makes happy homes and sound nations.

मितव्ययिता सुखद घर तथा सुदृढ राष्ट्र बनाती है। इसका मूल मत्र है—Want not, न तो अपव्यय कीजिए और न चाह, दूसरे शब्दो मे अपरिग्रह जीवन के सतोष की कुँजी है।

महात्मा गाँधी ने जैनधर्म के अहिसा और अपरिग्रह को श्री रायचद भाई से सीख कर जीवन मे उतारा था। उनके सत्य के प्रयोग भी जैनधर्म की सूक्ष्म मान्यताएँ हैं। उन्होने इन सब पर अपना मौलिक रग चढाकर आधुनिकीकरण कर दिया था और उन्हे युग के अनुकूल रूप प्रदान किया था।

दया—जैनो की दया का अन्य लोगो पर, धर्मो पर विशेष प्रभाव है। जीव दया पर कोई भी धर्म इतना जोर नही देता, जितना जैन धर्म। गोशालाओ, पिजरापोलो, अमर बकरो के कटघरो, कुत्तो के बाडो आदि मे वे सदैव दान देते हैं।

वे मासाहारी नही, अत जीव-हत्या से स्वयमेव बच जाते हैं। इसके साथ ही वे चमडे का कम प्रयोग करते हैं क्योकि चमडे की अत्यधिक माँग से ही पशुबध होता है। रेगजीन, कपडा, प्लास्टिक, पोलीथीन आदि पदार्थ चमडे के स्थानापन्न प्रयोग हैं। रबर के जूते, गोरक्षक बूट, बाटा बूट, प्लास्टिक अथवा रबर की चप्पले भी अनुदिन लोकप्रिय बन रही हैं। यह अहिंसात्मक पहिनावा श्रेयस्कर है।

मदिरा पीने वाले मास भक्षियो से भी अधिक हिंसक हैं क्योकि इसमे अनत जीव उत्पन्न कर के मारे जाते हैं। जैनो के बहिष्कार का यही धार्मिक कारण है और इस प्रकार मदिरा के दूषित प्रभाव से वे बच जाते हैं। कुछ लोग इसे पीने लगे हैं, पर जैन लोग स्वभावत मास-मदिरा-भक्षी नही। यह तो कुसगत की रगत है, स्वाभाविक वस्तु नही।

दान—दान जैनधर्म की विशेष प्रवृत्ति है विशाल मदिर, धर्मशालाएँ, कुए, तालाब, गोशालाएँ, कल्याणकेन्द्र इसके साक्षी हैं। जैन लोग दान देना जानते हैं, प्रतिदान नही चाहते। दान त्याग है, प्रतिदान सौदा। अनेक शिक्षण सस्थाएँ, कलाकुज, महिला मडल, शिल्पशालाएँ जैनो के दान, अनुदान से चलती हैं। वे एक ओर अहिंसक वीर हैं तो दूसरी ओर दानवीर भी।

वे सकुचित वृत्ति वाले नही। जैन-अजैन सभी क्षेत्रो मे दान देते हैं। वे कीर्तिदान भी देते हैं, गुप्त दान भी। आजकल नाम की, अह की भावना अधिक बलवती दिखाई देती है। जैनो की सात्विक दानशीलता, दया-दक्षिणा, शील-सौजन्य के कारण ही जैन मदिर, धर्मशालाएं, सस्थाएँ, विद्यालय तथा अन्य क्षेत्र अधिक सुसचालित तथा सुव्यवस्थित ढग से चल रहे हैं। इनका प्रमुख कारण दानप्रियता, त्याग तथा धर्मानुराग है।

सह अस्तित्व—जीओ और जीने दो—भगवान महावीर का उद्घोष है। पचशील सिद्धान्त मे इसी का महत्वपूर्ण समावेश है। इसके पाँच तत्व—आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप न करना, राष्ट्रीय एकता का प्रभुत्व, पारस्परिक समानता, अनाक्रमण तथा शातिपूर्ण सह-अस्तित्व मे इसी सिद्धान्त का विकास एव विस्तार है।

यद्यपि पचशील सिद्धात पर बार बार प्रचड प्रहार होते है तथापि मानव वृत्तियो के निखार, सस्कार, परिष्कार के साथ इसका उत्तरोत्तर विकास होगा—यह निर्विवाद है।

स्यादवाद—स्यादवाद एक सापेक्ष सिद्धान्त है। कोई भी बात किसी अपेक्षा से सत्य है। इसमे भिन्न भिन्न दृष्टियो से तथ्य का प्रतिपादन होता है। एक व्यक्ति पिता-पुत्र, भाई, पति, दामाद, साला, बहनोई, मित्र, शत्रु, सेवक, स्वामी सभी कुछ हो सकता है, और भिन्न भिन्न परिस्थितियो मे, अपेक्षा से, वह क्या कर सकता है, क्या नही—स्यादवाद का रहस्य समझने मे सहायक होगा।

जैन लोगो की सहिष्णुता स्यादवाद की देन है। वे मत-भिन्नता को बुरा नही मानते। एक जैन परिवार मे पति वैष्णव, पत्नी जैन, पति मदिरमार्गी, पत्नी साधुमार्गी, बच्चे शैव देखे जा सकते हैं। वस्तुत उनका व्यक्तिगत रूप कुछ भी हो, सामूहिक दृष्टि से वे सब जैन हैं। जैनधर्म उनका कुलधर्म है, व्यक्तिगत धर्म चाहे कुछ भी हो।

जैनधर्म मे अनेक मतमतान्तर, वाद-विचार, गच्छसप्रदाय, क्रियाकर्म, पूजा-पाठ, विधिविधान, वातावरण-दृष्टिकोण पाए जाते हैं तथापि उनकी बाहिरी भिन्नता मे भीतरी धार्मिक एकता है। जिस प्रकार भारत मे भिन्न-भिन्न भाव, भाषा, वाद, विचार, जाति, समाज, प्रात, ऋतु, बनस्पति, शैली, पहिनावा, खानपान, दल, वर्ग, मान्यता, पद्धति आदि पाई जाती हैं, पर इस भिन्नता के भीतर राष्ट्रीयता का सन्निवेश है, उसी प्रकार जैनधर्म की भावनात्मक भिन्नता मे भीतरी धार्मिक एकता है। यही विविधता मे एकता जैनधर्म की विशिष्टता है। यही उसकी मौलिकता का वास्तविक मूल्याकन है।

कायेण बभचेर घरति भव्वाउ जे असुद्धमणा।
कप्पमि बभलोए ताण नियमेण उववाओ ॥६॥

जो लोग अशुद्ध मन से केवल काया से ब्रह्मचर्य पालते हैं वे भी नियमानुसार ब्रह्म देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

मालवा का जैन पुरातत्व

ले० तेजसिह गौड, एम ए, बी एड, शोधकर्त्ता

भारत मे अनेक स्थानो से जैन धर्म से सम्बधित पुरातत्व की सामग्री प्राप्त हुई है। मालवा मे भी जैन धर्म से सम्बन्धित गुफाएँ, मदिर, प्राचीन मूर्तिया एव अभिलेख प्राप्त हुए हैं। जिनका सक्षिप्त परिचय निम्नानुसार दिया जा रहा है।

प्रद्योत काल—मालवा, जो कि अवति प्रदेश के नाम से भी जाना जाता है, वहाँ ई० पूर्व ५७२ से ई० पूर्व ४६७ तक प्रद्योत वश का शासन रहा। इस काल के कोई अवशेप प्राप्त नही हुए हैं। किन्तु फिर भी हमे इस युग मे भगवान महावीर की प्रतिष्ठा करने का उल्लेख मिलता है। जिस परिस्थिति मे प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने का उल्लेख मिलता है, उस कथा का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है कि सिन्धु सौवीर के राजा उदायन के पास भगवान महावीर की एक चेदन-निर्मित प्रतिमा थी जिसकी पूजा नित्यप्रति उदायन की महाराणी प्रभावती किया करती थी। प्रभावती के स्वर्गवास के पश्चात इस प्रतिमा की पूजा-अर्चना उसकी दासी देवदत्ता के द्वारा की जाने लगी। देवदत्ता उज्जैन के राजा प्रद्योत की प्रेयसी हो गई और समय पाकर देवदत्ता प्रतिमा लेकर प्रद्योत के साथ उज्जैन चली गई तथा इस प्रतिमा के स्थान पर वैसी ही दूसरी प्रतिमा वहा रख गई। जब इस बात का रहस्योद्‌घाटन उदायन को हुआ तो उसने उज्जैन पर आक्रमग कर दिया। युद्ध मे चण्डप्रद्योत पराजित होकर बदी बना दिया गया और उदायन अपने देश की ओर रवाना हुआ। मार्ग मे शिवना नदी के तट पर दशपुर मे इन्होने विश्राम करना चाहा किन्तु वर्षा प्रारम्भ हो जाने के कारण यही चातुर्मास करना पडा क्योकि उदायन जैन धर्मानुयायी था। एक दिन पर्यूषण पर्व मे उदायन उपवास कर रहा था। उदायन के पाक शास्त्री ने चण्डप्रद्योत से भोजन के लिए पूछा। चण्डप्रद्योत ने इस प्रकार पूछने का कारण जानना चाहा। इस पर उसे विदित हुआ कि उदायन को उपवास है। च डप्रद्योत ने भी उपवास था कह दिया। इस पर उदायन ने चण्डप्रद्योत को जैन धर्मावलम्बी समझ कर छोड दिया तथा उसका राज्य भी लौटा दिया। जब चण्डप्रद्योत अपने देश लौटने लगा तो उसने भगवान महावीर की प्रतिमा की पूजा अर्चना की तथा उसके दशपुर मे प्रतिष्ठित करने हेतु एव उसकी सेवा आदि के लिये १२०० गाँव दान मे दिए।

प्रद्योतोऽपि वीतमय प्रतिमोये विशुद्ध धी· ।
शासनेन दशपुर दत्वा ऽवन्तिपुरीमगात ॥६०४॥

अन्येद्युर्विदिशा गत्वा, त्राय लखायिनामकम् ।
देवीकय पुर चक्रे, नान्यथा धरणोदितम् ॥६०५॥
विद्युन्माली कृतायै तु प्रतिमायै महीपति ।
प्रददौ द्वादश ग्राम सहस्त्रान शासनेन स ॥६०६॥

त्रिपष्टिशलाका, पुरुषचरित्, पर्व १०, सर्ग २

फिर इस प्रतिमा का विदिशा मे स्थापित हो जाने से विदिशा मे इसका उल्लेख मिलता है। इस प्रतिमा के कारण ही मन्दसौर जैन तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध हुआ।

साहित्यिक उल्लेख से इतना ही कहा जा सकता है कि इस काल मे मदिर एव मूर्तियो का निर्माण होता होगा। मूर्तिपूजा भी प्रचलित थी। यह एक अलग बात है कि हम इस काल के जैन धर्म के किसी भी प्रकार के कोई अवशेष अद्यावधि प्राप्त नही हुए हैं।

मौर्य युग—ईसवी पूर्व ३२० के लगभग से मौर्य युग का प्रारम्भ माना जाता है। इस युग के एक से एक उच्च श्रेणी के अवशेष सभी प्रकार के भारत मे प्राप्त हुए हैं। अशोक एव उसके पौत्र दशरथ के द्वारा जैन श्रावको के लिए "बरावर" और "नागार्जुनी" पहाडियो पर गुफाएँ बनवाई हुई मिली हैं[1]। इस युग के जैन स्थापत्य एव मूर्ति कला के अवशेष मालवा मे अभी तक अप्राप्त हैं। डॉ त्रिभुवनलाल शाह ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि साची के प्रसिद्ध स्तूप जैन धर्म से सम्बधित हैं। डा शाह[2] के कुछ तर्क इस प्रकार हैं—

१ कनिघम के त्रिलसा स्तूप के आधार पर यह कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त प्रतिवर्ष स्तूप की प्रदीप्ति (Illumination) हेतु २५,००० पण स्वर्ण मुद्राएँ अनुदान मे देता था। यह बडा स्तूप अनेको छोटे-छोटे स्तूपो से घिरा हुआ था। इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि यह उस धर्म से सम्बन्धित होगा जिसका पालन चन्द्रगुप्त करता था अर्थात यह जैनधर्म से सम्बन्धित था।

२ साची का स्तूप चार दिशाओ मे चार सिहाकार द्वार वाला है। यह साची का स्तूप मथुरा के सिह द्वार वाले स्तूप के समान है। मथुरा का स्तूप सर्वसम्मति से जैनधर्म से सबधित मान लिया गया है। इस कारण साची का स्तूप भी जैन धर्म से सबधित है।

३ जब अशोक मगध के सिहासन पर बैठा, उसके पूर्व वह अवति प्रदेश का राज्यपाल था और उसने बेसनगर-विदिशा के जैन व्यापारी की पुत्री से विवाह किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय यहाँ अनेक धनी जैन व्यापारी रहते थे।

---

१ 'भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान'। —डा० हीरालाल जैन, पृ० ३०६।

२ Ancient India, Vol V, Page 190 to 193.

४ प्रियदर्शिन अशोक का पौत्र था जो जैनग्रथो मे सम्प्रति के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस सम्प्रति ने अपना पूरा जीवन जैन धर्म के प्रचार और प्रसार मे समर्पित कर दिया था। इसके कई शिलालेख व स्तम्भलेख हैं। इस महान राजा ने अपने जीवन के अतिम वर्ष अवति मे व्यतीत किए थे और अपनी राजधानी पाटलीपुत्र से विदिशा मे परिवर्तित करली थी। यह सम्भव है कि इसके कुछ राजनैतिक कारण हो किन्तु इसका प्रमुख कारण यह था कि इस सम्प्रति के समय मे यह अवति जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र था।

हुयेनचाग भारत मे बौध स्थानो का भ्रमण करने आया था। उसने अवन्ति के छोटे से स्तूप का वर्णन किया है और साची के विशाल स्तूपो के विषय मे मौन है। यह मौन क्यो ? इससे यह सिद्ध होता है कि क्या ये स्तूप किसी अन्य धर्म से सबधित नही हो सकते ? नि सन्देह यह कह सकते हैं कि ये जैनधर्म से सम्बन्धित हैं।

६. परिशिष्ट पर्व मे महावीर स्वामी के जीवन-वृत्तात का उल्लेख करते समय हेमचंद्रसूरि ने महावीर स्वामी का सम्बन्ध अवन्ति से स्थापित किया है। क्या यह कुछ विशेषता लिये है ? हाँ, अवश्य इसका विशेष तात्पर्य है। महावीर के जीवन की अनेक घटनाएँ अवन्ति से सम्बन्धित हैं।

७ जैन धर्म की कई प्राचीन काल मे लिखी गई धार्मिक पुस्तके हैं। ये पुस्तके उस समय लिखी गई थीं जब जैन धर्म मे कोई सम्प्रदाय नही थे जिससे कि भ्रामक प्रचार हो सके। इन पुस्तको के आधार पर हमारी यह धारणा है कि यह विदिशा या साची जैनों का केन्द्र व तीर्थस्थान था।

इसके अतिरिक्त डा० शाह ने कुछ और भी तर्क प्रस्तुत किये हैं। हम यहाँ पर डा० शाह के तर्कों के विषय मे विशेष कुछ इसलिये कहना उचित नही समझते हैं कि यह विपर्येता ही होगा। किन्तु हम इतना ही कह सकते हैं कि इस सम्बन्ध मे जब तक कोई ठोस अभिलेखिक (Epigraphic) सामग्री प्राप्त नही हो जाती है तब तक इस विषय पर अधिकारपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है।

शक-कुषाणकाल—यद्यपि मालवा मे इस काल के जैन धर्म से सम्बधित कोई अवशेष अद्यावधि उपलब्ध नही हुए हैं तथापि हमे इस युग मे जैनधर्म की स्थिति का आभास साहित्य से होना है। कालकाचार्य कथा से विदित होता है कि इस प्रदेश मे जैनधर्म अच्छी स्थिति मे था। आचार्य कालक ने अवति पर शको को आक्रमण करने के लिए आमन्त्रण दिया था और इसका एक मात्र कारण यह था कि अवति-नरेश गर्दभिल्ल ने आचार्य कालक की भगिनी जैन साध्वी सरस्वती का बलात् अपहरण कर लिया था। सभी प्रकार की सलाह एव समझाने के उपरात भी जब गर्दभिल्ल ने सरस्वती को मुक्त नही किया तो

बाध्य होकर आचार्य कालक ने शको को आमंत्रित किया था कि वे गर्दभिल्ल के दर्प को समाप्त करदे। युद्ध के उपरात मालवा मे शको का राज्य हो गया था। इस घटना मे जनता का भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कालकाचार्य को सहयोग रहा होगा। इससे सिद्ध होता है कि इस काल मे जैनधर्म की स्थिति उत्तम रही होगी तथा मदिर आदि भी रहे ही होगे। मथुरा क्षेत्र मे इस युग के अनेको प्रतिमालेख तथा प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इससे भी हम अनुमान लगा सकते हैं कि इस काल मे जैनधर्म किस स्थिति मे था।

गुप्तकाल—यह काल भारतीय इतिहास मे कहा जाता है। ईसवी सन् ३१९ से इस काल का प्रारम्भ माना जाता है। हमे मालवा मे प्रथम बार निर्विवाद रूप से जैनधर्म के अवशेष मिलने प्रारम्भ होते हैं। इतिहास प्रसिद्ध विदिशानगर के पास उदयगिरि की पहाडी मे २० गुफाएँ हैं जो कि इस युग की हैं। इस क्रम के अनुसार प्रथम एव बीसवे नम्बर की गुफाएँ जैनधर्म से सबधित है। इन दोनो गुफाओ के विषय मे डा० हीरालाल जैन का कहना है, 'पहाडी गुफा को कनिंघम ने झूठी गुफा नाम दिया है, क्योकि वह किसी चट्टान को काटकर नही बनाई गई है, किन्तु एक प्राकृतिक कन्दरा है, तथापि ऊपर की प्राकृतिक चट्टान को छत बनाकर नीचे द्वार पर चार खम्भे खडे कर दिए गए हैं, जिससे उसे गुफा-मदिर की आकृति प्राप्त हो गई है। स्तम्भ घट पत्रावली प्रणालो के बने हुए हैं, जैसा ऊपर कहा जा चुका है आदि मे जैनमुनि इसी प्रकार की प्राकृतिक गुफाओ को अपना निवास स्थान बना लेते थे। उस अपेक्षा से यह गुफा भी ईसवीपूर्व काल से ही जैन मुनियो की ही रही होगी, किन्तु इसका सस्कार गुप्तकाल मे हुआ, जैसा कि वहाँ के स्तम्भो आदि की कला तथा गुफा मे खुदे हुए एक लेख से सिद्ध होता है। इस लेख मे चन्द्रगुप्त का उल्लेख है, जिससे गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय का अभिप्राय समझा जाता है और जिससे उसका काल चौथी शती का अतिम भाग सिद्ध होता है। पूर्व दिशावर्ती बीसवी गुफा मे पार्श्वनाथ तीर्थंकर की अतिभव्य मूर्ति विराजमान है। यह अब बहुत खडित हो गई हैं, किन्तु उसका नागफण अब भी उसकी कलाकृति को प्रकट कर रहा है। यहाँ भी एक सस्कृत का पद्यात्मक लेख खुदा हुआ है, जिसके अनुसार इस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुप्त सवत् १०६ (ईसवी सन ४२६ कुमारकालगुप्त) मे कार्तिक कृष्ण पचमी को आचार्य भद्रान्व्यी आचार्य गोशर्म मुनि के शिष्य शकर द्वारा की गई थी। इन शकर ने अपना जन्म स्थान उत्तर भारतवर्ती कुरुदेश बतलाया है।'[1]

श्री अगरचन्द नाहटा[2] का कहना है कि खलचीपुरा पार्श्वनाद मदिर (मदसौर का एक मोहल्ला) की दीवार मे लगी हुई द्वारपालो की प्रतिमा गुप्त कालीन है और खानपुरा

---

१ 'भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान' पृ० ३१०-३११।

२ 'दशपुर जन पद सस्कृति' पृ० १२०·

सदर बाजार के पार्श्वनाथ के घर देरासर (गृह मदिर) मे पद्मावती देवी की प्रतिमा भी प्राचीन है।

राजपूतकाल—मालवा मे जैनधर्म की उन्नति के लिए यह समय बहुत ही हितकारी रहा। इस युग मे प्रारम्भिक जैन मदिरो का निर्माण हुआ। इस युग के प्रारंभिक काल मे वदनावर मे जैन मदिर थे। इसका विवरण डा० हीरालाल जैन इस प्रकार देते हैं, 'जैन हरिवशपुराण की प्रशस्ति मे इसके कर्ता जिनोनाचार्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि शक सवत ७०५ (ईसवी ७८३) मे उन्होने वर्धमानपुर के पार्श्वालय (पार्श्वनाथ के मदिर) की अनराज बस्ती मे बैठकर हरीवशपुराण की रचना की और उसका जो भाग शेष रहा उसे वही के शातिनाथ मदिर मे बैठकर पूरा किया। उस समय उत्तर मे इन्द्रायुद्ध दक्षिण मे कृष्ण के पुत्र श्री वल्लभ व पश्चिम मे वत्सराज तथा सौरमण्डल मे वीरवराह नामक राजाओ का राज्य था। यह वर्धमानपुर सौराष्ट्र का वर्तमान बढवान माना जाता है। किन्तु, मैंने अपने लेख मे सिद्ध किया है कि हरिवशपुर मे उल्लिखित वर्धमानपुर मध्य प्रदेश के धार जिले मे बदनावर है जिससे १० मील दूरी पर स्थित वर्तमान दूतरिया नामक गाँव है, प्राचीन दोस्तरिका होना चाहिए, जहा की प्रजा ने, जिनसेन के उल्लेखानुसार उस शातिनाथ मदिर मे विशेष पूजा-अर्चा का उत्सव किया था। इस प्रकार वर्धमानपुर मे आठवीसती मे पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ के दो जैन मदिरो का होना सिद्ध होता है। शातिनाथ मदिर ४०० वर्ष तक विद्यमान रहा। इसका प्रमाण हमे बदनावर से प्राप्त अच्छुप्रादेवी की मूर्ति पर के लेख मे पाया जाता है, क्योकि उससे कहा गया है कि सवत १२२९ (ई० ११७२) की वैसाख कृष्ण पचमी को वह मूर्ति वर्धमानपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे स्थापित की गई[1]।

विदिशा जिले के ग्यारसपुर नामक स्थान पर जैन मन्दिर के भग्नावेष मिले हैं। मालवा मे जैन मन्दिरो के जितने भग्नावशेषो का पता अभी तक चला है उनमे प्राचीनतम अव-शेप यही पर उपलब्ध हुए है। इस मन्दिर का मण्डप विद्यमान है और विन्यास एवम् स्तभो की रचना शैली खजुराहो के समान है। फर्गुसन ने इनका निर्माण काल दसवी सदी के पूर्व निर्धारित किया है।[2] यही पर एक और मन्दिर के अवशेष मिले थे किन्तु जब उस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ तो उसने अपनी मोलिकता ही खो दी। फर्गुसन के मता-नुसार ग्यारसपुर के आस-पास के समस्त प्रदेश मे इतने भग्नावशेष विद्यमान हैं कि उनका

---

१ वही पृष्ठ ३३२-३३३।

२ History of Indian & Eastern Architecture Vol. II, P P 55.

विधिवत सकलन व अध्ययन किया जाय तो भारतीय वास्तुकला और विशेपत जैन वास्तुकला के इतिहास के बडे दीर्घरिक्त स्थान की पूर्ति की जा सकती है।[1]

खजुराहो शैली के ही कुछ मन्दिर ऊन नामक स्थान पर प्राप्त हैं। यह स्थान खरगोन के पश्चिम मे स्थित है। उनके दो तीन अवशेषो को छोडकर शेप की स्थिति ठीक हैं। वे दो-तीन अवशेष एव मुसलमान ठेकेदार द्वारा ध्वस्त कर दिए गये थे तथा इनके पत्थर आदि का प्रयोग सडक निर्माण के कार्य मे कर लिया। उत्तरी भारत मे खजुराहो को छोडकर इतनी अच्छी स्थिति मे ऐसे मन्दिर मिलने वाला और कोई दूसरा स्थान नही है। उनके मन्दिरो की दीवारो पर की कारीगरी खजुराहो से कुछ कम है किन्तु शेप सब बातो मे सरलता से उनके मन्दिरो की तुलना खजुराहो से की जा सकती है। खजुराहो के समान ही उनके मन्दिरो को भी दो प्रमुख भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) हिन्दू मन्दिर और (२) जैन मन्दिर। उनमे एक राज्याधिकारी द्वारा दक्षिण पूर्वी सतह पर खुदाई करने पर वहाँ पर कुछ पुरानी नीव और बहुत बडी मात्रा मे जैनमूर्तियाँ निकली थी उनमे से एक मूर्ति पर विक्रम स० ११८२ या ११९२=११२५ या ११३५ ई० सन का लेख खुदा हुआ है जिसके द्वारा यह विदित होता है कि यह मूर्ति आचार्य रत्नकीर्ति द्वारा निर्मित की गई थी।[2]

डॉ० हीरालाल जैन का कथन है कि मन्दिर पूर्णत पाषाण खण्डो से निर्मित, चपटी छत व गर्भ गृह, सभामण्डपयुक्त तथा प्रदक्षिणा रहित है जिनसे प्राचीनता सिद्ध होती है। भित्तियो और स्तम्भो पर सर्वाङ्ग उत्कीर्णन है जो खजुराही की कला से मेल खाता है। चतुर्द्वार होने से दो मन्दिर चौबारा डेरा कहलाते हैं। खम्भो पर की कुछ पुरुष-स्त्रीरूप आकृतियाँ शृगारात्मक अति सुन्दर और पूर्णत सुरक्षित हैं।[3] यद्यपि इस चौबारा डेरा मन्दिर का चिखर ध्वस्त हो गया है फिर भी उनके सुन्दरतम अवशेषो मे से एक है। मण्डप के सम्मुख ही एक बडा बरामदा है किन्तु आसपास कोई बरामदा नही हे। मडप आठ स्तम्भो वाखला वर्गाकार है, मध्य मे गील गुम्बद है तथा चार है जिनमे से एक देवालय की ओर, पूर्व और पश्चिम वाले द्वार बाहरी ओर तथा शेष बचा हुआ चौथा द्वार मण्डप की ओर है। देवालय छत रहित है; लेकिन इसमे दिगम्बर मूर्तिया है। उनमे से एक पर विक्रम सवत १३ (१२४) का एक लेख उत्कीर्ण है।

इस मन्दिर से कुछ ही दूरी पर दूसरा जैन मन्दिर है जो आजकल ग्वालेश्वर का मन्दिर कहलाता हैं। दूसरा यह नाम इसलिए पडा कि यहाँ पर ग्वाले प्रतिकूल मौसम

---

१ वही पृष्ठ ५५।

२ Progress Report of Archaeological Survey of India, —W.C 1919, PP 61,

३. वही पृ० ३३१।

(गर्मी-वर्षा) मे आश्रय लेते हैं। इसकी रचना शैली आदि भी चौवारा डेरा मन्दिर जैसी ही है। इस मन्दिर मे भी दिगम्बर जैन मूर्तियाँ हैं। मध्यवाली प्रतिमा १२॥ फुट के लगभग ऊँची है। कुछ मूर्तियो पर लेख भी उत्कीर्ण हैं। जिसके अनुसार वे विक्रम सवत् १२६३=ई० सन् १२०६ मे भेट की गई थी। यहाँ पर उसी प्रकार की सीढियाँ बनी हुई हैं जिस प्रकार की सीढिया खजुराहो की ऋषभदेव प्रतिमा के पास और गिरनार से बनी हुई है। यह मन्दिर ११वी और १२वो सदी के आसपास निर्मित किए गए हैं।

इस स्थान को प्राचीन पावागिरि ठहराया गया है। जिसका प्राकृत निर्वाण काण्ड मे दो बार उल्लेख आया है[२] —

रामसुआ वेणि जणाला ऽणरिदाण पच कोडीओ।
पावागिरि-वर-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसि ॥५॥

पावागिरि-वर-सिहरे सुवण भद्दाई-मुणिहरा चउरो।
चलणा - णई - तडग्गे णिव्वाण गया णमो तेसि ॥१४॥

चूकि इस क्षत्र के आसपास सिद्धवरकूट तथा बडवानी के दक्षिण मे चूलगिरि शिखर का सिद्ध क्षेत्र है तथा आसपास और भी प्राचीन अवशेष व स्थल हैं। इसी से यह स्थान दूसरा पावागिरी प्रमाणित लगता है।[३] किन्तु प० नाथूराम प्रेमी दूसरा पावागिरि, न मानते हुए ललितपुर एव झासी के निकट प'वा' नामक ग्राम को पावा शब्द के अधिक निकट मानते हैं।[४] अर्थात श्री प्रेमी पवा को पावागिरि मानते हैं।

११वी सदी के जैन मन्दिरो के कुछ अवशेष नरसिहगढ जिला राजगढ (ब्यावरा) से ७ मील दक्षिण मे स्थित बिहार नामक स्थान पर भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर जैन मन्दिरो के साथ ही हिन्दू, बौद्ध व इस्लाम धर्म के अवशेष भी मिले हैं।[५] इसके अतिरिक्त डा एच व्ही त्रिवेदी[६] ने निम्नाकित स्थानो पर भी जैन मन्दिरो के अवशेष बताए हैं जो इसी काल के हैं।

(१) बीझवाडा—यह ग्राम देवास जिले मे है तथा देवास के दक्षिण पूर्व मे इन्दौर से

---

१ Progress Report of Archaeological Survey of India — W C, PP 63 to 64
२ डॉ० हीरालाल जैन वही पृष्ठ ३३१ से उद्धृत।
३ वही पृष्ठ ३३१
४ जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४३०—३१
५ Bibliography of Madhya Bharat I Archaeology पृ० ७
६ Bibliography of Madhya Bharat पृष्ठ ७,८,६,१४,१८,२१,२४,३२,४४।

४५ मील की दूरी पर स्थिति है। यहाँ पर प्राचीन कालिक १०वी ११वी सदी के जैन मन्दिरो के अवशेष मिले हैं। विक्रम सवत १२३४ का एक लेख भी यहाँ से मिला है।

(२) बोटी – यह ग्राम जिला झाबुआ मे स्थित है। यहाँ पर भी जैन मन्दिर मिले हैं तथा एक सीढीदार कुआ भी मिला है।

(३) बीथला—बुढीचदेरी जिला गुना से ५ मील दक्षिण पश्चिम मे स्थित है। यहाँ पर १२वी शदी के जैन मन्दिरो की प्राप्ति हुई है।

( ) छपेरा—जिला राजगढ (ब्यावरा) मे है। यहाँ पर जैन व हिन्दू मन्दिर मिले हैं। तीन मूर्तियो पर लेख भी उत्कीर्ण हैं।

(५) गुरिला का पहाड़—यह स्थान चदेरी जिला गुना से ८ मील दक्षिण मे स्थित है। यहाँ पर नो दिगम्बर जैन मन्दिर मिले हैं। यहाँ के एक मदिर मे एक यात्री का स० १३०७ का लेख यह सिद्ध करता है कि यह मन्दिर इसके पूर्व का बना हुआ है।

(६) कडोद—धार से उत्तर पश्चिम की ओर १४ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर एक जैन मन्दिर व हिन्दू मन्दिर तथा सीढीदार कुआ मिला है।

(७) पुगा गुलाना—मन्दसौर जिले मे बोलिया गाँव से ४ मील की दूरी पर स्थित है तथा गरोढ से डामर रोड से जुडा हुआ है। यहाँ पर ११वी १२वी सदी का एक जैनमदिर व कुछ प्रतिमाएँ हैं। यहा से एक सस्कृत का शिलालेख भी मिला है किन्तु उस पर कोई तिथि नही है। यह अभी इन्दौर पुरातत्व सग्रहालय मे विद्यमान है।

(८) बई खडा—मन्दसौर के समीप थडोद रेल्वे स्टेशन से २ मील की दूरी पर है। यहाँ पर एक जैन मन्दिर है। दीवालो और छत पर अच्छी चित्रकारी है। दरवाजे की चौखट पर १२वी सदी का नाम वाला एक लेख भी है। यह स्थान जैन तीर्थ स्थानो मे से एक है। यहा का भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर लगभग १००० वर्ष पूर्व बना प्रतीत होता है।[1]

इसके अतिरिक्त 'लक्ष्मणी' जिला झाबुआ मे भी एक जैन मन्दिर और मूर्तियाँ मिली हैं। यह स्थान भी जैन तीर्थ है। इसकी प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि सवत १४२७ मे नेमाड की तीर्थ-यात्रा पर निकले जैन तीर्थ यात्री श्री जयानन्द मुनि ने अपने प्रवासगीति मे इस तीर्थ का उल्लेख किया है। जिसके अनुसार यहाँ पर जैनियो के २००० घर थे तथा १०१ शिखर बध मन्दिर थे। स० १४२७ के उल्लेख से यह बात प्रमाणित होती है कि यहाँ के मन्दिर स १४२७ के पूर्व बने होगे।

---

१ जैन तीर्थ सर्व सग्रह भाग २ पृष्ठ ३३४।

'सुकृत सागर' मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि पेथडकुमार मर्भीश्वर के पुत्र भाभण कुमार ने माडवगढ से शत्रुंजय का सघ निकाला था जो ल मणी आया था। कहने का तात्पर्य है कि सोलहवी सदी तक पूर्णरूपेण सभी जैनियो को यह तीर्थ विदित था।[1] सोलहवी सदी मे या इसके पश्चात यह स्थान किस प्रकार ध्वस्त हुआ, कोई जानकारी नहीं मिलती है। यदि पूरे मालवा के जैन मन्दिरो का इतिहास खोजा जावे तो उसमे अधिकाश मध्यकालीन मिलेगे। किन्तु इन जैन मदिरो के जीर्णोद्धार के परिणाम स्वरूप ये अपना मौलिक स्वरूप खोते गये और इस प्रकार इनकी प्राचीनता नष्ट होती गई।

माडव और धार मे भी जैन मन्दिरो का बाहुल्य था किन्तु अब सब नष्ट हो चुके हैं। कुछ जैन मन्दिरो का उपयोग मस्जिदो के रूप मे कर लिया गया है।[2] माडव मे ७०० जैन मन्दिर होने का उल्लेख सुकृत सागर मे मिलता है जिनमे से ३०० जैन श्वेताम्बर पर पेथड देव और उसके पुत्र भॉभण देव ने सोने के कलश जढाए थे।[3] माडवगढ के जैन मन्दिरो को ध्वत करने अथवा परिवर्तित करने का एक अलग प्रकरण हो जाता है। किंतु यहॉ पर यह विचारणीय है कि यदि माण्डवगढ मे इतनी अधिक सख्या मे मन्दिर थे तो वे कहाँ गए? माँडवगढ मे आज भी अनेक भग्नावशेष है, उनकी वास्तविकता की ओर ध्यान देना आवश्यक हैं। परमारकाल मे धार मे सगमरमर के जैन मन्दिर का भी निर्माण हुआ था।[4]

इस युग मे जिस प्रकार जैन मन्दिरो का बाहुल्य है ठीक उसी प्रकार जैन प्रतिमाओ का होना भी स्वाभाविक ही है। क्योकि बिना प्रतिमा के मन्दिर कैसा? मदिरो के अतिरिक्त भी प्रतिमाओ के शनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। प्रचीन मन्दिरो के उल्लेखित स्थानो पर तो प्रतिमाओ के सुन्दर उदाहरण हैं ही किन्तु कुछ प्रतिमाओ के और नमूने मिले हैं जिसमे धसोई जिला मदसौर, गधाबल जिसा देवास विशेष उल्लेखनीय है। धसोई के विषय मे ऐसा कहा जाता है कि वहाँ पर मूर्तियाँ इस बाहुल्य के साथ प्राप्त होती है कि खेतो खलिहानो एव घर को दीवारो पर भी इनके उदाहरण देखने को मिल जाते हैं।

गधावल मे भी घरो, कुओ उद्यानो एव खेतो मे बिखरी हुई प्रस्तर प्रतिमाओ की सख्या लगभग दो सौ है।[5] यद्यपि इनके समय के सम्बन्ध मे कोई प्रामाणिक सामग्री नही

१ वही पृष्ठ ३१३-३१४।
२ फर्गुसन वही पृ० २६३-६४।
३ श्री माडवगढ तीर्थ—श्रीनन्दलाल लोढा पृ० १८।
४ उज्जयिनी दर्शन पृ० ८४।
५ अनेकान्त वर्ष १९११-२ पृ० १२९।

मिली है फिर भी हम कह सकते ह कि वे प्रतिमाएँ इसी काल की होगी। जिन पाँच प्रतिमाओ का उल्लेख अनेकात[2] मे किया गया है उनका सक्षिप्त इस प्रकार है—

(१) यह तीर्थकर की प्रतिमा है तथा लगभग ११॥ फीट ऊँची है और वृक्षस्थल पर श्रीवत्स प्रतीक है।

(२) दूसरे तीर्थकर की प्रतिमा ६ फुट के लगभग ऊँची है। प्रभामण्डल खण्डित हे। इनके दोनो ही ओर कायोत्सर्ग मुद्रा मे बैठे अन्य तीर्थकरो के लघुचित्रण उत्कीर्णित हे। मुख्य प्रतियो के पैरो के पास चामरधारी सेवक भी हे।

(३) यह पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा है जो त्रिछत्र के नीचे सर्प के सात फणो की छाया मे कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडी है। प्रतिमा खण्डित है। पैरो के समीप चवरधारी सेवको के साथ उनके यक्ष तथा यक्षी धरणेन्द्र एव पद्मावती का भी सुन्दर अकन है।

(४) चौथी प्रतिमा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की शासन देवी चक्रेश्वरी की है। गधावल से प्राप्त जैन प्रतिमाओ मे यह प्रतिमा विशेष स्थान रखती है। प्रतिमा खण्डित हैं। वाहन गरुड अपने बाये हाथ मे सर्प पकडे हुए हैं। बायी और सेविका की खण्डित प्रतिमा है।

(५) यह प्रतिमा नेमीनाथ की यक्षिणी अम्बिका की है। यह प्रतिमा भी खण्डित है।

गधावल के सम्बन्ध मे एक बात उल्लेखनीय है कि यहाँ सभी दिगम्बर प्रतिमाए मिली है।

विशाल प्रतिमाओ की परम्परा मे बडवानी नगर के समीप चूलगिरि पर्वत श्रेणी के तल भाग मे उत्कीर्ण ८४ फीट ऊँची खडगासन प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। इसे बावन-गजा के नाम से भी पुकारते हैं। इसके एक ओर यक्ष तथा दूसरी ओर यक्षिणी उत्कीर्ण है।[1] दि० जैन डाइरेक्टरी के अनुसार चूलगिरि मे २२ मदिर हैं। मदिरो के जीर्णोद्वार का समय वि० स० १२३३, १३८० और १५८० हैं।[2]

जैन प्रतिमाओ का एक विशाख सग्रह "श्री जैन पुरातत्व भवन जयसिह पुरा उज्जैन मे भी है। यहाँ पर विभिन्न तीर्थकरो की प्रतिमाओ के साथ ही अन्य प्रतिमाए भी हे। अधिकाश प्रतिमाए दिगम्बर हे। कुछ श्वेताम्बर प्रतिमाए भी दिखाई देती है। इस सग्रह

---

१ वही पृ० १२९-३०।

२ डॉ० हीरालाल जैन वही पृष्ठ ३५०

३ जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ ४४२

की सभी प्रतिमाएँ कही न कही से खण्डित है। कई प्रतिमाओ के सिर नही है तो कई के धड नही है। कुछ प्रतिमाओ के हाथ पैर टूटे हैं। ये प्रतिमाएँ यहाँ पर अनेक स्थानो से लाकर रखी गई है जिनमे से प्रमुख रुप से गुना जिला है। कुछ प्रतिमाएँ सुसनेर, वदनावर तथा रतलाम जिले से भी यहाँ लाई गई हैं। अधिकाश प्रतिमाओ पर लेख उत्कीर्ण है। अधिक घिस जाने के कारण स्पष्ट रूप मे पढने मे नही आते है। एक खण्डित प्रतिमा जिसका केवल निम्न भाग ही शेष है पर सवत् १२२२ का लेख है। इस प्रतिमा पर "स्वस्तिक" चिन्ह है। जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रतिमा १०वे तीर्थकर शीतलनाथजी की है। भगवान अजितनाथजी की भी एक खडित प्रतिमा जो कि गुना से प्राप्त हुई है पर सवत १२३१ का लेख हैं। भगवान पार्श्वनाथ की जितनी प्रतिमाएँ हैं उनमे सर्पफण अभी भी लगभग पूर्ण है।

मुस्लिम काल—सवत् १३६७ के पश्चात मालवा मे राजपूतो का पहले जैसा प्रभाव नही रहा। जब जयसिह देव (चतुर्थ मालवा मे राज्य कर रहा था तव मुसलमानो ने बडा उत्पात मचाया था। एक प्रकार से जयसिह देव (चतुर्थ) अतिम राजपूत था। इसके उपरात मुसलमानो का राज्य स्थापित हो गया। मुस्लिम काल मे यद्यपि जैन मदिरो का निर्माण प्रचुर मात्रा मे नही हो पाया तथापि कही कही इस काल के बने हुए मदिरो के भग्नावशेष उपलब्ध है जो इस प्रकार है—

१ **कोठडी**[1]—यह ग्राम मदसौर जिले की गरोढ तहसील मे गरोढ से २४ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर १४वी सदी का एक जैन मदिर है जो बाद मे ब्राह्मण धर्म के मन्दिर के रूप मे परिवर्तित कर लिया गया है।

(२) **मेमन**[2]—यह ग्राम जिला गुना मे स्थित है। यहाँ पर हिन्दू व जैन मन्दिरो के समूह उपलब्ध हुए हैं। मूर्तिया भी मिली हैं तथा मन्दिरो मे नक्काशी का काम भी है।

इसके अतिरिक्त इस युग की कुछ जैन प्रतिमाएँ भी मिली है जिन पर लेख उत्कीर्ण हैं। लेख मे अकित सवत के आधार पर वे प्रतिमाएँ इस काल की प्रमाणित होती हैं। एक प्रतिमा पर स० ६१२ का लेख भी मिला है। इससे इस मूर्ति की प्राचीनता सिद्ध होती है, किन्तु श्री नन्दलाल लोढा का कहना है कि इस लेख मे सवत् ६१२ विचारणीय है, क्योकि इस समय माडवगढ के अस्तित्व का कोई प्रमाण उपलब्ध नही, उपलब्ध प्रमाणो से तो सवत् ९७१ मे महाराजा वाक्पतिराज के पुत्र वैरीसिह की अधीनता मे माडवगढ का होना प्रमाणित हुआ है। इसके पहले के प्रमाण अभी मिले नही है। अत, यहाँ शायद सवत्

---

१ Bibtiography of Madhya Bharat Part I पृष्ठ २१
२ वही पृष्ठ २४

१६१२ सभावित दिखता है। इस जमाने मे माडवगढ मे महमूद खिलजी के दीवान चादाशाह का उल्लेख इतिहास मे मिलता है। सभव है कि इस लेख मे धनकुबेर के विशेषण से उल्लिखित शा० चन्द्रसिह शायद ये ही चादाशाह हो।[1]

इस युग मे भी बडे-बडे पदो पर कुछ जैनी नियुक्त थे। उनमे सग्रामसिह सोनी, चादाशाह, जीवणशाह, पुँजराज, मत्री मेघराज और जीवनराज आदि आदि। सग्रामसिह सोनी के द्वारा मम्सी पार्श्वनाथ तीर्थ का निर्माण हुआ, ऐसा उल्लेख मिलता है।[2]

उपर्युक्त अवशेषो के अतिरिक्त निम्नाकित स्थानो पर भी जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई है। जिनका उल्लेख डा एच व्ही. त्रिवेदी[3] किया है।

(१) चैनपुरा—यह ग्राम मदसौर जिले मे है। यहा पर एक दीर्घकाय जैन प्रतिमा मिली है। यह प्रतिमा आजकल भानपुरा मे है।

(२) छपेरा—जिला राजगढ (ब्यावरा) मे स्थित एक ग्राम है। यहाँ पर कुछ जैन मूर्तिया मिली हैं। जिनमे लेख भी है।

उपसहार—मालवा के जैन पुरातत्व पर एक दृष्टि डालने पर हमारे सामने निम्नाकित चित्र उभर आता है —

(१) साहित्य और परम्पराओ के आधार पर मालवा मे जैन धर्म प्रद्योतवश से प्रारम्भ हुआ तथा उसी युग से जैन मन्दिर और प्रतिमा का उल्लेख मिलने लगा, किन्तु उसका प्रमाण अभी नही मिल पाया है।

(२) मालवा मे अभी तक उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर अभीलीखिक (Epigraphic) प्रमाण सर्व प्रथम गुप्त काल मे उदगिरि (विदिशा) के गुहालेख मे मिलता है जो ई सन् ४२६ का है।

(३) जैन धर्म की मालवा मे सर्वाधिक उन्नति राजपूत काल मे हुई। इस दृष्टिकोण से हम जैन धर्म के लिये राजपूत काल को स्वर्णकाल कह सकते हैं।

(४) राजपूतकाल के उपरात मुस्लिम काल मे जैन धर्म की अवनति के चिन्ह दिखाई देने लगते है। मुस्लिम आक्रान्ताओ के द्वारा मन्दिरो का मस्जिदो मे परिवर्तन एव मूर्तियो का तोडना प्रारम्भ हुआ।

[1] श्री माडवगढ तीर्थ पृष्ठ ४३-४४

[2] वही पृष्ठ २६

[3] Bibliography Madhy Bharat पृष्ठ ८-९

(५) मालवा मे दिगम्बर मतानुयायियो का बाहुल्य प्रतीत होता है। क्योकि दिगम्बर अवशेष अधिक मिले हैं।

अन्त मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि मालवा मे भी अनेक ऐसे स्थान अभी भी होगे जहाँ पर जैन मन्दिर एव मूर्तियो के अवशेष प्राप्त हो सकते हैं। प० परमानन्दजी जैन शास्त्री ने मुझे लिखे एक पत्र मे बताया था कि भानपुरा (जिला मन्दसौर) क्षेत्र मे पुरातत्व की सामग्री भरी पडी है। अत इस विषय मे आगे और अनुसधान आवश्यक ही नही अनिवार्य है।

ता तेसु धन्ना सुकयत्थजम्मा, ते पूयणिज्जा ससूरा सूहाणां।
मुत्तूण गेह तु दुहाण वास, बालत्तणे जे उ वयं पवन्ना ॥१॥

सव पुरुषो मे जो धन्यवाद के पात्र हैं वही बहुत कृतार्थ जन्म वाले है। देव असुर जिनको पूछते है जिन्होने बाल वय मे दीक्षा अगीकार की।

०००

नगे नगे न मणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ॥२॥

प्रत्येक पर्वत मे माणक नही मिलते, प्रत्येक हस्ती के मस्तक मे मोती नही होते। प्रत्येक जगह साधु पुरुष नही मिलते और प्रत्येक जगल मे चदन नही होता।

अध्यात्म के आधारस्तम्भ

ले० मेवाड रत्न, मुनि प्रवर, श्री विशालविजयजी महाराज 'विराट',
शत्रुञ्जय विहार पालीतणा

ससार मे कई बडी-बडी हस्तियाँ आई और चली गई केवल उनकी स्मृतियाँ ही शेष है ।

ऐसे व्यक्ति यहाँ आए जो ससार मे अजेय थे जिस दिशा मे वे गए बडी-बडी शक्तियो को उन्होने झुकने को मजबूर किया ।

ससार की कीमती और दुर्लभ वस्तुओ से उन्होने अपने महल भर लिए ।

उनकी शान-शौकत, मान-मर्यादा आदि की तुलना करना भी कठिन काम है । जगत की कोई शक्ति उनके सामने अपना सिर उठा नही सकती थी ।

आज खोजने पर भी उनका नामोनिशाँ नजर नही आता पर जिन्होने धर्म के लिए त्याग किया, बलिदान दिए, हँसते-हँसते अपना सब कुछ धर्म के लिए न्योछावर कर दिया ऐसे दरिया दिलो का अपना अद्भुत इतिहास है । उनकी भव्य गौरव गाथा गाते गाते लोग आज भी नही अघाते ।

धर्मनिष्ठा और धर्मरक्षा को लेकर सारे ससार मे राजस्थान का स्थान बडा महत्व-पूर्ण है । उसका अपना अनूठा इतिहास है । गौरवपूर्ण गरिमावाली, प्रतिभाशाली, मतवाली, सस्कारितावाली यहाँ की सस्कृति है जो मुग्ध किए बिना नही रहती ।

राजस्थान की कलाप्रियता भी अनोखी है । उसके सृजन सारे ससार को सुहाते हैं । प्रकाश स्तम्भ जैसे विशाल और अनुपम जिन मन्दिर सस्कृति के महान प्रहरी की तरह आज भी अडिग खडे हैं । धर्म की आधारशिला जैसे इन मन्दिरो ने अपनी दिव्यता और भव्यता से करोडो की कामना-भावना को सँजोया है, सँवारा है, जगत को शिल्प का सबक सिखाया है और कला की कमनीयता को लेकर कठोर पत्थरो मे भी सौन्दर्य के प्राण भर दिए हैं ।

ज्ञानियो ने जीव को ऊपर उठाने की दिशा मे कोई कसर नही उठा रक्खी है । उन्होने पतित आत्मा को ऊपर उठाने के लिए प्राणवान प्रेरणा दी और बहुत कुछ पावन प्रयत्न किए ।

समझदारो ने अपनी नजर ऊपर उठाई। उसी के फलस्वरूप कई आत्माएँ ऊपर उठी और दूसरो को भी उठाने का काम उन्होने किया।

नाशवान पदार्थो से भी यदि शाश्वत, नित्य एव त्रिकालस्थायी धर्म आराधना उपासना होती हो तो अवश्य ही कर लेना चाहिए। अत उन्होने चचललक्ष्मी का परमोत्कृष्ट फल तो प्राप्त किया ही, साथ मे प्रेरणा भी दी।

उन्होने अध्यात्म के महान विद्यालय जैसे गगनस्पर्शी जिनालयो का निर्माण किया जो स्वय मूक होते हुए भी आज वहुत कुछ बोल रहे है।

इन मदिरो के शिखर जितने ऊँचे और भव्य होगे जीवन के मापदण्ड और अध्यात्मिकता के मूल्य भी उतने ही महान होगे।

श्री कापरडाजी का जैन मन्दिर अपने विशिष्ट ज्ञान का एक अनूठा, अद्भुत जिनालय है, जिसमे विश्व विख्यात श्रीपार्श्वनाथ परमात्मा विराजमान हैं। उनके लिए कहा जाता है—

> नाम हैं तेरे सैकडो, है तू जहाँ तीरथ वहाँ,
> और को जाने न जाने, जाने तुझे सारा जहाँ।
> तू मिला सव कुछ मिला, तू ही है मेरा महरबाँ,
> क्या गरज अव गैर की, जब पाए पार्श्वनाथ को ॥१॥
> प्यारे मनाओ साँवरे, कापरडा पार्श्वनाथ को ॥ (इत्यादि)

इस जिनालय के अति उन्नत शिखर को देखते ही मनुष्य की दृष्टि बरवस ऊपर उठ जाती हे। वह ऊँचाई मानो कह रही है कि तुम भी मेरी तरह उन्नत हो जाओ, ऊपर को उठ जाओ। जो ऊपर उठेगा वह महान् और पूज्य बनेगा ही। सारे ससार का वैभव उसके कदमो मे पडा होगा। उसके जयजयकार से दिशाएँ गूँज उठेगी।

ऊपर उठे व्यक्ति को ससार की वडी-वडी चीजे भी तुच्छ और क्षुद्र मालूम होती हैं और तभी आतरिक वैभव की झाँकी मिलती हे।

जिसने आत्मवैभव देख लिया है उसे तुच्छ वैभव ललचा नही सकता जिसने अमृतपान किया हो क्या उसे फटा हुआ दूध भाएगा ? कदापि नही।

दर्शन-शुद्धि की भूमिका 'भक्ति'

लेo श्री ऋषभदास जैन, तामिलनाडु

[त्रिभुवन दिवाकर श्री अरिहन्त परमात्मा की भक्ति का हृदयस्पर्शी प्रवाह इस लेख मे बह रहा है। श्री नवकारशिखरवर्ती श्री अरिहन्त परमात्मा की भक्ति जागे इस प्रकार की बहुतसी महत्वपूर्ण बाते इस लेख मे समाविष्ट है।]

जीवन के विकास मे दर्शनशुद्धि बहुत महत्वपूर्ण है, कारण कि दर्शनशुद्धि-विहीन एक जन्म नही, अनन्त जन्मान्तरो की भवयात्रा भी निष्फल मानी है। शास्त्रकार दर्शनशुद्धि-विहीन प्राणी को कोल्हू के बैल की उपमा प्रदान करते हैं। कोल्हू का बैल चाहे कितनी ही तीव्र गति से चले तो भी वहो का वही रहने वाला है, वह तो अपने उसी क्रम से जाता है। ससार मे भले ही वह चाहे कितनी रिद्धि-सिद्धि प्राप्त करे, अथवा उग्र से उग्र तप करे, जप-अनुष्ठान करे अथवा त्याग-वैराग्य व ज्ञान की बाते करे, उनमे अपना समय व्यय करे फिर भी दर्शनशुद्धि बिना उनका मूल्य इकाई बिहीन शून्य के तुल्य है। इन्ही कारणो से तत्ववेत्ताओ को सर्वप्रथम दर्शनशुद्धि के मार्ग का अन्वेषण करना चाहिए।

दर्शनशुद्धि की अपूर्व व अनुपमशक्ति के विषय मे कोई दो मत नही है, परन्तु प्रश्न तो यह है कि पारस के स्पर्श से लोहा सोना तो बन है जाता पर पारस कैसे प्राप्त करना ? यही दुष्कर है। इस प्रकार सम्यकदर्शन किस प्रकार प्राप्त करना ? जहाँ पुत्र होता है पुत्र वधू वहाँ आती ही है। इसी प्रकार अनुभवी पुरुष एक स्वर से कहते हैं—

'भक्ति एक ऐसी शक्ति है जिसके प्रभाव से दर्शनशुद्धि तो क्या, उसकी बडी बहिन सिद्धि भी वरमाला लिए खडी रहती है। महामहोपाध्यायजी श्री यशोविजयजी महाराज फरमाते हैं —

'सारमेतन्मयालब्ध, श्रुताब्धेरवगाहनात्।
भक्तिर्भागवती बीज परमानदसपदाम ॥१॥

अर्थ —इतने आगमशास्त्रो का मथन करने के बाद यदि अमृत के रूप मे कोई सार-भूत वस्तु मुझे प्राप्त हुई तो वह है प्रभु भक्ति।

'भक्ति भ्राति नही पर जीवन विकास की सच्ची क्रान्ति है।'

भक्ति को जीवन विकास के लिए आवश्यक कहने के स्थान पर

अनिवार्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। भक्ति अर्थात् गुण, गुणीजन व गुणीपद इन तीनो के प्रति सम्यक राग व उनमे प्रगतिशील बनने हेतुसदापूजा सत्कार, विनय-वैयावच्च-सेवा शुश्रूषा की वृत्ति। इन्हे प्राप्त करने के लिए श्रीवीतराग परमात्मा के शासन मे श्रीनमस्कार महामत्र का मार्ग बताया है। इस नमस्कार महामत्र मे परमपद पर विराजमान सर्वश्रेष्ठ पचपरमेष्ठि पदो का विधियुक्त समावेश किया गया है। इनमे सर्वप्रथम अरिहन्त पद की भक्ति आवश्यक ही नही वरचअनिवार्य भी है। जिस प्रकार हाथी के पैट मे सबका समावेश हो जाता है उसी प्रकार इस अलौकिक पद की भक्ति मे समस्त गुण, गुणी एवम् गुणीपद की भक्ति है।

भक्ति के पथ मे प्रवेश क्रमिक पद की पूजा से करना विशेष हितकर है। उसके प्रभाव से धीरे-धीरे स्वत गुण व गुणा की पूजा के प्रति बिवेक बढता जाता है। इस प्रकार से पदो के मडलरूप नमस्कार महामन्त्र मे अर्हत्‌दर्शन दर्शन का आदर्श स्थान माना जाता है। सुगठित शब्दो के इस समूह एव चक्र की आगम शास्त्रो मे श्री पच मगल महाश्रुतस्कन्ध के नाम से सबोधित किया गया है। श्री नमस्कार महामत्र को 'धर्मचक्र' कहनाभी अत्युक्ति न होगी। चक्रवर्ती छ खण्ड की विजयचक्र की सहायता से बडी सुगमता से कर लेता है, उसी प्रकार धर्मचक्र की सहायता से सहज ही चौदह-भुवन की रिद्धि सिद्धि का स्वामी बना जा सकता है। श्रीनवकार महामत्र मे अपूर्व महात्म्य बखानने का प्रधान कारण उसकी पदप्रभुखता है। अर्थात् इसकी उपासना मे पद की पूजा होती है व्यक्ति तो इस सृष्टिरूपी महासागर मे एक बिन्दुस्वरूप है। जिस प्रकार गगा, सिन्धु आदि सभी जलसमूहो का समावेश सागर मे स्वाभाविक है उसी प्रकार नमस्कार महामन्त्र की आराधना भी आ जाती है। इसकी आराधना के अनन्त फल को बनाते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

अपुव्वो कप्पतरु चिन्तामणि कामकुंभ कामगवी।
जो जायई सयत्मकाल, सो पावईसिवसुहविहुल॥

अर्थात् कल्पवृक्ष, कामकुंभ, कामधेनु व चिन्तामणि रत्न से भी यह मन्त्र कई गुना प्रभाव वाला है। नवकार के पॉच पदो मे भी परमोत्कृष्ट आराधना श्री अरिहन्तपद की है, क्योकि सकल गुण-गुणीपदो के विधायक कहो अथवा सिद्धचक्र मडल के सृजनकर्ता कहो ऐसे अरिहन्तपद पर श्री तीर्थकर परमात्मा विराजमान हैं। वे धर्म सस्थापक, धर्माधीश्वर धर्मचक्रवर्ती हैं। क्योकि यह महापद सकल देव-देवेन्द्रो व समस्त प्राणियो का सर्वेश्वर पद है इसलिए सर्वप्रथम हमे अरिहन्त प्रभु की भक्ति करना सीखना चाहिए। इस प्रकार की पदपूजा मे क्रम छोडने वाले, व्यवहार छोडकर निश्चय रखने वाले, बहुत ही नीचे गिरते दिखाई देते हैं। पॉच पदो मे माता का काम करने वाला अरिहन्त पद ही है। माता जिस प्रकार भोजन बनाती है व अपने हाथ से पुत्र को खिलाती भी है उसी प्रकार अरिहन्त पद

व मोक्ष के साथ साथ मोक्ष की योग्यता व मोक्ष की सुन्दर साधन सामग्री भी प्रदान करता है इसलिए वह महागोप, महानियामक व महासार्थवाह कहलाता है। चित्रकार चाहे जितना निपुण हो तो भी कूची व रग के विना सुन्दर चित्रकारी नही कर पाता, उसी प्रकार पु यानुवधी-पुण्य की सामग्री विना आत्मसाधना असभव है। श्री अरिहन्त पुण्य के परमेश्वर हैं व अध्यात्मिक साधना के अधीश्वर है अत जब तक अध्यात्मसाधना के योग्य बाह्य-आभ्यन्तर सामग्री प्राप्त न हो तव तक तो श्री अरिहन्त का आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है।

मेरे एक मित्र ने मुझे पूछा कि श्री अरिहन्त के भी साध्यबिन्दु सिद्ध पद की साधना पहले क्यो नही करते। मुझे सक्षिप्त मे कहना पडा कि ससार मे पुत्री के लिये पति का स्थान पिता से ऊँचा गिना जाता है तो भी पिता की आज्ञा विना पति को अर्पण हो जाने वाली पुत्री पापाचारिणी कहलाती है व पिता की मर्यादा को मानकर पति को अर्पण होने वाली पतिव्रता कहलाती है व सतियो की श्रेणी मे आने योग्य होती है।

बहुत वर्ष पहले मद्रास न्यायालय मे चल रहे एक अभियोग मे देश व विदेश के निष्णात कानूनविद उपस्थित थे। उनमे से एक अँग्रेज बैरिस्टर ने भारत के एक वयोवृद्ध वकील से प्रश्न किया कि 'हमारे देश की प्रजा इतनी शिक्षित व सभ्य गिनी जाती है तो भी वहाँ के दाम्पत्य जीवन मे सच्चे प्रेम का अभाव है, जब कि यहाँ की प्रजा जो बहुधा अशिक्षित होते हुए भी दाम्पत्य जीवन प्रेम पूर्ण है। इसका क्या कारण है ?'

वयोवृद्ध ने एक ही वाक्य मे उत्तर दे दिया "तुम्हारे यहाँ प्रेम के बाद विवाह होता है व हमारे यहाँ विवाह के परिणाम मे प्रेम होता है। 'अर्थात् पश्चिम मे विवाह प्रेम का सूर्यास्त है, पूर्व मे प्रेम का प्रभात बडो के अनुशासनपूर्वक विवाह होता है, अत प्रेम अखड रूप ले स्थिर रहता है।" इसी प्रकार अरिहन्त प्रभु के अनुशासन मे रहकर सिद्ध चक्र की साधना करनी चाहिए।

धर्मचक्र के दो अग हैं तीर्थ व दूसरा मोक्ष। तीर्थ माता के समान है वमोक्ष पिता-तुल्य है। माता के प्रति बफादार ही पिता के प्रति वफादार हो सकता है। उसी प्रकार इस व्यवहार को मानने वाला ही वास्तव मे विकास प्राप्त कर सक ा है। जो अरिहन्त पद की पूजा करना जानता है वही सिद्ध को पूजने योग्य होता है, अत सर्व प्रथम अरिहन्त की भक्ति को अपने जीवन का आदर्श बना कर ही आध्यात्म मार्ग मे आगे बढने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है।

अब भक्ति मे किस प्रकार आगे बढना। यह देखते हैं कि जिस प्रकार बरसात के लिए वनो का होना आवश्यक है जिस प्रकार कुए से निर्मल जल प्राप्त करने के लिए पड़ौसी के लिए भी कुए का पानी ले जाने के लिये प्रेमपूर्वक द्वार खुले रखना आवश्यक है, उसी प्रकार अरिहन्त प्रभु की पूजा करनी है तो उनके द्वारा स्थापित श्री चतुर्विध महा सघ की

भक्ति, विनय वैय्यावच्च व सेवाशुश्रूषा करनी ही होगी। तदतिरिक्त सातो क्षेत्रो को भली भाँति पृष्ठ करना होगा, प्रभु के आगमो मे माने गए सूक्ष्म-स्थूल, एवम् त्रस-स्थावर सभी जीवो से मैत्री भावना का विकास करना होगा। प्रभु के शासन को जयवत रखने वाले मार्ग मे तन-मन-धन से तैयार रहना होगा। उनके अहिसा-सयम व तप के आन्दोलन को अखड रूप से प्रवाहयुक्त रखने के लिए पुरुषार्थी बनना होगा आत्मवाद के पवित्र आन्दोलन मे प्रयुक्त होने वाले छोटे अथवा बडे सभी प्रकार के उपकरणो को प्राणप्रिय मानना होगा तभी सच्ची भक्ति, सच्ची पूजा, सच्ची कृतज्ञता व सच्ची कर्त्तव्यपरायणता कहलाएगी।

भक्ति का सर्वांग सुन्दर मार्ग है प्रभु के चरण-स्पर्श हुई भूमि के रजकरण का नमन करना। प्रभु के आगम मे प्रत्येक वाक्य अमृत से भी मीठा है व प्रभु के शासन का एक एक स्मारक स्वर्ग से भी सुन्दर है, उनका छोटा से छोटा सेवक सतान से भी अधिक प्यारा है। इस प्रकार से जीवन को सक्रिय बनाने के लिए तत्पर रहना होगा। इसमे जितना प्रमाद सेवन किया जाय उसका सच्चे हृदय से पाश्चाताप करना पडेगा। यही सच्ची भक्ति है।

ससार के ख्यातिप्राप्त सब दर्शन भक्ति की व्याख्या से अपने इष्टदेव के लिए मिलते जुलते ही हैं। कोई कहता है कि जो अपने नर को जानता है वही हरि को जानता है, कोई कहता है जो जीव को जानता है, वह शिव को समझता है। कोई कहता है जो पिड (Micro-cosom) को जानता है वह ब्रह्माड को जानता है। तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार राज्य के अस्तित्व को स्वीकार करने वाला राजा का अस्तित्व स्वत ही मान रहा है उसी प्रकार श्री अरिहन्त प्रभु के शासन का सच्चा सेवक, सच्चा-वफादार व भक्त ही परम भक्त बन सकता है। इसी प्रकार की भक्ति ही दर्शन-शुद्धि की भूमिका है।

जेण चिय जिणधम्मेण, गमिओ रंको विरज्जसपत्ति।
तम्मि वि जस्स अवन्ना, सो भन्नह किं कुलीणोत्ति ।।४।।

जो जिनेश्वरदेव के धर्म से रक भी राज्यसपत्ति पाता है वह धर्म में श्रद्धा नही रखता वो कुलिन नही कहा जा सकता।

सफलता की आधार-भूमि 'संगठन'

शासनप्रभाव श्री विचक्षणश्रीजी महाराज के प्रवचन से उनकी शिष्या
मणिप्रभा श्रीजी महाराज ने यह लेख भेजा है।

सगठन शब्द शक्ति का परिचायक, सफलता की आधारभूमि व महान कुँजी है। किसी भी देश, राष्ट्र, समाज व मानव की सफलता सगठन पर ही आधारित है। किसी ने सच ही कहा हे। 'एक और एक ग्यारह'। जब दो व्यक्तियो मे ग्यारह की ताकत है तो समूचे देश राष्ट्र मिल कर कदम बढाएँ तो कहना ही क्या, उन्नति के शिखर पर पहुँचते देर ही क्या लगे।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समस्त गतिविधियो के सचालन मे अन्य की अपेक्षा रखता है, विना सहयोग के कार्य सिद्धि सम्भव नही। उमास्वाति रचित 'तत्वार्थ सूत्र' मे भी कहा है 'परस्परोपग्नहो जीवानाम्' प्राणी एक दूसरे के उपकार से उपकृत रहता है। यह सत्य तत्त्व इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अगो मे विभिन्न शक्तियाँ समाहित रहती हैं, किन्तु सभी अगो का समिश्रण कार्य को गति देता है—अतएव 'सघे शक्ति कलियुगे।'

इस प्रकार हवा के झौके से उडने वाले घासतृण जब हजारो की सख्या मे आबद्ध हो कर रस्से का रूप धारण करते हैं, तब उनमे पाषाण-शिलाओ को उठाने की भी शक्ति उद्भवित होती है, यह सगठन शक्ति का ही परिचायक है अतएव कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हम किसी भी क्षेत्र की उन्नति करना चाहे—देश, राष्ट्र, समाज, धर्म की उन्नति का मूलतत्त्व सगठन है। आज सगठित शक्ति का युग है। सगठित होना अति आवश्वक है। यह सभी धर्म उपदेष्टा व उपासक अनुभव करने लगे हैं, क्योकि युगानुरूप प्रवृत्ति रखने वाला ही प्रगति पथ पर बढता है। विचारात्मक प्रचार भी होने लगा है किन्तु विचार व आचार मे समानता होगी तभी प्रचार मे सफलता प्राप्त होगी। आज हमारे अनेक कार्य ऐसे हैं जो सगठन के अभाव मे सफल नही हो रहे हैं, जैसे—'महावीर जयन्ती'।

हम भले ही अनेक सम्प्रदाय व पथो मे विभक्त हो, धार्मिक क्रियाओ मे अन्तर हो, दिगम्बर व श्वेताम्बर के नाम से भेद हो, किन्तु भगवान महावीर स्वामी के परमपावन

चैत्र शुक्ला तेरस जन्मदिवस के सबध मे किसी मे भी कोई मतभेद नही। यह एक ही दिवस ऐसा है जिस दिन समस्त जैन समाज महावीर जन्ममहोत्सव मनाता है, इसके अलावा दूसरा ऐसा कोई पर्व नही। सभी मे कुछ न कुछ अन्तर पड ही जाता है। किन्तु, हम कितने शक्तिहीन व्यक्ति हैं।

भगवान महावीर स्वामी के जन्म दिवस की छुट्टी कराने मे भी समर्थ नही हो सके। अन्य सभी धर्मो के महापुरुषो के विशेष दिन की छुट्टी होती है जैसे कृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी, गणेश चतुर्थी, गाधी जयती, बुद्ध जयती आदि आदि। तब हमारे भगवान उन महापुरुषो की श्रेणी से कम नही हैं? वस्तुत महापुरुषो की पक्ति मे उच्च स्थान पाने वाले महावीर स्वामी ही हैं। किन्तु हमारी सगठन शक्ति के अभाव मे यह कार्य अधूरा है। किसी प्रान्त मे ही क्यो पर समस्त भारत मे नही, हम प्रयत्न करते है, किन्तु खड रूप मे, विभक्त रूप मे, सम्प्रदाय रूप मे, पथ रूप मे, किन्तु समन्वित शक्ति से हमने आज तक आवाज नही उठाई और उठाई भी हो जोर शोर से नही, यदि सगठित शक्ति से प्रबल पुकार करते तो अवश्य सफलता मिलती और अब भी प्रयत्न करे तो अवश्य मिले इसमे कोई शक नही है।

मैं अपने प्रवचन मे अनेक विषयो के साथ इन तीन पहलुओ पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हूँ—

(१) जैन जन-गणना—

यदि हमे जैन समाज को उन्नत, आदर्श एव गौरवान्वित देखना है तो सर्वप्रथम 'जैन जनगणना' अत्यन्त आवश्यक है, समस्त भारत निवासी जैन बधुओ की जनगणना करनी चाहिए क्योकि हमारे पास जनगणना का सही प्रमाण नही है। सरकार हमे बीस लाख मान कर चलती है जबकि हम पचास लाख से भी अधिक हैं।

(२) शिक्षा प्रचार—

भावी उन्नति के आधारभूत बालको को शिक्षा क्षेत्र को खूब आगे बढाना है। विश्व-विद्यालयो की शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षण भी देना है। इस ओर समाज का ध्यान आकर्षित भी हो रहा है, जिसके फलस्वरूप धार्मिक पाठशालाएँ भी चलती हैं तथा शिविर योजनाएँ भी प्रारम्भ हुई हैं। धार्मिक ज्ञान श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए सर्वोप्रिय साधन है।

(३) मध्यम वर्ग का उत्कर्ष—

मध्यम वर्गीय जैन बधुओ की ओर भी विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। उनके बच्चो के अध्ययन के लिए सामग्री प्रस्तुत करनी चाहिए। छात्रावास, गुरुकुलो की स्थापना करके

छोटे ग्रामो मे रहने वाले लडके लडकियो को अध्ययन कराने का अवसर प्रदान करना है। यदि हम पचास हजार श्रीमन्त परिवार पचास हजार मध्यमवर्गीय वधुओ को व्यापारिक क्षेत्र मे लगा कर सभाल ले तो सहज ही सामाजिक उन्नति हो सकती है। दस वर्ष मे देखेगे कि समाज कितना आगे बढ जाएगा। इस ओर उपेक्षा न करके विशेष ध्यान देना है क्योकि समाज उत्कर्ष से ही सर्व क्षेत्रो मे सर्वागीण उन्नति के दर्शन होगे। यह निसदेह सत्य है अतएव हम फिर से ध्यान दे कि सगठन शान्ति मे ही विजय है।

रे जिह्वे ? कुरु मर्यादा, भोजने वचने तथा।
वचने प्राणसन्देहो, भोजने चाजीर्णता ॥१॥

हे जीभ ! तू भोजन मे और बोलने मे मर्यादा कर। क्योकि वचन मे प्राण जाने का और खाने मे अजीर्ण होने का भय है।

•••

तुष्यन्ति भोजनैर्विप्रा, खला. परविपत्तिभिः।
साधव. परसम्पत्या, खलाः परिपत्तियः ॥२॥

ब्राह्मण भोजन से, मयूर मेघ गर्जन से, सज्जन दूसरो की सम्पत्ति से प्रसन्न होते हैं जबकि दुर्जन दूसरो की विपत्तियें देख कर प्रसन्न होते हैं।

आज के युग की पुकार

ले० मानचन्द भण्डारी

बधुओ ! उठो कार्य क्षेत्र मे कूद पडो और अपने धर्म के लिए, अपनी जाति के उद्धार के लिए, अपने देश के लिए अपने आपको कुरबान कर दो। लोग आपकी निंदा करे या प्रशसा सब पृथ्वी की तरह सहन करो। काम करते हुए काफी कष्ट सहन करने पडते हैं जिनकी परवाह न करो। देव मन्दिरो मे पूजा करने वाले पुजारी तैयार करो। श्रावक और श्राविकाओ के होने पर ही साधु-साध्वी, ज्ञान व देव मन्दिर, पोषधशाला आदि धर्म-क्षेत्रो की हस्ती रह सकती है। भारत के सारे जैन मिल कर कार्य करे तो कठिन से कठिन कार्य सुलभ होना असम्भव नही है किन्तु खेद इस बात का है कि आज गाँवो मे, शहरो मे सब जगह आपसी मतभेद इतने बढ गए हैं कि हम अपना निर्धारित कार्य करने मे सफल नही होते। जहाँ देखो वहाँ अशान्त वातावरण एक दूसरे की आलोचना करना या बुरा भला कहना यही हमारी दिनचर्या है। हममे सच्ची लग्न से कार्य करने की भावना होनी चाहिए। जो कार्य हमे सोपा जाय अपने घर के कार्य जैसा करना चाहिए। हमे नियमो के पालन मे ढिलाई नही करनी चाहिए और एक दूसरे के प्रति सद्‌भावना होनी चाहिए। यो हम निम्न पाठ हमेशा पढते हैं, किन्तु पालन कितना होता है इसकी हमे चिन्ता नही है।

खामेमीसव्वेजीवा, सव्वे जीवा खमसु,
मिति मे सव्व भूवेसु। वैरमझजन कैणई।

इस युग मे यदि हमने प्रेम नही बढाया, मिलकर कार्य नही किया और अपनी अपनी डफली अलग बजाई तो याद रखिए पूर्वजो का गौरव गमा बैठेंगे। जिन पूर्वजो ने हमारा गौरव बढाया, हमारी जाति को सर्वोपरि रखने का प्रयत्न किया, यदि हमने उस ओर ध्यान नही दिया तो हम सपूत नही कहलाएगे अत हमे सगठन मजबूत बनाना चाहिए और हर कार्य मे एकमत होकर आगे बढना चाहिए।

यदि युग के अनुसार हमने कार्य नही किया तो हम पिछड जाएँगे और हम किसी योग्य नही रहेगे। हमारे पूर्वजो मे सारे भारत की डोर अपने हाथ मे रखने की शक्ति थी किन्तु आपका स्थान आज कहाँ है ? जरा विचार कीजिए। राज्यसत्ता, व्यापार इत्यादि मे आप पिछड रहे हैं, यह क्यो ? इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

यदि हमने इस ओर ध्यान नही दिया तो हमारा भविष्य अन्धकारमय बन सकता है। अधिष्टायक देव सबको सद्‌बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।

वह कौनसा करतब है—जो हो नही सकता।
हिमत करे इन्सान तो, क्या हो नही सकता॥
मरना भला है उसका, जो अपने लिए जिए।
जीता है वह जो मर चुका, ससार के लिए॥

सामाइयपोसहसठियस्स, जीवस्स जाइ जो कालो।
सो सफलो वोधव्वो, सेसो ससारफलहेउ ॥१॥

सामायिक और पोषध मे जो समय जाता है वह सफल होता है बाकी का समय ससार बढाने का हेतु है।

•••

चौरो चौरापको मन्त्री, भेदज्ञ काणक क्रयी।
अन्नद स्थानदश्चैव, चौर सप्तविध. स्मृत ॥२॥

चोरी करने वाला, कराने वाला, ऐसी सलाह देने वाला भेद बताने वाला, चोरी का माल बताने वाला, बेचने वाला और चोर को अन्न और स्थान देने वाला सातो चोर की गिनती मे आते हैं।

शाकाहार का महत्व

लेo व्याख्याता अमृतलाल गाँधी, जोध

आधुनिक विश्व मे यह बात कितनी विडम्बना की है कि जहाँ न केवल जैन और बौद्ध धर्मो द्वारा ही नही अपितु, प्राय: सभी धर्मो द्वारा मासभक्षण की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मनाही की गई है तथापि विश्व की अधिकाश जनसख्या मासाहारी है न कि शाकाहारी । एक ओर बाईबिल, कुरान, महाभारत, मनुस्मृति, ग्रथसाहब आदि सभी धर्मो मे दया के सिद्धात का प्रतिवादन करते हुए हिंसा परित्याग करने की बात कही गई है परन्तु दूसरी ओर आज उनके ही अनुयायी अपने धर्म प्रवर्तको एव धार्मिक वाणियो को अनसुना कर मास-भक्षक के उपयोग को कम करने की दिशा मे कोई सक्रिय कदम नही उठा रहे हैं । इस्लाम के प्रवर्तक स्वय मोहम्मद साहेब के शब्दो मे 'सारे प्राणी एक अल्लाह के परिवार के सदस्य हैं अत जो किसी एक की हत्या करता है, वह सभी की हत्या करता है ।' मोहम्मद साहेब के भतीजे एव खलीफाअली का कथन कितना महत्वपूर्ण है 'मास-भक्षण द्वारा मनुष्य अपने पेट को पशुओ की कब्र बना देता है ।' इसी प्रकार का मत आधुनिक विश्व के महान्चिंतक जार्ज बर्नार्ड शा ने भी व्यक्त किया है जब वे मास-भक्षण से इस तर्क पर इन्कार करते हैं 'मैं अपने पेट को मरे हुए पशु की कब्र बनाना नही चाहता ।'

बाइबिल मे ईसामसीह, सेंटपीटर आदि ने भी मास-भक्षण एव मदिरा-पान की मनाही की है परन्तु आज यह बात कितनी दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन्ही के अनुयायी मास-भक्षण को अपना दैनिक आहार बनाए बैठे हैं । महाभारत मे भीष्मपितामह ने एक स्थान पर कहा है कि इस जीवन मे हम जिसका मासभक्षण करते हैं, अगले जन्म मे वे ही प्राणी हमारा मास-भक्षण करेंगे । इसी सबध मे महर्षि वेदव्यास का कथन है कि जो व्यक्ति शातिप्राप्त करना चाहता है उसे किसी भी सूरत मे मास भक्षण नही करना चाहिए । ग्रथ साहब के मतानुसार जो व्यक्ति मास मछली आदि खाता है तथा नशीली वस्तुओ का प्रयोग करता है वह अपने समस्त गुणो का नाश करता है ।

धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त कई आधुनिक विद्वानो एव ख्याति प्राप्त चिकित्सको का मत भी मास भक्षण के विरुद्ध है । जैन दर्शन के प्रकाड विद्वान श्री ऋषभदासजी स्वामी ने 'मूक पशुओ की आवाज' नामक अपनी अगरेजी पुस्तक Voice for the Voiceless मे इस

के अनेक मतो का सग्रह है तथा साथ ही उन्हे अनेक प्रकार के तर्क प्रस्तुत कर इस बात को प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि मानव का प्राकृतिक एव लाभकारी आहार शाकाहार है न कि मासाहार।

यह बात सर्व विदित है कि भारत की तपोभूमि मे प्राचीन ऋषि मुनि शाकाहार और फलाहार पर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे। भारतीय सस्कृति मे मासाहार का कोई स्थान नही है अपितु यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि प्राचीन वेद कालीन युग मे यहाँ के निवासी पूर्णतया शाकाहारी थे। तर्क की दृष्टि से यदि उस काल मे मानव मासाहारी होते तो उनके धार्मिक पर्वो एव त्योहारो मे मासाहार के उपयोग की बात अवश्य होती। परन्तु, हिन्दू धर्म के सभी पर्वों, त्योहारो, शुभ दिनो, उत्सवो आदि मे मासाहार का प्राय प्रतिबन्ध सा है। जैन और बौद्ध धर्म के मत तो इस सम्बन्ध मे स्पष्ट हैं ही अत हम अपने देश के बारे मे तो इस बात को निश्चित रूप से कह सकते हैं कि मासाहार भारत की इस महान पवित्र भूमि का आहार कदापि नही रहा है।

समाज शास्त्र की मान्यताओ के अनुसार मनुष्य की प्रारम्भिक अवस्था मे वह शिकारी होने के कारण प्राकृतिक फलो आदि के साथ मास-भक्षण भी करता था परन्तु बाद की कृषि अवस्था मे मनुष्य का जीवन अधिकाशत शाकाहारी बन गया। जैन दर्शन मे शास्त्र की मात्र बात यह है कि प्रारम्भिक अवस्था मे कृषि विद्या की जानकारी के पूर्व मनुष्य की आवश्यक ाओ की पूर्ति कल्पवृक्ष से होती थी परन्तु कालानुसार कल्पवृक्ष की हानि होने पर प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव भगवान ने जगत् को कृषि विद्या प्रदान की। परिणाम स्वरूप शाकाहार ही मनुष्य का आहार बना।

उक्त कथन से यह बात भली भाँति प्रमाणित हो जाती है कि शाकाहार सर्वथा और सर्वत्र मानवीय आहार है। शाकाहार ही मानव का आहार होना चाहिए इस बात को घोषित करने एव शाकाहार का महत्व समझाने के लक्ष्य से 'विश्व शाकाहार काग्रेस' नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था बडी तेजी से कार्य कर रही है। इसी काग्रेस का १९वाँ सम्मेलन भारत मे १८ नवम्बर से लेकर ६ दिसम्बर १९६७ तक हुआ जिसमे बौद्ध धर्म गुरु श्री दलाईलामा, पूज्य चित्र भानु महाराज, जगत्गुरु श्री शकराचार्य, पारसी धर्मगुरु, नामधारी सिख धर्मगुरु सत कृपाणसिंह, श्री राधास्वामी सम्प्रदाय के धर्माचार्य, कई विदेशी आहार शास्त्री एव शाकाहार जीवदया के प्रचारक, विचारको आदि ने इसी बात का पुनरोच्चार किया कि मानव शाकाहारी है और काग्रेस का लक्ष्य विश्व भर मे शाकाहार का एक चक्री साम्राज्य फैलाना है।

शाकाहार ही मनुष्य का भोजन क्यो होना चाहिए इस सम्बन्ध मे कई प्रकार के तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। जैन और बौद्ध धर्म को छोडकर प्राय अन्य सभी प्रमुख

शाकाहार का महत्व

ले० व्याख्याता अमृतलाल गांधी, जोध

आधुनिक विश्व मे यह बात कितनी विडम्बना की है कि जहा न केवल जैन और बौद्ध धर्मो द्वारा ही नही अपितु, प्राय सभी धर्मो द्वारा मासभक्षण की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मनाही की गई है तथापि विश्व की अधिकाश जनसख्या मासाहारी है न कि शाकाहारी। एक ओर बाईबिल, कुरान, महाभारत, मनुस्मृति, गुरुग्रन्थ आदि सभी धर्मो मे दया के सिद्धात का प्रतिपादन करते हुए हिसा परित्याग करने की बात कही गई है परन्तु दूसरी ओर आज उनके ही अनुयायी अपने धर्म प्रवर्तको एव धार्मिक वाणियो को अनसुना कर मास-भक्षक के उपयोग को कम करने की दिशा मे कोई सक्रिय कदम नही उठा रहे हैं। इस्लाम के प्रवर्तक स्वय मोहम्मद साहेब के शब्दो मे 'सारे प्राणी एक अल्लाह के परिवार के सदस्य हैं अत जो किसी एक की हत्या करता है, वह सभी की हत्या करता है।' मोहम्मद साहेब के भतीजे एव खलीफाअली का कथन कितना महत्वपूर्ण है 'मास-भक्षण द्वारा मनुष्य अपने पेट को पशुओ की कब्र बना देता है।' इसी प्रकार का मत आधुनिक विश्व के महान् चितक जार्ज बर्नार्ड शा ने भी व्यक्त किया है जब वे मास-भक्षण से इस तर्क पर इन्कार करते हैं 'मैं अपने पेट को मरे हुए पशु की कब्र बनाना नही चाहता।'

बाइबिल मे ईसामसीह, सेंटपीटर आदि ने भी मास-भक्षण एव मदिरा-पान की मनाही की है परन्तु आज यह बात कितनी दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन्ही के अनुयायी मास-भक्षण को अपना दैनिक आहार बनाए बैठे हैं। महाभारत मे भीष्मपितामह ने एक स्थान पर कहा है कि इस जीवन मे हम जिसका मासभक्षण करते हैं, अगले जन्म मे वे ही प्राणी हमारा मास-भक्षण करेगे। इसी सबध मे महर्षि वेदव्यास का कथन है कि जो व्यक्ति शातिप्राप्त करना चाहता है उसे किसी भी सूरत मे मास भक्षण नही करना चाहिए। ग्रथ साहब के मतानुसार जो व्यक्ति मास मछली आदि खाता है तथा नशीली वस्तुओ का प्रयोग करता है वह अपने समस्त गुणो का नाश करता है।

धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त कई आधुनिक विद्वानो एव ख्याति प्राप्त चिकित्सको का मत भी मास भक्षण के विरुद्ध है। जैन दर्शन के प्रकाड विद्वान श्री ऋषभदासजी स्वामी ने 'मूक पशुओ की आवाज' नामक अपनी अगरेजी पुस्तक Voice for the Voiceless मे इस

जीव की उत्पति रुक जाती है जो हिंसा के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। क्या किसी जीव के अडे चुटाने पर उसे उस पीडा का अनुभव नही होता जो एक स्त्री को उसकी गोद मे से उसका बालक छीनने पर होता है ? क्या सभी प्रकार से अपने आपको बुद्धिमान कहने वाले मानव द्वारा असहाय पशु पक्षियो पर इस प्रकार का अत्याचार करने का अधिकार उचित कहा जायेगा। कदापि नही।

पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार मनुष्य बदर का पल्लवित रूप है और अपनी शारीरिक बनावट आदि मे वह उससे सबसे अधिक मिलता है। इसके आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य और पशु मे अधिक अन्तर नही है। परन्तु, इस स्थान पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि बदर मासाहारी नही है। तब फिर क्या कारण है कि बदर से प्रगति करने पर मानव अपने आहार मे प्रगति करने के स्थान पर प्रतिगामी रहे।

यह बात हर किसी को स्वीकार करनी पडेगी कि शाकाहार सात्विक आहार है जबकि मासाहार हेतु मनुष्य को क्रूर बन कर हिंसा करनी पडती है। दत चिकित्सको का मत है कि मास खाने वालो मे दाँतो की बीमारी पायोरिया प्राय अधिक होता है। यह तथ्य भी इस बात की पुष्टि करता है कि मनुष्य का प्राकृतिक आहार शाकाहार ही है। मासाहारी भोजन मनुष्य मे अनेक प्रकार की बुराइयाँ भी पैदा करता है जिसके सबध मे बडे बडे व्यक्तियो के विचार स्पष्ट हैं। रूस के दार्शनिक टॉलस्टॉय से मतानुसार "मासाहार मस्तिष्क मे दूषित विचार पैदा करता है इस कारण यह अच्छे जीवन के लिए उपयुक्त नही है। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के शब्दो मे "मैं उन व्यक्तियो मे से हूँ जो यह मानता है कि मनुष्य के लिए स्वास्थ्य वर्द्धक और प्राकृतिक भोजन साग-सब्जी, फल और कृषि उपज है तथा मासाहार की अपेक्षा शाकाहार सादा जीवन और उच्च विचार के के लिए अधिक उपयुक्त है।"

स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे, "मासाहार असभ्यता का प्रतीक है। धार्मिक जीवन हेतु तो शाकाहार ही विशुद्ध आहार है।" हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी तो कहते थे कि मासाहार करने की अपेक्षा तो मैं मरना पसद करूँगा।

स्वमी ऋषभदासजी ने अपनी पुस्तक "मूक पशुओ की आवाज" मे पृष्ठ ६३ पर मासाहार की अपेक्षा स्वास्थ्य हेतु शाकाहार अधिक लाभप्रद बताया है। इस बात की पुष्टि मे कुछ तथ्य और आँकडे प्रस्तुत किए हैं, जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं। लदन शाकाहारी समाज की मत्री श्रीमती निकोलमन ने दस हजार विद्यार्थियो को शाकाहारी आहार पर रखा तथा दूसरी ओर लदन की कन्ट्री कौसिल ने उतने ही विद्यार्थियो को मासाहारी आहार पर रखा। छ महीने बाद दोनो ओर के बच्चो की डॉक्टरी जाँच से

धर्म सृष्टि के कर्त्ता के रूप मे ईश्वर को मानते है और उनके मतानुसार ईश्वर ही मनुष्य और पशु सबको पैदा करने वाला है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य को क्या अधिकार है कि वह ईश्वर के द्वारा उत्पन्न पशुओ का सहार अपने स्वादिष्ट भोजन हेतु करे। पडित मदन-मोहन मालवीयजी कहा करते थे कि 'यदि मनुष्य मे किसी को जीवन देने की शक्ति नही है तो फिर उसे क्या अधिकार है कि वह अपने पशुबन्धुओ का जीवन ले ले। ससार मे पशु मानव के निकटतम पडौसी है, अपितु मनुष्य के लिए विविध प्रकार से लाभदायी है। ऐसी स्थिति मे बुद्धिमान मानव इतना अधम कैसे बन जाता है कि अपने उपयोगी पशुओ का वध करने मे नही हिचकिचाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एव 'जीओ और जीने दो' के सिद्धात हमारी सस्कृति के बहुमूल्य सिद्धात है जिनका अभिप्राय अप्रत्यक्ष रूप मे 'अहिसा परमो धर्म' का सिद्धात होता है जिसका प्रतिपादन मुख्य रूप से जैन और बौद्ध धर्म ने किया है तथा आधुनिक विश्व मे पूज्य महात्मा गाँधी द्वारा भी किया गया।

कुछ लोगो का यह तर्क है कि मासाहार मे शाकाहार की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तत्व विटामिन आदि है परन्तु यह तर्क तथ्यो की दृष्टि से गलत प्रमाणित हो चुका है। चिकित्सा शास्त्रियो के मतानुसार मासाहार की अपेक्षा दूध कई गुणा अधिक पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्द्धक है। फल और हरी सब्जियो मे भी मासाहार से कम पौष्टिक तत्व नही है। कृषि की अन्य उपजो मे भी अनेको प्रकार के विटामिन मौजूद है। ऐसी स्थिति मे शाकाहार, फलाहार आदि हमारे लिए अच्छे किस्म की पौष्टिक खुराक के रूप मे उपलब्ध है जो मासाहार की अपेक्षा सभी प्रकार से अधिक स्वच्छ एवन् आकर्षक भी है। तब फिर उनको छोडकर मासाहार की ओर लुभाने की प्रवृत्ति ठीक वैसी ही है जैसी गगा के पवित्र जल को छोडकर गड्ढे का गन्दा पानी पीने की इच्छा करना।

कुछ लोग यह भी तर्क प्रस्तुत करते है कि दूध भी पशुओ के शरीर से निकलने के कारण उनके रक्त की तरह है। परन्तु यह तर्क सर्वथा अनुपयुक्त है। पशुओ का रक्त बहाने मे उन्हे घोर कष्ट होता है जबकि उनका दूध निकालने मे उन्हे सामान्य कष्ट का ही अनुभव होता है। इतना ही नही, दूध पशुओ के शरीर मे सामान्य रूप से बनता रहता रहता है जिन्हे समय पर उनके उदर से बाहर नही निकालने पर स्वय पशुओ को अधिक कष्ट अनुभव होता है। ऐसी स्थिति मे दूध की तुलना रक्त से करना कदापि उचित नही कहा जा सकता।

इसी प्रकार का तर्क कुछ व्यक्ति अडो के सम्बन्ध मे भी प्रस्तुत करते है कि उनमे प्राण नही होने से वे मासाहार मे सम्मिलित नही किए जाने चाहिए। परन्तु इस प्रकार का तर्क प्रस्तुत करने वाले इस बात को भूल जाते है कि प्राकृतिक प्रक्रिया से प्रत्येक अडे मे मनुष्य की तरह ही जीव की उत्पति होती है ऐसी स्थिति मे अडे खा जाने से

जीव की उत्पति रुक जाती है जो हिंसा के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है । क्या किसी जीव के अडे चुटाने पर उसे उस पीडा का अनुभव नही होता जो एक स्त्री को उसकी गोद मे से उसका बालक छीनने पर होता है ? क्या सभी प्रकार से अपने आपको बुद्धिमान कहने वाले मानव द्वारा असहाय पशु पक्षियो पर इस प्रकार का अत्याचार करने का अधिकार उचित कहा जायेगा । कदापि नही ।

पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार मनुष्य बदर का पल्लवित रूप है और अपनी शारीरिक बनावट आदि मे वह उससे सबसे अधिक मिलता है । इसके आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य और पशु मे अधिक अन्तर नही है । परन्तु, इस स्थान पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि बदर मासाहारी नही है । तब फिर क्या कारण है कि बदर से प्रगति करने पर मानव अपने आहार मे प्रगति करने के स्थान पर प्रतिगामी रहे ।

यह बात हर किसी को स्वीकार करनी पडेगी कि शाकाहार सात्विक आहार है जबकि मासाहार हेतु मनुष्य को क्रूर बन कर हिंसा करनी पडती है । दत चिकित्सको का मत है कि मास खाने वालो मे दाँतो की बीमारी पायोरिया प्राय अधिक होता है । यह तथ्य भी इस बात की पुष्टि करता है कि मनुष्य का प्राकृतिक आहार शाकाहार ही है । मासाहारी भोजन मनुष्य मे अनेक प्रकार की बुराइयाँ भी पैदा करता है जिसके सबध मे बडे बडे व्यक्तियो के विचार स्पष्ट हैं । रूस के दार्शनिक टॉलस्टॉय से मतानुसार "मासाहार मस्तिष्क मे दूषित विचार पैदा करता है इस कारण यह अच्छे जीवन के लिए उपयुक्त नही है । डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के शब्दो मे "मैं उन व्यक्तियों मे से हूँ जो यह मानता है कि मनुष्य के लिए स्वास्थ्य वर्द्धक और प्राकृतिक भोजन साग-सब्जी, फल और कृषि उपज है तथा मासाहार की अपेक्षा शाकाहार सादा जीवन और उच्च विचार के के लिए अधिक उपयुक्त है ।"

स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे, "मासाहार असभ्यता का प्रतीक है । धार्मिक जीवन हेतु तो शाकाहार ही विशुद्ध आहार है ।" हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी तो कहते थे कि मासाहार करने की अपेक्षा तो मैं मरना पसद करूँगा ।

स्वमी ऋषभदासजी ने अपनी पुस्तक "मूक पशुओ की आवाज" मे पृष्ठ ६३ पर मासाहार की अपेक्षा स्वास्थ्य हेतु शाकाहार अधिक लाभप्रद बताया है । इस बात की पुष्टि मे कुछ तथ्य और आँकडे प्रस्तुत किए हैं, जिनमे से कुछ इस प्रकार है । लदन शाकाहारी समाज की मत्री श्रीमती निकोलमन ने दस हजार विद्यार्थियो को शाकाहारी आहार पर रखा तथा दूसरी ओर लदन की कन्ट्री कौसिल ने उतने ही विद्यार्थियो को मासाहारी आहार पर रखा । छ महीने बाद दोनो ओर के बच्चो की डॉक्टरी जाँच से

यह बात सिद्ध हुई कि शाकाहारी आहार पर पले हुए बच्चे अधिक स्वस्थ थे। न्यूयोर्क शहर के पास अलबानी ग्राम मे एक अनाथालय मे ६०-६५ बच्चो मे से औसतन ५-६ बच्चे प्रतिदिन बीमार रहते थे। परन्तु, जब उनके भोजन मे से मास और मछली का प्रयोग बन्द कर दिया गया तो बच्चो की बीमारी की शिकायत बद हो गई।

जैसा मैंने पहले भी लिखा है कि स्वामीजी ने अपनी पुस्तक मे मासाहार के विरुद्ध कई अन्य तथ्य एव विद्वानो के मत भी व्यक्त किए है। स्वामीजी लिखते हैं कि प्रसिद्ध भारतीय पहलवान प्रो० राममूर्ति शाकाहारी था, न कि मासाहारी। न्यू यार्क टाइम्स के सम्पादक श्री होरेस ग्रेली के मतानुसार "मासाहार छोडने से मनुष्य अपने जीवन मे दस वर्ष अधिक जी सकता है।" डॉ० राधाकृष्णन लिखते हैं, "मै अपने जीवन मे अब तक शाकाहारी रहा हूँ और शेष वर्षों मे मुझमे कोई परिवर्तन होने वाला नही है।"

अत, हमे यह बात स्वीकार करनी पडेगी कि न केवल धार्मिक अपितु नैतिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक बल्कि तार्किक, मनोवैज्ञानिक एव चिकित्सा शास्त्रो के आधारो पर मनुष्य के लिए उपयुक्त और उपयोगी आहार शाकाहार और फलाहार है न कि मासाहार।

जह जह दोसोवरमो, जह जह विसएसु होइ वेरग्ग।
तह तह विन्नायव्व, आसन्न से य परमपय ॥५॥

जैसे जैसे दोष दूर हो जाते हैं और विषयो पर वैराग होता जाता है तो समझ लेना चाहिए कि मोक्ष समीप आ रहा है।

धर्म और विज्ञान

ले० श्री रिखबराज मुणोयत जैन, जोधपुर

आज जीते सब लोग हैं पर जीना बहुत कम लोग जानते हैं। जीना एक कला है। जीने का भी एक विज्ञान है। जीने की कला जानने के लिए विज्ञान के साथ धर्म का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

विज्ञान एक छुरी की तरह है। छुरी से हम चाहे तो कलम छील सकते हैं और चाहे तो किसी की हत्या भी कर सकते हैं। यह हुआ छुरी का समझ बूझ कर उपयोग। उसका एक उपयोग और भी होता है जो अज्ञान वश होता है। किसी अज्ञानी बालक को छुरी मिल जाय तो वह उसे मुँह मे डालकर मुँह खून से सरोबोर भी कर लेगा।

आचार्य विनोबा भावे कहा करते हैं—विज्ञान+हिंसा – सर्वनाश
विज्ञान + अहिंसा = सर्वोदय

आज के विज्ञान का नाता हिंसा से जुडा है। फलस्वरूप एटम और हाइड्रोजन बमो ने दुनिया को सर्वनाश के कगार पर ला खडा किया है। यदि दुनिया को सर्वनाश से बचना है तो अब विज्ञान का नाता अहिंसा से जोडना होगा।

मैं विज्ञान का विद्यार्थी नही हूँ इसलिए विज्ञान की बडी बातो मे नही जाकर जीवन, विज्ञान और धर्म की चर्चा ही करूँगा।

धर्म उपवास और विज्ञान—

दुनिया के हर धर्म ने उपवास का महत्व माना है पर जैन लोगो ने इसके विशेष महत्व को माना है। स्वस्थ रहने के लिए उपवास जरूरी है। हर मशीन को आराम चाहिए। पेट की मशीन को भी आराम की आवश्यकता है। यह आराम उपवास से मिलता है। इसका धर्म के साथ गठबन्धन कर दिया गया है ताकि जो लोग स्वास्थ्य के बारे मे जागरूक न हो वे भी धार्मिक श्रद्धा के कारण उपवास करें और स्वास्थ्य लाभ तो उसमे से अपने आप मिलने ही वाला है। यह तो हुआ धर्म और उपवास का नाता। अब जरा गौर से देखिए तो आप पाएँगे कि दीपावली से होली के बीच तक बहुत कम उपवास का विधान है। होली से आसाढ तक गर्मी मे भी कम ही उपवास आते हैं। सावन से दीपावली तक वर्षा ऋतु मे उपवासो की भरमार रहती है। क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा विधान क्यो किया गया है। क्या ऐसा विधान सयोगवश हुआ है। नही मित्रो, यह विधान विवेक पूर्वक, सूझ-बूझ

के साथ, जान-बूझ कर विज्ञान के आधार पर किया गया है। र्सादियो मे जठराग्नि तेज रहती है इसलिए अधिक भूखा नही रहना चाहिए इसलिए र्सादियो मे उपवास का विधान नही है। गर्मियो मे अधिक भूखे रहने से आतरिक गर्मी बढकर हानि होने की सम्भावना रहती है। केवल बरसात की मौसम ही ऐसी होती है जिसमे जठराग्नि मद होने से उपवास आवश्यक होते है। यह है उपवास का वैज्ञानिक आधार।

रात्रि-भोजन निषेद्ध याने रात्रि सौगन्ध और चौविहार—

स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार मनुष्य को खाली पेट सोना चाहिए तभी गहरी नींद आती है। रात्रि मे जल्दी सोना और सवेरे जल्दी उठना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। विज्ञान और जीवन कला है। भोजन पचने मे लगभग पाँच घण्टे लगते है। सोने के समय से भोजन पाँच घण्टे पूर्व करना चाहिए याने जल्दी सोना है तो उससे पाच घण्टे पूर्व भोजन करना है, इसमे रात्रि सौगन्ध अपने आप आ जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन की दृष्टि से भी चौविहार अत्यन्त आवश्यक है। स्वप्नदोष आदि बीमारियो चौविहार व्रत-पालन से बिना दवा के जितना लाभ होते देखा है उतना लाभ कई बार अच्छी दवाइयो से भी नही होता।

मलेरिया बुखार और धनिया—

कृष्ण जन्माष्टमी और भगवान महावीर के जन्म दिवस भादवा मास मे आते हैं। भादवा मास मलेरिया बुखार का मशहूर मौसम होता है। इन दोनो महापुरुषो के जन्म दिन के अवसर पर धनिया की पजेरी का प्रसाद बाँटते देख मेरे मन मे सहज जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि महावीर और कृष्ण के जन्म दिवस के साथ पजेरी बाँटने का रिवाज कैसे बना। आज किसी घर मे पुत्रजन्म होता है तो लड्डू बाँटे जाते हैं, पजेरी नही। क्या उस जमाने मे लड्डुओ का आविष्कार नही हुआ था जो पजेरी बाँटी जाती थी। वह युग विज्ञान मे आज से पीछे तो नही था। जैन धर्म मे अणु और परमाणु का जिक्र आज से हजारो वर्ष पहले आ चुका है। हाँ अलबत्ता फर्क यह था कि उस समय विज्ञान का नाता अहिसा से जुडा हुआ था। जब कि आज नाता हिसा से जुडा हुआ है। इसका प्रमाण श्रीकापरडाजी तीर्थ का मन्दिर और अन्य हजारो इमारते हैं जो इस देश मे बनी हुई मौजूद हैं। कापरडाजी तीर्थ के मन्दिर की चोथे मजिल की नाले जो एक पत्थर मे खुदी हुई हैं वे किन मशीनो के सहारे इतनी ऊपर चढाई गई होगी जरा सोचिए तो समझ मे आ जायगा। विज्ञान मे हम उस समय भी आज से पीछे नही थे। रूस व अमेरिका के वैज्ञानिक आज चाँद तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं। चाँद तक मनुष्य पहले कभी पहुँचाया नही मगल चन्द्र आदि ग्रहो का बहुत कुछ ज्ञान हमारे पुराने धर्मग्रथो मे मिलता है। हाँ इतनी बात मैं मान

लेता हूँ कि वह सर्वोदय का विज्ञान था जब कि आज की वैज्ञानिक प्रगति सर्वनाश दिशा वाली है। हाँ, तो जो जिज्ञासा मेरे मन मे उत्पन्न हुई थी कि कृष्ण और महावीर के जन्म दिवस का पजेरी के साथ क्या सम्बन्ध ? इसका उत्तर मुझे एक आयुर्वेद की पुस्तक मे मिला। उसमे लिखा था, धनिया मलेरिया बुखार की सबसे बढिया अवरोधक औषध है। इसका सेवन भादवा मास मे आवश्यक है क्योकि मलेरिया का वही मौसम होता है, उसका धर्म याने भगवान महावीर और कृष्ण के जन्म उत्सव से नाता जोड दिया। यह पुरातन वैज्ञानिको और धर्माचारियों की अद्भुत कौशल का प्रतीक है।

इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र मे आप गहराई से देखेगे तो पाएँगे कि जीवन, विज्ञान, धर्म और स्वास्थ्य विज्ञान का ऐसा सुन्दर तालमेल बिठा दिया गया है कि सारी बातो का विवेकपूर्वक समझकर पालन करने का प्रयत्न होते हुए जितनी बाते उस प्रकार समझकर कर सके उतनी समझकर पालन करे, शेष बातो को श्रद्धापूर्वक मानकर चलेगे तो जीने की कला सीख सकेगे। ऐसी मेरी मान्यता है।

जीवन्तु मे शत्रुगणाश्च सर्वे येषा प्रतापेन विचक्षणोऽहम्।
यदा यदाऽहं विकृतिं भजामि, तदा तदा माप्रतिबोधयन्ति ॥

मेरे शत्रुओ की सारी समुदाय जीवित रहे जिनके कारण मै सावधान रहसकू। जब जब मे उल्टे रास्ते जाता हूँ तब तब वे मुझे शिक्षा देते हैं।

धर्म का फल हमें क्यों नहीं मिलता है ?

ले० अशोक भण्डारी, जयपुर

आज के युग मे हम देखते हैं कि कई लोग परमात्मा का स्मरण पूजन करते हैं, दान देते हैं, व्रत, तप, जप करते हैं, परोपकारमय जीवन विताते हैं मगर हमारे मन मे शान्ति नही है। अनेक विचार आते रहते हैं, व्याधि कम होने के वजाय वढती जाती है, तृष्णा भी दिन दूनी और रात चौगुनी होती है। मानसिक वृत्ति का सुधार नही होता और व्यवहार भी सुखपूर्वक चलाने के वदले वडी कठिनता से चला सकते हैं। यदि धर्म का फल मिलता तो फिर वह हमे मिलता क्यो नही है ?

हम तो धर्मात्मा को दुखी और पापी को सुखी ही देखते हैं। इसका कारण क्या है ? ज्ञानी कहते हैं कि धर्मी को दुख पापी को सुख मिलना असभव है। आप धर्मात्मा तथा पापात्मा की परीक्षा करने मे भूल करते हैं। प्रश्न यह है कि आप धर्म क्यो करते हैं ? सभवत इसीलिए कि व्याज सहित फल मिले। मगर पाप करते हैं उसका फल भोगते घबराते हैं। वैसे तो आप उन्हे धर्मात्मा कहते हैं मगर वे वास्तव मे धर्मात्मा नही हैं। एक तरफ धर्म के नाम पर एक मन वोझा कम करते हो, दूसरी तरफ पाप करके दस मन वोझा वढा लेते हो, फिर आप कहते हैं कि हमारा भार हलका नही हुआ। आश्चर्य है एक आदमी किसी तालाब को खाली करना चाहता है। तालाव मे से एक तरफ से दो मन पानी निकल जाता है और दूसरी तरफ से २० मन जमा कर लेता है। वताओ क्या वह तालाव खाली हो जायगा ? वस्तुत उसमे इतना पानी वढेगा कि वह तालाव को ही नही वल्कि उसके आस पास के वृक्ष, मकान आदि को भी ध्वस कर देगा। आपके जीवन की भी यही दशा है। फिर बताओ कि आप धर्म का फल सुख कैसे प्राप्त कर सकते हैं। मैं कहता हू अवसर पर मनुष्य थोडा बहुत धर्म तो करते हैं पर साथ ही उपर्युक्त प्रकार के पाप करते जाते हैं इसलिए उन्हे धर्म का फल जैसा चाहिए वैसा नही मिलता।

कुम्भ का रहस्य

ले० हिन्दी अनुवादक, प्रतापचंद आर शाह, गोंडली

अष्ट मंगल में कुम्भ एक मंगल माना गया है —'मां गालयति पापात् इति मंगलम्।' व्युत्पत्ति से मंगल पाप के विघ्नों को नष्ट करता है, ऐसा अर्थ प्रगट होता है, मनुष्य अपने कार्यों को सिद्ध करने के लिए छोटे-बड़े बहुत से कार्यों के प्रारम्भ में मंगल करता है। मंगल के द्रव्य और भाव दो प्रकार हैं। उनमें द्रव्य मंगल, भाव मंगल को प्राप्त कराकर परम्परा से आत्मा का आध्यात्मिक-धन तक सुख प्राप्त कराता है, उसकी प्राप्ति में रुकावट करने वाले विघ्नों को दूर करने की मंगल में ताकत होती है।

द्रव्य मंगलों में कुम्भ का प्राधान्य है, वह कुम्भ खाली नहीं परन्तु पूर्ण भरा हुआ हो जब मंगल रूप माना जाता है अर्थात् जल से या दही से भरा हुआ कुम्भ मंगलकारक माना जाता है। उसमें भी ऐसा भेद है कि लोकोत्तर हित के धार्मिक कार्यों में जल कुम्भ को और लौकिक हित के कार्यों में दधि कुम्भ को महत्व दिया जाता है, यह भेद जल और दधि में रही हुई दो मंगलकारकता के कारणों से है। दूध, घी कीमती होने पर भी मंगल भूत माना नहीं जाता। घी या दूध से भरा हुआ पात्र सन्मुख मिले तो भी अपशकुन माना है और जल या दही से भरा पात्र सामने मिले तो शुभ शकुन माना गया है। वैसे ही कुम्भ स्थापना में भी जल कुम्भ और दधि कुम्भ मंगलमय माना गया है।

शब्द शास्त्र में घट, कुट, कुम्भ, करीर कलश, वगैरह शब्दों को एकार्थक कहा हुआ है और व्युत्पत्तिजन्य अर्थ भिन्न भिन्न रीति से करके शब्द सिद्धि करने पर भी सामान्य अर्थ एक या दूसरी अपेक्षा से लोकोपकारकता है। कुम्भ शब्द की सिद्धि 'कुं पृथ्वी उम्भति पूरयती ति कुम्भः' ऐसे किया है। अर्थात पृथ्वी को (पृथ्वीगत प्राणी वर्ग को) पूर्ण तृप्त) करता है इसलिए उसे कुम्भ कहा जाता है।

ये कुम्भ और उसमें भरने के जल, दही, जितने न्याय और विधिपूर्वक प्राप्त किए जायँ और जितने पवित्र स्थान से लिए जाएँ और जितने पवित्र हो, स्थापित करने के समय शुभ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के योग मिलाए जाएँ स्थापना करने वाला, कराने वाला के मन वचन काया के योग जितने पवित्र हो एवं अभारीपूर्वक महोत्सव से अन्य जीवो को भी जितनी ज्यादा प्रसन्नता प्रगट की हो, इतना ज्यादा लाभ होता है, विघ्नो को अवश्य नष्ट करते हैं।

धर्म का फल हमें क्यों नहीं मिलता है ?

ले० अशोक भण्डारी, जयपुर

आज के युग मे हम देखते हैं कि कई लोग परमात्मा का स्मरण पूजन करते हैं, दान देते हैं, व्रत, तप, जप करते हैं, परोपकारमय जीवन विताते है मगर हमारे मन मे शान्ति नही है। अनेक विचार आते रहते हैं, व्याधि कम होने के वजाय वढती जाती है, तृष्णा भी दिन दूनी और रात चौगुनी होती है। मानसिक वृत्ति का सुधार नही होता और व्यवहार भी सुखपूर्वक चलाने के बदले वडी कठिनता से चला सकते है। यदि धर्म का फल मिलता तो फिर वह हमे मिलता क्यो नही है ?

हम तो धर्मात्मा को दु खी और पापी को सुखी ही देखते है। इसका कारण क्या है ? ज्ञानी कहते हैं कि धर्मी को दु ख पापी को सुख मिलना असभव है। आप धर्मात्मा तथा पापात्मा की परीक्षा करने मे भूल करते हैं। प्रश्न यह है कि आप धर्म क्यो करते हैं ? सभवत इसीलिए कि ब्याज सहित फल मिले। मगर पाप करते हैं उसका फल भोगते घबराते हैं। वैसे तो आप उन्हे धर्मात्मा कहते हैं मगर वे वास्तव मे धर्मात्मा नही हैं। एक तरफ धर्म के नाम पर एक मन बोझा कम करते हो, दूसरी तरफ पाप करके दस मन बोझा बढा लेते हो, फिर आप कहते हैं कि हमारा भार हल्का नही हुआ। आश्चर्य है एक आदमी किसी तालाब को खाली करना चाहता है। तालाब मे से एक तरफ से दो मन पानी निकल जाता है और दूसरी तरफ से २० मन जमा कर लेता है। बताओ क्या वह तालाब खाली हो जायगा ? वस्तुत उसमे इतना पानी बढेगा कि वह तालाब को ही नही बल्कि उसके आस पास के वृक्ष, मकान आदि को भी ध्वस कर देगा। आपके जीवन की भी यही दशा है। फिर बताओ कि आप धर्म का फल सुख कैसे प्राप्त कर सकते हैं। मैं कहता हू अवसर पर मनुष्य थोडा बहुत धर्म तो करते है पर साथ ही उपयुक्त प्रकार के पाप करते जाते हैं इसलिए उन्हे धर्म का फल जैसा चाहिए वैसा नही मिलता।

कुम्भ का रहस्य

ले० हिन्दी अनुवादक, प्रतापचद आर शाह, गोहीली

अष्ट मगल मे कुम्भ एक मगल माना गया है—'मागलक्षति पापान् इति मगलम् ।' व्युत्पत्ति से मगल पाप के विघ्नो को नष्ट करता है, ऐसा अर्थ प्रगट होता है, मनुष्य अपने कार्यों को सिद्ध करने के लिए छोटे-बडे बहुत मे कार्यों के प्रारम्भ मे मगल करता है। मगल के द्रव्य और भाव दो प्रकार है। उनमे द्रव्य मगल, भाव मगल को प्राप्त कराकर परपरा से आत्मा का अध्यात्मिक-धन तक सुख प्राप्त कराता है, उसकी प्राप्ति मे रुकावट करने वाले विघ्नो को दूर करने की मगल मे ताकत होती है।

द्रव्य मगलो मे कुम्भ का प्राधान्य है, वह कुम्भ खाली नही परन्तु पूर्ण भरा हुआ हो जब मगल रूप माना जाता है अर्थात् जल से या दही से भरा हुआ कुम्भ मगलकारक माना जाता है। उसमे भी ऐसा भेद है कि लोकोत्तर हित के धार्मिक कार्यों मे जल कुम्भ को और लौकिक हित के कार्यों मे दधि कुम्भ को महत्व दिया जाता है, यह भेद जल और दधि मे रही हुई वो मगलकारकता के कारणो से है। दूध, घी कीमती होने पर भी मगल भूत माना नही जाता। घी या दूध से भरा हुआ पात्र सन्मुख मिले तो भी अपशकुन माना है और जल या दही से भरा पात्र सामने मिले तो शुभ शकुन माना गया है। वैसे ही कुम्भ स्थापना मे भी जल कुम्भ और दधि कुम्भ मगलमय माना गया है।

शब्द शास्त्र मे घट, कुट, कुम्भ, करीर कलश, वगैरह शब्दो को एकार्थक कहा हुआ है और व्युत्पत्तिजन्य अर्थ भिन्न भिन्न रीति से करके शब्द सिद्धि करने पर भी सामान्य अर्थ एक या दूसरी अपेक्षा से लोकोपकारकता है। कुम्भ शब्द की सिद्धि 'कु पृथ्वी उम्मति पूरयती ति कुम्भ' ऐसे किया है। अर्थात पृथ्वी को (पृथ्वीगत प्राणी वर्ग को) पूर्ण तृप्त) करता है इसलिए उसे कुम्भ कहा जाता है।

ये कुम्भ और उसमे भरने के जल, दही, जितने न्याय और विधिपूर्वक प्राप्त किए जायँ और जितने पवित्र स्थान से लिए जाएँ और जितने पवित्र हो, स्थापित करने के समय शुभ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के योग मिलाए जाएँ स्थापना करने वाला, कराने वाला के मन वचन काया के योग जितने पवित्र हो एव अभारीपूर्वक महोत्सव से अन्य जीवो को भी जितनी ज्यादा प्रसन्नता प्रगट की हो, इतना ज्यादा लाभ होता है, विघ्नो को अवश्य नष्ट करते हैं।

जैन और अजैन शास्त्रो मे ये कुम्भ की मगलता सबधी एक वाक्यता दिखने मे आती है। इस पर से ये मानना पडता है कि जीवो के कल्याण के साथ कुम्भ का घनिष्ठ सबध होना चाहिए। इस विषय मे विचार करने पर आर्य आचारो की जो परम्परा से अध्यात्म बल प्रगटा कर आत्मा को यावत् मुक्ति तक पहुँचाते हैं वह आचारो मे कुम्भ स्थापन बहुत प्रसगो मे नजर आता है जैसे कि घर बनवाने के प्रारम्भ रूप शिला स्थापन करने से प्रथम योग्य मुहूर्त मे अपनी-अपनी रीति से मन्त्रोच्चारादि विधि करने के साथ दधिकुम्भ (दही, भरी हुई मिट्टी की या ताम्र की कुलडी) स्थापित की जाती है और वो चिरकाल तक सुरक्षित रहने के लिए नीचे ऊपर और चारो दिशा मे ईंटे चुनकर पाया उस पर चुना जाता है।

घर का धरातल उसमे रहने वालो का कुशल करे उस आशय से यह शिला-रोपण के समय किया जाने वाला कुम्भ स्थापन धरातल की सीमा तक मगलकारक माना गया है। उसके बाद घर की मजिल बढाना हो तब उसके लिए खभ लगाने के समय खभ के नीचे पत्थर की कुम्भियो की स्थापना होती है। शिल्पशास्त्र के नियमानुसार तल-घर के लिए होने वाला शिला-रोपण और कुंभी की स्थापना की विधि शुभमुहूर्त मे महोत्सवपूर्वक आनन्दमय वातावरण मे होनी चाहिए ऐसा विधान है, और आज भी यह प्रथा कितने ही अशो मे पालन होती है। इतना ही नही द्वार जो कि घर का मुख्य और कल्याणप्रद अग है उसे खडा करने के लिए पहले द्वारशाख के नीचे कुम्भ के आकार वाली पत्थर की कुम्भियाँ स्थापित की जाती हैं, वे शुभमुहूर्त मे महोत्सवपूर्वक शुभ वातावरण मे स्थापित की जाती हैं, दूसरी-तीसरी मजिल के स्थभो की कुम्भियो के बारे मे विकल्प देखने मे आता है यानी कोई कोई घर मे ऊपर की मजिल के खभो के नीचे कुम्भी होती है कही पर नही भी रहती, फिर भी ऊपर की मजिल की स्तम्भ कुम्भियो को स्थापित करने के समय मुहूर्त महोत्सववादी देखने मे नही आता, इसका कारण यह है कि उन स्तम्भो के नीचे के पहली मजिल के स्तम्भो के ऊपर ही लगाये जाते हैं और पहले मजिल की आबादी तक उनकी भी आबादी रहती है, ऐसे प्रथम मजिल की स्तभ कुँभियो की मगल क्रिया के साथ उनका सम्बन्ध होने से ऊपर के मजिलो मे स्तभ कुँभियो की आवश्यकता या स्थापन पर भी उनको कम महत्व दिया जाता है। हालाँ कि आधुनिक युग मे नई पद्धति से बनाए जाने वाले मकानो मे इन कुँभियो का लोप होता जा रहा है। परन्तु शिल्प शास्त्र या ज्योतिष आदि अष्टाग निमित्त शास्त्र जितना ही महत्व का है उनके नियमानुसार बाधे जाने वाले, बाँधे हुए घरो, मकानो मदिरो वगैरह मे ये विधि देखी जाती है। उसमे यह आशय समझ मे आता है कि मकानो के बाध कार्य मे होने वाली कुंभ स्थापन की विधि व मकान और मकान मे निवास करने वालो के कल्याण का कारक है। स्थापित कुंभ जितना ज्यादा स्थिर और सुरक्षित हो उतना ही वे मकान

सुखकर होते हैं प्रत्येक आर्य आचार लौकिक लोकोतर सुखी होने को बहुत ही आवश्यक है इसीलिए पूर्व के शास्त्र प्रणेताओ ने उसको समझाने के लिए शास्त्र रचे हैं उनमे वैराग्य पूर्वक लौकिक जीवन को जी कर जीवन लोकोत्तर जीवन जीने की प्रतिज्ञा से बद्ध हुए जैन श्रमणो ने भी शिल्प शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे है, उनके नियमो को खुद ने पालन किया है जगत को उन नियमो के पालन का उपदेश दिया है और पालन करवाया है। यह हकीकत अपने को उसका महत्व ढूढने को प्रेरित करती है इसी कारण से कुम्भ के रहस्यो को सशोधन करने को व जानने को यह प्रयत्न है।

घर तैयार करने के बाद उसमे निवास करने से पहले यह कुम्भ स्थापित करने की विधि आज सर्वत्र प्रचलित है उसे वास्तु विधि कहा जाता है उसका भी शास्त्रीय विधान प्रगट है और वो भी महोत्सव पूर्वक शुभ प्रसन्न वातावरण प्रगटाने के साथ होता है इतना ही नही उसके बाद मनुष्य उस घर मे रहते हैं तब तक जल पात्र सर्वथा रिक्त न हो उसके लिए पूर्ण ख्याल रखा जाता है घर के कार्यो की जवाबदारी मुख्य तया जिन पर है वो स्त्रियो को प्रतिदिन प्रारम्भ मे सब से पहले पानी भर लेने का कार्य करना जरूरी है, गुड, घी, अनाज वगेरे पदार्थो की घर मे कमी हो जाए या खलास हो जाए तो उसे लाने मे एक दो दिन का विलम्ब हो जाए तो वो अमगल नही माना जाता मगर पानी घर मे कम हो जाय तो अमगल माना जाता है इसीलिए लोकोक्ती है 'कलह से घडे का पानी भी जाए' ऐसा कहने का आशय यह है कि घर मे सब कुछ कम हो जाए मगर घट मे पानी अक्षय रखना चाहिए ऐसा आर्य आचार है उसके बदले मे घडे का पानी भी जाए ऐसा कहने मे कलह से सर्वस्व नष्ट होता है ऐसा समझाया है।

इसी कारण से लग्नादिप्रसग पर या तीर्थ यात्रा पर पूर्व काल मे घर के सभी लोग घर बन्द कर जाने वाले हो, तो भी घर मे जल पात्र खाली नही करते थे वो भर कर ही रख कर जाते थे, आज उसका रहस्य समझ मे नही आने पर भी यह व्यवहार कोई कोई प्रदेश मे नजर आता है ऐसे भूमि तल की आबादी तक शिलास्थापन का कुंभ-स्थापन घर की आबादी तक स्तभ कुँभियो व द्वारशाख की कुँभियो का स्थापन तथा निवास तक जल कुँभ का स्थापन अवश्य होता था और आज भी वह होता है, इसी रीत से नगर के द्वार की द्वार शाखा के नीचे कुम्भियो की स्थापना छोटे गाव के प्रवेश द्वार रूप रस्सियो से बाधे हुए तोरणो मे एक दो या तीन घडे को बाधने का रिवाज है। उस रूप मे कुंभ स्थापना होती है श्री तीर्थंकरो के समवसरन मे चारो द्वारो मे द्वार शाखो के स्थान पर चदन के कलश की स्थापना देवो द्वारा होती है वो भी घट स्थापन रूप है साहित्य मे मगल कार्यो के लिए बाधे जाने वाले मण्डपो मे भी चार कोनो मे चदन कलश स्थापने की हकीकत मिलती है मदिरो ... साथ पत्थर के तोरणो मे (कमानो के) मध्य भाग मे कलशाकृति अकित होती

है घर के द्वार के उपर भी कलश की आकृति रहती है वो सर्व कुंभ स्थापना के रूप हैं। और वो मडप नगर गाव व समवसरण वगैरह की सलामती तथा उसमे रहने वाले जीवो का तथा उस स्थान मे होने वाले विशिष्ठ कार्यो का मगल करता है अर्थात् विघ्न दूर कर कल्याण करता है।

ये व्यवहार सिर्फ नगरो, गावो या मकानो या निवास स्थानो तक ही मर्यादित नही हैं लग्न प्रसग मे सर्व प्रथम कुम्भ स्थापन किया जाता है। वो गणेश की मटकी के नाम से बहुधा प्रसिद्ध है लग्न मडप बाधने से पहले माणेक स्तभ के नीचे भी दधी कुम्भ स्थापने की प्रथा है और ये विधि भी शुभ मुहूर्त मे महोत्सवपूर्वक जनसमुदायकी प्रसन्नता के बीच वो विधि के जानने वाले ब्राह्मणादि के किये हुए मत्रोच्चारपूर्वक की जाती है उसका उत्थापन भी लग्न क्रिया पूर्ण होने के पश्चात ही होता है।

अन्य दर्शनीयो मे मृत मनुष्य के अग्नि दाह के बाद भस्म इकट्ठी कर ठडी करने की क्रिया करते हैं उसमे भी जल से भरी हुई मिट्टि की कुलडी स्थापन करते हैं वो भी मरने वाले की आत्मा को यहाँ के शुभ भाव प्राप्त हो उस आशय से की जाने वाली एक कुम्भ स्थापन ही माना जाता है।

धार्मिक महोसवो जैसे कि प्रतिष्ठा महोत्सव प्राण प्रतिष्टा महोत्सव शाति स्नान अष्टोतरी बृहत् स्नान विधि महोत्सव वगैरह प्रसगो मे भी कुम्भ स्थापन महोत्सव पूर्वक शुभ मुहूर्त मे बडे जनसमुदाय की प्रसन्नता के बीच मे वो वो विधि के ज्ञाता पुरुषो की साक्षी मे की और करवाई जाती है और उसका उत्थापन भी उस महोत्सवो की पूर्णाहुती के बाद ही किया जाता है।

आगे चलकर विचार करने पर कुम्भ स्थापना का इससे भी विशेष महत्व समझ मे आता है, उपरोक्त घर या मकान जो शरीर की रक्षा सलामती का साधन होने से उसमे कुम्भ स्थापना का महत्व है जैसे आत्मा को रहने का घर देह है उसको निर्माण करने से पहले भी कुम्भ स्थापन होता है। शरीर का मध्य नाभि प्रदेश है जीव मा t के गर्भ मे आने पर जो ओजाहार ग्रहण कर उसमे अपने आत्म प्रदेशो का विस्तार कर शरीर की रचना करता है। उसमे सबसे पहले तैयार होने वाला नाभि प्रदेश है दूसरे सभी अगोपाग उसमे से ही पल्लवित होता है। यह हरेक अङ्गो को पोषण देने वाली रक्तवाहनियो का सम्बन्ध नाभि के साथ होता है और नाभि प्रदेश के स्थान पर म य मे आत्मा के निर्मल आठ रूचकप्रदेश होते हैं और उनकी निर्मलता सर्व अवयवो को सदैव आरोग्य प्रदान करती है इतना ही नही नाभि प्रदेश के मूल मे से ही नसो द्वारा सर्व अवयवो मे रक्तसचार होता है मृत्यु के समय सब नाडियाँ व धमनियाँ बन्द होने के बाद नाभि मरती है। जन्मपूर्व गर्भावस्था मे मनुष्य शरीर मे नाभि के साथ एक नली जुडी

हुई रहती है जिसका जन्म बाद छेद करके जमीन मे गाडी जाती है। वह नली द्वारा माता के खुराक का रस गर्भ की नाभि मे से प्रसारित होकर सर्व अवयवो को पोषण देती है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शरीर को पोषण देने वाले तत्व नाभि मे से सर्वत्र पहुँचते है। जन्म बाद मुख द्वारा लिए जाने वाला आहार भी रस-रूप मे परिवर्तित होकर नाभि-प्रदेश मे से प्रसारित होकर नाभि के साथ सबध रखने वाली नसो द्वारा सर्वत्र विस्तृत होता है। ऐसे समग्र अवयवो के पालन की व्यवस्था नाभि-प्रदेश से होती है। यह नाभि-शरीर की रचना मे सर्व प्रथम बनती है और वह कुम्भ स्थापन का रूप है।

यहाँ तक तो अपने शरीर और मकान के साथ कुम्भ स्थापना का कैसा सबन्ध है यह विचार किया परन्तु उसका मनुष्य लोक के साथ और उसमे मनुष्य रूप मे जन्म धारण किए विना जो मोक्ष नही जा सकता है वह मोक्ष के साथ क्या सम्बन्ध है वह भी विचार करना है। जैसे एक जन्म की अपेक्षा से आत्मा का घर शरीर और शरीर का घर मकान है वैसे जीव के अनादि काल के भव-भ्रमण मे हुए समग्र भवो का घर चौदहराज प्रमाण (चौदहराज लोक) है और वह शाश्वत है। यह चौदहराज लोक के कुम्भ-स्थापन रूप मध्यवर्ती मनुष्य लोक है यह मनुष्य लोक के मध्य भाग मे मेरुपर्वत है उस पर तीर्थकरो के जन्माभिषेक वह मनुष्य लोक वर्ती पचपरमेष्ठि व सब उसकी धर्म-साधना तथा धर्म यह सब वह कुम्भवर्ती जल स्थानीय तत्व हैं। कुम्भ मे रहा हुआ जल या दही मगलरूप बन कर लौकिक कल्याण के कारण रूप बनता है वैसे चौदहराज लोक के मध्य मे कुम्भ-स्थान पर रहा हुआ मनुष्य लोक और उसमे जल स्थानीय उपर्युक्त तत्व इन समग्र लोकवर्ती जीवो का सदैव कल्याण करता है। जैसे शरीर में नाभि-प्रदेश से सर्वत्ररस पहुच कर शरीर को पोषण करता है वैसे यह मनुष्य-लोक रूप कुम्भवर्ती जल स्थानीय शुभ तत्वो आकाश प्रदेश की श्रेणियो द्वारा समग्र लोक मे विस्तृत होती है और समग्र जीवो का कल्याण साधन करती है। इसी कारण से आठ निर्मल आत्म प्रदेश के स्थान रूप नाभि के साथ रक्त वाहिनियो का सम्बन्ध है वैसे समग्र आकाश-प्रदेश की श्रेणियो का सम्बन्ध भी मेरुपर्वत के नीचे रहे हुए आठ रुचक प्रदेशो के साथ है। जैसे नाभि स्थान पर रहे हुए रूचक प्रदेशो मे से बाह्य आभ्यतर आरोग्य जनक भावो की वृद्धि होती है, वैसे यह मेरु-पर्वत के नीचे के आठ रुचक प्रदेशो के साथ सम्बन्ध रखने वाले आकाश प्रदेश की श्रेणियो द्वारा उपर्युक्त मनुष्य लोकवर्ती तत्वो सदैव सर्व जीवो को भाव-आरोग्य प्रदान करता है, उसे ग्रहण करने के लिए मनुष्य जिस गाव नगर या मकान मे निवास करता है, उसमे कुम्भ स्थापन करना आवश्यक है वह गाव नगर घर सबकी रक्षा करता है। वह शरीर मे भी कुम्भ स्थापन नाभि आवश्यक है और उसी कारण से नाभि स्थान मे वायु को स्थिर करने के रूप कुम्भक ध्यान भी ध्यान का महत्व का अग माना गया है। चौदहवे गुणस्थानक

मे होने वाला शैलेशीकरण की जो आत्म प्रदेशो को स्थिर करने के रूप एक कुम्भक की प्रक्रिया है वह भी नाभि स्थान पर आत्म-प्रदेशो को स्थिर करने रूप कु भ स्थापना है ।

ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे शब्द वर्गणा से फैलने वाले पुदगल रेडियो यत्र द्वारा पकडे जा सकता हैं, उसके विना पकडे या सुने नही जा सकते वैसे मनुष्य लोक रूप कुम्भ स्थापना रूप शिलारोपण कुम्भी स्थापन, नाभि प्रदेश और कुम्भक ध्यान रूप रेडियो यत्र द्वारा बिना आत्मसात् नही किए जा सकते देव-नारकी को तिर्यचो की मुक्ति नही है । उसमे यह हेतु हैं कि उनको जीवन मे मनुष्य की तरह वह कुम्भ स्थापन की प्रकिया नही है अर्थात् देव-नारकी को गर्भवास के अभाव से मनुष्य की तरह स्वरुधिरादि युक्त शरीर नाभि के रसवाहिनी नाडियो आदि का अभाव होता है । तिर्यचो को गर्भा-वतार नाभि-नाडियो वगैरह होने पर भी शेष कुम्भ स्थापनो तक वह नही पहुँच सकते। मनुष्य का ही एकमात्र शरीर व जीवन सामग्री वैसी है कि जिससे ठेढ कुम्भक ध्यान तक के सर्व कुम्भ स्थापना को कर समग्र कत्याण के हेतुभूत श्री तीर्थंकरदेवो, पच परमेष्ठियो, सघ और धर्मतत्व रूप आरोग्यप्रद भावो को स्वीकार करके अन्त मे शैलेशीकरण रूप अन्तिम कुम्भक करके सर्वथा आरोग्य रूप मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । यह वस्तु को विचार करने पर नबपदरूप श्रीसिद्धचक्र यत्र कुम्भ के आकार का है । उसमे भी मध्यवर्ती श्रीसिद्धचक्र यत्र कुम्भ के आकार का है, उसमे भी मध्यवर्ती श्री अरिहत पद का कुम्भ मे अवतरित कर उसे पूजन किया जाता है । उससे उसके आकार की आर्थकता स्पष्ट समझ मे आती है, श्रद्धेय बन जाती है ।

ऐसे कुम्भ स्थापन व परमेष्ठि वगैरह के पवित्र भावो को ग्रहण करने के लिए (रेडियो यत्र) जैसा अति आवश्यक है उसका अनुसधान ऐसा उचित है । चौदहराज लोक के कुम्भ स्थान मनुष्य लोक उसमे जन्म लेने वाशे मनुष्यो को वह कुम्भस्थ भाव ग्रहण करने के लिए ग्राम, नगर और मकान सम्बन्धी कुम्भ स्थापन, शिला स्थापन वस्तु विधि रूप कुम्भस्थापन वास्तु विधि रूप कुम्भ स्थापना और जिस घर मे रहकर गृहस्थ जीवन के लग्नादि सासारिक या प्रभु भक्ति वगैरह धर्म-कार्यो के लिए होने वाले कुम्भ-स्थापन और कुम्भक ध्यान रूप कुम्भ-स्थापन है ।

जैसे कुम्भक ध्यान मे स्थिर हुआ वायु ब्रह्मरध्र मे ऊँचे चढाने पर परमात्मा के दर्शन होते हैं वैसे शैलेशीकरण मे स्थिर किए हुए आत्म प्रदेशो ब्रह्मरध्र द्वारा बाहर निकल कर लोक के अग्र भाग पर पहुँचते है तब परमात्मा (सिद्ध) पद की प्राप्ति होती है ।

ऐसे विचार करने से मनुष्य भव की आदि मे नाभि-रचना रूप कुम्भ-स्थापन और सिद्धावस्था की आदि मे शैलेशीकरण रूप कुम्भ-स्थापन घटित है ।

नैतिक पतन

ले० श्री पारसमल सर्राफ, विलाडा

इस युग का ज्वलत प्रश्न है—नैतिक पतन। आचरण हीनता, दुराचार, बेईमानी, भ्रष्टाचार, छल-कपट, मिलावट, येन केन प्रकारेण आत्मकल्याण से मनुष्य इतना स्वार्थान्ध, मदाध तथा सनेत्राध बन गया है कि वह इनसे मुक्ति पाने की कोई युक्ति भी नही सोचता। वह इन हरकतो को जाने-अनजाने रासबरी की बोतल अथवा परम, नरम, गरम हलुवे की तरह रस लेकर गले उतारता है। वह खुशी-खुशी कर्म-बधन करता हे, जिनके परिणामो से वह जन्म जन्मातर मे भी नही छूट सकता। किन्तु, इसे सोचता कौन है ?।

महात्मा गाधी के शब्दो मे प्रत्येक मनुष्य भारत का मूर्तिमान रूप हे और यदि उसका सुधार हो गया तो सारे भारत का उद्धार हो जायगा। इस नाते व्यक्तिगत चरित्र का मूल्याकन अत्यत ऊँचा है।

चपल चेतना व्यक्ति की, आत्मबोध हो जाय,
व्यक्ति जहाँ उन्नत बना, राष्ट्र स्वय बन जाय।

आजकल बेईमानी जीवन मे गहरी घुस गई है। व्यापारी, व्यवसायी, उद्योगी, श्रमजीवी बुद्धिजीवी विरला ही इससे कोई बचा हो। परिणाम यह हुआ है कि शुद्ध तो धूल और जल भी नही मिलता। प्रत्येक वस्तु मे मिलावट मौजूद है। दूध मे पानी, जूते मे कतरन, हरे शाक मे जलकण, गल्ले मे ककर, घी मे कोकोगोल्ड, असली मे नकली एक धधा हो गया है। हीग मे गोद, मावे मे मैदा, केसर मे तरी, सोने मे खोट, चाँदी मे चोट, ऊन मे सूत ऐसा मिलाया जाता है कि कुछ भान ही नही होता। गले-सडे अन्न, वस्त्र, फल तथा पदार्थ केवल व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण बेचे जाते हैं, उपभोक्ता की हानि तथा अहित का कोई ध्यान नही रखता। इनका मूलमत्र है—

देख पराई चूपडी, ढुलपड बेईमान,
दो पलक की कहासुनी, जीवन भर कल्यान।

अब आप व्यवसाय की ओर चले आइए। हमारी ईमानदारी मानो दूसरो की पैठ पर बिकती है। भारत निर्मित वस्तु पर भी Made as Great Britain अथवा Better than U S A लिख कर भारत मे ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका का आभास दिखलाया

जाता है। तदतिरिक्त वस्तुश्रो का नाप, तौल, स्तर, रगत, डिजाइन सर्वत्र एक से नही होते।

श्रमजीवियो के भी पैतरे देखिए। दर्जी सिलाई लेकर कपडा चुराना चाहता है, सोनार मनमानी घडाई लेकर भी खोट मिलाने की धुन मे है, वढई लकडी के उपयोगी टुकडे तथा बुरादा ले जाना चाहता है। इसी प्रकार राज भरपूर मजदूरी प्राप्त करने पर भी चूने-पत्थर की खरीद मे कमीशन मारना चाहता है। धोबी धुलाई लेकर भी कुछ दिन पराये वस्त्र पहिनने का इच्छुक है, दुकानदार भी पूरे पैसे लेकर, भाव-ताव करने पर भी तराजू की डडी श्रौर मीटर की नोक पर उतारना चाहता है। चक्कीवाला तो मानो त्रिवेणी स्नान करता है—पिसाई लेता है, काटे के रूप मे श्राटा काटता है, साथ ही मिलावट भी करता है। इस प्रकार श्रधिक प्राप्ति की यह जमनास्टिक चलती है।

श्राज सभी चीजे महँगी हैं। लोगो मे लाभ-लोभ, स्वार्थ-क्षुद्रता की भावना श्रत्यधिक है। इस युग मे यदि कोई वस्तु सस्ती है तो वह है बेईमानी। कोई भी व्यक्ति वस्तुत. इसके प्रभाव से नही बचा। मात्रा मे श्रतर है, भावना मे नही। बोलचाल मे कहा जाता है—'करे पाप सो खाए धाप, करे घरम तो फूटे करम' किन्तु, यह सत्य से कोसो दूर है, श्रतत सत्य-धर्म की जय होती है। वास्तव मे धर्मपथ श्रयस्कर है, सुखकर नही श्रौर लोग श्रेयस्कर से सुखकर को श्रधिक पसद करते हैं। श्राचरण हीनता का यही मुख्य कारण है।

लोगो का व्यक्तिगत लोभ इतना बढ गया है कि वे इसके सामने समाज, राष्ट्र तथा श्रन्तर्राष्ट्रीयता को बिलकुल महत्व नही देते। यदि व्यक्तिगत लाभ हो तो लोग चौराहे का बिजली का गोला, जल की टोटी, उपवन के फल-फूल तथा श्रन्य नगण्य वस्तुएँ भी निस्सकोच उठा लेगे। मेज पर रखी पुस्तक, जेब के नोट, सजीव दुर्लभ चित्र, छाता, जूते—सभी चीजे उचकाई जाती हैं।

वर्षा ऋतु मे धुँध की तरह वातावरण मे भ्रष्टाचार व्याप्त हैं। बिना भेट-पूजा के कोई काम नही बनता, कोई कागज नही सरकता।

हल्के कागज पर रखो भारी पेपरवेट,
श्रन्यथा मँडरायगा, होगा मटियामेट।
इस जनता के राज मे, जनता चक्काजाम,
पिछवाडे से ही मिले, परमिट, पद श्रभिराम।

भारत एक धर्म निरपेक्ष, सर्व प्रभुत्व सपन्न गणराज्य है। यहाँ धर्म व्यक्तिगत वस्तु माती जाती है, पर क्रिया-काण्ड, पूजा-उपासना, वदना-भक्ति के शास्त्र-सम्मत रूप को

छोड कर नीति, चरित्र, आत्मशुद्धि, सदाचार, उच्चविचारो का एक सर्व-धर्म-सम्मत पाठ्य-क्रम अथवा पद्धति स्वीकार की जा सकती है, जो राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मे सहायक बन सकती है। यह कार्यक्रम, शिक्षा-विधा, नैतिक आचरण जितना शीघ्र हो सके लागू किया जाय तभी आचरण उन्नत बन सकता है, अन्यथा नही।

इस युग मे धन एक सर्व शक्तिमान प्रभु का स्थान ग्रहण कर रहा है। लोग बगटुट्ठ, दमघुट इसकी ओर भागते हैं और येनकेन प्रकारेण आत्मकल्याण का प्रयत्न करते हैं। इसमे वे सब चीजो को ताक मे रख देते हैं। धर्म धन के घटाटोप बादलो मे छिप गया है और यदाकदा झाँकता है, पर अधिक प्रभावित नही करपाता। धन मनुष्य का मापदड है, अभिव्यक्ति है। कोई यह नही पूछता कि आप एकाकी धनवान कैसे बन गए?

चप्पल चटखाते चले, अब चमकीली कार,
एकाकी कैसे हुआ, यह चकमक व्यपार।

छल-बल-कल, झूठ कपट-चकमा, कालाबाजार, भ्रष्टाचार आदि कोई पद्धति घृणास्पद नही मानी जाती। धनवानो को अत्यधिक सम्मान मिलता है, वे ऊँचे आसन पर बिठाए जाते हैं, और चरित्रवान, सदाशारी, मनीषी मुँह लटकाए बैठे रहते हैं। सभवत इसीलिए लोग इस तत्काल लाभ की ओर अधिक आकृष्ट, सजग, एव सचेष्ट रहते हैं।

लोगो की कथनी-करनी मे कितना अन्तर है। वैसे आप पानी भी छानकर पीते है, पर बिना छना लोहु भी पी सकते हैं। वैसे भगवान आपका इष्ट है, पर स्थार्थ, लाभ और लोभ को आप वैसे ही भूल जाते हैं जैसे एक कन्या ससुराल जा कर पीहर भूल जाती हैं। आप सिगरेट पीना बुरा समझते हैं, पर स्वय तबाखू सूँघते हैं, आप प्राणीमात्र पर दया की दुहाई देते है, पर उघाई मे पाई भी नही छोडते। आप चिडिया का घोसला तोडना तो पाप समझते है, पर अपने अहाते मे बसने वाले चेलाराम चमार पर तरस नही खाते। सडक की चढाई पर बैलो को हॉफते देखकर आप भूतल पर उतर पडते है, पर घर के नौकर पर द्रवित नही होते जो दिनरात तडपता है। कदाचित् केवल पशु ही आपकी अनुकम्पा के अधिकारी हैं, मनुष्य नही!

देखते ही देखते कितना परिवर्तन हो गया। पुरुषो का सरताज, नारियो की लाज, करारा ब्याज, सस्ता अनाज, देवता समाज कैसे अन्तर्ध्यान हो गए जैसे चन्द्रोदय पर अगणित तारे अथवा सूर्योदय पर अधकार, उल्लू और आलस्य लोप हो जाते हैं। इस परिवर्तित परिस्थिति मे जीवन की विकट समस्याओ का युगानुकूल समाधान सोचना पडेगा पर वह तब तक नही हो सकता जब तक व्यक्तिगत आचरण उन्नत नही बन जाता।

गरमी की प्यास, सावन की घास, क्षितिज के आकाश की तरह महँगाई भूतल छोड कर चद्रलोक अभियान कर रही हैं, इस युग मे कोई चीज सस्ती नही, यदि सस्ती है तो केवल एक। वह है बेईमानी। देश मे नैतिक पतन का कारण यही सहज लाभ-लोभ और प्राप्ति की भावना है, जिसका मुख्य कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव, नैतिकता का तिरस्कार, धन का अत्यधिक महत्व, व्यक्ति के आचरण की महत्व हीनता है। मनुष्य किस प्रकार बेईमानी की ओर आकृष्ट और अभिभूत हो गया है, उसे यो चित्रित किया जा सकता है —

सब से सस्ती है पेईमानी।

खून पसीना, पैसा पानी, बन जाओ तुम इच्छादानी,
शुद्ध वस्तु मिले कही नही, मिल सकती केवल हैरानी।
१ सब से०

एक किलो दूध भी मुश्किल, उसमे भी मिल जाता पानी,
बावन रुपए बूट खरीदे, उनमे भी कतरन पहचानी।
२ सब से०

घी मे कोको-जाम मिला है, मावा मैदा, सब्जी पानी,
हीग गोद, गल्ले मे ककर, शहद भी शक्कर से सानी।
३ सब से०

चाँदी चोट, स्वर्ण खोट है, मोल-तौल मे खीचातानी,
गज की नोक, तराजू-डडी, उतार लेते ये आसानी।
४ सब से०

खचाखच भडे से भरते, भला रेल या मच्छरदानी,
बाहर हत्था पकड़ खडे हैं, यात्रा है अथवा कुर्बानी।
५ सब से०

गले-सडे भी वस्त्र बिक गए, सस्तेपन की गा कर बानी,
भले अन्न के साथ सडा भी, बिका भला कितना आसानी।
६ सब से०

भाषण, सवाद, चारु चाटन, उद्घाटन, आश्वासन बानी,
पचामृत का पान करें भित, कितने सुखमय ये लासानी।
७ सब से०

कर मत अन्नदाता जनता, ठगी-पिसी सी है वेगानी ,
दोहन-दक्ष से दामवीर जन, करते अमनी ही मन मानी ।
८ सव से०

अपव्यय के एहम पख काट दे, कभी न उतरे गहरे पानी ,
नैतिकता का मूल्य वढाएँ, यही 'तरगित' वुद्धिमानी ।
९ सव से०

समाष्टि मे नैतिकता का महत्व समझना, उसका उचित मूल्याकन करना तथा उसे जीवन मे उतारना अत्यत आवश्यक है। जैन धर्म आचरण को उच्चता को, उदात्त भावनाओं को, लोक कल्याण को विशेष महत्व देता है अत जीवन के नैतिकस्तर की उच्चता अत्यत आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है । हम लोग मनवचन कर्म से इसका कितना पालन कर सकते हैं—यही हमारी धार्मिक, नैतिक, चारीत्रिक कसौटी है ।

यस्य प्रज्ञा स्वय नास्ति, शास्त्रः तस्य करोति किम्
लोचनाभ्याम् विहीनस्य, दर्पण किं करिष्यति ॥१३॥

जिसमे स्वय की वुद्धि नही उसके लिए शास्त्र कुछ नही कर सकते जैसे चक्षु रहित मनुष्य को काच किसी काम का नही ।

•••

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु. लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पडित. ॥२॥

पर स्त्री को माता समान, पराये धन को मिट्टी के समान और सभी आत्माओ को अपनी आत्मा के समान जो देखता है वही वास्तव मे देखने वाला पडित है ।

जैन धर्म के कुछ सुखद व रोचक आश्चर्य

ले० सोहनराज भसाली, जोधपुर

प्राचीनतम जैन शिलाखले—

बडली ग्राम (अजमेर के पास) का वीर सवत् ८४ का एक शिलालेख है। यह शिलालेख रायबहादुर प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा की शोध-खोज से प्राप्त हुआ है। अब तक प्राप्त शिला लेखो मे यह भारत का सब से प्राचीन व महत्वपूर्ण शिलालेख माना जाता है। यह लेख जैन धर्म की प्राचीनता व महत्ता पर प्रकाश डालता है। इस लेख के प्राप्त होने के बाद तो 'धर्म प्राण लोकाशाह' के लेखक स्थानकवासी साधु सौभाग्यचन्दजी (वर्त्तमान मे सत बालजी) जैनो मे महावीर स्वामी के ८४ वर्ष बाद भी मूर्ति-पूजा का प्रचलित होना स्वीकार करते हैं। यह शिलालेख अजमेर के राजकीय सग्रहालय मे सुरक्षित है।

कागज पर लिखित भारत का अति प्राचीन ग्रन्थ—

जैसलमेर (राजस्थान) के जिनभद्र सूरि जैन ज्ञान भण्डार मे तेरहवी सदी के पूर्वार्द्ध का कागज पर लिखित ग्रन्थ है जो भारत मे उपलब्ध कागज पर लिखित प्राचीनतम ग्रन्थो मे से एक है।

नौ सौ वर्ष पुरातन वस्त्र—

जिनभद्रसूरि ज्ञान भडार जैसलमेर मे दादासाहब श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज के नौ सो वर्ष पुरातन वस्त्र (चद्दर, चौलपट्टा एव मुहपत्ती) अब भी सुरक्षित है।

भारत का सबसे प्राचीन जैन स्तूप—

यह स्तूप मथुरा मे खुदाई के समय मिला है। यह भारत का सबसे प्राचीन स्तूप है जो भगवान महावीर के पूर्व का है। कहा जाता है कि इसकी स्थापना श्री पार्श्वनाथ के समय मे की गई थी और पार्श्वनाथ के समय मे इसका उद्धार किया गया था। मथुरा के पच स्तूपो का उल्लेख जैन साहित्य मे आता है। यही से पचस्तूपान्वय भी प्रारम्भ हो तो असभव नही।

खारवेल का शिलालेख—

यह शिलालेख कलिग के पहाडो मे स्थित हस्ती गुफा मे मिला है। यह शिलालेख

काले पाषाण पर अंकित है। इसकी लम्बाई चौड़ाई १५×५ फुट है। यह ब्राह्मी लिपि मे लिखा हुआ है। इस शिलालेख मे मूर्ति सम्बन्धी उल्लेख है जिसका विवरण जैन साहित्य मे भी आता है। इस शिलालेख के मिलने के बाद स्थानकवासी साधु स्वामी मणिलालजी ने भगवान् महावीर से दूसरी शताब्दी मे जैनो मे मूर्ति पूजा का होना स्वीकार किया है।

प्राचीन ताड़पत्रीय ग्रन्थ—

जैसलमेर के जिनभद्र सूरि ज्ञान भण्डार मे ४२६ ऐसे ग्रन्थ हैं जो ताडपत्रीय हैं। इन ताडपत्रो मे कुछ ताडपत्र ३८६ इच तक लम्बे हैं। इन ताडपत्रीय ग्रन्थो मे सब से प्राचीन ग्रन्थ सवत ११९७ का है। कुछ ताडपत्रीय ग्रन्थ तो इतने जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं कि उनका रचना काल पढने मे नही आता। हो सकता ह वे इससे भी अधिक प्राचीन हो।

प्राचीनतम प्राकृत काव्य—

महा कवि विमल सूरि द्वारा रचित महाकाव्य पउम चरित्र है। यह जैनो का सब से प्राचीन काव्य है, जो महावीर स्वामी के निर्वाण के ५३० वर्ष पश्चात् लिखा गया हे।

सब से पहले आगम कब छपे ?

विक्रम सवत् १९३२ मे सबसे पहले मुर्शिदाबाद (बगाल) निवासी बाबू धनपतसिहजी की द्रव्य सहायता से जैन आगम मूल टीका सहित छपवाए गए।

सब से पहले धार्मिक पुस्तके किसने छपवाई—

श्रावक भीमसिह माणक ने सब से पहले पचप्रतिक्रमण व विविध पूजाओ की पुस्तके छपवाई। इस प्रकार की धार्मिक पुस्तको को मुद्रित कराने के कारण उन्हे भारी विरोध का सामना करना पडा। उन दिनो धार्मिक पुस्तको का छपवाना ज्ञान की अशातना समझा जाता था। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन्हे इस अपराध हेतु सघ से बाहर करने तक की स्थिति बन गई थी।

सर्वप्रथम बम्बई मे चतुर्मास—

श्वेताम्बर जैन समाज के श्री मोहनलालजी महाराज प्रथम जैन साधु थे जो बम्बई गए और वहाँ चतुर्मास किया। उनके इस बम्बई प्रवेश को लेकर तत्कालीन जैन साधु समाज मे भारी खलबली मची। उनकी कटु आलोचना की गई। उन्हे नरक के द्वार खोलने वाला कहा गया। वह समय सन् १८९५ का था। जो प्रगतिशील कदम उठाते हैं उन्हे विरोध का सामना करना ही पडता है।

श्वेताम्बर समाज में प्रथम हिन्दी लेखक—

जैन श्वेताम्बर समाज मे सबसे पहले खडी बोली हिन्दी मे आधुनिक शैली मे ग्रन्थ लिखने का श्रेय श्रीमद् विजयानन्दसूरिजी महाराज को है। लगभग एक शताब्दी पूर्व आपके ग्रथ छप कर प्रकाशि॰ होने शुरू हुए। आपका प्रसिद्ध हिन्दी ग्रथ 'जैनतत्वादर्श' श्रावक भीमसिह माणक ने सवत् १९४० मे छपवा कर प्रकाशित किया था।

धर्म कार्य हेतु अमेरिका जाने वाला प्रथम जैन—

सन् १८९३ मे शिकागो अमेरिका मे विश्व धर्म सम्मेलन हुआ। आचार्य श्रीमद् विजयानन्दसूरिजी महाराज को जैनधर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए आमन्त्रित किया गया। महाराजश्री ने जैन समाज का प्रतिनिधि॰व करने के लिए अपनी ओर से श्री वीर-चद राघवजी गाधी को भेजा।

अमेरिका मे ५३५ व्याख्यान—

वीरचन्द राघवजी गाधी ने दो वर्ष मे अमेरिका के विविध स्थानो मे ५३५ सभाओ मे व्याख्यान दिए।

सघ बाहर क्यो ?

श्री वीरचद राघवजी गाँधी को उनकी समुद्र पार यात्रा करने के फलस्वरूप बम्बई के जैनो ने उन्हे सघ बाहर करने की ठानी। उन्होने श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी महाराज को लिखा। महाराज श्री ने बम्बई के जैनो को उस समय जो उत्तर लिख कर भेजा वह उनकी निर्भीकता, दूरदर्शिता एव प्रगतिशीलता का परिचायक है। महाराज श्री ने लिखा, 'याद रखना धर्म के वास्ते श्रीयुत गाँधी तो समुद्र पार अमेरिका शिकागो धर्मपरिषद् मे गया। मगर एक समय थोडे ही अरसे मे ऐसा आएगा कि लोग अपने मौजशौक के लिए, ऐश-आराम के वास्ते, व्यापार, रोजगार के लिए समुद्र पार विलायत आदि देशो मे जाऐंगे उस वक्त किस को सघ बाहर करोगे।'

चार मजिल का चातुर्मुख जैन मन्दिर—

कापरडा का जैन मन्दिर भारत का एक मात्र जैन मन्दिर है जो चतुर्मुख के साथ साथ चार मजिल का है।

विशालतम जैन मन्दिर, राणकपुर (सादड़ी)—

यह मन्दिर इतना विशाल, इतना पूर्ण, इतना विविध है कि भारत मे इसकी शानी का दूसरा जैन मन्दिर नही है। इसमे १४४४ खभे हैं और तीन मजिल का बना है। इस मन्दिर मे २० मण्डप हैं और ८६ छोटे मन्दिर हैं। ६५ वर्ष में बन कर यह तैयार हुआ था।

मथुरा के कंकाली टीले मे प्राप्त प्राचीन डेढ हजार मूर्तियाँ—

इस टीले से खुदाई करने पर जैन धर्म की लगभग डेढ हजार प्राचीन मूर्तियॉ व लगभग एक सौ शिलालेख प्राप्त हुए हैं। देश-विदेश के पुरातत्व वक्ताओ, शिल्प-कला-विदो के मतानुसार ये मूर्तियाँ और शिलालेख ईस्वी पूर्व दूसरी तीसरी शताब्दी से लेकर ई० सन की ११ वी शताब्दी तक के हैं।

भारत का सर्वोत्तम आयागपट—

यह आयागपट मथुरा मे प्राप्त हुआ है। सिंह नादिक ने जिस आयागपट की मथुरा मे स्थापना की थी वह अविकल रूप से आज भी लखनऊ के सग्रहालय मे सुरक्षित रखा है। चित्रण-सौष्ठव और मानसामजस्य मे तुलना करने वाला एक भी दूसरा आयागपट इस देश मे नही है जो शिल्प का इतना उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता हो।

सम्राट अकबर की स्नात्रपूजा—

अकबर बादशाह के बडे पुत्र सलीम (जहॉगीर) के पुत्री का जन्म हुआ। ज्योतिषियो ने बालिका का जन्म मूल नक्षत्र मे होने से पिता के लिए कष्टदायक होना बताया।

बादशाह ने जैनगुरु भानुचद्र[1] मानसिंह[2] आदि से पूछा कि कष्ट-निवारणार्थ क्या किया जाय ?

जैन गुरु ने उत्तर दिया—'जिन मन्दिर मे अष्टोत्तर शतस्नात्र कराया जाय तो कष्ट दूर हो सकता है।'

अकबर ने उसी समय अष्टोत्तरस्नात्र कराने की स्वीकृति दी तथा सारी व्यवस्था के लिए आचार्य जिनचन्द्रसूरि के परमभक्त खरतरगच्छीय श्रवक राज्य मानमत्री करमचद बच्छावत को कहा।

महोत्सव बडे ठाठवाट से प्रारम्भ हुआ। सम्राट अकबर अपने पुत्र जहॉगीर व अन्य दरबारियो के साथ उपस्थित हुआ। मुनि भानुचन्द्र व मानसिंह ने स्नात्र विधि सम्पन्न कराई। मुनि भानुचद्र ने स्वय भक्तामर महास्तोत्र का पाठ किया। सम्राट गर्भगृह से रग मण्डप मे आए। गुरु के पास सम्राट व उनका पुत्र जहाँगीर खडे रहे। स्नात्र पूजा की। स्वर्ण पात्र से जल श्रद्धापूर्वक लेकर दोनो ने नेत्रो पर लगाया। रनवास मे भी भेजा। सम्राट व युवराज के सुख शान्ति मे वृद्धि हुई।

---

१ यह मुनि भानुचन्द्र जगद्गुरु हीरविजयसूरि के शिष्य थे।
२ मुनि मानसिंह जैनाचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे।

सम्राट अकबर के समय मे जैनधर्म की लोकप्रियता का यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। ठीक ही है—'चमत्कार को नमस्कार'।

सर्वप्रथम महावीर जयन्ती कहाँ मनाई गई—

महावीर जयन्ती मनाने की प्रथा सर्वप्रथम शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरिजी ने बनारस मे प्रारम्भ की थी। उन्होने अपनी स्थापित यशोविजय जैन पाठशाला मे सबसे पहले यह जयन्ती मनाई थी।

समय की असली कीमत समझिए। इसे झपट कर पकडिए और एक-एक क्षण का आनन्द लीजिए। ज़रा भी सुस्ती नही, देर नही, हीला हवाला नही। जिसे आज कर सकते हो उसे हरगिज कल पर मत टालिए।

—चेस्टर फील्ड

०•०

सफलता पाने के लिए हम मे दो गुण होने चाहिए—शक्ति और स्थिरता। शक्ति कुछ ही के पास होती है, लेकिन स्थिरता का अभ्यास सभी कर सकते हैं। स्थिरता से शक्ति अपनेआप मिल जाती है।

—स्वेशिन

तीर्थ - महिमा

ले० श्री जवाहरलाल दफ्तरी, पीपाड शहर

जैन समाज मे यद्यपि अनेक मत-मतातर हैं तथापि हम गत कई वर्षों से देख रहे हैं कि उन लोगो की सख्या मे वृद्धि हो रही है जो यह कहते हैं कि हम तो सब को ही मानते हैं। वे ऐसा कहते ही नही वरच उस पर चलते भी हैं। यह धार्मिक सहिष्णुता एक सगठन का सूत्रपात है।

तीर्थों के विषय मे प्राय सभी भाई-बहिन बडे आदर तथा भक्तिभाव से मानते हैं। वे यात्रा कर, देव-दर्शन, पूजा-अर्चना, भाव-भक्ति द्वारा अपने अतरतम की शुद्धि करते हैं। कुछ श्रद्धालु लोग तीर्थ यात्रा के लिए भावपूर्ण चढावा बोलते हैं। इस दृष्टि से श्री केसरियाजी तीर्थ प्रसिद्ध है। अब तो केसर की कमी हो गई है, भाव चढ गए हैं, नही तो पहले भेट पूजा बोलने वाले लोग अपने पुत्र के बराबर केसर तोल कर चढा देते थे। इससे अधिक और क्या भक्ति होगी। राजस्थान के श्री नाकोडा तीर्थ भी ऐसी हो भाव-भक्ति के लिए विख्यात है।

प्राय देश के कोने कोने मे मैंने काश्मीर से कन्या कुमारी तक, काठियावाड से कामरूप तक दौरा किया है। इस लम्बे सफर मे धर्म व समाज के प्रति रुचि होने के कारण जहाँ भी मैं गया वहाँ तत्सबधी चर्चाएँ होती रहती थी। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मुझे कट्टरपथी कम और उदार हृदय वाले व्यक्ति अधिक मिले। ऐसे व्यक्तियो से मैं व्यग्यपूर्वक कभी कभी कहता था कि आपको अपनी आस्था मे दृढता रखनी चाहिए। मुझे जवाब मिलता था कि इसी दृढता ने ही तो अनेक मतमतातरो को जन्म दिया है। सैद्धातिक दृष्टि से जैन धर्म स्यादवादी है पर प्रयोगात्मक दृष्टि से नही। जब तक हम एक सरे की भावनाओ को नही समझेगे तब तक अपने आपको भी उचित मूल्याकन नही कर सकेगे।

इस सगठन के युग मे हमे उदार हृदय वाले, उच्चाशयी, सहिष्णु बधुओ की परम आवश्यकता है जो समन्वयात्मक दृष्टिकोण रक्खे। उपासना व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर है। प्राय देखा जाता है कि सभी मन्दिरमार्गी भाई पूजा नही करते और न सभी साधुमार्गी सामायिक और साधुदर्शन ही करते हैं। इसका तात्पर्य यह नही कि वे अपने कर्त्तव्यकर्म से विमुख हैं।

आज का मानव समाज अनेक सकटो का सामना करता है और विकट व्यस्तता से समय निकाल कर यथासमय, यथाशक्ति उपासना करता है। भीषण भौतिकवाद से सत्रस्त व्यक्ति के लिए आध्यात्मवाद की ओर झुकना हँसी खेल नही है। आज का मानव पहले उपदेशक के जीवन को देखता है। यदि उसका जीवन आदर्श है, तब तो वह अनुकरणीय बन जाता है अन्यथा उसका उलटा असर होता है।

तीर्थ स्थान एकता के प्रतीक हैं। आप प्रभुप्रतिमा के सम्मुख जाइए, वह आपके प्रति आदर-अनादर अथवा राग-द्वेष नही रखती। आपके सामने आदर्श प्रतिबिंब है, आप जितना ही आत्म-विभोर बने, ध्यानमग्न बने, उतना ही आनन्द आयेगा। आप तदनुकूल आचरण कर आत्म-कल्याण कर सकते है।

हमारे पूर्वज बुद्धिमान थे। वे जानते थे कि मानव-मानव की परस्पर टक्कर हो सकती है, पर तीर्थ आपस मे नही टकराते। कोई वैर-भाव, राग द्वेष, कलुष-क्लेश नही, यहा तो पावन प्रेम की गगा बहती है।

हजारो वर्षो से इन तीर्थो की जाहोजलाली बढती ही जा रही है। धर्म के तीन रूप ग्रथ, साधु और मन्दिर मे, मन्दिरो का महत्वपूर्ण स्थान है। वे मूक होकर भी बोलते हैं, प्रतिमा द्वारा धार्मिक प्राणो का सचार करते हैं। मदिरो की समय-समय पर उन्नति-अवनति होती रहती है, पर उनकी महत्ता कभी नही मिटती है।

पिछले कुछ वर्षो से मदिरो का विरोध हुआ, पर विरोधी भी अपने स्थान को मदिर कहकर पुकारने लगे। यही कारण है कि आज भी देश मे अनेक नए मदिरो का निर्माण हो रहा है। अकेले जैन समाज मे ही प्रति वर्ष बीसो नए मदिर बनते हैं। क्या यह सब प्रभु की महिमा नही, तीर्थो का चमत्कार नही ? यदि ऐसा नही होता तो कोई एक भी पैसा खर्च नही करता।

देश मे आज बिडला बधु हर क्षेत्र मे अग्रसर हो रहे है। धर्म के प्रति भी उनकी श्रद्धा कम नही। प्राय प्रमुख स्थानो पर वे नए मदिरो का निर्माण कर रहे हैं। इनमे सभी धर्मो का समावेश किया गया है। सब धर्मो का एकत्र रूप देखकर, महापुरुषो के वचनो का सग्रह देखकर पढने मे कितना आनन्द आता है।

आज के युग मे कई बधु कह देते हैं कि इन मदिरों से क्या लाभ ? किंतु, यदि इतिहास उठा कर देखे तो पता चलेगा कि हमारे पूर्वजो ने इन मदिरो के लिए क्या-क्या नही किया। यदि आज से तीर्थ नही होते तो पता नही हमारी क्या अवस्था होती। इन पावन स्थानो पर ही हम अपने धर्म और व्यक्तित्व को पहिचानते हैं। इनके गगनचुंबी शिखर, मनोहर शिल्पकला, धर्म का साक्षात् प्रतिबिंब तथा भावनाओ की प्रतिरूप प्रतिमा यात्रियो को सहज ही आकर्षित करते हैं।

सर्वत्र ही आज सगठन की पुकार उठ रही है। पर, सगठन करे कहाँ और कैसे ? उसका रूप क्या और माध्यम क्या हो—यह एक समस्या है। इन प्रश्नो का उत्तर एक है—मदिर। एक विद्यालय वनाते हैं तो विद्यार्थी पढने जाते हैं, चिकित्सालय वनाते हैं तो रोगी आते हैं, अनाथालय वनाते हैं तो अनाथ आते हैं। इस प्रकार आप जो भी वनाएँगे, उसीके अनुरूप लोग आएँगे। फिर मदिर को छोडकर वह कौनसा स्थान होगा जहाँ पर छोटे-बडे एकत्र हो, समाज के आवाल-वृद्ध मिल सके। आजकल प्रार्थना सभा होती है, वह भी मदिर का ही तो प्रतीक है।

भगवान महावीर ने जैनधर्म को विश्वधर्म का रूप दिया था और भेदभाव भुला कर एक झडे के नीचे एकत्र किया था। काल की गति से वह वात शास्त्रो तक सीमित रह गई और उसे सामाजिक रूप तो मिला पर विश्वजनीन रूप नही मिल सका। इसका कारण सगठन का अभाव है।

मन्दिर ऐसे ही सगठन का एक स्थल है। यहाँ अपूर्व आनन्द है, राग-द्वेष-हीन वृत्ति है तथा नीरव, शान्त, आत्मविस्मरणशील वातावरण है। धार्मिक पठन-पाठन, पूजा-अर्चना, स्वाध्याय, भजन-भक्ति, आत्मा के सस्कार-परिष्कार का कुछ अद्वितीय स्थान है। तो आइए इस स्वर्ण अवसर को मत गँवाइए और तन्मयता से, आत्मीयता से तीर्थयात्रा कर जन्म सफल वनाइए। यही मानव-जीवन की सार्थकता है।

कजूस अपने आपको ही तकलीफ देता है। लेकिन फिजूलखर्च तो आने वाली पीढियो को भी कष्ट देने वाला सावित होता है। वीच का रास्ता ही सवसे अच्छा है—हम अपने साथ भी न्याय करे और दूसरो के साथ भी।

—व्रूयरे

अपनी सफलताओ का सेहरा आप भाग्य के सिर पर क्यो बाँधते हैं। भाग्य अपने आप मे कुछ नही है, उसे आदमी का पुरुषार्थ वनाता है।

—ड्राइवन

मानवता

ले० दयालसिंह मेहता, एडवोकेट बिलाडा, जिला—जोधपुर

मानव के धर्म को मानवता कहते हैं व मानवता का परिचय ही मानव धर्म से होता है। जैन धर्म के शास्त्रो के अनुसार चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण करने के बाद मनुष्य योनि मिलती है, व मनुष्य होना ही बडे भाग्य की बात है। इस मनुष्य जीवन मे दो ऐसे स्थान हैं, जिनका मर्म अत्यन्त ही गूढ है—एक है, जब मनुष्य मानव होता है और दूसरा है, जब वह मानवता को पार कर महात्मा बन जाता है। मगर मनुष्य जन्म मिलने के बावजूद भी हम मनुष्यता नही रखे व इन्सानियत से गिर जाएँ तब फिर पशु व मानव मे फर्क ही क्या रह जाता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन पशु तथा मानव मे समान रूप से होते हैं—मगर मनुष्य मे धर्म ही एक विशेष है, जिससे पशु और मानवता का विशेष ज्ञान होता है। जिस मनुष्य का कोई धर्म ही नही है, यानि जिस मानव के अपने जीवन के कोई सिद्धान्त ही नही हैं, ऐसे धर्महीन मनुष्य पशु के समान ही हैं।

अस्तु, धर्म मानव जीवन का सार है। धर्म का अर्थ है 'धारण'। जिसे धारण किया जाय और जिसे धारण करे वह है धर्म। लेकिन, अब प्रश्न यह पैदा होता है कि जीवन के मूल सिद्धान्त कौन से हैं, जिनको धारण करने से मनुष्य मे मानवता स्वत ही आ जाती है व जिसके द्वारा वह अपना जीवन सफल बना सके।

हमारे राष्ट्रपिता पूजनीय बापू के जीवन के मूल सिद्धान्त सत्य, अहिंसा व त्याग का पालन करना था व जिनको पूर्ण रूप से पालन कर वे भारत के लिए ही नही, बल्कि विश्व के लिए आदर्श महात्मा बन गए हैं। अहिंसा व सत्य के सम्बन्ध मे पूजनीय बापू के विचार हैं—'अहिंसा बिना सत्य की खोज असम्भव है। अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत हैं जैसे सिक्के के दोनो रूप। उसमे किसको उल्टा कहे या किसको सीधा तथापि अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य मानना चाहिए।' इसीलिए कहा है 'अहिंसा परमो धर्म' अत. मानव जीवन का मूल धर्म, सत्य व अहिंसा का पालन होना चाहिए, जिससे स्वत मानवता के सब गुण शनै. शनै. विकसित होने लगते हैं।

ससार मे जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश देता है। चाहे चीता, सिंह, भेडिया, सर्प, बिच्छू आदि दुष्ट प्रवृत्ति के हो अथवा हाथी, ऊँट, घोडा इत्यादि बडे आकार वाले हो, अथवा चीटी, मच्छर इत्यादि छोटे आकार के हो,

एक इन्द्रिय हो अथवा पाच इन्द्रिय धारी हो, जल चर हो, नभ चर हो या थल चर हो—समस्त जीवो की रक्षा करने का उपदेश जैन धर्म देता है। इसी कारण जैन धर्म को उसके ऊँचे सिद्धान्तो की वजह से विश्व-धर्म भी अगर हम कहे तो भी अयुक्त नही होगी। इसलिए जैन धर्म का मूल सिद्धान्त मानवता के मूल सिद्धान्त है। अगर मानव जीव मात्र से मित्रता रखे, सन्त पुरुपो को देख कर प्रसन्न हो, उनके प्रवचनो को सुनकर अपने जीवन को सार्थक बनाएँ तथा प्राणी मात्र पर दया करे व दुर्जनो से न प्रेम करे न वैर करे—तो मानव नि सदेह मानव बनकर अपने इस लोक को ही नही, बल्कि पर लोक को भी सुधार कर अपना जीवन सफल बना सकता है।

अतएव, जैन धर्म ही मनुष्य को मानवता का धर्म सिखाने मे सबसे अधिक अग्रसर है। जैन धर्म का आचार शास्त्र बहुत ही सुन्दर है। जैन धर्म के समस्त नियम श्रेणी-बद्ध व सुनिश्चित हैं। उसकी शिक्षा सीधी त्यागमयी एव वैराग्यपूर्ण है। हर एक गृहस्थ को देव-पूजा, गुरुभक्ति, शास्त्र पढना, सयम का अभ्यास, तप करना तथा दान करना ये छ कर्म नित्य करने तथा मद्य न पीना, मास न खाना, हिसा नही करनी, अपनी स्त्री से सन्तोप रखना तथा परिग्रह आदि अष्ट मूल गुणो का पालन करने का उपदेश दिया है। कितना सुन्दर उपदेश है, गृहस्थो के लिए व कितनी मानवता है जैन धर्म की। इन्ही उपदेशो को मान कर मानव अपनी आत्मा की शुद्धि कर मानव कहलाने योग्य बन सकता है।

इसके अतिरिक्त मानवता का दूसरा रूप वह है, जहाँ मानव के मन, विचार व कर्म मे समानता हो। जिस मनुष्य की कथनी व करनी मे अन्तर हो—यानि कहता कुछ और करता कुछ और हो, जनता के प्लेट फार्म पर या धार्मिक स्थानो पर खडे होकर बहुत ही ऊँची-ऊँची ज्ञान की बाते करता हो मगर उसकी क्रिया या करनी ऐसी मैली हो तो ऐसे मनुष्य स्वय को ही धोखा नही देते है, बल्कि उस भगवान को भी धोखा देते हैं। ऐसे लोगो का अन्त किसी भी सूरत मे अच्छा नही हो सकता। वे भले ही अपने मन मे महाराजा बने, व वर्तमान स्थिति मे अपने पूर्व जन्म के अच्छे कर्मो के सग्रह की वजह से यह अनुभव नही करते हो कि इन सबसे क्या बुरा होता है, मगर ज्योही पूर्व जन्म के अच्छे कर्मो के सग्रह की कमाई समाप्त हो जाती है—उनको अपने किए हुए कर्मो का फल भोगना पडता है—इसमे कोई दो राय नही है। ये सब हमारी जैन धर्म के मूल सिद्धान्त हैं, जिनके मनन करने से मनुष्य अपना स्तर ऊँचा उठाकर मानव बनाने का प्रयत्न कर मानव कहला सकता है। जिस मनुष्य मे मानवता ही नही है, वह मानव कहलाने का अधिकारी नही है व वह अपना जीवन कूकर-सूकर के जीवन की तरह व्यर्थ ही खो रहा है। अन्त समय उसको पश्चाताप ही रहेगा कि उसने मनुष्य जीवन का कोई लाभ ही नही उठाया।

मगर इस युग मे जो कि विज्ञान का युग कहलाता है—घोर कलियुग का समय है। हर एक मानव यह सब जानते हुए भी कि मानव यह सब जानते हुए भी कि मानवता किसे कहते हैं, पतन की ओर बेखटके बढ रहा है। 'पर उपदेश कुशल बहु तेरे' यानि इस कलियुग मे मनुष्य लोगो को उपदेश देना तो खूब जानता है, मगर उसके अनुसार अपने जीवन मे सारी बाते कौन उतारे ? हरएक मनुष्य जानता है कि झूठ बोलना महा पाप है व झूठ ही पाप का मूल है फिर भी आप हम सब जानते है कि न्यायालय जो कि इन्साफ का मन्दिर है, वहाँ कितने लोग सत्य बोलते हैं। धर्म की सौगन्ध, भगवान महावीर की सौगन्ध, गीता या कुरान की शपथ या सौगन्ध दिलाना न्यायालय का कर्त्तव्य है, सो वह दिलाता है। किन्तु शपथ लेने वाले गवाह ने तो मन मे शपथ कर ली है कि कचहरी मे सत्य से काम नही चलता। वकीलो का यह समुदाय वही तो सिखलाने के लिए है कि उसे क्या कहना है ? सत्य विदा हो गया है—आज न्यायालय मे और गवाहो का यह असत्य—न्यायालय के निर्णय का दोष ही क्या ? लेकिन यह झूठी गवाह, यह पाप भी है, कब सोच पाता है आज का मानव ! मगर अफसोस है, किसको यह सोचने की फुरसत पड़ी है व क्यो सोचे ? हम तो अपने जीवन सघर्ष मे ऐसे फँसे हुए है कि हमको इन्सानियत से क्या लेना देना। हमे तो किसी भी तरीके से अपने निजी स्वार्थो की पूर्ति करना है। इस प्रकार आज के युग मे मानव का घोर पतन हो रहा है।

इस युग मे जहाँ चारो तरफ घूसखोरी, चोरबाजारी व असत्य-भाषण, कथनी करनी मे रात दिन का अन्तर जीवन के मुख्य लक्ष्य बना लिए गए हैं तब मानव, मानव रहा है। इसका एकमात्र कारण आज दूषित वातावरण है। हमारी दृष्टि अपने तक ही सीमित है। हमको अपने व्यक्तिगत स्वार्थो के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर नही होता है। इस सकट काल मे हमे अपना जीवन त्यागमय बनाना चाहिए, जब तक हम मे त्याग की भावना जाग्रत नही होगी, तब तक हम अपना कल्याण किसी भी सूरत मे नही कर सकते।

'बडे भाग मानुष तन पायो'—वास्तव मे हम बडे भाग्यशाली हैं कि हमको मनुष्य जीवन मिला, मगर केवल मनुष्य जीवन मिलने से क्या हो सकता है, जब तक हम अपने कर्त्तव्यो को नही समझे। अगर हम अपने जीवन को सफल बनाना चाहे तथा अपने देश का व राष्ट्र का निर्माण व विकास करना चाहते है तो पहले हमे अपने जीवन को आदर्श मानवमुखी बनाना होगा।

भगवान् महावीर की समता-दृष्टि

ले० प्रोफेसर पृथ्वीराज जैन, एम ए, शास्त्री

'गौतम ! जो प्राप्त का समविभाजन नही करता उसकी मुक्ति कभी नही हो सकती।' भगवान् महावीर के इस कथन मे उनकी समता की दृष्टि के वे सभी गूढ रहस्य निहित हैं, जिनके आधार पर विश्वशान्ति और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के स्वप्न साकार किए जा सकते हैं। जैन सस्कृति वैदिक सस्कृति के समान तो प्राचीन है ही। जैन धर्म के चौबीस तीर्थङ्करो मे से प्रथम श्री ऋषभदेव का वर्णन वेदो और पुराणो मे भी आता है। पुराणो मे उनका स्मरण विष्णु के अवतार के रूप मे किया गया है। चौबीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर के समय से जिस श्रमण-सस्कृति का सूत्रपात हुआ, उसने भारतीय दर्शन को स्व-आत्मचिन्तन की नयी प्रेरणाएँ दी। अहिंसा और प्रेम जिस धर्म का मूलाधार हो वह समताभाव का प्रसारक भी होगा ही। 'श्रमण' शब्द का अर्थ ही यही है—सम, शम, श्रम। अर्थात् समानता, शाति और पुरुषार्थ। भगवान् महावीर का कथन था 'उवसमसारसामण्ण' अर्थात् श्रमण (जैन भिक्षु) का सार रूप धर्म उपशम अथवा आन्तरिक शाति है।

भगवान् महावीर व उनसे पूर्ववर्ती तीर्थंकरो के उपदेश की आधार-शिला समता-भाव ही है। उल्लेखनीय बात यह है कि वह क्षमता केवल मानव जाति या देवो-दानवो के लिए नही, छोटे से छोटे प्राणी के लिए भी है। महावीर की जीवनगाथा के अनेको प्रसग इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि उनकी समता-दृष्टि बहुत विशाल थी। भौतिक सकीर्णताओ के लिए उनमे कोई स्थान नही था। उनके उपलब्ध उपदेशो मे इस साम्यभाव के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उसे हम कई क्षेत्रो मे देख सकते हैं।

(क) आध्यात्मिक क्षेत्र—भगवान् महावीर ने अपने युग के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सकट की लहरो पर डोलती हुई मानव-सस्कृति की सुरक्षा के लिए सर्वप्रथम सिंह-गर्जना की कि प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है। उस युग की अपमानित नारी और कराहते हुए शोषित वर्ग ने जब यह सुना कि प्रत्येक मानव के लिए अनेक जन्मो के क्रमिक विकास से मोक्ष की प्राप्ति या मुक्ति सम्भव है तो उन्होने अपने मन-मस्तिष्क के वे सभी द्वार खोल दिए जिनसे नव आलोक भीतर आया चाहता था।

भगवान् महावीर ने कहा—कोई भी आत्मा शतप्रतिशत दुष्ट नही। आध्यात्मिक विकास के अकुर सभी हृदयो मे विद्यमान हैं। अन्तर केवल इतना है कि आलोक और ज्ञान-वर्षा

के अभाव मे वे प्रस्फुरित नही होते । जब तक वे अनुकूल वातावरण से असम्पृक्त रहते हैं तब तक वे भ्रमित और दीक्षाहीन पथिक की तरह अज्ञान की राहो पर भटकते रहते हैं। लेकिन उनका उद्धार असम्भव नही । उन्होने घोषणा की कि हर एक वलिया जैसा डाकू महर्षी बालमीकि बन सकता है । आवश्यकता है पथ-प्रदर्शक की । ऐसे चिन्तक वैद्य की जो देशकाल अवस्थानुसार उपदेशौषधि दे । जैन शास्त्रो मे महापुरुषो को भिषगवर अर्थात् सुयोग्य वैद्य कहा गया है । परमात्मा पद पर किसी विशेष जाति या वर्ग या व्यक्ति का अधिकार नही । कषायमुक्ति किलमुक्तखे' जिस व्यक्ति ने आन्तरिक शत्रुओ—क्रोध, मान, माया, लोभादि पर पूर्णत विजय प्राप्त करली है वह मुक्त है, सिद्ध है, बुद्ध है । जैन धर्म व्यक्ति विशेष को नमस्कार न कर त्रिलोक के त्रैकालिक महापुरुषो को वन्दना करता है। जैनाचार्य कहते हैं कि ससार के मरण-चक्र के अकुर रूप रागद्वेप जिसके नष्ट हो गए हैं वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो या जिन हो उसे मेरा नमस्कार है ।' (हेमचद्र) 'महावीर के प्रति पक्षपात नही, कपिलादि के प्रति विद्वेष नही । जिसका वचन युक्तियुक्त है, उसे स्वीकार किया जाए ।' (हरिभद्र) ।

इस प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र मे भगवान् महावीर की समता-दृष्टि ने समाज मे क्रातिकारी वैचारिक परिवर्तन ला दिया ।

(ख) सामाजिक क्षेत्र—भगवान महावीर ने सम्प्रदाय व जाति सम्बन्धी तुच्छ वधनो को अस्वीकार करते हुए कर्म के महत्व पर वल दिया । उन्होने कहा—'ओम् का जप करने से कोई ब्राह्मण नही होता, सिर मुंडा लेने से एक व्यक्ति साधु नही बन जाता । कुशावस्त्र धारण करने से तपस्वी नही बना जा सकता । बन मे निवास मात्र से मुनिपद प्राप्त नही होता । ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, समभाव से साधु, तप से तपस्वी एव ज्ञान से मुनि का पद प्राप्त होता है ।' 'मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है ।' (उत्तराध्ययन सूत्र) सन्यास एव गृहस्थ दोनो ही जीवन मे नारी को समानता का अधिकार मिला । जैन तीर्थ के चार स्तम्भ हैं—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका । सभी जातियो, वर्णो के जैन सन्यास मार्ग या श्रावक गृहस्थ धर्म के अनुयायी बन सकते हैं । उन्होने स्पष्ट कहा—साधु का वेष साधु को दुर्गति से नही बचा सकता अगर उसका आचरण निवृत्तिपरक नही । केवल बाह्य क्रियाकाड व्यर्थ है । यदि बाह्यस्नान से ही मुक्ति मिलती हो तो जलचर के जीव सब से पहले मुक्त हो जाते ।'

(ग) अन्य प्राणियो के प्रति दृष्टिकोण —

आचाराग सूत्र मे कहा गया है दूसरो को उस दृष्टि से देखो जिससे अपने को देखते हो । 'मिती मे सव्व भूएसु' अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति मेरी मैत्री है यह जैनो की सामायिक सस्था का मूल मत्र है । जैन दर्शन की यह मान्यता है कि केवल दूसरो को जीने ही नही देना

अपितु सुखपूर्वक जीने देना—मनुष्य का कर्त्तव्य है। भगवान महावीर का आदेश था कि यदि तुम शरीर द्वारा किसी का उपकार करने मे असमर्थ हो तो अपनी अन्तरात्मा मे इन भावनाओ की नित्य आराधना करो—

१ सत्वेपु मैत्रीम्—प्रत्येक प्राणी से मैत्री भाव।

२ गुणिपु प्रमोदम्—प्रत्येक क्षेत्र के गुणी पुरुपो के प्रति हर्ष की भावना।

३ विलष्टेपु कृपापरत्वम्—दु खी प्राणियो के प्रति करुणाभाव।

४ विपरीत वृतौ माध्यस्थ भावम्—विरोधियो के प्रति तटस्थ भाव।

(घ) अन्य धर्मो के प्रति दृष्टिकोण।

जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त ने सभी अन्य धर्मो और दर्शनो मे सत्यता के अश की स्वीकृति दी है। समता दृष्टि का इससे बडा और क्या उदाहरण हो सकता है कि इस सिद्धान्त स्वधर्म की सत्यता का ही यशोगान नही किया अपितु सभी धर्मो मे निहित सत्यो के प्रति अपनी विनम्र आस्था व्यक्त की है। हम अल्पज्ञो के मत पूर्ण सत्य नही हो सकते। उनमे आशिक सत्यता है। उसी सत्याश की खोज कर उसे ग्रहण करना चाहिए। मैं ही सच्चा हूँ के स्थान पर हमे यह कहना चाहिए कि मेरा कथन सत्य हो सकता है। हाथी और छै अन्धो की प्राचीन कथा जैनो मे प्रसिद्ध है। उन्होने हाथी के एक एक अग को पूर्ण हाथी समझ कर सघर्प किया। परन्तु सब की मान्यता मे आशिक सत्यता थी।

भगवान महावीर ने प्रथम स्वय ज्ञानप्राप्ति का व्रत लिया और वर्षो तक कठोर साधना की। महान् तप और साधना से जो पवित्र आलोक उनके हृदय मे उदित हुआ, उन्होने जनकल्याणार्थ विना किसी भेदभाव के ससार मे बिखेरा। सम्पूर्ण जैन श्रमण सस्कृति मे कही कोई ऐसी लक्ष्मण-रेखा नही जिसका उल्लघन किसी धर्म या जाति विशेष के लिए वर्जित हो। इस धरती का प्रत्येक प्राणी आत्म-कल्याण का हकदार है। भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य स्वय अपने कर्मों का कर्ता तथा भोक्ता है। कृत कर्मो से ईश्वरीय शक्ति उसे मुक्त नही कर सकती। ईश्वर कर्तृत्व से रहित है। वह प्रवृत्ति की प्रेरणा से भी रहित है। तप, त्याग आदि के द्वारा आत्मोत्कर्ष कर प्रत्येक प्राणी ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। ईश्वरत्व आत्मा की शुद्धावस्था का नाम है।

जैन शास्त्रो मे श्रमण-भिक्षु-साधु की जो परिभाषाएँ दी गई हैं अथवा उसका स्वरूप बताया गया है, वह मननीय है। उससे जैन धर्म की समता-दृष्टि पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाती है। जैनाचार्यो की कुछ उक्तिया यहा उद्धृत हैं।

"श्रमण समता, अहकाररहित और आसक्तिरहित होता है। वह प्रत्येक प्राणी मे समान भाव रखता है। लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशसा और मान-अपमान मे समभाव ही रहता है।"

"जिसका किसी से द्वेष नही, जो सब जीवो से प्रेम करता है वही सच्चा श्रमण होता है।"

"श्रमण न इस लोक की कामना करता है न परलोक की, वह सर्व और चन्दन तथा आहार और अनाहार मे भी समान भाव ही रखता है।"

"जैसे मुझे दु ख प्रिय नही है वैसे ही अन्य सब जीवो को दु ख इष्ट नही।" इस प्रकार जो न हिंसा करता है और सब जीवो के प्रति समान अथवा तुल्य व्यवहार करता है, वही श्रमण है।

नि सदेह श्रमण भगवान् महावीर की दृष्टि भारतीय साहित्य, सस्कृति और जनजीवन की सामाजिक और आर्थिक विषमता की खाइयो को भर सकी है। काश ! विश्व उनके इस कथन का अनुसरण करे--'स्वय के प्रति सयमी बनो, पर के प्रति मृदु।'

तीन जगत का हित करने वाले श्री सर्वज्ञ भगवानो ने जो मार्ग बतलाया उस पर चलने से ही हमारा कल्याण हो सकता है। विश्व के सर्व प्राणियो मे मैत्रीपूर्ण दयामय धर्म की भावना जागृत हो ऐसी शुभ भावना रखना ही सच्चा धर्म है।

शिव मस्तु सर्व जगत, परहित भवन्तु भुतगणा।
दोषा प्रयान्तुनाशम्, सर्वत्र. सुखी भवन्तु लोका।

षष्ट खंड

तीर्थ के सदस्यो का विवरण व उनके कार्यो का उल्लेख
ग्रन्थ प्रकाशन मे व कमरा वनाने में सहायता देने वालो की शुभ नामावली
तथा श्री कापरड़ा तीर्थ के ५० वर्षो की प्रगति का संक्षिप्त विवरण

अनुक्रमणिका

प्रतिष्ठा के बाद

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी म० ने इस तीर्थ का कार्य सुचारु रूप से चलाने हेतु पेढी कायम की जिसका नाम सेठ आनदजी कल्याणजी रखा। भारत मे चल रही इस नाम की पेढी से इसका कोई सम्बन्ध नही है। यह स्वतत्र पेढी है। केवल आनद और कल्याण हो इस भावना से यह नाम रखा था। व्यवस्था करने व कार्य की देखरेख हेतु एक २१ सदस्यो की समिति बनाई गई जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सभापति—सेठ माणकलाल भाई मनसुख भाई मु० अहमदाबाद

मत्री—शाह पन्नालालजी सराफ बिलाडा व श्री माणकराजजी मुणोत वकील जैतारण

मेम्बर—(१) शाह चाँदमलजी हीराचन्दजी (२) शाह अनोपचन्दजी लालचन्दजी (३) अचलदासजी जोगीदासजी (४) कमलसी गुलाबचन्द (५) मीठालालजी बालिया मु० पाली।

[१] शाह अमोचन्दजी गुलाबचन्दजी [२] शाह पन्नाजी कुपाजी मु० पालडी।

[१] शाह मूलचन्दजी जेवतराजजी [२] शाह जसराजजी अनोपचन्दजी मु० घाणेराव

[१] शाह हीराचन्दजी सुराणा [२] शाह गजराजजी सिंघवी मु० सोजत

[१] वकील जालमचन्दजी [२] वकील इन्द्रमलजी लोढा मु० जोधपुर

[१] मेहता लक्ष्मीप्रतापजी मु० पीपाड

अहमदाबाद से—[१] सेठ प्रतापसी मोहनलाल [२] वकील केशवलाल अमथालाल [३] सेठ लालभाई भोगीलाल [४] सेठ चुन्नीलाल भगू भाई।

उपरोक्त समिति के सदस्य बहुत दूर दूर के थे अत. उनका आना कम हुआ। केवल निकट के रहने वाले श्री पन्नालालजी सराफ बिलाडा, श्री लक्ष्मीप्रतापजी मेहता पीपाड व श्री माणकराजजी मुणोयत जैतारण इन तीनो की देखरेख मे कार्य चलता रहा किन्तु तीनो सज्जनो का स्वर्गवास हो जाने से वि० स २००८ के वैशाख कृष्ण ३ दिनाक १३-४ ५२ को इस तीर्थ पर श्री जैन श्वेताम्बर सघ की एक सभा बुला कर नई समिति का गठन किया गया। इसमे २१ सदस्य चुने गए और इसका नाम 'साधारण सभा' रखा गया। किंतु प्रतिदिन होने वाले कार्य को कौन देखेगा यह प्रश्न उपस्थित होने पर एक ९ सदस्यो की व्यवस्थापक समिति बनाई गई। उपरोक्त दोनो समितियो के नामो का विवरण इस प्रकार है—

सभापति—सेठ राजेन्द्रकुमार मु० अहमदाबाद । स्थानान्तर सेठ माणकलाल भाई के लडके
उप सभापति—सेठ मूलचन्दजी उमाजी मालवाड वाले हाल मु० जोधपुर
मत्री—शाह गजराजजी सराफ मु० बीलाडा । स्थानातर शाह पन्नालालजी सराफ के भाई
उप मत्री—शाह रिखबराजजी मुणोयत मु० जोधपुर स्थानातर शाह माणकराजजी के लडके
मेम्बरान—पोपाड—श्री धर्मचन्दजी मेहता, श्री तेजराजजी मेहता, श्री जवाहरलालजी दफ्तरी
,, बिलाडा—शाह अमोलकचन्दजी भण्डारी, शाह पारसमलजी सराफ
,, सोजत -शाह सम्पतराजजी भण्डारी एडवोकेट
,, जोधपुर—शाह नगराजी मेहता एडवोकेट व श्री उमरावमलजी लोढा
,, बाली—शाह मूलचन्दजी चोरडिया
,, पाली—शाह चम्पालालजी पोरवाल
,, पालडी—शाह केशरीमलजी पोरवाल
,, घाणेराव—शाह मूलचन्दजी जेवतराजजी
,, ब्यावर—शाह सुगनचन्दजी मेहता
,, जैतारण—शाह चादमलजी मेहता एडवोकेट
,, बीसलपुर—शाह हस्तीमलजी राका
,, कापरडा—शाह सुगनचन्दजी जागडा
,, अहमदाबाद—सेठ ईश्वरदास मूलचन्द (२) सेठ साराभाई जयसिह भाई (३) सेठ चुन्नीलाल गोकुलदास (४) सेठ जयसिह भाई कालीदास

उपरोक्त कमेटी ने हमेशा देखरेख करने के लिए एक व्यवस्थापक कमेटी बनाई। सदस्य निम्नलिखित हुए ।

सभापति—शाह अमोलकचदजी भडारी मु० बीलाडा
उप सभापति—शाह नगराजजी मेहता एडवोकेट जोधपुर
मत्री—शा० तेजराजजी मेहता पीपाड
उपमत्री—शा० पारसमलजी सराफ बीलाडा
कोषाध्यक्ष—शा० गजराजजी सराफ मु० बीलाडा
मेम्बर—शा० धरमचन्दजी मेहता पीपाड
,, शा० चादमलजी मेहता एडवोकेट जैतारण
,, शा० उमरावमलजी लोढा जोधपुर
,, शा० सुगनचन्दजी जागडा कापरडा

तीर्थ का कार्य सुचारु रूप से चले इसके लिए इसका एक विधान बनाया गया उनके अनुसार ५ वर्ष मे चुनाव कराने का था पर कारणवश ६ वर्ष के पश्चात् तारीख

२५-३-५८ को नया चुनाव हुआ। उसमे व्यवस्थापक समिति के सदस्यो की सख्या ९ से बढा कर १५ कर दी गई तथा साधारण सभा जो २१ सदस्यो की थी उसको समाप्त कर यह अधिकार श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सघ जो कि वार्षिक मेले पर चैत्र शुक्ल ५ को एकत्रित होता है उनको दे दिया गया कि व्यवस्थापक समिति का चुनाव कर ले। विधान ने भी कुछ सशोधन कर उसे नया रूप दिया गया और दिनाक ९-४-६२ को प्रकाशित कर दिया गया।

नये विधान के अनुसार व्यवस्थापक सदस्यो की सख्या १५ से बढा कर १७ कर दी गई तथा चुनाव की अवधि भी ५ वर्ष के बजाय ३ वर्ष की ही कर दी गई। सन् '६३ मे चुनाव हुआ उसमे सदस्यो की सख्या १७ से बढा कर २१ कर दी गई और पिछला चुनाव जो सन् ६६ मे हुआ उसके सदस्यो की नामावली इस प्रकार है—

क्रम सख्या	स्थान		नाम
१	पीपाड	श्री	जवाहरलालजी दफ्तरी
२	,,	,,	मदनराजजी चौधरी
३	,,	,,	पन्नालालजी कटारिया
४	बिलाडा	,,	भैरूसिहजी मेहता
५	,,	,,	चम्पालालजी सराफ
६	,,	,,	पारसमलजी कामदार
७	जैतारण	,,	चाँदमलजी मेहता
८	,,	,,	घीसूलालजी फूलफगर
९	ब्यावर	,,	चम्पालालजी सेठ
१०	सोजत	,,	सम्पतराजजी भडारी
११	बाळा	,,	मूलचन्दजी चौरडिया
१२	कापरडा	,,	सुगनचन्दजी जाँगडा
१३	खारिया	,,	भँवरलालजी बुरड
१४	जोधपुर	,,	चिमनचन्दजी भण्डारी
१५	,,	,,	समरथमलजी मरडिया
१६	अन्य	,,	तेजराजजी भसाली, पीपाड
१७	,,	,,	पारसमलजी सराफ, बिलाडा
१८	,,	,,	मानचन्दजी भण्डारी, जैतारण
१९	,,	,,	सज्जनराजजी कुम्भट, जोधपुर
२०	,,	,,	सोहनराजजी भसाली, ,,
२१	,,	,,	शर्बतमलजी लोढा, ,,

वर्तमान मे २१ सदस्यो मे निम्न ४ पदाधिकारी हैं—

(१) श्री तेजराजजी भसाली, अध्यक्ष
(२) ,, चिमनचन्दजी भडारी, उपाध्यक्ष
(३) ,, पारसमलजी सराफ, मन्त्री
(४) ,, पन्नालालजी कटारिया, उपमन्त्री

नोट —कोषाध्यक्ष का पद समाप्त कर दिया है ।

तीर्थ के अब तक जितने सदस्य हुए उनमे—

(१) श्री माणकलाल मनसुख भाई
(२) ,, पन्नालालजी सराफ
(३) ,, लक्ष्मीप्रतापजी भसाली
(४) ,, माणकराजजी मुणोयत
(५) ,, अमोलकचदजी भडारी

उपरोक्त ५ सदस्यो का स्वर्गवास हो गया । इन्होने जीवनपर्यन्त तीर्थ की जो अनुपम सेवा की वह इतिहास मे सदा अमर रहेगी । उनका तथा वर्तमान मे जितने सदस्य हैं और जो तीर्थ की सेवा मे बराबर हाथ बटाते हैं उन सबका जीवन-परिचय सचित्र अगले पृष्ठो मे दिया गया है ।

सेठ माणकलाल मनसुखभाई, अहमदाबाद

स्वर्गीय श्रेष्ठिवर माणिकलाल मनसुख भाई अहमदाबाद

आपका जीवन अत्यन्त सादा, उदार और धर्मप्रिय रहा। धर्म-कार्य करते हुए आपको जितनी प्रसन्नता होती थी उसका वर्णन करना कठिन है। आप अहमदाबाद से छ री पालता सघ श्री शत्रुंजय तीर्थ के लिए आचार्य श्री के सानिध्य मे निकला था जो उस समय का बडे से बडा सघ माना गया। उसमे सैकडो साधु-साध्विएँ एव सहस्रो श्रावक-श्राविकाऐ थी। सघ गिरनार तक गया इससे यह सहज ही मे अनुमान लगाया जा सकता है कि कितना द्रव्य व्यय हुआ होगा। यही क्यो एक बडा उज्झमणा भी कराया जिसमे एक लाख रु० से ऊपर का व्यय हुआ। इस प्रकार अनेक धर्म कार्यो मे लाखो का द्रव्य व्यय कर आपने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया।

सेठ साहब आचार्य श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज के प्रिय भक्त थे। जब कापरडाजी तीर्थ का जीर्णोद्धार कार्य प्रारम्भ हुआ तो सर्वप्रथम आपका सहयोग रहा। मन्दिर का चबूतरा कच्चा था उसे पक्का कराने हेतु पन्द्रह हजार रुपए दिए। धर्मशाला निर्माण के लिए भूमि खरीद कर भेट की। वर्तमान पेढी के पास एक बडा कमरा बनवा कर तीर्थ को भेट किया। स्वर्गीय आचार्य श्री ने तीर्थ के उद्धार के लिए जो कमेटी बनाई आपको उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया जिसे आपने रुचिपूर्वक निभाया। वि० १९७५ से २००५ तक तीस वर्ष पर्यंत निरन्तर आपकी ओर से मेले के दिन स्वामीवात्सल्य होता रहा। आपके सहयोग से ही तीर्थ की उन्नति हुई। आपकी धर्मपत्नी का भी आपके ही समान तीर्थ के प्रति प्रेमभाव है और जब कभी समय मिलता है यात्रा करने पधारती रहती हैं।

सेठ साहब के स्वर्गारोहण के उपरान्त आपके सुपुत्र श्री राजेन्द्रकुमारजी को अध्यक्ष बनाया गया। किन्तु पिता के समान आपने दिलचस्पी नही ली। हमारी तो परम प्रभु से यही विनती है कि एक दिन अवश्य ऐसा आएगा जब आपका ध्यान तीर्थ की उन्नति की ओर जायेगा।

जीवन परिचय

श्रीमान पन्नालालजी सा० सराफ बीलाड़ा (राजस्थान)

आप धर्मनिष्ठ एव समाजसेवी सज्जन थे। श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा थी। वि० स० १९७५ मे जब तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा हुई उसमे आपने पूरा सहयोग दिया। प्रतिष्ठा के बाद २१ सदस्यो की जो व्यवस्थापक समिति बनी उसमे आप मन्त्री पद पर थे। आपने जीवनपर्यंत तीर्थ की जो सेवा की वह अनुकरणीय है।

श्रीमान लक्ष्मीप्रतापजी सा भंसाली पीपाड़ (राजस्थान)

आप धर्मप्रेमी एव समाजसेवी सज्जन थे। श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति आपकी अपूर्व श्रद्धा थी। वि० स० १९७५ मे जब तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा हुई उसमे आपने अच्छा भाग लिया। प्रतिष्ठा के पश्चात् व्यवस्थापक समिति बनी उसमे आप भी सदस्य थे। आपने जीवनपर्यंत तीर्थ की सेवा की। आपकी तरफ से १०-१२ साल तक अखण्ड ज्योति चलती थी।

श्रीमान माणकराजजी सा मुणोत वकील जैतारण (राजस्थान)

आप जैन धर्म पर अटल श्रद्धा रखने वाले सज्जन थे। श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति आपका अच्छा प्रेम था। तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा वि० स० १९७५ मे हुई उसमे आपने अच्छा सहयोग दिया। आपने तीर्थ पर बडा कमरा, रसोईघर तथा स्नानघर बनवाया। प्रति वर्ष मेले पर ८ दिन अठाईमहोत्सव मे आप बराबर रहते थे।

श्रीमान अमोलकचंदजी सा. भडारी बीलाड़ा (राजस्थान)

आपका श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति बडा ही प्रेम था। यहा के अदालती मामलो में आप बडी रुचि लेते थे। आप सन् १९५२ मे यहा की व्यवस्थापक समिति के अध्यक्ष चुने गए। आपने जीवनपर्यन्त इस तीर्थ की जो सेवा की वह भुलाई नही जा सकती। इस तीर्थ की उन्नति के लिए आप बराब र ध्यान देते थे।

भूतपूर्व कार्यकारिणी के पदाधिकारी

श्रीमान पन्नालालजी, सराफ
बिलाडा (राज०)
मत्री १६७५ से २००७
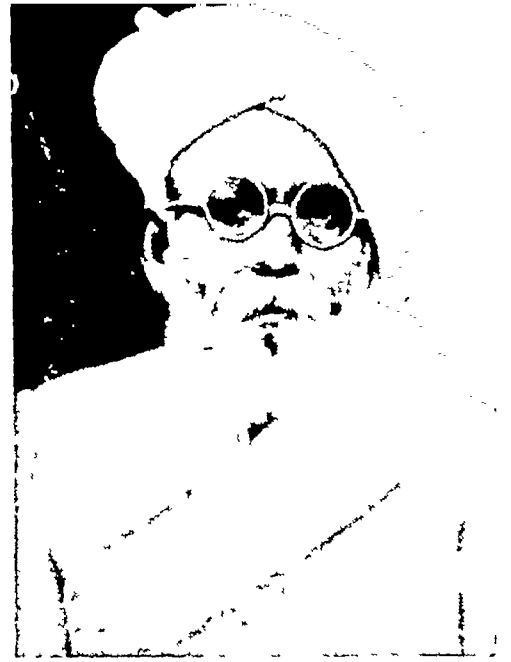
श्रीमान लक्ष्मीप्रतापजी भन्साली
पीपाड शहर (राज०)
सदस्य १६७५ से २००५

श्रीमान माणकराजजी मुणोयत वकील
जैतारण (राज०)
सदस्य १६७५ से २०००

श्रीमान अमोलकचन्दजी, भडारी
बिलाडा (राज०)
अध्यक्ष २००८ से २०१६

श्रीमान् जवाहरलालजी दफ्तरी, पीपाड़ शहर

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के गत ६ वर्षों से सदस्य हैं। स्वर्ण जयन्ती महोत्सव समिति के आप सयोजक हैं। इस कार्य की सफलता के लिए आप हर सम्भव प्रयत्नो से सलग्न रहते हैं। तीर्थ के प्रति उन्नतशील विचार और उसके अभ्युत्थान हेतु आपकी सद्भावनाएँ एव योजनाए सराहनीय रहती हैं। हाल ही मे जो तीर्थ पर निर्माण कार्य चल रहा है उसमे आपकी पूर्ण रुचि है और आप समय-समय पर वहाँ जाकर देखभाल भी करते रहते हैं। आप लेखक तथा कवि भी हैं। आपने कुछ पुस्तके भी लिखी हैं। आपने इस तीर्थ के मूलनायक भगवान की भक्तिवश कई स्तवन रचे हैं जो इस ग्रथ मे छपाए जा रहे हैं। आप सरलस्वभावी तथा मिलनसार हैं। तीर्थ के प्रति आपकी श्रद्धा हैं। आपने यहाँ कमरा बनाने हेतु १००१) रु० प्रदान किए। इसके पूर्व समवसरण मन्दिरजी की प्रतिष्ठा के समय २५१) रु० स्थाई साधर्मी वात्सल्य फड मे २०१) रु० प्रदान किए। इसके अतिरिक्त समाजसुधार की ओर भी आप सचेष्ट रहते हैं। आप पीपाड शहर मे श्री जैन नवयुवक मण्डल के अध्यक्ष, श्री जैनश्वेताम्बर मन्दिर सोसायटी के मन्त्री तथा अनेक सस्थाओ के पदाधिकारी हैं। आप धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों मे बराबर सहयोग देते रहते हैं। आपने पीपाड शहर मे 'जवाहर पुस्तकालय' पच्चीस हजार रुपयो की लागत से निजी बनवाया जिससे आम जनता लाभ उठाती है। पीपाड शहर के ओसवाल समाज के भवन निर्माण मे आपने दो हजार रुपये प्रदान किए। आपने श्री गागाणी तीर्थ पर कमरा बनवाने हेतु ५०१) रु० प्रदान किए। और भी कई एक सस्थाओ की आप समय-समय पर आर्थिक मदद करते रहते हैं।

श्रीमान् मिश्रीमलजी जैन तरगित

आप इस स्वर्ण जयन्ति महोत्सव ग्रथ के सम्पादक है। आपका मूल निवास स्थान मेडता है काफि अरसे से आप जोधपुर मे ही रहते हैं आप अच्छे पढे लिखे विद्वान है। आप शिस्ट हास्य व्यग्य लेखक है। आप गत २५ वर्षों से लेखक कार्य कर रहे है। आपने अब तक कई पुस्तके लिखी है। आप धार्मिक विचार वाले विनोद प्रिय सज्जन है। आपके समक्ष निज का कार्य होते हुए भी आपने ग्रन्थ सम्पादन के कार्य मे बडी रुची ली है आपकी देख रेख मे ही यह ग्रन्थ तैयार हुआ है। आप ने जो सहयोग दिया वह सराहनीय हे।

श्रीमान चांदमलजी मेहता जैतारण

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के वि० स० २००८ से सदस्य हैं। आप दो वर्ष तक उपाध्यक्ष एव ढाई वर्ष तक अध्यक्ष रह चुके हैं। आप शात, विनम्र एव मधुर-भाषी हैं। समय समय पर इस तीर्थ को आर्थिक सहायता पहुचाते रहते हैं। हाल ही मे आपने कमरा बनाने हेतु १००१) रु० प्रदान किए। इसके पूर्व समवसरण की प्रतिष्ठा मे ५०१) व स्थाई साधर्मी वात्सल्य फण्ड मे २०१) तथा श्री भैरूजी के मदिर निर्माण मे १०१) रु० प्रदान किए। आपकी इस तीर्थ के प्रति बडी श्रद्धा है और तीर्थ-उन्नति के लिए आपके विचार सराहनीय रहते हैं।

श्रीमान मानचन्दजी भण्डारी जैतारण

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के वि० स० २००६ से सदस्य हैं। आपने ढाई वर्ष तक मत्री पद पर बडी योग्यता से कार्य किया आपके पूर्वजो का मदिर होने से आपकी इस तीर्थ के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। आप इस तीर्थ की सेवा तन मन धन से करते रहते हैं। आप बहुत ही कर्मठ कार्यकर्ता हैं। स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मे आपने प्रबन्धक का कार्य बडे सुचारु रूप से किया। तीर्थ मे जब कभी भी आपकी सेवा की जरूरत रहती है आप हर घडी तैयार रहते हैं। आपने समवसरण मदिर की प्रतिष्ठा मे २५१) रु०, स्थाई साधर्मी वात्सल्य फड मे २०१) रु० प्रदान किए। तीर्थ की उन्नति के लिए आप सदा प्रयत्नशील रहते हैं जो अनुकरणीय है। आप जोधपुर खरतरगच्छ समाज के मन्त्री, श्री भैरूबाग तीर्थ, श्री गागाणी तीर्थ और श्री नाकोडा तीर्थ की कार्यकारिणी के सदस्य हैं।

श्रीमान तेजराजजी भसाली, पीपाड़ शहर

आप वि०स० २००८ को व्यवस्थापक समिति के सदस्य बनकर मत्री पद पर नियुक्त हुए। २०१४ तक मत्री पद पर रहे। २०१६ के चुनाव मे आप अध्यक्ष पद पर सुशोभित हुए। तब से अब तक इस पद का कर्त्तव्य पालन करते आ रहे हैं। आप बडे गम्भीर, विनम्र और मिलनसार हैं। आपने तीर्थ पर बडा टाका बनाने मे, मदिर के कगूरे छाजे लगाने और बाहर की दुकाने बनवाने मे घोर परिश्रम किया। आपने बाहर से धन सग्रह भी किया।

दक्षिण प्रान्त मे रायपुर मे अपने प्रयत्न से एक जैन मदिर तथा आयुर्वेदिक चिकित्सालय स्थापित कराया। उससे निजी द्रव्य की सहायता भी प्रदान की। तीर्थ के स्थाई स्वामीवात्सल्य फड मे पाच सौ एक तथा समवसरण मदिरजी की प्रतिष्ठा मे भी ५०१)

व्यवस्थापक कमेटी के भूतपूर्व पदाधिकारी

श्रीमान चादमलजी सा० मेहता, जैतारण

उपाध्यक्ष २५-३-५८ से १८-६-६०
अध्यक्ष १६-६-६० से २८-३-६३

श्रीमान मानचदजी सा० भडारी, जैतारण

मत्री १९-६-६० से २८-३-६३

व्यवस्थापक कमेटी के भूतपूर्व पदाधिकारी

श्रीमान चादमलजी सा० मेहता, जैतारण

उपाध्यक्ष २५-३-५८ से १८-६-६०

अध्यक्ष १९-६-६० से २८-३-६३

श्रीमान मानचदजी सा० भडारी, जैतारण

मत्री १९-६-६० से २८-३-६३

रुपये भेट किए, हाल ही मे एक बडा हाल २७×२० फुट का बनवा कर तीर्थ को भेट कर रहे हैं। आप पीपाड नगर मे श्री जैन श्वेताम्बर मदिर सोसायटी के अध्यक्ष हैं। पीपाड शहर मे आपने जैन पाठशाला की स्थापना की जो कुछ अर्से तक अपनी ओर से चलाई जहाँ धार्मिक शिक्षा दी जाती है। एक उद्योग शाला भी अपनी तरफ से चला रहे हैं जहाँ सिलाई का काम सिखाया जाता है। जोधपुर भैरू बाग तीर्थ मे एक वरडा बनवाया। ओसवाल समाज (पीपाड शहर) के दोनो न्याती नोहरो मे क्रमश ११०१) १००१) रु० प्रदान किए और भी अनेक छोटे बडे कार्यों मे सहयोग देते रहते हैं। आपका इस तीर्थ के प्रति पूर्ण प्रेम है और इसके लिए सदैव तन मन धन से तैयार रहते हैं।

श्रीमान पारसमलजी सराफ, बिलाडा

आप श्री हस्तीमलजी के पुत्र तथा श्री मोहनलालजी के दत्तक पुत्र हैं। तीर्थ की पुन प्रतिष्ठा वि० स० १९७५ मे हुई उस समय तिमजला मे श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान कराई। आप तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के विक्रम सवत २००८ मे उपमत्री चुने गए तत्पश्चात वि० स० २०१४ मे मन्त्री पद पर नियुक्त हुए। पुन. वि० स० २०१९ मे फिर आप मत्री पद पर चुने गए जो कि अब तक हैं। आप मे कार्य-सचालन की अच्छी योग्यता है। आपकी धर्म कार्यों के प्रति विशेष रुचि रहती है। आपकी तीर्थ के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। श्री कापरडाजी तीर्थ मे आप वर्तमान मे १ बडा हाल बनाने मे अपनी तरफ से आधी धनराशि प्रदान की। समवसरण प्रतिष्ठा मे ५०१) रु तथा स्थाई साधर्मी वात्सल्य फण्ड मे २०१) रु प्रदान किए। इसके अलावा श्री राणकपुरजी तीर्थ मे पुन प्रतिष्ठा के समय श्री पद्मप्रभुजी की प्रतिमा विराजमान कराई। श्री नाकोडा तीर्थ पर एक कमरा बनवायार्थ तथा भैरूबाग तीर्थं जोधपुर मे एक बरण्डा बनवाया। आपके परिवार की तरफ से श्री गोडवाड पचतीर्थी का सघ वि स २०१३ मे व २०२४ मे श्री केशरियाजी व पचतीर्थी गोडवाड का सघ निकलवाया जिसमे पूर्ण व्यय आपकी तरफ से हुआ। आप समवसरण मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय सयोजक चुने गए थे। आपने बडी योग्यता से सचालन किया। इस समय आप स्वर्ण जयन्ती महोत्सव समिति मे भी सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे हैं। धन सग्रह करने हेतु आपने बाहर जाकर अथक परिश्रम किया। तीर्थ के प्रति आपकी सदा ही सद्भावना रही है जो सराहनीय है। तीर्थ के कार्य के लिए आप हर घड़ी तैयार रहते हैं तथा यथाशक्ति तन मन धन ने सहायता पहुँचाते हैं।

श्रीमान् चिमनचदजी भडारी जोधपुर

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के वि० स० २०१६ से उपाध्यक्ष पद पर चुने गए सो आजपर्यन्त हैं। तीर्थ के प्रति आपकी बडी श्रद्धा है। आपने स्थाई स्वामी-वात्सल्य फण्ड मे ५५१) रु व ग्रथ प्रकाशन मे २५१) रु प्रदान किए। आपका जोवन-परिचय इसी ग्रथ मे अन्यत्र दिया जा रहा है। तीर्थ पर कमरा बनवाने निमित्त आपका आश्वासन मिला है। आप इस तीर्थ की तन मन धन से सेवा करते हैं।

श्रीमान् भैरोंसिहजी मेहता, बिलाड़ा

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के वि स २०१४ से ही सदस्य बनकर उप-मत्री पद पर नियुक्त हुए। लगातार ८ वर्षो तक आपने बडी लगन के साथ सेवा की। अभी आप सदस्य हैं पर तीर्थ के कार्य मे जब भी जरूरत पडती है तैयार रहते हैं। आप बहुत कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। पेढी के हिसाब आदि देखने तथा जमाखर्च करवाने के कार्य मे बडी दिलचस्पी लेते हैं। अभी जो वहाँ निर्माण कार्य चल रहा है उसमे आपकी बड़ी दिलचस्पी है आपने कमरा बनवाने हेतु १००१) रु प्रदान किये हैं। इसके पूर्व समवसरण प्रतिष्ठा मे ५०१) रु, प्रेम द्वार बनवाने मे ३५१), स्थाई स्वामीवात्सल्य फण्ड मे २०१) रु, श्री भैरूजी के मदिर निर्माण मे ५१) रु प्रदान किए। आपकी हर घडी इच्छा रहती है कि यह तीर्थ सदा ही उन्नति पथ पर अग्रसर हो।

श्रीमान् पन्नालालजी कटारिया, पोपाड़

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति मे गत ६ वर्षो से हैं। पिछले ३ वर्ष से उपमत्री पद पर हैं। समय समय पर तीर्थ का कोई कार्य होता है तो बडे उत्साह के साथ अपना सहयोग देते हैं। आपने अपने स्व० पू० पिताजी श्री जुगराजजी व माताजी की यादगार मे एक कमरा मय बरामदा के बनवाया है। तीर्थ पर आपकी पूर्ण श्रद्धा है।

श्रीमान् चम्पालालजी सराफ, बीलाड़ा

आप स्व० श्री पन्नालालजी सराफ के सुपुत्र हैं। उनके स्वर्गवास के बाद आपके स्व० काकासा श्री गजराजजी ने कोषाध्यक्ष पद सभाला। उनके स्वर्गवास के बाद आपने कई वर्ष तक इस पद को सभाला। आप इस समय व्यवस्थापक समिति के सदस्य हैं। तीर्थ के प्रति आपकी बडी श्रद्धा है। आपने यहा कमरा बनवाने हेतु १००१) रु० प्रदान किये। इसके पूर्व समवसरण प्रतिष्ठा मे २५१) रु०, स्थाई स्वामीवात्सल्य मे १०१) रु० प्रदान किए। आप विनम्र एव दूरदर्शी विचारधारा के हैं। तीर्थ की तन मन धन से सेवा करने मे अग्रणी रहते हैं।

श्री व्यवस्थापक समिति के पदाधिकारी

श्रीमान चिमनचन्दजी, सा० भंडारी
जोधपुर (राज०)
उपाध्यक्ष १९-६-६०

श्रीमान भेरूंसिंहजी, सा० मेहता
बिलाडा (राज०)
उपमंत्री २५-३-५८ से २६-३-६६
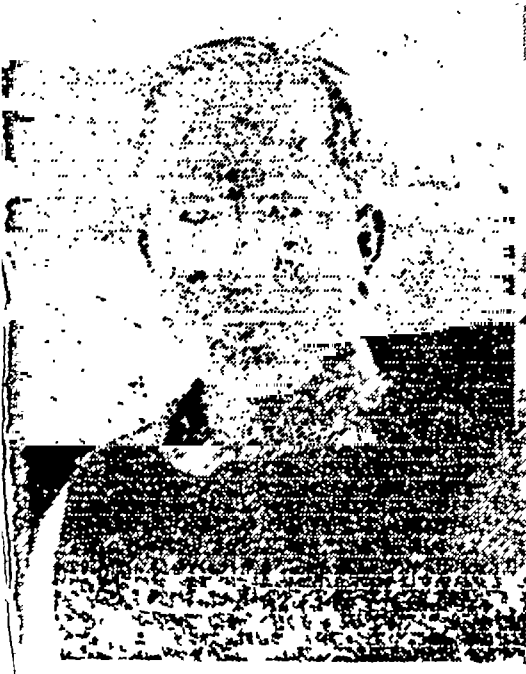
श्रीमान पन्नालालजी, सा० कटारिया
पीपाड शहर (राज०)
उपमंत्री २७-३-६६

श्रीमान चंपालालजी, सा० सराफ
बिलाडा (राज०)
कोषाध्यक्ष ३-१०-५६ से २६-३-६६

श्री व्यवस्थापक समिति के सदस्य
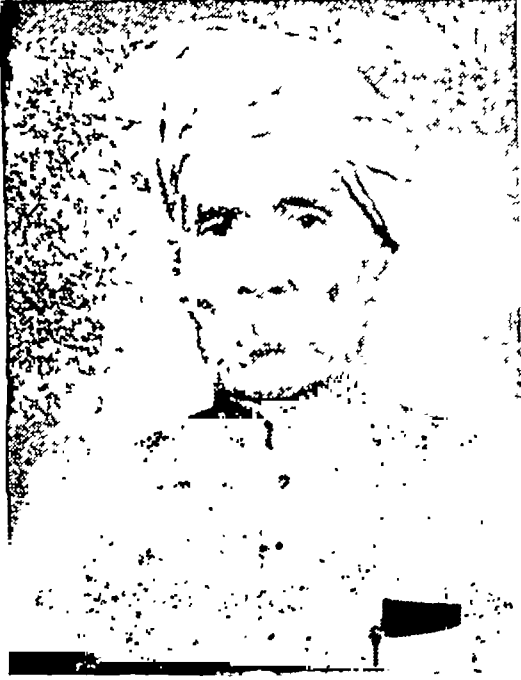
श्रीमान सपतराजजी, भडारी, एडवोकेट
सोजत (राज०)
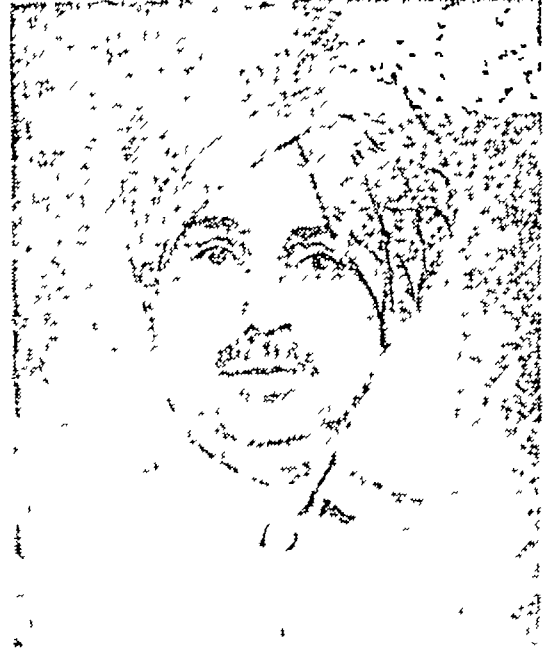
श्रीमान चपालालजी, सेठ
ब्यावर (राज०)

श्रीमान पारसमलजी, कामदार
बिलाडा (राज०)
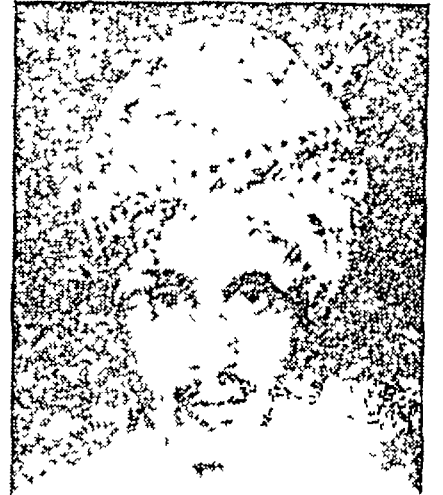
श्रीमान मदनराजजी चौधरी
पीपाड शहर (राज०)

श्रीमान सम्पतराजजी भण्डारी एडवोकेट, सोजत

आप १३-४-५२ से साधारण सभा के सदस्य रहे हैं और २१-३-६१ से व्यवस्थापक समिति के सदस्य हैं। आप इस तीर्थ की उन्नति हेतु योजनाऐं प्रस्तुत करते रहते हैं। एडवोकेट होने से कानूनी सलाह भी देते रहते हैं। आपने स्थाई साधर्मी वात्सल्य फण्ड मे २०१) रु प्रदान किए। वृद्धावस्था होने पर भी आपका उत्साह सराहनीय है। धर्म के प्रति आपकी श्रद्धा एव रुचि अनुकरणीय है।

श्रीमान चम्पालालजी सेठ, ब्यावर

आप मूल निवासी जैतारण के हैं किन्तु लगभग ३० वर्ष से ब्यावर मे रहते हैं। आप ब्यावर से व्यवस्थापक कमेटी के सदस्य चुने गये हैं। ६ वर्षो से कार्य कर रहे हैं। आपका प्रेम इस तीर्थ पर कई वर्षो से है और कई बार यात्रा करने हेतु पधारते रहते हैं। आपने स २०२३ मे समवसरण मदिरजी की प्रतिष्ठा मे अति सहयोग दिया। आपकी ओर से एक दिन का साधर्मी वात्सल्य तथा पूजा प्रभावना हुई। इसके अतिरिक्त आप समय-समय पर आर्थिक सहायता देते रहते हैं। स्थाई साधर्मी फण्ड मे भी आपने २०१) रु प्रदान किये। आपका तप त्याग सराहनीय है।

श्रीमान पारसमलजी कामदार, बिलाड़ा

आप ३ वर्ष से श्री व्यवस्थापक समिति के सदस्य हैं। मिलनसार और विनम्र व्यक्ति हैं। तीर्थ के प्रति आपकी श्रद्धा व सद्‌भावना सराहनीय है। आपने स्थाई साधर्मी वात्सल्य फण्ड मे २०१) रु प्रदान किये।

श्रीमान मदनराजजी चौधरी, पीपाड शहर

आप व्यवस्थापक समिति के ६ वर्षों से सदस्य हैं। इसके पूर्व लगभग आठ वर्ष तक तीर्थ के मुनीम रह चुके है। आपके कार्यकाल मे तीर्थ की आय मे वृद्धि हुई और आपके प्रयत्नो से भैरूजी के नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ। अन्य कई कार्यों मे भी आपने पर्याप्त प्रेम से भाग लिया। आप जमाखर्च के कार्य मे निपुण है। समय-समय पर तीर्थ के इस कार्य की देख-भाल करते रहते है।

श्रीमान सिमरथमलजी मरडिया, जोधपुर

आप व्यवस्थापक समिति के चुनाव मे ६-४-६५ को सदस्य चुने गये जबसे कार्य कर रहे है। आपकी इस तीर्थ पर पूर्ण श्रद्धा है। समवसरण मदिरजी की प्रतिष्ठा मे १५१) रु व स्थाई साधर्मी वात्सल्य कोष मे २०१) रु प्रदान किये। ग्रथ प्रकाशन मे आपने ५०१) रु प्रदान किये इसलिए पूरे पेज मे चित्र प्रकाशित कर जीवन-परिचय वहाँ दिया गया है।

श्रीमान सज्जनराजजी कुम्भट, जोधपुर

आप दि ६-४-६५ से २७-३-६६ तक श्री व्यवस्थापक समिति के सदस्य रहे। फिर ३-४-६८ से आप चुने गये जब से कार्य कर रहे हैं। स्थाई साधर्मी वात्सल्य फण्ड मे २०१) रु ग्रथ प्रकाशन मे १०१) रु प्रदान किये हैं। आपकी इस तीर्थ के प्रति सद्‌भावना व अटूट श्रद्धा है।

श्रीमान शरबतमलजी सा लोढा

आप दि २७-३-६६ को सदस्य चुने गये हैं। आप बाल्यावस्था से ही धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हैं जिससे दूसरी सस्थाओ के मन्त्री, उपमन्त्री तथा सदस्य पद पर हैं। इनको समय मिलने का अभाव होते हुए भी धर्म-कार्य मे पूर्ण रुचि रखते हैं जो सराहनीय है।

श्रीमान सोहनराजजी भन्साली, जोधपुर

आप ३-४-६८ से व्यवस्थापक समिति के सदस्य हैं। आप समवसरण मन्दिरजी की प्रतिष्ठा मे उपसमिति के सदस्य चुने गये थे और प्रतिष्ठा मे आपने बहुत परिश्रम के साथ कार्य किया। स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मे भी आपको उपसमिति मे सदस्य नियुक्त किया गया है। इसमे भी आपने हर प्रकार का सहयोग दिया जो प्रशसनीय है।

श्री व्यवस्थापक समिति के सदस्य
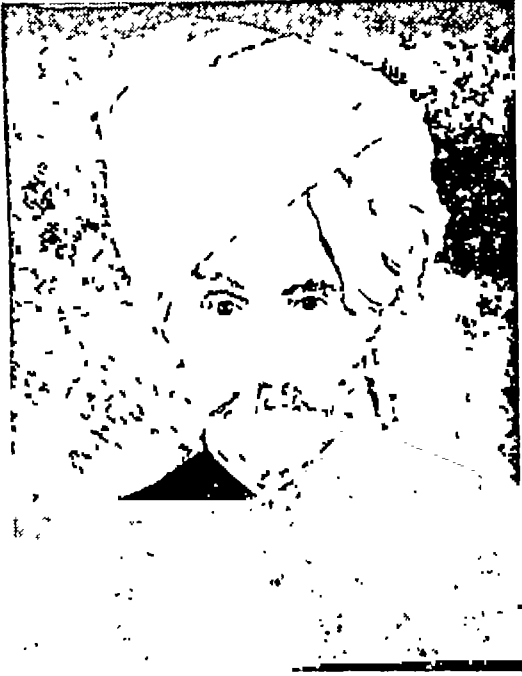
श्रीमान सिमरथमलजी मरडीया
जोधपुर (राज०)
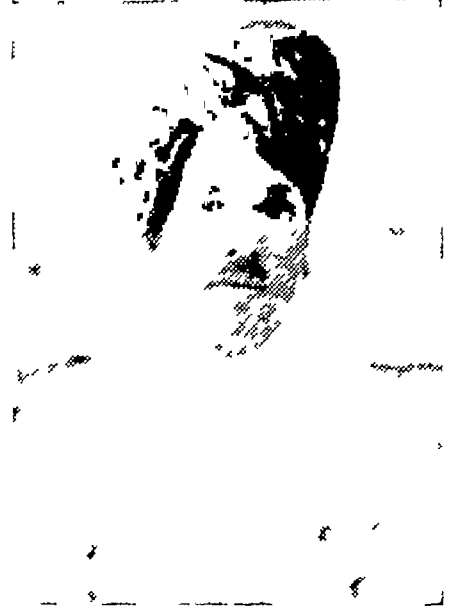
श्रीमान सजनराजजी कुम्भट,
जोधपुर (राज०)

श्रीमान शरबतमलजी, लोढा
जोधपुर (राज०)

श्रीमान सोहनराजजी भसाली,
जोधपुर (राज०)

श्री व्यवस्थापक समिति के सदस्य

श्रीमान मूलचन्दजी, चोरडिया
बाला (राज०)

श्रीमान सुगनचदजी, जागडा
कापरडा (राज०)

श्रीमान भवरलालजी, बुरड
खारिया मीठापुर (राज०)

श्रीमान मूलचन्दजी चौरड़िया, बाला

जब से तीर्थ की व्यवस्थापक समिति की स्थापना हुई तभी से आप इसके सदस्य होते आ रहे हैं। श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति आपकी बडी श्रद्धा है। आप परिश्रमी एव सरल प्रकृति वाले सज्जन हैं। आपने समवसरण प्रतिष्ठा मे ४०१) रु स्थाई, स्वामीवात्सल्य फड मे २०१) रु प्रदान किए। तीर्थ के प्रत्येक कार्य मे आप उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

श्रीमान सुगनचन्दजी जांगड़ा, कापरड़ाजी

आप तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के निर्माणकाल से ही सदस्य होते आ रहे हैं। आप इसी तीर्थस्थान के निवासी होने से तीर्थ के प्रति आपका विशेष प्रेम स्वाभाविक है और तीर्थ का प्रत्येक कार्य रुचिपूर्वक करते हैं। आप शान्तस्वभावी, गम्भीर और मिलनसार हैं। आप हर घडी वहाँ रहने से आने वाले यात्रियो की सेवा का लाभ भी उठाते हैं।

श्रीमान भँवरलालजी बुरड, खारिया मोठापुर

आप तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के सदस्य हैं। सरलस्वभावी तथा शान्त प्रकृति के हैं। तीर्थ के प्रति आपका प्रेम स्तुत्य है।

श्रीमान घोसूलालजी फूलफगर, जैतारण

आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के ६ वर्षों से सदस्य हैं। आपका इस तीर्थ के प्रति गहरा प्रेम है। आपने वि स २०१० के मेले पर स्वामीवात्सल्य किया। वि स. २०१८ मे चैत्र मास की ओलिये श्री धर्मसागरजी महाराज के सानिध्य मे उत्साहपूर्वक कराई। आपने समवसरण प्रतिष्ठा मे ५०१) रु तथा स्थाई स्वामीवात्सल्य फण्ड मे सर्वप्रथम १००१) रु प्रदान किए। इसके अतिरिक्त आप अपनी चचल लक्ष्मी का धार्मिक कार्यो मे सदुपयोग करते ही रहते हैं, जो अनुकरणीय है।

स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में

निम्नलिखित सज्जनों ने अपनी ओर से कमरे बनवाये तथा कमरे बनाने में सहायता दी

(१) श्रीमान् तेजराजजी भसाली, पीपाड—आपने मन्दिरजी के सामने प्रागण मे १ बडा हाल २७×२० का अपनी ओर से बनवाया।

(२) श्रीमान् पारसमलजी सराफ, बीलाडा—आपने श्री मन्दिरजी के सामने प्रागण मे दो मजिले पर बडा हाल बनवाया उसमे आधी धनराशि दी।

(३) श्रीमती हजा बाई मु० बलदरा—आपने श्री मन्दिरजी के सामने प्रागण मे दो मजिले पर बडा हाल बनवाया। उसमे आधी धनराशि दी।

(४) मदिरजी के सामने प्राचीन उपाश्रय मे नवनिर्मित श्री 'पार्श्वकु ज' बना जिसमे कमरे बनवाने निमित—

१००१) रु श्री जवाहरलालजी दपतरी, पीपाड — १ कमरा निर्मित
,, ,, चाँदमलजी मेहता, जैतारण ,,
,, ,, भैरूसिंहजी मेहता, बीलाडा ,,
,, ,, चपालालजी सराफ, ,, ,,
,, ,, चिमनचदजी भडारी, जोधपुर ,,
,, ,, माणकचदजी बेताला, नागौर (मद्रास) ,,
,, ,, देवराजजी इद्रचदजी सेठ, जैतारण (तिरतुरपुंडी) ,,
,, ,, खूबचन्दजी रिखबचदजी जोधपुरा, जैतारण (बेगलोर सिटी) ,,
,, ,, पारसमलजी विरदीचदजी, मेडता (बैंगलोर सिटी) ,,
,, ,, भीकमचदजी लालचदजी मेहता भवरीवाला, पाली ,,
,, ,, मदनराजजी चद्रराजजी सिंघवी, जोधपुर ,,
,, ,, रतनचदजी कन्हैयालालजी सेठ, जैतारण ,,
,, श्रीमती विद्याबाई धर्मपत्नी श्री सेसमलजी कटारिया व श्री कवरलालजी पुत्र श्री सेसमलजी, बीलाडा ,,
,, श्री सूरजमलजी धनराजजी गोलिया, जोधपुर ,,
,, ,, चैलाजी पदमचदजी हरजी जिला जालोर ,,
७०१) रु श्री खिवेल (पहले के आए हुए जमा हैं, कमरे के लिए) १ गुसलखाना निर्मित
५०१) श्रीमती धीसीबाई धर्मपत्नी श्रीसेंसमलजी कोठारी, बीलाडा ,,

स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

ग्रन्थ प्रकाशन में सहायता देने वालों की शुभ नामावली

५०१ रु०) श्री जैन श्वेताम्बर सघ खडप जिला बाडमेर
,, पद्मभूषण सेठ कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबाद
,, श्रीमान दानवीर सेठ कानमलजी सिंघवी की धर्मपत्नी, पाली (राज)
,, ,, केशरीमलजी गुलाबचदजी पोरवाल, (शिवगज)
,, ,, जेवतराजजी हिरण, पाली (राज)
,, श्रीमती छोटी बाई धर्मपत्नी श्री जेवतराजजी हिरण, पाली
,, श्रीमान समरथमलजी मरडिया, जोधपुर
,, ,, रतनलालजी कोठारी, जैतारण
,, ,, मिश्रीमलजी नवाजी रमणीया, हाल मद्रास

४५०९) रु

२५१) रु० ,, रामलालजी लूणिया, अजमेर
,, ,, ताराचन्दजी भडारी मु डारावाला हाल, जोधपुर
,, ,, पिरागचन्दजी भडारी, जोधपुर
,, ,, चिमनचन्दजी भडारी, जोधपुर
,, ,, मनमोहनराजजी भसाली, पीपाड शहर
,, ,, बलवतराजजी भसाली, पीपाड शहर
,, ,, केशरीमलजी माडोत, सोजत
,, श्रीमती पतासी बाई धर्मपत्नी श्री केशरीमलजी, सोजत
,, श्रीमान सुकनराजजी माडोत, सोजत
,, श्रीमती ताराबाई धर्मपत्नी श्री सुकनराजजी, सोजत
,, श्रीमान केशरीमलजी कोचर मेहता, जैतारण
,, ,, पारसमलजी कोचर मेहता, जैतारण
,, ,, सुकनराजजी मदनराजजी, सिंघवी, जोधपुर
,, ,, भीकमचदजी मेहता, भावरीवाला, हाल पाली
,, ,, मगनमलजी पोरवाल, रानी
,, ,, फूलचदजी भूबाजी, रामसेन

२५१) रु श्रीमान अनराजजी बणवट, बिलाडा
,, ,, इन्द्रमलजी बणवट, बिलाडा
,, ,, धूलचन्दजी डोसी, खारीया मीठापुर
,, ,, फोजमलजी बालाजी पोरवाल, शिवगज
,, ,, चेनराजजी सघवी, जैतारण
,, ,, सोनराजजी गाधी, पीपाड शहर
,, ,, गुमानमलजी लोढा, जोधपुर
,, ,, मगलचन्दजी चौधरी मडार वाला, जयपुर
,, ,, शाह कस्तूरमलजी, जयपुर
,, ,, छगनराजजी माडवला वाला, जोधपुर
,, ,, रतनचन्दजी चौपडा, बिलाडा
,, ,, जैन पोरवाल सघ, नेलूर
,, ,, कपिल भाई, जयपुर

७२७६)

१२५) रु श्रीमान शकरलालजी मुणोत, ब्यावर
,, ,, सुखराजजी काकरिया, ब्यावर
,, ,, उदयचन्दजी कास्टीया, ब्यावर
,, ,, पदमचदजी मुथा, ब्यावर
,, ,, धरमचदजी मुथा, पीपाड शहर
,, ,, करमचदजी मुथा, ,,
,, ,, मिश्रीमलजी सेठिया, ,,
,, ,, पुखराजजी तेलीडा, बिलाडा
,, ,, नथमलजी गोलिया, जोधपुर
,, ,, लक्ष्मीचन्दजी सुराणा, ,,
,, ,, लालचन्दजी सुराणा, ,,
,, ,, शिवराजजी कोचर, ,,
,, ,, मागीमलजी मुणोयत, ,,
,, ,, कपूरचन्दजी पोरवाल, सियाणा, हाल जोधपुर
,, ,, मछालालजी पोरवाल, पाली
,, ,, हीराचन्दजी सोमावत, पाली

१२५ रु श्रीमान कुनणमलजी खीचा, शिवगज
,, ,, बुधसिहजी वैद्य, जयपुर
,, ,, आसानन्दजी भसाल', जयपुर
,, ,, अमरचदजी नाहर, जोधपुर
,, ,, भूरालालजी बोहरा, खारीया मीठापुर
,, ,, सेसमलजी चुतर, खारीया मीठापुर
,, ,, कल्याणमलजी डोसी, खारिया मीठापुर
,, ,, पुखराजजी डोसी, खारीया मीठापुर
,, ,, लक्ष्मणदासजी बोथरा, बाडमेर
,, ,, भगवानदासजी सेठिया, बाडमेर
,, ,, पुखराजजी पटवा, जैतारण
,, श्रीमती सायरबाई डोसी, खारीया मीठापुर
,, श्री जैन मडल, रामसेन
,, श्रीमान घीसूलालजी पोरवाल, रानी स्टेशन
,, ,, बाबूलालजी तरसेन कुमारजी, जयपुर
,, ,, नवलमलजी पानाचन्दजी पाडीव

४०००

१५७८८)

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सज्जनो ने इस प्रकार सहायता दी—

२००) रु श्रीमान छोटूलालजी सुराना कलकत्ता ने पत्रिका पहुचने पर ५०१) रु भेजे उसमे ३०१) जिर्णोद्धार मे व २००) साधारण मे। ३०१) जिर्णोद्धार मे जमा कराए गए बाकी २००) इसमे जमा किए।

१०१) श्रीमान विसनराजजी सज्जनराजजी कुम्भट
५१) ,, मदनराजजी सिंगी एडवोकेट, जयपुर
५१) ,, मेघजी पुँजाभाई, बबई
५१) ,, बछराजजी मागीलालजी, गढ सियाणा
५१) ,, सिरेमलजी धनराजजी, गढ सियाणा
१७०) फुटकर सहायता

१६४६३) सोलह हजार चार सौ तिरेसठ रुपए प्राप्त हुए।

खण्डप ग्राम का मन्दिर व प्रतिष्ठा महोत्सव

बाडमेर जिले के अन्तर्गत सिवाणा तहसील मे एक छोटासा ग्राम है। यह गाँव कोई रेलवे स्टेशन के पास नही है। यहाँ जाने के लिए रेलवे स्टेशन समदडी ही लगता है।

यहाँ जैनो के बहुत कम घर होते हुए भी यहाँ के लोगो मे देव, गुरु और धर्म के प्रति अटल श्रद्धा है।

इस गाँव मे पहले एक शिखरबद्ध जैन मन्दिर था जो काफी जीर्ण-शीर्ण हो गया था। जैनाचार्य श्री हिमाचलसूरिजी महाराज के उपदेश एव प्रेरणा से इस जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया।

गाँव मे साधु मुनिराजो के ठहरने के लिए उपाश्रय का अभाव था। इस अभाव को श्रीमान सेठ धनराजजी हजारीमलजी ने अपनी ओर से जिन मन्दिर के पास ही एक सुन्दर उपाश्रय का निर्माण करा कर दूर कर दिया है।

हाल ही मे मन्दिर का जीर्णोद्धार कार्य पूरा हो जाने पर श्री सघ ने मन्दिर की पुन प्रतिष्ठा कराई है। जैनाचार्य श्रीमद् विजयहिमाचलसूरिजी महाराज साहब की निश्रा मे प्रतिष्ठा कार्य समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। प्रतिष्ठा मार्गशीर्ष शुक्ल ६ वि स २०२५ दि २५-११-६८ को हुई।

निम्न महानुभावो ने प्रतिष्ठा के अवसर पर विविध घी की बोलियां बोली। जिलकी सूची इस प्रकार है।

(१) श्रीमान हजारीमलजी गिरधारीलालजी मोहनलालजी पुत्र पौत्र नेनाजी शान्तिनाथ भगवान को विराजमान एव स्वामीवात्सल्य।

(२) श्रीमान दलीचन्दजी चम्पालालजी साकलचन्दजी पुत्र पौत्र फरसरामजी मूलनायक भगवान को विराजमान किया।

(३) श्रीमान धनराजजी केशवलालजी पोपटलालजी पुत्र पौत्र हजारीमलजी चन्दाप्रभुजी को विराजमान दण्ड ध्वजा और स्वामीवात्सल्य।

(४) श्रीमान हजारीमलजी शकरलालजी, घेवरचदजी, पारसमलजी, पुत्र पौत्र लछीरामजी अजीतनाथ भगवान को विराजमान किया।

(५) श्रीमान रीकबचन्दजी रामलालजी शकरलालजी पुत्र पौत्र नेताजी छत्री मे पार्श्वनाथ प्रभु को विराजमान किया।
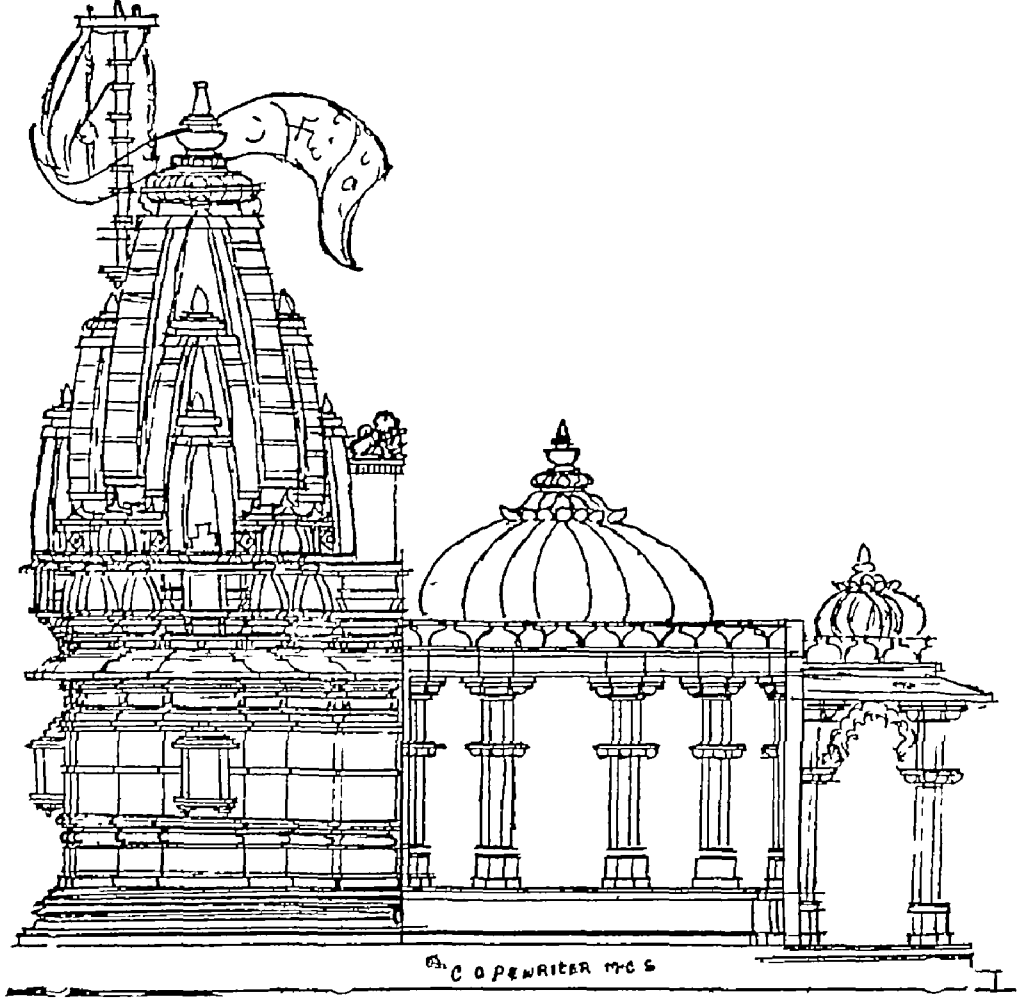
श्री खडप जैन मंदिर
तहसील सिवाणा जिला बाडमेर (राज०)

(६) श्रीमान हीराचदजी गिरधारीलालजी मोहनलालजी पुत्र पौत्र आईदानजी श्री ऋषभदेव भगवान को विराजमान व स्वामीवात्सल्य ।

(७) श्रीमान राणमलजी टीकमचन्दजी डोसी गोतमस्वामी की प्रतिमा विराजमान व स्वामीवात्सल्य ।

(८) श्रीमान मुलतानमलजी पुखराजजी चम्पालालजी सुमेरमलजी पुत्र पौत्र केसरीमलजी ।

(९) श्रीमान मोडमलजी जेठमलजी धनराजजी जुहारमलजी छत्रपाल स्थापना व स्वामीवात्सल्य ।

(१०) श्रीमान सोहनराजजी केवलचन्दजी पुत्र पौत्र भीकाजो गात्र धुँनाडा वाले । छत्री पर कलश ।

(११) श्रीमान केराजी साकलचदजी गाॅव माडवला तोरण ।

(१२) श्रीमान भीमाजी कपूरचन्दजी गाव रामावाला द्वारोद्घाटन ।

इस प्रकार इस प्रतिष्ठा महोत्सव पर लगभग साढे चार लाख रुपयो की आय हुई । रोशनी, अगरचना, वरघोडा इत्यादि का ठाठ सराहनीय था । बाहर से पधारने वालो की भक्ति करने मे भी कोई कमी नही रही । स्वामीवात्सल्य भी हुये और सारा कार्य निर्विघ्नता से सम्पूर्ण होने का श्रेय यहाँ के सघ को है । शुभ मुहूर्त का भी प्रभाव समझना चाहिए ।

श्री कापरडा तीर्थ के स्वर्ण जयन्ती ग्रथ के प्रकाशन हेतु इस गाॅव के श्री सघ की ओर से ५०१) रु की द्रव्य सहायता मिली है । इस हेतु वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

पद्मभूषण सेठ श्री कस्तूर भाई लालभाई

सेठ श्री कस्तूर भाई लालभाई भारत मे जैन समाज के अग्रगणी नेता हैं। आप काफी समय से सेठ आनदजी कल्याणजी पेढी अहमदाबाद के अध्यक्ष हैं जिनकी देख-रेख मे श्री शत्रुंजय, गिरनार, राणकपुर, कुभारियाजी आदि के प्रसिद्ध तीर्थो का कार्य सपादित होता है। आबू स्थित देलवाडा मदिरो के जीर्णोद्धार कार्य मे आपका सक्रिय योगदान रहा है। भारत के अन्य तीर्थों के भी जिर्णोद्धार कार्य मे आपकी विशेष रुचि रही है। आपकी प्रेरणा से कापरडाजी तीर्थ के जिर्णोद्धार हेतु आनदजी कल्याणजी पेढी द्वारा रुपए तीस हजार की धन राशि प्रदान की गई। दिसम्बर १९६६ मे आपने मारवाड के प्रसिद्ध तीर्थ जैसलमेर, श्री नाकोडाजी, कापरडा आदि का दौरा कर इस क्षेत्र के साधर्मी बधुओ से सपर्क स्थापित करने का प्रयास किया। आपकी इस यात्रा के दौरान आपका जोधपुर जैन सघ एव कापरडा तीर्थ कमेटी द्वारा मान पत्र भी भेट किया गया। सेठ कस्तूर भाई बम्बई स्थित महावीर जैन विद्यालय एव अखिल भारतीय जैन कॉफ्रेस के भी कर्मठ कार्य-कर्ता हैं तथा इन सस्थाओ के अध्यक्ष पद को भी शोभित कर चुके हैं।

सेठ कस्तूर भाई अपनी धार्मिक प्रवृत्तियो के अतिरिक्त शैक्षणिक व जन सेवा के कार्यों से भी सक्रिय रूप से सबधित रहे हैं। १९३७ मे अहमदावाद शिक्षण समिति की स्थापना के समय से ही आप उसके अध्यक्ष हैं इस समिति द्वारा करीब सवा करोड की धनराशि एकत्रित की गई जिसका उपयोग अहमदाबाद शहर मे कला, विज्ञान, अध्यापक प्रशिक्षण तथा इजीनियरिंग आदि की कॉलेजो को चलाने पर किया जा रहा है। अपने सहयोगियो की सहायता से आपने गुजरात विश्वविद्यालय हेतु भी पैंतालीस लाख रुपए की धनराशि एकत्रित की है। १९२७, १९४८ व १९५१ मे गुजरात मे अकाल पीडितो की सहायतार्थ भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गाधी स्मारक निधि के अध्यक्ष के रूप मे अपने सहयोगियो की सहायता से आपने पाच करोड रुपयो की धनराशि एकत्रित की। यह बात भी उल्लेखनीय है कि पूज्य महात्मा गाधी एव सरदार पटेल के साथ घनिष्ठ सबध था। महात्माजी के साथ आपका सपर्क १९१८ मे हुआ जब आपने अहमदा-वाद के कपडा उद्योग मे श्रमिको की हडताल को समाप्त करने मे गाधीजी को सक्रिय योग दिया।

सेठ कस्तूर भाई एक बहुत बडे व्यवसायी हैं व भारत मे सूती वस्त्र उद्योग के तो कप्तान के रूप मे हैं। आप स्वय छ मीलो के मालिक हैं व इक्कीस व्यवसायो मे व्यवस्था-पक समिति के निर्देशक हैं। अपने व्यवसाय के सबध मे आप विश्व के कई देशो का भ्रमण कर चुके हैं। भारत सरकार द्वारा विदेशो मे भेजे जाने वाले कई प्रतिनिधि मडलो मे आप सम्मिलित किए गए अपितु कुछ का नेतृत्व भी कर चुके हैं। १९३७ से १९४९ एव १९५७ से १९६१ तक आप रिजर्व बैंक ऑफ इडिया के भी निर्देशक रह चुके हैं। भारत सरकार द्वारा इसी वर्ष आपको पद्म भूषण अलकार से विभूषित किया गया।

श्रीमान सेठ कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबाद

श्रीमान दानवीर सेठ कानमलजी सिंघवी, पाली (राज०)

२८०००) रु० अर्पण किए। प्रतिष्ठा २०१७ फाल्गुन कृष्ण ७ को हुई जिसमे आपने भाता व दो दिन स्वामीवात्सल्य दिया जिसमे १८०००) रु० खर्च हुए।

(७) राजगृही तीर्थ पर प्रतिष्ठा महोत्व मे ३०००) करीब मे एक दिन स्वामी-वात्सल्य अपनी तरफ से दिया।

(८) श्री सोजत मे गौडी पार्श्वनाथजी के मदिर के निर्माण मे एब प्रतिष्ठा के अवसर पर १७०००) रु व्यय किए।

(९) आपने अपनी मातेश्वरी के अलावा फतेकुमारी को दीक्षा दिलाई जिसका नाम हेमप्रभा श्रीजी रखा गया। इनके विद्याभ्यास हेतु ४००० रुपए व्यय किए।

(१०) आपने सवत २०१४ के माघ कृष्णा ११ को श्री शत्रुंजय का छरी पाल सघ निकाला जिसमे करीब ५०००) रु० खर्च किए।

(११) सोजत मे आयबिल खाता सुचारु रूप से चलाने हेतु सहायतार्थ ११०००) रु अर्पण किए।

आपका स्वर्गवास सवत २०१८ चैत्र कृष्ण ३० को पाली नगर मे हुआ।

आपकी धर्मपत्नीजी श्रीमती उगम कवर बाई भी धर्म मे पूर्ण श्रद्धा रखती है और आपने श्रीमान कानमलजी साहब के स्वर्गवास के बाद भी उदारतापूर्वक शुभ कार्य मे निम्न धनराशि व्यय को।

(१) ब्यावर स्थायी आयबिल खाता मे ११०००) रु प्रदान किए।

(२) पाली मे श्री देरासरजी का मदिर जी नया बना उसके खात मुहर्त मे २१००) रु व प्रतिष्ठा मे ३०००) रु व्यय किया।

(३) श्री पालीतणा चौमासा इस वर्ष किया उस समय शुभ खाता मे २१०००) रु महसाना यशोभद्र जैन पाठशाला मे ५०००) रु श्राविका आश्रम पालीतणा मे ३०००) रु इस प्रकार करीब ३ -३५ हजार रुपए व्यय किए।

(४) पाली सोजत मार्ग मे जाडण नामक ग्राम मे जैन धर्मशाला बनवाई जिसमे ३००१) रु अर्पण किए।

(५) पारलू धर्मशाला मे १००१) रु अर्पण किए।

(६) भीलवाडा मे नए मदिर का निर्माण हो रहा है उसमे ५०१) व श्री शाति जैन पाठशाला ब्यावर से ५०१) अर्पण किए।

(७) दो वर्ष पूर्व पालीतणा का छहरी पाल सघ लेकर पधारे।

श्रीमान केशरीमलजी गुलाबचन्दजी पोरवाल
पालडी वाला (शिवगज राज०)

श्रीमान केशरीमलजी गुलाबचन्दजी सघवी शिवगंज निवासी का स क्षिप्त जीवन-परिचय

आप मूल निवासी पालडी के हैं जो शिवगज के निकट ही है। आपके परिवार से इस तीर्थ को काफी आर्थिक सहायता मिली है। वि स १९७५ की प्रतिष्ठा मे आपके कुटुम्ब ने विपुल धन का व्यय किया। आप विजयनेमिसूरिश्वरजी महाराज के परम भक्त हैं और श्री अमीचदजी गुलाबचन्दजी ने भी स्वर्गीय आचार्य देव के आदेश से तीर्थ के उद्धार मे तो द्रव्य व्यय किया ही है इसके अतिरिक्त चतुर्विध सघ लाकर सघ भक्ति का भी लाभ लिया। श्री केशरीमलजी सा सरलस्वभावी, धर्मनिष्ठ एव समाज मे प्रतिष्ठित पुरुष हैं। आपकी इस तीर्थ के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। अन्य तीर्थों पर और आपके प्रान्त के मन्दिरो मे भी आर्थिक सहायता मे पूर्ण सहयोग रहता है। वैसे तो ५०१) रु देने वालो का पूरे पृष्ठ मे जीवन चरित्र दिया जा सकता है। किन्तु श्रीमान ने लिखवा कर नही भेजा। यह जो कुछ भी लिखा है हो सकता है और भी कई धर्मकार्यो मे इनकी ओर से सहयोग प्राप्त हुआ हो जिसका हमे व्यौरा प्राप्त नही हुआ है।

श्रीमान जेवतराजजी सा० हिरण
पाली (राज०)

श्री जैंवतराजजी, पाली

आपका जन्म वि स १६५६ कार्तिक अमावस्या दीपावली के शुभ दिन वीसलपुर, जोधपुर मे हुआ, जो कापरडाजी तीर्थ के निकट है। आप के पिताजी का नाम श्री बालचन्दजी था। जब आपकी आयु पाँच वर्ष की थी तभी आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। आपका पालनपोषण आप की माता ने किया। आप ने व्यवहारिक ज्ञान भी उन्ही से प्राप्त किया। माताजी के स्वर्गवास पर वीसलपुर मे अधिक व्यापार नही होने से वि स १६७८ मे अहमदाबाद चले गए और वहाँ कपडे की दुकान लगाई थी जो श्री बालचन्द जैवन्तराज के नाम से आज तक कार्यशील है। व्यापार मे आपको अच्छी सफलता मिली और पर्याप्त धन कमाया। पाली मे रहने का निश्चय कर १६६६ वि मे आपने दो मकान बनवाए और कपडे की आडत की दुकान भी चलाई। आपने धर्म कार्यों मे भी विभिन्न रकमे व्यय की। पाली के प्रसिद्ध नौलखाजी के देवालय मे पाठशाला स्थापित करने हेतु पच्चीस हजार रुपए २००७ वि मे प्रदाना किए।

पाली के ओसवाल न्याति नौहरे मे पच्चीस सौ रुपए देकर एक बरामदा बनवाया।

वि स २०१७ मे प्राचीन तीर्थ श्री कापरडाजी पर चैत्र मास की ओलिऐ व उजमना करवाया। इस कार्य मे लगभग बीस सहस्र रुपए व्यय किए। समवसरण मन्दिरजी की प्रतिष्ठा मे आपने १ प्रतिमाजी ८७५) रु की बोली बोल कर विराजमान की।

पिछले लघु इतिहास प्रकाशन मे चार सौ रुपये व साधारण मे एक हजार और जीव दया मे चार सौ रुपए प्रदान किए। इस तीर्थ पर आपका अगाध प्रेम है। हर समय सहयोग देते रहते हैं। हाल ही मे आप की ओर से पाली मे उपध्यान तप हो रहा है जिसमे लगभग पचास सहस्र रुपए से अधिक धनराशि व्यय होने की सभावना है।

आपने श्री कापरडा तीर्थ पर ओलियाँ करवाई जब स्वय ओली करते थे। अब भी आप की ओर से हो रहे उपध्यान मे आप स्वय भी बैठे हैं। आपकी स्वधर्मी बन्धुओ की सेवा अनुमोदनीय है। आप सरलस्वभावी हैं और धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आपकी सादगी तो इतनी है कि जिसका विवेचन नही किया जा सकता। उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कई छोटे कार्य किए हैं उनका वर्णन करने का स्थान नही है। आप पाली मे चल रही जैन पेढी श्री नवलमलजी सुप्रतचदजी के अध्यक्ष हैं। आपके पुत्र श्री ज्ञानचदजी पर भी आपके धर्म-क्रिया का प्रभाव पडेगा ऐसा अनुभव होता है।

श्रीमान जैवतराजजी सा० ह्निग्गा
पाली (राज०)

श्रीमति छोटी बाई धर्मपत्नि श्री जेवतराजजी, हिरण
पाली (राज०)

श्रीमती छोटीबाई जी धर्मपत्नी श्री जैवन्तराजजी हिरण पाली

आप पाली निवासी श्री सहसमलजी वालिया की सुपुत्री हैं। आपका जन्म वि० १९७५ को हुआ और लग्न वि० स० १९९० मे श्री जैवतराजजी के साथ सम्पन्न हुआ। आप धर्मपरायण हैं। आपने तपस्या अट्ठाई, मास क्षमण इत्यादि किए और नवपदजी की ओली आदि की आराधना भी की जिसका उजमणा कापरडाजी तीर्थ पर हुआ। आपके प्रथम पुत्र श्री उगमराजजी का जन्म १९९९ मे हुआ। वे बडे होनहार थे किन्तु पाच वर्ष की अवस्था मे ही स्वर्ग सिधार गए। छोटी आयु में ही पुत्र की मृत्यु होने से माता पिता को शोक होना स्वाभाविक ही था किन्तु धर्म की अच्छी जानकारी होने के कारण आपने शाति धारण कर अपना जीवन धर्म कार्यो मे अर्पण कर दिया। पुत्र देवयोनि (पितरो) मे होने से कभी कभी अपनी माता के शरीर मे प्रवेश कर कुछ कहता है। यह बात कापरडा तीर्थ पर ओलिया के शुभ अवसर पर आखो देखी हुई सत्य घटना है। और आप ही के आज्ञानुसार ओलिया व उजमणा बडे ठाट से सम्पन्न हुआ।

वि० स० २००६ मे फिर आपकी कुक्षि से एक पुत्री और वि० स० २००९ मे पुत्र रत्न श्री ज्ञानचन्दजी ने जन्म लिया।

आप व आपके पति दोनो सादा व सरल जीवन व्यतीत करते हुए धर्म कार्यों मे लीन रहते हैं। पूजा, प्रभावना, स्वामि भाइयो की भक्ति निमित्त धन व्यय करते हुए जन्म सफल बनाते हैं। इस समय पाली मे आपकी ओर से उपधान तप चल रहा है। उसमे आप स्वय भी सम्मिलित हैं। आपका स्वभाव बडा ही अच्छा एव मिलनसार है। अपनी बहिनो के साथ गाढा धर्मप्रेम रखती हैं। आप मधुभाषिणी हैं। प्रत्येक दिन की क्रिया सामायक, प्रतिक्रमण, प्रभु दर्शन, पच्चखाण इत्यादि तो करती ही है तपस्या करने मे भी सबसे आगे ही रहती है। पति पत्नी दोनो का सयोग ऐसा मिला है मानो दूध मे पानी। श्री जैवतराजजी का पहला लग्न १९७७ मे हुआ था। उनका स्वर्ग हो जाने से दूसरा लग्न आपके साथ हुआ।

श्रीमान समरथमलजी मरड़िया, जोधपुर

आपका जन्म वि. स १९६० चैत वद ८ को मडार कस्बे मे हुआ। आप उच्च परिवार के व्यक्ति हैं। आपके पूर्वजो ने भी सघ निकाला था। आपके पिताजी श्री जवानमल जी सिरोही राज्य मे नायब तहसीलदार थे। अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त उन्होने बडे अच्छे ढग से वकालत की। आप स्वय भी न्याय तथा आयकर सम्बन्धी मामलो के अच्छे जानकार हैं। आपने अल्पायु मे ही अपना कार्य सभाल लिया तथा मडार से जोधपुर आ गए। और आपने जुलाई १९२४ ई. मे रेवेन्यू विभाग मे नौकरी करली। स्व महाराजा उम्मेदसिंहजी के सुपुत्र स्व हरिसिंहजी के आप लगभग दस वर्ष पर्यन्त कामदार रहे। दि ९-३ ५६ को अवकाश ग्रहण कर लिया। आजकल आपका समस्त जीवन समाजसेवा एव धार्मिक कार्यो मे ही व्यतीत होता है। प्रभुदर्शन पूजा सामयिक प्रतिक्रमण, साधु-सार्ध्वयो की सेवा-सुश्रुसा तथा धर्मग्रथो का अध्ययन आपकी दिनचर्या के विशेष अग हैं।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रसन्नबाईजी मे धार्मिक सस्कार कूटकूट कर भरे हुए हैं। आप दोनो ने देश के समस्त जैन तीर्थो की यात्राएँ की हैं। आपके बच्चो मे भी धार्मिक सस्कार कूट-कूट कर भरे हुए हैं। आप निम्नलिखित सस्थाओ के सदस्य हैं–

१ श्री कापरडाजी व्यवस्थापक समिति के ४ वर्षो से सदस्य हैं। तीर्थ को समय-समय पर आर्थिक सहायता भी देते रहते हैं।

२ श्री गागाणी तीर्थ व्यवस्था समिति के भी ६ वर्ष से सदस्य हैं।

३ श्री भैरूबाग पार्श्वनाथ तीर्थ समिति की साधारण सभा तथा कार्यकारिणी के वर्षो से सदस्य हैं।

४ श्री जैन क्रिया भवन जोधपुर के सदस्य तथा उपाध्यक्ष रहे। निर्माण कार्य मे भी एक हजार एक रुपए दिए तथा उपध्यान तप मे भी सहायता दी।

५ ओसवाल सिंह सभा जोधपुर के सदस्य हैं।

६ मद्रास मे बनने वाले जैन छात्रावास मे आपने मरडिया ब्रदर्स की ओर से पाच हजार एक रुपए भेट किए।

७ मद्रास मे होने वाले उपध्यान तप के उपलक्ष मे मरडिया ब्रदर्स से श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सघ का स्वामीवात्सल्य किया और लगभग दस सहस्र रुपए व्यय किए। आपके परिवार के दो सदस्यो ने भी इसी अवसर पर उपध्यान तप की आराधना मे भाग लिया था।

८ जन्मभूमि मडार मे उपध्यान तप में भी आपका तन-मन-धन से सहयोग सराहनीय रहा।

समाजसेवा मे आपकी प्रबल रुचि रहती है। आप विनम्र, सरल स्वभाव तथा मिलनसार हैं। आपका परिवार धर्मपरायण, सुखी एव हर प्रकार से सम्पन्न है।

श्री कापरडा स्वर्ण जयन्ती महोत्सव
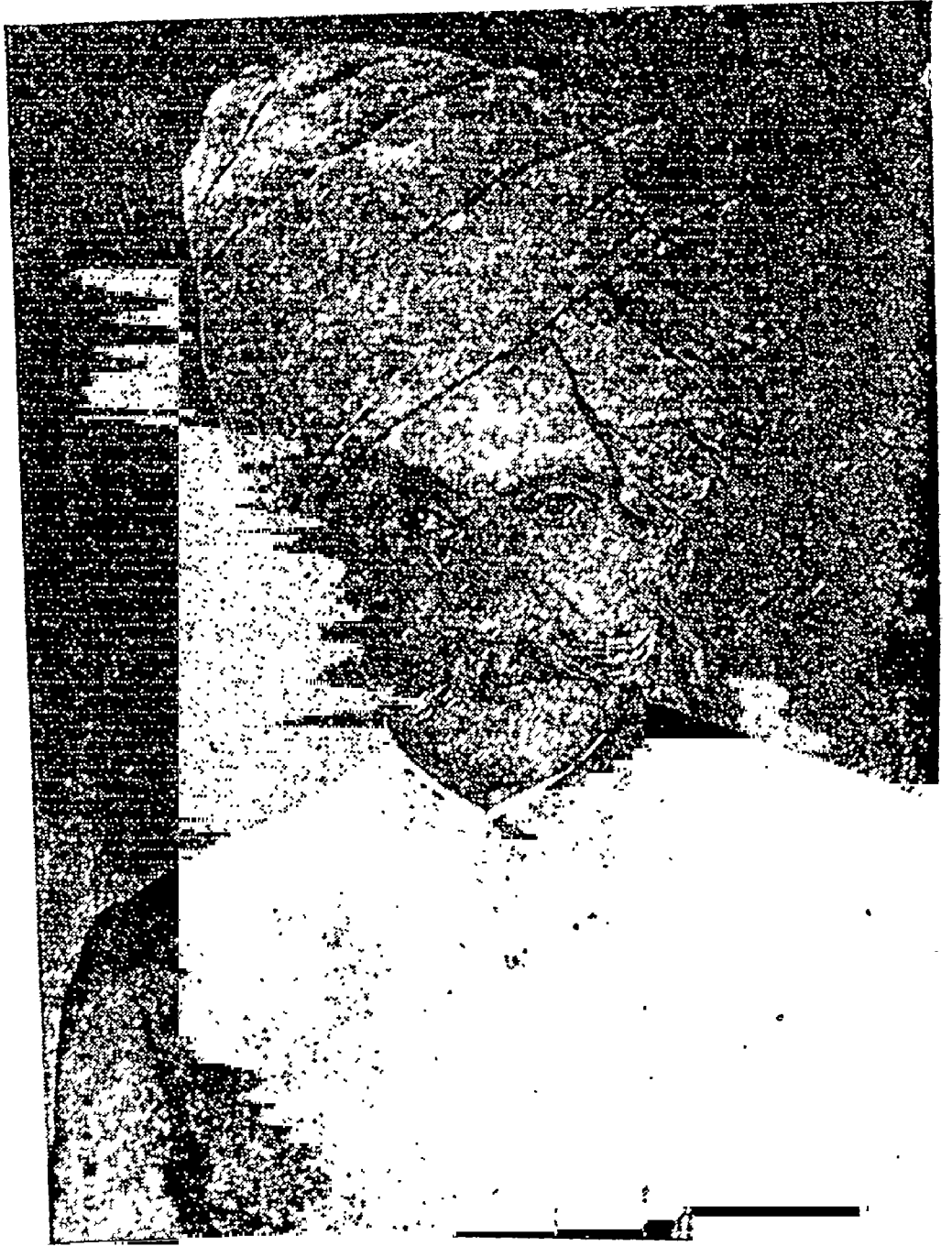
श्रीमान समरथमलजी मरडीया, जोधपुर (राज०)

श्रीमान् रतनलालजी सा० कोठारी
जैतारण (राज०)

श्रीमान रतनलालजी कोठारी, जैतारण

आपका जन्म जैतारण मे वि० स० १६७१ के भादवा सुद ११ को हुआ। आपके पिताजी श्री मागीलालजी आपको तीन वर्ष का ही छोड कर स्वर्ग सिधार गए थे। आपका बाल्यकाल जैतारण मे ही व्यतीत हुआ। आप पर मामाजी के ससर्ग तथा उनके धार्मिक विचारो का प्रभाव पडा—इसीलिए धर्म के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा व रुचि रहती है। हारमोनियम पर प्रभुपूजा मे आप अच्छा रस लेते हैं। कठ भी सुरीला तथा गाने का ढग भी अच्छा है। आजकल आप मद्रास (चिदवर मे) लेनदेन का कार्य करते हैं।

आपने पालीतना, गिरनार, आबू, तारगा, भोपणी आदि तथा राजस्थान की पच-तीर्थी, सम्मेतशिखर, पावापुरी, चपापुरी आदि की सकुटुम्ब यात्राए की और यथाशक्ति चचल लक्ष्मी का व्यय कर जीवन सार्थक बनाया। पन्द्रहसौ रुपए लगा कर मेडता रोड फलवर्धी पार्श्वनाथ तीर्थ पर आपने एक कमरा बनवाया।

आपके माता का नाम चादावाई था। उनकी स्मृति मे श्री कापरडा तीर्थ पर बिजली फिटिंग हेतु आपने एक सहस्र एक रुपए प्रदान किए। आपने जन्म भूमि जैतारण मे भी एक मकान बनवाया है वैसे स्थाई निवास चिदवर मे ही करते हैं। आपके दो पुत्र श्री धर्मचन्दजी तथा उत्तमचन्दजी हैं जो आप ही के गुणानुरूप हैं।

आप विद्याभ्यास कर वि० स० १६६० मे मद्रास गए और वहा एम रतनलाल कोठारी के नाम दूकान की जो सात वष तक चलती रही। उसके बाद आपने चिदम्बरम् जिला साउथ आरकाट (मद्रास) मे दो दूकाने निम्न नाम से की जो आज भी अच्छी स्थिति मे हैं।

(१) एम० रतनलाल कोठारी एन्ड सन्स।
(२) ,, ,, कोठारी एन्ड क०।

एम० का अर्थ आपके पिता श्री माँगीलालजी के नाम से है।

आपके पिताजी मूल निवासी मेडता तहसील के अतर्गत बिखरणीया गाव के थे जहा उनका अच्छा कारोबार चलता था। उनका स्वर्गवास होने के बाद आप की बाल अवस्था मे ही वहा का कारोबार समाप्त कर जैतारण ही रहने लगे।

श्रीमान मिश्रीमलजी वनाजी, रमणीया, हाल मद्रास

आपका जन्म बाडमेर जिले के रमणीया गाव मे १९०९ ई मे हुआ। आप के पिताजी नवाजी बडे धार्मिक व्यक्ति थे। आपकी एक फर्म मिश्रीमल नवाजी मद्रास मे है तथा इसी नाम से इसका आफिस बम्बई धनजी स्ट्रीट मे है। मद्रास मे आयात निर्यात का कार्य होता है। मिश्रीमलजी के दो पुत्र श्री लालचन्दजी और श्री शान्तिलालजी क्रमश. दोनो स्थानो का कार्य सँभालते हैं। मद्रास मे आपने १९६४ ई मे जो उपध्यान तप के अवसर पर स्वामीवात्सल्य कराया उसमे लगभग ९०००) रुपए व्यय किए। इसी प्रकार आपकी धर्म-पत्नी श्रीमती प्यारीदेवीजी ने १९६८ ई. मे मद्रास मे अट्ठाई तपस्चर्या की, उसी अवसर पर होने वाले स्वामीवात्सल्य मे लगभग १५०००) रुपए व्यय किए।

श्री मिश्रीमलजी धर्मप्रिय, सादा व सरल स्वभाव के हैं। आप तथा आपके परिवार वाले भी धार्मिक विचारो के हैं। सभी व्यक्ति स्वामिभक्ति मे विश्वास रखते हैं तथा धर्म-सम्बन्धी एव समाज के कार्यों मे अर्जित धन राशि व्यय करने मे अपना सौभाग्य मानते हैं। आपने कई जैन तीर्थों की यात्राएँ की हैं।

सेठ साहब ने नवपद की ओलिया भी की हैं। जैन मिशन सोसायटी मद्रास के तत्वा-वधान मे चलने वाली शिक्षण सस्था के लिए भी आपने १९६२ ई मे एक सहस्र रुपए प्रदान किए। इसी वर्ष आपने मद्रास की केसरवाडी मे आचार्य श्री जयन्तसूरीश्वरजी म. तथा श्री विक्रमसूरीश्वरजी म की निस्रा मे उपध्यान तप किया, उसमे भी लगभग ६६०० रुपए व्यय किए।

आपकी जैन धर्म पर पूर्ण आस्था है और दान, शील तप, भावना आदि धर्म क्रियाओ मे आप सदैव तत्पर रहते हैं। श्री कापरडाजी तीर्थ स्वर्ण जयन्ती महोत्सव ग्रन्थ मे प्रकाशनार्थ आपने चित्र के स्थान पर अपना ब्लॉक बनवा कर भेज दिया, जिससे अठारह रुपए की बचत हो गई। आपकी दिनचर्या सराहनीय है।

श्रीमान् मिश्रीमलजी नवाजी, रमणीया (राज०)
जिला बाड़मेर हाल मद्रास

श्रीमान मिश्रीमलजी वनाजी, रमणीया, हाल मद्रास

आपका जन्म बाडमेर जिले के रमणीया गाव मे १६०६ ई मे हुआ। आप के पिताजी नवाजी बडे धार्मिक व्यक्ति थे। आपकी एक फर्म मिश्रीमल नवाजी मद्रास मे है तथा इसी नाम से इसका आफिस बम्बई धनजी स्ट्रीट मे है। मद्रास मे आयात निर्यात का कार्य होता है। मिश्रीमलजी के दो पुत्र श्री लालचन्दजी और श्री शान्तिलालजी क्रमश. दोनो स्थानो का कार्य सँभालते हैं। मद्रास मे आपने १६६४ ई मे जो उपध्यान तप के अवसर पर स्वामीवात्सल्य कराया उसमे लगभग ६०००) रुपए व्यय किए। इसी प्रकार आपकी धर्म-पत्नी श्रीमती प्यारीदेवीजी ने १६६८ ई. मे मद्रास मे अट्ठाई तपस्चर्या की, उसी अवसर पर होने वाले स्वामीवात्सल्य मे लगभग १५०००) रुपए व्यय किए।

श्री मिश्रीमलजी धर्मप्रिय, सादा व सरल स्वभाव के हैं। आप तथा आपके परिवार वाले भी धार्मिक विचारो के हैं। सभी व्यक्ति स्वामिभक्ति मे विश्वास रखते हैं तथा धर्म-सम्बन्धी एव समाज के कार्यों मे अर्जित धन राशि व्यय करने मे अपना सौभाग्य मानते हैं। आपने कई जैन तीर्थों की यात्राएँ की हैं।

सेठ साहब ने नवपद की ओलिया भी की हैं। जैन मिशन सोसायटी मद्रास के तत्वा-वधान मे चलने वाली शिक्षण सस्था के लिए भी आपने १६६२ ई मे एक सहस्र रुपए प्रदान किए। इसी वर्ष आपने मद्रास की केसरवाडी मे आचार्य श्री जयन्तसूरीश्वरजी म. तथा श्री विक्रमसूरीश्वरजी म की निस्रा में उपध्यान तप किया, उसमे भी लगभग ६६०० रुपए व्यय किए।

आपकी जैन धर्म पर पूर्ण आस्था है और दान, शील तप, भावना आदि धर्म क्रियाओ मे आप सदैव तत्पर रहते हैं। श्री कापरडाजी तीर्थ स्वर्ण जयन्ती महोत्सव ग्रन्थ मे प्रकाशनार्थ आपने चित्र के स्थान पर अपना ब्लॉक बनवा कर भेज दिया, जिससे अठारह रुपए की बचत हो गई। आपकी दिनचर्या सराहनीय है।

श्रीमान रामलालजी, लूणीया
अजमेर (राज०)

श्रीमान ताराचन्दजी, भंडारी
मुंडारा, हाल जोधपुर (राज०)
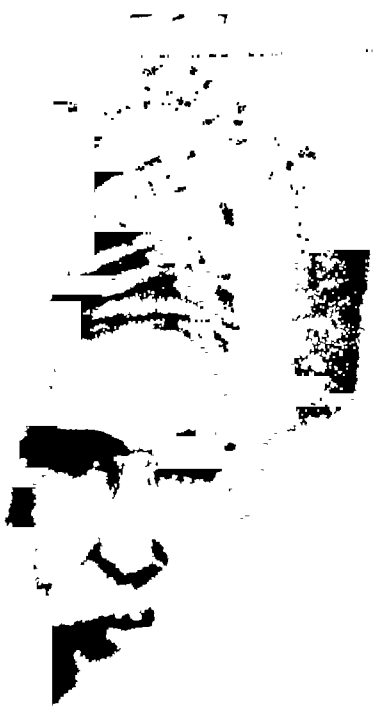
.मेर का जीवन चरित्र

दी मारवाड से अजमेर आए थे। आपने सन्
. समय आपकी उम्र १४ साल की थी। सन्
शुरू किया। आपकी (लूणिया छाप) अरडिया
, के व्यापार मे धीरे-धीरे प्रगति कर सन् १९४४
गणना मे आए और यहाँ की सराफा कमेटियो मे
९६३ मे आपने श्री वल्लभ ग्लास वर्कस लिमिटेड
जेन्सी का कार्य भी शुरू किया है। सन् १९६० मे
ोली जिसका कार्य आपके सुपुत्र श्री अमरचन्दजी तथा

कत्व मे आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज का अष्टम
सक्रिय भाग लिया था। आप सामाजिक व धार्मिक कार्य

, श्री धर्मादा कमेटी, श्री सराफा सघ अजमेर के तथा श्री
आप अध्यक्ष हैं और आप ओसवाल हाई स्कूल के भी उपाध्यक्ष
कन्या पाठशाला, श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ तथा श्री अखिल
फड अमरावती के उपाध्यक्ष हैं। सुख सागर, गुरुकुल तथा स्वंण

सेठ रामलालजी लूणिया, अजमेर का जीवन चरित्र

आपके पूर्वज लगभग सन् १८५० मे फलोदी मारवाड से अजमेर आए थे। आपने सन् १९११ मे सराफा का काम शुरू किया। उस समय आपकी उम्र १४ साल की थी। सन् १९२५ मे आपने रेशमी अरडियो का काम शुरू किया। आपकी (लूणिया छाप) अरडिया समस्त भारत मे मशहूर थी। आप सराफे के व्यापार मे धीरे-धीरे प्रगति कर सन् १९४४ मे भारत के प्रख्यात व्यापारियो की गणना मे आए और यहाँ की सराफा कमेटियो मे अध्यक्ष पद सुशोभित करते रहे। सन् १९६३ मे आपने श्री वल्लभ ग्लास वर्कस लिमिटेड राजस्थान व मध्य प्रदेश की सेलिंग एजेन्सी का कार्य भी शुरू किया है। सन् १९६० मे आपने दिल्ली मे फर्म की ब्रान्च खोली जिसका कार्य आपके सुपुत्र श्री अमरचन्दजी तथा श्री प्रकाशचन्दजी सम्हाल रहे हैं।

सन् १९५६ मे आपने सयोजकत्व मे आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज का अष्टम स्वर्गारोहण शताब्दी महोत्सव मे सक्रिय भाग लिया था। आप सामाजिक व धार्मिक कार्य मे अग्रसर रहे हैं।

श्री ओसवाल औषधालय, श्री धर्मादा कमेटी, श्री सराफा सघ अजमेर के तथा श्री जिनहरीविहार पालीतणा के आप अध्यक्ष हैं और आप ओसवाल हाई स्कूल के भी उपाध्यक्ष रहे हैं। श्री गुलाब कँवर कन्या पाठशाला, श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ तथा श्री अखिल भारतीय सुवर्ण जैन सेवा फड अमरावती के उपाध्यक्ष हैं। सुख सागर, गुरुकुल तथा स्वंण वृद्धाश्रम सैलाना का काम आप की देखरेख मे चल रहा है। आपने स्थानीय मदिरो तथा दादावाडी मे तरक्की कर आमदनी बढाई है और तरक्की कर रहे हैं।

आप श्रवण सघ की सेवा मे तन मन धन से सदा तैयार रहते हैं। आपने अपने जीवन काल मे बहुत अर्थोपार्जन किया और सदुपयोग भी किया। आप इस समय ७१ वर्ष की अवस्था मे सभी सस्थाओ का कार्य सचालन उत्साहपूर्वक करते हैं। अब आप बिलाडा (राज०) मे चौथे दादा श्री जिनचन्द्र सूरिश्वरजी महाराज के स्वर्गवास के स्थान पर दादावाडी बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

श्रीमान ताराचन्दजो भण्डारो मुडारा वाले, हाल जोधपुर

सुपुत्र श्री उदयचन्दजी साहब मूल निवासी मुडारा हाल जोधपुर ८०५, बी. चौपासनी रोड, सरदारपुरा, जोधपुर का जीवन-परिचय।

१ अखिल भारतीय जैन सस्कृति रक्षक सघ बम्बई, कार्यकारिणी सदस्य।

२ अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर सेवा सघ केशरियाजी पेढी, कार्यकारिणी सदस्य।

३ राजस्थान जैन सघ, कार्यकारिणी सदस्य।

४ जैन सस्कृति रक्षक सघ ब्यावर, कार्यकारिणी सदस्य।

५ पार्श्वनाथ जैन विद्यालय वरकाणा, ३५ वर्ष से कार्यकारिणी सदस्य।

६ गोडवाड जैन जिला सघ, कार्यकारिणी के सदस्य व हिसाब-निरीक्षक।

७ बनाड़ जैन मन्दिर की कमेटी के कार्यकारिणी के सदस्य।

८. जैन श्वेताम्बर तपागच्छ वर्द्धमान आयबिलखाता, कार्यकारिणी सदस्य। ११००) रु भेट किए।

९ गागाणी तीर्थ प्रतिष्ठा महोत्सव पर आदेश्वर भगवान की मूर्ति स्थापित की व चकेसरीदेवी की।

१० गागाणी मेले पर २०२३) रु का स्वामीवात्सल्य।

११. अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के १७वें अधिवेशन का रिसर्च कमेटी के सेक्रेट्री व पडाल के अध्यक्ष।

१२. भूतपूर्व फालना जैन पार्श्वनाथ उम्मेद जैन बालाश्रम व कालेज के कार्यकारिणी सदस्य व हिसाबनिरीक्षक ३० साल से।

१३ भूतपूर्व नाकोडा तीर्थ कमेटी के कार्यकारिणी के सदस्य।

१४ मुडाड़ा जैन सघ के कार्यकारिणी के सदस्य।

श्री पिरागचंदजी भडारी जोधपुर का सक्षिप्त विवरण

आपका जन्म विक्रम स १९३९ के कार्तिक कृष्ण ९ को हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री दोलतचदजी था। मारवाड राज्य मे ई स १९०५ मे पुलिस का महकमा खुला उसमे आपने सर्विस की जो सन् १९४० तक करते रहे। आप सब इन्सपेक्टर के पद पर थे और सोजत इत्यादि बडे-बडे कस्बो मे आपने काम किया।

आपमे धर्म के सस्कार जन्म से ही थे फिर भी पूज्य विजयवल्लभ सूरीश्वरजी म० के पट्टधर शिष्य श्री ललित सूरीश्वरजी म० के सम्पर्क मे आने से इस ओर ज्यादा रुचि बढी। इधर श्री गुलाबचदजी जैन का सम्पर्क हुआ। आपने सन् १९३५ से ४० तक उम्मेदपुर विद्यालय मे तन-मन और धन से पूरा सहयोग दिया और वहा एक पार्श्वनाथ भगवान का जैन मदिर भी एक वर्ष मे आपकी प्रेरणा से तैयार होकर प्रतिष्ठा हुई जिसका शिलालेख मदिर मे विद्यमान है।

श्रीमान परागचन्दजी सा० भडारी
जोधपुर (राज०)

श्रीमान चोमनचन्दजी सा० भडारी
जोधपुर (राज०)

सन् १६४० मे बाढ आने के कारण विद्यालय के भवन को काफी क्षति पहुची और वहा से स्थान परिवर्तन करना पडा और फालना स्टेशन पर विद्यालय खोला गया जो आज डिग्री कॉलेज के नाम से विख्यात है। आप इसमे सदस्य है। आपकी ओर से एक कमरा बना कर विद्यालय को भेट किया गया।

सन् १६४० मे सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के बाद आपने अपना अमूल्य समय धर्म कार्य मे व्यतीत करने का निश्चय किया। आप जोधपुर तपागछ सघ के कई वर्ष तक अध्यक्ष रहे हैं और धर्म क्रिया भवन, जोधपुर जो आहोर की हवेली के पास बना उसमे आपका पूर्ण सहयोग रहा।

श्री गागाणी तीर्थ का कार्य श्री फकीरचदजी चला रहे थे किन्तु वो बाहर रहने से जैसा कार्य होना चाहिए वैसा नही हुआ। श्री प्रेमसुंदरजी म की प्रेरणा से यह काम आपने अपने हाथ मे लिया और सन १६५७ से ६७ तक आप इस तीर्थ की कमेटी के अध्यक्ष भी रहे। आपने इस तीर्थ का जीर्णोद्धार कराकर पुन· प्रतिष्ठा करवाई और वहा पेढी स्थापित कर सुचारु रूप से कार्य चलाने की व्यवस्था की। आपके प्रयत्न से १० वर्ष मे लगभग ६००००) रु मन्दिर व धर्मशाला मे लगाए गए। आपको चन्दे के लिए मद्रास इत्यादि बाहर भी जाना पडा। सेहवाज गाव जो सोजत तहसील मे है आपके इजारे मे था वहा पर एक पाठशाला खुलवाने मे आपका पूर्ण सहयोग रहा।

इसके अतिरिक्त आबिलखाता, स्वामीवत्सल, स्वधर्मी बधुओ की भक्ति इत्यादि कई कार्यो मे आप दिल खोल कर पैसा खर्चते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि आप धर्म के प्रत्येक कार्य मे हर प्रकार का तन-मन-धन से सहयोग देते रहते हैं। आपकी आयु इस समय ८६ वर्ष की है फिर भी आपका स्वास्थ्य अच्छा है और देव दर्शन इत्यादि धर्मक्रिया करते ही रहते हैं। भविष्य मे भी शुभ कार्य मे आपका सहयोग बना रहेगा ऐसी कामना करते हैं।

श्री चिमनचदजी भंडारी जोधपुर का जीवन चरित्र

आपका जन्म वि स १६६७ के माघ सुद १३ को हुवा। आप श्री पिरागचन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। पिताजी के सस्कारो से आपकी जैन धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। आप पुलिस महकमे मे ई सन् १६२८ मे सर्विस की और सब इन्सपेक्टर के पद पर आप जोधपुर डिवीजन के कई वडे वडे कस्बो मे रहे। सन् १६५७ मे आपने त्यागपत्र दिया। इसके बाद आपका शेष जीवन धार्मिक कार्य मे व्यतीत होता है।

आप प्राचीन तीर्थ श्री कापरडा के आसपास पीपाड, रीया, बिलाडा मे सब इन्स-पेक्टर के पद पर रहे। जब से यानि सन् १६३४ से आपका प्रेम इस तीर्थ के प्रति बढता ही गया। आप इस तीर्थ की व्यवस्थापक समिति के कई वर्षो से सदस्य हैं और ६-६-

१९६० से आप उपाध्यक्ष हैं। आपने इस तीर्थ की तन-मन-धन से जो सेवा की है वह सराहनीय है।

जब आप बिलाडे सब इन्सपेक्टर थे उस समय कापरडा मन्दिर मे वहाँ के बावरियो ने चोरी की। उसका पता लगाकर उस गाँव के सारे बावरियो से इस बात का इकरार कराया कि इस तीर्थ मे हम ही नही हमारी जाति का कोई भी व्यक्ति चोरी नही करेगा। इसका उल्लेख एक पत्थर पर लिखवा कर मन्दिर मे लगवा दिया गया उसका पालन अभी तक हो रहा है। आप गागाणी तीर्थ के कई वर्षों तक व्यवस्थापक समिति के सदस्य रहे और अभी आप अध्यक्ष के पद पर हैं। इसी तरह आप धर्म क्रिया भवन जोधपुर, भैरोबाग तीर्थ इत्यादि कई सस्थाओ मे सदस्य हैं और रुचि के साथ कार्य करते हैं। आपकी धर्मपत्नी के धर्म सस्कार इतने दृढ हैं कि उन्होने दो बार उपध्यान तप किया और भी कई तरह की तपस्याएँ की। इसके उपलक्ष मे उजवणा, पारणे इत्यादि कराकर शुभ कार्य मे काफी पैसा खर्च किया।

स्वामीवत्सल, गुरुभक्ति, पुस्तकजी पालनो के उत्सव इत्यादि मे भी चचल लक्ष्मी का सदुपयोग आपने किया।

पाली से ४-५ मील की दूरी पर गिरादना नाम के गाँव मे आपका फार्म है। पहले यह गाव आपही के पूर्वजो के पट्टे मे था, वहा सन् ४५ मे जमीन खरीद कर फार्म स्थापित किया, जो आज अच्छी स्थिति मे है। सन् ५७ से आपका ध्यान उसी ओर लगा रहता है और ज्यादातर आप वही रहते हैं। आपके दो पुत्र हैं श्री लक्ष्मीपतचन्दजी और महिपतचन्दजी। ये दोनो आपकी आज्ञा मे हैं और धर्म सस्कार भी ठीक हैं।

जोधपुर मे लक्ष्मी ओटोमोबाइल्स नाम से कारोबार श्री लक्ष्मीपतचदजी करते हैं। श्री महिपतचदजी अभी जापान से ट्रेनिंग लेकर आए हैं और पाली जिले मे यग फायर एशोसियेशन के सयोजक हैं। धर्म के प्रताप से आपका जीवन सुखसम्पन्न है।

आप सन् १९४७ मे बिलाडे मे पुलिस थानेदार थे उस समय जैन समाज मे वर्षों से धडे पडे हुए थे। आपके प्रयास से धडे मिटाकर समाज मे सगठन करवाया और अपनी तरफ से स्वधर्मी वात्सल्य किया।

स्वर्गीय श्रीमान मोहनराजजी भंसाली

श्री भसालीजी का जन्म पीपाड (राजस्थान) मे वि १९७३ मे हुआ। आप स्व० श्री सुकनराजजी भसाली के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपकी माता का नाम श्रीमती विमलकवर बाई है। आपका विवाह १८ वर्ष की आयु मे ही खेजडला निवासी श्री सोनराजजी मूथा की सुपुत्री उगमदेवी के साथ हुआ। आपके एक पुत्र श्री धनपतराजजी एम एस-सी हैं तथा दो पुत्रियाँ पुष्पादेवी व ज्ञानकँवर बी ए हैं।

स्व० श्रीमान मनमोहनराजजी सा० भसाली
पीपाड (राज०)

स्व० श्रीमान बलवंतराजजी भसाली पीपाड (राज०)
(स्वर्गवास के बाद का चित्र)

आपकी उच्च शिक्षा बनारस विश्वविद्यालय मे हुई। शिक्षा अध्ययन के समय आपकी गणना होनहार विद्यार्थियो मे गिनी जाती थी। आपने बी फार्म का डिग्री प्राप्त कर वही नेशनल केमिकल कम्पनी के नाम से कारखाना खोला। आपने आर्थिक कठिनाइयो मे ही शिक्षा ग्रहण की और अपने व्यवसाय को आगे बढाया। आपके कारखाने से आमदनी शुरू हुई थी कि एकाएक आपका ध्यान सासारिक मोह बधन से हटता गया और शनै. शनै: कारखाना अपने भाइयो के सुपुर्द कर दिया।

अपनी ३२ वर्ष की आयु मे ही आप घर से अलग मेलूपुर मन्दिर मे रहने लगे। वि स २०१० मे आप अर्द्ध रात्रि मे अपने कुटुम्ब परिवार को छोडकर बनारस से बिहार प्रान्त के वीरान जगल मे चले गए, जहाँ पर किसी समय भगवान महावीर तथा बुद्ध विचरते थे। छ मास तक अज्ञातवास मे आपने कठिन तपस्या की व ध्यान लगाया। तत्पश्चात आप भगवान महावीर स्वामी के जन्मस्थान श्री क्षत्रियकुण्ड तीर्थ पर रहने लगे। वही लगभग ३ वर्ष तक आपने मौन रह कर तेले-तेले को तपस्या की। लछवाड से पहाड तक तथा पहाड पर जो सीढियें बनी हैं वे सब आप ही के सद्प्रयत्नो की देन है।

वि स २०१४ मे आप अहमदाबाद के पास श्रीमद् राजचद्रजी के आगास आश्रम मे चले गये। करीब ४ वर्ष वहाँ रहकर आपने साधनामय तपस्वी जीवन बिताया। उस आश्रम मे रहने वाले भाई-बहन आज भी आपको याद करते रहते हैं।

विधि का विधान ही ऐसा है। ससार मे जो आया है वह जाएगा तो श्री भसालीजी हमारे बीच कैसे रह सकते थे। आखिर १२ जुलाई, सन् १९६२ का दिन आया और अर्द्ध रात्रि मे उनके शरीर मे वेदना हुई और दिन के १२ बजे आपका समाधि-मरण हो गया। इस प्रकार आप हमारे बीच से सदा के लिए बिछुड गए।

स्वर्गीय श्री बलवन्तराजजी भन्साली

श्री भसालीजी का जन्म पीपाड राजस्थान मे वि स १९०६ मे हुआ। आप स्वर्गीय श्री सुकनराजजी भन्साली के द्वितीय पुत्र थे। आपकी माता का नाम श्रीमती विलम कँवर बाई है। आपकी शिक्षा भी जोधपुर मे ही हुई। आपने बी काम एल एल बी तक की उच्च शिक्षा ग्रहण की। शिक्षा अध्ययन के समय आपकी गणना होनहार विद्यार्थियो मे थी। आपका विवाह १८ वर्ष की आयु मे खजवाणा निवासी स्वर्गीय श्री किशनलालजी नाहर की सुपुत्री कनकलता देवी के साथ हुआ। आपके इस समय तीन पुत्रिया तथा तीन छोटे पुत्र हैं।

अपनी शिक्षा समाप्त कर आप अमरावती महाराष्ट्र मे व्यापारी ऐसोशिएसन मे सचिव के पद पर कुछ मास रह कर फिर कलकत्ता चले गए। अधिकाश समय आपने

कलकत्ता मे ही बिताया। वहा हेस्टिंग जूट मिल्स, एलायन्स जूट मिल्स तथा नई हटी जूट मिल्स मे लेबर आफिसर, मैनेजर तथा सचिव के उच्च पद पर रहे। आप वहां सिर्फ नौकरी ही नही करते थे बल्कि आपके दिल मे देश, समाज व धर्म के प्रति भी काफी अच्छी लग्न थी, यही वजह हुई कि कलकत्ते मे थोडे दिन रहने के बाद ही आपकी गणना उस श्रेणी मे होने लगी जिसमे लोग समाजोन्नति की ओर लक्ष्य रखते थे। आपने वहा रह कर कइयो को अमूल्य सहायता पहुचाई।

अपने बडे भ्राता स्वर्गीय श्री मनमोहनराजजी भसाली के आग्रह पर आप नौकरी छोड अपने घरेलू उद्योग धन्धे मे सम्मिलित हो गए। उन्ही के द्वारा स्थापित नेशनल केमीकल कम्पनी, वाराणसी का कार्य भी देखने लगे। आपने दिल्ली मे भी आफिस खोली। दिल्ली मे रहते हुए भी आप सिर्फ अपने व्यवसाय की ओर ही लक्ष्य नही देते थे बल्कि समाजोन्नति की तरफ सदा की भाति ख्याल रहता था। यही वजह है कि आपने बहुत ही थोडे समय मे ही दिल्ली आफिस को चमका दिया। सन १९६४ के सितम्बर मास मे आपने मद्रास मे ऑफिस खोली और आप ऑफिस का कार्य सुचारु रूप से चलाने हेतु ३० सितम्बर सन १९६४ को वहा पहुचे थे पर काल चक्र ने आगे बढने से रोक दिया और ९ अक्टूबर सन १९६४ की रात्रि मे अपने पास बुला लिया। इस प्रकार अचानक ही आपकी जीवन लीला समाप्त हो गई जबकि ऐसे समय मे समाज को आपकी आवश्यकता थी।

श्री केसरीमलजी मांडौत

आपका जन्म सोजत मे हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री हीराचदजी माडौत था आप व्यापार हेतु बडौदा गए। वहाँ आपने अच्छी सफलता प्राप्त की। आप बहुत मिलन-सार एव विनम्र हैं। बडौदा नया बाजार क्लाथ मर्चेन्ट एसोसिएशन के अध्यक्ष और श्री वर्धमान क्रेडिट कोआपरेटिव बेंक के डाइरेक्टर हैं।

आपने अपनी जन्म भूमि सोजत से जैसलमेर, लोद्रवा, कापरडाजी, बीकानेर, केसरियाजी और गोडवाड की पचतीर्थी का सघ निकलवाया, जिसमे लगभग एक सहस्र यात्री थे। प्रभुभक्ति निमित्त अट्ठाईमहोत्सव, शान्ति स्नात्र, वरगोडा नवकारसी आदि अनेक धर्म कार्य आपने किए, जिसमे हजारो रुपये व्यय किए। इसी वर्ष सोजत मे माघ शुक्ला पचमी को श्रीमद् विजयवल्लभ सूरिजी महाराज की चरण पादुका की प्रतिष्ठा कराकर गुरु भक्ति का लाभ लिया। इस शुभ अवसर पर उपरोक्त आचार्य श्री के पट्टधर शिष्य श्रीमद् विजयसमुद्रसूरिश्वरजी महाराज अठारह ठाणे से पधारे थे। इस कारण पजाब बीकानेर आदि अनेक दूरगामी स्थानो से यात्री आए। इस अवसर पर लगभग तीस

श्रीमान केशरीमलजी माडोत,
सोजत सिटी (राज०)

श्रीमति पतासीबाई, धर्म पत्नि श्री
केशरीमलजी माडोत
सोजत सिटी (राज०)

चालीस सहस्र रुपये व्यय किए। आपका जीवन सरल, सादा एव निरभिमानी है। श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति आपकी सद्भावना सदैव रही है और रहेगी।

श्रीमती पताशी बाई धर्मपत्नी श्री केसरीमलजी माडौत धर्म के प्रताप से ससारी सुख मिलता है इसलिए सौभाग्यवती श्रीमती पताशी बाईजी अपने पति की जीवन साथी बनकर धर्म कार्यो मे सलग्न रहती हैं। आपको बडौदा महिला समाज मे अग्रगण्य स्थान प्राप्त है। बडौदा महिला वल्लभ समाज की अध्यक्ष हैं। स्वभाव से उदार तथा मिलनसार होने के कारण अति लोकप्रिय हैं। धर्मक्रिया मे दानशील, तप भावना आदि मे यथा-शक्ति भाग लेती रहती हैं। आपके पुत्ररत्न श्री चम्पालालजी योग्य, धर्मप्रिय तथा दयालु स्वभाव के हैं। पजाबकेसरी श्रीमद् वल्लभ सूरिश्वरजी महाराज के परम भक्त हैं। और महावीर जैन विद्यालय बम्बई की, जो कि गुरुदेव की स्थापित की हुई महान सस्था है, आर्थिक सहायता करते हुए जीवन को सफल बनाया है। गुरुदेव के स्मारक रूप पत्र सेवा समाज के वर्षो से ग्राहक ही नही आजीवन सदस्य भी बने हुए हैं।

इस प्रकार के सुदानी, धर्म व श्रद्धा से परिपूर्ण आपका अनुकरणीय जीवन है। भविष्य मे भी आप श्रीमन्तो के कर कमलो से ऐसे ही धर्मकार्य होते रहेगे ऐसी आशा है।

श्री सुकनराजजी मांडौत, सोजत

आपका जन्म वि स १९६८ आसोज कृष्ण ९ को सोजत मे हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री हीराचदजी और माताजी का नाम पार्वती बाई था। व्यवहारिक और धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् आपका १७ वर्ष की अवस्था मे विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह होते ही पिताजी स्वर्ग सिधार गए। व्यापार मे लगने के उपरात आपने अच्छी ख्याति प्राप्त की। साथ ही धर्म कार्यों मे भी आपने अच्छा सहयोग दिया। आपने बडौदा, जैसलमेर, बीकानेर, सोजत के जैन तीर्थो की सघ यात्राए कराई। सोजत मे आसोज मास मे श्री सिद्धचक्र की ओली, ज्ञानपचमी का उज्झमणा व सिद्धचक्र की बडी पूजन भी करवाई। और नए उपासरे का उद्घाटन कराया। बडौदा मे जैन महिला उपाश्रय की आधारशिला भी आप ही के कर कमलो से रखी गई। सोजत व बडौदा मे वर्धमान आयबिल तप सस्था पाठशाला एव पुस्तकालय इत्यादि मे पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। इसी प्रकार प्रत्येक धर्म कार्य मे आपका सहयोग प्राप्त होता रहता है। सामायिक प्रतिक्रमण पूजा आदि मे आप सलग्न रहते । गुरु भक्ति में भी आप ओत-प्रोत हैं।

श्रीमती तारा बाईजी धर्मपत्नी श्री सुकनराजजी माडौत

आपकी धर्म पर महान श्रद्धा है और धर्म-कार्यो मे ही आप अपना समय व्यतीत

करती हैं। इनके पति को भी सदैव प्रेरित करती रहती हैं। आप धर्मानुरागी श्राविका तो हैं ही—व्यवहार में भी विनम्रता और मिलनसारिता के लिए प्रसिद्ध हैं। आपके तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र है। पुत्र का नाम श्री उत्तमचन्दजी है। आप अपने पिता को समाज व धर्म के कार्यों में पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। अच्छे माता-पिता होने से आप भी सदाचारपूर्ण हैं। बड़ौदा में श्री आत्मानन्द जैन उपाश्रय की देख-रेख भी करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आप तीनों प्रत्येक धर्म कार्य में सहयोग देना अपना मुख्य कर्त्तव्य मान कर जीवनयापन करते हैं।

श्रीमान् केसरीमलजी कोचर मेहता, जैतारण

आपका जन्म वि स १९४८ मे जैतारण में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सिमरथमलजी था जो अपने इकलौते पुत्र को मात्र चार वर्ष की अवस्था मे छोड स्वर्ग सिधार गए। आपकी मातेश्री बापूबाई भी आपको सोलह वर्ष की अवस्था मे छोड कर स्वर्ग सिधार गई। माता पिता के अभाव मे भी अपनी सहज प्रतिभा के कारण आप अपने पैरों पर खडे हुए। अपने जीवन काल मे आपने अनेक उतार-चढाव देखे जिनका आपने बडी दृढतापूर्वक सामना किया। जन्म से सुसस्कृत एव धर्म मे अनुरक्त होने के कारण आप वृद्धा अवस्था तक समाज को अपने विभिन्न अनुभवो से लाभान्वित करते रहे और कई सस्थाओं के लगातार सदस्य रहे। आप श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक सघ, जैतारण के प्रबन्धक (ट्रस्टी) कई वर्षों से जीवनपर्यन्त रहे। आपका जीवदया की ओर भी विशेष ध्यान था। आपने कबूतरो के लिए धान की स्थायी व्यवस्था के लिए अपनी एक दुकान दान मे दी। इसके अतिरिक्त आपने अन्य धार्मिक व सामाजिक सस्थाओ की यथायोग्य तन, मन, धन से सेवा की।

आपका व्यापार मुख्यतर किसानो के साथ था। किसानो के साथ आपका व्यवहार सच्चा व ईमानदारीपूर्ण था। हर किसान के मुँह से हमेशा आपकी प्रशसा ... थी व निकलती है।

सवत् २०११ के असाढ शुक्ल १४ को भगवान का स्मरण करते २ ... हो गया। आपकी चेतना शक्ति ... समय तक कायम रही। आप ... पौत्रादि परिवार को छोड ... गए। जैतारण के धार्मिक, समाज को आपके अन्तकाल से ... पहुची।

... मेहता, जैतारण

आप स्व० श्री के ... के ज्येष्ठ

श्रीमान केशरीमलजी कोचर, मेहता
जैतारण (राज०)

श्रीमान पारसमलजी साहब कोचर, मेहता
जैतारण (राज०)

करती हैं। अपने पति को भी सदैव प्रेरित करती रहती है। आप धर्मानुरागी श्राविका तो हैं ही–समाज मे भी विनम्रता और मिलनसारिता के लिए प्रसिद्ध हैं। आपके तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र है। पुत्र का नाम श्री उत्तमचन्दजी है। आप अपने पिता को समाज व धर्म के कार्यो मे पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। अच्छे माता-पिता होने से आप भी सदाचारपूर्ण हैं। बडौदा मे श्री आत्मानन्द जैन उपाश्रय की देख-रेख भी करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आप तीनो प्रत्येक धर्म कार्य मे सहयोग देना अपना मुख्य कर्त्तव्य मान कर जीवनयापन करते हैं।

श्रीमान् केसरीमलजी कोचर मेहता, जैतारण

आपका जन्म वि स १९४४ मे जैतारण मे हुआ। आपके पिता का नाम श्री सिमरथ-मलजी था जो अपने इकलौते पुत्र को साढे चार वर्ष की अवस्था मे छोड स्वर्ग सिधार गए। आपकी मातेश्री धापूबाई भी आपको सोलह वर्ष की अवस्था मे छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई। माता पिता के अभाव मे भी अपनी सहज प्रतिभा के कारण आप अपने पैरो पर खडे हुए। अपने जीवन काल मे आपने अनेक उतार-चढाव देखे जिनका आपने बडी दृढतापूर्वक सामना किया। जन्म से सुसस्कृत एव धर्म मे अनुरक्त होने के कारण आप वृद्धा अवस्था तक समाज को अपने विभिन्न अनुभवो से लाभान्वित करते रहे और कई सस्थाओ के लगातार सदस्य रहे। आप श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक सघ, जैतारण के प्रबन्धक (ट्रस्टी) कई वर्षों से जीवनपर्यन्त रहे। आपका जीवदया की ओर भी विशेष ध्यान था। आपने कबूतरो के लिए धान की स्थायी व्यवस्था के लिए अपनी एक दुकान दान मे दी। इसके अतिरिक्त आपने अन्य धार्मिक व सामाजिक सस्थाओ की यथायोग्य तन, मन, धन से सेवा की।

आपका व्यापार मुख्यतर किसानो के साथ था। किसानो के साथ आपका व्यवहार सच्चा व ईमानदारीपूर्ण था। हर किसान के मुंह से हमेशा आपकी प्रशसा निकलती थी व निकलती है।

सवत् २०११ के अषाढ शुक्ल १४ को भगवान का स्मरण करते २ आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी चेतना शक्ति अन्त समय तक कायम रही। आप अपने पीछे २ पुत्र व पौत्रादि परिवार को छोड कर स्वर्ग सिधारे। जैतारण के धार्मिक, सामाजिक व कृषक समाज को आपके अन्तकाल से बहुत क्षति पहुची।

पारसमलजी कोचर मेहता, जैतारण

आप स्व० श्री केसरीमलजी कोचर मेहता के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपका जन्म

श्रीमान केशरीमलजी कोचर, मेहता
जैतारण (राज०)

श्रीमान पारसमलजी साहब कोचर, मेहता
जैतारण (राज०)

श्रीमान सुकनराजजी, सिंघवी
जोधपुर (राज०)

श्रीमान भोकमचदजी, मेहता
भांवरी हाल पाली (राज०)

वि० स० १९६५ के भाद्र सुदि पचमी को जैतारण नगर मे हुआ। आपकी माता का नाम रतनबाई था। आपकी माता का देहात आपके बाल्यकाल मे ही हो गया था। आपके एक भाई और पाच पुत्र व पाँच पुत्रिया हैं। आपका परिवार सुखी, सम्पन्न एव बहुजीवी है। आप ६१ वर्ष की अवस्था में भी सरल स्वभाव, परिश्रमी एव फुर्तीले हैं। आपके व्यापार के मुख्य स्थान जैतारण एव मद्रास स्थित बडापल्लानी है। मुख्य व्यवसाय कपडे का है। आपका धधा किसानो के साथ भी है जो अपने पिताजी के समय से चला आ रहा है। अपने पिता की तरह आपका व्यवहार भी किसानो के प्रति अच्छा एव ईमानदारीपूर्ण है। आप अपने पिता की तरह धार्मिक प्रवृत्ति वाले एव सुसस्कृत भी हैं।

आप अपने पिता के वाद जैन मूर्तिपूजक सघ जैतारन के ट्रस्टी हैं। आप धार्मिक व सामाजिक कार्यों मे यथायोग्य तन, मन, धन से सेवा करते हैं।

२८ श्री सुकनराजजी सिंघवी जोधपुर

आपका जन्म वि स १९४४ पौष कृष्णा ८ को जोधपुर मे हुआ। आपके पिता श्री पृथ्वीराजजी सिंघवी बडे मिलनसार और धर्मप्रिय थे। आप ही के गुणानुरूप श्री सुकनराज जी ने १९०६ ई मे रेजीडेंसी सर्जन के कार्यालय मे सर्विस प्रारम्भ की और ३९ वर्ष पश्चात १९४५ मे अवकाश ग्रहण किया। आपने कइयो को नौकरी पर लगाया इसीलिए आपकी अच्छी कीर्ति फैली और बहुश्रुत मान पाया। जोधपुर के ओसवाल समाज मे आप बडे आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। आपका स्वर्गवास वि. स २०१५ पौष वद १० को हुआ। धर्म के प्रभाव से आपका समस्त परिवार सुखी है। आपकी पत्नी श्रीमती अकलकुंवरिवाईजी भी बडी धर्मप्रिय थी। आप सदैव सामयिक व प्रतिक्रमण आदि धर्मक्रियाओ मे व्यस्त रहती। तप और त्यागमय आपका जीवन पतिसेवा मे लीन रहा।

सिंघवीजी के दो पुत्र श्री मदनराजजी व श्री चन्द्रराजजी हैं। बडे पुत्र ने महकमाखास मे ऑफिस सुपरिन्टेन्डेण्ट पद से अवकाश ग्रहण किया। आपने पिता की जो सेवा की वह सराहनीय रही। छोटे पुत्र विद्युत बोर्ड जयपुर मे एसिस्टेंट डायरेक्टर हैं। आपने शत्रुंजय, गिरनार व केसरियाजी आदि तीर्थों की यात्राये की हैं। अपनी माता की स्मृति मे कापरडाजी पर एक कमरा बनवाने हेतु एक हजार एक रुपए भेंट किए तथा दो सौ इक्यावन रुपए इस ग्रथ के प्रकाशनार्थ भेंट किए। दोनो भाइयो की ओर से वेणावतो के बास वाले उनके निजी नौहरे मे देशी दवाखाना भी दो साल से चल रहा है।

इस प्रकार सिंघवीजी का परिवार धार्मिक व सामाजिक आदि शुभ कार्यों मे सदैव सहयोग के लिए तत्पर रहता है।

श्रीमान भीकमचन्दजी मेहता भांवरी वाला, हाल पाली

आप मूल निवासी भावरी के हैं। पाली मे २५ वर्ष से रहते हैं। आपकी एक दूकान जीवराजजी लालचन्दजी के नाम से पाली मे व दूसरी दूकान बेलगाव मे सिरेमलजी पूनमचन्दजी के नाम से चलती है। आपकी धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। २००४ मे भावरी प्रतिष्ठा मे करीब ४० हजार रुपए खर्च किये। देरासर मदिर (पाली) की प्रतिष्ठा मे करीब ४०००) रु० खर्च किये। आप श्री नवलमलजी सुपरतचदजी जैन पेढी पाली के सदस्य भी हैं। बेलगाव, उपासरे मे ७००१) रु० भेट किये। पाली पाठशाला मे ८५०१) रु० भेट किये।

इस तीर्थ पर ११००) टाका बना उसमे दिए। १००१) रु० कमरा बनाने मे दिए। सवत २०१७ चैत्र शुक्ला ५ को वार्षिक महोत्सव मे सुबह का स्वामीवात्सल्य किया। श्री नवलखाजी मदिर मे १ कमरा २१०१) रु० लगाकर बनवाया। भावरी मे दो मकान प्याऊ के लिए बनवाए।

आपके धर्मपत्नीजी बहुत तपस्विनी है और धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखती है। हाल ही मे उपधान तप कर रही है। आपके एक पुत्र श्री लालचदजी भी सरलस्वभावी, मिलनसार हैं। आप वेलगाव की दुकान पर रहते हैं। ३ वर्ष पहिले वहा सवेगी साधु म० का चातुर्मास कराकर अगइ की तपस्या की।

श्रीमान मगनमलजी मेघराजजी पोरवाल रानी स्टेशन निवासी का सक्षिप्त जीवन परिचय

आप श्रीमान मेघराजजी के द्वितीय पुत्र हैं। आपका जन्म पावा तहसील बाली जिला पाली मे हुआ। आप व्यापार हेतु लगभग ५०–५५ वर्ष पूर्व रानी पधारे और व्यापार अच्छा चलने से वही पर निवास कर लिया। आप बहुत ही सरल स्वभाव वाले धर्मप्रेमी सज्जन हैं। शुभ खाते मे यथाशक्ति हर समय चचल लक्ष्मी का सदउपयोग करते रहते हैं। आपकी फर्म का नाम मोतीलालजी मगनमलजी है। आपके एक पुत्र श्री मोतीलालजी हैं। ये भी अपने पिता श्री के पदचिन्हो पर चलते हैं और धर्मानुरागी हैं। आपकी पत्नीजी प्यारी बाई बहुत ही तपस्विनी एव श्राविका धर्म मे दृढ है।

रामसीन नगर मण्डन श्री सुपार्श्वनाथस्वामिने नम.

श्रेष्ठि श्री फूलचद मुबाजी कागरानी रामसीन नगर के एक आदर्श दानवीर हैं, जिनकी उम्र करीव ४५ वर्ष की है। आप धर्मप्राण, श्रद्धालु और दयालु हैं। इनका मुख्य

श्रीमान मगनमलजी साहब, पोरवाल
राणी (राज०) जिला पाली

श्रीमान फूलचन्दजी भुबाजी साहब
रामसीण (राज०) जिला जालोर
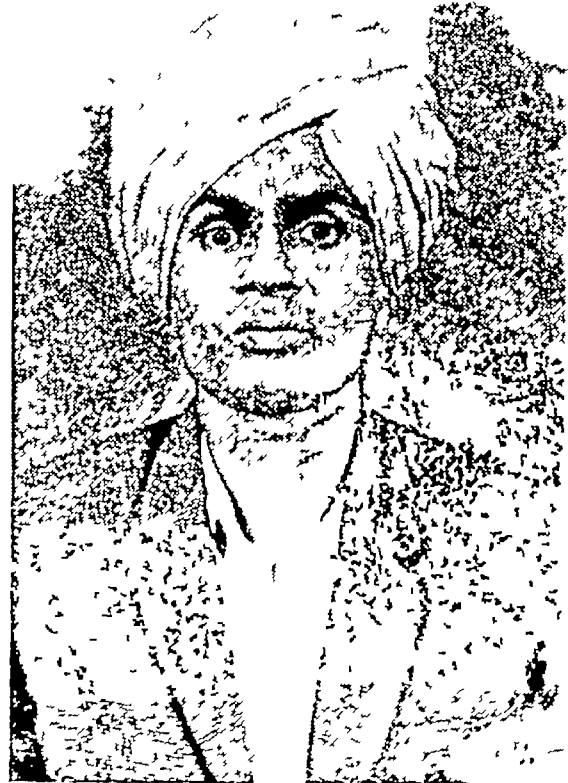
श्रीमान अनराजजी सा० बणवट
विलाडा (राज०) जिला जोधपुर

श्रीमान इन्द्रचन्दजी सा० बणवट
विलाडा (राज०) जिला जोधपुर
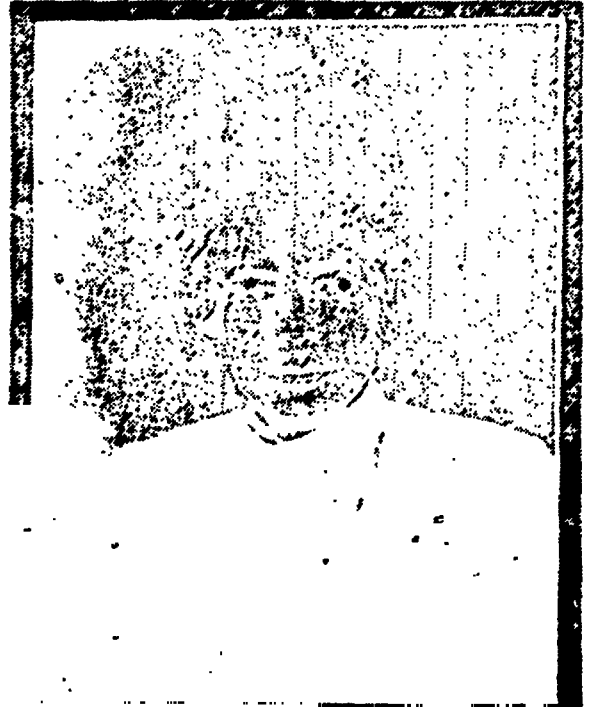
व्यापार कपडे का है। सद्कर्मयोग से इनकी धर्मपत्नी मृगावतीबाई धर्म के प्रति रुचि रखने वाली है। ऐसे धर्मयुगल रामसीन ग्राम के लिए आदर्श रूप हैं। आपके ४ पुत्र तथा २ कन्याए हैं।

आपने अपने जीवनकाल मे श्री सम्मेतशिखरजी, सिद्धगिरिजी (श्रीशत्रुंजय तीर्थ) जैसलमेर आदि की यात्रा करके जीवन को सफल बनाया।

सेठ श्री फूलचन्दजी बडे भारी ऋद्धिवन्त नही हैं और न ही बडे श्रीमत हैं मगर भावना के बडे ऋद्धिवान हैं। सेठ श्री धार्मिक ज्ञान इतना नही रखते हैं फिर भी जब जब श्री देवगुरु दान का मार्ग बताते हैं तब तब सभी कार्य करने मे शक्ति के अनुसार दान देकर आत्मा को धन्य मानते हैं।

आपने सवत २०२४ की साल मे पूज्यपाद आचार्यदेव की निश्रा मे भगवती सूत्र को घर लेजा कर रात्रिजागरण, वर घोडा सहित किया। मासक्षमण का पारणा ४२वी आयबिल की ओली का पारणा मुनिराज को करवाया और सिद्धचक्र पूजा करवाई तथा अन्य धर्मकार्य उत्साहपूर्वक किए गए।

श्रीमान अनराजजी बनवट, बिलाडा

आप श्रीमान गणेशमलजी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपके पूज्य पिताजी श्री जैन श्वेताबर मूर्तिपूजक श्री सघ बिलाडा के काफी वर्षो तक कोषाध्यक्ष रहे। आप बहुत ही सरलस्वभावी, धर्मप्रेमी सज्जन हैं। आपके १ पुत्र श्री नेमीचदजी हैं वे धर्म मे अच्छी प्रवृत्ति रखते हैं। आपकी १ दूकान कपड़े की बिलाडा मे व एक दूकान अबातूर (मद्रास) मे है। आपकी धर्मपत्नीजी व पुत्रवधू बहुत तपस्या करती हैं। आपके धर्मपत्नीजी ने ११ की तपस्या की उस समय साधर्मीवात्सल्य भी किया।

श्रीमान इन्द्रचन्दजी बनवट, बिलाडा

आप श्रीमान गणेशमलजी के पुत्र हैं। आपके दो पुत्र श्री प्रकाशचन्दजी व श्री मूलचदजी हैं। आपकी १ दूकान कपड़े की बिलाडा मे व १ दूकान टी नगर (मद्रास) मे है। आप बहुत ही विनम्र, मिलनसार व्यक्ति हैं। धर्म-कार्य व समाज-कार्य मे बहुत दिलचस्पी लेते हैं। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री मिश्रीमलजी हैं जो समाज.कार्यों व धार्मिक कार्यों मे बहुत रुचि रखते हैं। आपके सर्व कुटुम्बी धर्म मे पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आपकी मातेश्वरी श्रीमती चूनीबाई ने वरसी तप किया उसके उपलक्ष मे साधर्मीवात्सल्य किया। समय-समय पर धार्मिक कार्यों मे अपनी चचल ल मी का सद्उपयोग करते रहते हैं।

श्रीमान धुलाचन्दजी डोसी

खारीया मीठापुर के निवासी हैं। इनका जन्म १९५८ फागण मास का है। आप बडे सज्जन और जैन धर्म मे पूरी श्रद्धा रखते हैं। आपके एक पुत्र हरकचदजी डोसी हैं। उनकी बेगलोर मे दूकान है जो सिल्क एम्पोरियम के नाम से चलती है।

स्व० श्रीमान् दानवीर शाह फोजमलजी बालाजी, शिवगज

आपका जन्म वि स १९५० मे शिवगज मे हुआ। बाल्य काल से ही आपके सुसस्कार नजर आने लगे। आपने साधारण स्थिति मे अपने पुरुपार्थ के बल पर उन्नति की। आपने अपने जीवन मे अनेक शुभ कार्य किए। धार्मिक कार्यों मे आप सदा अग्रणी रहते थे। आपने उपधान तप आदि कराये तथा दान देने मे तो आपकी यह प्रसिद्धि थी कि आपके वहाँ से कोई भी खाली हाथ नही लौटा। आपकी श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति बडी श्रद्धा थी। वि स १९९१ से आज पर्यन्त आपकी तरफ से मूल गभारे मे अखड ज्योत चल रही है। आपका स्वर्गवास वि स १९९६ मे हुआ। आपने जितनी उम्र पाई उसका पूरा सदुप-योग किया। आपके परिवार भी बडे धार्मिक वृत्ति वाले हैं। आपके पीछे शिवगज मे एक धर्मशाला बनाई तथा प्रत्येक शुभ कार्य मे अपनी चचल लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहते थे। श्री कापरडाजी तीर्थ के लिए जब कभी आपके पास गए आपने बडे भक्ति भाव से सहयोग दिया। आपके सद्कार्यों का वर्णन जितना भी किया जाय थोड़ा है। हाल ही मे आपकी तरफ से मूलनायक भगवान् के मुख्य द्वार पर मकराने का जो कार्य हुआ है उसमे १४००) रु. कुल खर्च हुए हैं।

श्री चैनराजजी संघवी जैतारण निवासी की सक्षिप्त जीवनी

आपका जन्म १९५७ जैतारण मे हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री कनकमलजी सघवी था। बचपन से ही आप मे धर्म के सस्कार पडे और आज तक उन्ही सस्कारो के कारण धर्म कार्य मे आपका सहयोग रहता है। आपका गोत्र सुराना हैं किन्तु आपके पूर्वजो ने सघ निकलवाया इसलिए अब आप सघवीजी के नाम से विख्यात हैं। श्री सुमति-नाथ भगवान की प्रतिमा जो अभी श्री विमलनाथजी के मन्दिर मे है उस पर वि० स० १६६७ ज्येष्ठ कृष्ण ४ का शिलालेख खुदा है उससे आपके सघ निकालने की पुष्टि होती है। आपके पूर्वजो ने जैतारण बाजार मे एक जैन मन्दिर बना कर स० १६६७ मे प्रतिष्ठा करवाई। इस मन्दिर को दादाजी का देहरा भी कहते हैं। इसकी पुन. प्रतिष्ठा वि० स० १९७१ मे हुई जब आपकी ओर से काफी सहायता मिली। ये ही नही सघ का स्वामी-

श्रीमान धूलाचन्दजी डोसी
खारिया मीठापुर (राज०)

श्रीमान फोजमलमजी वालाजी पोरवाल
शिवगज (राज०)

श्रीमान धुलाचन्दजी

खारीया मीठापुर के निवासी हैं। इनका जन्म १९
सज्जन और जैन धर्म मे पूरी श्रद्धा रखते हैं। आपके ए
बेंगलोर मे दूकान है जो सिल्क एम्पोरियम के नाम से

स्व० श्रीमान् दानवीर शाह फोजम

आपका जन्म वि. स १९५० मे शिवगज मे हु
नजर आने लगे। आपने साधारण स्थिति मे अपने
अपने जीवन मे अनेक शुभ कार्य किए। धार्मिक व
आपने उपधान तप आदि कराये तथा दान देने
वहाँ से कोई भी खाली हाथ नही लोटा। आपकी
थी। वि स १९९१ से आज पर्यन्त आपकी तर
है। आपका स्वर्गवास वि स १९९६ मे हुआ।
योग किया। आपके परिवार भी बडे धार्मिक
धर्मशाला बनाई तथा प्रत्येक शुभ कार्य मे अप
थे। श्री कापरडाजी तीर्थ के लिए जब कर्म
सहयोग दिया। आपके सद्कार्यों का वर्णन जि
आपकी तरफ से मूलनायक भगवान् के मुख्य
१४००) रु. कुल खर्च हुए हैं।

श्री चैनराजजी संघवी जैतार

आपका जन्म १९५७ जैतारण मे हुआ
सघवी था। बचपन से ही आप मे धर्म के
कारण धर्म कार्य मे आपका सहयोग रहत
पूर्वजो ने सघ निकलवाया इसलिए अब अ
नाथ भगवान की प्रतिमा जो अभी श्री
१६६७ ज्येष्ठ कृष्ण ४ का शिलालेख खु
है। आपके पूर्वजो ने जैतारण बाजार मे
करवाई। इस मन्दिर को दादाजी का
१९७१ मे हुई जब आपकी ओर से का

श्रीमान चेनराजजी साहब, सघवी
जैतारण (राज०) जिला पाली

श्रीमान सोहनराजजी साहब, गाधी
पीपाड शहर त० विलाडा (राज०)

वत्सल भी आपके पूर्वज श्री प्रेमराजजी ने किया। आप धर्म के प्रत्येक कार्य मे अगुवा रहते हैं। सेवा-पूजा, प्रतिक्रमण, नित्य कर्म कई वर्षों से करते हैं। आपके सहयोग से श्री दादाजी के देहरा का जीर्णोद्धार हुआ, नई दूकाने इत्यादि बनी—इसमे ४ दूकाने इसी मन्दिर के पास बनाई हुई छोटी धर्मशाला के पास बनाकर सघ को सौंपी इस शर्त पर कि किराया साधु-साध्वियो के चातुर्मास मे व्यय होगा। छोटी धर्मशाला जो दादाजी के देवरे के पास है वह भी आपने बनाकर सघ को भेंट की है। ओलीजी के आम्बिल व पारणे इसी धर्मशाला मे होते हैं। जैतारण आम्बिल खाते के लिए आपने अपनी एक दूकान लगभग पाच हजार रुपए की सघ को भेंट कर लिखत दि० २४-११-५६ को रजिस्ट्री कराया। जैतारण मे जैनो के घर कम हैं, इसलिए हमेशा आम्बिल नही होते। आसोज व चैत्रमास मे ६ दिन आम्बिल व वद १ को पारणे उपरोक्त दूकान के किराए से होते हैं और आप स्वय अपनी देखरेख मे यह कार्य कराते हैं। यदि आप बाहर चले जाते हैं तो किसी जैन बधु को यह कार्य सौंप कर जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आबिल खाते की ओर आपका खास लक्ष्य है।

आपका धर्मप्रेम अनुकरणीय एव अनुमोदनीय है और आपने सवत् १६८६ मे पालीतणा रहकर काती सुद १५ से फागण सुद १५ तक निनाणुयात्रा भी की है। आप स० १६८६ से आज तक हर साल पालीतणा यात्रा को जाते हैं।

श्रीमान सोनराजजी गाँधी, पीपाड़ शहर

आपका मूल निवास पीपाड शहर (राजस्थान) है। आपका जन्म वि स. १६६२ पोष कृष्ण २ को हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री हरकचन्दजी था। आपका विवाह १४ वर्ष की आयु मे श्री चूनीलालजी मूथा की पुत्री श्रीमती दाखीबाई से हुआ। आपकी शिक्षा विशेष तौर पर महाजनी हुई। आप ने अपनी २४ वर्ष की उम्र से ही व्यापार शुरू किया। आपका फर्म जीतमलजी हेमराजजी के नाम से पीपाड शहर मे प्रसिद्ध था। आप शुरू मे ही धार्मिक वृत्ति वाले रहे हैं। धर्म कार्यो मे आप समय समय पर धन का सदुपयोग करते रहते हैं। इस समय आपके ४ पुत्र सर्व श्री सज्जनराजजी, हसराजजी, वसतराजजी व सम्पतराजजी हैं। वर्तमान फर्म सोनराजजी सज्जनराजजी के नाम से प्रसिद्ध है। आप भारतीय खाद्य निगम के एजेट हैं। आपके पुत्र बडे ही होनहार हैं। आप श्री कापरडाजी तीर्थ के प्रति अच्छा अनुराग रखते हैं। प्रतिवर्ष सपरिवार यात्रार्थ पधारते हैं। आपने श्री कापरडाजी मे समवसरण, मन्दिरजी की प्रतिष्ठा मे ५०१) रु व स्थायी सहधर्मी वात्सल्य फण्ड मे २०१) रु दिए।

श्रीमान् गुमानमलजी लोढ़ा एडवोकेट, जोधपुर

आप स्वर्गीय श्री हिम्मतमलजी लोढा के सुपुत्र हैं जो स्वय श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक समाज के प्रभावशाली सज्जन थे। आप राजस्थान के प्रमुख प्रतिष्ठित एडवोकेट हैं। आप वडे धार्मिक विचार वाले सज्जन हैं। आप बडे सरल स्वभावी तथा मिलनसार हैं। आप राजस्थान प्रदेश जन सघ के उपाध्यक्ष हैं एव अच्छे वक्ता भी हैं।

जैन धर्म व समाज की सेवा हेतु आपने श्री नाकोडा पार्श्वनाथ मन्दिर व श्री केसरिया-नाथजी मन्दिर, उदयपुर के पवित्र तीर्थों पर जैन श्वेताम्बर समाज का सचालन करवाने हेतु राजस्थान उच्च न्यायालय मे रिट याचिकाएँ कर नि शुल्क पैरवी, अथक परिश्रम व लगन के द्वारा की जिससे राजस्थान पब्लिक ट्रस्ट एक्ट की बहुत सी धाराएँ अवैधानिक घोषित कर दी गई व ऐतिहासिक तीर्थ केशरियानाथजी के सचालन को राज्य सरकार जैन श्वेताम्बर मान्यता के अनुयायियो को सुपुर्द करने की आज्ञा दी गई। इन दोनो निर्णयो के विरुद्ध सरकार द्वारा सुप्रिम कोर्ट मे की गई अपील के विरुद्ध भी आप नि शुल्क पैरवी कर रहे हैं। बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध छोटूलाल लल्लूभाई की अपील मे आपने जैन ट्रस्ट का उपयोग व जैन सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिये नि शुल्क पैरवी सुप्रीम कोर्ट मे की। न्यायालयो एव सरकार को धार्मिक कार्यों मे दखल न करने के भारतीय सविधान के मूलभूत अधिकार पर जैन शास्त्रो के लगातार उद्धरण के साथ अपनी महान् वैधानिक तर्कों के साथ जो धाराप्रवाह बहस की व सफलता प्राप्त की वह सराहनीय है। न्यायाधीश श्री सुब्बाराव, श्री रघुदयाल, श्री बच्छावत व श्री राधास्वामी को अपने विद्वता-पूर्वक तर्कों से प्रभावित कर अन्त मे विदा होते समय आपने 'मैं जैन सिद्धान्तो का प्रति-पादन करने एक जैन मुनि की प्रेरणा से आया हूँ। अभिभाषक नही बल्कि जैन श्रावक हूँ' अमूल्य शब्द कह कर समस्त जैन व धर्मप्रिय जगत को मोह लिया। यह हृदय से निकाले हुए शब्द हमेशा अजर अमर रहेगे व जैन समाज को अपनी यशस्वी सेवाओ की याद दिलाते रहेगे।

चौधरी मंगलचंदजी छगनाजी, ग्राम मडार, जिला सिरोही

स्वतत्रता के प्रति जागरूक और उन्मुख समय मे कर्मनिष्ठ श्री चौधरी मगलचदजी ने श्री छगनाजी के यहा २४-३-१६०६ को मडार ग्राम, जिला सिरोही (राजस्थान) मे जन्म लिया। आपकी माता ने आपको कर्मनिष्ठा का मन्त्र जन्मघुट्टी के साथ ही पिला दिया था।

१३ वर्ष की अल्प आयु मे बम्बई जैसी महान नगरी मे व्यवसाय हेतु पदार्पण किया और अनेक कष्टो को झेलते हुए अपने अथक परिश्रम से इतनी उन्नति की कि आज दिल्ली,

श्रीमान गुमानमलजी लोढा, एडवोकेट
जोधपुर (राज०)

श्रीमान मगलचन्दजी चौधरी, मडारवाले
जयपुर (राज०)

श्रीमान् गुमानमलजी लोढ़ा एडवोकेट, जोधपुर

आप स्वर्गीय श्री हिम्मतमलजी लोढा के सुपुत्र हैं जो स्वय श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक समाज के प्रभावशाली सज्जन थे। आप राजस्थान के प्रमुख प्रतिष्ठित एडवोकेट हैं। आप वडे धार्मिक विचार वाले सज्जन हैं। आप वडे सरल स्वभावी तथा मिलनसार हैं। आप राजस्थान प्रदेश जन सघ के उपाध्यक्ष हैं एव अच्छे वक्ता भी हैं।

जैन धर्म व समाज की सेवा हेतु आपने श्री नाकोडा पार्श्वनाथ मन्दिर व श्री केसरिया-नाथजी मन्दिर, उदयपुर के पवित्र तीर्थो पर जैन श्वेताम्बर समाज का सचालन करवाने हेतु राजस्थान उच्च न्यायालय मे रिट याचिकाएँ कर नि शुल्क पैरवी, अथक परिश्रम व लगन के द्वारा की जिससे राजस्थान पब्लिक ट्रस्ट एक्ट की वहुत सी धाराएँ अवैधानिक घोषित कर दी गई व ऐतिहासिक तीर्थ केशरियानाथजी के सचालन को राज्य सरकार जैन श्वेताम्बर मान्यता के अनुयायियो को सुपुर्द करने की आज्ञा दी गई। इन दोनो निर्णयो के विरुद्ध सरकार द्वारा सुप्रिम कोर्ट मे की गई अपील के विरुद्ध भी आप नि शुल्क पैरवी कर रहे हैं। वम्वई उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध छोटूलाल लल्लूभाई की अपील मे आपने जैन ट्रस्ट का उपयोग व जैन सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिये नि शुल्क पैरवी सुप्रीम कोर्ट मे की। न्यायालयो एव सरकार को धार्मिक कार्यो मे दखल न करने के भारतीय सविधान के मूलभूत अधिकार पर जैन शास्त्रो के लगातार उद्धरण के साथ अपनी महान् वैधानिक तर्को के साथ जो धाराप्रवाह बहस की व सफलता प्राप्त की वह सराहनीय है। न्यायाधीश श्री सुव्वाराव, श्री रघुदयाल, श्री वच्छावत व श्री राधास्वामी को अपने विद्धता-पूर्वक तर्को से प्रभावित कर अन्त मे विदा होते समय आपने 'मैं जैन सिद्धान्तो का प्रति-पादन करने एक जैन मुनि की प्रेरणा से आया हूँ। अभिभापक नही वलिक जैन श्रावक हूँ' अमूल्य शब्द कह कर समस्त जैन व धर्मप्रिय जगत को मोह लिया। यह हृदय से निकाले हुए शब्द हमेशा अजर अमर रहेगे व जैन समाज को अपनी यशस्वी सेवाओ की याद दिलाते रहेगे।

चौधरी मंगलचंदजी छगनाजी, ग्राम मंडार, जिला सिरोही

स्वतत्रता के प्रति जागरूक और उन्मुख समय में कर्मनिष्ठ श्री चौधरी मगलचंदजी ने श्री छगनाजी के यहां २४-३-१९०९ को मंडार ग्राम, जिला सिरोही (राजस्थान) मे जन्म लिया। आपकी माता ने आपको कर्मनिष्ठा का मन्त्र जन्मघुट्टी के साथ ही पिला दिया था।

१३ वर्ष की अल्प आयु मे वम्वई जैसी महान नगरी मे व्यवसाय हेतु पदार्पण किया और अनेक कष्टों को झेलते हुए अपने अथक परिश्रम से इतनी उन्नति की कि आज दिल्ली,

श्रीमान गुमानमलजी लोढा, एडवोकेट
जोधपुर (राज०)

श्रीमान मगलचन्दजी चौधरी, मडारवाले
जयपुर (राज०)

बम्बई ,कलकत्ता, जयपुर जैसे शहरो मे अपनी व्यवसायिक सस्थाए स्थापित की और उनका सचालक अपने सुपुत्रो को बना कर सुव्यवस्थित ढग से चलवा रहे हैं।

आपकी २० वर्ष की आयु मे श्रीमती रतनदेवी जी जीवन सहचरी के रूप मे मिली जिन्होने धार्मिक प्रवृतियो को आप मे ओत-प्रोत कर दिया। ससार और परमार्थ का ऐसा सुंदर समिश्रण प्राय कम ही देखने को मे आता है। परिवार मे धर्म मे विशेष रुचि होने के परिणामस्वरूप ही आचार्य महाराज १००८ श्री विजयरामसूरिजी के शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर १९६१ मे अपने आप उपधान तप किया और ४७५ लोगो को अपने साथ ही उपधान तप कराया। उसी साल अपनी श्रद्धा के स्मारक रूप जैन साधुओ के लिए एक जैन उपासरा भी बनवाया। उसी उपधान तप मे भाग लेने वाले तथा और भी आने वाले भाई वहनो को उत्साहित करने के लिए उजमणा, प्रदर्शनिया भी की गई। शान्ति स्नात्र भावना वगैरह मे वाहर से भी मडलियाँ बुलाई गई।

आपका स्वभाव वहुत ही धार्मिक, दानशील होने के नाते आपही नही वलिक आपकी प्रत्येक व्यवसायिक सस्था के सचालक भी इस नीति को अपनाकर श्री भगवान के चरणो मे सिर झुका कर तन, मन, धन से धार्मिक कृत्यो मे उदार नीति का पालन करते आ रहे हैं। आज के युग मे ऐसे निष्ठावान व कर्मठ महान व्यक्ति अनुकरणीय है।

श्री शाह कस्तूरमलजी, जयपुर

आपके पूर्वज मूलत ब्यावर के हैं। अब भी वहाँ शाहजी का कटरा आपके खानदान की ऐतिहासिक स्मृति है। काफी वर्ष पूर्व आपके पिता श्री कल्याणमलजी व उनके बन्धु श्री तेजमलजी व श्री उदयमलजी जयपुर आए और वहाँ समाज के अग्रणी श्री राजमलजी गोलेच्छा (जोरासर वालो) के साथ व्यवसाय मे भागीदार बने। अब आपका स्वतन्त्र कारोबार है। बम्बई व महावीरजी मे आपका अच्छा व्यवसाय है। आप उदार दिल के व्यक्ति हैं। सामाजिक व धार्मिक कार्यो मे आपकी काफी अभिरुचि है। श्री जैन श्वेताबर तपागच्छ सघ की विविध प्रवृत्तियो ने चहुँमुखी प्रगति की है। स्वधर्मी के हित के लिए आप सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। आपने व्यवसायिक क्षेत्र मे भी अच्छा यश उपार्जन किया है। राजस्थान चैम्बर ऑफ कॉमर्स और जयपुर चैम्बर ऑफ कॉमर्स मे आप पदाधिकारी रहे हैं। नगरसुधार न्यास के साथ विभिन्न सरकारी कमेटियो मे आप सदस्य रहे हैं। आपका प्रसन्नमुख व्यक्तित्व हरएक को आकर्षित किए बिना नही रहता।

श्री छगनराजजी मांडवला वाला

श्री छगनराजजी माडवला के निवासी हैं पर अब स्थायी रूप से सरदारपुरा, जोधपुर

मे बस गए है। आप ओसवाल ब्रदर्स फर्म के स्वामी है जिसमे स्वचालित यत्रो से कागज थैलियाँ बनती है। सरदारपुरे मे ए सडक पर आपका आधुनिक साजसज्जा से युक्त नया की बगला अभी बना है जो भव्य तथा सुखद है।

आप धर्मपरायण, शात स्वभाव के, मिलनसार, अनुभवी व्यक्ति है तथा कट्टर मूर्ति-पूजक है। आपके सुपुत्र श्री धीरजराजजी भी उच्च शिक्षा प्राप्त है तथा पिता के पद-चिन्हो पर चलने वाले सुसस्कृत तथा धर्मानुरागी है।

भैरोबाग की व्यवस्थापिका समिति के आप उपाध्यक्ष है तथा तीर्थ के सचालन मे मनोयोगपूर्वक काम करते है। आप प्रत्येक धर्मकार्य मे, पर्यूषण पर्व पर उदारतापूर्वक दान देते है। ३-४ वर्ष पूर्व आपने भैरोबाग मे सहधर्मीवात्सल्य भी किया था, जिसमे अति बाजार मे चोनी मिलने के कारण गुड का प्रयोग कर आपने एक आदर्श उपस्थित किया था।

श्री रतनचन्दजी चौपड़ा, बिलाड़ा

श्री रतनलालजी, इन्द्रमलजी, पारसमलजी चौपडा, बिलाडा वाले उदारमना व्यक्ति हैं जो विज्ञापन को महत्व नही देते और काम को नाम से श्रेयस्कर मानते हैं।

इन्होने बिलाडा हाईस्कूल मे रु ६५००) की लागत का एक कमरा बना कर दिया है। आपका शुभ काम मे खर्च करने का दिल हरदम रहता है। यह आपकी व्यक्तिगत विशेषता है।
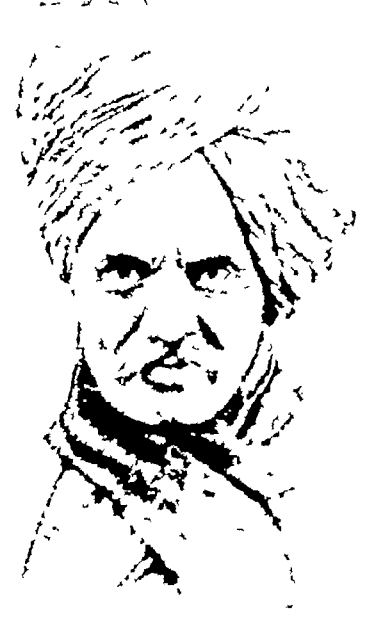
निम्न सज्जनो ने अपने चित्र नही भेजे इसलिए प्रकाशित नही हुए—
(१) श्री कस्तूरमलजी शाह, जयपुर
(२) श्री छगनराजजी मॉडवला वाला, जोधपुर
(३) श्री रतनचन्दजी चोपडा, बिलाडा
(४) श्री पोरवाल सघ, नेलूर
(५) श्री कपिलभाई, जयपुर (आपने तो जीवनपरिचय भी नही भेजा)

श्रीमान शकरलालजी मुणोयत, ब्यावर

आप ब्यावर निवासी हैं। आप राजस्थान जैन सस्कृति रक्षक सभा के प्रधान कार्य-कर्ता हैं। राजस्थान जैन सघ की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। श्री शान्तिनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर ब्यावर के मानद प्रबन्धक हैं। आपने सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी अहमदाबाद की सहायता से राजस्थान मे लगभग पचास जिन मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया।

श्रीमान सुखराजजी कांकरिया, ब्यावर

आपका जन्म सवत १९४१ फाल्गुन शुक्ला १ को ब्यावर मे हुआ। आपके तीन पुत्र श्री नौरतमलजी, कल्याणमलजी और भवरलालजी हैं। आपकी धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। आपकी ब्यावर मे हमीरमलजी सुखराजजी और सुखराजजी कल्याणमलजी के नाम से व जयपुर मे काकरिया कॉपरेशन और नूतन उद्योग नाम से फर्मे चलती हैं। आपने समवसरण मदिरजी की प्रतिष्ठा मे भी अर्थ सहायता दी। आप व आपके पुत्र धर्म कार्यो मे अग्रसर रहते हैं।

श्रीमान उदयचन्दजी कास्टीया, ब्यावर

आप श्री हीराचन्दजी कास्टीया के सुपुत्र हैं। आप बहुत तपस्वी हैं। आपने उपधान तप, ओलिये, अठ्ठाई वगैरह की तपस्या की है। वर्तमान मे आपके वर्द्धमान तप की ओली चल रही है। आपके नित्य सामायक प्रतिक्रमण पूजन करने का नियम है। कई वर्षों से गरम जल प्रयोग मे लेते हैं। आपके दो पुत्र श्री फूलचन्दजी व मोहनलालजी हैं। धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हैं।

श्रीमान पदमचन्दजी मूथा, ब्यावर

आप स्वर्गीय श्री कल्याणमलजी मूथा के सुपुत्र है। आपका व्यवसाय अजमेर मे है। मेसर्स पूनमचद पदमचन्द के नाम से फर्म चलती है। आप बहुत ही सरल स्वभावी धर्म-प्रेमी सज्जन हैं।

श्रीमान धरमचन्दजी मूथा, पीपाड़ शहर

आप श्री हरकचन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप धार्मिक कार्यों मे बहुत दिलचस्पी लेते हैं। अप श्री व्यवस्था कमेटी तीर्थ श्री कापरडाजी के १३-४-५२ से ३-४-५७ तक सदस्य रहे। श्री समवसरण मदिरजी की प्रतिष्ठा मे आपने १ पूजा के २५१) व प्रतिष्ठा के खर्चे के लिए १५१) रु अर्पण किए।

श्रीमान करमचन्दजी मूथा, पीपाड़ शहर

आप श्री हरकचन्दजी मूथा के द्वितीय पुत्र थे। आप पीपाड मे निमाज ठिकाने के कामदार के पद पर रहे थे। आप समाज के कार्यो व धर्म कार्यो मे अग्रसर रहते थे। आप श्री व्यवस्थापक समिति तीर्थ श्री कापरड़ाजी के सदस्य ५-४-५७ से २५-१-५८ तक रहे।

श्री मिस्रीमलजी सेठिया, पीपाड़

आप श्रीमान चनणमलजी सेठिया के सुपुत्र है। आप धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों मे अच्छी रुचि रखते है। आपने २०१) स्थायी साधर्मी वात्सल्य फड मे व समवसरण मन्दिरजी की प्रतिष्ठा के समय भी चचल लक्ष्मी का सदुपयोग किया।

श्री पुखराजजी तेलेडा, बिलाड़ा

आप श्रीमान अनराजजी तेलेडा के सुपुत्र है। आप मूल निवासी भावी के हैं। २५ ३० वर्षों से विलाडा मे रहते हैं। आप धर्मप्रेमी सज्जन हैं। आपकी धर्मपत्नीजी व पुत्र-वधुएँ वहुत तपस्या करती रहती हैं। आप धर्मकार्यों मे अपनी चचल लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहते हैं। आपने स्थायी स्वाधर्मी वात्सल्य फड मे २०१) रु. व समवसरण मदिरजी की प्रतिप्ठा के समय ६००) ७००) रु० खर्च किए।

श्रीमान धरमचदजी, मुता
पीपाड शहर (राज०)

श्रीमान करमचदजी, मुता
पीपाड शहर (राज०)

श्रीमान मिश्रीमलजी, सेठीया
पीपाड शहर (राज०)

श्रीमान पुखराजजी, तालेडा
बिलाडा (राज०)
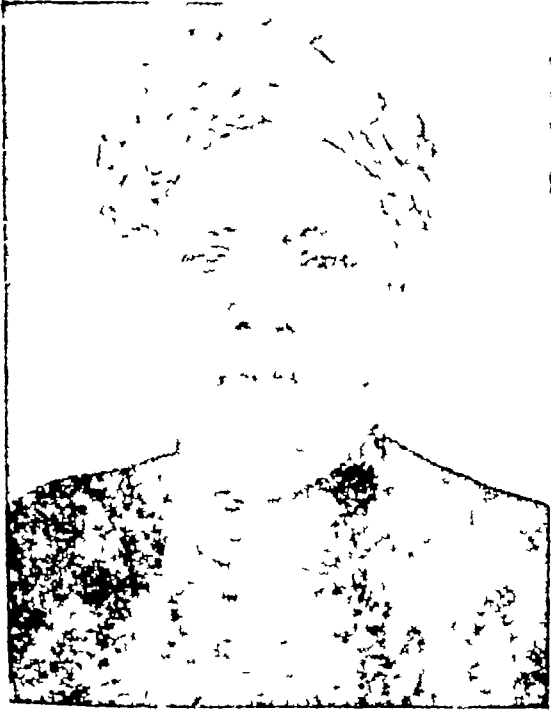
श्रीमान नथमलजी गोलिया
जोधपुर (राज०)
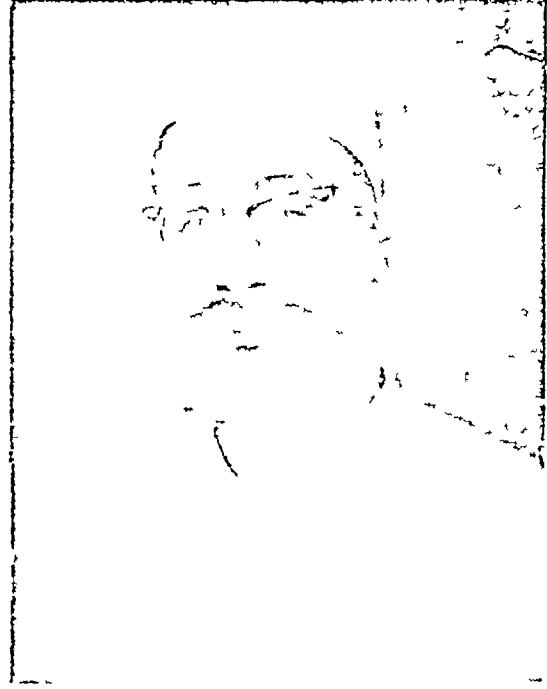
श्रीमान लक्ष्मीचन्दजी सुराणा
जोधपुर (राज०)

श्रीमान लालचन्दजी सुराणा
जोधपुर (राज०)

श्रीमान शिवराजजी कोचर
जोधपुर (राज०)

श्री मांगीमलजी मुणोयत, एडवोकेट, जोधपुर

मदिरमार्गीय समुदाय जोधपुर के अग्रणी श्री हस्तीमलजी साहब एडवोकेट, जिन्होंने श्री कापरडा तीर्थ की उल्लेखनीय सेव की थी, के आप सुपुत्र हैं। आपका जन्म सन् १६०४ मे हुआ। १६३१ मे आपने बी ए एल. एल बी. पास किया। तब से आप हाई कोर्ट के एडवोकेट हैं। राजस्थान हाईकोर्ट एडवोकेट्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष और श्री ओसवाल सिंह सभा, जोधपुर के महामत्री रहे हैं। आप धार्मिक और सामाजिक कार्यो मे पर्याप्त रुचि रखते हैं। भैरूबाग तीर्थ की व्यवस्थापक कमेटी के सदस्य भी रहे और धर्म क्रिया भवन कमेटी के भी सदस्य हैं। धर्म कार्य आपका सराहनीय है।

श्री कपूरचन्दजी जेठमलजी सियाणावाले, हाल जोधपुर

आपका जन्म १६५० मे सियाणा मे हुआ। आप बडे धर्मप्रेमी सज्जन हैं। १६६२ मे पालीतणा मे तलहटी के मन्दिर मे देहरी बनवाई। २ वरसी तप किए। पारणा पाली-तणा जाकर किया, दोनो समय नोकारसी की। पालीतणा मे उपधान तप सीर मे करवाया। सियाणा मे अष्टग्रह पूजन मे अट्ठाई महोत्सव मे नौकारसी की। सियाणा जिन-मन्दिरजी की प्रतिष्ठा के समय फलेचदरी की नौकारसी की। हाल ही मे भैरूबाग मे चल रहे जीर्णोद्धार मे ५००१) रु० दिये। समिति ने मुखद्वार पर आपका नाम अकित किया। धर्म के कार्य मे धन का सदुपयोग करते ही रहते हैं। श्री कापरड़ा तीर्थ के स्वामीवात्सल्य कोष मे २०१) रुपए दिए।

श्रीमान् मंछालालजी पोरवाल पाली (राज.)

आप श्री जुगराजजी के सुपुत्र हैं। आपके पुत्र श्री नारमलजी व पौत्र श्री सज्जनराजजी हैं। आप व आपके पुत्र दृढ, नित्यनियमी हैं। नित्य जिन मदिर का पूजन करते हैं। श्री शातिनाथजी के मदिर के पूर्ण भक्त हैं। आप पाली मे श्री मछालालजी नारमलजी के नाम से कपडे का थोक व्यापार करते हैं।

श्रीमान् हीराचंदजी सोमावत, पाली

आप मूल निवासी घाणेराव के हैं। आपकी कुछ अर्से से पाली मे श्री वाघमलजी कातिलालजी के नाम से फर्म चलती है। कपडे का थोक व्यापार करते हैं। आपके तीन पुत्र श्री आटेरमलजी, वाघमलजी, नेनमलजी हैं। आपके परिवार वाले बहुत ही धर्मप्रेमी हैं। समय समय पर अपनी चचल लक्ष्मी का सदुपयोग करते हैं।

श्रीमान मागीमलजी मुणोयत, एडवोकेट
जोधपुर (राज०)

श्रीमान कपूरचन्दजी, पोरवाल
सियाणा, हाल जोधपुर (राज०)

श्रीमान मन्नालालजी, पोरवाल
पाली (राज०)

श्रीमान हीराचन्दजी, सोमावत
पाली (राज०)

श्री व्यवस्थापक समिति के पदाधिकारी

श्रीमान कुनणमलजी, खीचा
शिवगज (राज०)

श्रीमान वृधसिहजी, वैध
जयपुर (राज०)
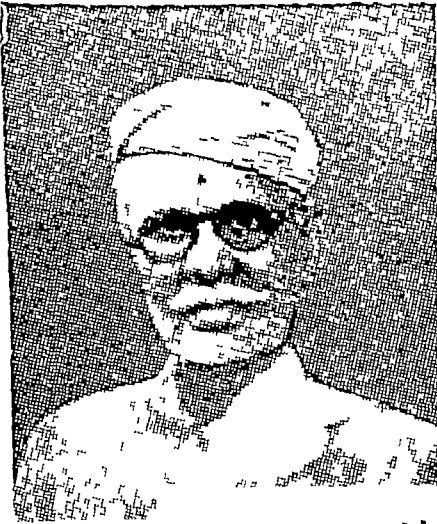
श्रीमान आसानन्दजी, भसाली
जयपुर (राज०)

श्रीमान अमरचन्दजी, नाहर
जयपुर (राज०)

श्री कुनणमलजी खोचिया, शिवगंज

आप श्रीमान खीमराजजी के सुपुत्र हे। आपका जन्म २५ जुलाई १६१६ मे घाणेराव मे हुआ। आप वर्तमान शिवगज निवासी हे। आप ओसवाल जैन सघ शिवगँज के, व श्री शातिनाथजी भगवान जैन श्वेताम्वर तीर्थ कमेटी जाखोडा (सुमेरपुर) के अध्यक्ष है एव कई धार्मिक सामाजिक सस्था के ट्रस्टी हे। ३५ साल से शुद्ध खादी पहनते हैं। आपने सिरोही जिले के भूदान यज्ञ मे अग्र सहयोग दिया।

श्रीमान बुद्धसिहजी वैद्य, जयपुर

आप श्री सूरजमलजी के पुत्र और श्री जोरावरमलजी के दत्तक पुत्र हैं बाल्यकाल से ही आपकी धार्मिक प्रवृत्ति है। ६७ वर्ष की आयु मे भी आपका उत्साह सराहनीय है। आपकी ओर से कई प्रमुख धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न हुवे हैं जिसमे उजमणा, प्रभु प्रतिमाओ का विराजमान करना इत्यादि भी है। श्री शत्रुञ्जय, सम्मेतशिखर और जैसलमेर के सघो मे आप सघपति रहे हैं।

आपके वडे पुत्र श्री हीराचन्दजी कई सस्थाओ के मत्री, उपमत्री, लेखक, सम्पादक हैं। धर्म के अच्छे सस्कार है और वक्तव्य कला भी अनुकरणीय है। आपकी विचारधारा राष्ट्रीय है।

धम के प्रभाव से श्री वैद्यजी सर्व तरह से सुख-सम्पन्न हैं।

श्रीमान आसानन्दजी भंसाली, जयपुर

आपने समाज के पतिष्ठित पदो पर सराहनीय कार्य कर दूसरो को कर्मठ कार्यकर्ता बनने की प्रेरणा दी है। आप सरल-स्वभावी, मृदु-भाषी व समाज-सेवी हैं। साथ ही धर्म के प्रति आपकी अटल श्रद्धा है और प्रत्येक धर्म कार्य मे आपका सहयोग रहा है। आप पूज्य श्री वल्लभसूरिश्वरजी महाराज के पक्के भक्त व पूर्ण श्रद्धा रखने वाले हैं। आपके जीवन से हमे सद्बोध प्राप्त होता है।

श्रीमान अमरचन्दजी नाहर, जयपुर

आपकी जीवनी प्राप्त नही हुई। एक छपी हुई किताब मे आपका चित्र प्राप्त हुवा उससे ब्लाक बना कर इस ग्रथ मे प्रकाशित किया है। अपनी सरलता, समाजसेवा, दानवीरता और धार्मिक वृत्ति से ओत-प्रोत साधु जीवन के लिए सम्पूर्ण समाज मे प्रतिष्ठित हैं। आप २५ वर्ष से ब्रह्मचर्य और सयम का पालन ही नही अपितु गत नौ वर्षों से मौन एकासना करते हैं। यही नही, धर्म की प्रत्येक क्रिया मे दत्तचित्त रहते हैं। जूतो का त्याग कर दिया है। आपने अपने नियम-पालन मे दृढ रह कर समाज के लिए आदर्श उपस्थित किया है।

श्री भूरालालजी बोहरा का परिचय

आपका जन्म खारीया मीठापुर तहसील बिलाडा मे श्री हजारीमलजी के यहां धनेचा वोहरा वश मे सा १९६६ के चैत्र कृष्ण ११ बुधवार को हुआ। आप बड़े समाजसेवी व धर्मप्रेमी हैं। आप आबिल की तपस्या करते ही रहते हैं व हमेशा आपको मन्दिर मे भगवान के दर्शन करने का व समायिक का नियम है, जिसको आप बड़ी रुचि से निभा रहे हैं। आपको प्राणी मात्र से बडा ही प्रेम है।

श्री शेषमलजी चुतर का परिचय

आपका जन्म सा १९६२ के पोह कृष्ण १० खारिया मीठापुर त. बिलाडा में चत्रुर वश मे हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री नारमलजी था। आपकी यशकीर्ति उच्च है। आप धर्मप्रेमी व उत्साही है। आपने खारीया मीठापुर मे जैन मन्दिर की शुभ प्रतिष्ठा के अवसर पर सा २०१६ के फागण वद ५ को हाथी की सवारी की बोली मे रु २१७) व जैन मन्दिर ओसियाँ मे रुपये १०१) फागण वद ७ सा. २०१६ के ता० १९-२-६० को आमिलखाते मे भेट किए जो हर साल उन रुपयो का उपयोग पोह वद १० को होता है। आपकी धर्म पर पूर्ण श्रद्धा है और नित्य धर्मक्रिया करते रहते है।

श्रीमान् कल्याणमलजी डोसी, खारीया मीठापुर

आपका जन्म १९५८ मिगसर शुक्ला ५ को हुआ। आपके चार पुत्र श्री चपालालजी सुगनराजजी, पारसमलजी और बाबूलालजी है। आप धार्मिक कार्यों में अच्छी प्रवृति रखते है।

श्री पुखराजजी डोसी, खारीया मीठापुर

आपका जन्म खारीया मीठापुर मे डोसी वश मे श्री थानमलजी के यहाँ हुआ। आप यथानाम तथागुण वाले हैं। आप वडे होनहार व धर्मप्रेमी हैं। आपको रोजाना मन्दिर मे भगवान के दर्शन करने का नियम है जिसका वड़ी रुचि से पालन करते हैं।

श्री मान भूरालालजी, बोरा
खारीया मीठापुर
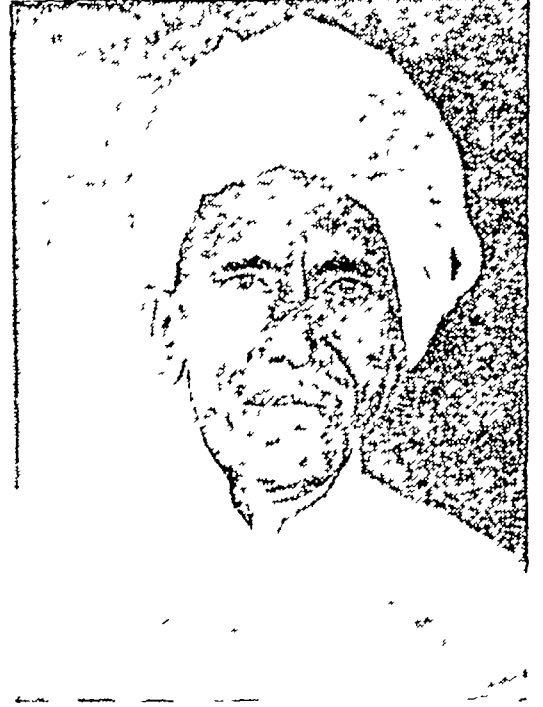
श्री मान सेसमलजी, चुतर
खारीया मीठापुर

श्री मान कल्याणमलजी, डोसी
खारीया मीठापुर

श्री मान पुखराजजी, डोसी
खारीया मीठापुर

श्रीमती सायर बाई धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री धूलाचंदजी डोसी, खारोया मीठापुर

आप खारीया मीठापुर की निवासी हैं। जैन धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। शक्ति अनुसार तपस्या करती हैं। उदार दिल भी हैं, इस तीर्थ के प्रति सदभावना एव पूर्ण श्रद्धा रखती हैं।

रामसीन नगर मण्डल श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नम

श्री जैन नवयुवक मण्डल, रामसोन, जिला जालोर (राज.)

श्री जैन नवयुवक मण्डल की स्थापना दिनाक १८ मई १९६० को छ नवयुवको के प्रयास से की गई, जिनके नाम इस प्रकार है—(१) देवीचन्द डूगरजी (२) हस्तीमल भीमाजी (३) रामलाल पीताजी (४) त्रिकमचन्द खुमाजी (५) रिखबचन्द रुगनाथजी (६) डायालाल दीपाजी।

इस मण्डल की स्थापना जैन शासन की सेवा, समाज की सेवा तथा समाज को सगठित एव प्रगति करने हेतु नवयुवको का एक सगठन हुआ, तथा होनहार एव समाजसेवी, उत्साही नवयुवक इसके सदस्य बनते गए।

सर्वप्रथम हमारे गाव से सघवीजी शाह हसराजजी ताराचन्दजी की ओर से छ'री पाल सघ आबू अचलगढ-देलवाडा तीर्थ यात्रा का निकाला गया, जिसमे हमारे इस मण्डल को सघ की सेवा करने का प्रथम सुअवसर प्राप्त हुआ, जिससे नवयुवको मे जागृति हुई और सदस्य सख्या चालीस तक पहुँच गई। सघवोजी की ओर से सभी के लिए वस्त्र एव दो सौ एक रुपये भेट मिले। उसके बाद मण्डल को विश्वविख्यात श्री शत्रुँजय महा तीर्थ एव श्री जैसलमेर लोद्रवाजी महा तीर्थ यात्री सघ मे सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार प्रतिष्ठा महोत्सवो मे भी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता गया।

इस समय बहुत वर्षों के पश्चात् श्री सघ के अति आग्रह से परम पूज्य, शात मूर्ति, परम शासन प्रभावक आचार्य देव श्री विजयसुशील सूरिश्वरजी महाराज आदि नौ ठाणो का चतुर्मास हुआ। आप पूज्य श्री की पुनीत निश्रा मे हम लोगो को सगठित होने की प्रेरणा मिली।

इस समय मण्डल के सदस्य चालीस के करीब हैं तथा इसका सचालन इन नवयुवको द्वारा होता है—

१ प्रमुख—शाह मूलचन्द सोकलाजी राठौड। २ उपप्रमुख—शाह हस्तीमलजी भीमाजी राठौड। ३ कोषाध्यक्ष—शाह पुखराज बाबूजी। ४ साँस्कृतिक एव शिक्षा मन्त्री—शाह त्रिलोकचन्द गुमनाजी नाणेशा। ५ प्रसारण मन्त्री—शाह मानकचन्द एव रिखबचन्द गुँदेशा। ६ साज सामग्री मन्त्री—शाह डायालाल मसाजी।

सलाहकार समिति के सदस्य—१ चिमनलाल बाबूजी। २ रायचन्द पुनमाजी। ३. इन्दरमल धरमाजी। ४. इन्दरमल मूलाजी। ५ देवीचन्द हन्साजी।

जैन अधिष्ठायक देव श्री भैरूजी म० का मंदिर
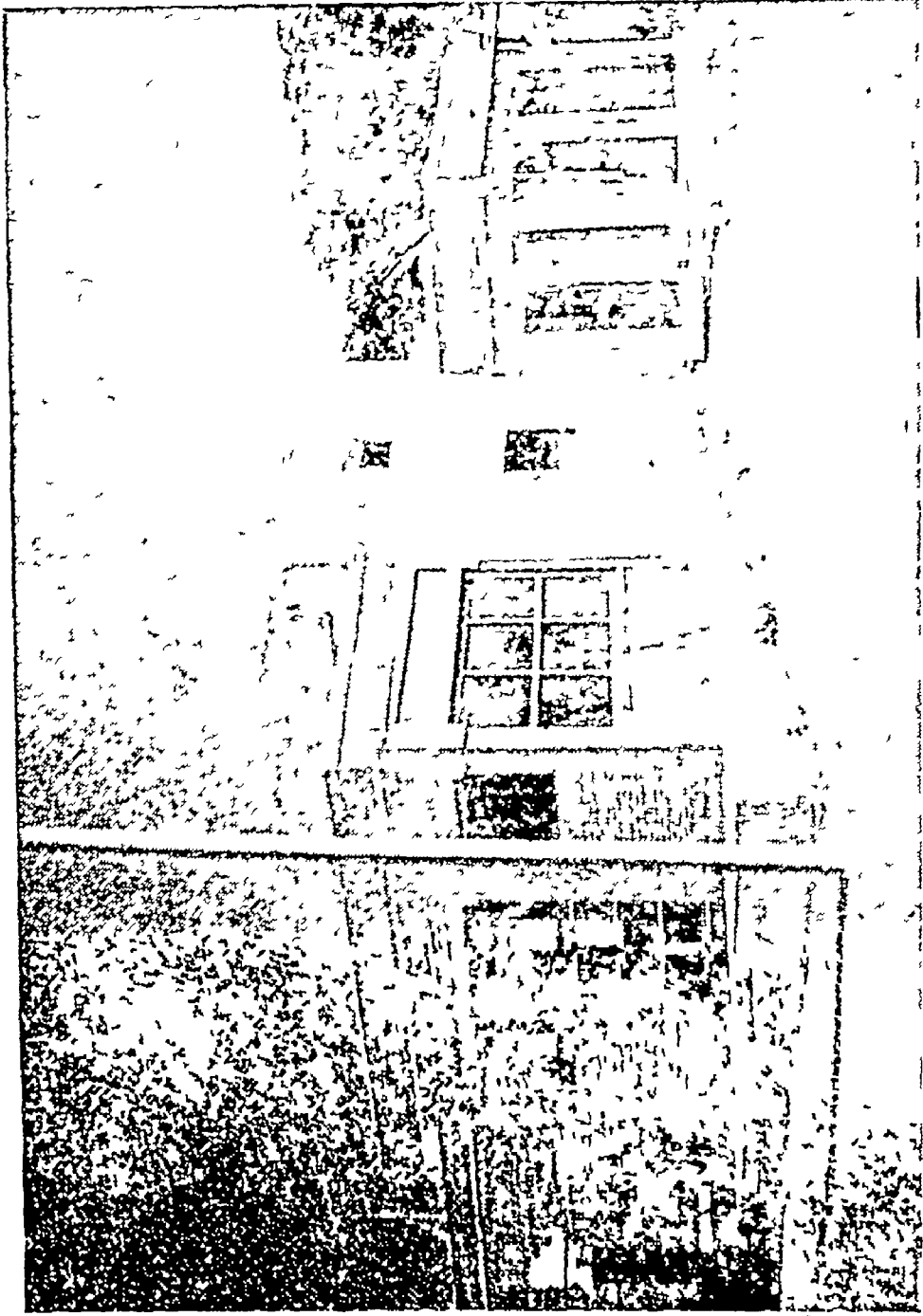
श्री मोहनराजजी भन्साली जोधपुर वालो की ओर से बनाये हुये कमरे व बरामदे का दृश्य
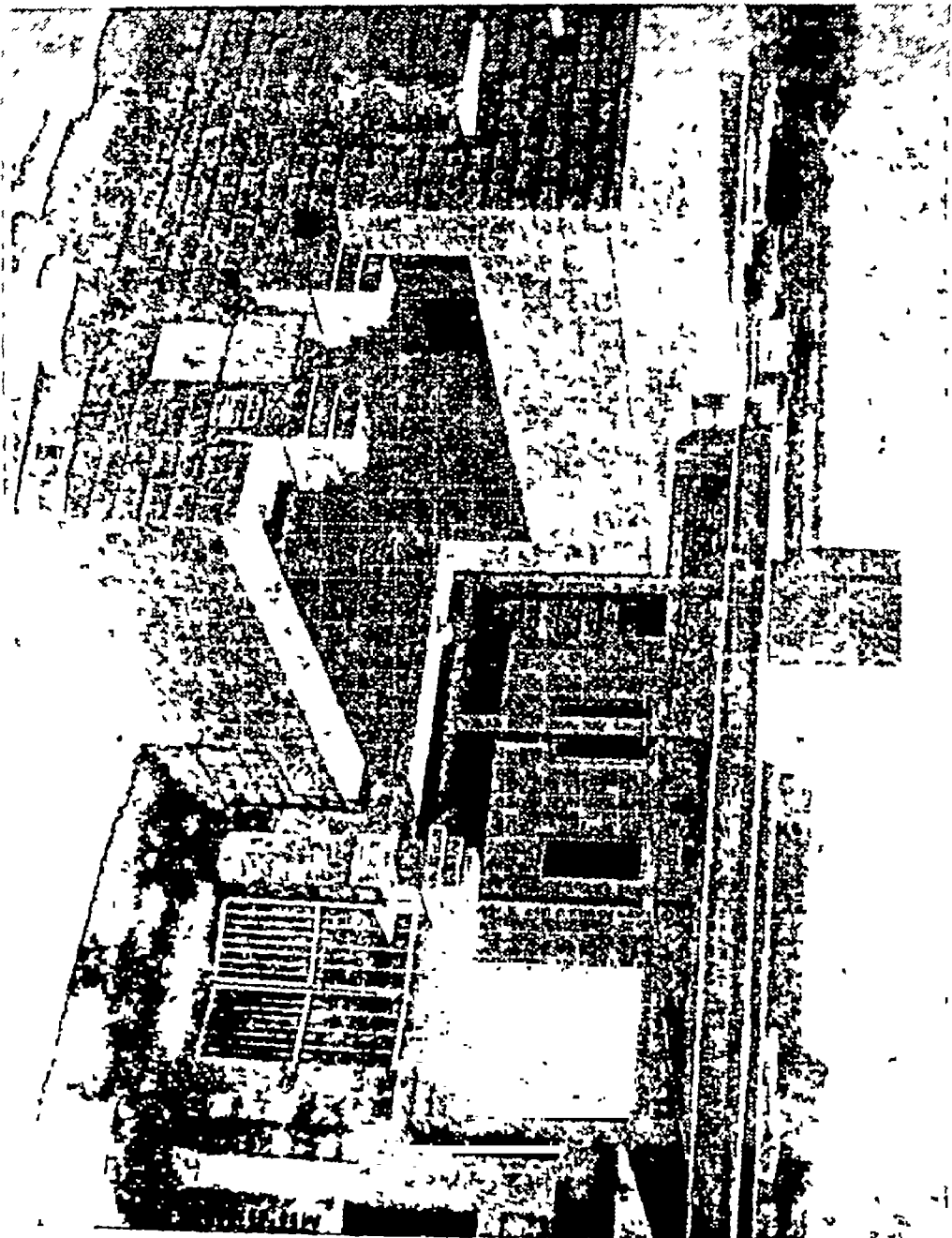
श्री पन्नालालजी कटारिया पीपाड निवासी की ओर से बनाया हुआ कमरा

संक्षिप्त विवरण

वि. स. १९७५ के पश्चात ५० वर्ष मे इस तीर्थ की आय व व्यय का लेखा-जोखा विवरण सहित छपाने मे लगभग १०० पृष्ठ हो जाते है। ग्रथ का कलेवर पहिले ही आवश्यकता से अधिक बढ चुका है। अत मुख्य २ बातो का ही वर्णन किया जायगा। हिसाब की दो रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं –

१. वि स १९७५ से २००८ तक ३३ वर्ष की रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमे तीर्थ का इतिहास भी सम्मिलित है।

२. वि स २००८ के कार्तिक सुदि १ से स २०१९ के कार्तिक वदि अमावस तक ११ वर्ष की रिपोर्ट दि १३-२-६३ को प्रकाशित हुई उसमे पूरा विवरण है।

इसके पश्चात ६ वर्ष के हिसाब की रिपोर्ट प्रमादवश नही छप सकी है जो शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।

(१) श्री भैरू जी का नवीन मन्दिर

पोल के सामने बना है उसकी प्रतिष्ठा वि स २०१६ जेठ सुदि ११ को हुई। भूतपूर्व मुनीम श्री मदनराजजी चौधरी की प्रेरणा जोरो से रही, अत वे धन्यवाद के पात्र हैं। इसमे २६५४ ५० की टीप लिखी गई और १७५) रु प्रतिष्ठा के समय बोलियो के आ[illegible] कुल २८२९ ५० की आय हुई। ३१७४) रु. व्यय हुए, बाकी धन इस खाते में [illegible] कटती है उन से जमा हुई। इसका विवरण पिछली रिपोर्ट के पृष्ठ ५१ पर अङ्कित है।

(२) मेला

पहिले माघ सुदि ५ को होता था। १९५३ ई से चैत्र सुदि ५ को होना प्रा[illegible] इसमे स्वामीवत्सल १०-४-६० तक जिन महानुभावो ने किए उसका विवरण [illegible] के पृष्ठ ७ पर है उसके पश्चात व्यवस्था समिति के सदस्य करते रहे। [illegible] अधिक होने से व यात्रियो की सख्या दिनानुदिन बढती जाने से यह कार्य [illegible] ऐसा विचार कर ६-४-६५ की साधारण सभा मे एक नवीन प्रस्ताव [illegible] लिए कोष स्थापित किया गया। प्रसन्नता की बात है कि थोड़े ही समय में [illegible] से ऊपर धनराशि एकत्रित हो गई। इस मे से तेरह हजार रुपए ९ [illegible] आना प्रति सैकड़ा व्याज से बैको मे जमा कराए गए, जिनका व्याज [illegible]

रुपए आ जाते हैं जिससे स्वामीवत्सल का कार्य सुगमतापूर्वक चल जाता है। यात्रियों की सख्या दिनप्रतिदिन बढते जाने से यदि यह राशि बीस हजार तक हो जाए तो सुविधा-जनक रहे। यह राशि जिन बन्धुओ के सहयोग से एकत्रित हुई उनके नाम पेढी के पास मकराने के पटल पर लिख दिए गए हैं तथा भविष्य मे भी लिखे जाते रहेगे। दो सौ रुपए से कम लेने का नियम नही है।

(३) नवीन मन्दिर तथा प्रतिष्ठा

मुख्य द्वार उत्तर की ओर है। उसकी नाल पर दुमजिला एक कमरा बना हुआ था। दि. २३-२-६६ को पूज्य सुशीलसूरिश्वरजी महाराज की अध्यक्षता मे खोड निवासी श्रेष्ठिवर श्री मीठालालजी छ' री पालता सघ लेकर पधारे, उस समय उन्होने समवसरण के लिए मन्दिर निर्माण हेतु पाच हजार रुपए देने की घोषणा की। फलस्वरूप मन्दिर बना और प्रतिष्ठा उल्लिखित आचार्य महोदय के करकमलो से वि २०२३ जेठ सुदि ३ को हुई। पूर्ण हिसाब पृथक छपवाया जायगा। जिन महानुभावो ने इसमे सहायतार्थ धनराशि अर्पण की उनको धन्यवाद देते हैं। इस मन्दिर मे चौमुखा भगवान विराजमान हैं।

(४) चैत्र मास की ओलियो के 'महोत्सव'

(१) वि० स० २०१२ मे गणिवर्य पूज्य, धर्मसागरजी व अभयसागरजी महाराज साहिब की निश्रा मे जोधपुर निवासी श्री रामराजजी ने करवाई। यह पहिला अवसर था, इसलिए ज्यादा सख्या मे आराधना करने वाले नही आ सके फिर भी बम्बई से सिद्ध चक्र मण्डल के बीस सदस्य आ जाने से भक्ति व पूजा का ठाठ अच्छा रहा, और भविष्य के लिए प्रेरणा मिली।

(२) वि० स० २०१७ मे श्री जैवतराजजी हिरण पाली निवासी की ओर से हुई। यह महोत्सव प्रतिष्ठा महोत्व के पश्चात दूसरा नम्बर रखता है इस अवसर पर ज्ञानपचमी व नवपदजी के ओलियो का उजमणा भी था। लगभग ३०० भाई बहिनो ने ओलिये की। पूज्य पन्यासजी श्री मुक्तिविजयजी महाराज साहिब' ११ ठाणा से पधारे और साध्वीजी म० ४० के लगभग पधारी, इसमे लगभग बीस हजार रु० व्यय हुए। ओसिया मण्डली भी आई। और भी पूजा भक्ति का ठाठ रहा। शान्तिस्वनात्र की बडी पूजा भी हुई—तीर्थ मे आय भी वहुत अच्छी हुई। श्री हिरण साहब धन्यवाद के पात्र हैं उनको अभिनन्दन पत्र भेट किया गया।

(३) वि० स० २०१९ मे श्री घीसूलालजी फुलफगर जैतारन वालो की ओर से ओलिये हुई। सिद्धचक्र की वड़ी पूजा विधिविधान के साथ हुई। यह महोत्सव पूज्य गणिवर्य

श्री धर्मसागरजी अभयसागरजी महाराज साहिब की निश्रा मे सम्पन्न हुआ। तीर्थ मे आय अच्छी हुई।

इस वर्ष की ओलिये श्री केवलचदजी खटोड जैतारन निवासी हाल मदरास वालो की ओर से हो रही है। जिसका विवरण अगली रिपोर्ट मे प्रकाशित होगा।

(संघ)

जब से बसो का आना जाना प्रारम्भ हुवा सघ आने लगे। बसो द्वारा कई सघ आये। स० २०१६ तक का विवरण अगली रिपोर्ट मे आ चुका है उसके बाद के सघो का व्यौरा निम्न है—

वि सवत	सघो की सख्या	यात्रियो की सख्या	आय हुई
२०१६-२०	२२	२५००	३१६७)
२०२०-२१	२२	३५००	५१८२)
२०२१-२२	१०	१५००	२८८८)
२०२२-२३	१६	२५००	५७६२)
२०२३-२४	२२	४०००	६१८०)
२०२४-२५	२२	३५००	७६५८)
योग—	११४	१७५००	३११६७)

तीर्थ की ओर से प्रवन्ध सन्तोषजनक रहा जिसका विवरण सघपतियो की ओर से तीर्थ की विजिट बुक मे लिखा हुआ है।

जैन शास्त्र मे छ री. पालतासघ निकाले उसकी ज्यादा महिमा है। इसमे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इस तरह चतुर्विध सघ होता है। ऐसे ५-६-सघ आए—

(१) वि स २००६ फागण कृष्ण १२ को पन्यासजी श्री मेरुविजयजी महाराज की अध्यक्षता मे बाकली से आया। इस अवसर पर पन्यासजी ने अपने शिष्य को बडी दीक्षा भी इस तीर्थ पर दी। इसमे लगभग ४०० यात्री थे। ६००) रु की आय हुई।

(२) वि स २०२१ के पोष कृष्ण ३ को प्रसिद्ध वक्ता शासनप्रभावक श्री कान्ति-सागरजी महाराज साहब व्यावर से सघ लेकर पधारे। यात्रियो की सख्या लगभग २०० थी। २ दिन यह सघ रुका और ५०१) रु भेट किये। और भी आय हुई।

(३) वि स २०२२ के फागण सुदि ३ दि २३-२-६६ को खोड निवासी श्री मिट्ठा-लालजी, लालचन्दजी पूज्य श्री सुशीलसूरिश्वरजी महाराज साहब की निश्रा मे सघ लेकर आए लगभग ३०० यात्री थे। ३ दिन तक सघ यहाँ रहा। माला की बोली की आय

५६००) रु व अन्य आय १२००) की हुई। सघपति को तीर्थ की ओर से अभिनन्दन पत्र भेट किया गया। फलस्वरूप समवसरण का मन्दिर बनाने की योजना बनी और वह सफल हुई जिसका विवरण ऊपर आ चुका है।

(४) वि. स. २०२४ के फागण कृष्ण ५ को जोधपुर से श्रीमती चादबाई पूज्य कान्तिसागरजी म की अध्यक्षता मे सघ लेकर आई। यात्रियो की सख्या १५० थी। केवल १ दिन सघ रहा। आय समयानुसार ठीक ही हुई।

(५) एक सघ ७ वर्ष पूर्व पाली के श्री चम्पालालजी पोरवाल पूज्य पदमविजयजी महाराज की अध्यक्षता मे लाये। यह सघ पाली से आया। इसमे लगभग १५० यात्री होगे। आय भी अच्छी हुई। इसका विवरण पहले नही दे सके अब दे रहे हैं।

अब हम कमरे कोटडिये बनाने का वर्णन करते हैं। सस्तीवाडा होने से पहिले १ कोटडी का नकरा ३०१) था फिर ४००) उसके पश्चात ५००)-७००) अब १००१) लिये जाते हैं। अब काफी कमरे बन चुके हैं। जिन्होने इसमे सहायता दी उनके नामो की सूची यहा दी जा रही है हो सकता है इसमे कोई नाम रह गया हो क्यो कि जल्दबाजी मे जो कार्य होता है उसमे भूल होना सम्भव है।

(१) सेठ माणकलाल मनसुख भाई अहमदाबाद ११०२), १००२)
(२) सेठ वाडीलाल साराभाई अहमदाबाद ६०२)
(३) सेठ चिमनलाल भाई अहमदाबाद ६०२)
(४) सेठ चुनीलाल भगूभाई अहमदाबाद ६०२)
(५) सेठ वाडीलाल छगनलाल अहमदाबाद ७५२)
(६) सेठ जेसिग भाई कालीदास अहमदाबाद ६०२)
(७) गिरधारीलालजी कन्हैयालालजी पीपाड शहर ५५३)
(८) श्री सारा भाई डाया भाई अहमदाबाद ६०२)
(९) दौलतरामजी चुनीलालजी अमृतसर ४०१)
(१०) श्रीचदजी सुमेरमलजी बीकानेर ४०१)
(११) श्री कीरतमलजी केशरीमलजी हिरण वीसलपुर ४०१)
(१२) ,, गजराजजी सिघवी सोजत ४०१)
(१३) ,, प्रतापमलजी इन्द्रमलजी सालावास ४०१)
(१४) ,, बादरमलजी कोचर, बीकानेर ४०१)
(१५) ,, चतुरभुजजी नारमलजी हरसोलाव १५०)
(१६) ,, छोगमलजी अमोलकचन्दजी खारीया, मीठापुर ३०१)
(१७) ,, भैरूमलजी बादरमलजी, नागोर ४०१)

(१८) श्री रतनचदजी कपूरचदजी बावागाव ३५१)
(१९) ,, शिवजीरामजी जवानमलजी अहमदनगर ३०५)
(२०) ,, बनेचन्दजी गुमानमलजी पाडीव ३०१)
(२१) ,, नवलमलजी पानाचन्दजी पाडीव ३०१)
(२२) ,, माणकराजजी रिखबराजजी जैतारण ५०१)
(२३) ,, सूरजमलजी प्रतापचन्दजी कोचर २ कमरे
(२४) ,, पाँचूलालजी वैद्य फलौदी १ हाल व बरामदा
(२५) ,, लाभचन्दजी जवरीचदजी खचाञ्ची नागोर १ कमरा
(२६) ,, सुलतानचन्दजी फलौदी १ कमरा
(२७) ,, बशीलालजी प्यारालालजी पीपाड शहर २ कमरे
(२८) ,, शोभाचन्दजी मोहनलालजी सादडी १ कमरा
(२९) ,, गुलाबचन्दजी केशरीमलजी गुडा बालोतरा ३५१)
(३०) ,, विसनराजजी माणकराजजी सीगवी सोजत ३०१)
(३१) ,, सपतराजजी हसराजजी भडारी सोजत ३०१)
(३२) ,, देवीचन्दजी तेजराजजी पाली २०००)
(३३) ,, कुमलचन्दजी किशनाजी पाली १००२)
(३४) ,, गिरधारीलालजी जसराजजी मनमाड ५०२)
(३५) ,, जवारमलजी खजाञ्ची नागौर ४५१)
(३६) ,, मोहनराजजी भसाली जोधपुर २६००)
(३७) ,, के अनराजजी चोपडा वेनण हाल मद्रास २६००) कमरे बनने मे जितनी रकम लगी आपने ही दी ।
(३८) ,, गुलाबचन्दजी पीरचन्दजी मालगढ चादराई २०१) ।
(३९) ,, पनालालजी छोटूलालजी कटारिया पीपाड शहर । कमरा मय बरामदा । इसके अतिरिक्त ६ गुसलखाने बने हैं जिनमे तीन के नाम लिखवाए व ३ के दर्ज नही हुए ।
(४०) ,, हजारीमलजी ताराचन्दजी गुडा बालोतरा
(४१) श्रीमती नाथीबाई धर्मपत्नी श्री तेजराजजी भसाली पीपाड शहर
(४२) श्रीमती बसुमतीबेन अहमदाबाद ।

यहाँ केसर चन्दन घसने के लिए पृथक भवन नही था । यह कार्य मन्दिर मे ही होता था । श्री पन्नालालजी जागडा यहा के निवासी जालना मे रहते हैं । यात्रार्थ जन्मभूमि मे आए और उन्होने २१००) रु भेट किए फलस्वरूप एक अच्छा बडा हाल बनाया गया उसमे लगभग पाच हजार रु व्यय हुए । बकाया धनराशि साधारण खाते से दी गई ।

जीर्णोद्धार

प्रतिष्ठा के पश्चात् मन्दिर के जीर्णोद्धार मे १ लाख रु० से अधिक धनराशि व्यय की गई। नये कार्यो के विवरण निम्न है—

(१) छाजे कगुरे लगे जो पहिले नही थे। जालिये व खिडकिये लगी।

(२) ऊपर जाने की नाल पुराने ढग की बनी हुई थी उसकी जगह नई नाल बनाई गई।

(३) उत्तर की ओर सणगार चोकी बनाई गई उसमे दस हजार रु. से ज्यादा धन-राशि व्यय हुई।

(४) उत्तर की ओर मुख्य द्वार पर कच्चा आगणा था। चतुर्मास मे घास उग जाता और जीव जन्तु का भय रहता वहाँ पक्का छीतर के पत्थर का चातरा बनाया जिससे मन्दिर की शोभा मे वृद्धि हुई।

(५) पूर्व की ओर चढने की सिढियां नये ढग से छीतर के पत्थर की बनाई इसमे लगभग ३०००) रु. खर्च हुए। कुछ रकम आई भी है।

(६) मन्दिर के तीन सभा मण्डप मे मकराने की फरस व एक मे सीमेन्ट ककरी की फरस बनाकर चातुर्मास मे आने वाली सध को समाप्त किया।

(७) चारो सभा मण्डप मे डिस्टिम्बर व ओइलपेन्ट कराया गया। इसमे लगभग बीस हजार रु व्यय हुए होगे। मन्दिर की शोभा बढ गई है। और छोटी मरम्मत होती रहती है—उसका विवरण रिपोर्ट मे देखने को मिलेगा।

साधारण मे कमरे कोटडियो के अतिरिक्त पोल के सामने उपासरे की जमीन मे चारो तरफ परकोटा करवाया और पोल के पास ही पाच दुकाने बनाई गई और भी धर्मशाला व कोटडियो की मरम्मत होती रही।

टांका

मरुधर देश मे पानी की कमी रहती है इसको ध्यान मे रख कर एक बडा टाका बन-वाया गया जिसमे दस हजार रु० के लगभग खर्च हुवे। इस टाका के बन जाने से काफी सुविधा है और व्यय की भी काफी बचत होती है। एक छोटा टाका नहाने धोने के पानी के लिए बनाया गया है।

चल व अचल सम्पति

(१) एक पुराना उपासरा मन्दिर से कुछ ही दूर पर अच्छी हालत मे है जिसमे मदिर पूजने वाला पुजारी रहता है। चित्र ग्रन्थ मे दिया गया है।

(२) दूसरा बहुत बडा पुराने ढग का बना हुवा उपासरा मन्दिर के निकट ही है। इसके पास बहुत सी जमीन है उसमे नये कमरे बनाने की योजना प्रारम्भ हुई है। लगभग १४ कमरे इस वर्ष बने हैं।

(३) मन्दिर के कुछ ही दूर रास्ते पर एक बडी धर्मशाला है उसका एक द्वार पूर्व की ओर दूसरा उत्तर की ओर है इसका चित्र ग्रन्थ मे दिया है यह सन् १९२१ मे सेठ माणकमल मनसुख भाई ने मन्दिर को भेट की। पट्टासुध है।

(४) पाच दुकाने बनी हुई है जिनका किराया आता है। यह दुकाने मन्दिर की पोल से निकलते जीमणी तरफ हैं।

(५) भैरूजी के मन्दिर के पीछे दो कमरे बने वे भी किराये पर दिये हुवे हैं। यात्री ज्यादा आते हैं तो उसमे उतर सकते है।

इसके अतिरिक्त चल सम्पति मे भगवान की अगिया, मुकुट, कुन्डल, लवाजमे का सामान, घोडी का गैणा, बग्गी, बरतन, बिछोने इत्यादि हजारो रु की मिलकियत है।

मन्दिर की आय से व्यय कम है। बचत की रकम जिस खाते मे होती है खर्च कर दी जाती है। इस समय विशेष रकम देव-द्रव्य या साधारण द्रव्य की पोते नही है। यो काम-चलाउ रकम मौजूद है।

सुविधा

(१) यहा सघ के अतिरिक्त पधारने वाले यात्रियो से पानी, बलीता, रोशनी, बरतन, बिछौना इत्यादि का कुछ भी नही लिया जाता। साधारण मे इच्छानुसार दे सकते हैं।

(२) भोजनशाला चालू है प्रति व्यक्ति १ रु टक लिया जाता है। इसमे लगभग एक हजार रु का घाटा रहता है। इस वर्ष श्री मिलापचन्दजी ढढा फलोदी निवासी हाल मद्रास ने जो घाटा पडे देने का वचन दिया है एतदर्थ धन्यवाद।

भोजनशाला की व्यवस्था सुचारु रूप से हो इस ओर श्री सघ का ध्यान खीचना हमारा कर्त्तव्य है। हमारी इच्छा है कि इसका भी एक कोष एकत्रित होकर जमा हो जाय उसके ब्याज से घाटे की पूर्ति होती रहे। यहा कोठार से सब तरह का सामान भी उचित भाव से मिल सकता है।

(३) गर्म पानी पीने के लिए हर समय तैयार रहता है।

(४) कबूतरो को प्रतिदिन ५ सेर अनाज डाला जाता है इस। फन्ड मे मेहगाई के कारण कमी है इस ओर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

(५) मन्दिर के कर्मचारी यात्रियो को सुविधा देने मे तत्पर रहते हैं। फिर भी कोई शिकायत हो तो विजिट बुक मे नोट दिया जा सकता है उस पर आवश्यक कारवाई होगी।

(६) तीर्थ पर साधारण दवाइये भी रखी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस तीर्थ पर जितनी सुविधा है शायद ही दूसरे तीर्थ पर हो। यह तीर्थ भारत मे प्रसिद्ध हो चुका है अत हमे इसकी व्यवस्था सम्बन्धी धनराशि की चिन्ता नही है। इस तीर्थ पर प्रतिवर्ष १०००) या १५००) रु. निकट मन्दिरो को जिर्णोद्धार व पूजा इत्यादि के लिए दिए जाते हैं और दिये भी हैं। विसलपुर पालासनी, बोरुन्दा, चोपडा, बावड़ी, बोयल, लाबिया इत्यादि गावो को धनराशि दी गई है और वह आवश्यकता होने पर दी जा सकती है।

श्री पार्श्वप्रभु के अधिष्ठायक देव श्री भैरूजी महाराज की कृपा से इस तीर्थ ने पचास वर्ष मे जो प्रगति की वह आपसे छिपी हुई नही है। भविष्य मे यह तीर्थ दिनोदिन उन्नति करता रहेगा और पाठक तन, मन, धन से इस तीर्थ की सेवा करते रहेगे ऐसी शुभ भावना एव मगल कामना करता हुवा यह सक्षिप्त विवरण समाप्त कर भूल के लिए क्षमायाचना करता हूँ। समय मिलने पर विस्तारपूर्वक रिपोर्ट आपके समक्ष प्रस्तुत की जाएगी।

आपका कृपाभिलाषी—

श्री कापरडा तीर्थ
दि० १३-३-६६

पारसमल सराफ जैन, बिलाड़ा
मत्री, व्यवस्थापक कमेटी

खौड निवासी– सघवी श्री लालचदजी सचेती द्वारा आयोजित श्री राणकपुर पचतीर्थी छ री पाल सघ यात्रा का एक दृश्य । जिसमे– पू० आचार्य देव श्रीमद् विजयदक्ष सूरीश्वरजी म० सा०, पू० आचार्य देव श्रीमद् विजयसुशील सूरीश्वरजी म० सा०, पू० मुनिराज श्री मनोहरविजयजी म० सा० आदि मुनिगण के साथ सघवीजी श्री मीठालालजी सचेती एव सघवीजी लालचदजी सचेती आदि ।

श्रीमान मीठालालजी फोजमलजी संचेती खौड़ निवासी

आप श्री फोजमलजी के सुपुत्र हैं। आप खौड निवासी हैं। आप सरलस्वभावी, धर्म-प्रेमी सज्जन हैं। इस तीर्थ पर आपका पूर्ण प्रेम है। दि २३-२-६६ को खौड से छ री पाल सघ लेकर आप इस तीर्थ पर पधारे और ५०००) रु समवसरण मन्दिर बनवाने हेतु प्रदान किए। मकराना से समवसरण बनवाकर आपकी तरफ से ही स्थापित हुआ। साथ ही प्राचीन तीर्थों के ४ पट आपकी ओर से लगाये गये। प्रतिष्ठा के समय भी आप उपस्थित हुए और तीन भगवान को विराजमान करने की व ध्वजा चढाने की बोली आपकी तरफ से हुई। प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला ३ को आपकी तरफ से ध्वजा चढती रहेगी। मालाओ की बोली भी इस तीर्थ पर बोली गई और लगभग ५६००) की आय हुई। यह सारा कार्य पूज्य आचार्य साहित्यरत्न, शास्त्रविशारद, कविभूषण, शान्तमूर्ति श्रीमद् विजय सुशीलसूरिश्वरजी महाराज साहब की निश्रा मे सम्पन्न हुआ। जब आप यहाँ सघ लेकर पधारे और माला पहनी उस समय चतुर्विध सघ के सामने चतुर्थव्रत अगीकार किया। आपके सघ मे जो व्यवस्था की गई वह अनुकरणीय है। आपने इस सघ मे लगभग रु ५००००) खर्च किये। और भी धर्म के कार्य मे आप द्रव्य का सद्उपयोग करते रहते हैं। आप का बम्बई तथा माटूगा मे अच्छा कारोबार चलता है। आपके तीन पुत्र हैं। आपकी धर्मपत्नी भी धर्म मे पूर्ण दृढ है।

श्रीमान लालचन्दजी प्रतापचन्दजी सचेती, खौड निवासी

आप श्री प्रतापचन्दजी के सुपुत्र हैं। आप खौड निवासी हैं। आपके इस जीवन मे धार्मिक भावना के अकुर जीवन के शैशवकाल मे ही प्रफुल्लित हो गये थे। आप २०२४ चैत्र शुक्ला ६ को श्री गोडवाड पच-तीर्थी का छ री पाल सघ लेकर पधारे। राणकपुर जी मे चैत्र शुक्ला १५ को माला का शुभ मुहूर्त हुआ। आपके सघ मे करीब ६०-७० हजार रुपये खर्च हुए। यह सघ कविदिवाकर, शास्त्रविशारद, व्याकरणरत्न, परमपूज्य आचार्यप्रवर श्रीमद विजयदक्षसूरिश्वरजी महाराज साहब व पूज्य आचार्य श्रीमद विजय-सुशीलसूरिश्वरजी महाराज साहब की निश्रा मे निकाला गया। कापरडाजी के सघ मे आप सकुटुम्ब साथ थे और यहाँ भी यथाशक्ति लाभ लिया। आपका, आपके माताजी व आपकी धर्मपत्नीजी का धर्मप्रेम सराहनीय है।

नोट —हमारा ग्रन्थ छप जाने के बाद चित्र भेजा व ५०१) रु देने की सूचना आई जिससे यह जीवन चरित्र सबसे पीछे छापा गया है।

अनिवृत्तिकरण) द्वारा ग्रंथिभेद करी सम्यक्त्व प्रगटावे छे। तेथी मिथ्यात्व अने तीव्र रागद्वेषादि दूषणो दूर थाय छे। अने पछी शास्त्र श्रवणथी दिव्य दृष्टि खूले छे। पाप प्रणाशक सद्गुरुना गाढ परिचयथी अने तेमनी पासे अध्यात्मग्रंथोना रहस्यो मेलवी तेना उपर नयविक्षेपवडे चिंतन, मनन अने परिशीलन करवाथी ते दिव्यदृष्टि विकसित बनती जाय छे अने अनाहत—अबाधित समता प्रगटे छे।'

ध्यान वखते कुंभनी आकृतिवाला आ यंत्रने आपणा शरीरमां स्थापन करवामां आवे तो 'अर्हं' ए पद नाभिना स्थाने आवे छे। अनाहतनादनुं उद्गमस्थान पण नाभिमंडळ ज होवाथी प्रथम त्यां ज ध्यान-करवानुं सूचन रहस्यभर्युं छे। जैन शास्त्रनी दृष्टिए आत्माना असंख्य प्रदेशोमांथी आठ रुचक प्रदेशो, जे 'गोस्तन' ना आकारे नाभिमां ज रहेला छे। ते प्रदेशो आवरण (कर्म) रहित होवाथी सुख अने आनंदथी पूर्ण छे। ते प्रदेशोमां ध्यान द्वारा प्रवेश करवा माटे ज जाणे नाभि प्रदेशना स्थाने 'अर्हं' नुं ध्यान करवानुं विधान कर्युं होय, एम अनुमान थाय छे।

ॐ पंचपरमेष्ठि वाचक छे अने ह्रीं द्वारा चोवीस तीर्थंकरोनुं ध्यान थई शके छे। स्वरो ए श्रुतज्ञाननुं मूळ छे। आ त्रणेनी साथे अर्हंना ध्याननुं विधान ए सूचवे छे के पांचे परमेष्ठि भगवंतोनी भक्ति तथा श्रुतज्ञानना अभ्यास साथे करेलुं अर्हंनुं ध्यान ज अनाहत-नाद उत्पन्न करी बाह्य आभ्यंतर ग्रंथीओने भेदी, आत्मदर्शन कराववा समर्थ बने छे। परंतु तेमनी भक्ति तथा बहुमान विना अनाहतनादनी उत्पत्ति के आत्मदर्शन सिद्ध न थई शके।

आ गुप्त रहस्यने वधारे स्पष्ट करवा माटे ज केन्द्रनी चारे बाजु आठ पांखडीओमां सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, अने तप पदनुं आलेखन करवामां आव्युं छे।

ए नवे पदोनुं अद्भूत माहात्म्य वर्तमान आगमोमां विस्तारथी वर्णवेलुं छे।

सिद्धचक्रना प्रथम वलयमां रहेला नवपदोनी भक्ति अने ध्यान साधकने श्रुतनो पार-गामी बनावे छे। ए जणाववा माटे अने नवपदोनुं भक्तिपूर्वक ध्यान करवा इच्छता साधके श्रुतज्ञाननो पण आदर अने बहुमानपूर्वक अभ्यास करवो जोइए, ए जणाववा

१ चरमावर्त हो चरमकरणतथा रे, भवपरिणति परिपाक;
दोष टळे वळी दृष्टि खूले भली रे, प्राप्ति प्रवचन वाक।
परिचय पातकघातक साधुशुं रे, अकुशल अपचय चेत,
ग्रंथ अध्यातम श्रवण मनन करी रे, परिशीलन नय हेत।

—श्रीआनंदघनजी म० कृत संभवजिन स्तवन

माटे बीजा वलयमा अनाहत सहित अष्टवर्गनुं आलेखन थयेलुं छे। प्रत्येक वर्गने अनाहतथी वेष्टित करवामा पण एज रहस्य जणाय छे, के अक्षरोना आलबनथी अनाहतनाद प्रगटाववो जोइए। एटले ज्या सुधी अनाहतनाद उत्पन्न न थाय, त्या सुधी अक्षरोनुं आलबन छोडवुं न जोइए। ते माटे कह्यु छे के —

"शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे,
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हान ग्रहण मति धरजो रे।"
—(आनदघनजी)

प्रथम वलयमा सम्यग्ज्ञानवडे ज्ञाननुं आलेखन (पूजन) थयुं छे, छता अही जे स्वतत्र 'अ' वर्गादिनुं आलेखन करवामा आव्युं छे, ते श्रुतज्ञाननी प्रधानता बताववा माटे ज करवामा आव्युं होय एम जणाय छे। श्रुतज्ञान विना अवधि, मन पर्याय के केवळज्ञान आदि उत्पन्न थई शक्ता नथी। तेम श्रुतज्ञान विना कोईपण प्रकारनुं ध्यान पण थई शकतुं नथी। तेथी आत्मसाक्षात्कार करवा माटे श्रुतज्ञाननुं आराधन (आलेखन) अति आवश्यक छे। कह्यु छे के, मुनि शास्त्र दृष्टिवडे सकल शब्द ब्रह्मने जाणीने आत्माना अनुभववडे स्वसवेद्य एवा परब्रह्मने (शुद्धस्वरूपने) प्राप्त करे छे।[1]

अनाहतनाद ए अनुभवदशानी पूर्वभूमिका छे

स्वरादि वर्गने अनाहतथी वेष्टित करवाद्वारा एम सूचव्युं छे, के श्रुतना अभ्यास वडे अनुभवदशा प्राप्त करवी जोइए। केमके अनुभव दशानी प्राप्ति माटेनो एज सरल राजमार्ग छे।

जेम शुष्कज्ञानी ध्यानना अभ्यास विना श्रुतज्ञानना वास्तविक फळने (समता आनदने) मेळवी शकतो नथी, तेम श्रुतज्ञाननी सहाय विना शुष्कध्यानी पण अनाहतना अनहद आनदने के आत्मानुभवना रसास्वादने प्राप्त करी शकतो नथी। आ प्रमाणे स्वरादि अक्षरोने अनाहतथी वेष्टित करवामा आ अपूर्व रहस्य छुपायेलुं छे। उपरात अक्षरना (आगमना) ज्ञान वडे अक्षरनुं ध्यान थई शके छे, अने अक्षरना ध्यान वडे अनक्षरतारूप अनाहत उत्पन्न थाय छे। अने अनाहत वडे अनुभवदशा प्राप्त थाय छे।

स्वरादि अष्टवर्गनी वचमा सप्ताक्षरी मत्र 'नमो अरिहताण' नुं आलेखन पण महत्त्व-भर्युं छे। द्वादशागीना अर्थथी उपदेशक अरिहत परमात्मा ज छे, माटे तेमनी भक्ति तो कोईपण अनुष्ठान वखते अवश्य करवी जोईए। अही श्रुतज्ञाननी विशिष्ट आराधना माटे

---

१ अधिगत्याखिल शब्दब्रह्म शास्त्रदृशामुनि ।
स्वसवेद्य पर ब्रह्मानुभवेनाधिगच्छति ॥
—ज्ञानसार

पण तेमनुँ पूजन-स्मरण-ध्यान अत्यत भक्तिपूर्वक करवुँ जोईए, अने तोज ते पूर्ण फळ आपवा समर्थ बने छे।

अरिहतोना परमभक्त ज श्रुतज्ञानना बळे अनाहतनादने प्रगटावी अनुक्रमे आत्मानुभव-दशा प्राप्त करी शके छे। शास्त्र के आगमानुसार वर्तन करवुँ एज अरिहतनी आज्ञानुँ पालन छे, अने एज तेमनी तात्त्विकी भक्ति छे।

कह्यु छे के —

शास्त्रने आगळ करवाथी एटले के शास्त्रानुसार विधिपूर्वक वर्तन करवाथी वीतरागनी भक्ति थाय छे। अने तेमनी भक्ति वडे अवश्य सर्व कार्यनी सिद्धि थाय छे।[1]

आ प्रमाणे वीजा वलयमा अक्षरो साथे अरिहतनुँ ध्यान करवाथी अनाहतनाद अवश्य उत्पन्न थवानुँ सूचव्युँ छे।

हवे त्रीजा वलयमा ॐ सहित अनाहतनुँ स्वतत्र आलेखन ४८ लब्धिओनी मध्यमा करवामा आव्यु छे। तेनुँ तात्पर्य ए समजाय छे के अर्हँना ध्यानथी के नवपदना ध्यानथी अथवा तो कोईपण अक्षरना ध्यानथी अनाहतनाद प्रगटावी शकाय छे। माटे सुसाधकने जे आलवन वधु ईष्ट के सरळ लागे, ते पदनुँ अवलवन ते लई शके छे। ॐ आदि एक पण पदना सतत चिंतन, मनन अने ध्यानद्वारा पण तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति थाय छे।

अही पच-परमेष्ठिवाचक ॐ ना ध्यानवडे अनाहतनादनो आविर्भाव थाय छे, एम जणाव्यु छे अने अनाहतना आविर्भाव पछी तरत ज उत्तम साधक, आत्मानी परमानदमयी रसभरी भूमिका प्राप्त करे छे। अनुभवदशामा मग्न बनेला एवा साधकने अनेक प्रकारनी महान लब्धिओ उत्पन्न थाय छे।

४८ लब्धिधारी महर्षिओना पूजननु विधान एम बतावे छे, के सर्व साधनामा सद्‌गुरुनी महत्ता प्रधान स्थाने छे। सद्‌गुरुनी सेवा अने तेमनो आशिर्वाद ज अनाहतनादने प्रगटावी विविध प्रकारनी लब्धिओने प्राप्त करावे छे। आ वलयमा अनाहतनी चारे वाजु जे लब्धिधारी मुनिओनी स्थापना अने ते पछी चोथा वलयमा पण आठ गुरु पादुकानी स्थापना छे, ते एम सूचवे छे के, सर्वकाले गुरुनी परतन्त्रतामा (निश्रामा)ज साधनानी सफलता थाय छे। सद्‌गुरुनो उपकार क्षणवार पण न भुलावो जोइए। आ जन्ममा अने अन्य जन्मोमां पण अरिहतादि अनतानत गुरुओना उपकार, अनुग्रह अने आशिर्वाद वडे मारी साधना सफल बनी रही छे, तेथी लेश मात्र पण मनमा गर्व न आवे के हु मारी स्वतत्र शक्तिथी आगळ वधी रह्यो छुं, एवो नम्र भाव टकी रहेवो जोइये।

---

[1] शास्त्रे पुरस्कृते तस्मात्, वीतराग पुरस्कृत । पुरस्कृते पुनस्तस्मिन्, नियमात् सर्वसिद्धय ॥

—ज्ञानसार

आ प्रमाणे प्रथम वलयमा 'अर्हं' ने अनाहतथी वेष्टित करवा द्वारा देवतत्त्वनी परम-भक्ति पूर्वकना ध्यानथी अनाहतनादनो अविर्भाव थाय छे, एम बताव्युं। अने बीजा वलयमा स्वरादि वर्णोने अनाहतथी वेष्टित करवा वडे श्रुतधर्मनी भक्ति द्वारा अनाहतध्याननी उत्पत्ति बतावी। अने त्रीजा वलयमा लब्धिधारी, चारित्र सम्पन्न गुरुओनी सेवा द्वारा अनाहतध्यानना विकासद्वारा प्रगटती समतानी प्राप्ति थवानु बतावीने आ शक्तिने जीवन-भर टकावी राखवा माटे गुरुनी निश्रामा रहेवानु सूचव्यु छे। आ वलयनु बीजुं नाम 'गुरुमडल' राखवामा पण गुरुतत्त्नी विशिष्ट भक्ति करवानु सूचन छे।[1]

अरिहतनुं ध्यान समकितरूप, ज्ञानरूप अने चारित्ररूप छे

अरिहत परमात्मानु ध्यान ज सम्यग्दर्शन, ज्ञान, अने चारित्र छे। 'अर्हं' ना ध्यानमा सम्यग् रत्नत्रयी समायेली छे। अर्हंनु ध्यान ज अनुक्रमे अनाहतनादनारूपे अने अनाहतध्यानरूपे तेमज अनाहतसमतारूपे प्रगटे छे, तेथी ते सम्यग्दर्शन, ज्ञान अने चारित्र-रूप छे।

अध्यात्म अने अनाहतनी सरखामणी

अध्यात्मनुं लक्षण

आत्माना शुद्ध स्वरूपने प्रगटाववा माटे जे काइ क्रिया अनुष्ठान करवामां आवे तेने शास्त्रकारो अध्यात्म कहे छे—

'निज स्वरूप जे किरिया साधे, ते अध्यातम कहिए रे'

अनादि काळथी ससारमा परिभ्रमण करता जीवनो मोह ज्यारे मद थाय छे, अर्थात् तेनु बल अल्प बने छे, त्यारे आत्माने अनुलक्षीने जे विशुद्ध धर्मक्रिया थाय, तेज अध्यात्म छे, अने ते सर्व योगोमा व्यापीने रहेलो छे। ते धर्मक्रिया अपुनर्बंधकादि प्रथम गुणस्थानकथी लइ १४ गुणस्थानक सुधी उत्तरोत्तर वधु ने वधु विशुद्ध बनती जाय छे।

सिद्धचक्रना यत्रमा 'अनाहत'नु त्रणे वलयोमा थयेलु आलेखन पण उत्तरोत्तर विशुद्ध बनती आत्मशक्तिनु ज सूचन करे छे, अर्थात् 'अर्हं' ना ध्यानथी अनुक्रमे विकास पामती आत्म विशुद्धि एज 'अनाहत' छे। खरेखर ते आत्मविशुद्धिनु वर्णन करवामा शब्द समर्थ नही होवाथी ज अनक्षर एवा 'अनाहत' द्वारा तेनो निर्देश करवामा आवेल छे।

जेम अध्यात्मना नाम, स्थापना, द्रव्य अने भावरूप चार भेद बतावेला छे। तेम अना-हतना पण नाम, स्थापना, द्रव्य अने भाव वडे चार प्रकार जाणी लेवा। नामादि त्रण जो

---

१. अन्येपि ये केचन लब्धिमन्तस्ते सिद्धचक्रे गुरुमडलस्था ।

भावअध्यात्म के भावअनाहतने साधनारा होय तोज आदरणीय बने छे। नहिं तो तजवा योग्य छे। कह्यु छे के—

'नाम अध्यातम ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छडो रे;
भाव अध्या म निज गुण साधे, तो तेहशुं रढ मडो रे।'

अही अनाहत पण आत्माना शुद्धस्वरूपने प्रगटववा माटे कराती विशिष्ट ध्यान क्रिया होवाथी ते भावअध्यात्म रूप छे।

अष्टाग योग अने अनाहत

योगना आठ अगोमाथी प्रथमना चार (यम, नियम, आसन, अने प्राणायाम) द्रव्य-योग के हठयोग कहेवाय छे, अने प्रत्याहार धारणा, ध्यान अने समाधि ए चार भावयोग के राजयोग कहेवाय छे।

अनाहतनो पण धारणा, ध्यान अने समाधिमा अतर्भाव थई शके छे।

[1]**धारणा योग**—यत्रमा आलेखायेल अनाहतमा चित्तने स्थिर बनाववाथी अनाहतनी धारणा थइ शके छे।

[2]**ध्यान योग**—पदस्थ ध्यानरूपे 'अर्हं' आदिनो जप अते अनाहतनादमा विश्रान्ति पामे छे, एटले अनाहत ध्यान रूपे परिणमे छे, एटलु ज नही पण पिडस्थ, रूपस्थ के आज्ञा-विचयादि कोई पण सालबन ध्यान अते अवश्य 'अनाहत' स्वरूपने धारण करे छे। ज्यारे ध्याता [3]सभेद प्रणिधान द्वारा ध्येय साथे [4]अभेद प्रणिधान साधे छे, त्यारे अनाहतनो आविर्भाव थाय छे।

साधक मत्रराज 'अर्हं' ना अभिधेयरूप शुद्ध स्फटिक रत्न जेवा निर्मल अरिहत परमात्मानुँ ध्यान करे छे, अने ते ध्यानना आवेशमा 'सोऽह सोऽह (तेज हु) एरीते आतरिक स्फूरण सहज भावे थाय छे, ते अवस्थाने अनाहतनादननी पूर्वावस्था कही शकाय। ते वखते साधक अरिहत (ध्येय) साथे नि शकपणे एकतानो अनुभव करे छे, अर्थात् 'परतत्त्व समापत्ति' रूप अभेद प्रणिधानने सिद्ध करे छे। त्यार पछी राग द्वेषादिथी रहित, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी इन्द्रादि देवोथी पूजित समवसरणमा बेसी शुद्ध धर्मनी देशना आपता एवा पोताना आत्माने चितवे, आ

---

[1] धारणा तु क्वचित् ध्येये, चित्तस्य स्थिरबंधनम् ॥

[2] ध्यान तु विषये तस्मिन्, एकप्रत्ययसतति ॥

[3] जे ध्यानमा ध्यातानो ध्येय साथे सश्लेषरूप अथवा सम्बन्धरूप भेद छे। अर्थात् वाच्य साथे अभेद साधवानु ध्यान सहकार छे, तेमा प्रवेश करवा माटे जे ध्यान करवु, ते सभेद प्रणिधान छे।

[4] जे ध्यानमा स्वय ध्येयरूप थई ध्येयनी साथे पोताना आत्मानो सर्व प्रकारे अभेद साधवानो होय छे, ते अभेद प्रणिधान छे।

प्रमाणे परमात्मा साथे अभेद भावने पामेलो ध्यानी आत्मा सर्व पापोनो नाश करी परमात्म-पणाने प्राप्त करे छे।

अनाहतनी पूर्वावस्था

अनाहतनी पूर्व अवस्थामा सभेदप्रणिधान द्वारा प्रगट थता अभेदप्रणिधानमय ध्याननु स्वरूप विविध ग्रथोमा आ प्रमाणे बताव्यु छे।

ध्याता प्रथम अरिहत परमात्मानी मानसिक भावपूजा उत्तमोत्तम द्रव्योनी कल्पना वडे करे छे। (जेमके समतारूपी स्वच्छ गगाजल वडे प्रभुने स्नान करावी भक्तिरूप केशर वडे अर्चन करी, शुद्धभावरूप पुष्पो चडाववा विगेरे) त्यार पछी परम प्रभुना अनत गुणोनु स्मरण करी प्रभु साथे तन्मय बनवा माटे भावना करे छे, के मारा आत्मामा पण तेवा गुणो तिरोभावे (प्रच्छन्नपणे Potentially) रहेला छे, कारण के सर्व जीवो सत्ताए सिद्ध समान छे। सर्व जीवोनी जाति एक छे। (एगे आया) आत्मानु सहज निर्मल स्वरूप स्फटिक रत्न समान छे। (जेम निर्मलतारे रत्न स्फटिक तणी, तेम ए जीव स्वभाव,)

आ प्रमाणे अनेक स्याद्वाद सिद्धान्तना सापेक्ष वचनो द्वारा विचार करता तेने समजाय छे, के परमात्मा अने मारा आत्मानी कथचित् समानता छे, माटे अमे बने एकज छीए। ते परमात्मा ते ज हु छु, (सोऽह)। आ रीते द्विधाभावने (भेदभावने) दूर करी 'पोताना आत्माने पण परमात्म स्वरूपे चितवे छे। अने समरस भावमा विशेष उल्लसित थई तेमा मग्न बनी विचार छे के, "खरेखर आजे हु आनदना महान साम्राज्यने पाम्यो छु अने सूर्य समान केवलज्ञानने मेलवी ससार समुद्रथी पार थई परमात्म स्वरूप बन्यो छु [3] सर्व लोकना अग्रभागे रहेलो हु तो निरजन देव छु।

परमात्म दर्शननु लक्षण

ज्यारे ऊपर जणाव्या प्रमाणे निरजन देवना दर्शन थाय छे, त्यारे साधक (ध्याता) ना नयनोमाथी आनदनो अश्रुप्रवाह वहेवा माडे छे, समग्र शरीर रोमाचित बनी जाय छे।

---

१ द्वाभ्यामेक विधायाथ, शुभध्यानेन योगवित्।
परमात्मस्वरूप त, स्वमात्मान विचिन्तयेत् ॥४७॥

२ सुलब्धानदसाम्राज्य, केवल-ज्ञान-भास्कर।
परमात्म-स्वरूपोऽह, जातस्त्यक्तभवार्णव ॥४८॥

३ अह निरजनो देव, सर्वलोकाग्रमाश्रित।
इति ध्यान सदाध्यायेदक्षयस्थानकारण ॥४९॥

—योग प्रदीप

ध्याता ज्यारे परमात्मा साथे तन्मय बने छे, त्यारे तेने अपूर्व आनदनो अनुभव थाय छे, आ सत्य अनेक अनुभवी महात्माओना अनुभव वाक्योथी स्पष्ट समजाय छे। [1]'योगी ज्यारे जे वस्तुनु ध्यान करे छे, त्यारे ते ध्येय साथे तन्मय बनी जाय छे, एटले के ध्येयमय वनी जाय छे, माटे योगीए हमेशा आत्म विशुद्धि मेळववा वीतरागने ज ध्याववा जोइए, जेथी आत्मा पण वीतराग बनी शके। [2]आ मारो आत्मा तेज निर्मल स्फटिक समान अने सर्व उपाधिओथी रहित परमात्मा छे, एवुँ ज्ञान आत्माने परमपद आपे छे।

योगी अरिहत परमात्मा साथे ध्यानना सतत अभ्यास वडे तन्मयताने साधी स्वआत्माने पण सर्वज्ञरूपे जूवेछे। एटले जे आ सर्वज्ञ भगवान छे ते हु पोते ज छु ।

[3]सद्गुरुना परमभक्तिना प्रभावथी साधक ने आ जन्ममा ज श्री तीर्थंकर परमात्माना दर्शन 'समापत्ति' ध्यान वडे थाय छे अने ते मोक्षनुँ असाधारण कारण गणायु छे।

[4]समापत्ति एटले शु ?

ध्याता ध्येय अने ध्याननी एकताने समापत्ति कहेवाय छे। अेटले परमात्मा आदि ध्येय साथे ध्यान वडे तन्मय बनवु एज 'समापत्ति' छे अने आ समापत्ति सिद्ध थता ध्यान-दशामा श्री तीर्थङ्कर परमात्माना साक्षात् दर्शन थाय छे ।

श्रीपाल कथामा श्री अरिहतादि नवपदोनु तन्मयपणे ध्यान करवानु बतावी तेनु फल जणाव्यु छे, के ध्याता ज्यारे रूपस्थ, पदस्थ पिडस्थ ध्यानवडे अरिहतनु ध्यान करी तेमा तन्मय वने छे, त्यारे ते पोताना आत्माने पण साक्षात् अरिहत रूपे जूवे छे। रूपातीत स्वभाव वाला केवल ज्ञान, दर्शन अने आनदयुक्त एवा सिद्ध परमात्मानु ध्यान करतो आत्मा पोते पण सिद्ध स्वरूपे बने छे, एमा सदेह करवो नहि [5]आ प्रमाणे नवपदो साथे आत्मानी एकता विचारवी।

---

[1] यदा ध्यायति यद् योगी, याति तन्मयता तदा ।
ततो ध्येयो वीतरागस्तन् नित्यमात्मविशुद्धये ॥ (योगसार)

[2] शुद्ध-स्फटिक-सकाशो, निष्कलश्चात्मनात्मनि ।
परमात्मेति स ज्ञान, प्रदत्ते परम पदम् ॥

[3] [illegible] तीर्थकृद्दर्शन मतम् ।
[illegible]दिभेदेन, निर्वाणैकनिवन्धनम् ॥

[4] [illegible] विशेष स्वरूप षोडशक आदि ग्रथोमा वर्णवायेलु छे।

[5] [illegible] , रूपातीत स्वभाव जे . . . ।

[1]जेम नवपदोनी स्तुति करता श्रीपाल पोतानां आत्माने नवपदमय जोता हता, तेम कोई पण साधक अरिहतादिनी साथे तन्मय बने, तो ते पण अरिहतादिमय बनी शके छे । कह्यु छे के – 'जिनस्वरूप थई जिन आराधे, ते सहि जिनवर होवेजी' ,

प्रश्न –अहिं कदाच एम शका थाय के छद्मस्थ एवा ध्याताने (ध्यान करनारने) अरिहत के सिद्ध केम कही शकाय ?

उत्तर –अरिहत के सिद्धनु ध्यान करनार ध्याता भावनिक्षेपे आगमथी अरिहत के सिद्ध कही शकाय, केमके अरिहत के सिद्धपदनो ज्ञाता तेमा उपयोग वालो होय तो ते आगमथी भावनिक्षेपे अरिहत के सिद्धज छे ।

परमात्मा-प्रभु साथे रसभरी प्रीति, तेमना स्वरूपमा तन्मय बनवाथी ज थई शके छे । प्रभु साथे तन्मय बनवाथी ज तेमनी पराभक्ति थाय छे । अरिहतना आलबनथी जीव आत्मावलवी (स्वरूपावलवी) बनी शके छे ।

'जेम जिनवर आलबने, वधे सधे एकतान हो मित्त ,
तेम तेम आलबनी ग्रहे, स्वरूप निदान हो मित्त' ।

जीव जेम जेम जिनवरनु ध्यान करी तेमा एकता साधे छे, तेम तेम ते आत्मावलम्बी बनी पोताना शुद्ध स्वरूपनु कारण (निदान) मेलवी शके छे, एटले के स्वभावरमणता प्राप्त करे छे । अने स्वभाव रमणता करतो जीव पूर्णानन्दस्वरूप ने प्राप्त करे छे । श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी पण 'कल्याणमन्दिर'मा अने 'जिनसहस्र नाम स्तोत्रमा' अभेद ध्याननु स्वरूप बतावता कहे छे, के [2]पडित पुरुषो जिनेश्वरना स्वरूपनु ध्यान करी स्व-आत्माने पण अभेदभावे ते स्वरूपे ज ध्यावे छे , ते जिनेश्वर बने छे । [3]जिनेश्वर ज दाता अने भोक्ता छे । सर्व जगत पण जिनमयज छे । जिनेश्वर सर्वत्र जय पामे छे । जे जिनेश्वर छे, ते हु पोतेज छु । वली अनुभवी योगी श्री आनन्दघनजी म० प्रभु साथे तन्मयता केलवानो उपाय दर्शावे छे, के अरिहत देवनी द्रव्य पूजा, स्तोत्र पूजा आदि द्वारा[3] चित्तनी

---

१ एम नव पद थुणतो तिहा लीनो, हुओ तन्मय श्रीपाल . . . .

—श्रीपाल रास

२ आत्मा मनीपिभिरय, त्वदभेद बुध्या ।
ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभाव- ।।१७।। —कल्याण मन्दिर

३ जिनो दाता जिनो भोक्ता, जिन सर्वमिद जगत् ।
जिनो जयति सर्वत्र, यो जिन सोऽहमेव च ।। —जिन सहस्रनामस्तोत्र

प्रसन्नता प्राप्त करी, [1]कपट रहित थई आत्माने परमात्मामा समर्पित करवो अने आत्म-समर्पण समये बहिरात्मभावने दूर करी अंतरात्मामा स्थिर बनी परमात्म स्वरूप भाववु एटले के अन्तरात्माने परमात्मरूपे ध्याववु । [2]जिनेश्वर रूप थइजे जिननी आराधना करे ते अवश्य जिन बने छे ।

आत्मा अने परमात्मा बने शुद्ध नयथी एकज छे । एम विचारता मतिभ्रम दूर थाय छे अने मतिभ्रम दूर थवाथी परम सम्पत्ति अने आनन्दघन रसनी पुष्टि थाय छे ।

अनाहत ए सम्यग् दर्शन, इच्छायोग, अध्यात्मयोग, भावनायोग, प्रीति अने भक्ति आदि अनुष्ठाननो सूचक छे

श्री सिद्धचक्रनी कर्णकामा स्वर अने अनाहत सहित अर्हँनुं प्रथम आलेखन ए प्राथमिक अवस्थामा सर्वजीवोने इच्छायोग अने प्रीति-भक्ति आदि अनुष्ठानने सूचवे छे ।

अरिहत परमात्मा प्रत्ये प्रथम प्रीति उत्पन्न थवी जोइए । एमना नामस्मरण अने मूर्तिदर्शन वडे साधनानो मगलमय प्रारभ थाय छे । नाना बाळ जीवोने सर्वप्रथम श्री नमस्कार महामत्रनुं रटण अने प्रभुदर्शन करवानुं शीखडाववामा आवे छे तेनी पाछल एज रहस्य छे, के तेओने प्रभु प्रत्ये प्रेम पेदा थाय, 'अरिहते शरण पवज्जामि' द्वारा प्रथम प्रभुनु शरण स्वीकारवानु बतावी पछीज दुष्कृत गर्हा अने सुकृतानुमोदना करवानु विधान छे ।

सम्यक्त्व प्राप्तिनां सर्व कारणोमा अरिहतनी प्रीति अने भक्तिने प्रधान कारण (पुष्ट हेतु) मानवामा आव्युं छे । बाकीनी सर्व सामग्री गौण मनाइ छे ।

निमित्त हेतु जिनराज समता अमृत खाणी ,
प्रभु आलबन सिद्धि नियमा एह वखाणी ।

—देवचदजी कृत अरनाथस्तवन

उपादान आतम सहिरे, पुष्टालबन देव ,
उपादान आतमपणेरे, प्रगट करे प्रभु सेव ।

अरिहतनी प्रीति अने भक्ति ए योगनुं बीज छे, मीत्रा दृष्टिवाला जीवो करतां तारा, बला, अने दीप्रा, दृष्टिवाला जीवोनी अरिहत प्रत्येनी प्रीति अने भक्ति अत्यत गाढ होय छे ।

श्री अरिहतादिनी भक्तिना योगे ध्यान शक्ति वधता ग्रन्थी भेदननुं सामर्थ्य प्रगटे छे, अने सम्यग्दर्शननी प्राप्ति थता ते प्रीति, भक्ति तात्त्विक बने छे, योग बिन्दु ग्रन्थमा वर्णवायेल

---

[1] [illegible] ने प्रसन्न [illegible] रे । —ऋषभदेव स्तवन
[illegible] आतम अरपणा० । —सुमतिनाथ स्तवन

[2] [illegible] जिन आराधे ते सहि जिनवर होवेजी । —नमिनाथ स्तवन

इच्छायोग, अध्यात्मयोग अने भावनायोग पण अहिं अवश्य होय छे, अने ध्यानयोग पण अंशे प्रगटे छे। अनुक्रमे नवपदोनी भक्तिपूर्वकना आराधन वडे अने शास्त्रश्रवण द्वारा ध्यानादि योगोनो विकास थतो जाय छे, अने ते अवस्थामा शास्त्रयोग अने वचनानुष्ठान पण घटी शके छे। अने ज्यारे ए ध्यानादि-अनुष्ठान सहज बनी जाय छे, त्यारे असग-अनुष्ठान तेमज सामर्थ्ययोग पण अवश्य प्रगटे छे।

आ रीते सूक्ष्मदृष्टिथी विचारता समजी शकाय छे, के प्रथम वलयमा आलेखायेलो अनाहत ए सम्यग्दर्शन, ईच्छायोग, अध्यात्मयोग, भावनायोग, प्रीति अने भक्ति आदि अनुष्ठानोनो सूचक छे।

बीजा वलयमा आलेखायेलो अनाहत देशविरति, सर्वविरति, प्रवृत्तियोग, ध्यानयोग, स्थैर्ययोग, वचन-अनुष्ठान अने शास्त्रयोगनो सूचक छे।

त्रीजा वलयमा अनाहतनुं स्वतन्त्र स्थापन ए अप्रमत्तदशा अने तेनी आगलना गुण-स्थानकोमा थती स्वभावरमणता, सामर्थ्ययोग, समतायोग अने सिद्धियोग आदिनो सूचक छे।

सुज्ञ वाचकोने योगबिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, गुणस्थानकक्रमारोह आदि ग्रथोनु परिशीलन करवाथी उपरोक्त कथननु रहस्य समजाशे। अनाहत ए उत्सर्ग भावसेवा छे, कारण के ते अपवाद भावसेवारूप अर्हं आदि नवपदोना ध्यानथी प्रगटेली आत्मशक्ति छे। अने ते अनाहत, उत्तरोत्तर गुणनी प्राप्तिनु कारण होवाथी अपवाद भावसेवा पण छे। कह्यु छे के—

उत्कृष्ट समकित गुण प्रगटयो, नैगम प्रभुता अशेजी,
सग्रह आतम सत्तालबी, मुनिपद भाव प्रशसेजी,
कारण भाव तेह अपवादे, कार्यरूपी उत्सर्गेजी।

अनाहत ए ध्यानथी प्रगटेली आत्मशक्ति होवाथी कार्यरूप अने उत्तरोत्तर विशुद्ध आत्मशक्तिनो हेतु होवाथी कारणरूप पण छे।

अनाहत अने समाधि

समाधि ए ध्यान विशेष छे[1]। अनाहत पण विशिष्ट प्रकारनु ध्यान ज होवाथी तेनो समावेश समाधिमा थई शके छे।

समाधिनी व्याख्या

ध्याता ध्यान वडे ध्येयस्वरूप बनी जइ पोताने मात्र ध्येयरूपेज अनुभवे ते समाधि छे।[2]

---

१. समाधि ध्यान विशेष। (श्रीदशवैकालिक हारि० वृत्ति)
२. समाधिस्तु तदेवार्थमात्राभासनरूपक। (अभिधान कोष)

अनाहत पण ध्याननी परिपक्व अवस्थामा उत्पन्न थतो होवाथी समाधि रूप छे

अक्षरध्वनिथी रहित, विकल्पना तरगविनानु, समभावमा स्थित अने सहज अवस्थाने प्राप्त थयेल चित्तमा अनाहत उत्पन्न थाय छे। अनाहतनो ज्यारे ब्रह्मरध्रमा लय थाय छे, त्यारे अपूर्व आनन्दनो अनुभव अने 'परतत्त्वसमापत्ति थाय छे, अने तेने ज समाधि कहेवामा आवे छे।

समाधिना पर्यायवाची नामोना बोधथी स्पष्ट समझाय छे, के अनाहत ए समाधि रूप छे।

राजयोग. समाधिश्च, उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्व लयस्तत्त्व, शून्याशून्य पर-पदम् ॥३॥

अमनस्क तथाद्वैत, निरालब निरजन।
जीवनमुक्तिश्च सहजा, तुर्या चेत्येकवाचका: ॥४॥

—हठयोग दीपिका

परमात्मा साथे ध्यातानो अभेद थवो तेज समरसीभाव अने तेज एकीकरण छे, तेने ज उभय लोकमा फलदायी समाधि कहेवामा आवे छे[२]।

श्रीदशवैकालिकना नवमा अध्ययनना ४ था उद्देशामा नीचे प्रमाणे चार प्रकारनी समाधिनु विधान छे–

१ विनयसमाधि। २ तसमाधि।
३ तपसमाधि। ४ आचारसमाधि।

तेनी व्याख्या श्रीहरिभद्रसूरि म कृत वृत्तिमा आ प्रमाणे छे – 'तत्र समाधान समाधि परमार्थत आत्मनो हित सुख स्वास्थ्य वा। परमार्थथी आत्मानु हित, सुख के स्वास्थ्य एज समाधि छे।

१ विनयाद् विनये वा समाधि विनयसमाधि।

विनय करवाथी जे आत्महित, आत्मसुख के आत्मस्वास्थ्यनी प्राप्ति थाय तेज विनय-समाधि कहेवाय, तेना चार भेद बताववामा आव्या छे।

---

१. [illegible]—ध्यानविशेषरूपा तत्फलभूता वा मनम समापत्ति अभिधीयते। (षोडपक)
२. [illegible]भावस्तदेकीकरण स्मृतम्।

—तत्त्वार्थ०

२ श्रुतज्ञानना अभ्यासथी जे समाधि प्राप्त थाय ते श्रुतसमाधि ।

श्रुतज्ञाननो अभ्यास शा माटे ?

(क) द्वादशागीनुं ज्ञान मेलववा माटे ।

(ख) ज्ञानमा एकाग्र बनवा माटे ।

(ग) तत्त्वज्ञानी बनीने शुद्ध धर्ममा स्थिर रही शके ते माटे ।

(घ) पोते शुद्ध स्वभावमा स्थित होवाथी अन्य शिष्यादिकने पण धर्ममा स्थिर बनावी शके ते माटे। एज रीते तपसमाधि अने आचारसमाधिनु स्वरूप पण चार चार भेद वडे विस्तारथी समजाववामा आव्युं छे। जिज्ञासुए ते ते ग्रन्थमा-थी गुरुगमद्वारा जाणवु ।

श्री सिद्धचक्र महायन्त्रनी कर्णिकामा 'अर्हं' नुं ध्यान पण 'अनाहत'मा लय पामे छे, ते अरिहतनी परमभक्ति रूप विनयनुं फल छे। माटे 'अर्हं' पछी करवामा आवतुं अनाहतनुं वेष्टन विनयसमाधिनो सूचक छे ।

द्वितीय वलयमा स्वरादि साथे जे अनाहतनुं आलेखन छे, ते श्रुतज्ञान वडे जे समाधि दशा प्राप्त थाय छे, ते श्रुतसमाधिनो सूचक छे ।

तृतीय वलयमा तपस्वी अने आचारवत लब्धिधारी मुनिओ साथे अनाहतनुं आलेखन छे, ते तप, आचार अने समाधिने सूचवे छे। अर्थात् विनय, श्रुत, तप अने आचारना पालनथी ज अनाहत समाधि प्रगटे छे, ए रहस्य श्री दशवैकालिक सूत्र जेवा मूल ग्रन्थमा पूर्वधर महर्षि श्रीशय्यभवसूरिजीए पण बताचेलु छे[1] ।

श्रीअरिहत परमात्मानी भक्तिथी चित्तनी प्रसन्नता प्राप्त थाय छे, चित्तनी प्रसन्नता-थी 'समाधि' प्रगटे छे अने समाधि वडे सिद्धिपदनी प्राप्ति थाय छे। चित्तनी प्रसन्नता ए प्रभुपूजानु अनतर फल छे[2] । साधक चित्तनी प्रसन्नता प्राप्त करीने कषायोने शात बनावे छे। अने कषायोनो कारमो उकलाट शमी जवाथी समाधिदशामा ते परमात्माने आत्मसमर्पण करे छे[3] ।

१. इमे खलु ते थेरेहि भगवतेहिं चत्तारि विणयसमाहिठाणा पन्नत्ता त जहा विणयसमाहि, सुयसमाहि, तवसमाहि आचारसमाहि । —श्रीदशवैकलिक मूल

२ अभ्यर्चनादर्हताम्, मन प्रसादस्तत समाधिश्च ।
तस्मादपि नि श्रेयसमतो हि तत्पूजन न्याय ॥१॥ —तत्त्वार्थ-भाष्य-कारिका

३. चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्यु रे, पूजा अखडित एह ।
कपट रहित थइ आतम अरपणा रे, आनदघन पद रेह ॥ —ऋषभ जिन स्तवन

आत्मसमर्पण ए समाधि रूप ज छे, केमके बहिरात्मदशानो त्याग करीने अंतरात्मस्वरूपमा स्थिर बनी, पोताना आत्माने परमात्मास्वरूपज चित्तववो तेने आत्मार्पण कहेवाय छे[१]।

इन्द्रियोने वश करीने मनने, परमात्मा गुणचिंतनमा के ध्यानमा जोडवाथी ज बुद्धि स्थिर बनी शके छे।

परमात्माना गुणगानथी के ध्यानथी चित्तनी प्रसन्नता प्राप्त थायछे अने चित्तनी प्रसन्नता प्राप्त थता सर्व दुखोनो नाश थाय छे तेमज प्रसन्नचित्त वाला पुरुषनी बुद्धि शीघ्र स्थिर थाय छे।

इन्द्रियोना जय विना मन अस्थिर रहे छे, चित्तनी चपलता थवाथी प्रभुस्तुति के ध्यान थई शकतु नथी, अने ते विना चित्तप्रसन्नता प्राप्त थती नथी, अने चितप्रसन्नता विना शान्ति मलती नथी। अशात आत्माने सुख के समाधि क्याथी मली शके ? आ उपरथी समजी शकाय छे, के समाधिसुखना अभिलाषीओए प्रथम इन्द्रियोने काबुमा राखी, मनने परमात्मगुणोमा स्थिर बनावी, तेना ध्यानमा लीन बनवु, जेथी चित्तनी प्रसन्नता वधती जशे, अने अनुक्रमे ध्याता, ध्यान अने ध्येयनी एकता साधी शकाशे, अने ते एकता सिद्ध थता समाधिसुखनो साक्षात् अनुभव थशे।

जे मनुष्य सर्व कामनाओनो त्याग करी, निस्पृह थई 'अह अने मम' एटले "हु अने मारु" ए भावने छोडे छे, अर्थात् निरहकारी बने छे, तेज शातिने-समाधिने मेलवी शके छे।

श्रीगणधर भववतो पण 'लोगस्स सूत्र'मा तीर्थंकरपरमात्मानी स्तुति द्वारा प्रसन्नतानी मागणी करीने उत्तम समाधिदशा प्राप्त थाओ एवी प्रार्थना करे छे। 'तित्थयरा मे पसीयन्तु' (मारा उपर श्रीतीर्थंकर भगवन्तो प्रसन्न थाओ) एवी प्रार्थना द्वारा साधकनु चित्त प्रसन्न थाय छे, एज प्रभुनी प्रसन्नता छे।

भावआरोग्य, बोधिलाभ ए भावसमाधिना कारणो छे। तेनाथी उत्तम समाधिनी प्राप्ति थाय छे। चित्तनी प्रसन्नताथी भावआरोग्यनी प्राप्ति थाय छे। भावआरोग्य वडे बोधिलाभ प्रगटे छे अने बोधिलाभनी प्राप्तिथी समाधि प्रगटे छे।

सामायिक पण समाधि स्वरूप ज छे। समतानो लाभ एज समायिक छे। समाधिदशाने प्राप्त थयेलो आत्मा पण परमात्मा साथे तन्मय बनी समतारसनु पान करे छे।

---

१ बहिरातम तजी अंतरआतमा-रूप थई स्थिर भाव, सुज्ञानी।
परमातमनुं हो आतम भाववु, आतम अरपण दाव, सुज्ञानी॥　　—सुमतिनाथ स्तवन

श्रुतसामायिक, सम्यक्त्वसामायिक, देशविरतिसामायिक पण समाधिनाज प्रकारो छे। श्रीदशवैकालिकसूत्रमा बतावेली विनयसमाधि विगेरेमा आ चारे सामायिक नो समावेश थइ जाय छे। सयम, चारित्र ए पण समधिना ज पर्यायवाची नामो छे। आत्मा ज्यारे स्वस्वभावमा रमणता करे छे, त्यारे तेने चारित्र कहेवामा आवे छे।

चारित्र ए समाधिगुणमय होवाथी समाधि ज छे, तेने ज सयम कहेवामा आवे छे।[1]

परमात्माना ध्यानमा मग्नता, तन्मयता थवी ए पण समाधि ज छे।

अर्हं आदिना ध्यान वडे अनाहतलय उत्पन्न थवाथी ज परमात्म स्वरूपमा मग्नता के तन्मयता थइ शके छे।[2]

श्री ज्ञानसारमां मग्नतानुं लक्षण[3]

पाचे इन्द्रियोनु दमन करी, मनने स्थिर बनावी, मात्र चिदानद स्वरूपमा विश्रान्ति करतो योगी मग्न कहेवाय छे। जे योगी ज्ञानसुधाना सिधु समान परब्रह्म (परमात्म) स्वरूपमा मग्न बने छे, तेने अन्य विषयो हलाहल झेर जेवा लागे छे। स्वभावसुखमा मग्न बनेलो मुनि जगतना सर्वतत्त्वोनुं यथास्थित स्वरूपे अवलोकन करतो होवाथी, ते पोताने बाह्यभावोनो कर्ता मानतो नथी, पण साक्षी मात्र माने छे।

श्रीभगवतीसूत्रमा पण सयमपर्यायनी वृद्धि साथे जे आत्मिकसुखनी वृद्धि बतावी छे, ते आवा स्वभावमग्न मुनिने आश्रयीने ज बतावेली छे।

सयमना असख्यात अध्यवसायस्थानो ए अनुक्रमे विकाश पामती आत्मविशुद्धिना द्योतक छे।

जेम जेम आत्मविशुद्धि वधे छे, तेम तेम आत्मिकसुख वृद्धि पामतु जाय छे। ध्याता अतरात्मा जेम जेम स्वभावमा स्थिति करे छे, तेम तेम तेने समाधिविषयक अनुभवो स्पष्ट-थता जाय छे[4]।

---

१ शुद्धातम गुणमें रमे, तजि इन्द्रिय आशस, थिर समाधि सतोपमा, जयजय सयम वश।
समाधि गुणमय चारित्र भलुजी, सत्तरमु सुखकार रे, व्रत श्रावकना बारमेदे कह्याजी, मुनिना महाव्रत पचरे। सत्तर ए द्रव्य भावथी जाणीनेजी, यथोचित करे सयम सचरे
विजय लक्ष्मीसूरिकृत वीस स्थानक पूजा

२ अनाहतलयोत्पन्नसुख —(योगप्रदीप)

३ जूओ ज्ञानसार अष्टक बीजु।

४ यथा यथा समाध्याता, लप्स्यते स्वात्मनि स्थितिम्।
समाधिप्रत्ययाश्चास्य, स्फुटिस्यति तथा तथा॥

अनाहतनाद पण घटानादनी जेम धीमे धीमे प्रशात अने मधुर बनतो आत्माने अमृत समान सुखनो दिव्य आस्वाद करावे छे।[1]

अविच्छिन्न तैलधारा अने दीर्घघटाना रणकार जेवा अनाहतनादना लयने जे जाणे छे (अनुभवे छे) तेज खरेखर योगनो ज्ञाता छे।[2]

आ वातथी स्पष्ट समजाय छे के समाधिदशामा झीलता चारित्रधारी मुनिने 'अनाहत-नादनो' स्पष्ट अनुभव थाय छे, अने तेना सतत अभ्यासथी अनुक्रमे सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म बनतु तेनु ध्यान, जेम जेम अत्यत निर्मल बनतु जाय, तेम तेम शातरसना दिव्य आस्वादनो वधुने वधु अनुभव थतो जाय छे, अने अते ज्यारे निराकार एवा ब्रह्मरध्रमा तेनो (अनाहतनो) लय थइ जाय छे, त्यारे साधकने शुद्धतम स्वरूपनो काइक अशे साक्षात् अनुभव थाय छे।

आत्मा जेटले अशे चारित्रमोहनो उपशम के क्षयोपशम करे छे, तेटला अशे तेने अप्रमत्तादशामा परमानदनो अनुभव थइ शके छे, ए शास्त्रसिद्ध हकीकत छे।

श्रीसिद्धचक्रयत्रना त्रीजा वलयमा लब्धिधारी मुनिओ साथे अनाहतनु आलेखन छे, ते लब्धिधारी मुनिओ, अनाहत अने चारित्र--(भाव समाधिरूप) नी एकता सूचवे छे, ते हकीकत नीचेना शास्त्रपाठोथी स्पष्ट थशे।

आत्मस्वभावमा स्थिरता एज चरित्र छे। जेम जेम स्वभावमा स्थिरता वधती जाय छे, तेम तेम गुणनी वृध्धि थाय छे। श्रीसिध्धभगवतोमा पण स्थिरतारूप चरित्र मानवामा आव्यु छे[3]।

आत्म स्वभावमा स्थिर थवु अने अन्यने स्थिर बनाववा ए भावसमाधि छे।

कोइ पण दीन दुखीने जोई अनुकम्पा उत्पन्न थवी ते द्रव्यसमाधि छे।[4]

सारणादिकना प्रयोगथी शिष्यादिक ने चारित्रधर्ममा स्थिर करवा ते भावसमाधि छे[5]। श्रीसूत्रकृतागना दशमा अध्ययनमा कह्यु छे, के जे धर्मध्यानादि वडे आत्मा मोक्षमा अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गमा स्थिर बने छे, ते धर्मध्यानदि ज समाधि छे।[6] अथवा मोक्ष के मोक्षमार्ग प्रत्ये जे धर्मवडे योग्य कराय ते धर्म समाधि छे।

---

1 घटानादो यथा प्रान्ते, प्रशाम्यन् मधुरो भवेत्।
[illegible] तथा शान्तो विभाव्यताम्॥

2 [illegible], दीर्घघटानिनादवत्।
[illegible], यस्तं वेत्ति स योगवित्॥

3 [illegible] निद्धेष्वपि इष्यते। —ज्ञानसार, तृतीय अष्टक

4 [illegible] ते कहिए द्रव्य समाधि।

5 [illegible] धरमा स्थिर करेजी, ते कहीए भाव समाधि।

6 [illegible] मोक्ष तन्मार्गं वा प्रति येनात्मा धर्मध्यानादिना स समाधि-धर्म-
[illegible]। अथवा येन धर्मेण योग्य क्रियते असौ धर्म स समाधि।

अनाहत ए धर्मध्यान रूप छे। तेना वडे आत्मा सम्यग्दर्शनात्मक स्वस्वरूपमा स्थिर बने छे, माटे ते भाव समाधि छे।

चारित्र अने समाधिनो प्राप्ति

जे साधु दर्शन, ज्ञान, चारित्र अने तपरूप भावसमाधिमा स्थित बने, ते चारित्रमा स्थित होय छे अने जे चारित्रमा स्थित रहे छे, ते समाधिमा स्थिर बने छे, एम बने परस्पर एक बीजानी पुष्टि करनारा छे[1]।

दर्शन समाधिमा स्थित साधक, जिनेश्वरना वचनोथी भाक्ति हृदयवालो होवाथी कुमतना कुतर्कोथी भ्रमित थतो नथी।

ज्ञान समाधिमां स्थित साधु जेम जेम अतिशय रसपूर्वक श्रुतनो अभ्यास करे छे, तेम तेम भावसमाधिमा अत्यत स्थिर बनतो जाय छे, सवेग अने श्रध्धानी वृध्धि थवाथी अपूर्व आनदनो अनुभव करे छे।

चारित्र ममाधिमां स्थित साधु विषयसुखनी निस्पृहताना वले पोतानी पासे काइ पण न होवा छता दिव्यसुखनो मधुर आस्वाद माणे छे।

तप समाधिमा स्थित साधु घोरतप तपवा छता तेने मनमा जरा पण खेद उत्पन्न थतो नथी, क्षुधा, तृषा आदि परिषहोनी यातनाओ पण तेने उद्वेग पमाडती नथी। एटलु नही पण ध्यान आदि अभ्यतर तपमा मस्त बनेलो ते मुनि सिध्ध भगवतोनी जेम सुख-दुखथी बाधित थतो नथी।

आ प्रमाणे चारे समाधिमा लीन बनेलो मुनि सम्यक् चारित्रना पालनमा सुस्थिर बनतो जाय छे।

द्वितीयअगमा बतावेलुं आ समाधिनु स्वरूप अनाहतना रहस्यभर्या स्वरूप ने समजवामा सहायक बने छे।

अनाहत पण भावसमाधि रूप छे

अनाहतना लयमा स्थिर बनेलो साधु चारित्रमा स्थिर बने अने चारित्रमा स्थिर बनेलो

---

१ भावसमाहि चउव्विह, दसरा नाणे तवे चरित्ते य।
चउसुवि समाहियप्पा, सम्म चरणाट्ठिओ साहू ॥१०६॥

—सूत्रकृताग अध्ययन–१० निर्युक्ति गाथा

टीका—

य सम्यक्चरणे व्यवस्थित स चतुर्विघ समाहितात्मा भवति, यो वा भावसमाविसमहितात्मा भवति स सम्यक्चरणे व्यवस्थितो द्रष्टव्य ॥

साधु अनाहतमा स्थिरता पामी शके छे। आ रीते बनेनी परस्पर व्याप्ति बताववा माटे ज श्रीसिध्धचक्र यत्रना' तृतीयवलयमा आठे दिशाओमां अनाहतनुं स्थापन चारित्रधारी विशिष्ट लब्धिसम्पन्न महर्षिना मध्यमा थयेलुं छे, एम स्पष्ट समजाय छे।

तेमज प्रथमवलयमा 'अर्हं' साथे अनाहतनुं स्थापन ए दर्शनसमाधिनु सूचक छे। एटले के 'अर्हं'ना ध्यान वडे सम्यग्दर्शन प्राप्त थाय छे। अने प्राप्त थयेल सम्यग्दर्शन निर्मल बने छे, तेथी दर्शनसमाधि सिद्ध थाय छे। सम्यग्दृष्टि आत्मा अनाहतमा स्थिर बनी शके छे।

बीजा वलयमा स्वरादि साथे अनाहतनु स्थापना ए ज्ञानसमाधिने सूचवे छे।

त्रीजा वलयमा लब्धिवत चरित्रधारी महर्षिओ साथे करवामां आवेलु अनाहतनु स्थापन ए चारित्रसमाधि अने तपसमाधिने सूचवे छे।

समाधिनो भगवद्गीता साथे समन्वय

भगवद्गीतामा कह्यु छे के—

इन्द्रिय ससर्गथी भ्रममा पडेली बुद्धि ज्यारे शास्त्रना विविध प्रकारनां वाक्यो श्रवणकरी, स्थिर थशे त्यारे ज सर्व प्रकारनी योगस्थिति साध्य थशे।

समाधिमा रहेलो योगी ज स्थितप्रज्ञ कहेवाय

ज्यारे मानवी मनमा रहेली सर्व कामनाओने तजीने आत्म समाधिवडे आत्मामाज सतुष्ट बने छे, त्यारे ते स्थितप्रज्ञ कहेवाय छे।[3]

सुख-दुःखमा पण समभाव राखनारो, राग, भय, अने क्रोध रहित मुनिनेज स्थिथप्रज्ञ कहेवामा आवे छे।[4]

सर्वविषयो प्रत्येनु ममत्व विराम पामवाथी जेने शुभाशुभ विषयो प्राप्त थवा छतां हर्ष के शोक थतो नथी, तेनी ज प्रज्ञा स्थिर बने छे।[5]

काचबानी जेम पोतानी इच्छानुसार मनुष्य ज्यारे पोतानी इन्द्रियोने विषयोमाथी खेंची ले छे, (पाछी खेंची ले छे) त्यारे तेनी बुद्धि स्थिर थइ जाणवी।[6]

---

1 [illegible] यन्. मन्त्रविमिद्धर्षिपदावलीनाम्।

2 [illegible] ते, यदा स्थास्यति निश्चला। समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यति ॥५३॥

3 [illegible] कामान्, सर्वान् पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्ट, स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

4 [illegible] विगतस्पृह। वीतरागभयक्रोध, स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

5 [illegible] प्राप्य शुभाशुभम्। नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता ॥५७॥

6 [illegible] सर्वश। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

प्रार्थनानुं हार्द

लें० श्री रिखबदासजी जैन (मद्रास)

विविध पदार्थोथी परिपूर्ण आ विश्वना विराटक्षेत्रमा पोत-पोतानी जीवनसमस्यानी पूर्तिने माटे, दरेक प्रकारनी योग्य साधन सामग्रीनी प्राप्तिने अर्थे जीव मात्र प्रवृत्तिशील नजरे पडे छे। अने विश्वना प्रत्येक पदार्थ सर्वसाधारण सपत्ति रूपहोवा छता पण केवल मानव प्राणीज ए सपत्तिने विशेषप्रकारे स्वहस्तमा लईने तेना पर पोतानु आधिपत्य भोगवी रह्यो छे।

मोटा आश्चर्यनी वात तो ए छे के मानव प्राणी सिवायना केटलाए प्राणीओना शरीर गात्रो अने अवयवो विशेष प्रचड अने शक्ति सम्पन्न होवा छता पण आनी सफलता मानव प्राणीएज केवी रीते प्राप्त करी, आवा प्रकारनी गूढ समस्या विचारक हृदयमा आदोलन जगाव्या विना रहे नही।

आना अनुसधान तेमज शोधखोलथी अनुभव थाय छे के मानव प्राणीनी पासे मनोवैज्ञानिकनु कुदरती बल छे। जेनी शक्ति ने असाधारण कहेवी काई अत्युक्ति नथी। आधुनिक भौतिक विज्ञानना प्रगति ना युगमा ध्वनि, विद्युत तेमज अणुशक्ति अथवा टेलीवीजन, राकेट तेमज राडार आदि आश्चर्यकारक शक्तिओनी शोध द्वारा प्रकाशमा लाववा मा आवी छे ते मनुश्यनी मननोशक्तिनी तुलनामा काइज हिसाबमा नथी। अर्थात् आ बधानो मानवनी मननी शक्ति सामे आपो आप पराभव सिद्ध थई रह्यो छे। कारण के आ बधी भौतिक विज्ञाननी शक्तिओनो आविर्भाव अने प्रयोग मानवनी मननी शक्तिना प्रयत्ननो परिणाम छे। एटला माटे ससारनी सर्वोपरी शक्ति मानवना मननी शक्ति छे अेम कहेवु असगत नथी। आ शक्ति ना प्रभाव थी मानव प्राणी केवल ससारना सर्व पदार्थो ऊपर प्रभुत्व मेलवी शके छे। एटलु ज नही परन्तु मनुष्य प्राणी भयानक भव अटवीना जन्ममरण रूपी जीवन ना महा सकटो माथी मुक्त थईने त्रिकालाबाध्य अविच्छिन्न आनद सागर समान लोकालोक प्रकाशक विज्ञानमय सर्वतत्र स्वतत्र शाश्वत् सिद्ध पदने प्राप्त करी शके छे। एटला माटे अमारा महान् उपकारी आर्य महर्षिओनु मतव्य छे के।

'मन एव मनुष्याणा कारण बध मोक्षयो'

एज रीते मानव जीवननुं उत्थान पतन ए बधुं मननी शक्तिना सदुपयोग अने दुरुपयोग ऊपर निर्भर रहे छे। जो के आ मननी शक्ति बधा मनुष्य प्राणीनुं स्वाभाविक वैभव छे

तो पण आना सदुपयोग अने दुरुपयोग थी थता हानि, लाभ, उत्थान, पतन पर जेटलुं गभीर मथन परिशीलन भारतवासी ओ ए कर्युं छे। तेटलु वीजा देशवासी ओ ए नथी कर्यु। एटलाज माटे आ भारत भूमि प्रज्ञा अने सत्यनी मातृ भूमि कहेवाय छे। जेम पवनना प्रकोपना वेग थी महासमुद्रनी मध्यमा होकायत्र खोटवाई गयुं होय त्यारे दिशाओना भान विना अथडाती स्टीमरनी जेवी विकट परिस्थिति थाय छे। तेवीज सम्मक् माध्य विना मननी शक्तिना विवेक रहित प्रयोगथी मानव जीवननी परिस्थति थाय छे। अर्थात् मन शक्तिनो दुरुपयोगज मानव प्रजाने अध पतननी चरम सीमा सुधी पहोचाडे छे। मानव शक्तिनो सदुपयोगज उत्थाननी पराकाष्टा ए पहोचाडे छे अेटला माटे अमारा आर्य प्रजाना महान सूत्रधारोए प्रजाना परम उत्कर्षने लक्षमा राखीने महान विवेकने विचार पूर्वक आ मनो शक्तिना सदुपयोगनो राजमार्ग बताव्यो छे अने तेना पण जप, तप, प्रायश्चित, सयम आदि प्रजाने प्रगतिना आधाररूप शिलानुं निर्माण कर्यु छे। आ राजमार्गनु प्रथम प्रवेश द्वार प्रभुनी प्रार्थना छे अने बधा धर्मावलबीओ ए आ ध्रुव सत्य कार्यनो अटल तेमज सहर्ष स्वीकार कर्यो छे। अने आ जीवननो परम आवश्यक अने प्रारभिक सिद्धान्त होवाथी आ विषय ऊपर सर्वांग सुदर प्रकाशन होवु अत्यन्त आवश्यक छे। अर्थात प्रार्थना कोनी करवी जोइए तथा केवी रीते करवी जोइए, शेने माटे करवी जोइए शामाटे करवी जोइए। ए बधा विषयोनु प्रतिपादन न करीए त्या सुघी प्रार्थनानी रसाल भूमिमा जे अगोचर बल छे। जेना सेवन थी प्रबल परमार्थ छे तेना लाभ प्रजाने यथार्थ रूपमा प्राप्त करवानो दुर्लभ थई जाय छे अने परिणाममा रेती पीलीने तेल काढवा जेवो निष्फल प्रयत्न थई जाय छे। क्यारेक मलयाचलना मलयागिरिना चदनने बदले सामान्य काष्टनी प्राप्तिनो लाभ जेवो अल्प फल आपनारो थाय छे अने क्यारेक मणिधर सर्पना मुख परथी मणि प्राप्त करवाने बदले विष फल जेवा कटुफल प्राप्त थाय छे। एटला माटे प्रार्थनानु सुदर मिमासा थी तेनु कार्य कारण भावनु यथार्थ बोध प्राप्त करीने मानव प्रजा पोतानी अपूर्व मन शक्तिने तल्लीन अने एकाग्र स्थिति थी तेना परम पवित्र प्रार्थनाने सिद्धान्तनी विवेकपूर्ण सेवा करे तो मानव प्रजाने अनुपम लाभनी प्राप्ति थाय छे। अने मानव हृदय शातिनुं तीर्थधाम बनीने विश्वना सर्व सकटो दूर करी शके छे अने आजनी समग्र पृथ्वी परनी अशातिनी ज्वालाने उपशात करी शके छे।

आजे प्रार्थनानी अपूर्व शातिनो प्रभाव आधुनिक विज्ञान पण स्वीकारवा लाग्युं छे। डॉक्टर 'एलेक गीभ करेल' जेवा ए प्रार्थनानी शक्तिनो स्वानुभव कर्यो छे। आज ध्वनि-विज्ञाननी शोध पछी वैज्ञानिक लोकोने भारतना मत्र विज्ञान तरफ काइक काइक चित्ता-कर्षण थयुं छे सभव छे के धीमे धीमे आनुं गुप्त रहस्य पण सम्यक् प्रकारे तेमने समझाय हवे अमारे प्रार्थनानी प्रवृत्तिनी साथो साथ तेना गर्भमा रहेली प्रार्थना विज्ञाननी शोध

खोल करवी पडशे। कारणके प्रार्थनानो विषय सामान्य नथी पण आ ससारनी सर्वोपरि मननी विद्युत शक्तिनो प्रयोग छे जेना द्वारा व्यक्ति अने समूह नु जीवन लोक स्थिति तेमज धर्म महासत्ताना महा विधानना अनुसरणनुं केन्द्र स्थान बनीने समस्त हित साधनना अधिकारी बनी शके छे। कहेवानो सार ए छे के जेम कोई पण धातु ऊपर कला प्रदर्शन करवानुं होय तो तेनी साथे प्रथम कोमल बनवु अत्यत जरूरी समझाय छे। त्यारेज कार्य सिद्धि थाय छे अने तेवीज रीते आत्माना दरेक गुणमा विकास साधन मा पहेला कोमलता, नम्रता, लघुता, तेमज सरलतानी आवश्यकता अनिवार्य समझाय छे अने तेनी प्राप्तिनी प्रधानता प्रार्थना पर निर्भर छे।

तित्थयरो चउनाणी, सुरमहिओ सिज्झियव्वय धुवमि।
अणिगूहियबलविरिओ, तवोविहाणमि उज्जमइ ॥१८॥

चार ज्ञान के धारण करने वाले देवो से पूजित जिसका मोक्ष निश्चित है ऐसे तीर्थंकर भगवान भी बल और वीर्य को न छिपाकर तप करने मे उद्यमशील रहते है।

• • •

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥१९॥

जहा तक वृद्धावस्था न आवे, बीमारी न बढे, इन्द्रियो की शक्ति कमजोर न हो उसके पहले धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

२३२ पार्श्वनाथ जिननामनो छंद

ले० मुनिराजश्री मनमोहनविजयजी

जिन त्रेवीसमो प्रणमी हु नमु, श्रुतदेवी मुज सहाय करजे।
पार्श्व जिननाम मुज मुखथी थुणता, कर्मना मेलने तु ज हरजे ॥१॥
तज देवी श्रुत जन्म जिन मुखथी, मयूर हस वाहन तुज साचु ।
वीणा पुस्तक लहे मालास्फटिक ग्रहे, तुज स्थान मुज हृदये ज जाचु ॥२॥
गुरू मनोहर नमु तेहने हु गमु, जो होय भक्ति गुरु प्रति भारी ।
पार्श्वनाम थुणवा अर्पजे मुजने, सकल कर्म छेदक शक्ति भारी ॥३॥
कक्का अक्षर ग्रही नाम जिननु लई, पार्श्वजिनराज मुज हृदय खोलु ।
प्रणमु हु तुजने आप तु मुजने, शिव चितामणी रत्न अमोलु ॥४॥
कलिकु ड कलोल करहेडा कल्पद्रुम, करेडा कलरा कापेडा नमे ।
कल्याण कामीक केली प्रणमु सदा, केशरीया कोकाए मुज चित्तरमे ॥५॥
ककण कवोईया कसारी तुज नामने, जे स्तवे भविजन हृदय खोली ।
कुर्कुटेश्वर कालियुगा जे प्रणमे सदा, कडेरा भरे अखड झोली ॥६॥
करकडु कुलपाक खामणा जिननाम थी, जेहनु चित्त प्रसन्न रहेतु ।
खोयामडन गलीया ने गाल्लीया, नाम लेता सदा कष्ट सहेतु ॥७॥
गाडरीया गोगो गीरुआ तुज नाम छे, गोहील गोमेह जगप्रसिद्ध गोडी ।
गिरि गगाणी गभीरा जे स्तवे, विघ्न जाय सरवे हाथ जोडी ॥८॥
गवालसफ गुप्त घृत कल्लोल जिनराज तु, तुजनाम जपता मुज हृदय रीझे ।
घीया चेलन चारुप मडनने, प्रणमे तेहने वछित दीजे ॥९॥
चोरवाडी चपा चद्र चितामणी, चचुचला चल वेसरा नाम जपता ।
छाया जगवल्लभ जसोधरा जाडेवा, जेहना नामथी कर्म खपता ॥१०॥
जीरावल्ली जोरावली जीलणा पार्श्वने, जे भवी शुद्ध दिले ज गाशे ।
जीरा जोरवाडी जोटीगा जे नमे, जोवाणा नामथी सवी दुःख नाशे ॥११॥
टवण टवरू टावणा टीटोइय., डोहला डोकरिया नाम स्मरता ।
दोमला दवारा दादा ने दावणी, जपता धरणेन्द्र विघ्न हरता ॥१२॥

देवाधि देव दोलती वली दुधीया, त्रिभुवन भानु तीवरी पास रागे ।
तारसल्ला नवनिधि नवलखा जे नमे, पार्श्व स्मरता सविदोष भागे ॥१३॥

नवखडा नवसारी पास प्रणमु सदा, नव पल्लव मगलपूर वसता ।
मुज बेनडी साथ मुजने जिननामथी, कर्म काटन तप सहाय करता ॥१४॥

नील विलास नलीन जिननामने नवपलीत, नव फणा नाग फणा नाम गावे ।
नागकु डा नागीद्रा नारीगा नामथी, विष धरना विष दूर जावे ॥१५॥

नाकोडा नाकुँडा नीलभ्भग पासने, नागपुरा नेवगगा स्मरता ।
नीलकु डा नेडा परोली पासने, पारासली परलवीया शरणे धरता ॥१६॥

पल्लास पोसीना पुष्करावर्तने, पचासरा प्रसमीया पास ध्यावे ।
पोसलीया परोकला फलोधी फणीधरा, फलविहारे व्यतरादि जावे ॥१७॥

बलेवा बदरी केदार बीलीपुरा, बदरीला बाह्डमेरा बही भारी ।
वरमेश्वर बीबडा पास प्रणमे सदा, रहे सदा तस स्थिति सारी ॥१८॥

भटेवा भाभा भीलडीया पासतुं, भीड भजन भय हर कहावे ।
भुवड भिन्नमाल भीलखोडा, भद्रेश्वर भोयण भोयडाथी भयदूर जावे ॥१९॥

मनवाछीत मनरजित कार्य तुं पूरतो, मन्त्राधिराज महिमा ज मोटो ।
मनमोहन मनसीया ने मनोरथ, देवमा तुजसमनहि जोटो ॥२०॥

माडवा मनरजन महिमा पुरा, मक्षीजी माणेक महेमावादी ।
महादेवा मुछाला मुहरी मुंडेवा, मुक्तागिरि मेरू जपता ज गादी ॥२१॥

मोहन मोढेरा मडण मडोवरा, मुलताना मुजपुरा मँडलीक छाजे ।
राणकपुरा रावण रुडेवा नामथी, देव दुंदुभी चौदिश गाजे ॥२२॥

लोढण लोडेवा लोटाणा सवी जिन, वरकाणा वरसी दान देता ।
वली वही वाडो ने विघ्नहरा, दान लेनार भवि शिव लेता ॥२३॥

विरावल विजय चिंतामणी वेलुवली, वजेबा विजुला विश्वगज समीना ।
सहस्रफणा सहस्रकूट सप्त फणाने स्मरो, समेरीया शामलाने सलूना ॥२४॥

श्रीफल श्रीगुप्त श्रीसद तुज नामथी, श्रीरहे स्थिर निज घर विशे ।
सीरोडीया सुधदती स्फुलीग जपता सदा, मस्तजन सदा जगमा ज दिशे ॥२५॥

सुकोशल सुरजमडण सुलताना शुभ नाम छे, स्मरण करो सौ शुभभावे ।
सुखसागर सेरीसरा सोगटीया, सावलाथी सवि दुख जावे ॥२६॥

समीनाग सुरसरा शखलपुर पासजी, सोम चिंतामणी शखेश्वर साचो ।
शकर शभु शाकला सोमनाथ, सोरठ स्थभने शिव जाचो ॥२७॥
सेसली हरीकखी होकार हलधरा, पास जगमा तुज नाम मोटुं ।
अभीझरा अजारा अलोकी अजाहरा, स्मरण करता न रहे छोटु ॥२८॥
अवला आधार अगुठीया तुज नामथी, निराधारना आधार तु छो ।
अतरीक अवजा एवती पास तुं, वछित फल दातार तुं छो ॥२९॥
ओकार अही छत्रा ने इसद् पच, देव जगमां तुज सम न जोतो ।
इमद्परा उमरवाडी उपसर्गहर, जपता दुष्ट ग्रह जाय रोतो ॥३०॥
उन्हावला ने वली कुडलपुरे वसे, कुडलपुर पासना जेह रागी ।
दोय सत बावीस (२२२) नाम प्रणमे सदा, कर्म जाय तस दूर भागी ॥३१॥
पार्श्वजिन देवने मनोहर गुरुथकी, श्रुतदेवीए करी सहाय भारी ।
मनमोहन स्तवे पार्श्वजिननामने, इच्छती चौगतिथी मुक्ति बारी ॥३२॥
वे सहस्त्र एकादश सालनी, ज्येष्ठ कृष्ण शुभ बीज दिवसे ।
पास तुज नाम श्रुणता तुही प्रभु, वास करजे मुज हृदय विशे ॥३३॥
शुभ भावथी हु नम्यो छद मुजने, गम्यो भूलचूक सुधारी जोजो ।
धरणेन्द्र पद्मावती विघ्न तेहता हरे, मुक्तिपूरीमा वास होजो ॥३४॥

जो देइ कणयकोडि, अहवा कारेई कणयजिणभवण ।
तस्स न तत्तिय पुण्ण, जत्तिय बमवयधिरिए ॥३॥

कोई एक मनुष्य को करोडो रुपये दे, कोई सोने का जिन मंदिर बनावे उसको इतना फल नहीं होता जितना ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले को होता है ।

साधना मार्ग में पथ्यापथ्य

ले० पू० मुनिराज श्री कुंदकुंदविजयजी महाराज

[पूज्य मुनिराज श्री कुन्दकुन्दविजयजी म० श्री ने नमस्कार महामत्र की आराधना के लिये अत्यन्त उपयोगी अनेक विषयो से भरपूर **'नमस्कार चितामरिग'** नाम की ३०० पृष्ठ की एक पुस्तक गुजराती भाषा मे लिखी है। उससे हिन्दी रूपातर कराके साधको के लिये आवश्यक "साधना मार्ग मे पथ्यापथ्य" नाम के निबन्ध इस ग्रन्थ मे प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक]

जीवन मे श्रीनमस्कार महामत्र की साधना करना अहकारादि आत्मिक रोगो को टालने की एक औषध है। हरेक औषध के पथ्य और अपथ्य दोनो होते हैं। पथ्य पालन से औषध शीघ्र और अनेकश गुणकारी बनती है। इससे विपरीत अपथ्य के सेवन से गुणकारी तो नही होती परन्तु कई बार उलटा असर कर जाती है। इसलिये पथ्यापथ्य का विवेक कर अपथ्य के सेवन से दूर रहकर पथ्य पालन मे साधक जितना अधिक तत्पर बनता है, उतना ही वह साधना के मार्ग मे अधिक प्रगति कर सकता है। पथ्य मे तत्पर बनना यह प्रत्येक विवेकी साधक का परम कर्त्तव्य है।

बाहर के विघ्न

साधक को दो प्रकार के विघ्न हैं। एक बाहर के और दूसरे अन्दर के। बाहर के विघ्नो मे मुख्य विघ्न कुससर्ग है। कुससर्ग अर्थात् बुरे आदमियो की सगति, खराब पुस्तको का पढना, बुरी बातो को देखना, बुरे वचन बोलना, बुरे सगीत सुनना और बुरे विचारो का लाना।

वैराग्य को, शात रस को और सात्त्विक रस को पुष्ट करने वाली वीतराग पुरुषो की मुद्राए, उनके वचन, उनकी अद्भुत कथाए और उत्तम सगीतादि जिस तरह उत्तम सात्त्विक भावो को जागृत करती हैं, उसी तरह बुरे आलबनो से बुरा असर होता है। इस सम्बन्ध मे योग शास्त्र के नवे प्रकाश मे बताया गया नीचे का मतव्य खास उपयोगी है—

'नासद्ध्यानानि सेव्यानि, कौतुकेनापि किन्त्विह।
स्वनाशायैव जायन्ते, सेव्यमानानि तानि यत्॥'

कुतूहलवृत्ति से या परीक्षा करने के बहाने जैसे 'मैं परीक्षा करके देखू कि इससे मेरे

पर क्या असर होता है ?' अथवा 'मुझ पर कोई असर नही होता' इस तरह कुतूहलवृत्ति से भी असद् आलबन का परिचय नही करना क्योकि इससे स्वय का नाश ही होता है।

मनुष्य का मन पानी के समान है। वह जिसके ससर्ग मे आता है उसके माफिक बन जाता है। बुरे ससर्ग से बुरा बनता है और जब अरिहतादि पचपरमेष्ठियो के ससर्ग मे आता है तब उनके जैसा बनता है। इस प्रकार वस्तुस्थिति होने से, मन को बुरे ससर्ग से बचाना चाहिए और अच्छे ससर्ग मे लगाना चाहिए।

दुराचारी मनुष्य अधिकाश मे बुरे ससर्ग से ही दुराचारी बनता है।

बडे-बडे अपराधो की उत्पत्ति अनुक्रम से इस प्रकार होती है —काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रश, स्मृतिभ्रश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पापाचरण उत्पन्न होता है। परन्तु इन कामादि का भी मूल कारण तो बुरा ससर्ग ही है।

काम-क्रोधादि दुर्गुण तथाविध कर्मोदय से हरेक के अन्दर होते है। परन्तु पवन जैसे अग्नि को प्रज्वलित करता है वैसे कुससर्ग काम-क्रोधादि को उत्तेजित करता है।

बुरी बाते सुनना, बुरी वस्तुएँ देखना, बुरे गीत गाना, अपशब्द बोलना, बुरी चाल चलना, बुरी तरह बैठना, बुरे सकल्प-विकल्प करना आदि भीतर के छिपे दोषो को और विघ्नो की वृद्धि करते हैं। त्रिभुवनपति श्रीतीर्थकर परमात्मा भगवान श्रीमहावीरदेव आदि महापुरुषो को भी भीतर के शत्रुओ के साथ घोर युद्ध करना पडा था, तो फिर दूसरो का क्या जो उनके पैरो की रज की भी बराबरी नही कर सकते, वे खराब ससर्ग मे रहकर दोनो को जीतने की बडाई करे यह कैसे हो सकता है ?

इसलिये बुरे संसर्ग का त्याग कर अच्छे ससर्ग मे रहना, साधना मार्ग की सबसे पहली शर्त है।

सदाचारी पुरुषो के बीच रहने मात्र से अनेक पापात्माओ का भी उद्धार हुआ है। साधना मार्ग मे यह उत्तम प्रकार का पथ्य का पालन अति आवश्यक है और कुससर्ग मे रहना सबसे बडा कुपथ्य है जो त्याग करने योग्य है। कारण कि बाहर का सबसे बडा विघ्न यही है।

आन्तरिक विघ्न

१ काम—

आतरिक विघ्नो मे काम सबसे पहला विघ्न है। काम वासना अनेक दोषो की उत्पत्ति का स्थान है। शिकार, जुआ सुरापान, परनिन्दा, बुरी स्त्रियो का सग, हलके स्तर के गीत, नृत्य आदि का शौक और अयोग्य स्थानो मे घूमना फिरना—ये सब बुरी आदते कामी पुरुषों की वृत्ति मे होती है।

उत्तम सदाचारी पुरुषो के मध्य विनम्र भाव से रहना तथा ब्रह्मचर्य की नौ बाडो का पालन करना, यह कामवासना पर अधिकार करने का सरल उपाय है। तथा निम्न विचारो का परिशीलन भी कामवासना पर विजय प्राप्त करने मे परम सहायक है।

(१) सर्व विश्व के प्रति मैत्रीभाव रखना। स्त्री जाति के प्रति मातृभाव रखना। माता सम्बन्धी विचार पवित्रता कायम रखने के लिये प्रबल प्रेरणादायक है।

(२) आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिए अखण्ड ब्रह्मचर्य की अति आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य यह उत्तम तप है।

(३) शरीर यह आत्मा का मंदिर है, इसलिए उसे पवित्र रखना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन ही शरीर को पवित्र रखने का उपाय है।

(४) अधिक मादक भोजन कामोत्तेजक है। कठोर शय्या और जल्दी शयन यह ब्रह्मचर्य के लिये सहायक हैं। उपवास और उणोदरी भी इसमे सहायक है। आसन, मुद्रा और प्राणायाम बुरे विचारो को नही आने देते हैं।

(५) राजजनक पदार्थों पर प्रेम वासना मानी जाती है और इसी प्रेम को वीतराग की तरफ लगाना शुभ भावना मानी जाती है। वासना सब दुर्गुणो की जड है और शुभ-भावना सब गुणो की जननी है। इसलिए अयोग्य स्थानो से प्रेम को हटाकर उसे प्रभु की तरफ लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके बिना भयकर दोषो को जीतना अशक्य है। इस प्रकार प्रेम का रूपातर करना यह काम को जीतने का उत्तम से उत्तम उपाय है और इससे आत्मिक आनन्द का भी अनुभव होता है। आत्मिक आनन्द का अनुभव हुए बिना विषय के आनन्द की वृत्ति पूरी तरह नष्ट नहीं होती।

(६) गृहस्थ साधको को भी जहाँ तक हो सके तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और यदि इतना न बन सके तो सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य की भावना रख, कम से कम स्व स्त्री मे सतुष्ट रहकर पर स्त्री की अभिलाषा का त्याग तो करना ही चाहिए।

२. क्रोध—

आतरिक विघ्नो मे क्रोध भी एक भयकर कोटि का विघ्न है। क्रोध को जीतने का एक उपाय क्रोध से होती अनर्थो की विचारणा करना है। बारबार अनुप्रेक्षापूर्वक विचारणा करने से धीरेधीरे क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह विचारणा निम्न रूप से की जा सकती है :—

(१) कोई भी दुर्गुण अकेला नही होता, उसके पीछे दूसरे अनेक दुर्गुण होते हैं। इसलिये एक दुर्गुण को जीतने से उसके साथी दूसरे दुर्गुण भी बिना प्रयत्न के जीत लिए जाते हैं।

(२) क्रोध के साथ पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, कठोर वचन, असत्य आदि अनेक

दोष रहते हैं। इसलिए एक क्रोध को जीतने से दूसरे सब दोष भी निर्बल हो जाते हैं।

(३) क्रोध से चेहरा डरावना होता है, आंखे फूलकर लाल हो जाती हैं होठ फडकते हैं श्वासोच्छ्वास जोर से चलती है, असमानवीय दृश्य होता है और आकृति उग्र होती है। क्रोध से आपस की प्रीति का नाश होता है शरीर की कान्ति का नाश होता है, खून का संचार तेजी से होने लगता है, ज्ञानतन्तु निर्बल हो जाते हैं, और कमजोरी बढ जाती है। फलत. वाई हिस्टिरिया, पागलपन, आदि क्रोध से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। क्रोध से पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है और किसी समय क्रोध से आत्महत्या या अन्य रीति से मृत्यु भी हो जाती है। इस तरह क्रोध से होने वाले अनर्थों की विचारणा करनी चाहिये।

(४) जब क्रोध आए तब क्रोधजनक वस्तु या व्यक्ति से दूर हो जाना। क्रोधावेश के समय मौन रहना और क्रोध दूर होने पर ही दूसरा काम करना। क्रोध दूर होने पर गलती को स्वीकार करना और सामनेवाले व्यक्ति से क्षमा माँगना। क्रोध आए तब सौ बार इष्टदेव का नाम लेना अथवा सौ बार इष्ट मन्त्र का जाप करना। इतने समय में प्राय. क्रोध का आवेग उतर जाता है। अपमान सहन करने की आदत डालना। नुकसान अपमान करने वाले का होता है, सहन करनेवाले का नहीं होता। जो मनुष्य क्षमा देना सीखता है उसे भव भ्रमण नहीं करना पड़ता और जो मनुष्य सहन करना सीखता है उसे बदले में मोक्ष का अनन्त सुख मिलता है। इस तरह विचार करने से भी क्रोध पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है।

(५) नीचे की विचारणा भी क्रोध पर विजय प्राप्त करने में उपयोगी है :—

(अ) अंत में विजय सत्य की ही होती है असत्य की नहीं।

(ब) क्रोध की अपेक्षा प्राय स्नेहपूर्ण नम्र बर्ताव से सोचा काम अच्छी तरह हो सकता है।

(क) जिस तरह जलते तिनकों से सागर का पानी गर्म नहीं हो सकता उसी तरह क्रोध से कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो सकता।

(ख) नम्रता से कोई बात असाध्य नहीं। यदि किसी समय क्रोध करने का अवसर आ भी जाए तब भी महापुरुषों की तरह अवास्तविक क्रोध द्वारा मात्र बाहर से क्रोध का दिखावा करना, परन्तु क्रोध के आधीन नहीं होना।

(ग) सतत इष्ट मंत्र के स्मरण से भी क्रोध का नाश होता है।

३. लोभ—

आन्तरिक विघ्नों में काम, क्रोध के बाद लोभ का नाम आता है। बिना आवश्यकता

के सग्रह करना और दूसरो को आवश्यकता होने पर भी न देना, ये लोभ के लक्षण हैं। लोभ और तृष्णा ये दोनो एक ही कुमति मे से उत्पन्न हुए भाई-बहिन हैं। आकाश की तरह तृष्णा का अत नही, उसी तरह लोभ का खड्डा कभी नही भरता। स्वयभूरमण समुद्र को कदाचित दोनो हाथो से तैर कर पार किया जा सकता है परन्तु देव-गुरु की कृपा के बिना लोभ सागर को तैर कर पार नही किया जा सकता। लोभवृत्ति पर विजय प्राप्त करने के लिए एकान्त मे बैठ कर स्थिर चित्त से निम्न प्रकार विचारणा करनी चाहिये।

मैं किस तरह का लोभ रखता हूँ ? उसकी प्राप्ति से मिलने वाला सुख कितने समय तक रहेगा ? अन्त मे उससे क्या लाभ होने वाला है ? लोभ का मूल अज्ञान है। भोग की अस्थिरता तथा वस्तु की अनित्यता का ज्ञान होते ही लोभ भाग जाता है।

पर्वत से गिरती जल धारा, ओस का बिन्दु, शरद ऋतु के बादल, पानी के बुदबुदे, मृग तृष्णा, कुपथ्य अन्न या खारा पानी आदि उपमाओ से युक्त भोग अनित्य, असार, कष्टदायक और अतृप्तिकर है। आज का भोगा हुआ भोग कल स्मृति और स्वप्न-रूप बन जाता है। कामनाएँ मनुष्य की कट्टर शत्रु हैं। तृष्णाओ की तृप्ति के लिये प्रयत्न करना जलती आग मे घी की आहुति देने के समान है। एक मनुष्य की कामना को भी ससार के सब पदार्थ मिल कर पूरा नही कर सकते। लोभ मानसिक रोग है। असाध्य व्याधि है। सतोष और सयम ये दोनो इसके लिए रामबाण उपाय हैं। छोटी से छोटी कामना को भी सयम से दबाने का प्रयत्न करना ही कामनाओ को जीतने का मन्त्र है।

इसके सिवा यह भी विचारना चाहिए कि अपना जिसके बिना काम नही चलता, ऐसी कितनी वस्तुओ की दुनिया मे अपने को वास्तविक जरूरत है। मध्यस्थतापूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि आवश्यकताएँ बहुत कम हैं, प्राप्त वस्तुएँ भी जरूरत से अधिक हैं। सतोषी के लिए पृथ्वी पलग है, हाथ सहारा है, आकाश छत्र है, चद्रमा दीपक है, दिशाओ का पवन पखा है, विराग पत्नी है और न्यायपूर्वक प्रवृत्ति से भाग्यानुसार सहज ही जो मिल जाए वह भोजन है। वास्तव मे मनुष्य को बहुत ही थोडे पदार्थो की और वह भी अल्प समय के लिए ही जरूरत है। इस प्रकार विचार करने से लोभवृत्ति कम होती है।

४ मोह—

मोह का कारण अविद्या है। अपनी न हो उस वस्तु को अपनी मानना उसका नाम मोह है। मनुष्य को शरीर आदि मे अपनेपन की बुद्धि होती है उसका कारण मोह है। शरीर अपना हो तो एक भी सफेद बाल को काला क्यो नही किया जा सकता ? घर अपना हो तो इच्छा हो तब तक उसमे क्यो नही रहा जा सकता ?

मोह का माहात्म्य कैसा अगम्य है कि जो देखती आख मे धूल डालकर खराब से खराब और गदे से गदे पदार्थों को भी सुन्दर और आकर्षक तरीके मे दिखाता है।

मोह यानी अज्ञान। जैसे सूर्य से अधकार दूर होता है, वैसे ज्ञान रूपी सूर्य से ही अज्ञान अधकार दूर होता है। यह ज्ञान अर्थात् मैं कौन हूँ ? और मेरा क्या है ? यह समझने लायक है। जिसे यह बराबर समझ मे आ जाता है वह बाहर की किसी भी वस्तु मे लिप्त नही होता। विवेकी मनुष्य प्रारब्ध-कर्म के अनुसार उचित कार्य करता है, परन्तु उसमे अपने कर्तृत्व का झूठा अभिमान नही करता, वह अपनी विवेक बुद्धि से पूरी तरह मानता है कि अधर्म और अनीति ये ही मनुष्य जाति के शत्रु है, नही कि अमुक मनुष्य या वस्तु। इससे वह अधर्म और अनीति वाले आचरण से हमेशा बचता रहता है।

सिर्फ अपने अकेले के ही सुख और स्वार्थवृत्ति से मोह की अत्यत वृद्धि होती है। इसलिए मोह को कम करने के लिए विवेकी आत्मा नि स्वार्थ प्रेम के क्षेत्र का विस्तार करता है और क्रमश प्रेम को विश्वव्यापी बनाता है। वह अपने सुख के बजाय प्राणीमात्र के सुख को अधिक चाहता है। यही भावना मोह नाश के लिए अन्तिम और अति उग्र शस्त्र है। इससे मोह का ऐसा समूल नाश होता है कि वह फिर कभी वापिस आकर खडा नही रह सकता। स्वार्थ का त्याग कर सम्पूर्ण विश्व के तमाम जीवो तक मैत्री भावना का विस्तार करने से आत्मा सर्वथा दोष रहित वीरागता भी प्राप्त कर सकता है।

५ **मद**—

मद यानी प्राप्त वस्तु का गर्व। आत्म निरीक्षण करने से मद या मिथ्याभिमान नही टिक सकता।

जिसे विद्या का गर्व हो उसे विचारना चाहिए कि तू अपने स्वय के विषय मे कितना जानता है ? देह के अवयवो, इद्रियो के कार्य खून के बिदु और रजकण शरीर की रचना आदि सम्बन्धी कितना ज्ञान है ? यदि कदाचित् है तब भी तूने अपने प्रयत्न से यह ज्ञान प्राप्त किया या दूसरो की सहायता से ? रेती का कण किसका बनता है ? लोह चुम्बक लोहे को किससे आकर्षित करता है ? आदि पूछने से मद दूर हो जायगा। वक्तृत्व शक्ति का गर्व हो तो विचारना चाहिये कि तेरी यह वक्तृत्व शक्ति कहाँ से आई है ? क्या यह हमेशा एक समान रहने वाली है ? इसमे तेरा कितना हिस्सा है ? और सुनने वालो का कितना हिस्सा है ? भूतकाल के वक्ताओ के वक्तव्य महान् ग्रथकारो के रचित ग्रथ और गुरुओ के आशीर्वाद आदि अनेको का इसमे कितना हिस्सा है ? माँगी हुई वस्तुओ का गर्व कैसे किया जा सकता है ? गर्व करते समय यह भी विचार करना है कि महान् कवियो, गणित शास्त्रियो, सत्ताधीशो, योद्धाओ या कलाकारो का गर्व कितने समय तक ठहरता

है ? अपनी स्वय की शक्तियो पर आपका कितना अधिकार है ? शरीर, रोग, जरा और मृत्यु पर कितना काबू है ? शक्तियाँ, धारणाएँ और आशाएँ कितनी क्षणभगुर हैं ? छोटी से छोटी शक्ति भी मनुष्य को बिना दूसरो की मदद के नही मिल सकती अर्थात् यह शक्ति कुदरत की है ? चैतन्य की सहायता बिना एक तिनका भी नही मुड सकता। सर्व शक्तियाँ चैतन्य पर अवलबित हैं। नेत्रो का तेज, मुँह के वचन और मन का मन भी एक आत्मा ही है। बाकी सब माँगे हुए दागीने के समान हैं, फिर भी उसे अपना मानना यह मूर्खता है। ज्ञान, डहापन, धर्म या नीति वगैरह हो तब भी वे अधिकाश मे दूसरो की कृपा से मिले हुए हैं और इसलिये वे दूसरो के हैं। उनका गर्व मनुष्य किस तरह कर सकता है ?

मद नाश के लिये निम्न विचारणा और उपाय भी उपयोगी हैं—

(१) अपने दोषो की एक सूची बनाओ और उसे प्रति दिन लक्ष्यपूर्वक देखते रहो।

(२) मद से उत्पन्न होने वाले भयकर दोषो का विचार करो। मद से उत्पन्न होने वाले दोष ये हैं—दूसरे मनुष्यो का तिरस्कार, दूसरो को दु ख देने की वृत्ति, दोषदृष्टि, असत्य वचन, क्रोध, चिडचिडापन, ईर्ष्या, जुल्म, परेशान करने की वृत्ति, कटु भाषण, बुद्धिनाश-उद्वेग इत्यादि।

(३) जब प्रभु हृदय मे आते हैं तब 'अह' बाहर जाता हे और 'अह' रूपी मद हृदय मे आता है तब प्रभु बाहर निकल जाते हैं। अग्नि और जल दोनो जिस तरह एक जगह नही रह सकते उसी तरह 'अह' और 'अर्ह' (प्रभु) एक स्थान पर नही रह सकते। दोनो के लिए एक स्थान नही, दोनो मे से एक को तो बाहर निकलना ही पडता है।

(४) कोई भी मनुष्य क्या कभी यह कह सकता है कि मैंने मेरा जीवन बिल्कुल बिना भूल के बिताया है ?

(५) जिन वस्तुओ का गर्व होता है, वे पदार्थ मृत्यु के बाद दूसरो के हो जाते हैं। कभी-कभी तो मृत्यु के पहले ही ऐसा हो जाता है।

(६) हरेक मनुष्य किसी न किसी विपय मे तो अपने से ऊपर होता ही हे। ये अथवा इसी प्रकार के अन्य विचारो से मद ज्वर दूर होता है।

६ ईर्ष्या—

काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की तरह ईर्ष्या भी अदर का एक महान् शत्रु है। ईर्ष्या दीमक की तरह है। यह जिसे लागू पड जाती है उसका धीरे धीरे नाश करके ही चुप होती है।

ईर्ष्या को जीतने का सच्चा उपाय प्रेम है। जिन पर प्रेम होता है, उन पर ईर्ष्या कभी नही होती। जिसके हृदय मे ईर्ष्या होती है उसकी जिव्हा मे निन्दा होती ही है। इसलिये निन्दा छोडने का उपाय भी हृदय मे से ईर्ष्या को तिलाजलि देकर उसके स्थान पर प्रेम प्रकट करना है।

हृदय से ईर्ष्या दोष को दूर करने के लिए अपने दोपो को और दूसरो की अच्छी बातो को देखते रहना। खराब से खराब मनुष्य मे भी गुण ढूढने की वृत्ति रखना। सच्चे दिल से जो अपनी पवित्रता और शुद्ध चरित्र चाहता है, उसे जहाँ से भी बने वहाँ से सद्‌गुण ढूढ २ कर अपने जीवन मे उतारना चाहिए। इससे गुणो की स्पर्द्धा होती है, परन्तु ईर्ष्या नही होती। गुणो की स्पर्द्धा से उन्नति होती है और दोप दृष्टि से अवनति होती है।

ईर्ष्याविान दयापात्र होता है। जिन वस्तुओ को देखने से दूसरो को आनन्द होता है, उन वस्तुओ को देखकर उसे अत्यन्त उद्वेग होता है। उसके मन अमृत भी विप जैसा, स्वर्ग नरक जैसा, और पूर्णिमा अमावस्या जैसी लगती है। ईर्ष्याविान जैसा दूसरा कोई अभागा नही है। विष का असर जैसा शरीर पर होता है, वैसा या उससे कई गुणा अधिक असर ईर्ष्या का मन पर होता है। ईर्ष्यालु का मन बेचैन रहता है, शरीर स्वस्थ नही रहता, मन खाली होकर निर्बल हो जाता है, किसी काम को करने की इच्छा नही होती, उसका आनन्द समाप्त हो जाता है। बहुत से क्लेशो तथा मृत्यु का मूल ईर्ष्या है। ईर्ष्या ने क्लेश कराकर कितनी ही प्रजाओ और व्यक्तिओ का नाश कराया है।

जिस मनुष्य मे गुण नही होते वही प्राय दूसरे के गुणो की ईर्ष्या करता है। क्योकि मनुष्य का मन या तो अपने गुणो मे अथवा दूसरो के दुर्गुणो मे रस लेता है। जिसके अपने मे गुण नही होते वे अधिकाश मे दूसरो के दुर्गुणो को देखा करते हैं। जो निर्बल होता है वही दूसरे के बल की ईर्ष्या किया करता है। दूसरो के गुणो को सपादन करने की शक्ति जिसमे नही होती, वही मनुष्य दूसरो के गुणो को उतार कर उसकी बराबरी करने का प्रयत्न करता है। तुच्छ और निर्बल अत.करण मे ही ईर्ष्या का निवास होता है।

हरेक मनुष्य किसी न किसी काम मे ख्याति प्राप्त करने लायक होता है। क्योकि सुख, वैभव, कीर्ति और ख्याति प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। वे हरेक को अलग अलग मिले होते हैं और उसके द्वारा उन्हे ख्याति मिलती है। उनसे ईर्ष्या करना किसी तरह ठीक नही। सब अपने अपने प्रारब्ध और पुरुषार्थ के अनुसार कीर्ति सपादन करते हैं। उनकी ईर्ष्या करना यह निरी अज्ञानता है। ईर्ष्या करने को किसी को कुछ नही मिलता। ईर्ष्या के बजाय गुण दृष्टि रखने से हरेक मनुष्य से और प्रसग से कुछ न कुछ सद्‌गुण प्राप्त किया जा सकता है।

महामत्र के साधको के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या ये छ वस्तुएँ अपथ्य है, दोषो की खान हैं और इसलिए ये त्याग करने लायक हैं। यहाँ सक्षेप मे उनका स्वरूप बताया गया हे। उनके पुन पुन वाचन, मनन और परिशीलन द्वारा हम इन दोषो की पकड मे से क्रमश मुक्त होने का बल प्राप्त करने मे भाग्यशाली बने।

(हिन्दी अनुवादक **श्री चान्दमलजी सीपाणी**)

तीर्थयात्रा का महत्व

ले० पू० मुनिराज श्री कलापूर्णविजयजी महाराज, फलोदी–पोकरण (राज)

अनन्त उपकारी श्री तीर्थंकर परमात्मा समग्र जीवो को जिनशासन के रसिक बनाने के लिए तीर्थ की स्थापना करते हैं।

'जिससे तरा जाये उसे तीर्थ कहते है' ऐसे तीर्थ के मुख्य दो प्रकार हैं :

(१) जगमतीर्थ —साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ को कहते हैं।

(२) स्थावरतीर्थ —जो एक स्थान पर स्थिर रहते हैं, जैसे—शत्रुञ्जय, गिरनार, अष्टापद, आबू आदि।

ऐसे स्थावर तीर्थो की महिमा, शास्त्रो मे अति विस्तृत रूप से बताई गई है। तीर्थ-यात्रा से कैसे श्रेष्ठ लाभ प्राप्त होते हैं, जरा देखिए—

- परम पवित्र तीर्थ स्थानो मे जाने से चित्त मे शुभ अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं। तीर्थ की पवित्रता जीवन को पवित्र बनाती है।
- जहाँ आकर अनेक भक्त लोग भगवद्गुण की स्तुति के मधुर भक्ति गीत गाते हैं जिसे सुनते ही अपना दिल भक्ति रस से भर जाता है और भगवद्भक्ति मे एकतान बना रहता है।
- परमकृपालु परमात्मा की प्रशात-मनोहर मूर्ति के दर्शन मात्र से ही आत्मा अपनी मानसिक व शारीरिक व्यथाओ-पीडाओ को भूल कर कोई अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।
- तीर्थंकर प्रभु की कल्याणक भूमियो की स्पर्शना से आत्मा मे भावोल्लास की सुन्दर लहरिये उठती हैं जो चचलचित्तवृत्तियो को स्थिर और शान्त बनाती हैं।

- तीर्थभूमि की पवित्र रजकणो के स्पर्श से आत्मा, कर्म रजकणों से रहित बनता है।
- तीर्थस्थान मे परिभ्रमण करने वाले का भवभ्रमण भी मिट जाता है।
- तीर्थस्थान मे अपनी अस्थिर सपत्ति का सद्व्यय करने से स्थिर और अविनाशी गुणसपत्ति की प्राप्ति होती है।
- तीर्थपति परमात्मा की पूजा द्वारा पूजक भी पूज्यपदवी को प्राप्त करता है।

इस तरह तीर्थयात्रा द्वारा आत्मा, अनत पुण्य प्राप्ति और अखूट आनन्द का अनुभव करता है।

स्थावरतीर्थ की महत्ता वतलाने के लिये खुद तीर्थंकर परमात्मा भी तीर्थभूमि मे आते हैं, जैसे—प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव भगवान, नव्वाणुपूर्व (८४ लाख से ८४ लाख का गुणाकार करने से जो सख्या आती है उतने वर्ष) वार शत्रुञ्जयतीर्थ पर पधारे थे और अपना निर्वाण समय को नजदीक जानकर अष्टापद तीर्थ पर जाकर अनशन करके मोक्ष प्राप्त किया।

अजितनाथ भगवान आदि २० तीर्थंकर परमात्मा सम्मेतशिखर तीर्थ पर अनशन कर के मोक्ष पधारे थे।

श्री नेमीनाथ भगवान पुन पुन गिरनार तीर्थ पर आए थे और वही निर्वाण को प्राप्त हुए, श्री वासु पूज्य स्वामी भगवान चपापुरी मे और श्री महावीर भगवान पावापुरी तीर्थ मे अनशन करके सिद्धपद को प्राप्त हुए।

श्री महावीर परमात्मा अष्टापद तीर्थ का महत्व वताते हुए गौतम स्वामी को कहते हैं—हे गौतम, जो कोई भी अपनी लब्धि (शक्ति) से अष्टापद तीर्थ की भावपूर्वक यात्रा करता है वह अवश्य इसी जन्म मे मोक्ष पाता है। भगवान का यह उपदेश सुन कर गौतम स्वामी' अपनी तपोलब्धि के प्रभाव से—सूर्य किरणो का आलवन लेकर अष्टापदतीर्थ की यात्रा करके परम प्रमोद को प्राप्त हुए। इस तरह श्री तीर्थंकर परमात्मा तथा गणधर-भगवान् भी तीर्थयात्रा का महान् प्रभाव जानकर 'तीर्थ' के आलवन से स्व-पर का उपकार करते हैं।

'तीर्थ—ससार समुद्र से पार उतरने वाली नौका है' और श्री तीर्थंकर परमात्मा उस नाव को चलाने वाले निर्यामक (नाविक) हैं।

ऐसे महान प्रभाविक तीर्थ की विधिपूर्वक यात्रा करने से महान फल की प्राप्ति होती है। शास्त्रो मे निम्नोक्त प्रकार से तीर्थयात्रा की विधि वतलाई गई है :—

(१) सचित्त (सजीव) आहार-पानी आदि का त्याग।

(२) एकासन तप (कम से कम)।

(३) सद्गुरुओ के साथ पैदल चलना (पदयात्रा)।

(४) जमीन पर ऊनी सथारे पर शयन करना।

(५) ब्रह्मचर्य का पालन करना।

(६) दोनो समय (सुबह-साझ) प्रतिक्रमण करना।

इन छ नियमो (छ'री) का पालन करते हुए तीर्थयात्रा करने से और शक्ति हो तो चतुर्विध सघ को साथ मे लेकर यात्रा कराने से तीर्थंकर पद की भी प्राप्ति हो सकती है।

श्री ऋषभदेव भगवान के मुख से तीर्थयात्रा का महान फल सुनकर भरत चक-वर्ती ने श्री शत्रुँजय महातीर्थ का सघ बडी ही धूमधाम से निकाला था और तीर्थ का प्रथग उद्धार भी किया था। उनके बाद दण्डवीर्य राजा आदि ने भी सघ के साथ तीर्थ-यात्रा करके तीर्थ का उद्धार किया था। इसी तरह विक्रम महाराजा कुमारपाल, राजा वस्तुपाल, तेजपाल मत्री आदि ने भी बडे बडे सघ निकाल कर तीर्थयात्रा का महान् लाभ प्राप्त किया था।

विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करने से निम्नोक्त ११ फलो की प्राप्ति होती है।

(१) **आरंभनिवृत्ति**—भावुक यात्री, तीर्थयात्रा के लिए जब से प्रयाण करता है तब से सभी प्रकार के (घर और व्यापार सबधी) पाप समारभ (व्यापार) का त्याग करता है जिससे अशुभ विचार आने बन्द हो जाते हैं और क्लिष्ट कषाय शात हो जाने से अशुभ कर्म का बध भी नही होता है।

लक्ष्मी का सदुपयोग—तीर्थयात्रा मे आया हुआ यात्री अपनी लक्ष्मी का सात क्षेत्रो मे (जिनमन्दिर, जिनमूर्ति, जिनागम, साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका) सदुपयोग करके महान पुण्योपार्जित करता है।

(३) **सघवात्सल्य (भक्ति)**—विधिपूर्वक यात्रा करने वाले चतुर्विध सघ की भक्ति का परम सौभाग्य प्राप्त होता है। सादर-सविनय पूर्वक, साधु-साध्वीजी महाराज आदि को आहार-पानी-औषध, वस्त्र प्रदान करने से सम्यग्दर्शन आदि गुणो की प्राप्ति होती है। सद्गुरुदेव के मुख से जिनवाणी (प्रवचन) का श्रवण करने से तत्त्व-ज्ञान, विवेक, धर्मश्रद्धा, सयम आदि गुणो की प्राप्ति सुलभ बनती है और अपने सहर्मी बन्धुओ के सद्गुणो को देख कर वैसे ही गुण अपनी आत्मा मे प्रगटाने के शुभ मनोरथ उत्पन्न होते हैं और उन गुणो के प्रति आदर बहुमान प्रगट होता है।

बनकर तीर्थंकर नाम कर्म का बध करता है और तीसरे भव मे तीर्थंकर बनकर तीर्थ की स्थापना करके तीर्थयात्रा का प्रत्यक्ष फल अपने प्रत्यक्ष दृष्टान्त से सभी को बतलाता है।

(१०) **मुक्ति की समीपता**—तीर्थयात्रा करने वाले को उपरोक्त भावोल्लास क्वचित् न भी उत्पन्न हो सके तो भी वह 'आसन्नसिद्धिक' अवश्य बन जाता है याने उसका मोक्ष शीघ्र ही होता है अर्थात् वह अल्पकाल ससार मे रह कर जल्दी से जल्दी सिद्ध पद पाता है।

इस तरह आत्मा तीर्थयात्रा से मोक्ष को समीप (निकट) करता है।

(११) **सुरनर पदवी**—तीर्थयात्रा करने वाले को जब तक मोक्ष नही मिलता तब तक वह देव और मनुष्य जन्म लेता है और वहाँ भी उसे राजा, महाराजा, स्वामी, इन्द्र आदि की उच्च उच्च पदविएँ प्राप्त होती हैं। उसके दुर्गति के द्वार बन्द हो जाते है, और सद्गति ही होती है वहाँ भी धर्म, विवेक आदि गुणो की प्राप्ति होने से वैराग्य रस मे झीलता हुआ सभी भोगो का त्याग करके चारित्र का विशुद्ध पालन करने अनुक्रम से मोक्ष कोक्ष को प्राप्त करता है।

इसी तरह तीर्थयात्रा का इस लोक मे और परलोक मे महान फल मिलता है ऐसा जानकर सभी महानुभाव आलस प्रमाद को छोड कर तीर्थयात्रा का महान लाभ उठाएँ—यही एक मगल अभिलाषा है।

शिवमस्तु सर्वजगत:।

देवपूजा दयादान, दाक्षिण्य दक्षता दम.।
यस्यैने षड् दकारा स्यु. स देवांशी नरः स्मृतः ॥१॥

देवपूजा, दया, दान, दाक्षिण्य, वडो की मर्यादा, सद और असद का सार, असार का विवेक इन्द्रियो का दमन यह छ दकार जिसके जीवन मे हो वह वास्तव मे देवांशी आत्मा कहलाता है।

तीर्थयात्रा माहात्म्य

लेखक चदनमल नागौरी, छोटी सादडी (मेवाड)

तीर्थ यात्रा से महान् फल-प्राप्ति का वर्णन 'सूक्ति मुक्तावली' ग्रथ के पृष्ठ ४५८ पर चौथे श्लोक मे बताया गया है ।

वैसे तीर्थ के दो प्रकार हैं—स्थावर और जगम । इनकी परिमितता केवल सकेत तुल्य होती है जिससे पहिचान हो सकती है । तीर्थ का विशेष स्वरूप तो द्रव्य तीर्थ, भाव तीर्थ से साथ होता है, जिसकी व्याख्या विस्तृत है और जिसका अनुसरण कर आचार्य महाराज ने श्री आदीश्वर पंच कल्याणक पूजा मे कहा है—

द्रव्य भाव तीर्थ दो कहिए, पहिला जग उपकारी ।
द्रव्य भाव दूजा साथे, भव अटवी पार उतारी ॥

भावार्थ—दो प्रकार के तीर्थ मे प्रथम द्रव्य तीर्थ गुरुमहाराज ने बताए जो जगत के जीवो पर अत्यन्त उपकार करते हैं । भगवत की देशनानुसार ज्ञान प्रसारित कर मोक्ष मार्ग बताते हैं, और दूसरे भाव तीर्थ मे भगवान परमात्मा ने बताए जो भव अटवी से और भव समुद्र से पार करने वाले हैं ।

तीर्थ उसको कहते हैं कि जहाँ जिन कल्याणक हुआ हो । ऐसी कल्याणक भूमि पर उत्तम पुरुषो के चरण-स्पर्श से पवित्रता प्राप्त होने से, वहाँ के पुदगल परमाणु शुद्ध होने से, पवित्रता आती है और शुद्ध भावनाएँ अपने आप आती हैं जिसका वर्णन 'सूक्ति मुक्तावली' ग्रन्थ पृष्ठ ४६६ पाँचवे श्लोक मे स्पष्ट बताया गया है । इसीलिए कहा है 'तारयते इति तीर्थ' जिस स्थान पर जाने से भावना शुद्ध हो, अनित्य भावना आ जाय तो भव-भ्रमण मिट जाता है । जैसे मरुदेवी माता और भरत महाराज को आनित्य भावना से महान फल प्राप्ति हुई है इसीलिए भगवत-परमात्मा । श्री गौतमस्वामी के प्रश्न का उत्तर फरमाते है—

महावीर प्रभु मुख से, यो फरमावे ।।चाल।।
अष्टापद तीर्थ करे यात्रारे, तिसभव मोक्षे जावे ॥१॥

भावार्थ —यात्रा का महान फल बताते हुए फरमाया कि अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने वाला उसी भव मे मोक्ष पाता है ।

तीर्थपति परमात्मा के वचन सिद्ध होते हैं, इसमे शंका को स्थान नही है, परन्तु इस तीर्थ पर अनेक देवगण यात्रार्थ आते हैं और स्वर्ग से मोक्ष मे जाने का नियम नही है। अनेक देव भव्य अभव्य भी होते हैं तो 'तिस भव मोक्षे जावे' का परिगाम कैसे सिद्ध हो सकता है। बात बराबर है, भगवत परमात्मा के स्पष्टीकरण के अनुसार पचतीर्थ पूजा मे फरमाया है—

'आत्म शक्ति वरी, तिस भव मुक्ति ठरी।
यात्रा करे जो अष्टापद, तीरथ भूचर भाव धरी॥

भावार्थ—आत्मशक्ति-लब्धि के पराक्रम से जो इस तीर्थ की यात्रा भूचर अर्थात् (पृथ्वी पर बिहार करके) अष्टापद अर्थात् आठ सीढियो को चढकर यात्रा करता है, तो वह आत्मा मोक्षगामी होती है। विमान द्वारा आने वाले देव गण को यह लाभ नही मिलता।

यात्रा तीन प्रकार की बताई है। पर्वयात्रा अर्थात् अट्ठाई उत्सव या छे अट्ठाइयो मे जिनालय हो वहाँ यात्रा करने जाय। दूसरे रथ-यात्रा के उत्सव मे साथ जाय। निज-निवास के समीप आए तब स्वागत करे और जिनालय पहुँचाने जाय। तीसरे तीर्थ यात्रा जिनदेव की कल्याणक भूमि तीर्थ रूप होती है। इसके अलावा चमत्कारी अतिशय क्षेत्र अथवा उत्तम पुरुषो द्वारा स्थापना हुई हो वह तीर्थ रूप मानी जाती है, और ऐसे अतिशय क्षेत्र तीर्थ श्री पार्श्वनाथ भगवान के नाम पर लगभग डेढसौ विद्यमान हैं। और भी तीर्थ हैं, ये सब यात्रा के धाम समझने चाहिएँ। इस विषय मे कहा है—

तै श्चन्द्रे लिखित स्वनाम, विशद धात्री पपित्री कृता।
ते वन्द्या कृतिन सता, सुकृतिनो वशस्य ते भूषण॥
ते जीवन्ति जयन्ति भूरि विभवास्ते श्रेयसा मन्दिर।
सर्वांगैरपि कुर्वते विधि परा ये तीर्थयात्राभिमा॥१।

भावार्थ—भव्यात्मा सर्व कुटुम्ब परिवार सहित विधिपरायण हो कर तीर्थयात्रा करता है उसका नाम चद्रमण्डल मे अकित होता है। ऐसी आत्मा जन्मभूमि व निज माता को पवित्र करती है। ऐसे कृतार्थ पुरुष को सत्पुरुष भी वन्दन करते हैं। इस तरह यात्रा करने कराने वाला पुरुष वश का भूषण होता है, और दीर्घायु होकर जय पाता है। और सर्व कल्याण इस पुरुष को प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त श्लोक 'सूक्ति मुक्तावली' ग्रन्थ मे पृष्ठ ४६६ पर छठे श्लोक मे अकित है।

तीर्थ स्थान मे यात्रा के समय निर्धन यात्री का मिलाप हो जाय तो उसका विशेष सत्कार करना चाहिए। वन के मद मे आकर पूजा के समय उसे धक्का नही लगाना चाहिए। उसकी आत्मा को शाति पहुँचाना चाहिए। इस विषय मे 'सुभाषितरत्नभाडागार'

ग्रथ मे पृष्ठ १७७ पर तीसरा श्लोक अकित है—

'धन्य सस्तव निर्धनोऽप्येव यज्जिनेन्द्र म पूज्यः ।
धर्म बन्धु स्तव मसि मे तत साधर्मिक त्वतः ॥३॥

भावार्थ—हे स्वधर्मी भाई ! आपको धन्य है कि धन का अभाव होने पर भी आपने यात्रा कर जीवन सफल किया है । आपने जिनेश्वर की पूजा की जिससे स्वधर्मी के नाते तो मेरे बन्धु हैं ही ।

कितनी अनुपम भावना द्वारा धनवान दूसरो का आदर करते हैं, जिन शासन के रागी ऐसे स्वधर्मी को आमत्रित कर भोजन आदि का सत्कार करते हैं । निज जीवन मे ऐसे प्रसग कितनी बार आए हैं सो स्वय सोचने योग्य है ।

यात्रियो—'जिन पडिमा जिन सारिखी' समझ कर पूजन करना भगवंत परमात्मा की प्रतिमा, जिन प्रसाद मे तद्रूप स्थापित है सो अर्हन रूप मान कर पूजा विधान करने से अत्यत लाभ होता है । अस्तु ।

प्राणान्तेऽपि न भक्तव्य गुरुसाक्षीकृतं व्रत ।
व्रतभङ्गोहि दुःखाय, प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥१॥

प्राण चला जाय तो भी गुरु की साक्षी से ग्रहण किया हुआ व्रत खडन करने से दुख होना चाहिए जब कि प्राण तो प्रत्येक जन्म मे मिलता ही है ।

० ० ०

कूटसाक्षी दीर्घरोषी विश्वस्तघ्न. कृतघ्नक. ।
चत्वार कर्मचाण्डाला पचमो जातिसमव ॥२॥

झूठी साक्षी भरने वाला, लम्बे समय तक रोप रखने वाला, विश्वासी को ठगने वाला और कृतघ्नी ये चार कर्म चडाल गिने जाते है और पाँचवाँ चडाल की जाति मे जन्मने वाला ।

विश्व के उद्धारक

ले० श्री अभयसागरजी महाराज गणीवर्य

[श्री तीर्थंकर भगवतो के आदर्शस्वरूप को समझाने वाली शास्त्रीय उपमाओ का स्पष्टीकरण]

ससार मे अनेक प्रकार के प्राणी दिखाई देते हैं उनमे से बहुत से अपना उदरभरण तो अत्यन्त कठिनाईपूर्वक कर लेते हैं परन्तु अपने आश्रितो का पालन-पोषण पूर्णरूपेण करने मे असमर्थ हैं और कितने ही उत्तम पुरुष अपने आश्रितो को सुचारु रूपेण पालने के उपरात भी दीन, दु खी, अनाथ प्राणियो को भी आश्वासनदायक सहकार देकर अनेक मूक आशीर्वाद के पात्र बनते हैं। परन्तु उगलियो पर गिने जायँ उतने जगत के उत्तमोत्तम महापुरुष तो अखिल विश्व के समस्त प्राणियो को सम्पूर्ण रूप से त्रिविध ताप से बचाकर वास्तविक सुख शाति के यथार्थ मार्ग पर पहुँचा कर निष्कारण वात्सल्यपूर्ण सीमातीत उपकार करने वाले होते हैं।

ऐसे सर्वोत्तम महापुरुष अपने उच्च आदर्शानुकूल क्रियाशील जीवन से जो धरोहर ससार को देते हैं उसे समझने के लिए शास्त्रकारो ने विविध प्रकार की उपमाएँ शास्त्रो मे विचित्र ढग से समझाई हैं उनकी अन्तर्निहित विशेष महत्त्वपूर्ण कुछ उपमाओ का शास्त्रीय ढग से विचार इस लघु लेख मे किया जा रहा है।

न्यायविशारद्, न्यायाचार्य, पूज्य उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराज श्रीनवपदपूजा (ढाल १ गाथा ४) मे श्रीतीर्थङ्कर भगवतो की लोकोत्तर उपकारिता समझाते हुए फरमाते हैं —

महागोप महामाहण कहिए, निर्मायक सत्यवाह।
उपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमीए उछाए रे ॥१॥
भविका ! सिद्धचक्र पद वदो ॥

श्रीतीर्थङ्कर परमात्मा के अद्भुत व्यक्तित्व के यथार्थ परिचय कराने वालो ने महागोप, महामाहण महानिर्यामक और महासार्थवाह की चार रूपक उपमाएँ बाल जीवो को उपयोगी होती हैं अत उसका क्रमश विवेचन किया जाता है।

१ महागोप—

जीव निकाया गावो, जते पालेति महागोवा।
मरणाइ भयाहि जिणा, णिव्वाणवणच पावेति ॥

—श्रीआवश्यकनिर्युक्ति गाथा ।९१९

जिस प्रकार ग्वाला अपनी या गाँव की गाएँ, भैसें, भेडे, बकरिएँ आदि पशुओं का यथोचित पालन-पोषण करता है, अच्छा घास, चारा, मीठे जल आदि पदार्थों के हेतु जगलो मे ले जाता है और जगलो मे हिसक पशु बाघ, सिह, चीते आदि के त्रास-रक्षार्थ सदैव प्रयत्नशील रहता है ; उसी प्रकार छ जीव निकाय रूपी सम्पूर्ण अज्ञान प्राणियो को धर्म की आराधना के सुयोग्य मार्गदर्शनरूपी व्यवस्थित सभाल करते हुए आत्मिक स्वरूप की रमणता रूपी सुन्दर घास, पानी से परिपूर्ण मनोहर मोक्ष रूपेण जगल मे ले जाते हैं और रागद्वेष रूपी बाघ, शेर एव पुराने अशुभ सस्कार रूप शिकारी पशुओ के त्रास से छ जीव निकाय की जयणा पालने के मधुर उपदेश द्वारा बचाते रहते हैं।

अत श्रीतीर्थंकर परमात्मा वास्तव मे अखिल विश्व के छोटे-बडे प्राणी मात्र के सच्चे सरक्षक होने से महागोप का चोगा पहनकर अपनी लोकोत्तर जीवन शक्ति का परिचय देते हैं।

२. महामाहण—

सव्वेपाणा सव्वे भूषा सव्वे जीवा।
सव्वे सत्ताणहतव्वा णअज्जावे पव्वाण।
परिघेत्तव्वा ण परियाणेपव्वाण उद्दवेयव्वा॥

—श्री आचारागसूत्र अध्या० ४३ सू० १

इस अवसर्पिणी के आद्य तीर्थंकर श्रीऋषभदेव भगवत के पुत्र और आद्यचक्रवर्ती श्री भरतचक्रवर्ती ने अपनी विवेक बुद्धि को जागृत रखने हेतु व्यवस्थित रूप से तैयार किए आदर्श महाश्रावक जिस प्रकार यदा तदा होने वाली हिसा को 'माहण माहण' शब्दो से रोकने थामने की चेष्टा करते थे, उसी प्रकार लोकोत्तर उपकारी श्रीतीर्थंकर परमात्मा भव्यात्माओ को सम्बोधन की निरन्तर घोषणा कर रहे हैं—'माहण माहण' किसी जीव की हिसा मत करो, हिसा मत करो। 'शक्य जयणा बुद्धि के समन्वय से अनर्थ दड का सर्वथा त्याग कर अर्थदण्ड के रूप मे विवशता से आवश्यक रूप मे की जाने वाली हिसा के क्षेत्र मे भी सकोच करते रहो।'

उपरोक्त अभयसदेश श्रीतीर्थंकरदेव भगवन् ससार के निखिल प्राणियो को अभय मुद्रा से निरतर सुना रहे हैं।

३. महानिर्यामक—

'णिज्जाय मगरयणाण, अमूढणाणमई कण्णधाराव।
वदायि विणयपणओ, तिविहेनतिदण्ड विरयाण॥'

—श्रीआवश्यकनिर्युक्ति गाथा ९१४